# विवेकानन्द साहित्य

## जन्मशती संस्करण

द्वितीय खड

अद्वैत आश्रम
५ डिही एण्टाली रोड
कलकत्ता १४

प्रकाशक
स्वामी गम्भीरानन्द
अध्यक्ष अद्वैत आश्रम
मायावती अल्मोड़ा हिमालय

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण
5M3C—१९६६

मूल्य [illegible] रुपये

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग भारत

# विषय-सूची

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **ज्ञानयोग** | |
| मनुष्य का यथार्थ स्वरूप | ३ |
| मनुष्य का वास्तविक और प्रातिभासिक स्वरूप | २१ |
| माया और भ्रम | ४३ |
| माया और ईश्वर-धारणा का क्रमविकास | ६० |
| माया एवं मुक्ति | ७३ |
| ब्रह्म एवं जगत् | ८५ |
| विश्व : बृहत् ब्रह्माण्ड | ९९ |
| विश्व : सूक्ष्म ब्रह्माण्ड | १०८ |
| अमरत्व | १२२ |
| बहुत्व में एकत्व | १३३ |
| सभी वस्तुओं में ब्रह्मदर्शन | १४८ |
| अपरोक्षानुभूति | १५९ |
| आत्मा की मुक्ति | १७८ |
| धर्म की आवश्यकता | १९१ |
| आत्मा | २०२ |
| आत्मा : उसके बन्धन तथा मुक्ति | २१६ |
| **व्याख्यान, प्रवचन एवं कक्षालाप—२** | |
| धर्म : सामान्य | |
| आत्मा, ईश्वर और धर्म | २२७ |
| धर्म : उसकी विधियाँ और प्रयोजन | २३७ |
| धर्म एवं विज्ञान | २५१ |
| भगवत्प्राप्ति ही धर्म है | २५३ |
| स्वार्थोन्मूलन ही धर्म है | २५४ |

विषय

धर्म का प्रमाण

धर्म का सार-तत्त्व

धर्म के दावे

तर्क और धर्म

धर्म क्या है ?

पत्रावली—२

अनुक्रमणिका

# ज्ञानयोग

स्वामी विवेकानन्द

# मनुष्य का यथार्थ स्वरूप

## (लन्दन मे दिया हुआ भाषण)

इस पचेन्द्रियग्राह्य जगत् से मनुष्य बडी आसक्ति से चिपका रहना चाहता है। किन्तु वह इस बाह्य जगत् को, जिसमे वह जीता और क्रिया-कलाप करता है, चाहे जितना ही सत्य क्यो न समझे, प्रत्येक व्यक्ति और जाति के जीवन मे एक समय ऐसा अवश्य आता है, जब वे सहज ही जिज्ञासा करते हैं—'क्या यह जगत् सत्य है?' जिन व्यक्तियो को अपनी इन्द्रियो की विश्वसनीयता मे शका करने का तनिक भी समय नही मिलता, जिनके जीवन का प्रत्येक क्षण किसी न किसी प्रकार के विषय-भोग मे ही व्यस्त रहता है, मृत्यु एक दिन उनके भी सिरहाने आकर खडी हो जाती है और विवश होकर उन्हे भी कहना पडता है—'क्या यह जगत् सत्य है?' इसी एक प्रश्न से धर्म का आरम्भ होता है और इसके उत्तर मे ही धर्म की इति है। इतना ही क्यो, सुदूर अतीत काल मे, जहाँ इतिहास की कोई पहुँच नही, उस रहस्यमय पौराणिक युग मे, सभ्यता के उस अस्फुट उषाकाल मे भी, हम देखते हैं कि यही एक प्रश्न उस समय भी पूछा गया है—'इसका क्या होता है? क्या यह सत्य है?'

कवित्वमय कठोपनिषद् के प्रारम्भ मे हम यह प्रश्न देखते हैं—'कोई कोई लोग कहते हैं कि मनुष्य के मरने पर उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है, और कोई कहते हैं कि नही, उसका अस्तित्व फिर भी रहता है, इन दोनो बातो मे कौन सी सत्य है?'—**येय प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये, अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।** ससार में इस सम्बन्ध मे अनेक प्रकार के उत्तर मिलते हैं। जितने प्रकार के दर्शन या धर्म ससार मे है, वे सब वास्तव मे इसी प्रश्न के विभिन्न उत्तरो से परिपूर्ण हैं। अनेक बार तो इन प्रश्नो का —'परे क्या है? सत्य क्या है?' प्राणो की इस महती अशाति का —अवदमन करने की चेष्टा की गयी है। किन्तु जब तक मृत्यु नामक वस्तु जगत् मे है, तब तक इस प्रश्न को दबा देने की सारी चेष्टाएँ विफल रहेगी। यह कहना सरल है कि हम जगदातीत सत्ता का अन्वेषण नही करेंगे, इसके प्रति सोचना बद करने के लिए कठिन सघर्ष करेंगे और अपनी समस्त आशा और आकाक्षा को प्रस्तुत क्षण मे ही सीमित रखेंगे, बहिर्जगत् की सारी वस्तुएँ भी हमे

इन्द्रियों की सीमा के भीतर बन्द करने में सहायता पहुँचाती है। सारा संसार भी एक हो हमें वर्तमान की क्षुद्र सीमा के बाहर दृष्टि डालने से रोक सकता है। पर जब तक जगत् में मृत्यु रहेगी तब तक यह प्रश्न बार बार उठेगा—'हम जो इन सब वस्तुओं को सत्य का भी सत्य सार का भी सार समझकर इनमें भयानक रूप से आसक्त हैं तो क्या मृत्यु ही इन सबका अन्तिम परिणाम है? जगत् तो एक क्षण में ही ध्वंस होकर न जाने कहाँ चला जाता है। ऊपर है अत्युच्च गगनचुम्बी पर्वत और नीचे है गहरी खाई, मानो मुँह फैलाये जीव को निगलने के लिए आ रही हो। इस पर्वत के किनारे खड़े होने पर, कितना ही कठोर अन्तःकरण क्यों न हो निश्चय ही सिहर उठेगा और पूछेगा—'यह सब क्या सत्य है? कोई तेजस्वी हृदय जीवन भर बड़े प्रयत्न के साथ जिस आशा को अपने हृदय में संजोये रहा वह एक मुहूर्त में ही उड़कर न जाने कहाँ चली गयी तो क्या हम इस सब आशा को सत्य कहेंगे? इस प्रश्न का उत्तर देना होगा। काल प्राणों की इस आकांक्षा को हृदय के इस गम्भीर प्रश्न की शक्ति का कभी भी ह्रास नहीं कर सकता प्रत्युत काल का स्रोत ज्यों ज्यों आगे बढ़ता जाता है त्यों त्यों इस प्रश्न की शक्ति भी बढ़ती जाती है।

फिर मनुष्य को सुखी होने की इच्छा होती है। अपने को सुखी करने के लिए वह सभी ओर दौड़ता फिरता है—इन्द्रियों के पीछे पीछे भागता रहता है—पागल की भाँति बाह्य जगत् में कार्य करता जाता है। जो युवक जीवन-संग्राम में सफल हुए हैं, उनसे यदि पूछो तो कहेंगे 'यह जगत् सत्य है'—उन्हें सभी बातें सत्य प्रतीत होती हैं। ये ही व्यक्ति जब बूढ़े हो जायेंगे जब सौभाग्य-लक्ष्मी उन्हें बार बार धोखा देगी तब उनसे यदि पूछो तो शायद यही कहेंगे 'अरे भाई, सब भाग्य का खेल है। इतने दिनों बाद वे जान सके कि वासना की पूर्ति नहीं होती। वे जिधर जाते हैं, उधर ही मानो वज्र के समान दृढ़ दीवार उनके सामने खड़ी हो जाती है, जिसे लाँघना उनके बस की बात नहीं। प्रत्येक इन्द्रिय-कर्मण्यता के परिणामस्वरूप प्रतिक्रिया होती ही है। हर वस्तु क्षणस्थायी है। विलास वैभव शक्ति दारिद्र्य यहाँ तक कि जीवन भी क्षणस्थायी है।

मनुष्य के लिए दो उत्तर रह जाते हैं। एक है— शून्यवादियों की भाँति विश्वास करना कि सब कुछ शून्य है हम कुछ भी नहीं जान सकते—भूत भविष्य या वर्तमान के भी सम्बन्ध में कुछ नहीं जान सकते क्योंकि जो व्यक्ति भूत-भविष्य को अस्वीकार कर केवल वर्तमान को स्वीकार करते हुए उसीमें अपनी दृष्टि को सीमित रखना चाहता है वह निरा पागल है। यह तो बस वैसे ही हुआ जैसे माता-पिता के अस्तित्व को अस्वीकार करते हुए सन्तान के अस्तित्व को स्वीकार

करना। दोनो समान रूप से युक्तिसगत हैं। भूत और भविष्य को अस्वीकार करने का अर्थ है, वर्तमान को भी अस्वीकार करना। यह एक भाव हुआ—यह शून्यवादियो का मत। पर मैंने ऐसा मनुष्य आज तक नही देखा, जो एक मुहूर्त के लिए भी शून्यवादी हो सके, मुँह से कहना अवश्य बडा सरल है।

दूसरा उत्तर यह है कि इस प्रश्न के वास्तविक उत्तर की खोज करो—सत्य की खोज करो—इस नित्य परिवर्तनशील नश्वर जगत् मे क्या सत्य है, इसकी खोज करो। कुछ भौतिक परमाणुओ के समष्टिस्वरूप इस देह के भीतर क्या कोई ऐसी चीज है, जो सत्य हो? मानव जीवन के इतिहास मे सदैव इस तत्त्व का अन्वेषण किया गया है। हम देखते हैं कि अति प्राचीन काल से ही मनुष्य के मन मे इस तत्त्व का अस्पष्ट प्रकाश उद्भासित हो गया था। हम देखते हैं कि उसी समय से मनुष्य ने स्थूल देह से अतीत एक अन्य देह का भी पता पा लिया था, जो अनेक अशो मे इस स्थूल देह के ही समान होने पर भी पूर्ण रूप से वैसा नही है, वह स्थूल देह से श्रेष्ठ है—शरीर का नाश हो जाने पर भी उसका नाश नही होता। हम ऋग्वेद के एक सूक्त मे, मृत शरीर को दग्ध करनेवाले अग्निदेव के प्रति यह मन्त्र पाते हैं—'हे अग्नि! तुम इसे अपने हाथो मे लेकर धीरे धीरे ले जाओ—इसे सर्वांगसुन्दर, ज्योतिर्मय देह से सम्पन्न करो—इसे उसी स्थान मे ले जाओ, जहाँ पितृगण वास करते हैं, जहाँ दुःख नही है, जहाँ मृत्यु नही है।' तुम देखोगे कि सभी धर्मों मे यह भाव विद्यमान है, और इसके साथ ही हम और एक विचार पाते हैं। आश्चर्य की बात है कि सभी धर्म एक स्वर से घोषणा करते हैं कि मनुष्य पहले निष्पाप और पवित्र था, पर आज उसकी अवनति हो गयी है। इस भाव को फिर वे रूपक की भाषा मे, या दर्शन की स्पष्ट भाषा मे अथवा कविता की सुन्दर भाषा मे क्यो न प्रकाशित करें, पर वे सब के सब अवश्य इस एक तत्त्व की घोषणा करते हैं। सभी शास्त्रो और पुराणो मे यही एक तत्त्व पाया जाता है कि मनुष्य जैसा पहले था, वैसा अब नही है—आज वह पहले से गिरी हुई दशा मे है। यहूदियो के धर्मग्रथो मे आदम के पतन की जो कथा है, उसका भी मर्म वास्तव मे यही है। हिन्दू शास्त्रो मे इसका बार बार उल्लेख हुआ है। हिन्दुओ ने सतयुग कहकर जिस युग का वर्णन किया है—जब कि मनुष्य की मृत्यु उसकी इच्छानुसार होती थी, जब मनुष्य जितने दिन चाहे अपने शरीर को धारण कर सकता था, जब मनुष्यो का मन शुद्ध और दृढ था—उसमे भी इसी सार्वभौमिक सत्य का सकेत मिलता है। वे कहते हैं कि उस समय मृत्यु नही थी, किसी प्रकार का अशुभ या दुःख नही था, और वर्तमान युग उसी उन्नत अवस्था का भ्रष्ट भाव मात्र है। इस वर्णन के साथ साथ हम सभी धर्मों मे जल-प्लावन अर्थात् प्रलय का वर्णन भी पाते हैं।

यह बात सिद्ध नहीं होती। क्रमविकास कहने के साथ ही साथ क्रमसंकोच की प्रक्रिया को भी मानना पड़ेगा। विज्ञानवेत्ता ही तुमसे कहते हैं कि किसी यन्त्र में तुम जितनी शक्ति का प्रयोग करोगे उसमें से तुम्हें बस उतनी ही शक्ति मिल सकती है। असत् (कुछ नहीं) से कभी भी सत् (कुछ) की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि मानव—पूर्ण मानव—बुद्ध-मानव ईसा-मानव एक क्षुद्र मांसल जन्तु का ही विकास हो तब तो इस क्षुद्र जन्तु को भी संकुचित या अव्यक्त बुद्ध कहना पड़ेगा। यदि ऐसा न हो तो ये सब महापुरुष फिर कहाँ से उत्पन्न हुए? असत् से तो कभी सत् की उत्पत्ति नहीं होती। इसी प्रकार हम शास्त्र के साथ आधुनिक विज्ञान का समन्वय कर सकते हैं। जो शक्ति धीरे धीरे नाना सोपानों में से होती हुई पूर्ण मनुष्य के रूप में परिणत होती है वह कभी भी शून्य से उत्पन्न नहीं हो सकती। वह कहीं न कहीं अवश्य वर्तमान थी और यदि तुम विश्लेषण करते करते इस प्रकार के क्षुद्र मांसल वस्तुविशेष या जीवसार (protoplasm) तक ही पहुँचकर उसीको आदि कारण सिद्ध करते हो तो यह निश्चित है कि इस जीवसार में ही यह शक्ति किसी न किसी रूप में विद्यमान थी।

आजकल यह विवाद चल रहा है कि क्या पंचभूतों की समष्टि यह देह ही आत्मा चिन्तन-शक्ति या विचार आदि नामों से परिचित शक्तियों के विकास का कारण है? अथवा चिन्तन-शक्ति ही देहोत्पत्ति का कारण है? निश्चय ही संसार के सभी धर्म कहते हैं कि विचार नामक शक्ति ही शरीर की प्रकाशक है और वे इसके विपरीत मत में आस्था नहीं रखते। अनेक आधुनिक विचारधाराएँ (Comte Positivism) मानती हैं कि चिन्तन-शक्ति केवल शरीर नामक यन्त्र के विभिन्न अंशों के एक समायोजन से उत्पन्न होती है। यदि इस द्वितीय मत को मान लिया जाय अर्थात् यह स्वीकार कर लिया जाय कि यह आत्मा या मन या इसे किसी भी नाम से क्यों न पुकारो इस जड़ देहरूप मशीन का ही फलस्वरूप है—जिन जड़ परमाणुओं से मस्तिष्क और शरीर का गठन होता है यह उन्हींके रासायनिक अथवा भौतिक योग से उत्पन्न होनेवाली वस्तु है, तब तो यह प्रश्न ही असमाधेय रह जायगा। शरीर की रचना कौन करता है कौन सी शक्ति इन भौतिक अणुओं को शरीर के रूप में परिणत करती है? कौन सी शक्ति प्रकृति में पड़ी हुई जड़ वस्तु के ढेर में से कुछ अंश लेकर तुम्हारा शरीर एक प्रकार का और मेरा शरीर दूसरे प्रकार का बना डालती है? ये सब अनन्त विभेद कैसे होते हैं? यह कहना कि आत्मा नामक शक्ति शरीर के भौतिक परमाणुओं के विभिन्न संघातों से उत्पन्न होती है ठीक वैसा ही है जैसे बैल के आगे गाड़ी जोतना। ये संघात कैसे उत्पन्न हुए? किस शक्ति ने ऐसा कर

दिया? यदि तुम कहो कि अन्य किसी शक्ति ने यह सघात कर दिया है और आत्मा, जो इस समय एक विशेष जडराशि के साथ सहत दिखायी दे रही है, इन्ही सब जड परमाणुओ के सघात का फल है, तब तो यह कोई उत्तर न हुआ। जो मत अन्यान्य मतो का विना खण्डन किये, चाहे सबकी न हो, पर अधिकतर घटनाओ की, अधिकतर विषयो की व्याख्या कर सकता है, वही ग्राह्य है। अतएव यही बात अधिक युक्तिसगत है कि जो शक्ति जड तत्त्व को लेकर उससे शरीर का निर्माण करती है और जो शक्ति शरीर के भीतर व्यक्त है, वे दोनो एक ही हैं। अत यह कहना कि 'जो चिन्तन-शक्ति हमारे शरीर मे व्यक्त है, वह केवल जड अणुओ के सयोग से उत्पन्न होती है और इसीलिए शरीर से पृथक् उसका कोई अस्तित्व नही' बिल्कुल निरर्थक है—इस कथन मे कोई तथ्य नही। फिर, शक्ति कभी जड तत्त्व से उत्पन्न हो नही सकती। वल्कि यह प्रमाणित करना अधिक सम्भव है कि हम जिसे जड कहकर पुकारते हैं, उसका अस्तित्व ही नही है, वह केवल शक्ति की एक विशेष अवस्था है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि ठोसपन, कठिनता आदि जो सब जड के गुण हैं, वे गति के फल हैं। द्रवो को प्रचुर शीर्षीय गति देने से वे ठोस हो जायँगे। वायुपुज मे यदि अतिशय शीर्षीय गति उत्पन्न कर दी जाय, जैसे तूफ़ान मे, तो वह ठोस सा हो जाता है और अपने आघात से ठोस पदार्थों को तोड या काट सकता है। यदि मकडी के जाले के एक ततु को अनत वेग दिया जाय तो, वह लोहे की जजीर जैसा सशक्त हो जायगा और ओक पेड को काटकर पार हो जायगा। इस प्रकार से विचार करने पर यह सिद्ध करना सहज है कि हम जिसे जड तत्त्व कहते हैं, उसका कोई अस्तित्व ही नही है। किन्तु दूसरा मत सिद्ध नही किया जा सकता।

शरीर के भीतर यह जो शक्ति की अभिव्यक्ति देखी जाती है, यह है क्या? हम सभी यह बात सरलता से समझ सकते हैं कि यही शक्ति, फिर वह चाहे जो हो, जड परमाणुओ को लेकर उनसे एक विशेष आकृति—मनुष्य देह—तैयार कर रही है। अन्य कोई आकर तुम्हारे या मेरे शरीर को नही बना देता। ऐसा मैंने कभी नही देखा कि दूसरा कोई मेरे लिए भोजन कर लेता हो। मुझे ही इस भोजन का सार शरीर मे लेकर उससे रक्त, मास, अस्थि आदि का गठन करना पड़ता है। यह अद्भुत शक्ति क्या है? बहुतो को भूत और भविष्य सम्बन्धी सिद्धान्त भयावह प्रतीत होते हैं, बहुतो को तो वे केवल आनुमानिक व्यापार ही प्रतीत होते हैं।

हम प्रस्तुत विषय को ही लेंगे। वह शक्ति क्या है, जो इस समय हममे काम कर रही है? हम देख चुके हैं कि सभी प्राचीन शास्त्रो मे इस शक्ति को,

इसी शक्ति की अभिव्यक्ति को शारीरिक आकृतिवाला एक ऐसा ज्योतिर्मय पदार्थ माना गया है जो इस शरीर के नष्ट हो जाने पर भी बचा रहता है। क्रमशः हम देखते हैं कि केवल ज्योतिर्मय देह कहने से सन्तोष नहीं होता—एक और भी उच्चतर भाव लोगों के मन पर अधिकार करता दिखायी देता है। वह यह है कि किसी भी प्रकार का शरीर शक्ति का स्थान नहीं ले सकता। जिस किसी वस्तु की आकृति है वह बहुत से परमाणुओं की एक संहति मात्र है अतएव उसको चलाने के लिए दूसरी कोई चीज चाहिए। यदि इस शरीर का गठन और परिचालन करने के लिए इस शरीर से भिन्न अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता होती हो तो इसी तर्क के बल पर, इस ज्योतिर्मय देह का गठन और परिचालन करने के लिए भी इससे भिन्न अन्य कोई वस्तु चाहिए। यह 'अन्य कोई वस्तु' ही संस्कृत भाषा में आत्मा नाम से सम्बोधित हुई। यह आत्मा ही इस ज्योतिर्मय देह में से मानो स्थूल शरीर पर काम कर रही है। यह ज्योतिर्मय शरीर ही मन का आधार कहा जाता है, और आत्मा इससे अतीत है। आत्मा मन भी नहीं है, वह मन पर कार्य करती है और मन के माध्यम से शरीर पर। तुम्हारे एक आत्मा है, मेरे भी एक आत्मा है—सभी के अलग अलग आत्मा है और एक एक सूक्ष्म शरीर भी इस सूक्ष्म शरीर की सहायता से हम स्थूल शरीर पर कार्य करते हैं। अब प्रश्न उठने लगा—आत्मा और उसके स्वरूप के सम्बन्ध में। शरीर और मन से पृथक् इस आत्मा का क्या स्वरूप है? बहुत से वाद प्रतिवाद होने लगे नाना प्रकार के सिद्धान्त और अनुमान होने लगे अनेकविध दार्शनिक अनुसन्धान होने लगे। इस आत्मा के सम्बन्ध में वे जिन सिद्धान्तों पर पहुँचे मैं तुम्हारे समक्ष उनका वर्णन करने का प्रयत्न करूँगा।

भिन्न भिन्न दर्शनों का इस विषय में मतैक्य देखा जाता है कि आत्मा का स्वरूप जो कुछ भी हो उसका कोई रूपाकार नहीं होता और जिसका रूपाकार नहीं वह अवश्य सर्वव्यापी होगा। काल का आरम्भ मन से होता है—देश भी मन के अन्तर्गत है। काल को छोड़ कार्य-कारणभाव नहीं रह सकता। क्रम की भावना के बिना कार्य-कारणभाव नहीं रह सकता। अतएव देश-काल-निमित्त मन के अन्तर्गत है और यह आत्मा मन से अतीत और निराकार होने के कारण देश काल-निमित्त के परे है। और जब वह देश-काल-निमित्त से अतीत है, तो अवश्य अनन्त होगी। अब हमारे दर्शन का उच्चतम विचार आता है। अनन्त कभी दो नहीं हो सकता। यदि आत्मा अनन्त है तो केवल एक ही आत्मा हो सकती है और यह जो अनेक आत्माओं की धारणा है—तुम्हारी एक आत्मा मेरी दूसरी आत्मा—यह सत्य नहीं है। अतएव मनुष्य का प्रकृत स्वरूप एक ही है, वह

अनन्त और सर्वव्यापी है, और यह प्रातिभासिक जीव मनुष्य के इस वास्तविक स्वरूप का एक सीमावद्ध भाव मात्र है। इसी अर्थ मे पूर्वोक्त पौराणिक तत्त्व भी सत्य हो सकते हैं कि प्रातिभासिक जीव, चाहे वह कितना ही महान् क्यो न हो, मनुष्य के इस अतीन्द्रिय, प्रकृत स्वरूप का धुंघला प्रतिविम्व मात्र है। अतएव मनुष्य का प्रकृत स्वरूप—आत्मा—कार्य-कारण से अतीत होने के कारण, देश-काल से अतीत होने के कारण, अवश्य मुक्तस्वभाव है। वह कभी वद्ध नही थी, न ही वद्ध हो सकती थी। यह प्रातिभासिक जीव, यह प्रतिविम्व, देश-काल-निमित्त के द्वारा सीमावद्ध होने के कारण वद्ध है। अथवा हमारे कुछ दार्शनिको की भाषा मे, 'प्रतीत होता है, मानो वह वद्ध हो गयी है, पर वास्तव मे वह वद्ध नही है।' हमारी आत्मा के भीतर जो यथार्थ सत्य है, वह यही कि आत्मा सर्वव्यापी है, अनन्त है, चैतन्यस्वभाव है, हम स्वभाव से ही वैसे हैं—हमे प्रयत्न करके वैसा नही वनना पडता। प्रत्येक आत्मा अनन्त है, अत जन्म और मृत्यु का प्रश्न उठ ही नही सकता। कुछ वालक परीक्षा दे रहे थे। परीक्षक कठिन कठिन प्रश्न पूछ रहे थे। उनमे यह भी प्रश्न था—"पृथ्वी गिरती क्यो नही?" वे गुरुत्वाकर्षण के नियम आदि सम्वन्धी उत्तर की आशा कर रहे थे। अधिकाश वालक-वालिकाएँ कोई उत्तर न दे सके। कोई कोई गुरुत्वाकर्षण या और कुछ कह कहकर उत्तर देने लगे। उनमे से एक वुद्धिमती वालिका ने एक और प्रश्न करके इस प्रश्न का समाधान कर दिया—"पृथ्वी गिरेगी कहाँ पर?" यह प्रश्न ही तो गलत है! पृथ्वी गिरे कहाँ? पृथ्वी के लिए गिरने और उठने का कोई अर्थ नही। अनन्त देश मे ऊपर और नीचे नही होता, ये दोनो तो सापेक्ष देश मे हैं। जो अनन्त है, वह कहाँ जायगा और कहाँ से आयेगा?

जब मनुष्य भूत और भविष्य की चिन्ता का—उसका क्या क्या होगा, इस चिन्ता का—त्याग कर देता है, जब वह देह को सीमावद्ध और इसलिए उत्पत्ति-विनाशशील जानकर देहाभिमान का त्याग कर देता है, तव वह एक उच्चतर आदर्श मे पहुँच जाता है। देह भी आत्मा नही और मन भी आत्मा नही, क्योकि इन दोनो मे ह्रास और वृद्धि होती है। जड जगत् से अतीत आत्मा ही अनन्त काल तक रह सकती है। शरीर और मन सतत परिवर्तनशील हैं। वे दोनो परिवर्तनशील कुछ घटना-श्रेणियो के केवल नाम हैं। वे मानो एक नदी के समान हैं, जिसका प्रत्येक जल-परमाणु सतत चलायमान है, फिर भी वह नदी सदा एक अविच्छिन्न प्रवाह सी दिखती है। इस देह का प्रत्येक परमाणु सतत परिणामशील है, किसी भी व्यक्ति का शरीर, कुछ क्षण के लिए भी, एक समान नही रहता। फिर भी मन पर एक प्रकार का सस्कार वैठ गया है, जिसके कारण-

हम इसे एक ही शरीर समझते हैं। मन के सम्बन्ध में भी यही बात है, क्षण में सुखी, क्षण में दुःखी, क्षण में सबल और क्षण में दुर्बल। यह सतत परिणामशील भँवर के समान है। अतएव मन भी आत्मा नहीं हो सकता। आत्मा तो अनन्त है। परिवर्तन केवल ससीम वस्तु में ही सम्भव है। अनन्त में किसी प्रकार का परिवर्तन हो, यह एक असम्भव बात है। यह कभी हो नहीं सकता। शरीर की दृष्टि से तुम और मैं एक स्थान से दूसरे स्थान को जा सकते हैं, जगत् का प्रत्येक अणु-परमाणु नित्य परिणामशील है, पर जगत् को एक समष्टि के रूप में लेने पर उसमें गति या परिवर्तन असम्भव है। गति सर्वथा सापेक्ष है। मैं जब एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता हूँ, तब किसी वस्तु के संदर्भ में ही। जगत् का कोई परमाणु किसी दूसरे परमाणु की तुलना में ही परिणाम को प्राप्त हो सकता है, किन्तु सम्पूर्ण जगत् को एक समष्टिरूप में लेने पर फिर किसकी तुलना में उसका स्थान-परिवर्तन होगा? इस समष्टि के अतिरिक्त और कुछ तो है नहीं। अतएव यह अनन्त इकाई, अपरिणामी, अचल और निरपेक्ष है, और यही पारमार्थिक सत्ता है। अतः हमारा सत्य सर्वव्यापकता में है, सान्तता में नहीं। यह धारणा कि मैं एक क्षुद्र, सान्त, सतत परिणामी जीव हूँ, कितनी ही सुखद क्यों न हो, फिर भी यह एक पुराना भ्रम ही है। यदि किसीसे कहो कि 'तुम सर्वव्यापी, अनन्त पुरुष हो', तो वह डर जायगा। सबके माध्यम से तुम कार्य कर रहे हो, सब पैरों द्वारा तुम चल रहे हो, सब मुखों से तुम बातचीत कर रहे हो, सब हृदयों से अनुभव कर रहे हो।

ऐसी बातें यदि तुम किसीसे कहो, तो वह डर जायगा। वह तुमसे बार बार पूछेगा कि क्या फिर उसका अपना व्यक्तित्व नहीं रह जायगा? क्या मैं नहीं रह जाऊँगा? यह व्यक्तित्व—मैं—क्या है? यदि जान पाऊँ, तो अच्छा हो। छोटे बालक के मूँछें नहीं होतीं। बड़े होने पर उसके दाढ़ी-मूँछ निकल आती हैं। यदि 'अहं' शरीर में रहता होता, तब तो बालक का 'व्यक्तित्व' नष्ट हो गया होता। यदि 'अहं' का व्यक्तित्व शरीरगत होता, तब तो हमारी एक आँख अथवा हाथ नष्ट हो जाने पर वह नष्ट हो जाता। फिर शराबी का शराब छोड़ना ठीक नहीं, क्योंकि तब तो उसका व्यक्तित्व ही नष्ट हो जायगा! चोर का साधु बनना भी ठीक नहीं, क्योंकि इससे वह अपना व्यक्तित्व खो बैठेगा! तब तो फिर कोई भी अपना व्यसन छोड़ना न चाहेगा। पर बात यह है कि अनन्त को छोड़कर और किसीमें व्यक्तित्व है ही नहीं। केवल इस अनन्त का ही परिवर्तन नहीं होता, और शेष सभी का सतत परिवर्तन होता रहता है। 'व्यक्तित्व-भाव' स्मृति में भी नहीं है। स्मृति में यदि 'व्यक्तित्व भाव' रहता, तो मस्तिष्क में गहरी चोट

लगने से स्मृति-लोप हो जाने पर, वह नष्ट हो जाता और हमारा विल्कुल लोप हो जाता। वचपन के, पहले दो-तीन वर्षों का मुझे कोई स्मरण नही है और यदि स्मृति और अस्तित्व एक है, तो फिर कहना पडेगा कि इन दो-तीन वर्षों मे मेरा अस्तित्व ही नही था। तव तो, मेरे जीवन का जो अश मुझे स्मरण नही, उस समय मैं जीवित ही नही था—यही कहना पडेगा। यह वात 'व्यक्तित्व' के वहुत सकीर्ण अर्थ मे है।

हम अभी तक 'व्यक्ति' नही हैं। हम इसी 'व्यक्तित्व' को प्राप्त करने के लिए सघर्ष कर रहे हैं, और वह अनन्त है, वही मनुष्य का प्रकृत स्वरूप है। जिनका जीवन सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त किये हुए है, वे ही जीवित हैं, और हम जितना ही अपने जीवन को शरीर आदि छोटे छोटे सान्त पदार्थों मे वद्ध करके रखेंगे, उतना ही हम मृत्यु की ओर अग्रसर होगे। जितने क्षण हमारा जीवन समस्त जगत् मे व्याप्त रहता है, दूसरो मे व्याप्त रहता है, उतने ही क्षण हम जीवित रहते हैं। इस क्षुद्र जीवन मे अपने को वद्ध कर रखना तो मृत्यु है और इसी कारण हमे मृत्यु-भय होता है। मृत्यु-भय तो तभी जीता जा सकता है, जब मनुष्य यह समझ ले कि जव तक जगत् मे एक भी जीवन शेष है, तव तक वह भी जीवित है। ऐसे व्यक्तियो को यह उपलब्धि होती है कि मैं सव वस्तुओ मे, सव देहो मे वर्तमान हूँ। सव प्राणियो मे मैं ही वर्तमान हूँ। मैं ही यह जगत् हूँ, सम्पूर्ण जगत् ही मेरा शरीर है। जब तक एक भी परमाणु शेष है, तव तक मेरी मृत्यु कहाँ? कौन कहता है कि मेरी मृत्यु होगी? तव ऐसे व्यक्ति निर्भय हो जाते हैं, तभी यह निर्भीक अवस्था आती है। सतत परिणामशील छोटी छोटी वस्तुओ मे अविनाशत्व कहना भारी भूल है। एक प्राचीन भारतीय दार्शनिक ने कहा है कि आत्मा अनन्त है, इसलिए आत्मा ही 'व्यक्ति—अविभाज्य' हो सकती है। अनन्त का विभाजन नही किया जा सकता—अनन्त को खण्ड खण्ड नही किया जा सकता। वह सदा एक, अविभक्त समष्टिस्वरूप, अनन्त आत्मा ही है और वही मनुष्य का यथार्थ 'व्यक्तित्व' है, वही 'प्रकृत मनुष्य' है। 'मनुष्य' के नाम से जिसको हम जानते हैं, वह इस 'व्यक्तित्व' को व्यक्त जगत् मे प्रकाशित करने के प्रयत्न का फल मात्र है, 'क्रमविकास' आत्मा मे नही है। यह जो सव परिवर्तन हो रहा है—वुरा व्यक्ति भला हो रहा है, पशु मनुष्य हो रहा है—यह सव कभी आत्मा मे नही होता। कल्पना करो कि एक परदा मेरे सामने है और उसमे एक छोटा सा छिद्र है, जिसमे से मैं केवल कुछ चेहरे देख सकता हूँ। यह छिद्र जितना वडा होता जाता है, सामने का दृश्य उतना ही अधिक मेरे सम्मुख प्रकाशित होता जाता है, और जव यह छिद्र पूरे परदे को व्याप्त कर लेता है, तव मैं

हम इसे एक ही शरीर समझते हैं। मन के सम्बन्ध में भी यही बात है, क्षण में सुखी क्षण में दुःखी, क्षण में सबल और क्षण में दुर्बल! यह सतत परिणाम-शील भँवर के समान है! अतएव मन भी आत्मा नहीं हो सकता, आत्मा तो अनन्त है। परिवर्तन केवल ससीम वस्तु में ही सम्भव है। अनन्त में किसी प्रकार का परिवर्तन हो, यह एक असम्भव बात है। यह कभी हो नहीं सकता। शरीर की दृष्टि से तुम और मैं एक स्थान से दूसरे स्थान को जा सकते हैं, जगत् का प्रत्येक अणु-परमाणु नित्य परिणामशील है, पर जगत् को एक समष्टि के रूप में लेने पर उसमें गति या परिवर्तन असम्भव है। गति सर्वत्र सापेक्ष है। मैं जब एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता हूँ, तब किसी वस्तु के संदर्भ में ही। जगत् का कोई परमाणु किसी दूसरे परमाणु की तुलना में ही परिणाम को प्राप्त हो सकता है, किन्तु सम्पूर्ण जगत् को एक समष्टिरूप में लेने पर फिर किसकी तुलना में उसका स्थान-परिवर्तन होगा? इस समष्टि के अतिरिक्त और कुछ तो है नहीं। अतएव यह अनन्त इकाई, अपरिणामी, अचल और निरपेक्ष है, और यही पारमार्थिक सत्ता है। अतः हमारा सत्य सर्वव्यापकता में है, सान्तता में नहीं। यह धारणा कि मैं एक क्षुद्र, सान्त, सतत परिणामी जीव हूँ, कितनी ही सुखद क्यों न हो, फिर भी यह एक पुराना भ्रम ही है। यदि किसीसे कहो कि 'तुम सर्वव्यापी, अनन्त पुरुष हो' तो वह डर जायगा। सबके माध्यम से तुम कार्य कर रहे हो, सब पैरों द्वारा तुम चल रहे हो, सब मुखों से तुम बातचीत कर रहे हो, सब हृदयों से अनुभव कर रहे हो।

ऐसी बातें यदि तुम किसीसे कहो, तो वह डर जायगा। वह तुमसे बार बार पूछेगा कि क्या फिर उसका अपना व्यक्तित्व नहीं रह जायगा? क्या मैं नहीं रह जाऊँगा? यह व्यक्तित्व—मैं—क्या है? यदि जान पाऊँ, तो अच्छा हो! छोटे बालक के मूँछें नहीं होतीं। बड़े होने पर उसके दाढ़ी-मूँछ निकल आती है। यदि 'अहं' शरीर में रहता होता तब तो बालक का 'व्यक्तित्व' नष्ट हो गया होता। यदि 'अहं' या व्यक्तित्व शरीरगत होता तब तो हमारी एक आँख अथवा हाथ नष्ट हो जाने पर वह नष्ट हो जाता। फिर शराबी का शराब छोड़ना ठीक नहीं क्योंकि तब तो उसका व्यक्तित्व ही नष्ट हो जायगा! चोर का साधु बनना भी ठीक नहीं क्योंकि इससे वह अपना व्यक्तित्व खो बैठेगा! तब तो फिर कोई भी अपना व्यसन छोड़ना न चाहेगा। पर बात यह है कि अनन्त को छोड़कर और किसीमें व्यक्तित्व है ही नहीं। केवल इस अनन्त का ही परिवर्तन नहीं होता, और शेष सभी का सतत परिवर्तन होता रहता है। 'व्यक्तित्व-भाव' स्मृति में भी नहीं है। स्मृति में यदि 'व्यक्तित्व-भाव' रहता तो मस्तिष्क में गहरी चोट

का ज्ञातास्वरूप है, सब विषयो का विषयीस्वरूप है, इस विश्व-ब्रह्माण्ड का साक्षी-स्वरूप है, तुम्हारा ही आत्मास्वरूप है। ज्ञान तो मानो एक निम्न अवस्था है—एक अवनत भाव मात्र है। हमी वह आत्मा है, फिर उसे हम किस प्रकार जानेंगे? प्रत्येक व्यक्ति वह आत्मा है और सब लोग विभिन्न उपायो से इसी आत्मा को जीवन मे प्रकाशित करने का प्रयत्न कर रहे हैं? यदि ऐसा न होता, तो ये सब नीति-सहिताएँ कहाँ से आती? सारी नीति-सहिताओ का तात्पर्य क्या है? सभी नीति-सहिताओ मे एक ही भाव भिन्न भिन्न रूप से प्रकाशित हुआ है और वह है—दूसरो का उपकार करना। मनुष्यो के प्रति, सारे प्राणियो के प्रति दया ही मानव जाति के समस्त सत्कर्मों का मूल आधार है, और ये सब 'मैं ही जगत् हूँ, यह जगत् एक अखण्डस्वरूप है', इसी सनातन सत्य के विभिन्न भाव मात्र हैं। यदि ऐसा न हो, तो दूसरो का हित करने मे भला कौन सी युक्ति है? मैं क्यो दूसरो का उपकार करूँ? परोपकार करने को मुझे कौन बाध्य करता है? सर्वत्र समदर्शन से उत्पन्न जो सहानुभूति का भाव है, उसीसे यह बात होती है। अत्यन्त कठोर अन्त करण भी कभी कभी दूसरो के प्रति सहानुभूति से भर जाता है। और तो और, जो व्यक्ति 'यह आपातप्रतीयमान व्यक्तित्व वास्तव मे भ्रम मात्र है, इस भ्रमात्मक व्यक्तित्व मे आसक्त रहना अत्यन्त नीच कार्य है', ये सब बातें सुनकर भयभीत हो जाता है, वही व्यक्ति तुमसे कहेगा कि सम्पूर्ण आत्मत्याग ही सारी नैतिकता की भित्ति है। किन्तु पूर्ण आत्मत्याग क्या है? सम्पूर्ण आत्मत्याग हो जाने पर क्या शेष रहता है? आत्मत्याग का अर्थ है, इस मिथ्या आत्मा या 'व्यक्तित्व' का त्याग, सब प्रकार की स्वार्थपरता का त्याग। यह अहकार और ममता पूर्व कुसस्कारो के फल हैं और जितना ही इस 'व्यक्तित्व' का त्याग होता जाता है, उतनी ही आत्मा अपने नित्य स्वरूप मे, अपनी पूर्ण महिमा मे प्रकाशित होती है। यही वास्तविक आत्मत्याग है और यही समस्त नैतिक शिक्षा की भित्ति है, केन्द्र है। मनुष्य इसे जाने या न जाने, समस्त जगत् धीरे धीरे इसी दिशा मे जा रहा है, अल्पाधिक परिमाण मे इसीका अभ्यास कर रहा है। बात इतनी है कि अधिकाश लोग इसे अज्ञात भाव से कर रहे हैं। वे इसे ज्ञात भाव से करें। यह 'मैं' और 'मेरा' प्रकृत आत्मा नही है, यह जानकर वे इस त्याग-यज्ञ का अनुष्ठान करें। यह व्यावहारिक जीव ससीम जगत् मे आबद्ध है। आज जो मनुष्य नाम से परिचित है, वह जगत् के अतीत उस अनन्त सत्ता का सामान्य आभास मात्र है, उस सर्वस्वरूप अनन्त अग्नि का एक कण मात्र है। किन्तु वह अनन्त ही उसका वास्तविक स्वरूप है।

इस ज्ञान का फल—इस ज्ञान की उपयोगिता क्या है? आजकल सभी विषयो को उनकी उपयोगिता के मापदण्ड से नापा जाता है। अर्थात् सक्षेप मे

तुम सबको स्पष्ट देख लेता है। यहाँ पर, तुममें कोई परिवर्तन नहीं हुआ, तुम जो थे वही रहे। केवल छिद्र का क्रमविकास होता रहा और उसके साथ साथ तुम्हारी अभिव्यक्ति क्रमशः होती रही। आत्मा के सम्बन्ध में भी यही बात है। किसी पूर्णता को उपलब्ध नहीं करना है। तुम मुक्तस्वभाव और पूर्ण हो। धर्म ईश्वर या परलोक सम्बन्धी ये सब धारणाएँ कहाँ से आयीं? मनुष्य 'ईश्वर, ईश्वर' करता क्यों घूमता फिरता है? सभी देशों में सभी समाजों में मनुष्य क्यों पूर्ण आदर्श का अन्वेषण करता फिरता है—भले ही वह आदर्श मनुष्य में हो अथवा ईश्वर में या अन्य किसी वस्तु में? इसलिए कि वह तुम्हारे भीतर ही वर्तमान है। तुम्हारा अपना ही हृदय धकधक कर रहा है और तुम सोचते हो कि बाहर की कोई वस्तु यह शब्द कर रही है। तुम्हारी आत्मा में विराजमान ईश्वर ही तुम्हें अपना अनुसन्धान करने को—अपनी उपलब्धि करने को प्रेरित कर रहा है। यहाँ वहाँ मन्दिर में गिरजाघर में स्वर्ग में मर्त्य में विभिन्न स्थानों में अनेक उपायों से अन्वेषण करने के बाद अन्त में हमने जहाँ से आरम्भ किया था वहीं अर्थात् अपनी आत्मा में ही हम एक चक्कर पूरा करके वापस आ जाते हैं और देखते हैं कि जिसको हम समस्त जगत् में खोज करते फिर रहे थे जिसके लिए हमने मन्दिरों और गिरजों में जा जा कातर होकर प्रार्थनाएँ कीं आँसू बहाये जिसको हम सुदूर आकाश में मेघराशि के पीछे छिपा हुआ अव्यक्त और रहस्यमय समझते रहे, वह हमारे निकट से भी निकट है, प्राणों का प्राण है, हमारा शरीर है, हमारी आत्मा है—तुम्ही 'मैं' हो, मैं ही 'तुम' हूँ। यही तुम्हारा स्वरूप है—इसीको अभिव्यक्त करो। तुम्हें पवित्र होना नहीं पड़ेगा—तुम तो स्वयं पवित्रस्वरूप ही हो। तुम्हें पूर्ण होना नहीं पड़ेगा—तुम तो पूर्णस्वरूप ही हो। सारी प्रकृति देश-कालातीत सत्य को परदे के समान ढँके हुए है। तुम जो कुछ भी अच्छा विचार या अच्छा कार्य करते हो उससे मानो वह आवरण धीरे धीरे छिन्न होता रहता है और देश-कालातीत वह शुद्धस्वरूप अनन्त ईश्वर स्वयं अभिव्यक्त होता रहता है।

यही मनुष्य का सारा इतिहास है। यह आवरण जितना ही सूक्ष्म होता जाता है, उतना ही प्रकृति के अन्दर स्थित प्रकाश भी अपने स्वभाववश क्रमशः अधिकाधिक दीप्त होता जाता है क्योंकि उसका स्वभाव ही इस प्रकार दीप्त होना है। उसको जाना नहीं जा सकता हम उसे जानने का वृथा ही प्रयत्न करते रहते हैं। यदि वह ज्ञेय होता तो उसका स्वभाव ही नष्ट हो जाता क्योंकि वह तो नित्य ज्ञाता है। ज्ञान ससीम है किसी वस्तु का ज्ञान-लाभ करने के लिए उसका चिन्तन ज्ञेय वस्तु के रूप में विषय के रूप में करना पड़ता है। वह तो सारी वस्तुओं

का ज्ञातास्वरूप है, सब विषयो का विषयीस्वरूप है, इस विश्व-ब्रह्माण्ड का साक्षी-स्वरूप है, तुम्हारा ही आत्मास्वरूप है। ज्ञान तो मानो एक निम्न अवस्था है—एक अवनत भाव मात्र है। हमी वह आत्मा हैं, फिर उसे हम किस प्रकार जानेंगे? प्रत्येक व्यक्ति वह आत्मा है और सब लोग विभिन्न उपायो से इसी आत्मा को जीवन मे प्रकाशित करने का प्रयत्न कर रहे हैं? यदि ऐसा न होता, तो ये सब नीति-सहिताएँ कहाँ से आती? सारी नीति-सहिताओ का तात्पर्य क्या है? सभी नीति-सहिताओ मे एक ही भाव भिन्न भिन्न रूप से प्रकाशित हुआ है और वह है—दूसरो का उपकार करना। मनुष्यो के प्रति, सारे प्राणियो के प्रति दया ही मानव जाति के समस्त सत्कर्मों का मूल आधार है, और ये सब 'मैं ही जगत् हूँ, यह जगत् एक अखण्डस्वरूप है', इसी सनातन सत्य के विभिन्न भाव मात्र हैं। यदि ऐसा न हो, तो दूसरो का हित करने मे भला कौन सी युक्ति है? मैं क्यो दूसरो का उपकार करूँ? परोपकार करने को मुझे कौन बाध्य करता है? सर्वत्र समदर्शन से उत्पन्न जो सहानुभूति का भाव है, उसीसे यह बात होती है। अत्यन्त कठोर अन्त करण भी कभी कभी दूसरो के प्रति सहानुभूति से भर जाता है। और तो और, जो व्यक्ति 'यह आपातप्रतीयमान व्यक्तित्व वास्तव में भ्रम मात्र है, इस भ्रमात्मक व्यक्तित्व मे आसक्त रहना अत्यन्त नीच कार्य है', ये सब बातें सुनकर भयभीत हो जाता है, वही व्यक्ति तुमसे कहेगा कि सम्पूर्ण आत्मत्याग ही सारी नैतिकता की भित्ति है। किन्तु पूर्ण आत्मत्याग क्या है? सम्पूर्ण आत्मत्याग हो जाने पर क्या शेष रहता है? आत्मत्याग का अर्थ है, इस मिथ्या आत्मा या 'व्यक्तित्व' का त्याग, सब प्रकार की स्वार्थपरता का त्याग। यह अहकार और ममता पूर्व कुसस्कारो के फल हैं और जितना ही इस 'व्यक्तित्व' का त्याग होता जाता है, उतनी ही आत्मा अपने नित्य स्वरूप मे, अपनी पूर्ण महिमा मे प्रकाशित होती है। यही वास्तविक आत्मत्याग है और यही समस्त नैतिक शिक्षा की भित्ति है, केन्द्र है। मनुष्य इसे जाने या न जाने, समस्त जगत् धीरे धीरे इसी दिशा मे जा रहा है, अल्पाधिक परिमाण मे इसीका अभ्यास कर रहा है। बात इतनी है कि अधिकाश लोग इसे अज्ञात भाव से कर रहे हैं। वे इसे ज्ञात भाव से करें। यह 'मैं' और 'मेरा' प्रकृत आत्मा नही है, यह जानकर वे इस त्याग-यज्ञ का अनुष्ठान करें। यह व्यावहारिक जीव ससीम जगत् मे आबद्ध है। आज जो मनुष्य नाम से परिचित है, वह जगत् के अतीत उस अनन्त सत्ता का सामान्य आभास मात्र है, उस सर्वस्वरूप अनन्त अग्नि का एक कण मात्र है। किन्तु वह अनन्त ही उसका वास्तविक स्वरूप है।

इस ज्ञान का फल—इस ज्ञान की उपयोगिता क्या है? आजकल सभी विषयो को उनकी उपयोगिता के मापदण्ड से नापा जाता है। अर्थात् सक्षेप मे

यह कि इससे कितने रुपये कितने आने और कितने पैसों का लाभ होगा? लोगों को इस प्रकार प्रश्न करने का क्या अधिकार है? क्या सत्य को भी उपकार या धन के मापदण्ड से नापा जायगा? मान लो कि उसकी कोई उपयोगिता नहीं है तो क्या इससे सत्य घट जायगा? उपयोगिता सत्य की कसौटी नहीं है। जो भी हो इस ज्ञान में बड़ा उपकार तथा प्रयोजन भी है। हम देखते हैं सब लोग सुख की खोज करते हैं पर अधिकतर लोग नश्वर, मिथ्या वस्तुओं में उसको ढूँढ़ फिरते हैं। इन्द्रियों से कभी किसीको सुख नहीं मिलता। सुख तो केवल आत्मा में मिलता है। अतएव आत्मा में इस सुख की प्राप्ति ही मनुष्य का सबसे बड़ा प्रयोजन है। और एक बात यह है कि अज्ञान ही सब दुःखों का कारण है और मेरी समझ में सबसे बड़ा अज्ञान तो यही है कि जो अनन्तस्वरूप है, वह अपने को सान्त मानकर रोता है समस्त अज्ञान की मूल भित्ति यही है कि हम अविनाशी नित्य शुद्ध पूर्ण आत्मा होते हुए भी सोचते हैं कि हम छोटे छोटे मन हैं, छोटी छोटी देह मात्र हैं यही समस्त स्वार्थपरता की जड़ है। ज्यों ही मैं अपने को एक क्षुद्र देह समझ बैठता हूँ त्यों ही मैं संसार के अन्यान्य शरीरों के सुख-दुःख की कोई परवाह न करते हुए अपने शरीर की रक्षा में उसे सुन्दर बनाने के प्रयत्न में लग जाता हूँ। उस समय मैं तुमसे पृथक हो जाता हूँ। ज्यों ही यह भेद ज्ञान आता है, त्यों ही वह सब प्रकार के अशुभ के द्वार खोल देता है और सर्वविध दुःखों की उत्पत्ति करता है। अतः पूर्वोक्त ज्ञान की प्राप्ति से लाभ यह होगा कि यदि वर्तमान मानव जाति का एक बिलकुल छोटा सा अंश भी इस क्षुद्र संकीर्ण और स्वार्थी भाव का त्याग कर सके तो कल ही यह संसार स्वर्ग में परिणत हो जायगा पर नाना प्रकार की मशीन तथा बाह्य जगत् सम्बन्धी ज्ञान की उन्नति से यह कभी सम्भव नहीं हो सकता। जिस प्रकार अग्नि में घी डालने से अग्निशिखा और भी अधिक होती है उसी प्रकार इन सब वस्तुओं से दुःखों की ही वृद्धि होती है। आत्मा के ज्ञान बिना जो कुछ भौतिक ज्ञान उपार्जित किया जाता है वह सब आग में घी डालने के समान है। उससे दूसरों के लिए प्राण उत्सर्ग कर देने की बात तो दूर ही रही स्वार्थपर लोगों को दूसरों की चीजें हर लेने के लिए, दूसरों के रक्त पर फलने-फूलने के लिए एक और यंत्र—एक और सुविधा मिल जाती है।

एक और प्रश्न है—क्या यह व्यावहारिक है? वर्तमान समाज में क्या इसे कार्य-रूप मे परिणत किया जा सकता है? इसका उत्तर यह है कि 'सत्य प्राचीन अथवा आधुनिक किसी समाज का सम्मान नहीं करता। समाज को ही सत्य का सम्मान करना पड़ेगा अन्यथा वह नष्ट हो जायगा। समाजों को सत्य के अनुरूप ढाला जाना चाहिए, सत्य को समाज के अनुसार अपने को ढालना नहीं पड़ता।

यदि नि स्वार्थपरता के समान महान् सत्य समाज मे कार्य-रूप मे परिणत न किया जा सकता हो, तो ऐसे समाज को छोडकर वन मे चले जाना ही बेहतर है। इसीका नाम साहस है। साहस दो प्रकार का होता है। एक प्रकार का साहस है—तोप के मुँह मे दौड जाना। दूसरे प्रकार का साहस है—आध्यात्मिक विश्वास। एक बार एक दिग्विजयी सम्राट् भारतवर्ष मे आया। उसके गुरु ने उसे भारतीय साधुओ से साक्षात्कार करने का आदेश दिया था। बहुत खोज करने के बाद उसने देखा कि एक वृद्ध साधु एक पत्थर पर बैठे हैं। सम्राट् उनके साथ कुछ देर बातचीत करने से बडा प्रभावित हुआ। अतएव उसने साधु को अपने साथ देश ले जाने की इच्छा प्रकट की। साधु ने इसे स्वीकार नही किया और कहा, "मैं इस वन मे बडे आनन्द मे हूँ।" सम्राट् बोला, "मैं समस्त पृथ्वी का सम्राट् हूँ। मैं आपको असीम ऐश्वर्य और उच्च पद-मर्यादा दूंगा।" साधु बोले, "ऐश्वर्य, पद-मर्यादा आदि किसी बात की मेरी इच्छा नही।" तब सम्राट् ने कहा, "आप यदि मेरे साथ न चलेंगे, तो मैं आपको मार डालूंगा।" इस पर साधु बहुत हँसे और बोले, "राजन्, आज तुमने अपने जीवन मे सबसे मूर्खतापूर्ण बात कही। तुम्हारी क्या हस्ती कि मुझे मारो? सूर्य मुझे सुखा नही सकता, अग्नि मुझे जला नही सकती, कोई भी यत्र मेरा सहार नही कर सकता, क्योकि मैं तो जन्मरहित, अविनाशी, नित्य-विद्यमान, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान आत्मा हूँ।" यह आध्यात्मिक साहस है। सन् १८५७ ई० के गदर के समय एक मुसलमान सिपाही ने एक सन्यासी महात्मा को बुरी तरह घायल कर दिया। हिन्दू विद्रोहियो ने उस मुसलमान को पकड लिया और उसे स्वामी जी के पास लाकर कहा, "आप कहे, तो इसका वध कर दें।" स्वामी जी ने उसकी ओर देखकर कहा, "भाई, तुम्ही वह हो, तुम्ही वह हो—तत्त्वमसि।" और यह कहते कहते उन्होने शरीर छोड दिया। यह दूसरा उदाहरण है। यदि तुम ऐसे समाज की रचना नही कर सकते, जिसमे सर्वोच्च सत्य को स्थान मिले, अपने बाहुबल की, अपने पाश्चात्य सस्थानो की श्रेष्ठता की, बात करनी व्यर्थ है। अपनी महत्ता और श्रेष्ठता की तुम क्यो व्यर्थ शेखी बघारते हो, यदि दिन-रात तुम यही कहते रहो कि ऐसा साहस अव्यावहारिक है। पैसे-कौडी को छोडकर क्या और कुछ भी व्यावहारिक नही है? यदि ऐसा ही हो, तो फिर अपने समाज पर इतना घमड क्यो करते हो? वही समाज सबसे श्रेष्ठ है, जहाँ सर्वोच्च सत्य को कार्य मे परिणत किया जा सकता है—यही मेरा मत है। और यदि समाज इस समय उच्चतम सत्य को स्थान देने मे समर्थ नही है, तो उसे इस योग्य बनाओ। और जितना शीघ्र तुम ऐसा कर सको, उतना ही अच्छा। हे नर-नारियो! उठो, आत्मा के सम्बन्ध मे जाग्रत होओ, सत्य मे विश्वास

करने का साहस करो सत्य के अभ्यास का साहस करो। संसार को कोई भी साहसी नर-नारियों की आवश्यकता है। अपने में वह साहस लाओ जो सत्य को जान सके, जो जीवन में निहित सत्य को दिखा सके, जो मृत्यु से न डरे, प्रत्युत उसका स्वागत करे, जो मनुष्य को यह ज्ञान करा दे कि वह आत्मा है और सारे जगत् में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जो उसका विनाश कर सके। तब तुम मुक्त हो जाओगे। तब तुम अपनी वास्तविक आत्मा को जान लोगे। 'इस आत्मा के सम्बन्ध में पहले श्रवण करना चाहिए, फिर मनन और तत्पश्चात् निदिध्यासन।

आजकल के समाज में एक प्रवृत्ति देखी जा रही है और वह है—कार्य पर अधिक जोर देना और विचार की निंदा करना। कार्य अवश्य अच्छा है, पर वह भी तो विचार या चिन्तन से उत्पन्न होता है। मन के भीतर जिन छोटी छोटी शक्तियों का विकास होता रहता है, वे जब शरीर द्वारा अनुष्ठित होती हैं, तब उन्हींको कार्य कहते हैं। बिना विचार या चिन्तन के कोई कार्य नहीं हो सकता। मस्तिष्क को ऊँचे ऊँचे विचारों, ऊँचे ऊँचे आदर्शों से भर लो और उनको दिन रात मन के सम्मुख रखो, ऐसा होने पर इन्हीं विचारों से बड़े बड़े कार्य होंगे। अपवित्रता की कोई बात मन में न लाओ, प्रत्युत मन से कहो कि मैं शुद्ध, पवित्र स्वरूप हूँ। हम क्षुद्र हैं, हमने जन्म लिया है, हम मरेंगे, इन्हीं विचारों से हमने अपने आपको एकदम सम्मोहित कर रखा है और इसीलिए हम सर्वदा भय से काँपते रहते हैं।

एक सिंहिनी जिसका प्रसव-काल निकट था, एक बार अपने शिकार की खोज में बाहर निकली। उसने दूर भेड़ों के एक झुण्ड को चरते देख, उन पर आक्रमण करने के लिए ज्यों ही छलांग मारी त्यों ही उसके प्राणपखेरू उड़ गये और एक मातृहीन सिंह-शावक ने जन्म लिया। भेड़ें उस सिंह-शावक की देख-भाल करने लगीं और वह भेड़ों के बच्चों के साथ साथ बड़ा होने लगा, भेड़ों की भाँति घास-पात खाकर रहने लगा और भेड़ों की ही भाँति 'में-में' करने लगा। और यद्यपि वह कुछ समय बाद एक शक्तिशाली पूर्ण विकसित सिंह हो गया, फिर भी वह अपने को भेड़ ही समझता था। इसी प्रकार दिन बीतते गये कि एक दिन एक बड़ा भारी सिंह शिकार के लिए उधर आ निकला। पर उसे यह देख बड़ा आश्चर्य हुआ कि भेड़ों के बीच में एक सिंह भी है और वह भेड़ों की ही भाँति डरकर भागा जा रहा है। तब सिंह उसकी ओर यह समझाने के लिए बढ़ा कि तू सिंह है, भेड़ नहीं। पर ज्यों ही वह आगे बढ़ा त्यों ही भेड़ों का झुण्ड और भी भागा और उसके साथ साथ वह 'भेड़-सिंह' भी। जो हो, उसने उस भेड़-सिंह को उसके अपने यथार्थ स्वरूप को समझा देने का संकल्प नहीं छोड़ा। वह देखने लगा कि वह भेड़-सिंह

कहाँ रहता है, क्या करता है। एक दिन उसने देखा कि वह एक जगह पडा सो रहा है। देखते ही वह छलाँग मारकर उसके पास जा पहुँचा और बोला, "अरे, तू भेडो के साथ रहकर अपना स्वभाव कैसे भूल गया? तू भेड नही है, तू तो सिंह है।" भेड-सिंह बोल उठा, "क्या कह रहे हो? मैं तो भेड हूँ, सिंह कैसे हो सकता हूँ?" उसे किसी प्रकार विश्वास नही हुआ कि वह सिंह है, और वह भेडो की भाँति मिमियाने लगा। तब सिंह उसे उठाकर एक सरोवर के किनारे ले गया और बोला, "यह देख, अपना प्रतिबिम्ब, और यह देख, मेरा प्रतिबिम्ब।" और तब वह उन दोनो परछाइयो की तुलना करने लगा। वह एक बार सिंह की ओर, और एक बार अपने प्रतिबिम्ब की ओर ध्यान से देखने लगा। तब क्षण भर मे ही वह जान गया कि 'सचमुच, मैं तो सिंह ही हूँ।' तब वह सिंह गर्जना करने लगा और उसका भेडो का सा मिमियाना न जाने कहाँ चला गया! इसी प्रकार तुम सब सिंहस्वरूप हो—तुम आत्मा हो, शुद्धस्वरूप, अनन्त और पूर्ण हो। जगत् की महाशक्ति तुम्हारे भीतर है। 'हे सखे, तुम क्यो रोते हो? जन्म-मरण तुम्हारा भी नही है और मेरा भी नही। क्यो रोते हो? तुम्हे रोग-शोक कुछ भी नही है, तुम तो अनन्त आकाशस्वरूप हो, उस पर नाना प्रकार के मेघ आते हैं और कुछ देर खेलकर न जाने कहाँ अन्तर्हित हो जाते हैं, पर वह आकाश जैसा पहले नीला था, वैसा ही नीला रह जाता है।' इसी प्रकार के ज्ञान का अभ्यास करना होगा। हम जगत् मे पाप-ताप क्यो देखते हैं? इसलिए कि हम स्वय असत् हैं। किसी मार्ग मे एक ठूँठ खडा था। एक चोर उधर से जा रहा था, उसने समझा कि वह कोई पहरेवाला है। अपनी प्रेमिका की बाट जोहनेवाले प्रेमी ने समझा कि वह उसकी प्रेमिका है। एक बच्चे ने जब उसे देखा, तो भूत समझकर डर के मारे चिल्लाने लगा। इस प्रकार भिन्न भिन्न व्यक्तियो ने यद्यपि उसे भिन्न भिन्न रूपो में देखा, तथापि वह एक ठूँठ के अतिरिक्त और कुछ भी न था। हम स्वय जैसे होते हैं, जगत् को भी वैसा ही देखते हैं। मान लो, कमरे मे मेज पर सोने की एक थैली रखी है और एक छोटा बच्चा वहाँ खेल रहा है। इतने मे एक चोर वहाँ आता है और उस थैली को चुरा लेता है। तो क्या बच्चा यह समझेगा कि चोरी हो गयी? हमारे भीतर जो है, वही हम बाहर भी देखते हैं। बच्चे के मन मे चोर नही है, अतएव वह बाहर भी चोर नही देखता। सब प्रकार के ज्ञान के सम्बन्ध मे ऐसा ही है। ससार के पाप-अत्याचार आदि की बात मन मे न लाओ, पर रोओ कि तुम्हे जगत् मे अब भी पाप दिखता है। रोओ कि तुम्हे अब भी सर्वत्र अत्याचार दिखायी पडता है। और यदि तुम जगत् का उपकार करना चाहते हो, तो जगत् पर दोषारोपण करना छोड दो। उसे और भी दुर्बल मत करो। आखिर ये सब

पाप दुःख आदि क्या हैं? ये सब तो दुर्बलता के ही फलस्वरूप हैं। लोग बचपन से ही शिक्षा पाते हैं कि वे दुर्बल हैं, पापी हैं। इस प्रकार की शिक्षा से संसार दिन पर दिन दुर्बल होता जा रहा है। उनको सिखाओ कि वे सब उसी अमृत की सन्तान हैं—और तो और, जिसके भीतर आत्मा का प्रकाश अत्यन्त क्षीण है, उसे भी यही सिखा दो। बचपन से ही उनके मस्तिष्क में इस प्रकार के विचार प्रविष्ट हो जायँ जिनसे उनकी यथार्थ सहायता हो सके जो उनको सबल बना दें जिनसे उनका कुछ यथार्थ हित हो। दुर्बलता और अवसादकारक विचार उनके मस्तिष्क में प्रवेश ही न करें। सच्चिन्तन के स्रोत में शरीर को बहा दो अपने मन से सदा कहते रहो, 'मैं ही वह हूँ मैं ही वह हूँ।' तुम्हारे मन में दिन-रात यह बात संगीत की भाँति झंकृत होती रहे, और मृत्यु के समय भी तुम्हारे अधरों पर सोऽहम् सोऽहम् खेलता रहे। यही सत्य है—जगत् की अनन्त शक्ति तुम्हारे भीतर है। जो कुसंस्कार तुम्हारे मन को ढके हुए हैं, उन्हें भगा दो। साहसी बनो। सत्य को जानो और उसे जीवन में परिणत करो। चरम लक्ष्य भले ही बहुत दूर हो, पर उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

# मनुष्य का वास्तविक और प्रातिभासिक स्वरूप

## (न्यूयार्क मे दिया हुआ भाषण)

हम यहाँ खडे है, परन्तु हमारी दृष्टि दूर, बहुत दूर, और कभी कभी तो, कोसो दूर चली जाती है। जब से मनुष्य ने विचार करना आरम्भ किया, तभी से वह ऐसा करता आ रहा है। मनुष्य सदैव आगे और दूर देखने का प्रयत्न करता है। वह जानना चाहता है कि इस शरीर के नष्ट होने के बाद वह कहाँ चला जाता है। इसकी व्याख्या करने के लिए अनेक सिद्धातो का प्रचार हुआ, सैकडो मतो की स्थापना हुई। इनमे से कुछ मत खण्डित करके छोड भी दिये गये। और कुछ स्वीकार किये गये, और जब तक मनुष्य इस जगत् मे रहेगा, जब तक वह विचार करता रहेगा, तब तक ऐसा चलेगा। इन सभी मतो मे कुछ न कुछ सत्य है, और साथ ही, उनमे बहुत सा असत्य भी है। इस सम्बन्ध मे भारत मे जो सब अनुसन्धान हुए हैं, उन्हीका सार, उन्हीका फल मैं तुम्हारे सामने रखने का प्रयत्न करूँगा। भारतीय दार्शनिको के इन सब विभिन्न मतो का समन्वय और, यदि हो सका तो, उनके साथ आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तो का भी समन्वय करने का प्रयत्न करूँगा।

वेदान्त दर्शन का एक ही उद्देश्य है और वह है—एकत्व की खोज। हिन्दू लोग किसी विशेष के पीछे नही दौडते, वे तो सदैव सर्वसामान्य की, यही क्यो, सर्वव्यापी सार्वभौमिक की खोज करते हैं। 'वह क्या है, जिसके जान लेने से सब कुछ जाना जा सकता है?' यही उनका विषय है। जिस प्रकार मिट्टी के एक ढेले को जान लेने पर जगत् की सारी मिट्टी को जान लिया जाता है, उसी प्रकार ऐसी कौन सी वस्तु है, जिसे जान लेने पर जगत् की सारी वस्तुएँ जानी जा सकती हैं? उनकी यही एक खोज है, यही एक जिज्ञासा है। उनके मत से, समस्त जगत् का विश्लेषण करके उसे 'आकाश' मे पर्यवसित किया जा सकता है। हम अपने चारो ओर जो कुछ देखते हैं, छूते हैं, आस्वादन करते हैं, और तो और, हम जो कुछ अनुभव करते हैं, वह सब इसी आकाश की विभिन्न अभिव्यक्ति मात्र है। यह आकाश सूक्ष्म और सर्वव्यापी है। ठोस, तरल और वाष्पीय सब प्रकार के पदार्थ, सब प्रकार के रूप, शरीर, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, तारे—सब इसी आकाश से निर्मित हैं।

पाप दुःख आदि क्या हैं? ये सब तो दुर्बलता के ही फलस्वरूप हैं। लोग बचपन से ही शिक्षा पाते हैं कि वे दुर्बल हैं, पापी हैं। इस प्रकार की शिक्षा से संसार दिन पर दिन दुर्बल होता जा रहा है। उनको सिखाओ कि वे सब उसी अमृत की सन्तान हैं—और तो और, जिसके भीतर आत्मा का प्रकाश अत्यन्त क्षीण है उसे भी यही शिक्षा दो। बचपन से ही उनके मस्तिष्क में इस प्रकार के विचार प्रविष्ट हो जायँ जिनसे उनकी यथार्थ सहायता हो सके जो उनको सबल बना दें जिससे उनका कुछ यथार्थ हित हो। दुर्बलता और अवसादकारक विचार उनके मस्तिष्क में प्रवेश ही न करें। सच्चिन्तन के स्रोत में शरीर को बहा दो अपने मन से सर्वदा कहते रहो 'मैं ही वह हूँ, मैं ही वह हूँ।' तुम्हारे मन में दिन-रात यह बात संगीत की भाँति झंकृत होती रहे, और मृत्यु के समय भी तुम्हारे अधरों पर सोऽहम् सोऽहम् खेलता रहे। यही सत्य है—जगत् की अनन्त शक्ति तुम्हारे भीतर है। जो कुसंस्कार तुम्हारे मन को ढके हुए हैं, उन्हें भगा दो। साहसी बनो। सत्य को जानो और उसे जीवन में परिणत करो। चरम लक्ष्य भले ही बहुत दूर हो पर उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

# मनुष्य का वास्तविक और प्रातिभासिक स्वरूप

(न्यूयार्क में दिया हुआ भाषण)

हम यहाँ खड़े है, परन्तु हमारी दृष्टि दूर, बहुत दूर, और कभी कभी तो, कोसो दूर चली जाती है। जब से मनुष्य ने विचार करना आरम्भ किया, तभी से वह ऐसा करता आ रहा है। मनुष्य सदैव आगे और दूर देखने का प्रयत्न करता है। वह जानना चाहता है कि इस शरीर के नष्ट होने के बाद वह कहाँ चला जाता है। इसकी व्याख्या करने के लिए अनेक सिद्धातो का प्रचार हुआ, सैकडो मतो की स्थापना हुई। इनमे से कुछ मत खण्डित करके छोड भी दिये गये। और कुछ स्वीकार किये गये, और जब तक मनुष्य इस जगत् मे रहेगा, जब तक वह विचार करता रहेगा, तब तक ऐसा चलेगा। इन सभी मतो मे कुछ न कुछ सत्य है, और साथ ही, उनमे बहुत सा असत्य भी है। इस सम्बन्ध मे भारत मे जो सब अनुसन्धान हुए हैं, उन्हीका सार, उन्हीका फल मैं तुम्हारे सामने रखने का प्रयत्न करूँगा। भारतीय दार्शनिको के इन सब विभिन्न मतो का समन्वय और, यदि हो सका तो, उनके साथ आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तो का भी समन्वय करने का प्रयत्न करूँगा।

वेदान्त दर्शन का एक ही उद्देश्य है और वह है—एकत्व की खोज। हिन्दू लोग किसी विशेष के पीछे नही दौड़ते, वे तो सदैव सर्वसामान्य की, यही क्यो, सर्वव्यापी सार्वभौमिक की खोज करते हैं। 'वह क्या है, जिसके जान लेने से सब कुछ जाना जा सकता है?' यही उनका विषय है। जिस प्रकार मिट्टी के एक ढेले को जान लेने पर जगत् की सारी मिट्टी को जान लिया जाता है, उसी प्रकार ऐसी कौन सी वस्तु है, जिसे जान लेने पर जगत् की सारी वस्तुएँ जानी जा सकती हैं? उनकी यही एक खोज है, यही एक जिज्ञासा है। उनके मत से, समस्त जगत् का विश्लेषण करके उसे 'आकाश' मे पर्यवसित किया जा सकता है। हम अपने चारो ओर जो कुछ देखते हैं, छूते हैं, आस्वादन करते हैं, और तो और, हम जो कुछ अनुभव करते हैं, वह सब इसी आकाश की विभिन्न अभिव्यक्ति मात्र है। यह आकाश सूक्ष्म और सर्वव्यापी है। ठोस, तरल और वाष्पीय सब प्रकार के पदार्थ, सब प्रकार के रूप, शरीर, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, तारे—सब इसी आकाश से निर्मित हैं।

किस शक्ति ने इस आकाश पर कार्य करके इसमें से जगत् की सृष्टि की? आकाश के साथ एक सर्वव्यापी शक्ति रहती है। जगत में जितनी भी भिन्न भिन्न शक्तियाँ हैं—आकर्षण, विकर्षण, यहाँ तक कि विचार-शक्ति भी, सभी 'प्राण' नामक एक महाशक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं। इसी प्राण ने आकाश पर कार्य करके इस जगत् प्रपंच की रचना की है। कल्प के प्रारम्भ में यह प्राण मानो अनन्त आकाश-समुद्र में प्रसुप्त रहता है। प्रारम्भ में यह आकाश गतिहीन होकर अवस्थित था। बाद में प्राण के प्रभाव से इस आकाश-समुद्र में गति उत्पन्न होने लगती है। और जैसे जैसे इस प्राण की गति होने लगती है, वैसे वैसे इस आकाश-समुद्र में से नाना ब्रह्माण्ड, नाना जगत्, कितने ही सूर्य, चन्द्र, तारे, पृथ्वी, मनुष्य, जन्तु, उद्भिद् और नानाविध शक्तियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। अतएव हिन्दुओं के मत से सब प्रकार की शक्तियाँ प्राण के और सब प्रकार के सूक्ष्म पदार्थ आकाश के विभिन्न रूप मात्र हैं। कल्पान्त में सभी घन पदार्थ पिघल जायँगे और वह तरल पदार्थ वाष्पीय आकार में परिणत हो जायगा। वह फिर तेज-रूप धारण करेगा। अन्त में सब कुछ जिस आकाश से उत्पन्न हुआ था, उसीमें विलीन हो जायगा। और आकर्षण, विकर्षण, गति आदि समस्त शक्तियाँ धीरे धीरे मूल प्राण में परिणत हो जायँगी। उसके बाद जब तक फिर से कल्पारम्भ नहीं होता, तब तक यह प्राण मानो निद्रित अवस्था में रहेगा। कल्पारम्भ होने पर वह जागकर पुनः नाना रूपों को प्रकाशित करेगा और कल्पान्त में फिर से सबका लय हो जायगा। बस, इसी प्रकार वह आता है और चला जाता है, मानो एक बार पीछे और एक बार आगे झूल रहा है। आधुनिक विज्ञान की भाषा में कहेंगे कि एक समय वह स्थितिशील (static) रहता है, फिर गतिशील (dynamic) हो जाता है, एक समय प्रसुप्त रहता है और फिर क्रियाशील हो जाता है। बस, इसी प्रकार अनन्त काल से चला आ रहा है।

पर यह विश्लेषण भी अधूरा है। इतना तो आधुनिक भौतिक विज्ञान को भी ज्ञात है। इसके ऊपर भौतिक विज्ञान की गति नहीं है। पर इस अनुसन्धान का यहीं अन्त नहीं हो जाता। हमने अभी तक उस वस्तु को प्राप्त नहीं किया, जिसे जान लेने पर सब कुछ जाना जा सके। हमने समस्त जगत् को भूत और शक्ति में, अथवा प्राचीन भारतीय दार्शनिकों के शब्दों में, आकाश और प्राण में पर्यवसित कर दिया। अब आकाश और प्राण को उनके मूल तत्त्व में पर्यवसित करना होगा। इन्हें मन नामक उच्चतर सत्ता में पर्यवसित किया जा सकता है। महत् अथवा समष्टि विचार-शक्ति से प्राण और आकाश दोनों की उत्पत्ति होती है। विचार-शक्ति ही इन दो शक्तियों के रूप में विभक्त हो जाती है। प्रारम्भ

मे यह सर्वव्यापी मन ही था। इसने परिणत होकर आकाश और प्राण ये दो रूप धारण किये और इन दोनो के सम्मिश्रण से सारा जगत् वना।

अव हम मनोविज्ञान की चर्चा करेंगे। मैं तुमको देख रहा हूँ। आँखें विषय को ग्रहण कर रही हैं और सवेदक नाडियां उसे मस्तिष्क मे ले जा रही हैं। आँखें देखने का साधन नही हैं, वे उसकी केवल वाहरी यन्त्र हैं, क्योकि देखने का जो वास्तविक साधन है, जो मस्तिष्क मे विषय-ज्ञान का सवाद ले जाता है, उसको यदि नष्ट कर दिया जाय, तब बीस आँखें रहते हुए भी मैं तुममे से किसीको भी न देख सकूँगा। नेत्रपट (retina) पर भले ही पूरा प्रतिबिम्व पडे, फिर भी मैं तुमको न देख सकूँगा। अतएव वास्तविक इन्द्रिय इस यन्त्र से कोई भिन्न वस्तु है। यथार्थ चक्षुरिन्द्रिय, अवश्य, चक्षुयन्त्र के पीछे अवस्थित है। सव प्रकार की विषयानुभूतियो के सम्वन्ध मे ऐसा ही समझना चाहिए। नासिका घ्राणेन्द्रिय नही है, वह तो यन्त्र मात्र है, घ्राणेन्द्रिय उसके पीछे है। प्रत्येक इन्द्रिय के सम्वन्ध मे समझना चाहिए कि वाह्य यन्त्र इस स्थूल शरीर मे अवस्थित हैं और उनके पीछे, इस स्थूल शरीर मे ही, इन्द्रियाँ भी मौजूद हैं। पर इतने से ही काम नही चलता। मान लो, मैं तुमसे कुछ कह रहा हूँ और तुम वडे ध्यान से मेरी वात सुन रहे हो। इसी समय यहाँ एक घण्टा वजता है और शायद तुम उस घण्टे की ध्वनि को नही सुन पाते। यह शब्द-तरग तुम्हारे कान मे पहुँचकर कान के परदे मे आघात करती है, नाडियो के द्वारा यह सवाद मस्तिष्क मे पहुँचा, पर फिर भी तुम उसे नही सुन सके। ऐसा क्यो? यदि मस्तिष्क मे आवेग सवाहित करने से ही सुनने की सारी क्रिया सम्पूर्ण हो जाती है, तो फिर तुम क्यो सुन नही सके? किसी अन्य घटक का अभाव था, मन इन्द्रिय से युक्त नही था। जिस समय मन इन्द्रियो से पृथक् रहता है, उस समय इन्द्रियो द्वारा लाये गये किसी भी सवाद को मन ग्रहण नही करता। जव मन उनसे युक्त रहता है, तभी वह किसी सवाद को ग्रहण करने में समर्थ होता है। पर इससे भी विषयानुभूति पूर्ण नही हो जाती। वाहरी यन्त्र भले ही वाहर से सवाद ले आयें, इन्द्रियां भले ही उसे भीतर ले जायें और मन भी इन्द्रियो से सयुक्त रहे, पर तो भी विषयानुभूति पूर्ण न होगी। एक और वस्तु आवश्यक है—भीतर से प्रतिक्रिया होनी चाहिए। प्रतिक्रिया से ज्ञान उत्पन्न होगा। वाहर की वस्तु ने मानो मेरे अन्दर सवाद-प्रवाह भेजा। मेरे मन ने उसे ले जाकर वुद्धि के निकट अर्पण कर दिया, वुद्धि ने पहले से वने हुए मन के सस्कारो के अनुसार उसे सजाया और वाहर की ओर प्रतिक्रिया-प्रवाह भेजा। वस, इस प्रतिक्रिया के साथ ही विषयानुभूति होती है। जो शक्ति मन मे यह प्रतिक्रिया भेजती है, उसे 'वुद्धि'

कहते हैं। किन्तु इससे भी विषयानुभूति पूर्ण नहीं हुई। मान लो एक कैमरा है और एक परदा है। मैं इस परदे पर एक चित्र डालना चाहता हूँ। तो मुझे क्या करना होगा? मुझे उस यन्त्र में से नाना प्रकार की प्रकाश-किरणों को इस परदे पर डालने का और उन्हें एक स्थान में एकत्र करने का प्रयत्न करना होगा। इसके लिए एक अचल वस्तु की आवश्यकता है जिस पर चित्र डाला जा सके। किसी चलनशील वस्तु पर ऐसा करना असम्भव है—कोई स्थिर वस्तु चाहिए, क्योंकि मैं जो प्रकाश-किरणें डालना चाहता हूँ वे चचल हैं और इन चचल प्रकाश-किरणों को किसी अचल वस्तु पर एकत्र एकीभूत समन्वित और संपूरित करना होगा। यही बात उन संवेदनों के विषय में भी है जिन्हें इन्द्रियाँ मन के निकट और मन बुद्धि के निकट समर्पित करता है। जब तक ऐसी कोई वस्तु नहीं मिल जाती जिस पर यह चित्र डाला जा सके जिस पर ये भिन्न भिन्न भाव एकत्रीभूत होकर मिल सकें तब तक यह विषयानुभूति पूर्ण नहीं होती। वह कौन सी वस्तु है जो समुदय को एकत्व का भाव प्रदान करती है? वह कौन सी वस्तु है जो विभिन्न गतियों के भीतर भी प्रतिक्षण एकत्व की रक्षा किये रहती है? वह कौन सी वस्तु है जिस पर भिन्न भिन्न भाव मानो एक ही जगह गुँथे रहते हैं, जिस पर विभिन्न विषय आकर मानो एक जगह वास करते हैं और एक अखण्ड भाव धारण करते हैं? हमने देखा है कि इस प्रकार की कोई वस्तु अवश्य चाहिए, और उस वस्तु का शरीर और मन की तुलना में अचल होना आवश्यक है। जिस परदे पर यह कैमरा चित्र डाल रहा है, वह इन प्रकाश किरणों की तुलना में अचल है। यदि ऐसा न हो तो चित्र पड़ेगा ही नहीं। अर्थात् उस वस्तु को उस द्रष्टा को एक व्यक्ति ( individual ) होना चाहिए। जिस वस्तु पर मन यह सब चित्रांकन करता है जिस पर मन और बुद्धि द्वारा ले जायी गयी हमारी संवेदनाएँ स्थापित श्रेणीबद्ध और एकत्रीभूत होती हैं बस उसीको मनुष्य की आत्मा कहते हैं।

तो हमने देखा कि समष्टि-मन या महत् आकाश और प्राण इन दो भागों मे विभक्त है। और मन के पीछे है आत्मा। समष्टि-मन के पीछे जो आत्मा है उसे ईश्वर कहते हैं। व्यष्टि में यह मनुष्य की आत्मा मात्र है। जिस प्रकार जगत् मे समष्टि-मन आकाश और प्राण के रूप मे परिणत हो गया है, उसी प्रकार समष्टि-आत्मा भी मन के रूप में परिणत हो गयी है। अब प्रश्न उठता है—क्या इसी प्रकार व्यष्टि-मनुष्य के सम्बन्ध में भी समझना होगा? मनुष्य का मन भी क्या उसके शरीर का स्रष्टा है और क्या उसकी आत्मा उसके मन की स्रष्टा है? अर्थात् मनुष्य का शरीर, मन और आत्मा—ये क्या तीन विभिन्न वस्तुएँ हैं,

अथवा ये एक के भीतर ही तीन हैं, अथवा ये सब एक ही पदार्थ की तीन विभिन्न अवस्थाएँ हैं? हम क्रमश इसी प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे। जो भी हो, हमने अब तक यही देखा कि पहले तो यह स्थूल देह है, उसके बाद हैं इन्द्रियाँ, फिर मन, तत्पश्चात् बुद्धि और बुद्धि के भी बाद आत्मा। तो पहली बात यह हुई कि आत्मा शरीर से पृथक् है तथा वह मन से भी पृथक् है। बस, यही से धर्म-जगत् मे मतभेद देखा जाता है। द्वैतवादी कहते हैं कि आत्मा सगुण है अर्थात् भोग, सुख, दु ख आदि सभी यथार्थ मे आत्मा के धर्म हैं, पर अद्वैतवादी कहते हैं कि वह निर्गुण है, उसमे ये लक्षण नही हैं।

हम पहले द्वैतवादियो के मत का—आत्मा और उसकी गति के सम्बन्ध मे उनके मत का—वर्णन करके, उसके बाद उस मत का वर्णन करेंगे, जो इसका सम्पूर्ण रूप से खण्डन करता है, और अन्त मे अद्वैतवाद के द्वारा दोनो मतो का सामजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करेंगे। यह मानवात्मा शरीर और मन से पृथक् होने के कारण एव आकाश और प्राण से गठित न होने के कारण अमर है। क्यो? मृत्यु या विनाश का क्या अर्थ है?—विघटित हो जाना, और जो वस्तु कुछ पदार्थों के सयोग से बनती है, वही विघटित होती है। जो अन्य पदार्थों के सयोग से उत्पन्न नही है, वह कभी विघटित नही होती, इसलिए उसका विनाश भी कभी नही हो सकता। वह अविनाशी है। वह अनन्त काल से है, उसकी कभी सृष्टि नही हुई। सृष्टि तो सयोग अथवा सघात मात्र है। शून्य से कभी किसी ने सृष्टि नही देखी। सृष्टि के सम्बन्ध मे हम बस इतना ही जानते हैं कि वह पहले से वर्तमान कुछ वस्तुओ का नये नये रूपो मे एकत्र मिलन मात्र है। यदि ऐसा है, तो फिर यह मानवात्मा भिन्न भिन्न वस्तुओ के सयोग से उत्पन्न नही है, अत वह अवश्य अनन्त काल से है और अनन्त काल तक रहेगी। इस शरीर का नाश हो जाने पर भी आत्मा रहेगी। वेदान्तवादियो के मत से, जब इस शरीर का नाश हो जाता है, तब मनुष्य की इन्द्रियाँ मन मे लीन हो जाती हैं, मन का प्राण मे लय हो जाता है, प्राण आत्मा मे प्रविष्ट हो जाता है और तब मानव की वह आत्मा मानो सूक्ष्म शरीर अथवा लिंगशरीररूपी वस्त्र पहनकर चली जाती है। इस सूक्ष्म शरीर मे ही मनुष्य के सारे सस्कार वास करते हैं। सस्कार क्या हैं? मन मानो सरोवर के समान है और हमारा प्रत्येक विचार मानो उस सरोवर की लहर के समान है। जिस प्रकार सरोवर मे लहर उठती है, गिरती है, गिरकर अन्तर्हित हो जाती है, उसी प्रकार मन मे ये सब विचार-तरगें लगातार उठती और अन्तर्हित होती रहती हैं। किन्तु वे एकदम अन्तर्हित नही हो जाती। वे क्रमश सूक्ष्मतर होती जाती हैं, पर वर्तमान रहती ही हैं। प्रयोजन

होने पर फिर उठती हैं। जिन विचारों ने सूक्ष्मतर रूप धारण कर लिया है उन्हींमें से कुछ को फिर से तरंगाकार में लाने को ही स्मृति कहते हैं। इस प्रकार, हमने जो कुछ सोचा है, जो कुछ किया है, सारा का सारा मन में अवस्थित है। ये सब सूक्ष्म भाव से स्थित रहते हैं और मनुष्य के मर जाने पर भी ये संस्कार उसके मन में विद्यमान रहते हैं—वे फिर सूक्ष्म शरीर पर कार्य करते रहते हैं। आत्मा यह सब संस्कार एवं सूक्ष्मशरीररूपी वस्त्र धारण करके चली जाती है और विभिन्न संस्कारों की इन विभिन्न शक्तियों का समवेत फल ही आत्मा के भविष्य को निर्धारित करता है। उनके मत से आत्मा की तीन प्रकार की गति होती है।

जो अत्यन्त धार्मिक हैं, वे मृत्यु के बाद सूर्यरश्मियों का अनुसरण करते हैं सूर्यरश्मियों का अनुसरण करते हुए वे सूर्यलोक में जाते हैं वहाँ से वे चन्द्रलोक और चन्द्रलोक से विद्युल्लोक में उपस्थित होते हैं वहाँ एक मुक्त आत्मा से उनका साक्षात्कार होता है वह इन जीवात्माओं को सर्वोच्च ब्रह्मलोक में ले जाती है। वहाँ उन्हें सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता प्राप्त होती है उनकी शक्ति और ज्ञान प्रायः ईश्वर के समान हो जाता है और द्वैतवादियों के मत से वे अनन्त काल तक वहाँ वास करते हैं अथवा अद्वैतवादियों के अनुसार, कल्पान्त में ब्रह्म के साथ एकत्व प्राप्त करते हैं। जो लोग सकाम भाव से सत्कार्य करते हैं, वे मृत्यु के बाद चन्द्रलोक में जाते हैं। वहाँ नाना प्रकार के स्वर्ग हैं। वे वहाँ पर सूक्ष्म शरीर—देवशरीर—प्राप्त करते हैं। वे देवता होकर वहाँ वास करते हैं और दीर्घ काल तक स्वर्ग के सुखों का उपभोग करते हैं। इस भोग का अन्त होने पर फिर उनका प्राचीन कर्म बलवान हो जाता है अतः फिर से उनका मर्त्यलोक में पतन हो जाता है। वे वायुलोक मेघलोक आदि लोकों में से होते हुए अन्त में वृष्टिधारा के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। वृष्टि के साथ गिरकर वे किसी शस्य का आश्रय लेकर रहते हैं। इसके बाद जब कोई व्यक्ति उस शस्य को खाता है, तब उसके वीर्य से वे फिर से शरीर धारण करते हैं। जो लोग अत्यन्त दुष्ट हैं वे मरने पर भूत अथवा दानव हो जाते हैं एवं चन्द्रलोक और पृथ्वी के बीच किसी स्थान में वास करते हैं। उनमें से कुछ मनुष्यों को बहुत तंग करते हैं। और कुछ लोग मनुष्यों से मैत्री भाव रखते हैं। वे कुछ समय तक उस स्थान में रहकर फिर पृथ्वी पर आकर पशु जन्म लेते हैं। कुछ समय पशु-देह में रहकर वे फिर से मनुष्य योनि में आते हैं—वे और एक बार मुक्ति-लाभ करने की उपयुक्त अवस्था प्राप्त करते हैं। तो इस प्रकार हमने देखा कि जो लोग मुक्ति की निकटतम सीढ़ी पर पहुँच गये हैं जिनमें अपवित्रता बहुत कम रह गयी है वे ही सूर्य की किरणों के सहारे ब्रह्मलोक में जाते हैं। जो मध्यम वर्ग के लोग हैं, जो स्वर्ग जाने की इच्छा

से सत्कर्म करते हैं, वे चन्द्रलोक मे जाकर वहाँ के स्वर्गो मे वास करते है और देवशरीर प्राप्त करते हैं, पर उन्हे मुक्ति की प्राप्ति के लिए फिर से मनुष्य-देह धारण करनी पडती है। और जो अत्यन्त दुष्ट हैं, वे भूत, दानव आदि रूपो मे परिणत होते हैं, उसके बाद वे पशु होते हैं, और मुक्ति-लाभ के लिए उन्हे फिर से मनुष्य-जन्म ग्रहण करना पडता है। इस पृथ्वी को कर्मभूमि कहा जाता है। अच्छा-बुरा सभी कर्म यही करना होता है। मनुष्य स्वर्गकाम होकर सत्कार्य करने पर स्वर्ग मे जाकर देवता हो जाता है, इस अवस्था मे वह कोई नया कर्म नहीं करता, वह तो बस, पृथ्वी पर किये हुए अपने सत्कर्मों के फलो का ही भोग करता है। और जब ये सत्कर्म समाप्त हो जाते हैं, तो उसी समय जो असत् या बुरे कर्म उसने पृथ्वी पर किये थे, उन सबका सञ्चित फल वेग के साथ उस पर आ जाता है और उसे वहाँ से फिर एक बार पृथ्वी पर घसीट लाता है। इसी प्रकार जो भूत हो जाते हैं, वे उस अवस्था मे कोई नूतन कर्म न करते हुए केवल अपने पूर्व कर्मों का फल भोगते रहते हैं, तत्पश्चात् पशु-जन्म ग्रहण कर वे वहाँ भी कोई नया कर्म नही करते। उसके बाद वे भी फिर मनुष्य हो जाते हैं। शुभ और अशुभ कर्मों द्वारा जनित पुरस्कार और दड की अवस्थाओ मे नूतन कर्मों को उत्पन्न करने की शक्ति नही होती, वे केवल भोगी जाती हैं। अत्यन्त शुभ और अत्यन्त अशुभ कर्मों का फल बहुत शीघ्र प्राप्त होता है। मान लो कि एक व्यक्ति ने जीवन भर अनेक बुरे काम किये, पर एक बहुत अच्छा काम भी किया। ऐसी दशा मे उस सत्कार्य का फल उसी क्षण प्रकाशित हो जायगा, और इस सत्कार्य का फल समाप्त होते ही बुरे कार्य भी अपना फल दिखाने लगेंगे। जिन लोगो ने कुछ अच्छे अच्छे, बडे बडे कार्य किये हैं, पर जिनके सारे जीवन की गति अच्छी नही रही, वे सब देवता हो जायँगे। देव-देह धारण कर देवताओ की शक्ति का कुछ काल तक भोग करके उन्हे फिर से मनुष्य होना पडेगा। जब सत्कर्मों की शक्ति क्षय हो जायगी, तब फिर से उन पुराने असत्कार्यों का फल होने लगेगा। जो अत्यन्त बुरे कर्म करते हैं, उन्हें भूत-योनि, दानव-योनि मे जाना पडेगा, और जब उनके बुरे कर्मों का फल समाप्त हो जायगा, तो उस समय उनका जितना भी सत्कर्म शेष है, उसके फल से वे फिर मनुष्य हो जायँगे। जिस मार्ग से ब्रह्मलोक मे जाते हैं, जहाँ से पतन होने अथवा लौटने की सम्भावना नही रहती, उसे देवयान कहते हैं, और चन्द्रलोक के मार्ग को पितृयान कहते हैं।

अतएव वेदान्त दर्शन के मत से मनुष्य ही जगत् मे सर्वश्रेष्ठ प्राणी है और यह कर्मभूमि पृथ्वी ही सर्वश्रेष्ठ स्थान है, क्योंकि एकमात्र यही पर उसके पूर्णत्व प्राप्त करने की सर्वोत्कृष्ट और सर्वाधिक सम्भावना है। देवता आदि को भी

होने पर फिर उठती हैं। जिन विचारों ने सूक्ष्मतर रूप धारण कर लिया है, उन्हींमें से कुछ को फिर से तरंगाकार में लाने को ही स्मृति कहते हैं। इस प्रकार, हमने जो कुछ सोचा है, जो कुछ किया है, सारा का सारा मन में अवस्थित है। ये सब सूक्ष्म भाव से स्थित रहते हैं और मनुष्य के मर जाने पर भी ये संस्कार उसके मन में विद्यमान रहते हैं—ये फिर सूक्ष्म शरीर पर कार्य करते रहते हैं। आत्मा यह सब संस्कार एवं सूक्ष्मशरीररूपी वस्त्र धारण करके चली जाती है और विभिन्न संस्कारों की इन विभिन्न शक्तियों का समवेत फल ही आत्मा के भविष्य को निर्धारित करता है। उनके मत से आत्मा की तीन प्रकार की गति होती है।

जो अत्यन्त धार्मिक है, वे मृत्यु के बाद सूर्यरश्मियों का अनुसरण करते हैं। सूर्यरश्मियों का अनुसरण करते हुए वे सूर्यलोक में जाते हैं, वहाँ से वे चन्द्रलोक और चन्द्रलोक से विद्युल्लोक में उपस्थित होते हैं, वहाँ एक मुक्त आत्मा से उनका साक्षात्कार होता है, वह इन जीवात्माओं को सर्वोच्च ब्रह्मलोक में ले जाती है। वहाँ उन्हें सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता प्राप्त होती है, उनकी शक्ति और ज्ञान प्रायः ईश्वर के समान हो जाता है, और द्वैतवादियों के मत से वे अनन्त काल तक वहाँ वास करते हैं, अथवा अद्वैतवादियों के अनुसार, कल्पान्त में ब्रह्म के साथ एकत्व प्राप्त करते हैं। जो लोग सकाम भाव से सत्कार्य करते हैं, वे मृत्यु के बाद चन्द्रलोक में जाते हैं। वहाँ नाना प्रकार के स्वर्ग हैं। वे वहाँ पर सूक्ष्म शरीर—देवशरीर—प्राप्त करते हैं। वे देवता होकर वहाँ वास करते हैं और दीर्घ काल तक स्वर्ग के सुखों का उपभोग करते हैं। इस भोग का अन्त होने पर फिर उनका प्राचीन कर्म बलवान हो जाता है, अतः फिर से उनका मर्त्यलोक में पतन हो जाता है। वे वायुलोक, मेघलोक आदि लोकों में से होते हुए अन्त में वृष्टिधारा के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। वृष्टि के साथ गिरकर वे किसी शस्य का आश्रय लेकर रहते हैं। इसके बाद जब कोई व्यक्ति उस शस्य को खाता है, तब उसके वीर्य से वे फिर से शरीर धारण करते हैं। जो लोग अत्यन्त दुष्ट हैं वे मरने पर भूत अथवा दानव हो जाते हैं एवं चन्द्रलोक और पृथ्वी के बीच किसी स्थान में वास करते हैं। उनमें से कुछ मनुष्यों को त्रस्त करते हैं। और कुछ लोग मनुष्यों से मैत्री भाव रखते हैं। वे कुछ समय तक उस स्थान में रहकर फिर पृथ्वी पर आकर पशु-जन्म लेते हैं। कुछ समय पशु-देह में रहकर वे फिर से मनुष्य-योनि में आते हैं—वे और एक बार मुक्ति-लाभ करने की उपयुक्त अवस्था प्राप्त करते हैं। तो इस प्रकार हमने देखा कि जो लोग मुक्ति की निकटतम सीढ़ी पर पहुँच गये हैं, जिनमें अपवित्रता बहुत कम रह गयी है, वे ही सूर्य की किरणों के सहारे ब्रह्मलोक में जाते हैं, जो मध्यम वर्ग के लोग हैं, जो स्वर्ग जाने की इच्छा

का ही सघात है। ऐसे किसी आनुमानिक द्रव्य की कल्पना करने की क्या आवश्यकता, जिसमे वे सब गुण आश्रित हो? द्रव्य का ज्ञान आता है केवल गुणराशि के त्वरित स्थान-परिवर्तन के कारण, इसलिए नही कि कोई अपरिणामी वस्तु वास्तव मे उनके पीछे है। हम देखते है कि ये युक्तियाँ वडी प्रवल हैं और मानवता के सामान्य अनुभव को सत्य लगती हैं। वास्तव मे लाखो मनुष्यो मे एक व्यक्ति भी इस दृश्य जगत् से अतीत किसी वस्तु की धारणा नही कर सकता। अधिकाश लोगो के लिए प्रकृति केवल परिवर्तन की परिणामी, घूर्णित, मिश्रित और परस्पर घुलती हुई राशि मात्र है। हममे से वहुत कम लोगो ने ही अपने पीछे स्थित उस स्थिर समुद्र का थोडा सा आभास पाया होगा। हमारे लिए तो वह समुद्र तरगों से आलोडित रहता है और जगत् हमे तरगो की चचल राशि मात्र प्रतीत होता है। इस प्रकार हम दो मत देखते हैं। एक तो यह कि इस शरीर और मन के पीछे एक स्थिर और अपरिणामी सत्ता है, और दूसरा यह कि इस जगत् मे स्थिरता और नित्यता जैसा कुछ भी नही है, सव कुछ परिवर्तन ही परिवर्तन है। इस मत-वैभिन्न्य का समाधान हमे चिंतन के अगले सोपान, अद्वैत मे मिलता है।

अद्वैतवादी कहते हैं, द्वैतवादियो की यह वात कि 'जगत् का एक अपरिणामी आश्रय है', सत्य है। किसी अपरिणामी वस्तु की कल्पना किये विना हम परिणाम की कल्पना कर ही नही सकते। किसी अपेक्षाकृत अल्प परिणामी वस्तु की तुलना मे ही किसी वस्तु के परिणाम की बात सोची जा सकती है, और पूर्वोक्त अल्प परिणामी वस्तु भी अपने से कम परिणामवाली वस्तु की तुलना मे अधिक परिणामशील है। और इस प्रकार का क्रम चलता ही रहेगा, जव तक हम वाध्य होकर एक पूर्ण, अपरिणामी वस्तु को स्वीकार नही कर लेते। यह समस्त व्यक्त जगत्-प्रपच निश्चय ही एक अव्यक्त, स्थिर और शान्त अवस्था मे था, जव वह विरोधी शक्तियो का सामजस्यस्वरूप था अर्थात् जव कोई भी शक्ति क्रियाशील नही थी, क्योकि साम्यावस्था भग होने पर ही शक्ति क्रियाशील होती है। यह ब्रह्माण्ड फिर से उसी साम्यावस्था की प्राप्ति के लिए धावमान है। यदि हमारा किसी विषय के सम्वन्ध मे निश्चित ज्ञान है, तो वह यही है। द्वैतवादी जव कहते हैं कि कोई अपरिणामी वस्तु है, तव वे ठीक ही कहते है, पर उनका यह विश्लेषण कि एक अन्तर्निहित वस्तु है, जो न शरीर है, न मन, वरन् इन दोनो से पृथक् है, भूल है। वौद्ध लोग जो कहते हैं कि समुदय जगत् परिणाम-प्रवाह मात्र है, तो यह भी पूर्णतया सत्य है, क्योकि जव तक मैं जगत् से पृथक् हूँ, जव तक मैं अपने अतिरिक्त और कुछ देखता हूँ, जव तक एक द्रष्टा है

पूर्ण होने के लिए मनुष्य-जन्म ग्रहण करना पड़ेगा। यह मानव-जन्म एक महान् केन्द्र, अद्भुत स्थिति और अद्भुत अवसर है।

अब हम इसके एक अन्य पक्ष पर विचार करेंगे। बौद्ध लोग इस आत्मा का जिसकी व्याख्या मैंने अभी की है, अस्तित्व एकदम अस्वीकार करते हैं। हम विचारों के प्रवाह को ही क्यों न चलने दें? शरीर और मन के पीछे आत्मा नामक कोई पदार्थ मानने की क्या आवश्यकता है? इस शरीर और मनरूपी यन्त्र से ही क्या यथेष्ट व्याख्या नहीं हो जाती? और एक तीसरे पदार्थ की कल्पना से क्या काम? यह युक्ति है तो बड़ी प्रबल। जहाँ तक बाह्य अनुसन्धान की पहुँच है, वहाँ तक तो यही प्रतीत होता है कि यह शरीर और मनरूपी यन्त्र अपनी व्याख्या के लिए स्वयं ही पर्याप्त है; कम से कम हममें से अनेक इस तत्त्व को इसी दृष्टि से देखते हैं। तब फिर शरीर और मन से भिन्न पर साथ ही शरीर और मन के आश्रयस्वरूप आत्मा नामक एक पदार्थ के अस्तित्व की कल्पना की क्या आवश्यकता? बस शरीर और मन कहना ही तो पर्याप्त है। सतत परिणामशील जड़प्रवाह का नाम है शरीर, और सतत परिणामशील विचारप्रवाह का नाम है मन। तब यह जो एकत्व की प्रतीति हो रही है, वह कैसे होती है? बौद्ध कहते हैं कि यह एकत्व वास्तविक नहीं है। मान लो एक जलती मशाल को घुमाया जा रहा है। तो इससे यह आग का एक वृत्त सी प्रतीत होती है। वास्तव में वहाँ कोई वृत्त नहीं है, पर मशाल के सतत घूमने से आग ने यह वृत्त-रूप धारण कर लिया है। इसी प्रकार हमारे जीवन में भी एकत्व नहीं है; जड़ की राशि लगातार चल रही है। यदि सम्पूर्ण जड़राशि को एक कहकर सम्बोधित करने की इच्छा हो तो करो, पर उसके अतिरिक्त वास्तव में कोई एकत्व नहीं है। मन के सम्बन्ध में भी यही बात है; प्रत्येक विचार दूसरे विचारों से पृथक् है। यह प्रबल विचार-प्रवाह ही इस भ्रमात्मक एकत्व का भाव उत्पन्न कर देता है; अतएव फिर तीसरे पदार्थ की क्या आवश्यकता? जो कुछ दिखता है यह जड़प्रवाह और यह विचारप्रवाह—बस इन्हीं का अस्तित्व है; इनके पीछे और कुछ है यह सोचने की आवश्यकता ही क्या? बहुत से आधुनिक सम्प्रदायों ने बौद्धों के इस मत को ग्रहण कर लिया है और वे सभी इसे नयी तथा अपनी अपनी खोज कहकर प्रतिपादित करना चाहते हैं। अधिकतर बौद्ध दर्शनों में मुख्य बात यही है कि यह परिदृश्यमान जगत् पर्याप्त है; इसके पीछे और कुछ है या नहीं, यह अनुसन्धान करने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं। यह इन्द्रियग्राह्य जगत् ही सर्वस्व है—किसी वस्तु को इस जगत् के आश्रयरूप में कल्पना करने की आवश्यकता ही क्या? सब कुछ गुणों

का ही सघात है। ऐसे किसी आनुमानिक द्रव्य की कल्पना करने की क्या आवश्यकता, जिसमे वे सब गुण आश्रित हो? द्रव्य का ज्ञान आता है केवल गुणराशि के त्वरित स्थान-परिवर्तन के कारण, इसलिए नही कि कोई अपरिणामी वस्तु वास्तव मे उनके पीछे है। हम देखते है कि ये युक्तियाँ वडी प्रवल हैं और मानवता के सामान्य अनुभव को सत्य लगती हैं। वास्तव मे लाखो मनुष्यो मे एक व्यक्ति भी इस दृश्य जगत् से अतीत किसी वस्तु की धारणा नही कर सकता। अधिकाश लोगो के लिए प्रकृति केवल परिवर्तन की परिणामी, घूर्णित, मिश्रित और परस्पर घुलती हुई राशि मात्र है। हममे से वहुत कम लोगो ने ही अपने पीछे स्थित उस स्थिर समुद्र का थोडा सा आभास पाया होगा। हमारे लिए तो वह समुद्र तरगो से आलोडित रहता है और जगत् हमे तरगो की चचल राशि मात्र प्रतीत होता है। इस प्रकार हम दो मत देखते हैं। एक तो यह कि इस शरीर और मन के पीछे एक स्थिर और अपरिणामी सत्ता है, और दूसरा यह कि इस जगत् मे स्थिरता और नित्यता जैसा कुछ भी नही है, सव कुछ परिवर्तन ही परिवर्तन है। इस मत-वैभिन्न्य का समाधान हमे चिंतन के अगले सोपान, अद्वैत मे मिलता है।

अद्वैतवादी कहते हैं, द्वैतवादियो की यह वात कि 'जगत् का एक अपरिणामी आश्रय है', सत्य है। किसी अपरिणामी वस्तु की कल्पना किये विना हम परिणाम की कल्पना कर ही नही सकते। किसी अपेक्षाकृत अल्प परिणामी वस्तु की तुलना मे ही किसी वस्तु के परिणाम की वात सोची जा सकती है, और पूर्वोक्त अल्प परिणामी वस्तु भी अपने से कम परिणामवाली वस्तु की तुलना मे अधिक परिणामशील है। और इस प्रकार का क्रम चलता ही रहेगा, जव तक हम वाध्य होकर एक पूर्ण, अपरिणामी वस्तु को स्वीकार नही कर लेते। यह समस्त व्यक्त जगत्-प्रपच निश्चय ही एक अव्यक्त, स्थिर और शान्त अवस्था मे था, जव वह विरोधी शक्तियो का सामजस्यस्वरूप था अर्थात् जव कोई भी शक्ति क्रियाशील नही थी, क्योकि साम्यावस्था भग होने पर ही शक्ति क्रियाशील होती है। यह ब्रह्माण्ड फिर से उसी साम्यावस्था की प्राप्ति के लिए धावमान है। यदि हमारा किसी विषय के सम्वन्ध मे निश्चित ज्ञान है, तो वह यही है। द्वैतवादी जब कहते हैं कि कोई अपरिणामी वस्तु है, तव वे ठीक ही कहते हैं, पर उनका यह विश्लेषण कि एक अन्तर्निहित वस्तु है, जो न शरीर है, न मन, वरन् इन दोनो से पृथक् है, भूल है। वौद्ध लोग जो कहते हैं कि समुदय जगत् परिणाम-प्रवाह मात्र है, तो यह भी पूर्णतया सत्य है, क्योकि जव तक मैं जगत् से पृथक् हूँ, जव तक मैं अपने अतिरिक्त और कुछ देखता हूँ, जव तक एक द्रष्टा है

और दृश्य वस्तु है—संक्षेप में जब तक द्वैतभाव है, यह जगत् सदैव परिणाम शील प्रतीत होगा। पर असल बात यह है कि इस जगत् में परिणाम भी है और अपरिणाम भी। आत्मा मन और शरीर, ये तीनों पृथक् पृथक् वस्तुएं नहीं हैं बल्कि ये एक ही हैं, क्योंकि इन तीनों से बना हुआ यह प्राणी वस्तुतः एक है। एक ही वस्तु कभी देह कभी मन और कभी देह और मन से अतीत आत्मा के रूप में प्रतीत होती है किन्तु वह एक ही समय में यह तीनों नहीं होती। जो शरीर को देखते हैं, वे मन को नहीं देख पाते जो मन को देखते हैं, वे आत्मा को नहीं देख पाते और जो आत्मा को देखते हैं, उनके लिए शरीर और मन दोनों न जाने कहाँ चले जाते हैं! जो लोग केवल गति देखते हैं, वे सम्पूर्ण स्थिर भाव को नहीं देख पाते और जो इस सम्पूर्ण स्थिर भाव को देख पाते हैं, उनके लिए गति न जाने कहाँ चली जाती है। रज्जु में सर्प का भ्रम हुआ। जो व्यक्ति रज्जु में सर्प ही देखता है, उसके लिए रज्जु न जाने कहाँ चली जाती है, और जब भ्रान्ति दूर होने पर वह व्यक्ति रज्जु ही देखता है, तो उसके लिए फिर सर्प नहीं रह जाता।

तो हमने देखा कि सर्वव्यापी वस्तु एक ही है और वह एक ही नाना रूपों में प्रतीत होती है। इसको चाहे आत्मा कहो अथवा अन्य कोई द्रव्य कहो जगत् में एकमात्र इसीका अस्तित्व है। अद्वैतवादियों की भाषा में यह आत्मा ही ब्रह्म है, जो नाम-रूप की उपाधि के कारण अनेक प्रतीत हो रहा है। समुद्र की तरंगों की ओर देखो एक भी तरंग समुद्र से पृथक् नहीं है। फिर भी तरंग पृथक् क्यों प्रतीत होती है? नाम और रूप के कारण—तरंग की आकृति और उसे हमने जो 'तरंग' नाम दिया है बस इन दोनों ने उसे समुद्र से पृथक् कर दिया है। नाम-रूप के नष्ट हो जाने पर वह समुद्र की समुद्र ही रह जाती है। तरंग और समुद्र के बीच भला कौन भेद कर सकता है? अतएव यह समुदय जगत् एकस्वरूप है। जो भी पार्थक्य दिखता है वह सब नाम-रूप के ही कारण है। जिस प्रकार सूर्य लाखों जलकणों पर प्रतिबिम्बित होकर प्रत्येक जलकण में अपनी एक सम्पूर्ण प्रतिकृति सृष्ट कर देता है उसी प्रकार वही एक आत्मा वही एक सत्ता विभिन्न वस्तुओं में प्रतिबिम्बित होकर नाना रूपों में दिखायी पड़ती है। किन्तु वास्तव में वह एक ही है। वास्तव में 'मैं' अथवा 'तुम' नामक कुछ नहीं है—सब एक ही है। चाहे कह लो—'सभी मैं हूँ' या कह लो—'सभी तुम हो'। यह द्वैत ज्ञान बिल्कुल मिथ्या है, और सारा जगत् इसी द्वैत ज्ञान का फल है। जब विवेक के उदय होने पर मनुष्य देखता है कि दो वस्तुएं नहीं हैं एक ही वस्तु है तब उसे यह बोध होता है कि वह स्वयं यह अनन्त ब्रह्माण्डस्वरूप है। मैं ही यह परिवर्तनशील

जगत् हूँ, और मैं ही अपरिणामी, निर्गुण, नित्य पूर्ण, नित्यानन्दमय हूँ।' अतएव नित्य शुद्ध, नित्य पूर्ण, अपरिणामी, अपरिवर्तनीय एक आत्मा है, उसका कभी परिणाम नही होता, और ये सब विभिन्न परिणाम उस एक आत्मा मे प्रतीत मात्र होते है।

उस पर नाम-रूप ने ये सब विभिन्न स्वप्न-चित्र अकित कर दिये हैं। आकृति ने ही तरग को समुद्र से पृथक् किया है। मान लो कि तरग विलीन हो गयी, तो क्या यह रूप रहेगा? नही, वह बिल्कुल चला जायगा। तरग का अस्तित्व पूर्ण रूप से समुद्र के अस्तित्व पर निर्भर है, पर समुद्र का अस्तित्व तरग के अस्तित्व पर निर्भर नही है। जब तक तरग रहती है, तब तक रूप भी रहता है, पर तरग के विलीन हो जाने पर वह रूप फिर नही रह सकता। इस नाम-रूप को ही माया कहते हैं। यह माया ही भिन्न भिन्न व्यक्तियो का सृजन करके उनमें आपस मे पार्थक्य का बोध करा रही है। पर वास्तव मे इसका अस्तित्व नही है। माया का अस्तित्व है, यह नही कहा जा सकता। रूप या आकृति का अस्तित्व है, यह नही कहा जा सकता, क्योकि वह तो दूसरे के अस्तित्व पर निर्भर रहती है। और उसका अस्तित्व नही है, यह भी नही कहा जा सकता, क्योकि उसीने तो यह सारा भेद उत्पन्न किया है। अद्वैतवादियो के मत से, इस माया या अज्ञान या नाम-रूप, अथवा यूरोपीय लोगो की भाषा मे, इस देश-काल-निमित्त के कारण यह एक अनन्त सत्ता इस वैचित्र्यमय जगत् के रूप मे दीख पडती है। परमार्थत यह जगत् एक अखण्डस्वरूप है, जब तक कोई दो परमार्थत सत्य वस्तुओ की कल्पना करता है, तब तक वह भ्रम मे है। जब वह जान जाता है कि सत्ता केवल एक है, तभी वह यथार्थ मे जानता है। जितना ही समय बीतता जाता है, उतना ही हमारे निकट यह सत्य प्रमाणित होता जाता है। क्या जड जगत् मे, क्या मनोजगत् मे और क्या अध्यात्म जगत् मे, सर्वत्र यह सत्य प्रमाणित हो रहा है। अब प्रमाणित हो गया है कि तुम, मैं, सूर्य, चन्द्र, तारे—सभी एक ही जडसमुद्र के भिन्न भिन्न अशो के नाम मात्र हैं और यह जडराशि अपने रूपाकार मे सतत परिवर्तित होती रहती है। शक्ति का जो कण कुछ मास पहले सूर्य मे था, हो सकता है, आज वह मनुष्य के भीतर आ गया हो, कल शायद वह पशु के भीतर और परसो किसी उद्भिद् के भीतर प्रवेश कर जायगा। आना-जाना निरन्तर हो रहा है। यह सब एक अखण्ड जडराशि है—भेद है केवल नाम और रूप मे। इसके एक बिन्दु का नाम है सूर्य, एक का चन्द्र, एक का तारा, एक का मनुष्य, एक का पशु, एक का उद्भिद् आदि आदि। और ये सारे नाम भ्रमात्मक हैं, इसमे कोई वास्तविकता नही है, क्योकि इस जडराशि का लगातार

परिवर्तन हो रहा है। इसी जगत् को एक दूसरे भाव से देखने पर यह एक विशाल विचार-समुद्र के समान प्रतीत होगा, जिसका एक एक बिन्दु एक एक मन है—तुम एक मन हो, मैं एक मन हूँ, प्रत्येक व्यक्ति केवल एक एक मन है। फिर इसी जगत् को ज्ञान की दृष्टि से देखने पर, अर्थात् जब आँखों पर से मोह का आवरण हट जाता है, जब मन शुद्ध हो जाता है, तब यही नित्य शुद्ध अपरिणामी अविनाशी अखण्ड पूर्णस्वरूप पुरुष के रूप में प्रतीत होता है।

तब फिर द्वैतवादियों के परलोकवाद का—मनुष्य मरने के बाद स्वर्ग जाता है अथवा अमुक लोक में जाता है और बुरा आदमी भूत हो जाता है, उसके बाद पशु होता है, आदि बातों का—क्या होता है? अद्वैतवादी कहते हैं—'न कोई आता है, न कोई जाता है—तुम्हारे लिए आना-जाना किस प्रकार सम्भव है? तुम तो अनन्तस्वरूप हो, तुम्हें जाने के लिए स्थान कहाँ?' किसी स्कूल में छोटे बच्चों की परीक्षा हो रही थी। परीक्षक उन छोटे छोटे बच्चों से कठिन कठिन प्रश्न कर रहे थे। उन प्रश्नों में एक प्रश्न यह भी था, "पृथ्वी गिरती क्यों नहीं?" उन्हें आशा थी कि बच्चों से उत्तर में गुरुत्वाकर्षण का भाव या दूसरा कोई जटिल वैज्ञानिक सत्य मिले। अनेक बालक इस प्रश्न को समझ न सके और अपनी अपनी समझ से उलटे-सीधे उत्तर देने लगे। पर एक बुद्धिमती बालिका ने एक दूसरा प्रश्न करते हुए उसका उत्तर दिया, "पृथ्वी गिरेगी कहाँ?" यह प्रश्न तो निरर्थक है! विश्व में ऊँचा-नीचा कुछ भी नहीं है। ऊँचा-नीचा तो सापेक्ष ज्ञान मात्र है। आत्मा के सम्बन्ध में भी यही बात है। इसके सम्बन्ध में जन्म-मृत्यु का प्रश्न ही निरी मूर्खता है। कौन आता है, कौन जाता है? तुम कहाँ नहीं हो? वह स्वर्ग कहाँ है, जहाँ तुम पहले से ही नहीं हो? मनुष्य की आत्मा सर्वव्यापी है। तुम कहाँ जाओगे? कहाँ नहीं जाओगे? आत्मा तो सब जगह है। अतएव पूर्ण जीवन्मुक्त व्यक्ति के लिए यह बालकों का सा स्वप्न, जन्म-मृत्यु रूप यह बालकों का सा भ्रम, स्वर्ग-नरक आदि का स्वप्न—सब कुछ एकदम गायब हो जाता है। जिनके भीतर कुछ अज्ञान अवशिष्ट है, उनको यह ब्रह्मलोक पर्यन्त नाना प्रकार के दृश्य दिखा कर फिर अन्तर्हित होता है। और जो अज्ञानी हैं, उनके लिए यह रह जाता है।

स्वर्ग जायेंगे, मरेंगे, पैदा होंगे—इन सब बातों पर सारा जगत् विश्वास क्यों करता है? मैं एक पुस्तक पढ़ रहा हूँ, उसके पृष्ठ पर पृष्ठ पढ़े जा रहा हूँ और उन्हें उलटाते जा रहा हूँ। और एक पृष्ठ आया, वह भी उलट दिया गया। परिवर्तन किसमें हो रहा है? कौन आ-जा रहा है? मैं नहीं, इस पुस्तक के पन्ने ही उलटे जा रहे हैं। सारी प्रकृति आत्मा के सम्मुख रखी एक पुस्तक के समान है। उसका

एक के बाद दूसरा अध्याय पढा जा रहा है। फिर एक नया दृश्य सामने आता है। पढने के बाद उसे भी उलट दिया जाता है। फिर एक नया अध्याय सामने आता है, पर आत्मा जैसी थी, वैसी ही रहती है—वही अनन्तस्वरूप। परिणाम प्रकृति का हो रहा है, आत्मा का नही। आत्मा का कभी भी परिणाम नही होता। जन्म-मृत्यु प्रकृति मे हैं, तुममे नही। फिर भी अज्ञ लोग भ्रान्त होकर सोचते हैं कि हम मर रहे हैं, हम जी रहे है, प्रकृति नही। यह बात ठीक वैसी ही है, जैसे हम भ्रान्ति-वश समझते हैं कि सूर्य चल रहा है, पृथ्वी नही। अत यह समस्त भ्रान्ति ही है। जैसे रेलगाडी के बदले हम खेत आदि को चलायमान समझते हैं, जन्म और मृत्यु की यह भ्रान्ति भी ठीक वैसी ही है। जब मनुष्य किसी विशेष भाव मे रहता है, तब वह इसी सत्ता को पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, तारा आदि के रूप मे देखता है, और जो लोग इसी मनोभाव से युक्त हैं, वे भी ठीक ऐसा ही देखते है। मेरे-तुम्हारे बीच अस्तित्व के विभिन्न स्तरो पर लाखो जीव हो सकते हैं। वे हमे कभी न देख पायेंगे और हम भी उन्हें कभी नही। हम केवल अपने ही प्रकार के चित्तवृत्तिसम्पन्न और अपने ही स्तर के प्राणियो को देख सकते हैं। जिन वाद्य-यन्त्रो मे एक ही प्रकार का कम्पन है, उनमे से एक के बजने पर शेष सभी बज उठेंगे। मान लो, हम अभी जिस कम्पन से युक्त हैं, उसे हम 'मानव-कम्पन' नाम दे देते हैं। अब यदि यह कम्पन बदल जाय, तो फिर मनुष्य दिखायी नही देंगे। मनुष्य के बदले अन्य दृश्य हमारे सामने आ जायगा—हो सकता है, देव-जगत् और देवता आदि आ जायँ, अथवा दुष्ट मनुष्यो के लिए शैतान और शैतान-जगत् आ जाय। पर ये सभी एक ही जगत् के विभिन्न दृष्टिकोण है। यह जगत् मानव-दृष्टि से पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, तारा आदि रूपो मे दिखता है, फिर यही दुष्टता की दृष्टि से देखने पर नरक या दण्डालय के रूप मे प्रतीत होता है। और जो स्वर्ग जाना चाहते हैं, वे इसी जगत् को स्वर्ग के रूप मे देखते हैं। जो व्यक्ति आजीवन यह सोचता रहा है कि मैं स्वर्ग मे सिंहासन पर बैठे हुए ईश्वर के निकट जाकर सारा जीवन उनकी उपासना करूँगा, वह मृत्यु के बाद अपने उसी मनोभाव के अनुरूप देखेगा। यह जगत् ही उसके लिए एक बृहत् स्वर्ग मे परिणत हो जायगा, वह देखेगा कि नाना प्रकार की अप्सराएँ, किन्नर आदि उडते फिर रहे हैं और देवता लोग सिंहासनो पर बैठे हैं। स्वर्ग आदि सब कुछ मनुष्य के गढे हुए हैं। अतएव अद्वैतवादी कहते हैं—द्वैतवादियो की बात सत्य तो है, पर यह सब उनका अपना ही बनाया हुआ है। ये सब लोक, शैतान, पुनर्जन्म आदि सभी काल्पनिक हैं, और मानव-जीवन भी ऐसा ही है। ये सब तो काल्पनिक हो और मानव-जीवन सत्य हो, ऐसा कभी नहीं हो सकता। इसी जीवन मात्र को सत्य मान-कर मनुष्य सर्वदा एक महान् भूल करता है। अन्यान्य वस्तुओ को तो—जैसे स्वर्ग,

नरक आदि को—काल्पनिक कहने से वह ठीक समझ लेता है, पर अपने अस्तित्व को वह कभी काल्पनिक मानना नहीं चाहता। यह सारा दृश्यमान जगत् कल्पना मात्र है और सबसे बड़ा मिथ्या ज्ञान तो यह है कि हम शरीर हैं। हम कभी भी शरीर नहीं थे और न कभी हो सकते हैं। हम केवल मनुष्य हैं, यह कहना सबसे बड़ी मिथ्या बात है। हम तो जगत् के ईश्वर हैं। ईश्वर की उपासना करके हमने सदा अपनी अव्यक्त आत्मा की ही उपासना की है। अपने को जन्म से ही दुष्ट और पापी सोचना —यही सबसे बड़ी मिथ्या बात है। पापी तो वह है जो दूसरों को पापी देखता है। मान लो यहाँ एक बच्चा है और सोने की मोहरों से भरी एक थैली तुम यहाँ मेज पर रख देते हो। मान लो एक चोर आया और थैली ले गया। बच्चे की दृष्टि में थैली का रखा जाना और चोरी हो जाना—दोनों समान हैं। उसके भीतर चोर नहीं है इसलिए वह बाहर भी चोर नहीं देखता। पापी और दुष्ट मनुष्य को ही बाहर में पाप दिखता है, साधु पुरुष को नहीं। अत्यन्त असाधु व्यक्ति इस जगत् को नरक-स्वरूप देखते हैं मध्यम श्रेणी के लोग इसे स्वर्गस्वरूप देखते हैं और जो पूर्ण सिद्ध पुरुष हैं, वे इसे साक्षात् भगवान् के रूप में देखते हैं। बस तभी नेत्रों पर से आवरण हट जाता है और पवित्र एवं शुद्ध हुआ वह व्यक्ति देखता है कि उसकी दृष्टि बिल्कुल बदल गयी है। जो दुःस्वप्न उसे लाखों वर्षों से पीड़ित कर रहे थे वे सब एकदम समाप्त हो जाते हैं। और जो अपने को इतने दिन मनुष्य देवता दानव आदि समझ रहा था जो अपने को कभी ऊपर, कभी नीचे कभी पृथ्वी पर, कभी स्वर्ग में तो कभी और किसी स्थान में स्थित समझता था वह देखता है कि वह वास्तव में सर्वव्यापी है, वह काल के अधीन नहीं है। काल ही उसके अधीन है, सारे स्वर्ग उसके भीतर हैं, वह स्वयं किसी स्वर्ग में अवस्थित नहीं है—और मनुष्य ने आज तक जितने देवताओं की उपासना की है, वे सब के सब उसके भीतर ही अवस्थित हैं वह स्वयं किसी देवता में अवस्थित नहीं है। वह देव असुर, मानव पशु, उद्भिद्, प्रस्तर आदि सभी का सृष्टिकर्ता है। और उस समय मनुष्य का असल स्वरूप उसके निकट इस जगत् से श्रेष्ठतर, स्वर्ग से भी श्रेष्ठतर और सर्वव्यापी आकाश से भी अधिक सर्वव्यापी रूप में प्रकाशित होता है। तभी मनुष्य निर्भय हो जाता है, तभी वह मुक्त हो जाता है। तब सारी भ्रान्ति दूर हो जाती है सारे दुःख दूर हो जाते हैं, सारा भय एकदम चिरकाल के लिए समाप्त हो जाता है। तब जन्म न जाने कहाँ चला जाता है और उसके साथ मृत्यु भी दुःख न जाने कहाँ गायब हो जाता है और उसके साथ सुख भी। पृथ्वी उड़ जाती है और उसके साथ साथ स्वर्ग भी उड़ जाता है शरीर चला जाता है और उसके साथ मन भी। उस व्यक्ति की दृष्टि में यह सारा जगत् मानो अन्तर्हित हो जाता है। यह

जो शक्तियो का निरन्तर सग्राम, निरन्तर सघर्ष है, यह सब एकदम समाप्त हो जाता है, और जो, शक्ति और भूत के रूप मे, प्रकृति के विभिन्न सघर्षों के रूप मे अभिव्यक्त हो रहा था, जो स्वय प्रकृति के रूप मे अभिव्यक्त हो रहा था, जो स्वर्ग, पृथ्वी, उद्भिद्, पशु, मनुष्य, देवता आदि के रूप मे प्रकट हो रहा था, वह समस्त एक अनन्त, अच्छेद्य, अपरिणामी सत्ता के रूप मे परिणत हो जाता है, और ज्ञानी पुरुष देख पाते हैं कि वे उस सत्ता से अभिन्न हैं। 'जिस प्रकार आकाश मे नाना वर्ण के मेघ आकर, कुछ देर खेलकर फिर अन्तर्हित हो जाते है,' उसी प्रकार इस आत्मा के सम्मुख पृथ्वी, स्वर्ग, चन्द्रलोक, देवता, सुख, दु ख आदि आते हैं, पर वे उसी अनन्त, अपरिणामी, नील आकाश को हमारे सम्मुख छोडकर अन्तर्हित हो जाते हैं। आकाश मे कभी परिवर्तन नही होता, परिवर्तन केवल मेघ मे होता है। भ्रम के वश हो हम सोचते हैं कि हम अपवित्र हैं, हम सान्त हैं, हम पृथक् हैं। पर असल मे यथार्थ मनुष्य एक अखण्ड सत्तास्वरूप है।

यहाँ पर दो प्रश्न उठते हैं। पहला यह कि 'क्या इसकी उपलब्धि सम्भव है? अब तक तो सिद्धान्त और दर्शन की बात हुई, क्या उसकी अपरोक्षानुभूति सम्भव है?' हाँ, बिल्कुल सम्भव है। ऐसे अनेक व्यक्ति ससार मे इस समय भी जीवित हैं, जिनका अज्ञान सदा के लिए चला गया है। तो क्या सत्य की उपलब्धि के बाद उनकी तुरन्त मृत्यु हो जाती है? उतनी जल्दी नही, जितनी जल्दी हम समझते हैं। मान लो, एक लकडी से जुडे हुए दो पहिये साथ साथ चल रहे हैं। अब यदि मैं एक पहिये को पकडकर बीच की लकडी को कुल्हाडी से काट दूं, तो जिस पहिये को मैंने पकड रखा है, वह तो रुक जायगा, पर दूसरा पहिया, जिसमे पहले का वेग अभी नष्ट नही हुआ है, कुछ दूर चलेगा और फिर गिर पडेगा। पूर्ण शुद्धस्वरूप आत्मा मानो एक पहिया है, और शरीर-मनरूप भ्रान्ति दूसरा पहिया, ये दोनो कर्मरूपी लकडी द्वारा जुडे हुए हैं। ज्ञान मानो कुल्हाडी है, जो जोडनेवाली इस लकडी को काट देता है। जब आत्मारूपी पहिया रुक जाता है, तब आत्मा यह सोचना छोड देती है कि वह आ रही है, जा रही है, अथवा उसका जन्म होता है, मृत्यु होती है, तब वह इस प्रकार के सभी अज्ञानात्मक भावो का त्याग कर देती है और तब उसका यह भाव कि वह प्रकृति के साथ सयुक्त है, उसके अभाव और वासनाएँ हैं, बिल्कुल चली जाती हैं। तब वह देखती है कि वह पूर्ण है, वासनारहित है। पर शरीर-मनरूपी पहिये मे पूर्व कर्मों का वेग बचा रहता है। अत जब तक पूर्व कर्मों का यह वेग पूरी तरह समाप्त नही हो जाता, तब तक शरीर और मन बने रहते हैं। यह वेग समाप्त हो जाने पर इनका भी नाश हो जाता है और तब आत्मा मुक्त हो जाती है। तब फिर स्वर्गलोक जाना या स्वर्ग से पृथ्वी पर लौटना, यहाँ तक

कि ब्रह्मलोक जाना भी समाप्त हो जाता है, क्योंकि आत्मा भला कहाँ से आयगी और कहाँ जायगी ? जिन व्यक्तियों ने इस जीवन में ही इस अवस्था को प्राप्त कर लिया है, जिन्हें कम से कम एक मिनट के लिए भी संसार का यह दृश्य बदलकर सत्य का ज्ञान मिल गया है, उन्हें जीवन्मुक्त कहते हैं। जीवित रहते हुए यह मुक्ति प्राप्त करना ही वेदान्ती का लक्ष्य है।

एक बार मैं पश्चिमी भारत में हिन्द महासागर के तटवर्ती मरुस्थल में भ्रमण कर रहा था। बहुत दिन तक निरन्तर पैदल भ्रमण करता रहा। किन्तु प्रतिदिन यह देखकर मुझे महान् आश्चर्य होता था कि चारों ओर सुन्दर सुन्दर झीलें हैं, वे चारों ओर वृक्षों से घिरी हैं और वृक्षों की परछाइँ जल में पड़ रही हैं। मैं अपने मन में कहने लगा, 'कैसे अद्भुत दृश्य हैं ये ! और लोग इसे रेगिस्तान कहते हैं !' एक मास तक वहाँ मैं घूमता रहा और प्रतिदिन मुझे ये सुन्दर दृश्य दिखायी देते रहे। एक दिन मुझे बड़ी प्यास लगी। मैंने सोचा कि चलूँ, वहीं एक झील पर जाकर प्यास बुझा लूँ। अतएव मैं इन सुन्दर निर्मल झीलों में से एक की ओर अग्रसर हुआ। जैसे मैं आगे बढ़ा कि यह सब दृश्य न जाने कहाँ लुप्त हो गया। और तब मेरे मन में एकदम यह ज्ञान हुआ कि 'जीवन भर जिस मरीचिका की बात पुस्तकों में पढ़ता रहा हूँ, यह तो वही मरीचिका है !' और उसके साथ साथ यह ज्ञान भी हुआ कि 'इस पिछले मास प्रतिदिन मैं मरीचिका ही देखता रहा, पर कभी जान न पाया कि यह मरीचिका है।' दूसरे दिन मैंने पुनः चलना प्रारम्भ किया। फिर से वही सुन्दर दृश्य दिखने लगे, पर अब साथ साथ यह ज्ञान भी रहने लगा कि यह सचमुच की झील नहीं है, यह मरीचिका है। बस, इस जगत् के सम्बन्ध में भी ठीक यही बात है। हम प्रतिदिन, प्रतिमास, प्रतिवर्ष इस जगद्रूपी मरुस्थल में भ्रमण कर रहे हैं, पर मरीचिका को मरीचिका नहीं समझ पा रहे हैं। एक दिन यह मरीचिका अदृश्य हो जायगी। पर यह फिर से आ जायगी—शरीर को पूर्व कर्मों के अधीन रहना पड़ता है, अतः यह मरीचिका फिर से लौट आयेगी। जब तक हम कर्म से बँधे हुए हैं, तब तक जगत् हमारे सम्मुख आयेगा ही। नर, नारी, पशु, उद्भिद्, आसक्ति, कर्तव्य—सब कुछ आयेगा, पर वे पहले की भाँति हम पर प्रभाव न डाल सकेंगे। इस नवीन ज्ञान के प्रभाव से कर्म की शक्ति का नाश हो जायगा, उसके विष के दाँत टूट जायँगे, जगत् हमारे लिए एकदम बदल जायगा, क्योंकि जैसे ही जगत् दिखायी देगा, वैसे ही उसके साथ सत्य और मरीचिका के भेद का ज्ञान भी हमारे सामने प्रकाशित हो जायगा।

तब यह जगत् पहले का सा जगत् नहीं रह जायगा। किन्तु इसमें एक भय की आशंका है। हम देखते हैं कि प्रत्येक देश में लोग इस वेदान्त मत को अपना-

कर कहते है, "मैं धर्माधर्म से अतीत हूँ, मैं नैतिकता के किसी नियम से नही बँधा हूँ, अत मेरी जो इच्छा होगी, वही करूँगा।" इस देश मे ही देखोगे, अनेक मूर्ख कहते रहते हैं, "मैं बद्ध नही हूँ, मैं स्वय ईश्वरस्वरूप हूँ, मेरी जो इच्छा होगी, वही करूँगा।" यह ठीक नही है, यद्यपि यह बात सच है कि आत्मा भौतिक, मानसिक और नैतिक, सभी प्रकार के नियमो से अतीत है। नियम के अन्दर बन्धन है और नियम के बाहर मुक्ति। यह भी सच है कि मुक्ति आत्मा का जन्मगत स्वभाव है, यह उसका जन्मसिद्ध अधिकार है और आत्मा का यह वास्तविक मुक्त स्वभाव भौतिक आवरण के भीतर से मनुष्य की प्रतीयमान स्वतन्त्रता के रूप मे प्रतीत होता है। अपने जीवन के प्रत्येक क्षण हम अपने को मुक्त अनुभव करते हैं। हम अपने को मुक्त अनुभव किये बिना एक क्षण भी जीवित नही रह सकते, बोल नही सकते और श्वास-प्रश्वास भी नही ले सकते। किन्तु फिर कुछ विचार करने पर यह भी प्रमाणित हो जाता है कि हम एक मशीन के समान हैं, मुक्त नही। तब कौन सी बात सत्य मानी जाय? 'हम मुक्त हैं' यह धारणा ही क्या भ्रमात्मक है? एक पक्ष कहता है कि 'मैं मुक्त-स्वभाव हूँ', यह धारणा भ्रमात्मक है, और दूसरा पक्ष कहता है कि 'मैं बद्धभावापन्न हूँ', यह धारणा भ्रमात्मक है। यह कैसे? वास्तव मे, मनुष्य मुक्त है, मनुष्य परमार्थत जो है, वह मुक्त के अतिरिक्त और कुछ हो ही नही सकता, किन्तु ज्यो ही वह माया के जगत् मे आता है, ज्यो ही नाम-रूप के भीतर पड जाता है, त्यो ही वह बद्ध हो जाता है? 'स्वाधीन इच्छा' कहना ही भूल है। इच्छा कभी स्वाधीन हो नही सकती। होगी कैसे? जो प्रकृत मनुष्य है, वह जब बद्ध हो जाता है, तभी उसकी इच्छा की उत्पत्ति होती है, उससे पहले नही। मनुष्य की इच्छा बद्ध है, किन्तु जो इसका मूल है, वह तो सदा ही मुक्त है। इसीलिए बन्धन की दशा मे भी—चाहे मनुष्य-जीवन हो, चाहे देव-जीवन, चाहे पृथ्वी पर हो, चाहे स्वर्ग मे—हममे इस स्वतन्त्रता या मुक्ति की स्मृति रहती ही है, जो कि हमारा विधिप्रदत्त अधिकार है। और जान मे हो या अनजान मे, हम सब इस मुक्ति की ओर अग्रसर हो रहे हैं। मनुष्य जब मुक्त हो जाता है, तब वह किस प्रकार नियम मे बद्ध रह सकता है? तब जगत् का कोई भी नियम उसे बाँध नही सकता, क्योकि यह विश्व-ब्रह्माण्ड ही उसका हो जाता है।

वह विश्व-ब्रह्माण्डस्वरूप है। या तो कह लो कि वही विश्व-ब्रह्माण्ड है, या फिर कह लो कि उसके लिए विश्व-ब्रह्माण्ड का अस्तित्व ही नही है। तब फिर उसके लिए लिंग, देश आदि छोटे छोटे भाव किस प्रकार सम्भव हैं? वह कैसे कहेगा—मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ अथवा मैं बालक हूँ? क्या ये सब मिथ्या बातें नही हैं? उसने जान लिया है कि यह सब मिथ्या है। तब वह भला किस तरह कहेगा—ये ये पुरुष

के अधिकार हैं और ये मैं स्त्री के? किसीका कुछ अधिकार नहीं है, किसीका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। पुरुष भी नहीं है और स्त्री भी नहीं, आत्मा तो लिंगहीन है, वह नित्य शुद्ध है। मैं पुरुष या स्त्री हूँ, मैं अमुक देशवासी हूँ, यह सब कहना केवल मिथ्या है। सभी देश मेरे हैं, सारा जगत् मेरा है, क्योंकि मैंने अपने को मानो सारे जगत् से ढक लिया है, सारा जगत् ही मानो मेरा शरीर हो गया है। किन्तु हम देखते हैं कि बहुत से लोग विचार करते समय ये सब बातें मुख से कहने पर भी आचरण में सभी प्रकार के अपवित्र कार्य करते रहते हैं, और यदि उनसे पूछें "तुम ऐसा क्यों कर रहे हो?" तो वे उत्तर देंगे "यह तुम्हारी समझ की भूल है। हमसे कोई अन्याय होना असम्भव है।" इन सब लोगों को किस कसौटी पर कसें? कसौटी यह है।

यद्यपि शुभ और अशुभ दोनों एक ही आत्मा के आंशिक प्रकाश मात्र हैं, फिर भी अशुभ मनुष्य के वास्तविक स्वरूप का, उसकी आत्मा का बाह्यतम आवरण है, और शुभ अपेक्षाकृत निकटतर आवरण है। जब तक मनुष्य अशुभ के स्तर को छिन्न नहीं कर देता तब तक वह शुभ के स्तर पर नहीं पहुँच सकता, और जब तक वह शुभ और अशुभ दोनों के स्तरों को पार नहीं कर लेता तब तक वह आत्मा तक नहीं पहुँच सकता। आत्मा की प्राप्ति होने पर उसके लिए फिर क्या रह जाता है?—अत्यन्त अल्प कर्म, अतीत जीवन के कर्मों का अति अल्प वेग, पर यह वेग भी शुभ कर्मों का ही वेग होता है। जब तक अशुभ-वेग एकदम समाप्त नहीं हो जाता, जब तक पहले की अपवित्रता बिल्कुल दग्ध नहीं हो जाती, तब तक कोई भी सत्य का साक्षात्कार और उसकी उपलब्धि नहीं कर सकता। अतएव जिन लोगों ने आत्मा को प्राप्त कर लिया है, जिन्होंने सत्य का साक्षात्कार कर लिया है, उनके लिए अतीत जीवन के शुभ संस्कार, शुभ वेग ही बच रहता है। शरीर में वास करते हुए भी और अनवरत कर्म करते हुए भी वे केवल सत्कर्म ही करते हैं, उनके मुख से सबके प्रति केवल आशीर्वाद ही निकलता है, उनके हाथ केवल सत्कार्य ही करते हैं, उनका मन केवल सच्चिन्तन ही कर सकता है, उनकी उपस्थिति ही, चाहे वे कहीं भी रहें, सर्वत्र मानव जाति के लिए महान् वरदान होती है। वह स्वयं एक सजीव वरदान होते हैं। यदि वह कुछ भी न बोलें तो भी उसका होना मात्र मानवता के लिए एक आशीषस्वरूप है। ऐसा व्यक्ति अपनी उपस्थिति मात्र से घोर दुरात्मा को भी संत बना देता है। इस प्रकार के व्यक्ति के द्वारा क्या कोई बुरा कार्य सम्भव है? याद रखो 'प्रत्यक्षानुभूति' और 'केवल मुख से कहने' में आकाश पाताल का अन्तर है। अज्ञानी व्यक्ति भी नाना प्रकार की ज्ञान की बातें कहता है। तोता भी इस तरह बक देता है। मुँह से कहना एक बात है और अनुभव

करना दूसरी बात। दर्शन, मतामत, विचार, शास्त्र, मन्दिर, सम्प्रदाय आदि अपने स्थान पर ठीक हैं। पर प्रत्यक्षानुभूति होने पर यह सब पीछे छूट जाते हैं। जैसे, नक्शा अच्छी चीज़ है, पर नक्शे मे अंकित देश को स्वय देखकर आने के बाद यदि उसी नक्शे को फिर से देखो, तो कितना अन्तर दिखायी पडेगा! अतएव जिन्होंने सत्य को प्रत्यक्ष कर लिया है, उन्हें फिर सत्य को समझने के लिए न्याय-युक्ति, तर्क-वितर्क आदि बौद्धिक व्यायामो की आवश्यकता नही रह जाती। उनके लिए तो सत्य जीवन का जीवन, प्रत्यक्ष से भी प्रत्यक्ष हो जाता है। वेदान्तियो की भाषा मे, वह मानो उनके लिए हस्तामलकवत् हो गया है। प्रत्यक्ष उपलब्धि करने-वाले लोग नि:सकोच भाव से कह सकते हैं, 'यही आत्मा है।' तुम उनके साथ कितना ही तर्क क्यो न करो, वे तुम्हारी बात पर केवल हँसेंगे, वे उसे बच्चे की अण्ड-बण्ड बकवास ही समझेंगे, और उन्हें बकने देंगे। उन्होंने सत्य का साक्षात्कार किया और पूर्ण हो गये। मान लो, तुम एक देश देखकर आये और कोई व्यक्ति तुम्हारे पास आकर यह तर्क करने लगा कि उस देश का कही अस्तित्व ही नही है। वह फिर कितना ही तर्क क्यो न करे, पर उसके प्रति तुम्हारा भाव यही रहेगा कि वह पागलखाने मे भेज देने लायक है। इसी प्रकार, जो धर्म की प्रत्यक्ष उपलब्धि कर चुके हैं, वे कहते हैं, "जगत् मे धर्म सम्बन्धी जो बातें सुनी जाती हैं, वे सब केवल बच्चो की सी बातें हैं। प्रत्यक्षानुभूति ही धर्म का सार है।" धर्म की उपलब्धि की जा सकती है। प्रश्न यह है कि क्या तुम इसके अधिकारी हो चुके हो? क्या तुम्हें धर्म की सचमुच मे आवश्यकता है? यदि तुम ठीक ठीक प्रयत्न करो, तभी तुम्हें प्रत्यक्ष उपलब्धि होगी, और तभी तुम वास्तव मे धार्मिक होगे। जब तक यह उपलब्धि तुम्हें नही होती, तब तक तुममे और नास्तिक मे कोई भेद नही। नास्तिक तो फिर भी निष्कपट होते हैं, किन्तु जो कहता है कि 'मैं धर्म मे विश्वास करता हूँ, पर उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति की चेष्टा नही करता', वह निश्चय ही निष्क-पट नही है।

दूसरा प्रश्न यह है कि उपलब्धि के बाद क्या होता है? मान लो कि हमने जगत् का यह अखण्ड भाव—यह भाव कि हमी एकमात्र अनन्त पुरुष हैं—उपलब्ध कर लिया, मान लो, हमने जान लिया कि एकमात्र आत्मा ही विद्यमान है और वही विभिन्न रूपो से प्रकाशित हो रही है। तो अब प्रश्न यह है कि इस प्रकार जान लेने से हमारा क्या हुआ? तब क्या हम निश्चेष्ट हो एक कोने मे बैठ-कर मर जायँ? इससे जगत् का क्या उपकार होगा? वही प्राचीन प्रश्न फिर से घूम-फिरकर आता है! पहले तो, इससे जगत् का उपकार क्यो हो? क्यो? मैं इसका कारण जानना चाहता हूँ। लोगो को यह प्रश्न करने का अधिकार ही

क्या है कि इससे जगत् का क्या भला होगा? ऐसा पूछने का अर्थ क्या? छोटे छोटे बच्चे मिठाई पसन्द करते हैं। मान लो तुम विद्युत् के बारे में कुछ खोज कर रहे हो और बच्चा तुमसे पूछता है, 'इससे क्या मिठाई मिलेगी?' तुम कहते हो 'नहीं'। तो वह कह उठता है, 'तो फिर इससे क्या लाभ?' तत्त्वज्ञान के अनुसंधान में रत देखकर लोग ठीक इसी प्रकार पूछते हैं, 'इससे जगत् का क्या उपकार होगा? क्या इससे हमें रुपया मिलेगा?' 'नहीं।' 'तो फिर इससे क्या लाभ?' लोग उपकार का अर्थ बस इतना ही समझते हैं। तो भी धर्म की इस प्रत्यक्षानुभूति से जगत् का पूरा उपकार होता है। लोगों को भय होता है कि जब वे यह अवस्था प्राप्त कर लेंगे, जब उन्हें ज्ञान हो जायगा कि सभी एक हैं, तब उनके प्रेम का स्रोत सूख जायगा, जीवन में जो कुछ मूल्यवान है, वह सब चला जायगा, इस जीवन में और पर-जीवन में जो कुछ उन्हें प्रिय था, उसमें से कुछ भी न बच रहेगा। पर लोग यह बात एक बार भी नहीं सोच देखते कि जो व्यक्ति अपने सुख की चिन्ता की ओर से उदासीन हो गये हैं, वे ही जगत् में सर्वश्रेष्ठ कर्मी हुए हैं। मनुष्य तभी वास्तव में प्रेम करता है, जब वह देखता है कि उसके प्रेम का पात्र कोई क्षुद्र मर्त्य जीव नहीं है। मनुष्य तभी वास्तविक प्रेम कर सकता है, जब वह देखता है कि उसके प्रेम का पात्र एक मिट्टी का ढेला नहीं, किन्तु स्वयं भगवान् है। स्त्री पति से और अधिक प्रेम करेगी, यदि वह समझेगी कि स्वामी साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है। पति भी स्त्री से अधिक प्रेम करेगा, यदि वह जानेगा कि स्त्री स्वयं ब्रह्मस्वरूप है। वे माताएँ सन्तान से अधिक स्नेह कर सकेंगी, जो सन्तान को ब्रह्मस्वरूप देखेंगी। वे ही लोग अपने महान् शत्रुओं के प्रति भी प्रेमभाव रख सकेंगे, जो जानेंगे कि ये शत्रु साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हैं। वे ही लोग पवित्र व्यक्तियों से प्रेम करेंगे, जो समझेंगे कि साधु व्यक्ति साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हैं। वे ही लोग अत्यन्त अपवित्र व्यक्तियों से भी प्रेम करेंगे, जो यह जान लेंगे कि इन महा दुष्टों के भी पीछे वे ही प्रभु विराजमान हैं। जिनका क्षुद्र अहंकार एकदम मर चुका है और उसके स्थान पर ईश्वर ने अधिकार जमा लिया है, वे ही लोग जगत् के प्रेरक हो सकते हैं। उनके लिए समग्र विश्व दिव्य भाव से रूपान्तरित हो जायगा। दुःखकर अथवा क्लेशकर जो कुछ भी है, वह सब उनकी दृष्टि से लुप्त हो जाता है, सभी प्रकार के द्वन्द्व और संघर्ष समाप्त हो जाते हैं। तब यह जगत्, जहाँ हम प्रतिदिन एक टुकड़ा रोटी के लिए झगड़ा और मारपीट करते हैं, उनके लिए कारागार होने के बदले एक क्रीड़ाक्षेत्र बन जाता है। तब जगत् बड़ा सुन्दर रूप धारण कर लेता है। ऐसे ही व्यक्ति को यह कहने का अधिकार है कि 'यह जगत् कितना सुन्दर है!' उन्हींको यह कहने का अधिकार है कि सब मंगलस्वरूप है। इस प्रकार की प्रत्यक्ष उपलब्धि से जगत् का यह महान्

हित होगा कि ये अविराम विवाद, द्वन्द्व आदि सब दूर होकर जगत् शान्ति का राज्य हो जायगा। यदि जगत् के सभी मनुष्य आज इस महान् सत्य के एक बिन्दु की भी उपलब्धि कर सकें, तो उनके लिए यह सारा जगत् एक दूसरा ही रूप धारण कर लेगा और यह सब झगडा समाप्त हो शान्ति का राज्य आ जायगा। यह घिनौना उतावलापन, यह स्पर्धा, जो हमे, अन्य सबो को ठेलकर आगे बढ निकलने के लिए बाध्य करती है, इस ससार से उठ जायगी। इसके साथ साथ सब प्रकार की अशान्ति, घृणा, ईर्ष्या एव सभी प्रकार का अशुभ सदा के लिए चला जायगा। उस समय देवता लोग इस जगत् मे वास करेंगे। उस समय यही जगत् स्वर्ग हो जायगा। और जब देवता देवता से खेलेगा, देवता देवता से मिलकर कार्य करेगा, देवता देवता से प्रेम करेगा, तब क्या अशुभ ठहर सकता है ? ईश्वर की प्रत्यक्ष उपलब्धि का यही एक बडा सुफल है। समाज मे तुम जो कुछ भी देख रहे हो, वह सभी उस समय परिवर्तित होकर एक दूसरा रूप धारण कर लेगा। तब तुम किसी मनुष्य को बुरा नही समझोगे। यही प्रथम महालाभ है। उस समय तुम लोग किसी अन्याय करनेवाले बेचारे नर-नारी की ओर घृणापूर्ण दृष्टि से नही देखोगे। हे महिलाओ, फिर तुम प्रणयाकाक्षा मे रात भर रास्ते मे भटकती फिरनेवाली दुखिया स्त्री की ओर घृणा से न देखोगी, क्योकि तुम वहाँ भी साक्षात् ईश्वर को देखोगी! तब तुममे ईर्ष्या अथवा दूसरो पर शासन करने का भाव उदय नही होगा, वह सब चला जायगा। तब प्रेम इतना प्रबल हो जायगा कि मानव जाति को सत्पथ पर चलाने के लिए फिर चाबुक की आवश्यकता नही रह जायगी।

यदि ससार के नर-नारियो का दश-लक्षाश भी बिल्कुल चुप रहकर एक क्षण के लिए कहे, "तुम सभी ईश्वर हो, हे मानवो, हे पशुओ, हे सब प्रकार के जीवित प्राणियो! तुम सभी एक जीवन्त ईश्वर के प्रकाश हो," तो आधे घण्टे के अन्दर ही सारे जगत् का परिवर्तन हो जाय। उस समय चारो ओर घृणा के बीज न बोकर, ईर्ष्या और असत् चिन्ता का प्रवाह न फैलाकर सभी देशो के लोग सोचेंगे कि सभी 'वह' हैं। जो कुछ तुम देख रहे हो या अनुभव कर रहे हो, वह सब 'वही' है। तुम्हारे भीतर अशुभ न रहने पर तुम अशुभ किस तरह देखोगे ? तुम्हारे भीतर यदि चोर न हो, तो तुम किस प्रकार चोर देखोगे ? तुम स्वय यदि खूनी नही हो, तो किस प्रकार खूनी देखोगे। साधु हो जाओ, तो असाधु-भाव तुम्हारे अन्दर से एकदम चला जायगा। इस प्रकार सारे जगत् का परिवर्तन हो जायगा। यही समाज का सबसे बडा लाभ है। मनुष्य के लिए यही महान् लाभ है। ये सब भाव भारत मे प्राचीन काल मे अनेक महात्माओ द्वारा आविष्कृत और कार्य-रूप मे परिणत हुए थे। पर आचार्यों की सकीर्णता और देश की पराधीनता आदि अनेकविध कारणो से ये सब

भाव चारों ओर फैल न सके। फिर भी ये सब महान् सत्य हैं। जहाँ भी इन विचारों का प्रभाव पड़ा है वहीं मनुष्य ने देवत्व प्राप्त कर लिया है। ऐसे ही एक देवस्वभाव मनुष्य के स्पर्श द्वारा मेरा समस्त जीवन परिवर्तित हो गया है इसके सम्बन्ध में आगामी रविवार को मैं तुमसे कहूँगा। आज इन सब भावों का जगत् में प्रचार करने का समय आ गया है। अब मठों की चहारदीवारी में आबद्ध न रहकर, केवल पण्डितों के पढ़ने की दार्शनिक पुस्तकों में आबद्ध न रहकर, केवल कुछ सम्प्रदायों के अथवा कुछ पण्डितों के एकाधिकार में न रहकर, इन भावों का समस्त जगत् में प्रचार होगा जिससे ये साधु, पापी आबालवृद्धवनिता शिक्षित अशिक्षित सभी की साधारण सम्पत्ति हो जायँ। तब ये सब भाव इस जगत् के वातावरण को ओत-प्रोत कर देंगे और हम श्वास प्रश्वास द्वारा जो वायु ले रहे हैं वह अपने प्रत्येक स्पन्दन के साथ कहने लगेगी—तत्त्वमसि! असंख्य चन्द्र-सूर्यपूर्ण यह समग्र ब्रह्माण्ड वाक्शक्तियुक्त प्रत्येक प्राणी के माध्यम से एक स्वर से कह उठेगा—तत्त्वमसि!

# माया और भ्रम

## (लन्दन मे दिया हुआ भाषण)

माया शब्द प्राय तुम सभी ने सुना होगा। इसका व्यवहार साधारणत कल्पना, कुहक अथवा इसी प्रकार के अर्थ मे किया जाता है। किन्तु मायावाद उन स्तम्भो मे से एक है, जिन पर वेदान्त की स्थापना हुई है, अत उसका ठीक ठीक अर्थ समझ लेना आवश्यक है। मैं तुम लोगो से तनिक धैर्यपूर्वक सुनने की प्रार्थना करता हूँ, क्योकि मुझे भय है कि कही तुम माया के सिद्धान्त को गलत न समझ बैठो। वैदिक साहित्य मे 'माया' शब्द का प्रयोग कुहक के अर्थ मे ही देखा जाता है। यही माया शब्द का सबसे प्राचीन अर्थ है। किन्तु उस समय यथार्थ मायावाद-तत्त्व का उदय नही हुआ था। हम वेद मे इस प्रकार के वाक्य पाते हैं—**इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ईयते**, अर्थात् इन्द्र ने माया द्वारा नाना रूप धारण किये। यहाँ पर 'माया' शब्द इन्द्रजाल अथवा उसी प्रकार के अर्थ मे व्यवहृत हुआ है। वेद के अनेक स्थलो मे माया शब्द इसी अर्थ मे व्यवहृत देखा जाता है। इसके बाद कुछ समय तक माया शब्द का व्यवहार एकदम लुप्त हो गया। किन्तु इसी बीच उस शब्द द्वारा प्रतिपादित जो अर्थ या भाव था, वह क्रमश परिपुष्ट हो रहा था। बाद मे हम देखते हैं कि एक प्रश्न उठाया गया है, 'हम जगत् के इस रहस्य को क्यो नही जान पाते?' और उसका जो उत्तर दिया गया है, वह बडा ही अर्थगभीर है 'हम सब थोथी बकवास करते हैं, इन्द्रिय-सुख से ही सन्तुष्ट हैं और वासनाओ के पीछे दौडते रहते हैं, इसलिए इस सत्य को हमने मानो कुहरे से ढक रखा है।'[1] यहाँ पर माया शब्द का व्यवहार बिल्कुल नही हुआ है, पर उससे यही भाव प्रकट होता है कि हमारी अज्ञता का कारण कुछ कुहरे जैसा है, जो इस सत्य और हमारे बीच आ गया है। इसके बहुत समय बाद, एक अपेक्षाकृत आधुनिक उपनिषद् मे, माया शब्द पुन दीख पडता है। पर इस बीच उसका रूप काफी बदल चुका है, उसके साथ कई नये अर्थ सयोजित हो गये हैं। नाना प्रकार के मतवादो का प्रचार हुआ, उनकी पुनरुक्ति हुई, और अन्त मे मायाविषयक धारणा ने एक स्थिर रूप

---

१ नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति।।ऋग्वेद।।१०।८२।७।।

प्राप्त कर लिया। हम श्वेताश्वतरोपनिषद् में पढ़ते हैं—मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्—'माया को ही प्रकृति समझो और मायी को महेश्वर जानो।' भगवान् शंकराचार्य के पूर्ववर्ती दार्शनिक पण्डितों ने इस माया शब्द का विभिन्न अर्थों में व्यवहार किया है। बौद्धों ने भी मायावाद का उपयोग किया है। किन्तु बौद्धों के हाथों यह बहुत कुछ विज्ञानवाद (idealism)[1] में परिणत हो गया था और अब माया शब्द का साधारणतः यही अर्थ लिया जाता है। हिन्दू लोग जब कहते हैं कि 'संसार माया है' तो साधारण मनुष्य के मन में यही भाव उदित होता है कि 'संसार एक भ्रम मात्र है'। इस प्रकार की व्याख्या का कुछ आधार है क्योंकि बौद्ध दार्शनिकों की एक श्रेणी के दार्शनिकगण बाह्य जगत् के अस्तित्व में बिल्कुल विश्वास नहीं करते थे। किन्तु वेदान्त में माया का जो अन्तिम निर्दिष्ट स्वरूप है वह न तो विज्ञानवाद है, न यथार्थवाद (realism)[2] और न किसी प्रकार का सिद्धान्त ही। यह तो तथ्यों का सहज वर्णन मात्र है—हम क्या हैं और अपने चारों ओर हम क्या देखते हैं।

मैं तुमसे पहले ही कह चुका हूँ कि जिन पुरुषों के अन्तःकरण से वेद निकले उनकी चिन्तन-शक्ति मूल तत्त्वों के अनुसरण तथा खोज में ही लगी हुई थी। इन तत्त्वों के ब्योरों के अनुशीलन के लिए मानो उन्हें समय ही नहीं मिला और उन्होंने प्रतीक्षा भी नहीं की। वे तो वस्तुओं के अन्तस्तल में पहुँचने के लिए व्यग्र थे। इस जगत् से अतीत की कोई वस्तु मानो उन्हें पुकार रही थी वे मानो और अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकते थे। उपनिषदों में यत्र-तत्र आज जिन्हें हम आधुनिक विज्ञान कहते हैं उन विषयों के ब्योरों का प्रतिपादन बहुधा बड़ा भ्रमात्मक मिलता है, पर तो भी उनके मूल सिद्धांत बिल्कुल सही हैं। उदाहरणार्थ आधुनिक विज्ञान का ईथर अर्थात् आकाशविषयक नवीन सिद्धांत उपनिषदों में आधुनिक वैज्ञानिकों के ईथर-सिद्धांत की अपेक्षा अधिक विकसित रूप में विद्यमान है। किन्तु वह बस मूल सिद्धांत तक ही सीमित रहा। इस आकाश तत्त्व के कार्य की व्याख्या करने में उन्होंने अनेक भूलें कीं। वह सर्वव्यापी प्राण-तत्त्व जगत् के समस्त जीवन जिसकी विविध अभिव्यक्ति मात्र है वेदों में—ब्राह्मण भाग में पाया जाता

---

१ हमारी इन्द्रियों से ग्राह्य सारा जगत् हमारे मन की ही विभिन्न अनुभूति मात्र है उसकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है, इस मत को विज्ञानवाद या idealism कहते हैं।

२ जगत् हमारे मन की अनुभूति मात्र नहीं है, वरन् उसकी यथार्थ सत्ता है इस मत को यथार्थवाद या realism कहते हैं।

है। सहिता के एक लम्बे मत्र मे समस्त जीवनी शक्ति के विकासक प्राण की प्रशसा की गयी है। शायद तुम लोगो मे से कुछ को यह जानकर आनन्द हो कि इस पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे कुछ आधुनिक यूरोपीय वैज्ञानिको के जो सिद्धान्त हैं, बहुत कुछ वैसे ही सिद्धान्त वैदिक दर्शन मे भी पाये जाते हैं। तुम सभी निश्चित ही जानते हो कि जीवन अन्य ग्रहो से सक्रमित होकर पृथ्वी पर आता है, इस प्रकार का एक मत प्रचलित है। कतिपय वैदिक दार्शनिको का यह निश्चित मत है कि जीवन इस प्रकार चन्द्रलोक से पृथ्वी पर आता है।

मूल तत्त्वो के सम्बन्ध मे हम देखते हैं कि वैदिक विचारको ने व्यापक सिद्धातो की व्याख्या करने मे अतिशय साहस और आश्चर्यजनक निर्भीकता का परिचय दिया है। इस विश्व के रहस्य के मर्म को बाह्य जगत् से ढूंढ निकालने के प्रयास मे उन्हें यथासम्भव सतोषजनक उत्तर मिला। मौलिक सिद्धातो के असफल हो जाने के कारण आधुनिक विज्ञान का विशद कार्य भी इस प्रश्न के समाधान को एक पग आगे नही बढा सका है। जब प्राचीन काल मे आकाश तत्त्व विश्व-रहस्य का भेद खोलने मे समर्थ नही हुआ, तब उसका सविस्तर अनुशीलन भी हमे सत्य की ओर कोई अधिक अग्रसर नही करा सकता। यदि यह सर्वव्यापी प्राण-तत्त्व विश्व-रहस्य का भेद खोलने मे असमर्थ रहा हो, तो उसका विस्तृत अनुशीलन निरर्थक है, क्योकि व्योरे मौलिक तत्त्व के सम्बन्ध मे कोई परिवर्तन नही कर सकते। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि तत्त्वानुशीलन मे हिन्दू दार्शनिक आधुनिक विद्वानो की भाँति ही, एव कभी कभी उनसे भी अधिक, साहसी थे। उन्होंने अनेक भव्यतम सिद्धातो का आविष्कार किया और कुछ अब भी परिकल्पनाओ के रूप मे ही विद्यमान हैं, जिन्हें वर्तमान विज्ञान अभी तक परिकल्पना के रूप मे भी प्राप्त नही कर सका है। उदाहरणार्थ, वे केवल आकाश तत्त्व पर पहुँचकर ही नही रुक गये, वरन् और आगे बढकर मन को भी एक सूक्ष्मतर आकाश के रूप मे वर्गीकृत किया। फिर उसके भी परे उन्होने और भी अधिक सूक्ष्म आकाश की प्राप्ति की। पर वह भी समाधान नही था, उससे समस्या का समाधान नही हुआ। बाह्य जगत् के बारे मे कितना भी ज्ञान क्यो न हो जाय, पर उससे रहस्य का भेद नही खुल सकता। किन्तु वैज्ञानिक कहता है, "अरे, हमने अभी ही तो कुछ जानना शुरू किया है। ज़रा कुछ हज़ार वर्ष ठहरो, देखोगे, हमे समाधान मिल जायगा।" किन्तु वेदान्तवादी ने तो नि सन्दिग्ध रूप से मन की ससीमता को प्रमाणित कर दिया है, अतएव वह उत्तर देता है, "नही, सीमा से बाहर जाने की हमारी शक्ति नही। हम देश, काल और निमित्त की चहारदीवारी के बाहर नही जा सकते।" जिस प्रकार कोई भी व्यक्ति अपनी सत्ता को नहीं लाघ सकता, उसी प्रकार देश और काल के नियम ने

जो सीमा खड़ी कर दी है उसका अतिक्रमण करने की क्षमता किसीमें नहीं। देश काल-निमित्त सम्बन्धी रहस्य को खोलने का प्रयत्न ही व्यर्थ है क्योंकि इसकी चेष्टा करते ही इन तीनों की सत्ता स्वीकार करनी होगी। तब भला यह किस प्रकार सम्भव है? और ऐसा होने पर फिर जगत् के अस्तित्ववाद का क्या रूप रहेगा? इस जगत् का अस्तित्व नहीं है' 'जगत् मिथ्या है'—इसका अर्थ क्या है? इसका यही अर्थ है कि उसका निरपेक्ष अस्तित्व नहीं है। मेरे, तुम्हारे और अन्य सबके मन के सम्बन्ध में इसका केवल सापेक्ष अस्तित्व है। हम पाँच इन्द्रियों द्वारा जगत् को जिस रूप में प्रत्यक्ष करते हैं, यदि हमारे एक इन्द्रिय और होती तो हम इसमें और भी कुछ अधिक प्रत्यक्ष करते तथा और अधिक इन्द्रिय सम्पन्न होने पर हम इसे और भी भिन्न रूप में देख पाते। अतएव इसकी यथार्थ सत्ता नहीं है—वह अपरिवर्तनीय अचल अनन्त सत्ता इसकी नहीं है। पर इसको अस्तित्वशून्य या असत् भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह तो वर्तमान है और इसमें तथा इसीके माध्यम से हम कार्य करते हैं। यह सत् और असत् का मिश्रण है।

सूक्ष्म तत्त्वों से लेकर जीवन के साधारण दैनिक स्थूल कार्यों तक पर्यालोचना करने पर हम देखते हैं कि हमारा सम्पूर्ण जीवन सत् और असत् इन दो विरुद्ध भावों का सम्मिश्रण है। ज्ञान के क्षेत्र में भी यह विरुद्ध भाव दिखायी पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य यदि जानना चाहे, तो समस्त ज्ञान प्राप्त कर सकता है पर दो-चार पग चलने के बाद ही उसे एक ऐसा अभेद्य व्यवधान देखने में आता है, जिसको लाँघ जाना उसके वश के बाहर हो जाता है। उसके सभी कार्य एक परिधि के अन्दर घूमते रहते हैं, और वह इस परिधि को कभी लाँघ नहीं सकता। उसके अन्तरतम एवं प्रियतम रहस्य उसे समाधान के लिए दिन-रात उत्तेजित करते रहते हैं उसका आह्वान करते रहते हैं, पर उनका उत्तर देने में वह असमर्थ है क्योंकि वह अपनी बुद्धि की सीमा का उल्लंघन नहीं कर सकता। फिर भी वह इच्छा उसके भीतर गहरी जड़ें जमाये हुए है। और इस उत्तेजना का दमन ही एकमात्र मंगलकर पथ है यह भी हम अच्छी तरह जानते हैं। हमारे हृदय का प्रत्येक स्पन्दन प्रत्येक नि:श्वास के साथ हमें स्वार्थपर होने का आदेश देता है। पर दूसरी ओर, एक परात्परशक्ति कहती है कि एकमात्र नि:स्वार्थता ही शुभ का साधन है। जन्म से ही प्रत्येक बालक आशावादी होता है वह केवल सुनहले स्वप्न देखता है। यौवन में वह और भी अधिक आशावादी हो जाता है। मृत्यु, पराजय अथवा अपमान नाम की भी कोई चीज है यह बात किसी युवक की समझ में आनी कठिन है। फिर बुढ़ापा आता है जीवन एक ध्वंसावशेष मात्र रह जाता है सुनहले स्वप्न हवा में उड़ जाते हैं और मनुष्य निराशावादी हो जाता है। प्रकृति के थपेड़े खाकर हम इस तरह

प्रकार दिशाहीन व्यक्ति की भाँति एक छोर से दूसरे छोर तक दौडते रहते है। इस सम्बन्ध मे मुझे बुद्ध की जीवनी 'ललितविस्तर' का एक प्रसिद्ध गीत याद आता है। वर्णन इस प्रकार है कि बुद्ध ने मनुष्य-जाति के परित्राता के रूप मे जन्म ग्रहण किया, किन्तु जब राजप्रासाद की विलासिता मे वे अपने को भूल गये, तब उनको जगाने के लिए देवदूतो ने एक गीत गाया, जिसका मर्मार्थ इस प्रकार है— 'हम एक प्रवाह मे वहते चले जा रहे हैं, हम अविरत रूप से परिवर्तित हो रहे हैं— कही निवृत्ति नही है, कही विराम नही है।' इसी प्रकार हमारा जीवन भी विराम नही जानता—अविरत चलता ही रहता है। तब फिर उपाय क्या है? जिसके पास खाने-पीने की प्रचुर सामग्री है, वह तो आशावादी हो जाता है, कहता है, "भय उत्पन्न करनेवाली दु ख की बातें मत कहो, ससार के दु ख-कष्ट की बातें मत सुनाओ।" उसके पास जाकर यदि कहो—"सभी शुभ है", तो वह कहेगा, "सचमुच, मैं मज़े मे हूँ, यह देखो, कितनी सुन्दर अट्टालिका मे मैं वास करता हूँ। मुझे भूख या शीत का कोई भय नही। अतएव मेरे सम्मुख ऐसे भयावह चित्र मत लाओ।" पर दूसरी ओर कितने ही लोग ऐसे हैं, जो शीत और अनाहार से मर रहे हैं। उनके पास जाकर यदि कहो कि 'सभी शुभ हैं', तो वे तुम्हारी बात सुनने के नही। वे सारा जीवन दु ख-कष्ट से पिसते आ रहे हैं, उनके लिए सुख, सौन्दर्य और शुभ कहाँ? वे तो कहेंगे, "नही, मैं यह सब विश्वास नही करता। जीवन मे केवल रोना है— केवल दु ख है।" बस, हम इसी प्रकार आशावाद से निराशावाद मे झूलते रहते हैं।

इसके बाद मृत्युरूपी भयावह तथ्य आता है—सारा ससार मृत्यु के मुख मे चला जा रहा है, सभी मरते जा रहे हैं। हमारी उन्नति, हमारे व्यर्थ के आडम्बर-पूर्ण कार्य कलाप, समाज-सस्कार, विलासिता, ऐश्वर्य, ज्ञान—इन सबकी मृत्यु ही एकमात्र गति है। इससे अधिक निश्चित बात और कुछ नही। नगर पर नगर बनते हैं और नष्ट हो जाते हैं। साम्राज्य पर साम्राज्य उठते हैं और पतन के गर्त मे समा जाते हैं, ग्रह आदि चूर चूर होकर विभिन्न ग्रहो की वायु के झोको से इधर-उधर बिखरे जा रहे है। इसी प्रकार अनादि काल से चलता आ रहा है। इस सबका आखिर लक्ष्य क्या है? मृत्यु। मृत्यु ही सबका लक्ष्य है। वह जीवन का लक्ष्य है, सौन्दर्य का लक्ष्य है, ऐश्वर्य का लक्ष्य है, शक्ति का लक्ष्य है, और तो और, धर्म का भी लक्ष्य है। साधु और पापी दोनो मरते हैं, राजा और भिक्षुक, दोनो मरते हैं—सभी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। फिर भी जीवन के प्रति यह विषम आसक्ति विद्यमान है। हम क्यो इस जीवन से आसक्ति करते हैं? क्यो हम इसका परित्याग नही कर पाते? यह हम नही जानते। और यही माया है।

माता बडे यत्न से सन्तान का लालन-पालन करती है। उसका सारा मन-

प्राण सारा जीवन मानो उसी बच्चे में केन्द्रित रहता है। बालक बड़ा हुआ युवावस्था को प्राप्त हुआ और शायद दुश्चरित्र एवं पशुवत् होकर प्रतिदिन अपनी माता को मारने-पीटने लगा किन्तु माता फिर भी पुत्र से चिपकी रहती है। जब उसकी विचार-शक्ति जाग्रत होती है तब वह उसे अपने स्नेह के आवरण में ढक लेती है। किन्तु वह नहीं जानती कि यह स्नेह नहीं है एक अज्ञात शक्ति ने उसके स्नायुओं पर अधिकार कर रखा है। वह इसे दूर नहीं कर सकती। वह कितनी ही चेष्टा क्यों न करे, इस बन्धन को तोड़ नहीं सकती। और यही माया है।

हम सभी कल्पित सुवर्ण लोम[1] की खोज में दौड़ते रहते हैं। सभी सोचते हैं कि वह हमें ही मिलेगा किन्तु उनमें से कितने मनुष्य इस संसार में जीवित हैं? प्रत्येक विचारशील व्यक्ति देखता है कि इस सुवर्ण लोम को प्राप्त करने की उसकी दो करोड़ में एक से अधिक सम्भावना नहीं है तथापि प्रत्येक मनुष्य उसके लिए कठोर संघर्ष करता है। बस यही माया है।

इस संसार में मृत्यु रात-दिन गर्व से मस्तक ऊँचा किये घूम रही है पर हम

---

१ सुवर्ण लोम (Golden Fleece)—ग्रीक पौराणिक साहित्य की कथा है कि ग्रीस के अन्तर्गत थेसाली देश में राजवंश के आथामास की पत्नी नेफ़ेल के गर्भ से फ़्रिक्सस नामक पुत्र और हेल नाम की कन्या ने जन्म लिया। कुछ दिन के बाद नेफ़ेल की मृत्यु होने पर आथामास ने कैडमस की कन्या ईनो के साथ विवाह कर लिया। ईनो का नेफ़ेल की सन्तानों के प्रति विद्वेष रहने के कारण उसने नाना उपायों से अपने पति को देवताओं के लिए फ़्रिक्सस की बलि दे देने के लिए राजी कर लिया। किन्तु बलिदान के पूर्व ही फ़्रिक्सस की स्वर्गीया माता की आत्मा फ़्रिक्सस के सम्मुख आविर्भूत हुई और एक सुवर्ण लोमयुक्त भेड़े को उसके निकट लाकर भाई-बहन को उस पर चढ़कर समुद्र-पार भाग जाने का आदेश देने लगी। मार्ग में उसकी बहन हेल गिरकर डूब गयी—फ़्रिक्सस ने काले समुद्र की पूर्व दिशा में कलचिस नामक स्थान में उतरकर वहाँ के जियस देवता को उस भेड़े की बलि चढ़ा दी और उसकी खाल को मार्स (मंगल) देवता के कुंज में टाँग दिया। एक दैत्य उसकी देख भाल के लिए नियुक्त हुआ। कुछ दिन बाद इस सुवर्ण लोम की खाल को लाने के लिए आथामास का भतीजा जैसन अपने प्रतिद्वन्द्वी पेलियस द्वारा नियुक्त किया गया और वह आर्गो नामक एक बड़े जहाज में अनेक मल्लाह और वीरों सहित बैठकर नाना प्रकार के आपत्तियों को पार करता हुआ उक्त सुवर्ण लोम को लाने में सफल हुआ। ग्रीक पुराणों में यह कथा Argonautic Expedition नाम से विख्यात है।

सोचते हैं कि हम सदा जीवित रहेंगे। किसी समय राजा युधिष्ठिर से यह प्रश्न पूछा गया, "इस पृथ्वी पर सबसे आश्चर्य की बात क्या है?" राजा ने उत्तर दिया, "हमारे चारो ओर प्रतिदिन लोग मर रहे है, फिर भी जो जीवित हैं, वे समझते हैं कि वे कभी मरेंगे ही नही।" बस, यही माया है।

हमारी बुद्धि मे, हमारे ज्ञान मे, यही क्यो, हमारे जीवन की प्रत्येक घटना मे ये विषम विरुद्ध भाव दिखायी पडते हैं। सुख दु ख का पीछा करता है और दु ख सुख का। एक सुधारक उठता है और किसी राष्ट्र के दोषो को दूर करना चाहता है। पर इसके पहले कि वे दोष दूर हो, हजार नये दोष दूसरे स्थान मे उत्पन्न हो जाते है। यह बस एक ढहते हुए पुराने मकान के समान है। तुम उस मकान के एक भाग की मरम्मत करते हो, तो उसका कोई दूसरा भाग ढह जाता है। भारत मे हमारे समाज-सुधारक जीवन भर जबरन वैधव्य-धारण रूपी दोष के विरुद्ध आवाज उठाते हैं और उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं। तो पश्चिमी देशो मे विवाह न होना ही सबसे बडा दोष है। एक ओर अविवाहिताओ का कष्ट दूर करने मे सहायता करनी होगी, तो दूसरी ओर विधवाओ के आँसू पोछने का प्रयत्न करना होगा। यह तो बस पुरानी गठिया की बीमारी के समान है—उसे सिर से भगाओ, तो कमर मे आ जाती है, कमर से भगाओ, तो पैर मे उतर जाती है। सुधार करनेवाले उठते हैं और शिक्षा देते हैं कि विद्या, धन, सस्कृति कुछ इने-गिनो के हाथो ही नही रहनी चाहिए, और वे इनको सर्वसाधारण तक पहुँचा देने का भरसक प्रयत्न करते हैं। हो सकता है, इससे कुछ लोग अधिक सुखी हो जायँ, पर जैसे जैसे ज्ञानानुशीलन बढ़ता जाता है, वैसे वैसे शारीरिक सुख भी कम होने लगता है। सुख का ज्ञान अपने साथ ही दु ख का ज्ञान भी लाता है। तब हम फिर किस मार्ग का अवलम्बन करें? हम लोग जो कुछ थोडा सा सुख भोगते हैं, दूसरे स्थान मे उससे उतने ही परिमाण मे दु ख भी उत्पन्न होता है। बस, यही नियम है—सब वस्तुओ पर यही नियम लागू होता है। जो युवक हैं, जिनका खून अभी गरम है, वे इस बात को शायद स्पष्ट रूप से समझ न पायें, पर जिन्होंने धूप मे बाल पकाये हैं, अपने जीवन मे आँधी और तूफान के दिन देखे है, वे इसे सहज ही समझ लेंगे। बस, यही माया है। दिन-रात ये बातें घट रही हैं, पर इनका ठीक ठीक समाधान करना असम्भव है। ऐसा भला क्यो होता है? इस प्रश्न का उत्तर पाना सम्भव नही, क्योकि प्रश्न ही तर्कसगत नही है। जो बात घट रही है, उसमे न 'कैसे' है, न 'क्यो', हम बस इतना ही जानते हैं कि वह है और हमारा उसमे कोई हाथ नही। यहाँ तक कि उसकी धारणा करना—अपने मन में उसका ठीक ठीक चित्र खीचना भी हमारी शक्ति के बाहर है। तब हम भला उसे कैसे सुलझायें?

अतः इस संसार की गति के तथ्यात्मक वर्णन का नाम माया है। साधारणतया लोग यह बात सुनकर भयभीत हो जाते हैं। हमें साहसी होना पड़ेगा। घटनाओं पर परदा डालना रोग का प्रतिकार नहीं है। कुत्तों से पीछा किये जाने पर जिस प्रकार खरगोश अपने मुँह को टाँगों में छिपाकर अपने को सुरक्षित समझ बैठता है, उसी प्रकार हम लोग भी आशावादी होकर ठीक उस खरगोश के समान आचरण करते हैं। पर यह कोई उपाय नहीं है। दूसरी ओर, सांसारिक जीवन की प्रचुरता सुख और स्वच्छन्दता भोगनेवाले इस मायावाद के सम्बन्ध में बड़ी आपत्तियाँ उठाते हैं। इस देश (इंग्लैण्ड) में निराशावादी होना बहुत कठिन है। सभी मुझसे कहते हैं—संसार का कार्य कितने सुन्दर रूप से चल रहा है, संसार कितना उन्नतिशील है! किन्तु उनका अपना जीवन ही उनका संसार है। एक पुराना प्रश्न उठता है—ईसाई धर्म ही एकमात्र धर्म है। क्यों? इसलिए कि ईसाई धर्म को माननेवाले सभी राष्ट्र समृद्धिशाली हैं। पर इस प्रकार की युक्ति से तो यह सिद्धान्त स्वयं ही भ्रामक सिद्ध हो जाता है क्योंकि अन्य राष्ट्रों का दुर्भाग्य ही तो ईसाई धर्मावलम्बी राष्ट्रों की समृद्धि का कारण है और एक का सौभाग्य बिना दूसरे का खून चूसे नहीं बनता। यदि सारी पृथ्वी ही ईसाई धर्म को मानने लग जाय तब तो फलस्वरूप कोई अ-ईसाई राष्ट्र न रहने के कारण ईसाई राष्ट्र स्वयं दरिद्र हो जायगा। अतः यह युक्ति अपना ही खण्डन कर लेती है। पशु उद्भिज पर जीवित रहते हैं, मनुष्य पशुओं पर, और सबसे खराब बात तो यह है कि मनुष्य एक दूसरे पर जीवित रहते हैं—बलवान दुर्बल पर। बस ऐसा ही सर्वत्र हो रहा है। और यही माया है। इसका समाधान तुम क्या करते हो? हम प्रतिदिन नयी नयी युक्तियाँ सुनते हैं। कोई कोई कहते हैं कि अन्त में सबका कल्याण होगा। मान लो कि हमने यह बात स्वीकार कर ली तो अब प्रश्न यह है कि शुभ की साधना का क्या केवल पैशाचिक उपाय ही है? पैशाचिक रीति को छोड़कर क्या शुभ द्वारा शुभ नहीं हो सकता? वर्तमान मनुष्यों के वंशज सुखी होंगे किन्तु इस समय इस भीषण दुःख-कष्ट का होना क्यों जरूरी है? इसका समाधान नहीं है। यही माया है।

फिर, हम बहुधा सुनते हैं कि अशुभ विकास के क्रम में क्रमशः धीरे धीरे दूर होते जायँगे और संसार से दोष के इस प्रकार क्रमशः दूर हो जाने पर अन्त में केवल शुभ ही शुभ रह जायगा। यह बात सुनने में तो बड़ी अच्छी लगती है। इस संसार में जिनके पास किसी बात का अभाव नहीं जिन्हें रोज एड़ी चोटी का पसीना एक करना नहीं पड़ता जिन्हें क्रमविकास की चक्की में पिसना नहीं पड़ता उन [illegible] को इस प्रकार के सिद्धान्त बढ़ा सकते हैं, और उनके लिए ये सिद्धान्त

सचमुच अत्यन्त हितकर और शान्तिप्रद है। साधारण जनसमूह दुःख-कष्ट भोगे—उससे उनका क्या? वे सब मर भी जायँ—उसके लिए वे क्यो छटपट करे? ठीक है, पर यह युक्ति आदि से अन्त तक भ्रमपूर्ण है। पहले तो, इन लोगो ने विना किसी प्रमाण के ही यह धारणा कर ली है कि ससार मे अभिव्यक्त शुभ और अशुभ, दोनो विल्कुल निरपेक्ष सत्य है। और दूसरे, इससे भी अधिक दोषयुक्त धारणा तो यह है कि शुभ का परिमाण क्रमश बढ़ता जा रहा है और अशुभ क्रमश घटता जा रहा है। अतएव एक समय ऐसा आयेगा, जब अशुभ का अश विकास द्वारा इस प्रकार घटते घटते अन्त मे विल्कुल शून्य हो जायगा और केवल शुभ ही बच रहेगा। ऐसा कहना है तो बडा सरल, पर क्या यह प्रमाणित किया जा सकता है कि अशुभ परिमाण मे घटता जा रहा है? क्या अशुभ की भी क्रमश वृद्धि नही हो रही है? उदाहरणार्थ, एक जगली मनुष्य को ले लो। वह मन का सस्कार करना नही जानता, एक अक्षर तक नही पढ सकता, लिखना किसे कहते हैं, उसने कभी सुना तक नही। यदि उसे कोई गहरी चोट लग जाय, तो वह शीघ्र चगा हो उठता है। पर हम हैं, जो खरोच लगते ही मर जाते हैं। मशीनो से चीज़ें सुलभ और सस्ती होती जा रही हैं, उनसे उन्नति और विकास के मार्ग की बाधाएँ दूर होती जा रही है, पर साथ ही, एक के धनी होने के लिए लाखो लोग पिसे जा रहे हैं—उधर एक के धनी होने के लिए इधर हजारो लोग दरिद्र से दरिद्रतर होते जा रहे हैं, और असख्य मानव-समूह क्रीतदास बनाया जा रहा है। जगत् की रीति ही ऐसी है। पाशवी प्रकृतिवाले मनुष्य का सुख-भोग इन्द्रियो मे आबद्ध रहता है, उसके सुख और दुःख इन्द्रियो मे ही रहते हैं। यदि उसे पर्याप्त भोजन न मिले, तो वह दुःखी हो जाता है। यदि उसका शरीर अस्वस्थ हो जाय, तो वह अपने को अभागा समझता है। इन्द्रियो मे ही उसके सुख और दुःख दोनो का आरम्भ और अन्त होता है। जैसे जैसे वह उन्नति करता जाता है, जैसे जैसे उसके सुख की सीमा-रेखा विस्तृत होती जाती है, वैसे वैसे उसका दुःख भी, उसी परिमाण मे, बढता जाता है। जगल मे रहनेवाला मनुष्य ईर्ष्या के वश मे होना नही जानता, वह नही जानता कि कचहरी मे जाना, नियमित रूप से कर अदा करना, समाज द्वारा निन्दित होना, पैशाचिक मानव-प्रकृति से उत्पन्न भीषण अत्याचार से अहर्निश शासित होना, जो एक दूसरे के हृदय के गुप्त से गुप्त भावो का अन्वेषण करने मे लगा हुआ है, वह नही जानता। वह नही जानता कि भ्रान्त ज्ञान से सम्पन्न, गर्वीला मानव किस प्रकार पशु से भी सहस्र गुना पैशाचिक स्वभाव-वाला हो जाता है। बस, इसी प्रकार हम ज्यो ज्यो इन्द्रियपरायणता से ऊपर उठते जाते है, त्यो त्यो हमारी सुख अनुभव करने की शक्ति बढ़ती जाती है, और

उसके साथ ही दुःख अनुभव करने की शक्ति भी बढ़ती रहती है। नाड़ियाँ और भी सूक्ष्म होकर अधिक यन्त्रणा के अनुभव में समर्थ हो जाती हैं। सभी समाजों में हम देखते हैं कि एक साधारण मूर्ख मनुष्य तिरस्कृत होने पर उतना दुःखी नहीं होता, पर पिट जाने पर अवश्य दुःखी हो जाता है। किन्तु सभ्य पुरुष एक साधारण सी बात भी सहन नहीं कर सकता, उसकी नाड़ियाँ इतनी सूक्ष्म हो गयी हैं। उसकी सुख प्रवणता बढ़ जाने के कारण उसका दुःख भी बढ़ गया है। इससे तो दार्शनिकों के क्रमविकासवाद की कोई पुष्टि नहीं होती। हम अपनी सुखी होने की शक्ति को जितना ही बढ़ाते हैं, हमारी दुःख-भोग की शक्ति भी उसी परिमाण में बढ़ जाती है। मेरा तो विनीत मत यह है कि हमारी सुखी होने की शक्ति यदि 'गणितीय क्रम' (arithmetical progression) के नियम से बढ़ती है, तो दुःखी होने की शक्ति 'ज्यामितीय क्रम' (geometrical progression)[1] के नियम से बढ़ेगी। जंगली मनुष्य समाज के सम्बन्ध में अधिक नहीं जानता। किन्तु हम उन्नतिशील लोग जानते हैं कि हम जितने ही उन्नत होंगे, हमारे सुख और दुःख की तीव्रता और भी अधिक बढ़ती जायेगी। और यही माया है।

अतएव हम देखते हैं कि माया विश्व की व्याख्या करने के निमित्त कोई सिद्धांत नहीं है। वह संसार की वस्तु-स्थिति का वर्णन मात्र है—विरुद्ध भाव ही हमारे अस्तित्व की भित्ति है, सर्वत्र इन्हीं भयानक विरुद्ध भावों में से होकर हम जा रहे हैं। जहाँ शुभ है, वहीं अशुभ भी है और जहाँ अशुभ है, वहीं अवश्य शुभ है। जहाँ जीवन है, वहीं मृत्यु छाया की भाँति उसका अनुसरण कर रही है। जो हँस रहा है, उसीको रोना पड़ेगा, और जो रो रहा है, वह भी हँसेगा। यह क्रम बदल नहीं सकता। हम भले ही ऐसे स्थान की कल्पना करें, जहाँ केवल शुभ रहेगा, अशुभ नहीं, जहाँ हम केवल हँसेंगे, रोयेंगे नहीं—पर जब ये सब कारण समान रूप से सर्वत्र विद्यमान हैं, तो इस प्रकार होना स्वभावतः असम्भव है। जहाँ हमें हँसाने की शक्ति विद्यमान है, वहीं फिर रुलाने की भी शक्ति निहित है। जहाँ सुख उत्पन्न करनेवाली शक्ति विद्यमान है, दुःख देनेवाली शक्ति भी वहीं छिपी हुई है।

अतएव वेदान्त दर्शन आशावादी भी नहीं है और निराशावादी भी नहीं। वह तो दोनों ही वादों का प्रचार करता है, सारी घटनाएँ जिस रूप में होती हैं, उन्हें वह उसी रूप में ग्रहण करता है, अर्थात् उसके मत में यह संसार शुभ

---

१ 'गणितीय क्रम' जैसे १।५।७। इत्यादि; यहाँ पर प्रत्येक परवर्ती अंक अपने पूर्ववर्ती अंक से दो दो अधिक है। 'ज्यामितीय क्रम' जैसे ३।६।१२।२४ इत्यादि; यहाँ पर प्रत्येक परवर्ती अंक अपने पूर्ववर्ती अंक का दुगुना है। स

और अशुभ, सुख और दु ख का मिश्रण है, एक को बढाओ, तो दूसरा भी साथ साथ बढेगा। केवल सुख का ससार अथवा केवल दु ख का ससार हो नही सकता। इस प्रकार की धारणा ही स्वत विरोधी है। किन्तु इस प्रकार का मत व्यक्त करके और इस विश्लेषण के द्वारा वेदान्त ने इस महान् रहस्य का भेद किया है कि शुभ और अशुभ, ये दो एकदम विभिन्न, पृथक् सत्ताएँ नही हैं। इस ससार मे ऐसी कोई भी वस्तु नही, जिसे एकदम शुभ या एकदम अशुभ कहा जा सके। एक ही घटना, जो आज शुभजनक मालूम पडती है, कल अशुभजनक मालूम पड सकती है। एक ही वस्तु, जो एक व्यक्ति को दु खी करती है, दूसरे को सुखी बना सकती है। जो अग्नि बच्चे को जला देती है, वही भूख से मरते व्यक्ति के लिए स्वादिष्ट खाना भी पका सकती है। जिस स्नायुमण्डल के द्वारा दु ख का सवेदन हमारे अन्दर पहुँचता है, सुख का सवेदन भी उसीके द्वारा भीतर जाता है। अशुभ को दूर करना चाहो, तो साथ ही तुम्हे शुभ को भी दूर करना होगा। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नही है। मृत्यु को दूर करने के लिए जीवन को भी दूर करना पडेगा। मृत्युहीन जीवन और दु खहीन सुख, ये बातें परस्पर विरोधी हैं, इनमे कोई सत्य नही है, क्योकि दोनो एक ही वस्तु की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। कल जो शुभप्रद लगता था, आज वह वैसा नही लगता। जब हम बीते जीवन पर नज़र डालते हैं और भिन्न भिन्न समय के अपने आदर्शों की आलोचना करते हैं, तो इस बात की सत्यता हमे तुरन्त दीख पडती है। एक समय था, जब शक्तिशाली घोडो के जोडे हाँकना ही मेरा आदर्श था। अब वैसी भावना नही होती। बचपन मे सोचता था कि यदि मैं अमुक मिठाई बना सकूं, तो मैं पूर्ण सुखी होऊँगा। कभी सोचता था, स्त्री-पुत्र और धन-धान्य से भरा घर होने से मैं सुखी होऊँगा। अब लडकपन की ये सब निरर्थक बातें सोचकर हँसी आती है।

वेदान्त कहता है कि एक समय ऐसा अवश्य आयेगा, जब हम पीछे नज़र डालेंगे और उन आदर्शों पर हँसेंगे, जिनके कारण अपने इस क्षुद्र व्यक्तित्व का त्याग करते हममे भय का सचार होता है। सभी अपनी अपनी देह की रक्षा करने मे व्यस्त हैं। कोई भी उसे छोडना नही चाहता। हम सोचते हैं कि इस देह की यथेच्छ समय तक रक्षा कर लेने से हम अत्यन्त सुखी होंगे, पर समय आने पर हम इस बात पर भी हँसेंगे। अतएव, यदि हमारी वर्तमान अवस्था सत् भी न हो और असत् भी नही—पर दोनो का सम्मिश्रण हो, दु ख भी न हो और सुख भी नही—पर दोनो का सम्मिश्रण हो, अर्थात् हम यदि ऐसे निराशाजनक अन्तर्विरोध की स्थिति मे हों, तो फिर वेदान्त तथा अन्यान्य दर्शनशास्त्र और धर्म-मत आदि की क्या आवश्यकता है? और सर्वोपरि, शुभ कर्म आदि करने

का भी भला क्या प्रयोजन है? यही प्रश्न मन में उठता है, क्योंकि लोग यही पूछेंगे कि यदि शुभ कर्म करने पर भी अशुभ रहता ही हो और सुख उत्पन्न करने का प्रयत्न करने पर भी घोर दुःख बना ही रहता हो तो फिर इस प्रकार के प्रयत्न की आवश्यकता ही क्या? तो इसका उत्तर यह है कि पहले तो हमें दुःख को कम करने के लिए कर्म करना ही चाहिए, क्योंकि स्वयं सुखी होने का यही एकमात्र उपाय है। हममें से प्रत्येक अपने अपने जीवन में देर-सबेर इस बात की यथार्थता समझ लेते हैं। तीक्ष्ण बुद्धिवाले कुछ शीघ्र समझ जाते हैं और मन्द बुद्धिवाले कुछ देरी से। मन्द बुद्धिवाले कड़ी यातना भोगने के बाद इसे समझ पाते हैं, तो तीक्ष्ण बुद्धिवाले थोड़ी ही यातना भोगने के बाद। और दूसरे, यद्यपि हम जानते हैं कि ऐसा समय कभी न आयेगा जब यह जगत् केवल सुख से भरा रहेगा और दुःख बिल्कुल न रहेगा फिर भी हमें यही कार्य करना होगा। अन्तर्निरोध से बचने के लिए यही एकमात्र उपाय है। ये दोनों शक्तियाँ—शुभ एवं अशुभ जगत् को जीवित रखेंगी और अन्त में एक दिन ऐसा आयेगा जब हम स्वप्न से जाग जायेंगे और यह सब मिट्टी के घरौंदे बनाना बन्द कर देंगे। सचमुच हम चिरकाल से घरौंदे बनाने में ही लगे हुए हैं। हमें यह शिक्षा लेनी ही होगी और इसके लिए समय भी बहुत लग जायगा।

जर्मनी में इस भित्ति पर कि—असीम ससीम हो गया है—दर्शनशास्त्र रचने की चेष्टा की गयी है। इंग्लैण्ड में अब भी इस प्रकार की चेष्टा चल रही है। पर इन सब दार्शनिकों के मत का विश्लेषण करने पर यही पाया जाता है कि असीम अपने को जगत् में व्यक्त करने की चेष्टा कर रहा है और एक समय आयेगा जब वह ऐसा करने में सफल हो जायगा। बहुत ठीक है और हमने असीम' 'विकास' 'अभिव्यक्ति' आदि दार्शनिक शब्दों का भी प्रयोग किया। किन्तु ससीम किस प्रकार असीम को पूर्ण रूप से व्यक्त कर सकता है इस सिद्धान्त की न्यायसंगत मूल भित्ति क्या है, यह प्रश्न दार्शनिक गण स्वभावतः ही पूछ सकते हैं। निरपेक्ष और असीम सत्ता सोपाधिक होकर ही इस जगद्रूप में प्रकाशित हो सकती है। जो कुछ इन्द्रिय मन और बुद्धि के माध्यम से आयेगा उसे स्वतः ही सीमाबद्ध होना पड़ेगा अतएव ससीम का असीम होना नितान्त असम्भव है, ऐसा हो नहीं सकता। दूसरी ओर, वेदान्त कहता है, यह ठीक है कि निरपेक्ष या असीम सत्ता अपने को ससीम रूप में व्यक्त करने की चेष्टा कर रही है, किन्तु एक समय ऐसा आयेगा जब इस प्रयत्न को असम्भव जानकर उसे पीछे लौटना पड़ेगा। यह पीछे लौटना ही धर्म का यथार्थ आरम्भ है जिसका अर्थ है वैराग्य। आधुनिक मनुष्य से वैराग्य की बात कहना अत्यन्त कठिन है। अमेरिका में मेरे बारे में लोग कहते

थे कि मैं पाँच हज़ार वर्ष तक मृत और विस्मृत एक देश से आकर वैराग्य का उपदेश दे रहा हूँ। इग्लैण्ड के दार्शनिक भी शायद ऐसा ही कहे। पर यह भी सत्य है कि धर्म का एकमात्र पथ यही है। त्याग दो और विरक्त बनो। ईसा ने क्या कहा है? 'जो मेरे निमित्त अपने जीवन का त्याग करेगा, वही जीवन को प्राप्त करेगा।' बार बार पूर्णता की प्राप्ति के लिए त्याग ही एकमात्र साधन है, इसकी शिक्षा उन्होने बारबार दी है। ऐसा समय आता है, जब अन्तरात्मा इस लम्बे विषादमय स्वप्न से जाग उठती है, बच्चा खेल-कूद छोडकर अपनी माता के निकट लौट जाने को अधीर हो उठता है। तब इस उक्ति की यथार्थता सिद्ध होती है—

न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

—'काम्य वस्तु के उपभोग से कभी वासना की निवृत्ति नही होती, वरन् घृताहुति के द्वारा अग्नि के समान वह तो और भी बढ जाती है।'

इस प्रकार, इन्द्रिय-विलास, बौद्धिक आनन्द, मानवात्मा का उपभोग्य सब प्रकार का सुख—सभी मिथ्या है—सभी माया के अधीन है। सभी इस ससार के बन्धन के अन्तर्गत है, हम उसका अतिक्रमण नही कर सकते। हम उसके अन्दर भले ही अनन्त काल तक दौडते फिरें, पर उसका अन्त नही पा सकते, और जब कभी हम थोडा सा सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, तभी दु ख का ढेर हमारे सिर पर आ गिरता है। कितनी भयानक अवस्था है यह! जब मैं इस पर विचार करता हूँ, तो मैं निस्सन्दिग्ध रूप से यह अनुभव करता हूँ कि यह मायावाद, यह कथन कि सब कुछ माया है, इसकी एकमात्र ठीक ठीक व्याख्या है। इस ससार मे कितना दु ख है! यदि तुम विभिन्न देशो मे भ्रमण करो, तो तुम समझ सकोगे कि एक राष्ट्र अपने दोषो को एक उपाय के द्वारा दूर करने की चेष्टा कर रहा है, तो दूसरा राष्ट्र किसी अन्य उपाय द्वारा। एक ही दोष को विभिन्न राष्ट्रो ने विभिन्न उपायो से दूर करने का प्रयत्न किया है, पर कोई भी कृतकार्य न हो सका। यदि किसी स्थान पर दोष कुछ कम हो भी गया, तो किसी दूसरे स्थान पर दोषो का एक ढेर खडा हो जाता है। बस, ऐसा ही चलता रहता है। हिन्दुओ ने अपने जातीय जीवन मे सतीत्व धर्म को पुष्ट करने के लिए बाल-विवाह के प्रचलन द्वारा अपनी सन्तान को, और धीरे धीरे सारी जाति को, अधोगामी कर दिया है। पर यह बात भी मैं अस्वीकार नहीं कर सकता कि बाल-विवाह ने हिन्दू जाति को सतीत्व-धर्म से विभूपित किया है। तुम क्या चाहते हो? यदि जाति को सतीत्व-धर्म से थोडा-बहुत विभूषित करना चाहो, तो इस भयानक बाल-विवाह द्वारा सारे स्त्री-

पुरुषों को शारीरिक दृष्टि से दुर्बल करना पड़ेगा। दूसरी ओर, क्या तुम्हारी स्थिति इसलिए में कुछ भी अच्छी है? नहीं क्योंकि सतीत्व ही तो जाति की जीवनी शक्ति है। क्या तुमने इतिहास में नहीं पढ़ा है कि देश की मृत्यु का चिह्न असतीत्व के भीतर से होकर आया है—जब यह किसी जाति में प्रवेश कर जाता है तो समझना कि उसका विनाश निकट आ गया है। इन सब दुःखजनक प्रश्नों की मीमांसा कहाँ मिलेगी? यदि माता-पिता अपनी सन्तान के लिए वर-वधू का निर्वाचन करें, तो यह दोष कम हो सकता है। भारत की बेटियाँ भावुक होने की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक होती हैं। किन्तु उनके जीवन में फिर कविता बहुत कम रह जाती है। पर यदि लोग स्वयं पति और पत्नी का निर्वाचन करते हैं तो इससे भी उन्हें कोई अधिक सुख नहीं मिलता। भारतीय नारियाँ अधिक सुखी हैं। स्त्री और स्वामी के बीच कलह अधिकतर नहीं होता। दूसरी ओर, अमेरिका में जहाँ स्वाधीनता की अधिकता है, सुखी परिवार बहुत कम देखने में आते हैं। दुःख यहाँ वहाँ सभी जगह है। इससे क्या सिद्ध होता है? यही कि इन सब आदर्शों के द्वारा अधिक सुख प्राप्त नहीं हो सका। हम सभी सुख के लिए उत्कट संघर्ष कर रहे हैं पर एक ओर कुछ प्राप्त होने के पहले ही दूसरी ओर दुःख आ उपस्थित होता है।

तब क्या हम कोई शुभ कर्म न करें? अवश्य करें, और पहले की अपेक्षा अधिक उत्साहित होकर हम ऐसा करें। इन बातों के ज्ञान से इतना होगा कि हमारी धर्मान्धता कट्टरता नष्ट हो जायगी। तब अंग्रेज लोग उत्तेजित होकर 'ओह पैशाचिक हिन्दू! नारियों के प्रति कैसा दुर्व्यवहार करता है!'—ऐसा कहते हुए हिन्दू की ओर अंगुली नहीं उठायेंगे। तब वे विभिन्न देशों के रीति-रिवाजों का आदर करना सीखेंगे। धर्मान्धता कम होगी कार्य अधिक होगा। धर्मान्ध अधिक कार्य नहीं कर पाता। वह अपनी शक्ति का तीन चौथाई व्यर्थ ही नष्ट कर देता है। जो धीर, प्रशान्तचित्त 'काम के आदमी' कहे जाते हैं, वे ही कर्म करते हैं। थोथी बकवास करनेवाला धर्मान्ध व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता। अतएव यह जान लेने से कि वस्तु-स्थिति ऐसी ही है, हमारी तितिक्षा अधिक होगी। दुःख और अशुभ के दृश्य हमें साम्यभाव से च्युत न कर सकेंगे और छाया के पीछे पीछे दौड़ा न सकेंगे। अतएव यह जानकर कि संसार की गति ही ऐसी है हम धैर्यशाली बनेंगे। उदाहरणस्वरूप हम कह सकते हैं कि सभी मनुष्य दोषशून्य हो जायँगे पशु भी क्रमशः मनुष्यत्व प्राप्त कर इन्हीं अवस्थाओं में से होकर गुजरेंगे और वनस्पतियों की भी यही दशा होगी। पर यह एक बात निश्चित है—यह महती नदी प्रबल वेग से समुद्र की ओर बह रही है तृण पत्ते आदि सब इसके

स्रोत मे वहे जा रहे हैं और सम्भवत विपरीत दिशा मे वहने की चेष्टा कर रहे है, किन्तु ऐसा समय आयेगा, जव प्रत्येक वस्तु उस अनन्त सागर के वक्ष स्थल मे समा जायगी। अतएव यह निश्चित है कि जीवन सारे दु ख और क्लेश, आनन्द, हास्य और क्रन्दन के साथ उस अनन्त सागर की ओर प्रवल वेग से प्रवाहित हो रहा है, और यह केवल समय का प्रश्न है, जव तुम, मैं, जीव, उद्भिद् और सामान्य जीवाणु कण तक, जो जहाँ पर है, सव कुछ उसी अनन्त जीवन-समुद्र मे—मुक्ति और ईश्वर मे आ पहुँचेगा।

मैं एक वार फिर कहता हूँ कि वेदान्त का दृष्टिकोण न तो आशावादी है और न निराशावादी ही। वह ऐसा नही कहता कि ससार केवल शुभ ही शुभ है अथवा केवल अशुभ ही अशुभ। वह कहता है कि हमारे शुभ और अशुभ, दोनो का मूल्य वरावर है। ये दोनो इसी प्रकार हिल-मिलकर रहते हैं। ससार ऐसा ही है, यह समझकर तुम धैर्यपूर्वक कर्म करो। पर क्यो? क्यो हम कर्म करें? यदि घटना-चक्र ही इस प्रकार का हो, तो हम क्या करें? हम अज्ञेयवादी क्यो न हो जायँ? आजकल के अज्ञेयवादी भी तो कहते हैं कि इस समस्या का कोई समाधान नही है, वेदान्त की भाषा मे कहेगे कि इस मायापाश से छुटकारा नही है। अतएव सन्तुष्ट रहो और सवका उपभोग करो। पर यहाँ भी एक अत्यन्त असगत और महान् भ्रम है। और वह यह है। तुम जिस जीवन से चारो ओर से घिरे हुए हो, उस जीवन के विषय मे तुम्हारा ज्ञान किस प्रकार का है? क्या 'जीवन' शब्द से तुम केवल पाँच इन्द्रियो मे आवद्ध जीवन को ही लेते हो? यदि ऐसा हो, तो हम पशुओ से कोई अधिक भिन्न नही है। किन्तु मुझे विश्वास है कि यहाँ वैठे हुए लोगो मे से एक भी ऐसा नही है, जिसका जीवन सम्पूर्ण रूप से केवल इन्द्रियो मे आवद्ध हो। अतएव हमारे वर्तमान जीवन का अर्थ इन्द्रियो की अपेक्षा और भी कुछ अधिक है। सुख-दु ख अनुभव करानेवाली हमारी मनोवृत्ति और हमारे विचार भी तो हमारे जीवन के अगस्वरूप हैं। और उस महान् आदर्श, उस पूर्णता की ओर अग्रसर होने की कठोर चेष्टा भी क्या हमारे जीवन का उपादान नही है? अज्ञेयवादी कहते हैं कि जीवन जैसा है, वस, वैसा ही उसका भोग करो। पर जीवन कहने से सर्वोपरि इस आदर्श के अन्वेषण की, इस पूर्णता की ओर अग्रसर होने की कठोर चेष्टा का वोध होता है। हमे इसीको प्राप्त करना होगा। अतएव हम अज्ञेयवादी नही हो सकते और अज्ञेयवादी के ससार को नही अपना सकते। अज्ञेयवादी तो जीवन के आदर्शात्मक उपादान को छोडकर अवशिष्ट अश को ही सर्वस्व मानते हैं। वे इस आदर्श को ज्ञान का अगोचर समझकर इसका अन्वेषण त्याग देते हैं। वस, इस प्रकृति, इस जगत् को ही माया कहते हैं।

सभी धर्म इसी प्रकृति के बन्धन को तोड़ने की अस्वाभाविक चेष्टा कर रहे हैं। चाहे देवोपासना द्वारा हो, चाहे प्रतीकोपासना द्वारा, चाहे दार्शनिक विचारों द्वारा हो, अथवा देव-चरित्र, प्रेत-चरित्र, साधु-चरित्र, ऋषि-चरित्र, महात्मा-चरित्र अथवा अवतार-चरित्र की सहायता से अनुष्ठित हो, सभी धर्मों का, चाहे वे विकसित हों, चाहे अविकसित, उद्देश्य एक ही है—सभी सीमाओं के परे जाना। संक्षेप में, सभी धर्म स्वाधीनता की ओर अग्रसर होने का कठोर प्रयत्न कर रहे हैं। जाने या अनजाने मनुष्य समझ गया है कि वह बद्ध है। वह जो कुछ होने की इच्छा करता है, सो नहीं है। जिस क्षण से उसने अपने चारों ओर दृष्टि फेरी, उसी क्षण से उसे यह ज्ञान हो गया। उसी क्षण से उसे अनुभव हो गया कि वह बन्दी है। उसने यह भी जाना कि इस सीमा से जकड़ा हुआ कोई मानो उसके अन्दर में विद्यमान है, जो देह का भी अगम्य स्थान में उड़ जाना चाहता है। संसार के उन निम्नतम धर्मों में भी, जहाँ दुर्दान्त, नृशंस आत्मीयों के घरों में छिप-छिपकर फिरनेवाले हत्या और सुराप्रिय मृत पितरों या अन्य भूत-प्रेतों की पूजा की जाती है, हम स्वाधीनता का यह भाव पाते हैं। जो छोटे देवताओं की उपासना करते हैं, वे उन देवताओं को अपनी अपेक्षा अधिक स्वाधीन देखते हैं। उनका ऐसा विश्वास रहता है कि द्वार बन्द होने पर भी देवता कोष घर की दीवारों को भेदकर आ सकते हैं, दीवारें उनके मार्ग में बाधा नहीं डाल सकतीं। स्वाधीनता का यह भाव क्रमशः बढ़ते बढ़ते अन्त में सगुण ईश्वर के आदर्श में परिणत हो जाता है। इस आदर्श का केन्द्रीय भाव यह है कि ईश्वर माया से अतीत है। मैं मानो अपने मनश्चक्षु के सामने भारत के उन प्राचीन आचार्यों को अरण्यस्थित आश्रम में इन्हीं सब प्रश्नों पर विचार करते देख रहा हूँ और सुन रहा हूँ, उनके स्वर, बड़े बड़े वयोवृद्ध पवित्र महर्षिगण भी इन प्रश्नों का समाधान करने में असमर्थ हो रहे हैं, पर एक युवक उनके बीच खड़ा हो घोषणा करता है—हे दिव्यधामवासी अमृत के पुत्रगण! सुनो, मुझे मार्ग मिल गया है। जो अन्धकार या अज्ञान से अतीत है, उसे जान लेने पर अन्धकार के बाहर जाने का मार्ग मिल जाता है।

यह माया हमें चारों ओर से घेरे हुए है और यह अति भयंकर है। फिर भी हमें माया में से होकर ही कार्य करना पड़ता है। जो कहता है, 'संसार को पूर्ण

---

१ शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः।
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥
—श्वेताश्वतरोपनिषद् ॥२।५। ३।८॥

शुभमय हो जाने दो, तब मैं कार्य करूँगा और आनन्द भोगूँगा", तो उसकी वात उसी व्यक्ति की तरह है, जो गगातट पर वैठकर कहता है कि जब इसका सारा पानी समुद्र मे पहुँच जायगा, तब मैं इसके पार जाऊँगा। दोनो वातें असम्भव हैं। रास्ता माया के साथ नही है, वह तो माया के विरुद्ध है—यह वात भी हमे जान लेनी होगी। हम प्रकृति के सहायक होकर नही जन्मे है, वरन् हम तो प्रकृति के विरोधी होकर जन्मे हैं। हम वाँधनेवाले होकर भी स्वय वँधे जा रहे हैं। यह मकान कहाँ से आया ? प्रकृति ने तो दिया नही। प्रकृति कहती है, 'जाओ, जगल मे जाकर वसो।' मनुष्य कहता है, 'नही, मैं मकान वनाऊँगा और प्रकृति के साथ युद्ध करूँगा।' और वह ऐसा कर भी रहा है। मानव जाति का इतिहास प्राकृतिक नियमो के साथ उसके युद्ध का इतिहास है और अन्त मे मनुष्य ही प्रकृति पर विजय प्राप्त करता है। अन्तर्जगत् मे आकर देखो, वहाँ भी यही युद्ध चल रहा है—पशु-मानव और आध्यात्मिक मानव का, प्रकाश और अन्धकार का यह सग्राम निरन्तर जारी है। मानव यहाँ भी जीत रहा है। मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रकृति के वन्धन को चीरकर मनुष्य अपने गन्तव्य मार्ग को प्राप्त कर लेता है।

हमने अभी तक देखा कि वेदान्ती दार्शनिको ने इस माया के परे ऐसी किसी वस्तु को जान लिया है, जो माया के अधीन नही है, और यदि हम उसके पास पहुँच सकें, तो हम भी माया से बँध नही जायँगे। किसी न किसी रूप मे यह भाव सभी धर्मों की सामान्य सम्पत्ति है। किन्तु वेदान्त के मत मे यह धर्म का केवल प्रारम्भ है, अन्त नही। जो विश्व की सृष्टि तथा पालन करनेवाले हैं, जो मायाधिष्ठित हैं, जिन्हें माया या प्रकृति का कर्ता कहा जाता है, उन सगुण ईश्वर का ज्ञान ही वेदान्त का अन्त नही है, केवल आदि है। यह ज्ञान क्रमश वढता जाता है और अन्त मे वेदान्ती देखता है कि जिसे वह वाहर खडा हुआ समझता था, वह उसके अन्दर ही है और वह स्वय वस्तुत वही है। जिसने अपने को अध्यास के कारण बद्ध समझ रखा था, वह वास्तव मे वही मुक्तस्वरूप है।

# माया और ईश्वर धारणा का क्रमविकास

## (२० अक्तूबर, १८९६ को लन्दन में दिया हुआ व्याख्यान)

हमने देखा कि अद्वैत वेदान्त का एक आधारिक सिद्धान्त मायावाद बीज रूप से संहिताओं में भी मिलता है और जिन विचारों का विकास उपनिषदों में हुआ है, वे किसी न किसी रूप में संहिताओं में विद्यमान हैं। तुममें से बहुत से लोग अब माया की धारणा से परिचित हो गये होंगे और यह भी जान गये होंगे कि प्रायः लोग भ्रान्तिवश माया को 'भ्रम' कहकर उसकी व्याख्या करते हैं। अतएव जब जगत् को माया कहते हैं, तब उसे भी भ्रम ही कहकर उसकी व्याख्या करनी पड़ती है। किन्तु माया को 'भ्रम' के अर्थ में लेना ठीक नहीं। माया कोई विशेष सिद्धान्त नहीं है, यह तो यह संसार जैसा है, केवल उसीका तथ्यात्मक कथन है। इस माया को समझने के लिए हमें संहिताओं तक जाना होगा और उसके मूल बीज का अर्थ समझना होगा।

हम यह देख चुके हैं कि लोगों में देवताओं का ज्ञान किस प्रकार आया। हमें समझना होगा कि ये देवता पहले केवल शक्तिशाली सत्ताएँ मात्र थे। तुम लोगों में से अनेक ग्रीक, हिब्रू, पारसी अथवा अन्य जातियों के प्राचीन शास्त्रों में यह पढ़कर भयभीत हो जाते हों कि देवता लोग कभी कभी ऐसा कार्य करते थे जो हमारी दृष्टि में अत्यन्त घृणित है। पर हम यह भूल जाते हैं कि हम लोग उन्नीसवीं शताब्दी के हैं और देवतागण सहस्रों वर्ष पहले के जीव थे और हम यह भी भूल जाते हैं कि इन सब देवताओं के उपासक लोग उनके चरित्र में कुछ भी असंगत बात नहीं देख पाते थे और वे जिस ढंग से अपने उन देवताओं का वर्णन करते थे उससे उन्हें कुछ भी भय नहीं होता था क्योंकि वे सब देवता उन्हींके अनुरूप थे। हम लोगों को आजीवन यह बात सीखनी होगी कि प्रत्येक व्यक्ति की परख उसके अपने आदर्शों के अनुसार करनी चाहिए, दूसरों के आदर्शों के अनुसार नहीं। ऐसा न करके हम दूसरों को अपने आदर्शों की दृष्टि से देखते हैं। यह ठीक नहीं। अपने आसपास रहनेवाले लोगों के साथ व्यवहार करते समय हम सदा यही भूल करते हैं, और मेरे मतानुसार, दूसरों के साथ हमारी जो कुछ भी अनबन हो जाती है, वह अधिकतर इसी एक कारण से होती है कि

हम दूसरो के देवता को अपने देवता के द्वारा, दूसरो के आदर्शों को अपने आदर्शों के द्वारा और दूसरो के उद्देश्य को अपने उद्देश्य के द्वारा परखने की चेष्टा करते हैं। कुछ विशेष परिस्थितियो से वाध्य हो, मान लो, मैंने कोई एक विशेष कार्य किया, और जब मैं देखता हूँ कि एक दूसरा व्यक्ति वही कार्य कर रहा है, तो मैं सोच लेता हूँ कि उसका भी वही उद्देश्य है, मेरे मन मे यह बात एक बार भी नही उठती कि यद्यपि फल एक हो सकता है, तथापि उस एक फल के उत्पन्न करनेवाले भिन्न भिन्न सहस्रो कारण हो सकते हैं। मैं जिस हेतु से उस कार्य को करने मे प्रवृत्त होता हूँ, अन्य सब लोग उसी कार्य को अन्य हेतुओ से कर सकते हैं। अतएव इन सभी प्राचीन धर्मों पर विचार करते समय हम सामान्यतया जिस तरह दूसरो के सम्बन्ध मे विचार करते हैं, वैसा न करके अपने को प्राचीन काल के लोगो के जीवन और विचार की स्थिति मे रखकर विचार करना चाहिए।

प्राचीन व्यवस्थान (Old Testament) मे क्रूर और निष्ठुर जिहोवा के वर्णन से बहुत से लोग भयभीत हो उठते हैं, पर क्यो? लोगो को यह कल्पना करने का क्या अधिकार है कि प्राचीन यहूदियो का जिहोवा आधुनिक रूढिगत कल्पना के ईश्वर के समान होगा? और हमे यह भी न भूलना चाहिए कि हमारे बाद जो लोग आयेंगे, वे उसी तरह हमारे धर्म और ईश्वर की धारणा पर हँसेंगे, जिस तरह हम प्राचीन लोगो के धर्म एव ईश्वर की धारणा पर हँसते हैं। यह सब होने पर भी, इन सब विभिन्न ईश्वर सम्बन्धी धारणाओ का सयोग करनेवाला एक स्वर्ण सूत्र है, और वेदान्त का उद्देश्य है—इस सूत्र की खोज करना। भगवान् कृष्ण ने कहा है—"भिन्न भिन्न मणियाँ जिस प्रकार एक सूत्र मे पिरोयी हुई रहती हैं, उसी प्रकार इन सब विभिन्न भावो के भीतर भी एक सूत्र विद्यमान है।" और आजकल की धारणाओ की दृष्टि मे वे सब प्राचीन धारणाएँ कितनी ही बीभत्स, भयानक अथवा घृणित क्यो न मालूम पड़ें, वेदान्त का कर्तव्य उन सभी प्राचीन धारणाओ एव सभी वर्तमान धारणाओ के भीतर इस सयोग-सूत्र की दृढ प्रतिष्ठा करनी है। प्राचीन काल की भूमिका मे वे धारणाएँ सामजस्यपूर्ण मालूम पडती हैं और ऐसा लगता है कि हमारी वर्तमान धारणाओ से वे शायद अधिक बीभत्स नही थी। उनकी बीभत्सता हमारे सामने तभी प्रकट होती है, जब हम उनको उनकी भूमिका से अलग करके उन पर अपनी परिस्थितियाँ लागू करते हैं। जिस प्रकार प्राचीन यहूदी आज के तीक्ष्ण-बुद्धि यहूदी मे और प्राचीन आर्य आज के बौद्धिक हिन्दू मे परिणत हो गया है, उसी प्रकार जिहोवा की और अन्य देवताओ की भी क्रमोन्नति हुई है।

हम इतनी ही भूल करते हैं कि हम उपासक की क्रमोन्नति तो स्वीकार

करते हैं, परन्तु उपास्य की नहीं। हम उपासकों को जिस प्रकार उन्नति का श्रेय देते हैं, उस प्रकार उपास्य को नहीं देना चाहते। तात्पर्य यह कि हम-तुम जिस प्रकार कुछ विशिष्ट भावों के द्योतक होने के नाते उन भावों की उन्नति के साथ साथ उन्नत हुए हैं, उसी प्रकार देवतागण भी विशेष विशेष भावों के द्योतक होने के कारण उन भावों की उन्नति के साथ उन्नत हुए हैं। तुम शायद यह आश्चर्य करो कि ईश्वर की भी कहीं उन्नति होती है? तो इस पर ऐसा भी कहा जा सकता है कि क्या मनुष्य की भी कभी उन्नति होती है? आगे चलकर हम देखेंगे कि इस मनुष्य के पीछे जो यथार्थ पुरुष है वह अचल अपरिणामी शुद्ध और नित्य मुक्त है। जिस प्रकार यह मनुष्य उस यथार्थ मनुष्य की छाया मात्र है उसी प्रकार हमारी ईश्वर सम्बन्धी धारणाएँ केवल हमारे मन की सृष्टि हैं—वे उस प्रकृत ईश्वर की आंशिक अभिव्यक्ति आभास मात्र हैं। इन समस्त आंशिक अभिव्यक्तियों के पीछे प्रकृत ईश्वर है जो नित्य शुद्ध अपरिणामी और अजर है। किन्तु ये आंशिक अभिव्यक्तियाँ सर्वदा ही परिणामशील हैं—ये अपने अन्तरालस्थ सत्य की क्रमाभिव्यक्ति मात्र हैं। वह सत्य जब अधिक परिमाण में अभिव्यक्त होता है, तब उसे उन्नति और जब उसका अधिकांश ढका हुआ या अनभिव्यक्त रहता है तब उसे अवनति कहते हैं। इस प्रकार, जैसे जैसे हमारी उन्नति होती है, वैसे ही वैसे देवताओं की भी होती है। सीधे-सादे शब्दों में जैसे जैसे हमारी उन्नति होती है जैसे जैसे हमारा स्वरूप प्रकाशित होता है वैसे ही वैसे देवता भी अपना स्वरूप प्रकाशित करते जाते हैं।

अब हम मायावाद को समझ सकेंगे। संसार के सभी धर्मों ने इस प्रश्न को उठाया है—संसार में यह असामंजस्य क्यों है? संसार में यह अशुभ क्यों है? आदिम धर्मभाव के आविर्भाव के समय हम इस प्रश्न को उठते नहीं देखते इसका कारण यह है कि आदिम मनुष्य को जगत् असामंजस्यपूर्ण नहीं लगा। उसके चारों ओर कोई असामंजस्य नहीं था किसी प्रकार का मत-विरोध नहीं था भले-बुरे की कोई प्रतिद्वन्द्विता नहीं थी। उसके हृदय में केवल दो भावों का संग्राम हो रहा था। एक कहती थी—यह करो और दूसरी उसको करने का निषेध करती थी। आदिम मानव भावनाओं का दास था। उसके मन में जो आता था वही शरीर से कर डालता था। वह इन भावनाओं के सम्बन्ध में विचार करने अथवा उनका संयम करने का बिल्कुल प्रयत्न नहीं करता था। इन सब देवताओं के सम्बन्ध में भी यही बात है। वे लोग भी अपनी भावनाओं के अधीन थे। इन्द्र आया और उसने असुर-दल को छिन्न-भिन्न कर दिया। जिहोवा किसी पर प्रसन्न था तो किसी पर रुष्ट, क्यों यह कोई भी नहीं जानता जानना

भी नही चाहता। इसका कारण यह है कि उस समय लोगो मे अनुसन्धान की प्रवृत्ति ही नही जगी थी, इसलिए वे जो कुछ भी करते, वही ठीक था। उस समय भले-बुरे की कोई धारणा नही थी। हम जिन्हें बुरा कहते हैं, ऐसे बहुत से कार्य देवता लोग करते थे, हम वेदो मे देखते हैं कि इन्द्र और अन्यान्य देवताओ ने अनेक बुरे कार्य किये है, पर इन्द्र के उपासको की दृष्टि मे पाप या बुरा काम कुछ भी न था, अत वे इस सम्बन्ध मे कोई प्रश्न नही करते थे।

नैतिक भाव की उन्नति के साथ साथ मनुष्य के मन मे एक सग्राम प्रारम्भ हुआ, मनुष्य मे मानो एक नयी इन्द्रिय का आविर्भाव हुआ। भिन्न भिन्न भाषाओ और भिन्न भिन्न जातियो ने इसे भिन्न भिन्न नाम दिये हैं, कोई कहता है—यह ईश्वर की वाणी है, और कोई यह कि वह पहले की शिक्षा का फल है। जो भी हो, उसने प्रवृत्तियो को दमन करनेवाली शक्ति के रूप मे काम किया। हमारे मन की एक प्रवृत्ति कहती है, यह काम करो, और दूसरी कहती है, मत करो। हमारे भीतर एक प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं, जो इन्द्रियो के द्वारा बाहर जाने की चेष्टा करती रहती हैं। और उनके पीछे, चाहे कितना ही क्षीण क्यो न हो, एक स्वर कहता रहता है—बाहर मत जाना । इन दो बातो के सस्कृत नाम हैं— प्रवृत्ति और निवृत्ति। प्रवृत्ति ही हमारे समस्त कर्मों का मूल है। निवृत्ति से धर्म का आरम्भ है। धर्म आरम्भ होता है—इस 'मत करना' से, आध्यात्मिकता भी इस 'मत करना' से ही आरम्भ होती है। जहाँ यह 'मत करना' नही है, वहाँ जानना कि धर्म का आरम्भ ही नही हुआ। इस 'मत करना' से ही निवृत्ति का भाव आ गया, और परस्पर युद्ध मे रत देवतागण आराधित होने के बावजूद भी मनुष्य की धारणाएँ विकसित होने लगी।

अब मानवता के हृदय मे कुछ प्रेम जाग्रत हुआ। अवश्य उसकी मात्रा बहुत थोड़ी थी और आज भी वह मात्रा कोई अधिक नही है। पहले-पहल यह प्रेम कबीले तक सीमित रहा। ये सब देवता केवल अपने क़बीले से प्रेम करते थे। प्रत्येक देवता एक एक कबीले का देवता था और उस विशिष्ट कबीले का रक्षक मात्र था। और जिस प्रकार भिन्न भिन्न देशो के विभिन्न वशीय लोग अपने को उस एक पुरुषविशेष का वशज कहते हैं, जो उस वश का प्रतिष्ठाता होता है, उसी प्रकार कभी कभी किसी कबीले के लोग अपने को अपने देवता का वशधर समझते थे। प्राचीन काल मे कुछ ऐसी जातियाँ थी, और आज भी हैं, जो अपने को चन्द्र या सूर्य का वशधर कहती थी। सस्कृत के प्राचीन ग्रन्थो मे तुमने बड़े बड़े सूर्यवशी वीर सम्राटो की कथाएँ पढी होगी। ये लोग पहले चन्द्र या सूर्य के उपासक थे, और बाद मे ये अपने को चन्द्र या सूर्य का वशज कहने लगे।

अतः जब यह कबीलीय भाव आने लगा, तब किंचित् प्रेम आया, एक दूसरे के प्रति थोड़ा कर्तव्य-भाव आया, कुछ सामाजिक शृंखला की उत्पत्ति हुई, और इसके साथ ही साथ यह भावना भी आने लगी कि एक दूसरे का दोष सहन या क्षमा किये बिना हम कैसे एक साथ रह सकेंगे? एक न एक समय अपनी प्रवृत्तियों का संयम किये बिना मनुष्य भला किस प्रकार दूसरों के साथ, यहाँ तक कि एक भी व्यक्ति के साथ रह सकता है? यह असम्भव है। बस इसी प्रकार संयम की भावना आयी। इस संयम की भावना में ही सम्पूर्ण समाज गुँथा हुआ है, और हम जानते हैं कि जो नर या नारी ने इस सहिष्णुता या क्षमारूपी महान् पाठ को नहीं पढ़ा है, वे अत्यन्त कष्ट में जीवन बिताते हैं।

अतएव जब इस प्रकार धर्म का भाव आया, तब मनुष्य के मन में एक अपेक्षाकृत उच्चतर एवं अधिक नीतिसंगत भाव उदित हुआ। तब वे अपने उन्हीं प्राचीन देवताओं में—चंचल, लड़ाकू, शराबी, गो-मांसाहारी देवताओं में जिनको जले मांस की गन्ध और तीव्र सुरा की आहुति से ही परम आनन्द मिलता था—कुछ असंगति देखने लगे। दृष्टान्तस्वरूप देखो, वेद में वर्णन आता है कि कभी कभी इन्द्र इतना मद्यपान कर लेता था कि वह बेहोश होकर गिर पड़ता और अण्ड-बण्ड बकने लगता था। इस प्रकार के देवता अब असह्य हो गये। तब सभी के उद्देश्यों की खोज आरम्भ हो गयी और देवताओं के कार्यों के उद्देश्य भी पूछे जाने लगे। अमुक देवता के अमुक कार्य का क्या उद्देश्य है? कोई उद्देश्य नहीं मिला। अतएव लोगों ने उन सब देवताओं का त्याग कर दिया, अथवा दूसरे शब्दों में, वे फिर देवताओं के विषय में और भी उच्च धारणाएँ बनाने लगे। उन्होंने देवताओं के उन सब गुणों तथा कार्यों को, जो अच्छे थे, जिन्हें वे समझ सकते थे, एकत्र किया और जिन कार्यों को उन्होंने अच्छा नहीं समझा अथवा समझा ही नहीं, उन्हें अलग कर दिया। इन अच्छे अच्छे भावों की समष्टि को उन्होंने एक नाम देव-देव या देवताओं का देवता दे दिया। तब उनके उपास्य देवता केवल शक्ति के परिचायक मात्र नहीं रहे, शक्ति से अधिक और भी कुछ उनके लिए आवश्यक हो गया। अब वे नीतिपरायण देवता हो गये, वे मनुष्यों से प्रेम करने लगे, मनुष्यों का हित करने लगे। पर देवता सम्बन्धी धारणा फिर भी अक्षुण्ण रही। उन लोगों ने देवता की नीतिपरायणता तथा शक्ति को केवल बढ़ा भर दिया। अब वे देवता विश्व में सर्वश्रेष्ठ नीतिपरायण तथा एक प्रकार से सर्वशक्तिमान भी हो गये।

किन्तु यह जोड़-गाँठ कब तक चल सकती थी? जैसे जैसे व्याख्याएँ सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती गयीं, वैसे वैसे यह कठिनाई मानो और भी कठिन होती गयी। देवता अथवा ईश्वर के गुण यदि 'गणितीय धर्म' (arithmetical

progression) के नियम से बढने लगे, तो सन्देह और कठिनाइयाँ 'ज्यामितीय क्रम' (geometrical progression) के नियम से बढने लगी। निष्ठुर जिहोवा के साथ जगत् का सामजस्य स्थापित करने मे जो कठिनाई होती थी, उससे भी अधिक कठिनाई ईश्वर सम्बन्धी नवीन धारणा के साथ होने लगी। और यह कठिनाई आज तक बनी रही। सर्वशक्तिमान और प्रेममय ईश्वर के राज्य मे ऐसी पैशाचिक घटनाएँ क्यो घटती हैं? सुख की अपेक्षा दु ख इतना अधिक क्यो है? साधु-भाव जितना है, असाधु-भाव उससे इतना अधिक क्यो है? ससार मे कुछ भी अशुभ नही है, ऐसा समझकर भले ही हम आँखें बन्द करके बैठे रहे, पर उससे ससार की बीभत्सता मे कुछ भी अन्तर नही आता। बहुत हुआ, तो यह ससार बस टैण्टालस के नरक[1] के समान है, उससे यह किसी अश मे अच्छा नही। यहाँ हम हैं प्रबल प्रवृत्तियाँ लिये और इन्द्रियो को चरितार्थ करने की प्रबलतर वासनाएँ लिये, पर उनकी पूर्ति का कोई उपाय नही! अपनी इच्छा के विरुद्ध हममे एक तरग उठती है, जो हमे आगे बढने को बाध्य करती है, परन्तु जैसे ही हम एक पाँव आगे बढाते हैं, वैसे ही एक धक्का लगता है। हम सभी टैण्टालस की भाँति इस जगत् मे जीवित रहने और मरने को मानो विधि-विधान से अभिशप्त हैं! पचेन्द्रिय द्वारा सीमाबद्ध जगत् से अतीत के आदर्श हमारे मस्तिष्क मे आते हैं, पर बहुत प्रयत्न करने पर भी हम देखते हैं कि उन्हे हम कभी भी कार्य-रूप मे परिणत नही कर सकते। प्रत्युत हम अपने चारो ओर की परिस्थिति के चक्र मे पिसकर चूर चूर हो परमाणुओ मे परिणत हो जाते हैं। और दूसरी ओर, यदि मैं आदर्श-प्राप्ति की चेष्टा का परित्याग कर केवल सासारिक भाव को लेकर रहना चाहूँ, तो भी मुझे पशु-जीवन बिताना पडता है और मैं अपने को पतित और गर्हित कर लेता हूँ। अतएव किसी भी ओर सुख नही। जो लोग इस ससार मे जिस अवस्था मे उत्पन्न हुए हैं, उसी अवस्था मे रहना चाहते हैं, तो उनके भाग्य मे भी दु ख है। और जो लोग सत्य तथा उच्चतर आदर्श के लिए—इस पाशविक जीवन की अपेक्षा कुछ उन्नत जीवन के लिए—प्राण देने को आगे बढते हैं, उनके लिए तो और भी सहस्र

---

१ ग्रीक लोगों की एक पौराणिक कथा है कि टैण्टालस नामक राजा पाताल के एक तालाब में गिर पड़ा था। तालाब का पानी उसके ओठों तक आता था, परन्तु जैसे ही वह अपनी प्यास बुझाने का प्रयत्न करता, वैसे ही पानी कम हो जाता था। उसके सिर के ऊपर नाना प्रकार के फल लटकते थे, और जैसे ही वह उन्हें पकड़ने जाता कि वे गायब हो जाते थे। स०

गुँथा हुआ है। यही वस्तु-स्थिति है, पर इसकी कोई व्याख्या नहीं। और व्याख्या हो भी नहीं सकती। पर वेदान्त इससे बाहर निकलने का मार्ग बतलाता है। ये सब भाषण देते समय शायद मुझे कुछ ऐसी भी बातें कहनी पड़ें, जिनसे तुम भयभीत हो जाओ, पर जो कुछ मैं कह रहा हूँ उसे यदि तुम याद रखो, भली भाँति आत्मसात्‌ कर लो और उसके सम्बन्ध में दिन-रात चिन्तन करो, तो वह तुम्हारे अन्दर बैठ जायगी, तुम्हारी उन्नति करेगी और सत्य को समझने तथा सत्य में प्रतिष्ठित होने में तुमको समर्थ करेगी।

अब यह एक तथ्यात्मक वर्णन है कि यह संसार एक टैण्टालस का नरक है और हम इस जगत्‌ के बारे में कुछ भी नहीं जानते, पर साथ ही हम यह भी तो नहीं कह सकते कि हम नहीं जानते। जब मैं सोचता हूँ कि मैं इस जगत्‌ शृंखला के बारे में नहीं जानता, तो मैं यह नहीं कह सकता कि इसका अस्तित्व है। यह मेरे मस्तिष्क का पूर्ण भ्रम हो सकता है। हो सकता है, मैं केवल स्वप्न देख रहा हूँ। मैं स्वप्न देख रहा हूँ कि मैं तुमसे बातें कर रहा हूँ और तुम मेरी बात सुन रहे हो। कोई भी यह सिद्ध नहीं कर सकता कि यह स्वप्न नहीं है। मेरा मस्तिष्क भी तो एक स्वप्न हो सकता है, और सचमुच अपना मस्तिष्क देखा किसने है? यह तो हमने केवल मान लिया है। सभी विषयों के सम्बन्ध में यही बात है। अपने शरीर को भी तो हम मान ही लेते हैं। फिर यह भी नहीं कह सकते कि हम नहीं जानते। ज्ञान और अज्ञान के बीच की यह अवस्था, यह रहस्यमय पहेली, यह सत्य और मिथ्या का मिश्रण—कहाँ जाकर इनका मिलन हुआ है, कौन जाने? हम स्वप्न में विचरण कर रहे हैं—अर्ध निद्रित, अर्ध जाग्रत—जीवन भर एक पहेली में आबद्ध, हममें से प्रत्येक की बस यही दशा है! सारे इन्द्रिय-ज्ञान की यही दशा है। सारे दर्शनों की, सारे विज्ञान की, सब प्रकार के मानवीय ज्ञान की—जिनको लेकर हमें इतना अहंकार है—सबकी बस यही दशा है—यही परिणाम है। बस यही संसार है।

चाहे पदार्थ कहो, चाहे मन, चाहे आत्मा, चाहे किसी भी नाम से क्यों न पुकारो, बात एक ही है—हम यह नहीं कह सकते कि ये सब हैं और यह भी नहीं कह सकते कि ये सब नहीं हैं। हम इन सबको एक भी नहीं कह सकते और अनेक भी नहीं। यह प्रकाश और अन्धकार का खेल—यह भावाविष्ट दुर्बलता, यह अविविक्त, अपृथक् और अविभाज्य मिश्रण, जिसमें सारी घटनाएँ कभी सत्य मालूम होती हैं, कभी मिथ्या—सदा से चल रहा है। इसके कारण कभी लगता है कि हम जाग्रत हैं, कभी लगता है कि सोये हुए हैं। बस यही माया है, यही वस्तु-स्थिति है। इसी माया में हमारा जन्म हुआ है, इसीमें हम जीवित हैं,

इसीमे सोच-विचार करते हैं, इसीमे स्वप्न देखते हैं। इसीमे हम दार्शनिक हैं, इसीमे साधु है, यही नही, हम इस माया मे ही कभी दानव और कभी देवता हो जाते हैं। विचार के रथ पर चढकर चाहे जितनी दूर जाओ, अपनी धारणा को ऊँचे से ऊँचा बनाओ, उसे अनन्त या जो इच्छा हो, नाम दो, पर तो भी यह सब माया के ही भीतर है। इसके विपरीत हो ही नही सकता, और मनुष्य का जो कुछ ज्ञान है, वह बस, इस माया का ही साधारण भाव है। इस माया के दिखनेवाले रूप का ज्ञान ही सारे मानवीय ज्ञान की सीमा है। यह माया नाम-रूप का कार्य है। जिस किसी वस्तु का रूप है, जो भी कुछ तुम्हारे मन मे किसी प्रकार के भाव का उद्दीपन कर देता है, वह सब माया के ही अन्तर्गत है। जो कुछ देश-काल-निमित्त के नियम के अधीन है, वही माया के अन्तर्गत है।

अब हम पुन यह विचार करेंगे कि उस प्रारभिक ईश्वर-धारणा का क्या हुआ। यह धारणा कि एक ईश्वर अनन्त काल से हमे प्यार कर रहा है, अनन्त, सर्वशक्तिमान और नि स्वार्थ पुरुष है और इस विश्व का शासन कर रहा है, स्पष्ट ही हमे सतुष्ट नही कर सकती। दार्शनिक साहस के साथ इस सगुण ईश्वर-धारणा के विरुद्ध खडा होता है। वह पूछता है—तुम्हारा न्यायशील, दयालु ईश्वर कहाँ है? क्या वह अपनी मनुष्य और पशुरूप लाखो सन्तानो का विनाश नही देखता? कारण, ऐसा कौन है, जो एक क्षण भी दूसरो की हिंसा किये बिना जीवन धारण कर सकता है? क्या तुम सहस्रो जीवन का सहार किये बिना एक साँस भी ले सकते हो? लाखो जीव मर रहे हैं, इसीसे तुम जीवित हो। तुम्हारे जीवन का प्रत्येक क्षण, तुम्हारा प्रत्येक नि श्वास सहस्रो जीवो के लिए मृत्यु है, तुम्हारी प्रत्येक हलचल लाखो का काल है। तुम्हारा प्रत्येक ग्रास लाखो की मौत है। वे क्यो मरें? इस सम्बन्ध मे एक प्राचीन कुतर्क है—'वे तो अति क्षुद्र जीव हैं।' पर यह तो एक सन्दिग्ध विषय है। कौन कह सकता है कि चीटी मनुष्य से श्रेष्ठ है, अथवा मनुष्य चीटी से? कौन सिद्ध कर सकता है कि यह ठीक है अथवा वह? यदि मान भी लिया जाय कि वे अति क्षुद्र जीव हैं, तो भी वे मरें क्यो? यदि वे क्षुद्र हैं, तो उनको बचे रहने का तो और भी अधिकार है। वे क्यो न जीवित रहे? उनका जीवन इन्द्रियो मे ही अधिक आबद्ध है, अत वे हमारी-तुम्हारी अपेक्षा सहस्र गुना अधिक दु ख-सुख का बोध करते हैं। कुत्ता या भेडिया जिस चाव के साथ भोजन करता है, उस तरह कौन मनुष्य कर सकता है? इसका कारण यह है कि हमारी समस्त कार्य-प्रवृत्ति इन्द्रियो मे नही है—वह बुद्धि मे है, आत्मा मे है। पर कुत्ते के प्राण इन्द्रियो मे ही पडे रहते हैं, वह

# विश्वप्रेम और उससे आत्मसमर्पण का उदय

समष्टि से प्रेम किये बिना हम व्यष्टि से कैसे प्रेम कर सकते हैं? ईश्वर ही वह समष्टि है। सारे विश्व का यदि एक अखण्ड रूप से चिन्तन किया जाय, तो वही ईश्वर है, और उसे पृथक् पृथक् रूप से देखने पर वही यह दृश्यमान संसार है—व्यष्टि है। समष्टि वह इकाई है, जिसमें लाखों छोटी छोटी इकाइयों का योग है। इस समष्टि के माध्यम से ही सारे विश्व को प्रेम करना सम्भव है। भारतीय दार्शनिक व्यष्टि पर ही नहीं रुक जाते, वे तो व्यष्टि पर एक सरसरी दृष्टि डालकर तुरन्त एक ऐसे व्यापक या समष्टि भाव की खोज में लग जाते हैं, जिसमें सब व्यष्टियों या विशेषों का अन्तर्भाव हो। इस समष्टि की खोज ही भारतीय दर्शन और धर्म का लक्ष्य है। ज्ञानी पुरुष ऐसी एक समष्टि की, ऐसे एक निरपेक्ष और व्यापक तत्त्व की कामना करता है, जिसे जानने से वह सब कुछ जान सके। भक्त उस एक सर्वव्यापी पुरुष की साक्षात् उपलब्धि कर लेना चाहता है, जिससे प्रेम करने से वह सारे विश्व से प्रेम कर सके। योगी उस मूलभूत शक्ति को अपने अधिकार में लाना चाहता है, जिसके नियमन से वह इस सम्पूर्ण विश्व का नियमन कर सके। यदि हम भारतीय विचार-धारा के इतिहास का अध्ययन करें, तो देखेंगे कि भारतीय मन सदा से हर विषय में—भौतिक विज्ञान, मनोविज्ञान, भक्तितत्त्व, दर्शन आदि सभी में—एक समष्टि या व्यापक तत्त्व की इस अपूर्व खोज में लगा रहा है। अतएव भक्त इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि तुम केवल एक के बाद दूसरे व्यक्ति से प्रेम करते चले जाओ, तो भी अनन्त काल में भी संसार को एक समष्टि के रूप में प्यार करने में समर्थ न हो सकोगे। पर अन्त में जब यह मूल सत्य ज्ञात हो जाता है कि समस्त प्रेम की समष्टि ईश्वर है, संसार के मुक्त, बद्ध या मुमुक्षु सारे जीवात्माओं की आदर्श-समष्टि ही ईश्वर है, तभी यह विश्वप्रेम सम्भव होता है। ईश्वर ही समष्टि है, और यह परिदृश्यमान जगत् उसीका परिच्छिन्न भाव है—उसीकी अभिव्यक्ति है। यदि हम इस समष्टि को प्यार करें, तो इससे सभी को प्यार करना हो जाता है। तब जगत् को प्यार करना और उसकी भलाई करना सहज हो जाता है। पर पहले भगवत्प्रेम के द्वारा हमें यह शक्ति प्राप्त कर लेनी होगी, अन्यथा संसार की भलाई करना कोई हँसी-खेल नहीं है। भक्त कहता है, 'सब कुछ उसीका है, वह मेरा प्रियतम है, मैं उससे प्रेम करता हूँ।' इस प्रकार भक्त को सब

कुछ पवित्र प्रतीत होने लगता है, क्योकि वह सब आखिर उसीका तो है। सभी उसकी सन्तान है, उसके अगस्वरूप हैं, उसके रूप हैं। तब फिर हम किसीको कैसे चोट पहुँचा सकते हैं? दूसरो को बिना प्यार किये हम कैसे रह सकते है? भगवान् के प्रति प्रेम के साथ ही, उसके निश्चित फलस्वरूप, सर्व भूतो के भी प्रति प्रेम अवश्य आयेगा। हम ईश्वर के जितने समीप आते जाते हैं, उतने ही अधिक स्पष्ट रूप से देखते है कि सब कुछ उसीमे है। जब जीवात्मा इस परम प्रेमानन्द को आत्मसात करने मे सफल होती है, तब वह ईश्वर को सर्व भूतो मे देखने लगती है। इस प्रकार हमारा हृदय प्रेम का एक अनन्त स्रोत बन जाता है। और जब हम इस प्रेम की और भी उच्चतर अवस्थाओ मे पदार्पण करते हैं, तब ससार की वस्तुओ मे क्षुद्र भेद की भावनाएँ हमारे हृदय से सर्वथा लुप्त हो जाती हैं। तब मनुष्य मनुष्य के रूप मे नही दीखता, वरन् साक्षात् ईश्वर के रूप मे ही दीख पडता है, पशु मे पशु-रूप नही दिखायी पडता, वरन् उसमे स्वय भगवान् ही दीख पडते हैं, यहाँ तक कि ऐसे प्रेमी की आँखो से बाघ का भी बाघ-रूप लुप्त हो जाता है और उसमे स्वय भगवान् प्रकाशमान दीख पडता है। इस प्रकार, भक्ति की इस प्रगाढ अवस्था मे सभी प्राणी हमारे लिए उपास्य हो जाते हैं। 'हरि को सब भूतो मे अवस्थित जानकर ज्ञानी को सब प्राणियो के प्रति अव्यभिचारिणी भक्ति रखनी चाहिए।'[1]

इस प्रगाढ, सर्वग्राही प्रेम के फलस्वरूप पूर्ण आत्मसमर्पण की अवस्था उपस्थित होती है। तब यह दृढ विश्वास हो जाता है कि ससार मे भला-बुरा जो कुछ होता है, कुछ भी हमारे लिए अनिष्टकर नही। शास्त्रो ने इसीको 'अप्रातिकूल्य' कहा है। ऐसा प्रेमी जीव दु ख उपस्थित होने पर कहता है, "दु ख! स्वागत है तुम्हारा।" यदि कष्ट आये, तो कहेगा, "आओ कष्ट! स्वागत है तुम्हारा। तुम भी तो मेरे प्रियतम के पास से ही आये हो।" यदि सर्प आये, तो कहेगा, "विराजो, सर्प!" यहाँ तक कि यदि मृत्यु भी आये, तो वह अधरो पर मुस्कान लिये उसका स्वागत करेगा। "धन्य हूँ मैं, जो ये सब मेरे पास आते हैं, इन सबका स्वागत है।" भगवान् और जो कुछ भगवान् का है, उस सबके प्रति प्रगाढ प्रेम से उत्पन्न होनेवाली इस पूर्ण निर्भरता की अवस्था मे भक्त अपने को प्रभावित करनेवाले सुख और दु ख का भेद भूल जाता है। दु ख-कष्ट आने पर वह तनिक भी विचलित नही होता। और प्रेमस्वरूप ईश्वर की इच्छा पर यह जो स्थिर, खेदशून्य निर्भरता

---

१ एव सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी।
कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमय हरिम्॥

# विश्वप्रेम और उससे आत्मसमर्पण का उदय

समष्टि से प्रेम किये बिना हम व्यष्टि से कैसे प्रेम कर सकते हैं? ईश्वर ही वह समष्टि है। सारे विश्व का यदि एक अखण्ड रूप से चिन्तन किया जाय, तो वही ईश्वर है, और उसे पृथक् पृथक् रूप से देखने पर वही यह दृश्यमान संसार है—व्यष्टि है। समष्टि वह इकाई है, जिसमें लाखों छोटी छोटी इकाइयों का योग है। इस समष्टि के माध्यम से ही सारे विश्व को प्रेम करना सम्भव है। भारतीय दार्शनिक व्यष्टि पर ही नहीं रुक जाते, वे तो व्यष्टि पर एक सरसरी दृष्टि डालकर तुरन्त एक ऐसे व्यापक या समष्टि भाव की खोज में लग जाते हैं, जिसमें सब व्यष्टियों या विशेषों का अन्तर्भाव हो। इस समष्टि की खोज ही भारतीय दर्शन और धर्म का लक्ष्य है। ज्ञानी पुरुष ऐसी एक समष्टि की, ऐसे एक निरपेक्ष और व्यापक तत्त्व की कामना करता है, जिसे जानने से वह सब कुछ जान सके। भक्त उस एक सर्वव्यापी पुरुष की साक्षात् उपलब्धि कर लेना चाहता है, जिससे प्रेम करने से वह सारे विश्व से प्रेम कर सके। योगी उस मूलभूत शक्ति को अपने अधिकार में लाना चाहता है, जिसके नियमन से वह इस सम्पूर्ण विश्व का नियमन कर सके। यदि हम भारतीय विचार-धारा के इतिहास का अध्ययन करें, तो देखेंगे कि भारतीय मन सदा से हर विषय में—भौतिक विज्ञान, मनोविज्ञान, भक्तितत्त्व, दर्शन आदि सभी में—एक समष्टि या व्यापक तत्त्व की इस अपूर्व खोज में लगा रहा है। अतएव भक्त इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि तुम केवल एक के बाद दूसरे व्यक्ति से प्रेम करते चले जाओ, तो भी अनन्त काल में भी संसार को एक समष्टि के रूप में प्यार करने में समर्थ न हो सकोगे। पर अन्त में जब यह मूल सत्य ज्ञात हो जाता है कि समस्त प्रेम की समष्टि ईश्वर है, संसार के मुक्त, बद्ध या मुमुक्षु सारे जीवात्माओं की आदर्श-समष्टि ही ईश्वर है, तभी यह विश्वप्रेम सम्भव होता है। ईश्वर ही समष्टि है और यह परिदृश्यमान जगत् उसीका परिच्छिन्न भाव है—उसीकी अभिव्यक्ति है। यदि हम इस समष्टि को प्यार करें, तो इससे सभी को प्यार करना हो जाता है। तब जगत् को प्यार करना और उसकी भलाई करना सहज हो जाता है। पर पहले भगवत्प्रेम के द्वारा हमें यह शक्ति प्राप्त कर लेनी होगी, अन्यथा संसार की भलाई करना कोई हँसी-खेल नहीं है। भक्त कहता है, "सब कुछ उसीका है, वह मेरा प्रियतम है, मैं उससे प्रेम करता हूँ।" इस प्रकार भक्त को सब

कुछ पवित्र प्रतीत होने लगता है, क्योकि वह सब आखिर उसीका तो है। सभी उसकी सन्तान हैं, उसके अगस्वरूप हैं, उसके रूप हैं। तब फिर हम किसीको कैसे चोट पहुँचा सकते हैं? दूसरो को बिना प्यार किये हम कैसे रह सकते है? भगवान् के प्रति प्रेम के साथ ही, उसके निश्चित फलस्वरूप, सर्व भूतो के भी प्रति प्रेम अवश्य आयेगा। हम ईश्वर के जितने समीप आते जाते हैं, उतने ही अधिक स्पष्ट रूप से देखते हैं कि सब कुछ उसीमे है। जब जीवात्मा इस परम प्रेमानन्द को आत्मसात करने मे सफल होती है, तब वह ईश्वर को सर्व भूतो मे देखने लगती है। इस प्रकार हमारा हृदय प्रेम का एक अनन्त स्रोत बन जाता है। और जब हम इस प्रेम की और भी उच्चतर अवस्थाओ मे पदार्पण करते हैं, तब ससार की वस्तुओ मे क्षुद्र भेद की भावनाएँ हमारे हृदय से सर्वथा लुप्त हो जाती हैं। तब मनुष्य मनुष्य के रूप मे नही दीखता, वरन् साक्षात् ईश्वर के रूप मे ही दीख पडता है, पशु मे पशु-रूप नही दिखायी पडता, वरन् उसमे स्वय भगवान् ही दीख पडते हैं, यहाँ तक कि ऐसे प्रेमी की आँखो से बाघ का भी बाघ-रूप लुप्त हो जाता है और उसमे स्वय भगवान् प्रकाशमान दीख पडता है। इस प्रकार, भक्ति की इस प्रगाढ अवस्था मे सभी प्राणी हमारे लिए उपास्य हो जाते हैं। 'हरि को सब भूतो मे अवस्थित जानकर ज्ञानी को सब प्राणियो के प्रति अव्यभिचारिणी भक्ति रखनी चाहिए।'[1]

इस प्रगाढ, सर्वग्राही प्रेम के फलस्वरूप पूर्ण आत्मसमर्पण की अवस्था उपस्थित होती है। तब यह दृढ विश्वास हो जाता है कि ससार मे भला-बुरा जो कुछ होता है, कुछ भी हमारे लिए अनिष्टकर नही। शास्त्रो ने इसीको 'अप्रातिकूल्य' कहा है। ऐसा प्रेमी जीव दु ख उपस्थित होने पर कहता है, "दु ख! स्वागत है तुम्हारा।" यदि कष्ट आये, तो कहेगा, "आओ कष्ट! स्वागत है तुम्हारा। तुम भी तो मेरे प्रियतम के पास से ही आये हो।" यदि सर्प आये, तो कहेगा, "विराजो, सर्प!" यहाँ तक कि यदि मृत्यु भी आये, तो वह अधरो पर मुस्कान लिये उसका स्वागत करेगा। "धन्य हूँ मैं, जो ये सब मेरे पास आते हैं, इन सबका स्वागत है।" भगवान् और जो कुछ भगवान् का है, उस सबके प्रति प्रगाढ प्रेम से उत्पन्न होनेवाली इस पूर्ण निर्भरता की अवस्था मे भक्त अपने को प्रभावित करनेवाले सुख और दु ख का भेद भूल जाता है। दु ख-कष्ट आने पर वह तनिक भी विचलित नही होता। और प्रेमस्वरूप ईश्वर की इच्छा पर यह जो स्थिर, खेदशून्य निर्भरता

---

१ एव सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी।
कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमय हरिम्॥

# विश्वप्रेम और उससे आत्मसमर्पण का उदय

समष्टि से प्रेम किये बिना हम व्यष्टि से कैसे प्रेम कर सकते हैं? ईश्वर ही वह समष्टि है। सारे विश्व का यदि एक अखण्ड रूप से चिन्तन किया जाय, तो वही ईश्वर है, और उसे पृथक् पृथक् रूप से देखने पर वही यह दृश्यमान संसार है—व्यष्टि है। समष्टि वह इकाई है, जिसमें लाखों छोटी छोटी इकाइयों का योग है। इस समष्टि के माध्यम से ही सारे विश्व को प्रेम करना सम्भव है। भारतीय दार्शनिक व्यष्टि पर ही नहीं रुक जाते; वे तो व्यष्टि पर एक सरसरी दृष्टि डालकर तुरन्त एक ऐसे व्यापक या समष्टि भाव की खोज में लग जाते हैं, जिसमें सब व्यष्टियों या विशेषों का अन्तर्भाव हो। इस समष्टि की खोज ही भारतीय दर्शन और धर्म का लक्ष्य है। ज्ञानी पुरुष ऐसी एक समष्टि की, ऐसे एक निरपेक्ष और व्यापक तत्त्व की कामना करता है, जिसे जानने से वह सब कुछ जान सके। भक्त उस एक सर्वव्यापी पुरुष की साक्षात् उपलब्धि कर लेना चाहता है, जिससे प्रेम करने से वह सारे विश्व से प्रेम कर सके। योगी उस मूलभूत शक्ति को अपने अधिकार में लाना चाहता है, जिसके नियमन से वह इस सम्पूर्ण विश्व का नियमन कर सके। यदि हम भारतीय विचार-धारा के इतिहास का अध्ययन करें, तो देखेंगे कि भारतीय मन सदा से हर विषय में—भौतिक विज्ञान, मनोविज्ञान, भक्तितत्त्व, दर्शन आदि सभी में—एक समष्टि या व्यापक तत्त्व की इस अपूर्व खोज में लगा रहा है। अतएव भक्त इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि तुम केवल एक के बाद दूसरे व्यक्ति से प्रेम करते चले जाओ, तो भी अनन्त काल में भी संसार को एक समष्टि के रूप में प्यार करने में समर्थ न हो सकोगे। पर अन्त में जब यह मूल सत्य ज्ञात हो जाता है कि समस्त प्रेम की समष्टि ईश्वर है, संसार के मुक्त, बद्ध या मुमुक्षु सारे जीवात्माओं की आदर्श-समष्टि ही ईश्वर है, तभी यह विश्वप्रेम सम्भव होता है। ईश्वर ही समष्टि है और यह परिदृश्यमान जगत् उसीका परिच्छिन्न भाव है—उसीकी अभिव्यक्ति है। यदि हम इस समष्टि को प्यार करें, तो इससे सभी को प्यार करना हो जाता है। तब जगत् को प्यार करना और उसकी भलाई करना सहज हो जाता है। पर पहले भगवत्प्रेम के द्वारा हमें यह शक्ति प्राप्त कर लेनी होगी, अन्यथा संसार की भलाई करना कोई हँसी-खेल नहीं है। भक्त कहता है, "सब कुछ उसीका है, वह मेरा प्रियतम है, मैं उससे प्रेम करता हूँ। इस प्रकार भक्त को सब

कुछ पवित्र प्रतीत होने लगता है, क्योकि वह सब आखिर उसीका तो है। सभी उसकी सन्तान हैं, उसके अगस्वरूप हैं, उसके रूप हैं। तब फिर हम किसीको कैसे चोट पहुँचा सकते हैं? दूसरो को बिना प्यार किये हम कैसे रह सकते हैं? भगवान् के प्रति प्रेम के साथ ही, उसके निश्चित फलस्वरूप, सर्व भूतो के भी प्रति प्रेम अवश्य आयेगा। हम ईश्वर के जितने समीप आते जाते हैं, उतने ही अधिक स्पष्ट रूप से देखते हैं कि सब कुछ उसीमे है। जब जीवात्मा इस परम प्रेमानन्द को आत्मसात करने में सफल होती है, तब वह ईश्वर को सर्व भूतो मे देखने लगती है। इस प्रकार हमारा हृदय प्रेम का एक अनन्त स्रोत बन जाता है। और जब हम इस प्रेम की और भी उच्चतर अवस्थाओ मे पदार्पण करते हैं, तब ससार की वस्तुओ मे क्षुद्र भेद की भावनाएँ हमारे हृदय से सर्वथा लुप्त हो जाती हैं। तब मनुष्य मनुष्य के रूप मे नही दीखता, वरन् साक्षात् ईश्वर के रूप मे ही दीख पडता है, पशु मे पशु-रूप नही दिखायी पडता, वरन् उसमे स्वय भगवान् ही दीख पडते हैं, यहाँ तक कि ऐसे प्रेमी की आँखो से बाघ का भी बाघ-रूप लुप्त हो जाता है और उसमे स्वय भगवान् प्रकाशमान दीख पडता है। इस प्रकार, भक्ति की इस प्रगाढ अवस्था मे सभी प्राणी हमारे लिए उपास्य हो जाते हैं। 'हरि को सब भूतो मे अवस्थित जानकर ज्ञानी को सब प्राणियो के प्रति अव्यभिचारिणी भक्ति रखनी चाहिए।'[1]

इस प्रगाढ, सर्वग्राही प्रेम के फलस्वरूप पूर्ण आत्मसमर्पण की अवस्था उपस्थित होती है। तब यह दृढ विश्वास हो जाता है कि ससार मे भला-बुरा जो कुछ होता है, कुछ भी हमारे लिए अनिष्टकर नही। शास्त्रो ने इसीको 'अप्रातिकूल्य' कहा है। ऐसा प्रेमी जीव दु ख उपस्थित होने पर कहता है, "दु ख! स्वागत है तुम्हारा।" यदि कष्ट आये, तो कहेगा, "आओ कष्ट! स्वागत है तुम्हारा। तुम भी तो मेरे प्रियतम के पास से ही आये हो।" यदि सर्प आये, तो कहेगा, "विराजो, सर्प!" यहाँ तक कि यदि मृत्यु भी आये, तो वह अधरो पर मुस्कान लिये उसका स्वागत करेगा। "धन्य हूँ मैं, जो ये सब मेरे पास आते हैं, इन सबका स्वागत है।" भगवान् और जो कुछ भगवान् का है, उस सबके प्रति प्रगाढ प्रेम से उत्पन्न होनेवाली इस पूर्ण निर्भरता की अवस्था मे भक्त अपने को प्रभावित करनेवाले सुख और दु ख का भेद भूल जाता है। दु ख-कष्ट आने पर वह तनिक भी विचलित नही होता। और प्रेमस्वरूप ईश्वर की इच्छा पर यह जो स्थिर, खेदशून्य निर्भरता

---

१ एव सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी।
कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमय हरिम्॥

है वह तो सचमुच महान् दीर्घतापूर्ण क्रिया-कलापों से मिलनेवाले नाम-यश की अपेक्षा कहीं अधिक वाञ्छनीय है।

अधिकतर मनुष्यों के लिए देह ही सब कुछ है, देह ही उनकी सारी दुनिया है, दैहिक सुख-भोग ही उनका सर्वस्व है। देह और देह से सम्बन्धित वस्तुओं की उपासना करने का भूत हम सबमें प्रविष्ट हो गया है। भले ही हम लम्बी चौड़ी बातें करें, बड़ी ऊँची ऊँची उड़ानें लें, पर आखिर हैं हम गिद्धों के ही समान, हमारा मन सदा नीचे पड़े हुए सड़े-गले मांस के टुकड़े में ही पड़ा रहता है। हम शेर से अपने शरीर की रक्षा क्यों करें? हम उसे शेर को क्यों न दे दें? कम से कम उससे शेर की तो तृप्ति होगी, और यह कार्य आत्मत्याग और उपासना से अधिक भिन्न न होगा। क्या तुम ऐसे एक भाव की उपलब्धि कर सकते हो, जिसमें स्वार्थ की तनिक भी गन्ध न हो? क्या तुम अपना अहं भाव सम्पूर्ण रूप से नष्ट कर सकते हो? यह प्रेम-धर्म के शिखर की यह सिर चकरा देनेवाली ऊँचाई है, और बहुत थोड़े लोग ही उस तक पहुँच सके हैं। पर जब तक मनुष्य इस प्रकार के आत्मत्याग के लिए सारे समय पूरे हृदय के साथ प्रस्तुत नहीं रहता, तब तक वह पूर्ण भक्त नहीं हो सकता। हम अपने इस शरीर को अल्प अथवा अधिक समय तक के लिए भले ही बनाये रख लें, पर उससे क्या? हमारे शरीर का एक न एक दिन नाश होना तो अवश्यम्भावी है। उसका अस्तित्व चिरस्थायी नहीं है। वे धन्य हैं जिनका शरीर दूसरों की सेवा में अर्पित हो जाता है। 'एक साधु पुरुष केवल अपनी सम्पत्ति ही नहीं, वरन् अपने प्राण भी दूसरों की सेवा में उत्सर्ग कर देने के लिए सदैव उद्यत रहता है। इस संसार में जब मृत्यु निश्चित है, तो श्रेष्ठ यही है कि यह शरीर किसी नीच कार्य की अपेक्षा किसी उत्तम कार्य में ही अर्पित हो जाय। हम भले ही अपने जीवन को पचास वर्ष या बहुत हुआ तो सौ वर्ष तक खींच ले जायँ, पर उसके बाद? उसके बाद क्या होता है? जो वस्तु संघात से उत्पन्न होती है, वह विघटित होकर नष्ट भी होती है। ऐसा समय अवश्य आता है, जब उसे विघटित होना पड़ता है। ईसा, बुद्ध और मुहम्मद सभी दिवंगत हो गये। संसार के सारे महापुरुष और आचार्यगण आज इस धरती से उठ गये हैं।

भक्त कहता है, "इस क्षणभंगुर संसार में, जहाँ प्रत्येक वस्तु टुकड़े टुकड़े हो धूल में मिली जा रही है, हमें अपने समय का सदुपयोग कर लेना चाहिए।" और वास्तव में जीवन का सर्वश्रेष्ठ उपयोग यही है कि उसे सर्वभूतों की सेवा में लगा दिया जाय। हमारा सबसे बड़ा भ्रम यह है कि हमारा यह शरीर ही हम हैं और जिस किसी प्रकार से हो, इसकी रक्षा करनी होगी, इसे सुखी रखना होगा। और यह भयानक देहात्म बुद्धि ही संसार में सब प्रकार की स्वार्थपरता की जड़ है। यदि तुम यह निश्चित

रूप से जान सको कि तुम शरीर से बिल्कुल पृथक् हो, तो फिर इस दुनिया मे ऐसा कुछ भी नही रह जायगा, जिसके साथ तुम्हारा विरोध हो सके। तव तुम सब प्रकार की स्वार्थपरता के अतीत हो जाओगे। इसीलिए भक्त कहता है कि हमे ऐसा रहना चाहिए, मानो हम दुनिया की सारी चीजो के लिए मर से गये हो। और वास्तव मे यही यथार्थ आत्मसमर्पण है—यही सच्ची शरणागति है—'जो होने का है, हो।' यही 'तेरी इच्छा पूर्ण हो' का तात्पर्य है। उसका तात्पर्य यह नही कि हम यत्र-तत्र लडाई-झगडा करते फिरें और सारे समय यही सोचते रहे कि हमारी ये सारी कमजोरियाँ और सासारिक आकाक्षाएँ भगवान् की इच्छा से हो रही है। हो सकता है कि हमारे स्वार्थपूर्ण प्रयत्नो से भी कुछ भला हो जाय, पर वह ईश्वर देखेगा, उसमे हमारा-तुम्हारा कोई हाथ नही। यथार्थ भक्त अपने लिए कभी कोई इच्छा या कार्य नही करता। उसके हृदय के अन्तरतम प्रदेश से तो बस यही प्रार्थना निकलती है, "प्रभो, लोग तुम्हारे नाम पर वडे वडे मन्दिर बनवाते हैं, वडे वडे दान देते हैं, पर मैं तो निर्धन हूँ, मेरे पास कुछ भी नही है। अत मैं अपने इस शरीर को ही तुम्हारे चरणो मे अर्पित करता हूँ। मेरा परित्याग न करना, मेरे प्रभो!" जिसने एक वार इस अवस्था का आस्वादन कर लिया है, उसके लिए प्रेमास्पद भगवान् के चरणो मे यह चिर आत्मसमर्पण कुबेर के धन और इन्द्र के ऐश्वर्य से भी श्रेष्ठ है, नाम-यश और सुख-सम्पदा की महान् आकाक्षा से भी महत्तर है। भक्त के शान्त आत्मसमर्पण से हृदय मे जो शान्ति आती है, उसकी तुलना नही हो सकती, वह बुद्धि के लिए अगोचर है। इस अप्रातिकूल्य अवस्था की प्राप्ति होने पर उसका किसी प्रकार का स्वार्थ नही रह जाता, और तब फिर स्वार्थ मे बाधा देनेवाली कोई वस्तु भी ससार मे नही रह जाती। इस परम शरणागति की अवस्था मे सब प्रकार की आसक्ति समूल नष्ट हो जाती है और रह जाती है सर्वभूतो की अन्तरात्मा और आधारस्वरूप उस भगवान् के प्रति सर्वावगाहिनी प्रेमात्मिका भक्ति। भगवान् के प्रति प्रेम की यह आसक्ति ही सचमुच ऐसी है, जो जीवात्मा को नही बाँधती, प्रत्युत उसके समस्त बन्धन सार्थक रूप से छिन्न कर देती है।

# सच्चे भक्त के लिए पराविद्या और पराभक्ति एक हैं

उपनिषदों में परा और अपरा विद्या में भेद बतलाया गया है। भक्त के लिए पराविद्या और पराभक्ति दोनों एक ही हैं। मुण्डक उपनिषद् में कहा है, 'ब्रह्मज्ञानी के मतानुसार परा और अपरा ये दो प्रकार की विद्याएँ जानने योग्य हैं। अपरा विद्या में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा (उच्चारणादि की विद्या), कल्प (यज्ञपद्धति), व्याकरण, निरुक्त (वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति और अर्थ बतानेवाला शास्त्र), छन्द और ज्योतिष आदि हैं; तथा पराविद्या द्वारा उस अक्षर ब्रह्म का ज्ञान होता है।'[1] इस प्रकार पराविद्या स्पष्टतः ब्रह्मविद्या है।

देवीभागवत में पराभक्ति की निम्नलिखित व्याख्या है—'एक बर्तन से दूसरे बर्तन में तेल डालने पर जिस प्रकार एक अविच्छिन्न धारा में प्रवाहित होता है, उसी प्रकार जब मन भगवान् के सतत चिन्तन में लग जाता है, तो पराभक्ति की अवस्था प्राप्त हो जाती है।'[2] भगवान् के प्रति अविच्छिन्न आसक्ति के साथ हृदय और मन का इस प्रकार अविरत और नित्य स्थिर भाव ही मनुष्य के हृदय में भगवत्प्रेम का सर्वोच्च प्रकाश है। अन्य सब प्रकार की भक्ति इस पराभक्ति अर्थात् रागानुगा भक्ति की प्राप्ति के लिए केवल सोपानस्वरूप हैं। जब इस प्रकार का अपार अनुराग मनुष्य के हृदय में उत्पन्न हो जाता है, तो उसका मन निरन्तर भगवान् के स्मरण में ही लगा रहता है, उसे और किसीका ध्यान ही नहीं आता। भगवान् के अतिरिक्त वह अपने मन में अन्य विचारों को स्थान तक नहीं देता और फलस्वरूप उसकी आत्मा पवित्रता के अभेद्य कवच से रक्षित हो जाती है, तथा मानसिक एवं भौतिक समस्त बन्धनों को तोड़कर शान्त और मुक्त भाव धारण कर लेती है। ऐसा ही व्यक्ति अपने हृदय में भगवान् की उपासना कर सकता है। उसके

---

१ द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च। तत्रापरा, ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा, यया तदक्षरमधिगम्यते॥ मुण्डकोपनिषद् ॥१।१।४-५॥

२ चेतसो वर्तनञ्चैव तैलधारासमं सदा॥ देवीभागवत ॥७।३७।११॥

लिए अनुष्ठान-पद्धति, प्रतिमा, शास्त्र और मत-मतान्तर आदि अनावश्यक हो जाते हैं, उनके द्वारा उसे और कोई लाभ नही होता। भगवान् की इस प्रकार उपासना करना सहज नही है। साधारणतया मानवी प्रेम वही लहलहाते देखा जाता है, जहाँ उसे दूसरी ओर से बदले मे प्रेम मिलता है, और जहाँ ऐसा नही होता, वहाँ उदासीनता आकर अपना अधिकार जमा लेती है। ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं, जहाँ बदले मे प्रेम न मिलते हुए भी प्रेम का प्रकाश होता हो। उदाहरणार्थ, हम दीपक के प्रति पतिंगे के प्रेम को ले सकते हैं। पतिंगा दीपक से प्रेम करता है और उसमे गिरकर अपने प्राण दे देता है। असल मे इस प्रकार प्रेम करना उसका स्वभाव ही है। केवल प्रेम के लिए प्रेम करना ससार मे निस्सन्देह प्रेम की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है और यही पूर्ण नि स्वार्थ प्रेम है। इस प्रकार का प्रेम जब आध्यात्मिकता के क्षेत्र मे कार्य करने लगता है, तो वही हमे पराभक्ति की उपलब्धि कराता है।

# प्रेम का त्रिकोण

प्रेम की उपमा एक त्रिकोण से दी जा सकती है, जिसका प्रत्येक कोण प्रेम के एक एक अविभाज्य गुण का सूचक है। जिस प्रकार बिना तीनों कोणों के त्रिकोण नहीं बन सकता, उसी प्रकार निम्नलिखित तीन गुणों के बिना यथार्थ प्रेम का होना असम्भव है। इस प्रेमरूपी त्रिकोण का पहला कोण तो यह है कि प्रेम में किसी प्रकार का क्रय-विक्रय नहीं होता। जहाँ कहीं किसी बदले की आशा रहती है, वहाँ यथार्थ प्रेम कभी नहीं हो सकता, वह तो एक प्रकार की दूकानदारी सी हो जाती है। जब तक हमारे हृदय में इस प्रकार की थोड़ी सी भी भावना रहती है कि भगवान् की आराधना के बदले में हमें उससे कुछ मिले, तब तक हमारे हृदय में यथार्थ प्रेम का संचार नहीं हो सकता। जो लोग किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए ईश्वर की उपासना करते हैं, उन्हें यदि वह चीज न मिले, तो निश्चय ही वे उसकी आराधना करना छोड़ देंगे। भक्त भगवान् से इसलिए प्रेम करता है कि वह प्रेमास्पद है, सच्चे भक्त के इस दैवी प्रेम का और कोई हेतु नहीं रहता।

एक बार एक राजा किसी वन में गया। वहाँ उसे एक साधु मिले। साधु से थोड़ी देर बातचीत करके राजा उनकी पवित्रता और ज्ञान पर बड़ा मुग्ध हो गया। राजा ने उनसे प्रार्थना की, "महाराज, यदि आप मुझसे कोई भेंट ग्रहण करने की कृपा करें, तो धन्य हो जाऊँ।" पर साधु ने इन्कार कर दिया और कहा, "इस वन के फल मेरे लिए पर्याप्त हैं, पहाड़ों से निकले हुए शुद्ध पानी के झरने पीने को पर्याप्त जल दे देते हैं, वृक्षों की छालें मेरे शरीर को ढकने के लिए काफी हैं और पर्वतों की कन्दराएँ सुन्दर घर का काम देती हैं। मैं तुमसे अथवा अन्य किसीसे कोई भेंट क्यों लूँ?" राजा ने कहा, "महाराज, केवल मुझे कृतार्थ करने के लिए कृपया कुछ अवश्य स्वीकार कर लीजिए, और दया कर मेरे साथ चलकर मेरी राजधानी तथा महल को पवित्र कीजिए।" विशेष आग्रह के बाद साधु ने अन्त में राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसके साथ उसके महल को गये। साधु को भेंट देने के पहले राजा नियमानुसार अपनी दैनिक प्रार्थना करने लगा। उसने कहा, "हे ईश्वर, मुझे और अधिक सन्तान दो, मेरा धन और भी बढ़े, मेरा राज्य अधिकाधिक फैल जाय, मेरा शरीर स्वस्थ और नीरोग रहे," आदि आदि। राजा अपनी प्रार्थना समाप्त भी न कर पाया था कि साधु उठ खड़े हुए

ौर चुपके से कमरे के बाहर चल दिये। यह देखकर राजा बडे असमजस मे पड गया और चिल्लाता हुआ साधु के पीछे भागा, "महाराज, आप कहाँ जा रहे है, आपने तो मुझसे कोई भी भेंट ग्रहण नही की।" यह सुनकर वे साधु पीछे घूमकर राजा से बोले, "अरे भिखारी, मैं भिखारियो से भिक्षा नही माँगता। तू तो स्वय एक भिखारी है, मुझे किस प्रकार भिक्षा दे सकता है! मैं इतना मूर्ख नही कि तुझ जैसे भिखारी से कुछ लूं। जा, भाग जा, मेरे पीछे मत आ।"

इस कथा से ईश्वर के सच्चे प्रेमियो और साधारण भिखारियो मे भेद बडे सुन्दर ढग से प्रकट हुआ है। भिखारी की भाँति गिडगिडाना प्रेम की भाषा नही है। यहाँ तक कि, मुक्ति के लिए भगवान् की उपासना करना भी अधम उपासना मे गिना जाता है। प्रेम कोई पुरस्कार नही चाहता। प्रेम सर्वदा प्रेम के लिए ही होता है। भक्त इसलिए प्रेम करता है कि बिना प्रेम किये वह रह ही नही सकता। जब तुम किसी मनोहर प्राकृतिक दृश्य को देखकर उस पर मोहित हो जाते हो, तो उस दृश्य से तुम किसी फल की याचना नही करते और न वह दृश्य ही तुमसे कुछ माँगता है। फिर भी उस दृश्य का दर्शन तुम्हारे मन को बडा आनन्द देता है, वह तुम्हारे मन के घर्षणों को हल्का कर तुम्हे शान्त कर देता है और उस समय तक के लिए मानो तुम्हें अपनी नश्वर प्रकृति से ऊपर उठाकर एक स्वर्गीय आनन्द से भर देता है। सच्चे प्रेम का यह भाव उक्त त्रिकोणात्मक प्रेम का पहला कोण है। अपने प्रेम के बदले मे कुछ मत माँगो। सदैव देते ही रहो। भगवान् को अपना प्रेम दो, परन्तु बदले मे उससे कुछ भी माँगो मत।

प्रेम के इस त्रिकोण का दूसरा कोण है प्रेम का भय से नितान्त रहित होना। जो लोग भयवश भगवान् से प्रेम करते हैं, वे अधम मनुष्य हैं, उनमे अभी तक मनुष्यत्व का विकास नही हुआ। वे दण्ड के भय से ईश्वर की उपासना करते हैं। उनकी दृष्टि मे ईश्वर एक महान् पुरुष है, जिसके एक हाथ मे दण्ड है और दूसरे में चाबुक। उन्हे इस बात का डर रहता है कि यदि वे उसकी आज्ञा का पालन नही करेंगे, तो उन्हे कोडे लगाये जायँगे। पर दण्ड के भय से ईश्वर की उपासना करना सबसे निम्न कोटि की उपासना है। एक तो, वह उपासना कहलाने योग्य है ही नही, फिर भी यदि उसे उपासना कहे, तो वह प्रेम की सबसे भद्दी उपासना है। जब तक हृदय मे किसी प्रकार का भय है, तब तक प्रेम कैसे हो सकता है? प्रेम, स्वभावत सब प्रकार के भय पर विजय प्राप्त कर लेता है। उदाहरणार्थ, यदि एक युवती माँ सडक पर जा रही हो और उस पर कुत्ता भौंक पडे, तो वह डरकर समीपस्थ घर मे घुस जायगी। परन्तु मान लो, दूसरे दिन वही स्त्री अपने बच्चे के साथ जा रही है और उसके बच्चे पर शेर झपट पडता है। तो बताओ, वह क्या

करेगी ? बच्चे की रक्षा के लिए वह स्वयं शेर के मुँह में चली जायगी। सचमुच प्रेम समस्त भय पर विजय प्राप्त कर लेता है। भय इस स्वार्थपर भावना से उत्पन्न होता है कि मैं दुनिया से अलग हूँ। और जितना ही मैं अपने को क्षुद्र और स्वार्थपर बनाऊँगा मेरा भय उतना ही बढ़ेगा। यदि कोई मनुष्य अपने को एक छोटा सा तुच्छ जीव समझे तो भय उसे अवश्य घेर लेगा। और तुम अपने को जितना ही कम तुच्छ समझोगे तुम्हारे लिए भय भी उतना ही कम होगा। जब तक तुममें थोड़ा सा भी भय है तब तक तुम्हारे मानस-सरोवर में प्रेम की तरंगें नहीं उठ सकतीं। प्रेम और भय दोनों एक साथ कभी नहीं रह सकते। जो भगवान् से प्रेम करते हैं, उन्हें उससे डरना नहीं चाहिए। 'ईश्वर का नाम व्यर्थ में न लो' इस आदेश पर ईश्वर का सच्चा प्रेमी हँसता है। प्रेम के धर्म में ईश-निन्दा किस प्रकार सम्भव है ? ईश्वर का नाम तुम जितना ही लोगे फिर वह किसी भी प्रकार से क्यों न हो तुम्हारा उतना ही मंगल है। उससे प्रेम होने के कारण ही तुम उसका नाम लेते हो।

प्रेमरूपी त्रिकोण का तीसरा कोण है प्रेम में किसी प्रतिद्वन्द्वी का न होना क्योंकि इस प्रेम में ही प्रेमी का सर्वोच्च आदर्श मूर्त रहता है। सच्चा प्रेम तब तक नहीं होता जब तक हमारे प्रेम का पात्र हमारा सर्वोच्च आदर्श नहीं बन जाता। हो सकता है कि अनेक स्थलों में मनुष्य का प्रेम अनुचित दिशा में और अपात्र लगा जाता हो पर जो प्रेमी है उसके लिए तो उसका प्रेमपात्र ही उच्चतम आदर्श है। हो सकता है, कोई व्यक्ति अपना आदर्श सबसे निकृष्ट मनुष्य में देखे और कोई दूसरा किसी देव-मानव में पर प्रत्येक दशा में वह आदर्श ही है, जिसे सच्चे और प्रगाढ़ रूप से प्रेम किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के उच्चतम आदर्श को ही ईश्वर कहते हैं। ज्ञानी हो या अज्ञानी साधु हो या पापी पुरुष हो अथवा स्त्री शिक्षित हो अथवा अशिक्षित प्रत्येक दशा में मनुष्य मात्र का परमोच्च आदर्श ही ईश्वर है। सौन्दर्य उदात्तता और शक्ति के उच्चतम आदर्शों के योग में ही हमें प्रेममय एवं प्रेमास्पद ईश्वर का पूर्णतम भाव मिलता है।

स्वभावतः ही ये आदर्श किसी न किसी रूप में प्रत्येक व्यक्ति के मन में वर्तमान रहते हैं। वे मानो हमारे मन के अंग या अंशविशेष हैं। उन आदर्शों को व्यावहारिक जीवन में परिणत करने के जो सब प्रयत्न हैं, वे ही मानवीय प्रकृति की नाना विध क्रियाओं के रूप में प्रकट होते हैं। विभिन्न जीवात्माओं में जो विविध आदर्श निहित हैं वे बाहर आकर मूर्त रूप धारण करने की सतत चेष्टा कर रहे हैं, और इसके फलस्वरूप हम अपने चारों ओर समाज में नाना प्रकार की गतियाँ और हलचल देखते हैं। जो कुछ भीतर है वही बाहर आने का प्रयत्न करता है।

आदर्श का यह नित्य प्रबल प्रभाव ही एक ऐसी कार्यकरी शक्ति है, जो मानव जीवन मे सतत क्रियाशील है। हो सकता है, सैकडो जन्म के वाद, हजारो वर्ष सघर्ष करने के पश्चात्, मनुष्य समझे कि अपना अभ्यन्तरस्थ आदर्श वाहरी वातावरण और अवस्थाओ के साथ पूरी तरह मेल नही खा सकता। और जव वह यह समझ जाता है, तव वाहरी जगत् को अपने आदर्श के अनुसार गढने की फिर अधिक चेष्टा नही करता। तब वह इस प्रकार के सारे प्रयत्न छोडकर प्रेम की उच्चतम भूमि से, स्वय आदर्श की आदर्श-रूप से उपासना करने लगता है। यह पूर्ण आदर्श अपने मे अन्य सब छोटे छोटे आदर्शों को समा लेता है। सभी लोग इस वात की सत्यता स्वीकार करते हैं कि प्रेमी इथियोपिया की भौंहो मे भी हेलेन का सौन्दर्य देखता है। तटस्थ लोग कह सकते हैं कि यहाँ प्रेम स्थान-भ्रष्ट हो गया है, पर जो प्रेमी है, वह अपनी हेलेन को ही सर्वदा देखता है, इथियोपिया को विल्कुल नही देखता। हेलेन हो या इथियोपिया, वास्तव मे हमारे प्रेम के आधार तो मानो कुछ केन्द्र हैं, जिनके चारो ओर हमारे आदर्श मूर्त होते है। ससार साधारणत किसकी उपासना करता है?—अवश्य उच्चतम भक्त और प्रेमी के सर्वावगाही पूर्ण आदर्श की नही। स्त्री-पुरुष साधारणत उसी आदर्श की उपासना करते हैं, जो उनके अपने हृदय मे है। प्रत्येक व्यक्ति अपना अपना आदर्श वाहर प्रक्षिप्त करके उसके सम्मुख भूमिष्ठ हो प्रणाम करता है। इसीलिए हम देखते हैं कि जो लोग निर्दयी और खूनी होते हैं, वे एक रक्तपिपासु ईश्वर की ही कल्पना करते तथा उसे भजते हैं, क्योकि वे अपने सर्वोच्च आदर्श की ही उपासना कर सकते है। और इसीलिए साधुजनो का ईश्वर सम्वन्धी आदर्श वहुत ऊँचा होता है, और वास्तव मे वह अन्य लोगो के आदर्श से वहुत भिन्न है।

# प्रेममय ईश्वर स्वयं ही अपना प्रमाण है

जो प्रेमी स्वार्थपरता और भय के परे हो गया है, जो फलाकांक्षाशून्य हो गया है, उसका आदर्श क्या है? वह परमेश्वर से भी यही कहेगा, 'मैं तुम्हें अपना सर्वस्व अर्पित करता हूँ, मैं तुमसे कोई चीज नहीं चाहता। वास्तव में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे मैं अपना कह सकूँ।' जब मनुष्य इस प्रकार की अवस्था प्राप्त कर लेता है, तब उसका आदर्श पूर्ण प्रेम के, प्रेमजनित पूर्ण निर्भीकता के आदर्श में परिणत हो जाता है। इस प्रकार के व्यक्ति के सर्वोच्च आदर्श में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं रह जाती—वह किसी विशेष भाव द्वारा सीमित नहीं रहता। वह आदर्श तो सार्वभौमिक प्रेम, अनन्त और असीम प्रेम, पूर्ण स्वतन्त्र प्रेम का आदर्श होता है; यही क्यों, वह साक्षात् प्रेमस्वरूप होता है। तब प्रेम-धर्म के इस महान् आदर्श की उपासना किसी प्रतीक या प्रतिमा के सहारे नहीं करनी पड़ती, वरन् तब तो वह आदर्श के रूप में ही उपासित होता है। इस प्रकार के एक सार्वभौमिक आदर्श की आदर्शरूप से उपासना सबसे उत्कृष्ट प्रकार की पराभक्ति है। भक्ति के अन्य सब प्रकार तो इस पराभक्ति की प्राप्ति में केवल सोपानस्वरूप हैं।

इस प्रेम-धर्म के पथ में चलते चलते हमें जो सफलताएँ और असफलताएँ मिलती हैं, वे सबकी सब उस आदर्श की प्राप्ति के मार्ग पर ही घटती हैं—अर्थात् प्रकारान्तर से वे उसमें सहायता ही पहुँचाती हैं। साधक एक के बाद दूसरी वस्तु लेता जाता है और उस पर अपना आभ्यन्तरिक आदर्श प्रक्षिप्त करता जाता है। क्रमशः ये सारी बाह्य वस्तुएँ इस सतत विस्तारशील आभ्यन्तरिक आदर्श को प्रकाशित करने के लिए अनुपयुक्त सिद्ध होती हैं और इसलिए स्वभावतः एक एक करके उनका परित्याग कर दिया जाता है। अन्त में साधक समझ जाता है कि बाह्य वस्तुओं में आदर्श की उपलब्धि करने का प्रयत्न व्यर्थ है और ये सब बाह्य वस्तुएँ तो आदर्श की तुलना में बिलकुल तुच्छ हैं। कालान्तर में वह उस सर्वोच्च और सम्पूर्ण निर्विशेष भावात्मक सूक्ष्म आदर्श को अन्तर में ही जीवन्त और सत्य रूप में अनुभव करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। जब भक्त इस अवस्था में पहुँच जाता है, तब उसमें ये सब तर्क-वितर्क नहीं उठते कि भगवान् को सिद्ध किया जा सकता है अथवा नहीं, भगवान् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है या नहीं। उसके लिए तो भगवान् प्रेममय हैं—प्रेम का सर्वोच्च आदर्श हैं, और बस, यह जानना ही उसके लिए यथेष्ट

है। भगवान् प्रेमरूप होने के कारण स्वत सिद्ध है, वह अन्य किसी प्रमाण की अपेक्षा नही रखता। प्रेमी के पास प्रेमास्पद का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए किसी बात की आवश्यकता नही। अन्यान्य धर्मों के न्यायकर्ता भगवान् का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए बहुत से प्रमाणो की आवश्यकता हो सकती है, पर भक्त तो ऐसे भगवान् की बात मन मे भी नही ला सकता। उसके लिए तो भगवान् केवल प्रेम-स्वरूप है। 'हे प्रिये, कोई भी स्त्री पति से, पति के लिए प्रेम नही करती, वरन् पति मे स्थित आत्मा के लिए ही वह पति से प्रेम करती है। हे प्रिये, कोई भी पुरुष पत्नी से, पत्नी के लिए प्रेम नही करता, वरन् पत्नी मे स्थित आत्मा के लिए ही प्रेम करता है।'

कोई कोई कहते हैं कि स्वार्थपरता ही समस्त मानवीय कार्यों की एकमात्र प्रेरक शक्ति है। किन्तु वह भी तो प्रेम है, पर हाँ, वह प्रेम विशिष्ट होने के कारण निम्न भावापन्न हो गया है—बस, इतना ही। जब मैं अपने को ससार की सारी वस्तुओ मे अवस्थित सोचता हूँ, तब निश्चय ही मुझमे किसी प्रकार की स्वार्थपरता नही रह सकती। किन्तु जब मैं भ्रम मे पडकर अपने आपको एक छोटा सा प्राणी सोचने लगता हूँ, तब मेरा प्रेम सकीर्ण हो जाता है—एक विशिष्ट भाव से सीमित हो जाता है। प्रेम के क्षेत्र को सकीर्ण और मर्यादित कर लेना ही हमारा भ्रम है। इस विश्व की सारी वस्तुएँ भगवान् से निकली है, अतएव वे सभी हमारे प्रेम के योग्य हैं। पर हम यह सर्वदा स्मरण रखे कि समष्टि को प्यार करने से ही अशो को भी प्यार करना हो जाता है। यह समष्टि ही भक्त का भगवान् है। अन्यान्य प्रकार के ईश्वर—जैसे, स्वर्ग मे रहनेवाले पिता, शास्ता, स्रष्टा—तथा नानाविध मतवाद और शास्त्र-ग्रन्थ भक्त के लिए कुछ अर्थ नही रखते—उसके लिए इन सबका कोई प्रयोजन नही, क्योकि वह तो पराभक्ति के प्रभाव से पूर्णतया इन सबके ऊपर उठ गया है। जब हृदय शुद्ध और पवित्र हो जाता है, तथा दैवी प्रेमामृत से आप्लावित हो जाता है, तब ईश्वर सम्बन्धी अन्य सब धारणाएँ बच्चो की बात सी प्रतीत होने लगती हैं और वे अपूर्ण एव अनुपयुक्त समझकर त्याग दी जाती हैं। सचमुच, पराभक्ति का प्रभाव ही ऐसा है! तब वह पूर्णताप्राप्त भक्त अपने भगवान् को मन्दिरो और गिरजो मे खोजने नही जाता, उसके लिए तो ऐसा कोई स्थान ही नही, जहाँ वह न हो। वह उसे मन्दिर के भीतर और बाहर सर्वत्र देखता है। साधु की साधुता मे और दुष्ट की दुष्टता मे भी वह उसके दर्शन करता है, क्योकि उसने तो उस महिमामय प्रभु को पहले से ही अपने हृदय-सिंहासन पर बिठा लिया है और वह जानता है कि वह एक सर्वशक्तिमान एव अनिर्वाण प्रेमज्योति के रूप मे उसके हृदय मे नित्य दीप्तिमान है और सदा से वर्तमान है।

# प्रेममय ईश्वर स्वयं ही अपना प्रमाण है

जो प्रेमी स्वार्थपरता और भय के परे हो गया है, जो फलाकांक्षाशून्य हो गया है, उसका आदर्श क्या है? वह परमेश्वर से भी यही कहेगा, मैं तुम्हें अपना सर्वस्व अर्पित करता हूँ, मैं तुमसे कोई चीज नहीं चाहता। वास्तव में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे मैं अपना कह सकूँ। जब मनुष्य इस प्रकार की अवस्था प्राप्त कर लेता है, तब उसका आदर्श पूर्ण प्रेम के, प्रेमजनित पूर्ण निर्भीकता के आदर्श में परिणत हो जाता है। इस प्रकार के व्यक्ति के सर्वोच्च आदर्श में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं रह जाती—वह किसी विशेष भाव द्वारा सीमित नहीं रहता। वह आदर्श तो सार्वभौमिक प्रेम, अनन्त और असीम प्रेम, पूर्ण स्वतन्त्र प्रेम का आदर्श होता है; यही क्यों, वह साक्षात् प्रेमस्वरूप होता है। तब प्रेम-धर्म के इस महान् आदर्श की उपासना किसी प्रतीक या प्रतिमा के सहारे नहीं करनी पड़ती, वरन् तब तो वह आदर्श के रूप में ही उपासित होता है। इस प्रकार के एक सार्वभौमिक आदर्श की आदर्शरूप से उपासना सबसे उत्कृष्ट प्रकार की पराभक्ति है। भक्ति के अन्य सब प्रकार तो इस पराभक्ति की प्राप्ति में केवल सोपानस्वरूप हैं।

इस प्रेम-धर्म के पथ में चलते चलते हमें जो सफलताएँ और असफलताएँ मिलती हैं, वे सबकी सब उस आदर्श की प्राप्ति के मार्ग पर ही घटती हैं—अर्थात् प्रकारान्तर से वे उसमें सहायता ही पहुँचाती हैं। साधक एक के बाद दूसरी वस्तु लेता जाता है और उस पर अपना आभ्यन्तरिक आदर्श प्रक्षिप्त करता जाता है। क्रमशः ये सारी बाह्य वस्तुएँ इस सतत विस्तारशील आभ्यन्तरिक आदर्श को प्रकाशित करने के लिए अनुपयुक्त सिद्ध होती हैं और इसलिए स्वभावतः एक एक करके उनका परित्याग कर दिया जाता है। अन्त में साधक समझ जाता है कि बाह्य वस्तुओं में आदर्श की उपलब्धि करने का प्रयत्न व्यर्थ है और ये सब बाह्य वस्तुएँ तो आदर्श की तुलना में बिलकुल तुच्छ हैं। कालान्तर में वह उस सर्वोच्च और सम्पूर्ण निर्विशेष-भावापन्न सूक्ष्म आदर्श को अन्तर में ही जीवन्त और सत्य रूप से अनुभव करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। जब भक्त इस अवस्था में पहुँच जाता है, तब उसमें ये सब तर्क-वितर्क नहीं उठते कि भगवान् को सिद्ध किया जा सकता है अथवा नहीं, भगवान् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान हैं या नहीं। उसके लिए तो भगवान् प्रेममय हैं—प्रेम का सर्वोच्च आदर्श हैं, और बस, यह जानना ही उसके लिए यथेष्ट

इसके बाद है 'सख्य' प्रेम। इस सख्य प्रेम का साधक भगवान् से कहता है, 'तुम मेरे प्रिय सखा हो।'[1] जिस प्रकार एक व्यक्ति अपने मित्र के सम्मुख अपना हृदय खोल देता है और यह जानता है कि उसका मित्र उसके अवगुणो पर कभी ध्यान न देगा, वरन् उसकी सदा सहायता ही करेगा—उन दोनो मे जिस प्रकार समानता का एक भाव रहता है, उसी प्रकार सख्य प्रेम के साधक और उसके सखा भगवान् के बीच भी मानो एक प्रकार की समानता का भाव रहता है। इस तरह भगवान् हमारा अन्तरग मित्र हो जाता है, जिसको हम अपने जीवन की सारी बाते दिल खोलकर बता सकते हैं, जिसके समक्ष हम अपने हृदय के गुप्त से गुप्त भावो को भी विना किसी हिचकिचाहट के प्रकट कर सकते हैं। उस पर हम पूरा भरोसा—पूरा विश्वास रख सकते हैं कि वह वही करेगा, जिससे हमारा मगल होगा, और ऐसा सोचकर हम पूर्ण रूप से निश्चिन्त रह सकते हैं। इस अवस्था मे भक्त भगवान् को अपनी बराबरी का समझता है—भगवान् मानो हमारा सगी हो, सखा हो। हम सभी इस ससार मे मानो खेल रहे है। जिस प्रकार बच्चे अपना खेल खेलते हैं, जिस प्रकार बडे बडे राजा-महाराजा और सम्राट् अपना अपना खेल खेलते हैं, उसी प्रकार वह प्रेमस्वरूप भगवान् भी इस दुनिया के साथ खेल खेल रहा है। वह पूर्ण है—उसे किसी चीज का अभाव नही। उसे सृष्टि करने की क्या आवश्यकता है? जब हमे किसी चीज की आवश्यकता होती है, तभी हम उसकी पूर्ति के लिए क्रियाशील होते है, और अभाव का तात्पर्य ही है अपूर्णता। भगवान् पूर्ण है—उसे किसी बात का अभाव नही। तो फिर वह इस नित्य कर्ममय सृष्टि मे क्यो लगा है? उसका उद्देश्य क्या है? भगवान् के सृष्टि-निर्माण के सम्बन्ध मे जो सब भिन्न भिन्न कल्पनाएँ हैं, वे किवदन्तियो के रूप मे ही भली हो सकती हैं, अन्य किसी प्रकार नही। सचमुच, यह समस्त उसकी लीला है। यह सारा विश्व उसका ही खेल है—वह तो उसके लिए एक तमाशा है। यदि तुम निर्धन हो, तो उस निर्धनता को ही एक बडा तमाशा समझो, यदि धनी हो, तो उस धनीपन को ही एक तमाशे के रूप मे देखो। यदि दु ख आये, तो वही एक सुन्दर तमाशा है, और यदि सुख प्राप्त हो, तो सोचो, यह भी एक सुन्दर तमाशा है। यह दुनिया बस, एक खेल का मैदान है, और हम सब यहाँ पर नाना प्रकार के खेल-खिलवाड कर रहे हैं—मौज कर रहे हैं। भगवान् सारे समय हमारे साथ खेल रहा है और हम भी उसके साथ खेलते रहते हैं। भगवान् तो हमारा चिरकाल का सगी है—हमारे खेल का साथी है। कैसा सुन्दर खेल रहा है वह! खेल खतम हुआ कि कल्प का अन्त हो गया!

---

१ त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव॥ पाण्डव गीता॥

फिर अल्प या अधिक समय तक विश्राम—उसके बाद फिर से खेल का आरम्भ—पुनः जगत् की सृष्टि ! जब तुम भूल जाते हो कि यह सब एक खेल है और तुम इस खेल में सहायता कर रहे हो, तभी दुःख और कष्ट तुम्हारे पास आते हैं। तब हृदय भारी हो जाता है और संसार अपने प्रचण्ड बोझ से तुम्हें दबा देता है। पर ज्यों ही तुम इस दो पल के जीवन की परिवर्तनशील घटनाओं को सत्य समझना छोड़ देते हो और इस संसार को एक क्रीड़ाभूमि तथा अपने आपको भगवान् की क्रीड़ा में एक सखा-सहयोगी सोचने लगते हो, त्यों ही दुःख-कष्ट चला जाता है। वह तो प्रत्येक अणु-परमाणु में खेल रहा है। वह तो खेलते खेलते ही पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र आदि का निर्माण कर रहा है। वह तो मानव-हृदय, प्राणियों और पेड़-पौधों के साथ क्रीड़ा कर रहा है। हम मानो उसके शतरंज के मोहरे हैं। वह मोहरों को शतरंज के खानों में बिठाकर इधर-उधर चला रहा है। वह हमें कभी एक प्रकार से सजाता है और कभी दूसरे प्रकार से—हम भी जाने या अनजाने उसके खेल में सहायता कर रहे हैं। अहा, कैसा परमानन्द है ! हम सब उसके खेल के साथी जो हैं !

इसके बाद है 'वात्सल्य' प्रेम। उसमें भगवान् का चिन्तन पिता-रूप से न करके सन्तान-रूप से करना पड़ता है। हो सकता है, यह कुछ अजीब सा मालूम हो, पर उसका उद्देश्य है—अपनी भगवान् सम्बन्धी धारणा से ऐश्वर्य के समस्त भाव दूर कर देना। ऐश्वर्य की भावना के साथ ही भय आता है। पर प्रेम में भय का कोई स्थान नहीं। यह सत्य है कि चरित्र-गठन के लिए भक्ति और आज्ञा-पालन आवश्यक हैं, पर जब एक बार चरित्र गठित हो जाता है—जब प्रेमी शान्त प्रेम का आस्वादन कर लेता है और जब प्रेम की प्रबल उन्मत्तता का भी उसे थोड़ा सा अनुभव हो जाता है, तब उसके लिए नीतिशास्त्र और साधन-नियम आदि की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। प्रेमी कहता है कि भगवान् को महामहिम ऐश्वर्यशाली, जगन्नाथ या देवदेव के रूप में सोचने की मेरी इच्छा ही नहीं होती। भगवान् के साथ सम्बन्धित यह जो भयोत्पादक ऐश्वर्य की भावना है, उसीको दूर करने के लिए वह भगवान् को अपनी सन्तान के रूप में प्यार करता है। माता-पिता अपने बच्चे से भयभीत नहीं होते, उसके प्रति उनकी श्रद्धा नहीं होती। वे उस बच्चे से कुछ याचना नहीं करते। बच्चा तो सदा पानेवाला ही होता है और उसके लिए वे सौ सौ बार भी मरने को तैयार रहते हैं। अपने एक बच्चे के लिए वे लोग हजार जीवन भी न्योछावर करने को प्रस्तुत रहते हैं। बस इसी प्रकार भगवान् से वात्सल्य-भाव से प्रेम किया जाता है। जो सम्प्रदाय भगवान् के अवतार में विश्वास करते हैं, उन्हींमें यह वात्सल्य भाव की उपासना स्वाभाविक

रूप से आती और पनपती है। मुसलमानो के लिए भगवान् को एक सन्तान के रूप मे मानना असम्भव है, वे तो डरकर इस भाव से दूर ही रहेगे। पर ईसाई और हिन्दू इसे सहज ही समझ सकते हैं, क्योकि उनके तो बाल ईसा और बाल कृष्ण है। भारतीय रमणियाँ बहुधा अपने आपको श्री कृष्ण की माता के रूप मे सोचती है। ईसाई माताएँ भी अपने आपको ईसा की माता के रूप मे सोच सकती हैं। इससे पाश्चात्य देशो मे ईश्वर के मातृभाव का प्रचार होगा, और इसीकी आज उन्हे विशेष आवश्यकता है। भगवान् के प्रति भय और भक्ति के कुसस्कार हमारे हृदय मे बहुत गहरे जमे हुए हैं और भगवत्सम्बन्धी इन भय और भक्ति तथा महिमा-ऐश्वर्य के भावो को प्रेम मे बिल्कुल निमग्न कर देने मे बहुत समय लगता है।

प्रेम का यह दिव्य रूप एक और मानवीय भाव मे प्रकाशित होता है। उसे 'मधुर' कहते हैं और वही सब प्रकार के प्रेमो मे श्रेष्ठ है। इस ससार मे प्रेम की जो उच्चतम अभिव्यक्ति है, वही उसकी नीव है और मानवीय प्रेमो मे वही सबसे प्रबल है। पुरुष और स्त्री के बीच जो प्रेम रहता है, उसके समान और कौन सा प्रेम है, जो मनुष्य की सारी प्रकृति को बिल्कुल उलट-पलट दे, जो उसके प्रत्येक परमाणु मे सचरित होकर उसको पागल बना दे, उसकी अपनी प्रकृति को ही भुला दे, और उसे चाहे तो देवता बना दे, चाहे दैत्य ? दैवी प्रेम के इस मधुर भाव मे भगवान् का चिन्तन पतिरूप मे किया जाता है—ऐसा विचार कि हम सभी स्त्रियाँ हैं, इस ससार मे और कोई पुरुष नही, एक ही पुरुष है और वह है हमारा प्रेमास्पद भगवान्। जो प्रेम पुरुष स्त्री के प्रति और स्त्री पुरुष के प्रति प्रदर्शित करती है, वही प्रेम भगवान् को देना होगा।

हम इस ससार मे जितने प्रकार के प्रेम देखते हैं, जिनके साथ हम अल्प या अधिक परिमाण मे क्रीडा मात्र कर रहे हैं, उन सबका एक ही लक्ष्य है और वह है भगवान्। पर दुःख की बात है कि मनुष्य उस अनन्त समुद्र को नही जानता, जिसकी ओर प्रेम की यह महान् सरिता सतत प्रवाहित हो रही है, और इसलिए अज्ञानवश वह इस प्रेम-सरिता को बहुधा छोटे छोटे मानवी पुतलो की ओर बहाने का प्रयत्न करता रहता है। मानवी प्रकृति मे सन्तान के प्रति जो प्रबल स्नेह देखा जाता है, वह सन्तान-रूपी एक छोटे से पुतले के लिए ही नही है। यदि तुम आँखे बन्द कर उसे केवल सन्तान पर ही न्योछावर कर दो, तो तुम्हे उसके फलस्वरूप दुःख अवश्य भोगना पडेगा। पर इस प्रकार के दुःख से ही तुममे यह चेतना जाग्रत होगी कि यदि तुम अपना प्रेम किसी मनुष्य को अर्पित करो, तो उसके फलस्वरूप कभी न कभी दुःख-

फिर अल्प या अधिक समय तक विश्राम—उसके बाद फिर से खेल का आरम्भ—पुनः जगत् की सृष्टि ! जब तुम भूल जाते हो कि यह सब एक खेल है और तुम इस खेल में सहायता कर रहे हो, तभी दुःख और कष्ट तुम्हारे पास आते हैं। तब हृदय भारी हो जाता है और संसार अपने प्रचण्ड बोझ से तुम्हें दबा देता है। पर ज्यों ही तुम इस दो पल के जीवन की परिवर्तनशील घटनाओं को सत्य समझना छोड़ देते हो और इस संसार को एक क्रीड़ाभूमि तथा अपने आपको भगवान् की क्रीड़ा में एक सखा-संगी सोचने लगते हो, त्यों ही दुःख-कष्ट चला जाता है। वह तो प्रत्येक अणु-परमाणु में खेल रहा है। वह तो खेलते खेलते ही पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र आदि का निर्माण कर रहा है। वह तो मानव-हृदय, प्राणियों और पेड़-पौधों के साथ क्रीड़ा कर रहा है। हम मानो उसके शतरंज के मोहरे हैं। वह मोहरों को शतरंज के खानों में बिठाकर इधर-उधर चला रहा है। वह हमें कभी एक प्रकार से सजाता है और कभी दूसरे प्रकार से—हम भी जाने या अनजाने उसके खेल में सहायता कर रहे हैं। अहा, कैसा परमानन्द है ! हम सब उसके खेल के साथी जो हैं !

इसके बाद है 'वात्सल्य' प्रेम। उसमें भगवान् का चिन्तन पिता-रूप से न करके सन्तान-रूप से करना पड़ता है। हो सकता है, यह कुछ अजीब सा मालूम हो, पर उसका उद्देश्य है—अपनी भगवान् सम्बन्धी धारणा से ऐश्वर्य के समस्त भाव दूर कर देना। ऐश्वर्य की भावना के साथ ही भय आता है। पर प्रेम में भय का कोई स्थान नहीं। यह सत्य है कि चरित्र-गठन के लिए भक्ति और आज्ञा-पालन आवश्यक है, पर जब एक बार चरित्र गठित हो जाता है—जब प्रेमी शान्त प्रेम का आस्वादन कर लेता है और जब प्रेम की प्रबल उन्मत्तता का भी उसे थोड़ा सा अनुभव हो जाता है, तब उसके लिए नीतिशास्त्र और साधन-नियम आदि की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। प्रेमी कहता है कि भगवान् को महामहिम ऐश्वर्यशाली जगन्नाथ या देवदेव के रूप में सोचने की मेरी इच्छा ही नहीं होती। भगवान् के साथ सम्बन्धित यह जो भयोत्पादक ऐश्वर्य की भावना है, उसीको दूर करने के लिए वह भगवान् को अपनी सन्तान के रूप में प्यार करता है। माता-पिता अपने बच्चे से भयभीत नहीं होते, उसके प्रति उनकी श्रद्धा नहीं होती। वे उस बच्चे से कुछ याचना नहीं करते। बच्चा तो सदा पानेवाला ही होता है और उसके लिए वे लोग सौ बार भी मरने को तैयार रहते हैं। अपने एक बच्चे के लिए वे लोग हजार जीवन भी न्योछावर करने को प्रस्तुत रहते हैं। बस, इसी प्रकार भगवान् से वात्सल्य भाव से प्रेम किया जाता है। जो सम्प्रदाय भगवान् के अवतार में विश्वास करते हैं, उन्हीं में यह वात्सल्य-भाव की उपासना स्वाभाविक

उपयोगी मानकर ग्रहण करते हैं। पर मूर्ख लोग इसे नही समझते—और वे कभी समझेंगे भी नही। वे उसे केवल भौतिक दृष्टि से देखते हैं। वे इस आध्यात्मिक प्रेमोन्मत्तता को नही समझ पाते। और वे समझ भी कैसे सके? 'हे प्रियतम, तुम्हारे अधरो के केवल एक चुम्बन के लिए! जिसका तुमने एक बार चुम्बन किया है, तुम्हारे लिए उसकी पिपासा बढती ही जाती है। उसके समस्त दु ख चले जाते है। वह तुम्हे छोड और सब कुछ भूल जाता है।'[1] प्रियतम के उस चुम्बन के लिए—उनके अधरो के उस स्पर्श के लिए व्याकुल होओ, जो भक्त को पागल कर देता है, जो मनुष्य को देवता बना देता है। भगवान् जिसको एक बार अपना अधरामृत देकर कृतार्थ कर देते हैं, उसकी सारी प्रकृति बिल्कुल बदल जाती है। उसके लिए यह जगत् उड जाता है, सूर्य और चन्द्र का कोई अस्तित्व नही रह जाता और यह सारा विश्व-ब्रह्माण्ड एक बिन्दु के समान प्रेम के उस अनन्त सिन्धु मे न जाने कहाँ विलीन हो जाता है। प्रेमोन्माद की यही चरम अवस्था है।

पर सच्चा भगवत्प्रेमी यहाँ पर भी नही रुकता, उसके लिए तो पति और पत्नी की प्रेमोन्मत्तता भी यथेष्ट नही। अतएव ऐसे भक्त अवैध (परकीय) प्रेम का भाव ग्रहण करते है, क्योकि वह अत्यन्त प्रबल होता है। पर देखो, उसकी अवैधता उनका लक्ष्य नही है। इस प्रेम का स्वभाव ही ऐसा है कि उसे जितनी बाधा मिलती है, वह उतना ही उग्र रूप धारण करता है। पति-पत्नी का प्रेम अबाध रहता है—उसमे किसी प्रकार की विघ्न-बाधा नही आती। इसीलिए भक्त कल्पना करता है, मानो कोई स्त्री परपुरुष मे आसक्त है और उसके माता, पिता या स्वामी उसके इस प्रेम का विरोध करते हैं। इस प्रेम के मार्ग मे जितनी ही बाधाएँ आती है, वह उतना ही प्रबल रूप धारण करता जाता है। श्री कृष्ण वृन्दावन के कुजो मे किस प्रकार लीला करते थे, किस प्रकार सब लोग उन्मत्त होकर उनसे प्रेम करते थे, किस प्रकार उनकी बाँसुरी की मधुर तान सुनते ही चिरधन्य गोपियाँ सब कुछ भूलकर, इस ससार और इसके समस्त बन्धनो को भूलकर, यहाँ के सारे कर्तव्य तथा सुख-दु ख को बिसराकर, उन्मत्त सी उनसे मिलने के लिए छूट पडती थी—यह सब मानवी भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। मानव, हे मानव, तुम दैवी प्रेम की बातें तो करते हो, पर

---

१ सुरतवर्धन शोकनाशन स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।
इतररागविस्मारण नृणा वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्॥
—श्रीमद्भागवत ॥१०।३१॥

कष्ट अवश्य प्राप्त होगा। अतएव हमें अपना प्रेम उसी पुरुषोत्तम को देना होगा जिसका विनाश नहीं, जिसमें कभी परिवर्तन नहीं और जिसके प्रेम-समुद्र में कभी ज्वार-भाटा नहीं। प्रेम को अपने प्रकृत लक्ष्य पर पहुँचना चाहिए—उसे तो उसके निकट जाना चाहिए, जो वास्तव में प्रेम का अनन्त सागर है। सभी नदियाँ समुद्र में ही जाकर गिरती हैं। यहाँ तक कि पर्वत से गिरनेवाली पानी की एक बूँद भी, वह फिर कितनी भी बड़ी क्यों न हो, किसी झरने या नदी में पहुँचकर बस वहीं नहीं रुक जाती, वरन् वह भी अन्त में किसी न किसी प्रकार समुद्र में ही पहुँच जाती है। भगवान् हमारे सब प्रकार के भावों का एकमात्र लक्ष्य है। यदि तुम्हें क्रोध करना है, तो भगवान् पर क्रोध करो। उलाहना देना है, तो अपने प्रेमास्पद को उलाहना दो—अपने सखा को उलाहना दो। भला अन्य किसे तुम बिना डर के उलाहना दे सकते हो? मर्त्य जीव तुम्हारे क्रोध को न सह सकेगा। वहाँ तो प्रतिक्रिया होगी। यदि तुम मुझ पर क्रोध करो, तो निश्चित है, मैं तुरन्त प्रतिक्रिया करूँगा, क्योंकि मैं तुम्हारे क्रोध को सह नहीं सकता। अपने प्रेमास्पद से कहो, 'प्रियतम, तुम मेरे पास क्यों नहीं आते? तुमने क्यों मुझे इस प्रकार अकेला छोड़ रखा है?' उसको छोड़ भला और किसमें आनन्द है? मिट्टी के छोटे छोटे लोंदों में भला कौन सा आनन्द हो सकता है? हमें तो अनन्त आनन्द के घनीभूत सार को ही खोजना है—और भगवान् ही आनन्द का वह घनीभूत सार है। आओ, हम अपने समस्त भावों और समस्त प्रवृत्तियों को उसकी ओर मोड़ दें। वे सब उसीके लिए हैं। वे यदि अपना लक्ष्य चूक जायँ, तो वे फिर कुत्सित रूप धारण कर लेंगी। पर यदि वे अपने ठीक लक्ष्य-स्वरूप ईश्वर में जाकर पहुँचें, तो उनमें से अत्यन्त नीच वृत्ति भी पूर्णरूपेण परिवर्तित हो जायगी। भगवान् ही मनुष्य के मन और शरीर की समस्त शक्तियों का एकमात्र लक्ष्य है—एकायन है,—फिर वे शक्तियाँ किसी भी रूप से क्यों न प्रकट हों। मानव-हृदय का समस्त प्रेम—सारे भाव भगवान् की ही ओर जायँ। वही हमारा एकमात्र प्रेमास्पद है। यह मानव-हृदय भला और किसे प्यार करेगा? वह परम सुन्दर है, परम महान् है—अहा! वह साक्षात् सौन्दर्यस्वरूप है, दिव्यतास्वरूप है। इस संसार में भला और कौन है, जो उससे अधिक सुन्दर हो? उसे छोड़ इस दुनिया में भला और कौन पति होने के उपयुक्त है? उसके सिवा इस जगत् में भला और कौन हमारा प्रेम-पात्र हो सकता है? अतः वही हमारा पति हो, वही हमारा प्रेमास्पद हो।

बहुधा ऐसा होता है कि भगवत्प्रेम में छके भक्तगण जब इस भगवत्प्रेम का वर्णन करने जाते हैं, तो इसके लिए वे सब प्रकार के मानवी प्रेम की भाषा को

# उपसंहार

जब प्रेम का यह उच्चतम आदर्श प्राप्त हो जाता है, तो ज्ञान फिर न जाने कहाँ चला जाता है। तब भला ज्ञान की इच्छा भी कौन करे? तब तो मुक्ति, उद्धार, निर्वाण की बातें न जाने कहाँ गायब हो जाती हैं। इस दैवी प्रेम मे छके रहने से फिर भला कौन मुक्त होना चाहेगा? 'प्रभो! मुझे धन, जन, सौन्दर्य, विद्या, यहाँ तक कि, मुक्ति भी नही चाहिए। बस, इतनी ही साध है कि जन्म जन्म मे तुम्हारे प्रति मेरी अहैतुकी भक्ति बनी रहे।'[1] भक्त कहता है, "मैं शक्कर हो जाना नही चाहता, मुझे तो शक्कर खाना अच्छा लगता है।" तब भला कौन मुक्त हो जाने की इच्छा करेगा? कौन भगवान् के साथ एक हो जाने की कामना करेगा? भक्त कहता है, "मैं जानता हूँ कि मैं ही वह हूँ, तो भी मैं उससे अपने को अलग रखूंगा और उससे पृथक् रहूँगा, ताकि मैं उस प्रियतम मे आनन्द ले सकूं।" प्रेम के लिए प्रेम—यही भक्त का सर्वोच्च सुख है। प्रियतम मे आनन्द लेने के लिए कौन हज़ार बार भी बद्ध होने को तैयार न होगा? एक सच्चा भक्त प्रेम को छोड और किसी वस्तु की कामना नही करता। वह स्वय प्रेम करना चाहता है, और चाहता है कि भगवान् भी उससे प्रेम करे। उसका निष्काम प्रेम नदी के प्रवाह की विरुद्ध दिशा मे जानेवाले ज्वार के समान है। वह मानो नदी के उद्गम-स्थान की ओर, स्रोत की विपरीत दिशा मे जाता है। ससार उसको पागल कहता है। मैं एक ऐसे महापुरुष[2] को जानता हूँ, जिन्हे लोग पागल कहते थे। इस पर उसका उत्तर था, "भाइयो, सारा ससार ही तो एक पागलखाना है। कोई सासारिक प्रेम के पीछे पागल है, कोई नाम के पीछे, कोई यश के लिए, तो कोई पैसे के लिए। फिर कोई ऐसे भी हैं, जो उद्धार पाने या स्वर्ग जाने के लिए पागल हैं। इस विराट् पागलखाने मे मैं भी एक पागल हूँ—मैं भगवान् के लिए पागल हूँ। तुम पैसे के लिए पागल हो, और मैं भगवान् के लिए। जैसे तुम पागल हो, वैसा ही मैं भी। फिर भी मैं सोचता हूँ कि मेरा ही पागलपन सबसे उत्तम है।" यथार्थ भक्त के प्रेम मे इसी प्रकार की तीव्र उन्मत्तता रहती है और

---

१ शिक्षाष्टक ॥४॥

२ श्री रामकृष्ण परमहस।

साथ ही इस संसार की असार वस्तुओं में भी मन दिये रहते हो—क्या तुम सच्चे हो? 'जहाँ राम है वहाँ काम नहीं और जहाँ काम है वहाँ राम नहीं। ये दोनों कभी एक साथ नहीं रह सकते—प्रकाश और अन्धकार क्या कभी एक साथ रहे हैं?'[1]

---

१ जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहूँ होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम॥ तुलसीदास॥

# उपसंहार

जब प्रेम का यह उच्चतम आदर्श प्राप्त हो जाता है, तो ज्ञान फिर न जाने कहाँ चला जाता है। तब भला ज्ञान की इच्छा भी कौन करे? तब तो मुक्ति, उद्धार, निर्वाण की बातें न जाने कहाँ गायब हो जाती हैं। इस दैवी प्रेम मे छके रहने से फिर भला कौन मुक्त होना चाहेगा? 'प्रभो! मुझे धन, जन, सौन्दर्य, विद्या, यहाँ तक कि, मुक्ति भी नही चाहिए। बस, इतनी ही साध है कि जन्म जन्म मे तुम्हारे प्रति मेरी अहैतुकी भक्ति बनी रहे।'[1] भक्त कहता है, "मैं शक्कर हो जाना नही चाहता, मुझे तो शक्कर खाना अच्छा लगता है।" तब भला कौन मुक्त हो जाने की इच्छा करेगा? कौन भगवान् के साथ एक हो जाने की कामना करेगा? भक्त कहता है, "मैं जानता हूँ कि मैं ही वह हूँ, तो भी मैं उससे अपने को अलग रखूँगा और उससे पृथक् रहूँगा, ताकि मैं उस प्रियतम मे आनन्द ले सकूँ।" प्रेम के लिए प्रेम—यही भक्त का सर्वोच्च सुख है। प्रियतम मे आनन्द लेने के लिए कौन हज़ार बार भी बद्ध होने को तैयार न होगा? एक सच्चा भक्त प्रेम को छोड और किसी वस्तु की कामना नही करता। वह स्वय प्रेम करना चाहता है, और चाहता है कि भगवान् भी उससे प्रेम करे। उसका निष्काम प्रेम नदी के प्रवाह की विरुद्ध दिशा मे जानेवाले ज्वार के समान है। वह मानो नदी के उद्गम-स्थान की ओर, स्रोत की विपरीत दिशा मे जाता है। ससार उसको पागल कहता है। मैं एक ऐसे महापुरुष[2] को जानता हूँ, जिन्हे लोग पागल कहते थे। इस पर उसका उत्तर था, "भाइयो, सारा ससार ही तो एक पागलखाना है। कोई सासारिक प्रेम के पीछे पागल है, कोई नाम के पीछे, कोई यश के लिए, तो कोई पैसे के लिए। फिर कोई ऐसे भी हैं, जो उद्धार पाने या स्वर्ग जाने के लिए पागल हैं। इस विराट् पागलखाने मे मैं भी एक पागल हूँ—मैं भगवान् के लिए पागल हूँ। तुम पैसे के लिए पागल हो, और मैं भगवान् के लिए। जैसे तुम पागल हो, वैसा ही मैं भी। फिर भी मैं सोचता हूँ कि मेरा ही पागलपन सबसे उत्तम है।" यथार्थ भक्त के प्रेम मे इसी प्रकार की तीव्र उन्मत्तता रहती है और

---

१ शिक्षाष्टक ॥४॥

२ श्री रामकृष्ण परमहस।

इसके सामने अन्य सब कुछ उड़ जाता है। उसके लिए तो यह सारा जगत् केवल प्रेम से भरा है—प्रेमी को बस ऐसा ही दीखता है। जब मनुष्य में यह प्रेम प्रवेश करता है, तो वह चिरकाल के लिए सुखी, चिरकाल के लिए मुक्त हो जाता है। और दैवी प्रेम की यह पवित्र उन्मत्तता ही हममें समायी हुई संसार-व्याधि को सदा के लिए दूर कर दे सकती है। उससे वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं और वासनाओं के साथ ही स्वार्थपरता का भी नाश हो जाता है। तब भक्त भगवान् के समीप चला जाता है, क्योंकि उसने उन सब असार वासनाओं को फेंक दिया है, जिनसे वह पहले भरा हुआ था।

प्रेम के धर्म में हमें द्वैत भाव से आरम्भ करना पड़ता है। उस समय हमारे लिए भगवान् हमसे भिन्न रहता है, और हम भी अपने को उससे भिन्न समझते हैं। फिर प्रेम बीच में आ जाता है। तब मनुष्य भगवान् की ओर अग्रसर होने लगता है, और भगवान् भी क्रमशः मनुष्य के अधिकाधिक निकट आने लगता है। मनुष्य संसार के सारे सम्बन्ध—जैसे माता, पिता, पुत्र, सखा, स्वामी, प्रेमी आदि भाव—लेता है और अपने प्रेम के आदर्श भगवान् के प्रति उन सबको आरोपित करता जाता है। उसके लिए भगवान् इन सभी रूपों में विराजमान है और उसकी उन्नति की चरम अवस्था तो वह है, जिसमें वह अपने उपास्य देवता में सम्पूर्ण रूप से निमग्न हो जाता है। हम सबका पहले अपने प्रति प्रेम रहता है, और इस क्षुद्र अहं-भाव का असंगत दावा प्रेम को भी स्वार्थपर बना देता है। परन्तु अन्त में ज्ञान-ज्योति का भरपूर प्रकाश आता है, जिसमें यह क्षुद्र अहं उस अनन्त के साथ एक हो जाता है। इस प्रेम के प्रकाश में मनुष्य स्वयं सम्पूर्ण रूप से परिवर्तित हो जाता है और अन्त में इस सुन्दर और प्राणों को उन्मत्त बना देने वाले सत्य का अनुभव करता है कि प्रेम, प्रेमी और प्रेमास्पद तीनों एक ही हैं।

# व्याख्यान, प्रवचन एवं कक्षालाप-४

(राजयोग)

# राजयोग पर छः पाठ[1]

ससार के अन्य विज्ञानो की भाँति राजयोग भी एक विज्ञान है। यह विज्ञान मन का विश्लेपण तथा अतीन्द्रिय जगत् के तथ्यो का सकलन करता है और इस प्रकार आध्यात्मिक जगत् का निर्माता है। ससार के सभी महान् उपदेष्टाओ ने कहा है, "हमने देखा और जाना है।" ईसा, पॉल और पीटर सभी ने जिन सत्यो की शिक्षा दी, उनका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने का दावा किया है।

यह प्रत्यक्ष अनुभव योग द्वारा प्राप्त होता है।

हमारे अस्तित्व की सीमा चेतना अथवा स्मृति नही हो सकती। एक अति-चेतन भूमिका भी है। इसमे और सुषुप्ति मे सवेदनाएँ नही प्राप्त होती। किन्तु इन दोनो के बीच ज्ञान और अज्ञान जैसा आकाश-पाताल का भेद है। यह आलोच्य योगशास्त्र ठीक विज्ञान के ही समान तर्कसगत है।

मन की एकाग्रता ही समस्त ज्ञान का उत्स है।

योग हमे जड-तत्त्व को अपना दास बनाने की शिक्षा देता है, और उसको हमारा दास होना ही चाहिए। योग का अर्थ जोडना है अर्थात् जीवात्मा को परमात्मा के साथ जोडना, मिलाना।

मन चेतना मे और उसके अधीन कार्य करता है। हम लोग जिसे चेतना कहते हैं, वह हमारे स्वरूप की अनन्त शृखला की एक कडी मात्र है।

हमारा यह 'अहम्' किंचित् मात्र चेतना और अचेतनता के विपुल परिणाम को आच्छादित करता है, जब कि उसके परे, और उसकी प्राय अज्ञात, अतिचेतन की भूमिका है।

श्रद्धाभाव से योगाभ्यास करने पर मन का एक के बाद एक स्तर खुलता जाता है और प्रत्येक, नये तथ्यो को प्रकाशित करता है। हम अपने सम्मुख नये जगतो

---

१ इन पाठो की रचना स्वामी विवेकानन्द द्वारा अमेरिकन भक्त शिष्या श्रीमती सारा सी० बुल के निवास-स्थान पर कुछ घनिष्ठ श्रोताओ के सम्मुख दिये गये कक्षालापो के आधार पर हुई है, जो उनके द्वारा सुरक्षित रखे गये थे और जो अन्त मे सन् १९१३ मे निजी मडली मे वितरित करने के लिए मुद्रित किये गये थे। स०

की सृष्टि होती सी बेपाठ है, नयी शक्तियाँ हमारे हाथों में आ जाती हैं, किन्तु हमें मार्ग में ही नहीं रुक जाना चाहिए, और जब हमारे सामने हीरों की खान पड़ी हो, तो काँच के दानों से हमें चौंधिया नहीं जाना चाहिए।

केवल ईश्वर ही हमारा लक्ष्य है। उसकी प्राप्ति न हो पाना ही हमारी मृत्यु है।

सफलताकांक्षी साधक के लिए तीन बातों की आवश्यकता है।

पहली है ऐहिक और पारलौकिक इन्द्रिय भोग-वासना का त्याग और केवल भगवान् और सत्य को लक्ष्य बनाना। हम यहाँ सत्य की उपलब्धि के लिए हैं, भोग के लिए नहीं। भोग पशुओं के लिए छोड़ दो, जिनको हमारी अपेक्षा उसमें कहीं अधिक आनन्द मिलता है। मनुष्य एक विचारशील प्राणी है, और मृत्यु पर विजय तथा प्रकाश को प्राप्त कर लेने तक उसे संघर्ष करते ही रहना चाहिए। उस फिजूल की बातचीत में अपनी शक्ति नष्ट नहीं करनी चाहिए। समाज की पूजा एवं लोकप्रिय जनमत मूर्ति-पूजा ही है। आत्मा का लिंग, देश, स्थान या काल नहीं होता।

दूसरी है सत्य और भगवत्प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा। जल में डूबता मनुष्य जैसे वायु के लिए व्याकुल होता है, वैसे ही व्याकुल हो जाओ। केवल ईश्वर को ही चाहो, और कुछ भी स्वीकार न करो, जो आभासी मात्र है, उससे धोखा न खाओ। सबसे विमुख होकर केवल ईश्वर की खोज करो।

तीसरी बात में छः अभ्यास हैं

(१) मन को बहिर्मुख न होने देना।

(२) इन्द्रिय-निग्रह।

(३) मन को अन्तर्मुख बनाना।

(४) निर्विरोध सहिष्णुता या पूर्ण तितिक्षा।

(५) मन को एक भाव में स्थिर रखना। ध्येय को सम्मुख रखो और उसका चिन्तन करो। कभी अलग न करो। समय की गणना न करो।

(६) अपने स्वरूप का सतत चिन्तन करो।

अंधविश्वास का परित्याग कर दो। अपनी तुच्छता के विश्वास में अपने को सम्मोहित न करो। जब तक तुम ईश्वर के साथ एकात्मकता की अनुभूति (वास्तविक अनुभूति) न कर लो, तब तक रात-दिन अपने आपको बताते रहो कि तुम यथार्थतः क्या हो।

इन साधनाओं के बिना कोई भी फल प्राप्त नहीं हो सकता।

हम ब्रह्म की धारणा कर सकते हैं, पर उसे भाषा के द्वारा व्यक्त करना

असम्भव है। जैसे ही हम उसे अभिव्यक्त करने की चेष्टा करते है, वैसे ही हम उसे सीमित बना डालते हैं और वह ब्रह्म नही रह जाता।

हमे इन्द्रिय-जगत् की सीमाओ के परे जाना है और बुद्धि से भी अतीत होना है। ऐसा करने की हममे शक्ति है।

[एक सप्ताह तक प्राणायाम के प्रथम पाठ का अभ्यास करने के पश्चात् शिष्य को चाहिए कि वह गुरु को अपना अनुभव बताये।]

## प्रथम पाठ

इस पाठ का उद्देश्य व्यक्तित्व का विकास है। प्रत्येक व्यक्तित्व का विकास आवश्यक है। सभी एक केन्द्र मे मिल जायँगे। 'कल्पना प्रेरणा का द्वार और समस्त विचार का आधार है।' सभी पैगम्बर, कवि और अन्वेषक महती कल्पना-शक्ति से सम्पन्न थे। प्रकृति की व्याख्या हमारे भीतर है, पत्थर बाहर गिरता है, लेकिन गुरुत्वाकर्षण हमारे भीतर है, बाहर नही। जो अति आहार करते हैं, जो उपवास करते है, जो अत्यधिक सोते है, जो अत्यल्प सोते है, वे योगी नही हो सकते। अज्ञान, चचलता, ईर्ष्या, आलस्य और अतिशय आसक्ति योग-सिद्धि के महान् शत्रु है। योगी के लिए तीन बडी आवश्यकताएँ है

प्रथम—शारीरिक और मानसिक पवित्रता, प्रत्येक प्रकार की मलिनता तथा मन को पतन की ओर ढकेलनेवाली सभी बातो का परित्याग आवश्यक है।

द्वितीय—धैर्य प्रारम्भ मे आश्चर्यजनक दृश्य प्रकट होंगे, पर बाद मे वे सब अन्तर्हित हो जायँगे। यह सबसे कठिन समय है। पर दृढ रहो, यदि धैर्य रखोगे, तो अन्त मे सिद्धि सुनिश्चित है।

तृतीय—लगन सुख-दु ख, स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य सभी दशाओ मे साधना मे एक दिन का भी नागा न करो।

साधना का सर्वोत्तम समय दिन और रात की सधि का समय है। यह हमारे शरीर की हलचल के शान्त रहने का समय है—दो दशाओ के मध्य का शून्य-स्थल है। यदि इस समय न हो सके, तो उठने के ही बाद और सोने के पूर्व अभ्यास करो। नित्य स्नान—शरीर को अधिक से अधिक स्वच्छ रखना—आवश्यक है।

स्नान के पश्चात् बैठ जाओ। आसन दृढ रखो अर्थात् ऐसी भावना करो कि तुम चट्टान की भाँति दृढ हो, कि तुम्हे कुछ भी विचलित करने मे समर्थ नही है। कधे, सिर और कमर एक सीधी रेखा मे रखो, पर मेरुदण्ड के ऊपर जोर न डालो,

सारी क्रिया इसीके सहारे होती है अतः इसको क्षति पहुँचानेवाला कोई कार्य न होना चाहिए।

अपने पैर की अँगुलियों से आरम्भ करके अपने शरीर के प्रत्येक अंग की स्थिरता की भावना करो। इस भाव का अपने में चिन्तन करो और यदि चाहो तो प्रत्येक का स्पर्श करो। प्रत्येक को पूर्ण अर्थात् उसमें कोई विकार नहीं है, सोचते हुए धीरे धीरे ऊपर बढ़कर सिर तक जाओ। तब समस्त शरीर के पूर्ण होने के भाव का चिन्तन करो यह सोचते हुए कि मुझे सत्य का साक्षात्कार करने के हेतु यह ईश्वर द्वारा प्रदत्त साधन है। यह वह नौका है जिस पर बैठकर तुम्हें संसार समुद्र पार करके अनन्त सत्य के तट पर पहुँचना है। इस क्रिया के पश्चात् अपनी नासिका के दोनों छिद्रों से एक दीर्घ श्वास लो और फिर उसे बाहर निकालो। इसके पश्चात् जितनी देर तक सरलतापूर्वक बिना श्वास लिये रह सको रहो। इस प्रकार के चार प्राणायाम करो और फिर स्वाभाविक रूप से श्वास लो और भगवान् से ज्ञान के प्रकाश के लिए प्रार्थना करो।

"मैं उस सत्ता की महिमा का चिन्तन करता हूँ जिसने विश्व की रचना की है वह मेरे मन को प्रबुद्ध करे। बैठो और दस-पन्द्रह मिनट इस भाव का ध्यान करो।

अपनी अनुभूतियों को अपने गुरु के अतिरिक्त और किसीको न बताओ।

यथासम्भव कम से कम बात करो।

अपना चिन्तन सद्गुणों पर लगाओ हम जैसा सोचते हैं वैसे ही बन जाते हैं।

पवित्र चिन्तन हमें अपनी समस्त मानसिक मलिनताओं को भस्म करने में सहायता देता है। जो योगी नहीं है, वह दास है। मुक्ति-लाभ के हेतु एक एक करके सभी बन्धन काटने होंगे।

इस जगत् के परे जो सत्य है, उसको सभी लोग जान सकते हैं। यदि ईश्वर की सत्ता सत्य है तो अवश्य ही हमें उसको एक तथ्य के रूप में अनुभव करना चाहिए और यदि आत्मा जैसी कोई सत्ता है, तो हमें उसे देखने और अनुभव करने में समर्थ होना चाहिए।

यदि आत्मा है, तो उसका साक्षात्कार करने के लिए हमें कुछ ऐसा बनना पड़ेगा जो शरीर नहीं है।

योगी इन्द्रियों को दो मुख्य वर्गों में विभाजित करते हैं ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ अथवा ज्ञान और कर्म।

अन्तरिन्द्रिय या मन के चार स्तर हैं प्रथम—मनस् अर्थात् मनन अथवा चिन्तन-शक्ति। इसको संयत न करने पर प्रायः इसकी समस्त शक्ति नष्ट हो

जाती है। उचित सयम किये जाने पर यह अद्भुत शक्ति बन जाती है। द्वितीय—बुद्धि अर्थात् इच्छा-शक्ति (इसको बोध-शक्ति भी कहा जाता है)। तृतीय—अहकार अर्थात् आत्मचेतन अहबुद्धि। चतुर्थ—चित्त अर्थात् वह तत्त्व, जिसके आधार और माध्यम से समस्त शक्तियाँ क्रियाशील होती है, मानो यह मन का धरातल है अथवा वह समुद्र है, जिसमे समस्त क्रिया-शक्तियाँ तरगो का रूप धारण किये हुए हैं।

योग वह विज्ञान है, जिसके द्वारा हम चित्त को अनेक क्रिया-शक्तियो का रूप धारण करने अथवा उनमे रूपान्तरित होने से रोकते हैं। समुद्र मे चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जिस प्रकार तरगो के कारण अस्पष्ट अथवा विच्छिन्न हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा अर्थात् सत्स्वरूप का प्रतिबिम्ब भी मन की तरगो से विच्छिन्न हो जाता है। केवल जब समुद्र दर्पण की भाँति तरगशून्य होकर शान्त हो जाता है, तभी चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखायी पडता है। उसी प्रकार जब चित्त अर्थात् मनस् सयम के द्वारा सम्पूर्ण रूप से शान्त हो जाता है, तभी स्वरूप का साक्षात्कार होता है।

यद्यपि चित्त सूक्ष्मतर रूप मे जड है, तथापि वह देह नही है। वह देह द्वारा चिरकाल तक आबद्ध नही रहता। पर इस बात से सिद्ध होता है कि हम कभी कभी देहभाव से परे हो जाते हैं। अपनी इन्द्रियो को वशीभूत करके हम इच्छानुसार इस बात का अभ्यास कर सकते हैं।

यदि हम ऐसा करने मे पूर्ण समर्थ हो जायँ, तो समस्त विश्व हमारे वश मे हो जाय, क्योकि हमारी इन्द्रियो को लेकर ही यह जगत् है। स्वाधीनता ही उच्च जीवन की कसौटी है। आध्यात्मिक जीवन उस समय प्रारम्भ होता है, जिस समय तुम अपने को इन्द्रियो के बधन से मुक्त कर लेते हो। जो इन्द्रियो के अधीन हैं, वही ससारी हैं, वही दास हैं।

चित्त को तरगो का रूप धारण करने से रोकने मे पूर्ण समर्थ होने पर हमारी देह का नाश हो जाता है। इस देह को तैयार करने मे करोडो वर्षों से हमे इतना कडा परिश्रम करना पडा है कि उसी चेष्टा मे व्यस्त रहते रहते हम यह भूल गये कि इस देह की प्राप्ति का वास्तविक उद्देश्य पूर्णता-प्राप्ति है। हम सोचने लगे हैं कि हमारी समस्त चेष्टाओ का लक्ष्य इस देह की तैयारी है। यही माया है। हमे इस भ्रम को मिटाना होगा और अपने मूल उद्देश्य की ओर जाकर इस बात का अनुभव करना होगा कि हम देह नही हैं, यह तो हमारा दास है।

मन को अलग करके उसे देह से पृथक् देखना सीखो। हम देह के ऊपर सवेदना और प्राण को आरोपित करते हैं और फिर सोचते है कि वह चेतन और सत्य

है। हम इतने दीर्घकाल से यह चोला पहने हुए हैं कि भूल जाते हैं कि हम और देह एक नहीं हैं। योग हमें देह को इच्छानुसार अलग करने तथा उसे अपने दास अपने सामने न कि स्वामी के रूप में देखने में सहायता करता है। योगाभ्यास का प्रथम प्रमुख लक्ष्य मानसिक शक्तियों का नियंत्रण करना है। दूसरा उन्हें पूर्ण शक्ति लगाकर किसी एक विषय पर केन्द्रित करना है।

यदि तुम बहुत बात करते हो तो तुम योगी नहीं हो सकते।

## द्वितीय पाठ

इस योग का नाम अष्टांग योग है, क्योंकि इसको प्रधानतः आठ भागों में विभक्त किया गया है। वे हैं

प्रथम—यम। यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है और सारा जीवन इसके द्वारा शासित होना चाहिए। इसके पाँच विभाग हैं

(१) मन कर्म वचन से हिंसा न करना।

(२) मन कर्म वचन से लोभ न करना।

(३) मन कर्म और वचन की पवित्रता।

(४) मन कर्म और वचन की पूर्ण सत्यता।

(५) अपरिग्रह (किसीसे कोई दान न लेना)।

द्वितीय—नियम। शरीर की देखभाल नित्य स्नान परिमित आहार इत्यादि।

तृतीय—आसन। मेरुदण्ड के ऊपर जोर न देकर कमर, गर्दन और सिर सीधा रखना।

चतुर्थ—प्राणायाम। प्राणवायु अथवा जीवन-शक्ति को वशीभूत करने के लिए श्वास-प्रश्वास का संयम।

पंचम—प्रत्याहार। मन को अन्तर्मुख करना तथा उसे बहिर्मुखी होने से रोकना तत्त्व को समझने के लिए उसे मन में घुमाना अर्थात् उस पर बार बार विचार करना।

षष्ठ—धारणा। एक विषय पर ध्यान केन्द्रित करना।

सप्तम—ध्यान।

अष्टम—समाधि आलोक हमारी समस्त साधना का लक्ष्य।

हमें यम-नियम का अभ्यास जीवनपर्यन्त करना चाहिए। जहाँ तक दूसरे अभ्यासों का सम्बन्ध है हम ठीक वैसा ही करते हैं, जैसा कि जोंक बिना दूसरे

तिनके को दृढतापूर्वक पकडे पहलेवाले को नही छोडती है। दूसरे शब्दो मे हमे अपने पहले कदम को भली भाँति समझकर अभ्यास कर लेना है और तब दूसरा उठाना है।

इस पाठ का विषय प्राणायाम अर्थात् प्राण का नियमन है। राजयोग मे प्राण-वायु चित्तभूमि मे प्रविष्ट होकर हमे आध्यात्मिक राज्य मे ले जाती है। यह समस्त देहयन्त्र का मूल चक्र है। प्राण प्रथम फुफ्फुस पर क्रिया करता है, फुफ्फुस हृदय को प्रभावित करते हैं, हृदय रक्त-प्रवाह को और वह क्रमानुसार मस्तिष्क को तथा मस्तिष्क मन पर क्रिया करता है। जिस प्रकार इच्छा-शक्ति बाह्य सवेदन उत्पन्न करती है, उसी प्रकार बाह्य सवेदन इच्छा-शक्ति जाग्रत कर देता है। हमारी इच्छा-शक्ति दुर्बल है, हम जड-तत्त्व के इतने बधन मे हैं कि हम उसकी शक्ति को नही जान पाते। हमारी अधिकाश क्रियाएँ बाहर से भीतर की ओर होती हैं। बाह्य प्रकृति हमारे आन्तरिक साम्य को नष्ट कर देती है, किन्तु जैसा कि हमे चाहिए, हम उसके साम्य को नष्ट नही कर पाते। किन्तु यह सब भूल है। वास्तव मे प्रबलतर शक्ति तो भीतर की शक्ति है।

वे ही महान् सत और आचार्य है, जिन्होंने अपने भीतर के मनोराज्य को जीता है। और इसी कारण उनकी वाणी मे शक्ति थी। एक ऊँची मीनार पर बदी किये गये एक मत्री की कहानी[1] है। वह अपनी पत्नी के प्रयत्न से मुक्त हुआ। पत्नी भृग, मधु, रेशमी सूत, सुतली और रस्सी लायी थी। यह रूपक इस बात को स्पष्ट करता है कि किस प्रकार हम रेशमी धागे की भाँति प्रथम प्राणवायु का नियमन करके अन्त मे एकाग्रतारूपी रस्सी पकड सकेंगे, जो हमे देहरूपी कारागार से निकाल देगी और हम मुक्ति प्राप्त करेंगे। मुक्ति प्राप्त कर लेने पर उसके हेतु प्रयुक्त साधनो का हम परित्याग कर सकते हैं।

प्राणायाम के तीन अग हैं

(१) पूरक—श्वास लेना।

(२) कुम्भक—श्वास रोकना।

(३) रेचक—श्वास छोडना।

मस्तिष्क मे से होकर मेरुदण्ड के दोनो ओर बहनेवाले दो शक्ति-प्रवाह हैं, जो मूलाधार मे एक दूसरे का अतिक्रमण करके मस्तिष्क मे लौट आते हैं। इन दोनो मे एक का नाम 'सूर्य' (पिंगला) है, जो मस्तिष्क के वाम गोलार्ध से प्रारम्भ होकर मेरुदण्ड के दक्षिण पार्श्व मे मस्तिष्क के आधार (सहस्रार) पर एक दूसरे को लाँघ-

---

१. कहानी के हेतु 'विवेकानन्द साहित्य', प्रथम खड द्रष्टव्य। स०

कर पुनः मूलाधार पर अंग्रेजी के आठ (8) अंक के अर्ध भाग के आकार में समान एक दूसरे का फिर अतिक्रमण करती है।

दूसरे शक्ति-प्रवाह का नाम 'चन्द्र' (इड़ा) है, जिसकी क्रिया उपर्युक्त क्रम के ठीक विपरीत है और जो इस आठ (8) अंक को पूर्ण बनाती है। हाँ इसका निम्न भाग ऊपरी भाग से कहीं अधिक लम्बा है। ये शक्ति प्रवाह दिन-रात गतिशील रहते हैं और विभिन्न केन्द्रों में जिन्हें हम 'चक्र' कहते हैं बड़ी बड़ी जीवनी-शक्तियों का संचय किया करते हैं। पर शायद ही हमें उनका ज्ञान हो। एकाग्रता द्वारा हम उनका अनुभव कर सकते हैं और शरीर के विभिन्न अंगों में उनका पता लगा सकते हैं। इस 'सूर्य' और 'चन्द्र' के शक्ति-प्रवाह श्वास-क्रिया के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं और इसीके नियमन द्वारा हम शरीर को नियमित करते हैं।

कठोपनिषद्[1] में देह को रथ, मन को लगाम, इन्द्रियों को घोड़े, विषय को पथ और बुद्धि को सारथी कहा गया है। इस रथ में बैठी हुई आत्मा रथी है। यदि रथी समझदार नहीं है और सारथी से घोड़ों को नियमित नहीं करा सकता तो वह कभी भी अपने ध्येय तक नहीं पहुँच सकता। अपितु, दुष्ट अश्वों के समान इन्द्रियाँ उसे कहीं खींचेंगी जाँच के बावजूद। यहाँ तक कि उसकी जान भी ले सकती हैं। ये दो शक्ति-प्रवाह सारथी के हाथों में रोकथाम के हेतु लगाम हैं और अश्वों को अपने वश में करने के लिए उसे इनके ऊपर नियंत्रण करना आवश्यक है। नीतिपरायण होने की शक्ति हमें प्राप्त करनी ही है। जब तक हम उसे प्राप्त नहीं कर लेते हम अपने कर्मों को नियमित नहीं कर सकते। नीतिशिक्षाओं को कार्यरूप में परिणत करने की शक्ति हमें केवल योग से ही प्राप्त हो सकती है। नीतिपरायण होना योग का उद्देश्य है। जगत् के सभी बड़े बड़े आचार्य योगी थे और उन्होंने प्रत्येक शक्ति प्रवाह को वश में कर रखा था। योगी इन दोनों प्रवाहों को मेरुदण्ड के तले में संयत करके उनको मेरुदण्ड के भीतर के केन्द्र से होकर परिचालित करते हैं। तब ये प्रवाह ज्ञान के प्रवाह बन जाते हैं। यह स्थिति केवल योगी की ही होती है।

प्राणायाम की द्वितीय शिक्षा कोई एक प्रणाली सभी के लिए नहीं है। प्राणायाम का लयपूर्ण क्रमबद्धता के साथ होना आवश्यक है और इसकी सबसे सहज विधि गणना है। चूँकि यह (गणना) पूर्णरूपेण यंत्रवत् हो जाती है, हम इसके बजाय एक निश्चित संख्या में पवित्र मंत्र ॐ का जप करते हैं।

---

[1] [illegible]

प्राणायाम की क्रिया इस प्रकार है दायें नथुने को अँगूठे से दबाकर चार बार 'ॐ' का जप करके धीरे धीरे बायें नथुने से श्वास लो।

तत्पश्चात् बायें नथुने पर तर्जनी रखकर दोनो नथुनो को कसकर बन्द कर दो और 'ॐ' का मन ही मन आठ बार जप करते हुए श्वास को भीतर रोके रहो।

पश्चात्, अँगूठे को दाहिने नथुने से हटाकर चार बार 'ॐ' का जप करते हुए उसके द्वारा धीरे धीरे श्वास को बाहर निकालो।

जब श्वास बाहर हो जाय, तब फुफ्फुस से समस्त वायु निकालने के लिए पेट को दृढतापूर्वक सकुचित करो। फिर बाये नथुने को बद करके चार बार 'ॐ' का जप करते हुए दाहिने नथुने से श्वास भीतर ले जाओ। इसके बाद दाहिने नथुने को अँगूठे से बद करो और आठ बार 'ॐ' का जप करते हुए श्वास को भीतर रोको। फिर बाये नथुने को खोलकर चार बार 'ॐ' का जप करते हुए पहले की भाँति पेट को सकुचित करके धीरे धीरे श्वास को बाहर निकालो। इस सारी क्रिया को प्रत्येक बैठक मे दो बार दुहराओ अर्थात् प्रत्येक नथुने के लिए दो के हिसाब से चार प्राणायाम करो। प्राणायाम के लिए बैठने के पूर्व सारी क्रिया प्रार्थना से प्रारम्भ करना अच्छा होगा।

एक सप्ताह तक इस अभ्यास को करने की आवश्यकता है। फिर धीरे धीरे श्वास-प्रश्वास की अवधि को बढाओ, किन्तु अनुपात वही रहे। अर्थात् यदि तुम श्वास भीतर ले जाते समय छ बार 'ॐ' का जप करते हो, तो उतना ही श्वास बाहर निकालते समय भी करो और कुम्भक के समय बारह बार करो। इन अभ्यासो के द्वारा हम और अधिक पवित्र, निर्मल और आध्यात्मिक होते जायँगे। किसी विषय मे पडने से अथवा कोई शक्ति (सिद्धि) की चाह से बचे रहो। प्रेम ही एक ऐसी शक्ति है, जो चिरकाल तक हमारे साथ रहती है और बढती जाती है। राजयोग के द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति को मानसिक, शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से सबल होना आवश्यक है। अपना प्रत्येक कदम इन बातो को ध्यान मे रखकर ही बढाओ।

लाखो मे कोई विरला ही कह सकता है, "मैं इस ससार के परे जाकर ईश्वर का साक्षात्कार करूँगा।" शायद ही कोई सत्य के सामने खडा हो सके। किन्तु अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए हमे मरने के लिए भी तैयार रहना पडेगा।

## तृतीय पाठ

कुंडलिनी : आत्मा का अनुभव जड़ के रूप में न करो, बल्कि उसके यथार्थ स्वरूप को जानो। हम लोग आत्मा को देह समझते हैं, किन्तु हमारे लिए इसको इन्द्रिय और बुद्धि से अलग करके सोचना आवश्यक है। तभी हमें इस बात का ज्ञान होगा कि हम अमृतस्वरूप हैं। परिवर्तन से आशय है कार्य और कारण का द्वैत और जो कुछ भी परिवर्तित होता है, उसका नश्वर होना अवश्यम्भावी है। इससे यह सिद्ध होता है कि न तो शरीर और न मन अविनाशी हो सकते हैं, क्योंकि दोनों में निरंतर परिवर्तन हो रहा है। केवल जो अपरिवर्तनशील है, वही अविनाशी हो सकता है, क्योंकि उसे कुछ भी प्रभावित नहीं कर सकता।

हम सत्यस्वरूप हो नहीं जाते, बल्कि हम सत्यस्वरूप हैं, किन्तु हमें सत्य को आवृत करनेवाले अज्ञान के पर्दे को हटाना होगा। देह विचार का ही रूप है। 'सूर्य' और 'चन्द्र' शक्ति प्रवाह शरीर के सभी अंगों में शक्ति-संचार करते हैं। अवशिष्ट अतिरिक्त शक्ति सुषुम्ना के अन्तर्गत विभिन्न चक्रों अथवा सामान्यतया विदित स्नायु-केन्द्र में संचित रहती है।

ये शक्ति-प्रवाह मृत देह में दृष्टिगत नहीं होते और केवल स्वस्थ शरीर में ही देखे जा सकते हैं।

योगी को एक विशेष सुविधा रहती है, क्योंकि वह केवल इनका अनुभव ही नहीं करता, अपितु इन्हें प्रत्यक्ष देखता भी है। वे उसके जीवन में ज्योतिर्मय हो उठते हैं। ऐसे ही उसके महान् स्नायु-केन्द्र भी हैं।

कार्य ज्ञात तथा अज्ञात दोनों दशाओं में होते हैं। योगियों की एक दूसरी दशा भी होती है, वह है ज्ञानातीत या अतिचेतन अवस्था, जो सभी देशों और सभी युगों में समस्त धार्मिक ज्ञान का स्रोत रही है। ज्ञानातीत दशा में कभी भूल नहीं होती, किन्तु जब जन्मजात प्रवृत्ति के द्वारा प्रेरित कार्य पूर्णरूपेण यंत्रवत् होता है, तब पूर्ववर्ती (ज्ञानातीत दशा) ज्ञान की दशा के परे की स्थिति होती है। इसे अन्तःप्रेरणा कहते हैं, परन्तु योगी कहता है, 'यह शक्ति प्रत्येक मनुष्य में अन्तर्निहित है और अन्ततोगत्वा सभी लोग इसका आनन्द प्राप्त करेंगे।

हमें 'सूर्य' और 'चन्द्र' की गतियों को एक नये रास्ते से परिचालित करना होगा और उनके लिए सुषुम्ना का मुख खोलकर एक नया रास्ता देना होगा। जब हम इस 'सुषुम्ना' से होकर शक्ति-प्रवाह को मस्तिष्क तक ले जाने में सफल हो जाते हैं, उस समय हम शरीर से बिलकुल अलग हो जाते हैं।

मेरुदड के तले त्रिकास्थि (sacrum) के निकट स्थित मूलाधार चक्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह स्थल काम-शक्ति के प्रजनन-तत्त्व का निवास है, और योगी इसको एक त्रिकोण के भीतर छोटे से कुडलीकृत सर्प के प्रतीक के रूप मे मानते हैं। इस प्रसुप्त सर्प को कुडलिनी कहते है। इसी कुडलिनी को जाग्रत करना ही राजयोग का प्रमुख उद्देश्य है।

महती काम-शक्ति को पशुसुलभ क्रिया से उन्नत करके मनुष्य शरीर के महान् डाइनेमो मस्तिष्क मे परिचालित करके वहाँ सचित करने पर वह ओजस् अर्थात् महान् आध्यात्मिक शक्ति बन जाती है। समस्त सत् चिन्तन, समस्त प्रार्थनाएँ उस पशुसुलभ शक्ति के एक अश को ओजस् मे परिणत करने मे सहायता करती हैं और हमे आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करती हैं। यह ओजस् ही मनुष्य का सच्चा मनुष्यत्व है, और केवल मनुष्य के शरीर मे ही इस शक्ति का सग्रह सम्भव है। जिसकी समस्त पशुसुलभ काम-शक्ति ओजस् मे परिणत हो गयी है, वही देवता है। उसकी वाणी मे शक्ति होती है और उसके वचन जगत् को पुनरुज्जीवित करते हैं।

योगी मन ही मन कल्पना करता है कि यह कुडलिनी क्रमश धीरे धीरे उठकर सर्वोच्च स्तर अर्थात् सहस्रार मे पहुँच रही है। जब तक मनुष्य अपनी सर्वोच्च शक्ति, काम-शक्ति को ओज मे परिणत नही कर लेता, कोई भी स्त्री या पुरुष, वास्तविक रूप मे आध्यात्मिक नही हो सकता।

कोई शक्ति उत्पन्न नही की जा सकती, उसे केवल एक दिशा मे परिचालित किया जा सकता है। अत हमे चाहिए कि हम अपनी महती शक्तियो को अपने वश मे करना सीखें और अपनी इच्छा-शक्ति से उन्हें पशुवत् रखने के बजाय आध्यात्मिक बना दें। अत यह स्पष्ट है कि पवित्रता ही समस्त धर्म और नीति की आधारशिला है। विशेषत राजयोग मे मन, वचन की पूर्ण पवित्रता परमावश्यक है। विवाहित और अविवाहित, सभी लोगो के लिए एक ही नियम लागू होता है। देह के इस सार अश को वृथा नष्ट कर देने पर आध्यात्मिकता की प्राप्ति सम्भव नही है।

इतिहास बताता है कि सभी युगो मे बडे बडे द्रष्टा महापुरुष या तो सन्यासी और तपस्वी थे अथवा विवाहित जीवन का परित्याग कर देनेवाले थे। केवल पवित्रात्मा ही भगवत्साक्षात्कार कर सकते हैं।

प्राणायाम से पूर्व इस त्रिकोणमडल को ध्यान मे देखने की चेष्टा करो। आँखें बन्द करके इसके चित्र की मन ही मन स्पष्ट कल्पना करो। सोचो कि इसके चारो ओर अग्निशिखा है और उसके बीच मे कुडलिनी सोयी पडी है। जब तुम्हें कुडलिनी

स्पष्ट रूप से दीखने लगे अपनी कल्पना में इसे मूलाधार चक्र में स्थित करो और कुम्भक में श्वास को अवरुद्ध करके कुंडलिनी को जगाने के हेतु श्वास के द्वारा उसके मस्तक पर आघात करो। जितनी ही शक्तिशाली कल्पना होगी उतनी शीघ्रता से वास्तविक फल की प्राप्ति होगी और कुंडलिनी जाग्रत हो जायगी। जब तक वह जाग्रत नहीं हुई, तब तक यही सोचो कि वह जाग्रत हो गयी है, तथा शक्ति प्रवाहों को अनुभव करने की चेष्टा करो और उन्हें सुषुम्ना पथ में परिचालित करने का प्रयास करो। इससे उनकी क्रिया में शीघ्रता होती है।

## चतुर्थ पाठ

मन को वश में करने की शक्ति प्राप्त करने के पूर्व हमें उसका भली प्रकार अध्ययन करना चाहिए।

चंचल मन को संयत करके हमें उसे विषयों से खींचना होगा और उसे एक विचार में केन्द्रित करना होगा। बार बार इस क्रिया को करना आवश्यक है। इच्छा शक्ति द्वारा मन को वश में करके उसकी क्रिया रोककर ईश्वर की महिमा का चिन्तन करना चाहिए।

मन को स्थिर करने का सबसे सरल उपाय है चुपचाप बैठ जाना और उसे कुछ क्षण के लिए वह जहाँ जाय जाने देना। दृढ़तापूर्वक इस भाव का चिन्तन करो 'मैं मन को विचरण करते हुए देखनेवाला साक्षी हूँ। मैं मन नहीं हूँ।" पश्चात् मन को ऐसा सोचता हुआ कल्पना करो कि मानो वह तुमसे बिल्कुल भिन्न है। अपने को ईश्वर से अभिन्न मानो मन अथवा जड़ पदार्थ के साथ एक करके कदापि न सोचो।

सोचो कि मन तुम्हारे सामने एक विस्तृत तरंगहीन सरोवर है और आने जानेवाले विचार इसके तल पर उठनेवाले बुलबुले हैं। विचारों को रोकने का प्रयास न करो वरन् उनको देखो और जैसे जैसे वे विचरण करते हैं वैसे वैसे तुम भी उनके पीछे चलो। यह क्रिया धीरे धीरे मन के वृत्तों को सीमित कर देगी। कारण यह है कि मन विचार की विस्तृत परिधि में घूमता है और ये परिधियाँ विस्तृत होकर निरन्तर बढ़नेवाले वृत्तों में फैलती रहती हैं ठीक वैसे ही जैसे किसी सरोवर में ढेला फेंकने पर होता है। हम इस क्रिया को उलट देना चाहते हैं और बड़े वृत्तों से प्रारम्भ करके उन्हें छोटा बनाते चले जाते हैं—यहाँ तक कि अन्त में हम मन को एक बिन्दु पर स्थिर करके उसे वहीं रोक सकें। दृढ़तापूर्वक इस भाव का चिन्तन

करो, "मैं मन नही हूँ, मैं देखता हूँ कि मैं सोच रहा हूँ। मैं अपने मन तथा अपनी क्रिया का अवलोकन कर रहा हूँ।" प्रतिदिन मन और भावना से अपने को अभिन्न समझने का भाव कम होता जायगा, यहाँ तक कि अन्त मे तुम अपने को मन मे बिल्कुल अलग कर सकोगे और वास्तव मे इसे अपने से भिन्न जान सकोगे।

इतनी सफलता प्राप्त करने के बाद मन तुम्हारा दास हो जायगा और उसके ऊपर इच्छानुसार शासन कर सकोगे। इन्द्रियो से परे हो जाना योगी की प्रथम स्थिति है। जब वह मन पर विजय प्राप्त कर लेता है, तब सर्वोच्च स्थिति प्राप्त कर लेता है।

जितना सम्भव हो सके, एकान्त सेवन करो। तुम्हारा आसन सामान्य ऊँचाई का होना चाहिए। प्रथम कुशासन बिछाओ, फिर मृगचर्म और उसके ऊपर रेशमी कपडा। अच्छा होगा कि आसन के साथ पीठ टेकने का साधन न हो और वह दृढ हो।

चूँकि विचार एक प्रकार के चित्र हैं, अत हमे उनकी रचना न करनी चाहिए। हमे अपने मन से सारे विचार दूर हटाकर रिक्त कर देना चाहिए। जितनी ही शीघ्रता से विचार आयें, उतनी ही तेज़ी से उन्हें दूर भगाना चाहिए। इसे कार्यरूप मे परिणत करने के लिए हमे जड-तत्त्व और देह के परे जाना परमावश्यक है। वस्तुत मनुष्य का समस्त जीवन ही इसको सिद्ध करने का प्रयास है।

प्रत्येक ध्वनि का अपना अर्थ होता है। हमारी प्रकृति मे इन दोनो का परस्पर सम्बन्ध है।

हमारा उच्चतम आदर्श ईश्वर है। उसका चिन्तन करो। यही नही कि हम ज्ञाता को जान सकते हैं, अपितु हम तो वही हैं।

अशुभ को देखना तो उसकी सृष्टि ही करना है। जो कुछ हम है, वही हम बाहर भी देखते हैं, क्योकि यह जगत् हमारा दर्पण है। यह छोटा सा शरीर हमारे द्वारा रचा हुआ एक छोटा सा दर्पण है, बल्कि समस्त विश्व हमारा शरीर है। इस बात का हमे सतत चिन्तन करना चाहिए, तब हमे ज्ञान होगा कि न तो हम मर सकते हैं और न दूसरो को मार सकते हैं, क्योकि वह तो हमारा ही स्वरूप है। हम अजन्मा और अमर है और प्रेम ही हमारा कर्तव्य है।

'यह समस्त विश्व हमारा शरीर है। समस्त स्वास्थ्य, समस्त सुख हमारा सुख है, क्योकि यह सब कुछ विश्व के अन्तर्गत है।' कहो, "मैं विश्व हूँ।" अन्त मे हमे ज्ञात हो जाता है कि सारी क्रिया हमारे भीतर से इस दर्पण मे प्रकट हो रही है।

दो ये दो श्लोक हैं। कृष्ण के उपदेश के सारस्वरूप इन श्लोकों से बड़ा भारी बल प्राप्त होता है

> समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
> विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥ १३।२७॥

और,

> समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
> न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥ १३।२८॥

—'विनाश होनेवाले सब भूतों में जो लोग अविनाशी परमात्मा को स्थित देखते हैं यथार्थ में उन्हींका देखना सार्थक है क्योंकि ईश्वर को सर्वत्र समान भाव से देखकर वे आत्मा के द्वारा आत्मा की हिंसा नहीं करते इसलिए वे परमगति को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार इस देश और अन्यान्य देशों में कल्याण कार्य की दृष्टि से वेदान्त के प्रचार और प्रसार के लिए विस्तृत क्षेत्र है। इस देश में और विदेशों में भी मनुष्य जाति के दुःख दूर करने के लिए तथा मानव-समाज की उन्नति के लिए हम परमात्मा की सर्वव्यापकता और सर्वत्र समान रूप से उसकी विद्यमानता का प्रचार करना होगा। जहाँ भी बुराई दिखाई देती है, वहाँ अज्ञान भी मौजूद रहता है। मैंने अपने ज्ञान और अनुभव द्वारा मालूम किया है और यही शास्त्रों में भी कहा गया है कि भेद-बुद्धि से ही संसार में सारे अशुभ और अभेद-बुद्धि से ही सारे शुभ फलते हैं। यदि सारी विभिन्नताओं के अन्दर ईश्वर के एकत्व पर विश्वास किया जाय तो सब प्रकार से संसार का कल्याण किया जा सकता है। यही वेदान्त का सर्वोच्च आदर्श है। प्रत्येक विषय में आदर्श पर विश्वास करना एक बात है और प्रतिदिन के छोटे छोटे कामों में उसी आदर्श के अनुसार काम करना बिल्कुल दूसरी बात है। एक ऊँचा आदर्श दिखा देना अच्छी बात है इसमें सन्देह नहीं पर उस आदर्श तक पहुँचने का उपाय कौन सा है?

स्वभावतः यहाँ वही कठिन और उद्विग्न करने वाला जाति-भेद तथा समाज सुधार का सवाल आ उपस्थित होता है, जो कई सदियों से सर्वसाधारण के मन में उठता रहा है। मैं तुमसे यह बात स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहता हूँ कि मैं केवल जाति-पाँति का भेद मिटानेवाला अथवा समाज-सुधारक मात्र नहीं हूँ। सीधे *धर्म में जाति भेद या समाज-सुधार से मेरा कुछ मतलब नहीं।* *तुम चाहे जिस* जाति या समाज के क्यों न हो उसमें कुछ बनता-बिगड़ता नहीं पर तुम किसी और जातिवाले को घृणा की दृष्टि से क्यों देखो? मैं केवल प्रेम और मात्र प्रेम की

का आदर्श विशिष्ट रूप से प्रतिष्ठित है। यूरोप के बड़े बड़े धर्माचार्य भी यह प्रमाणित करने के लिए हजारो रुपये खर्च कर रहे हैं कि उनके पूर्वपुरुष उच्च वशो के थे और तब तक वे सन्तुष्ट नही होंगे जब तक अपनी वशपरम्परा किसी भयानक क्रूर शासक से स्थापित नही कर लेंगे, जो पहाड़ पर रहकर राही बटोहियो की ताक मे रहते थे और मौका पाते ही उन पर आक्रमण कर लूट लेते थे। आभिजात्य प्रदान करने वाले इन पूर्वजो का यही पेशा था और हमारे धर्माध्यक्ष कार्डिनल इनमे से किसीसे अपनी वशपरम्परा स्थापित किये बिना सतुष्ट नही रहते थे। फिर दूसरी ओर भारत के बड़े से बड़े राजाओ के वशधर इस बात की चेष्टा कर रहे हैं कि हम अमुक कौपीनधारी, सर्वस्वत्यागी, वनवासी, फल-मूलाहारी और वेदपाठी ऋषि की सन्तान हैं। भारतीय राजा भी अपनी वशपरम्परा स्थापित करने के लिए वही जाते हैं। अगर तुम अपनी वशपरम्परा किसी महर्षि से स्थापित कर सकते हो, तो ऊँची जाति के माने जाओगे, अन्यथा नही।

अतएव, हमारा उच्च वश का आदर्श अन्यान्य देशवासियो के आदर्श से बिल्कुल भिन्न है। आध्यात्मिक साधनासम्पन्न महात्यागी ब्राह्मण ही हमारे आदर्श हैं। इस ब्राह्मण-आदर्श से मेरा क्या मतलब है? आदर्श ब्राह्मणत्व वही है, जिसमे सासारिकता एकदम न हो और असली ज्ञान पूर्ण मात्रा मे विद्यमान हो। हिन्दू जाति का यही आदर्श है। क्या तुमने नही सुना है, शास्त्रो मे लिखा है कि ब्राह्मण के लिए कोई क़ानून-कायदा नही है—वे राजा के शासनाधीन नही हैं, और उनके लिए फाँसी की सज़ा नही हो सकती? यह बात बिल्कुल सच है। स्वार्थपर मूढ लोगो ने जिस भाव से इस तत्त्व की व्याख्या की है, उस भाव से उसको मत समझो; सच्चे वेदान्ती भाव से इस तत्त्व को समझने की चेष्टा करो। यदि ब्राह्मण कहने से ऐसे मनुष्य का बोध हो, जिसने स्वार्थपरता का एकदम नाश कर डाला है, जिसका जीवन ज्ञान और प्रेम की शक्ति को प्राप्त करने मे तथा इनका विस्तार करने मे ही बीतता है, जो देश ऐसे ही सच्चरित्र, नैष्ठिक तथा आध्यात्मिक ब्राह्मणो, स्त्री तथा पुरुषो से परिपूर्ण है, वह देश यदि विधिनिषेध के परे हो, तो इसमे आश्चर्य की कौन सी बात है? ऐसे लोगो पर शासन करने के लिए सेना या पुलिस इत्यादि की क्या आवश्यकता है? ऐसे आदमियो पर शासन करने का ही क्या काम है? अथवा ऐसे लोगो को किसी शासन-तन्त्र के अधीन रहने की ही क्या जरूरत है। ये लोग साधुस्वभाव महात्मा हैं—ईश्वर के अन्तरगस्वरूप हैं, ये ही हमारे आदर्श ब्राह्मण हैं और हम शास्त्रो में देखते हैं—सत्ययुग मे पृथ्वी पर केवल एक जाति थी और वह ब्राह्मण थी। महाभारत मे हम देखते हैं, पुराकाल मे सारी पृथ्वी मे ब्राह्मणो का ही निवास था। क्रमश ज्यो ज्यो उनकी अवनति होने लगी,

सुगम किया है अच्छा ही किया है पर इससे भी अच्छा करने की चेष्टा करो। पुराने जमाने में इस देश में बहुतेरे अच्छे काम हुए हैं पर अब भी उससे बड़े बड़े काम करने का पर्याप्त समय और अवकाश है। मैं निश्चित हूँ कि तुम जानते हो कि हम एक जगह एक अवस्था में चुपचाप बैठे नहीं रह सकते। यदि हम एक जगह स्थिर रहे, तो हमारी मृत्यु अनिवार्य है। हमें या तो आगे बढ़ना होगा या पीछे हटना होगा—हमें उन्नति करते रहना होगा नहीं तो हमारी अवनति आप से आप होती जायगी। हमारे पूर्व पुरुषों ने प्राचीन काल में बहुत बड़े बड़े काम किये हैं, पर हमें उनकी अपेक्षा भी उच्चतर जीवन का विकास करना होगा और उनकी अपेक्षा और भी महान् कार्यों की ओर अग्रसर होना पड़ेगा। अब पीछे हटकर अवनति को प्राप्त होना यह कैसे हो सकता है? ऐसा कभी नहीं हो सकता। नहीं हम कदापि वैसा होने नहीं देंगे। पीछे हटने से हमारी जाति का अधःपतन और मरण होगा। अतएव 'अग्रसर होकर महत्तर कर्मों का अनुष्ठान करो'—तुम्हारे सामने यही मेरा वक्तव्य है।

मैं किसी क्षणिक समाज-सुधार का प्रचारक नहीं हूँ। मैं समाज के दोषों का सुधार करने की चेष्टा नहीं कर रहा हूँ। मैं तुमसे केवल इतना ही कहता हूँ कि तुम आगे बढ़ो और हमारे पूर्वपुरुष समग्र मानव जाति की उन्नति के लिए जो सर्वांग सुन्दर प्रणाली बता गये हैं उसीका अवलम्बन कर उनके उद्देश्य को सम्पूर्ण रूप से कार्य मे परिणत करो। तुमसे मेरा कहना यही है कि तुम लोग मानव के एकत्व और उसके नैसर्गिक ईश्वरत्व-सम्बन्धी वेदान्ती आदर्श के अधिकाधिक समीप पहुँचते जाओ। यदि मेरे पास समय होता तो मैं तुम लोगों को बड़ी प्रसन्नता के साथ यह दिखाता और बताता कि आज हमें जो कुछ कार्य करना है उसे हजारों वर्ष पहले हमारे स्मृतिकारों ने बता दिया है। और उनकी बातों से हम यह भी जान सकते हैं कि आज हमारी जाति और समाज के आचार-व्यवहार में जो सब परिवर्तन हुए हैं और होंगे उन्हें भी उन लोगों ने आज से हजारों वर्ष पहले जान लिया था। वे भी जाति भेद को तोड़ने वाले थे पर आजकल की तरह नहीं। जाति-भेद को तोड़ने से उनका मतलब यह नहीं था कि शहर भर के लोग एक साथ मिलकर शराब कबाब उड़ावें या जितने मूर्ख और पागल हैं वे सब चाहे जिसके साथ शादी कर लें और सारे देश को एक बहुत बड़ा पागलखाना बना दें और न उनका यही विश्वास था कि जिस देश में जितने ही अधिक विधवा-विवाह हों वह देश उतना ही उन्नत समझा जायगा। इस प्रकार से किसी जाति को उन्नत होते मुझे अभी देखना है।

ब्राह्मण ही हमारे पूर्वपुरुषों के आदर्श थे। हमारे सभी शास्त्रों में ब्राह्मण

का आदर्श विशिष्ट रूप से प्रतिष्ठित है। यूरोप के बडे बडे धर्माचार्य भी यह प्रमाणित करने के लिए हज़ारो रुपये खर्च कर रहे हैं कि उनके पूर्वपुरुष उच्च वशो के थे और तब तक वे सन्तुष्ट नही होगे जब तक अपनी वशपरम्परा किसी भयानक क्रूर शासक से स्थापित नही कर लेंगे, जो पहाड पर रहकर राही बटोहियो की ताक मे रहते थे और मौका पाते ही उन पर आक्रमण कर लूट लेते थे। आभिजात्य प्रदान करने वाले इन पूर्वजो का यही पेशा था और हमारे धर्माध्यक्ष कार्डिनल इनमे से किसीसे अपनी वशपरम्परा स्थापित किये विना सतुष्ट नही रहते थे। फिर दूसरी ओर भारत के बडे से बडे राजाओ के वशधर इस बात की चेष्टा कर रहे हैं कि हम अमुक कौपीनधारी, सर्वस्वत्यागी, वनवासी, फल-मूलाहारी और वेदपाठी ऋषि की सन्तान हैं। भारतीय राजा भी अपनी वशपरम्परा स्थापित करने के लिए वही जाते हैं। अगर तुम अपनी वशपरम्परा किसी महर्षि से स्थापित कर सकते हो, तो ऊँची जाति के माने जाओगे, अन्यथा नही।

अतएव, हमारा उच्च वश का आदर्श अन्यान्य देशवासियो के आदर्श से बिल्कुल भिन्न है। आध्यात्मिक साधनासम्पन्न महात्यागी ब्राह्मण ही हमारे आदर्श हैं। इस ब्राह्मण-आदर्श से मेरा क्या मतलब है? आदर्श ब्राह्मणत्व वही है, जिसमे सासारिकता एकदम न हो और असली ज्ञान पूर्ण मात्रा मे विद्यमान हो। हिन्दू जाति का यही आदर्श है। क्या तुमने नही सुना है, शास्त्रो मे लिखा है कि ब्राह्मण के लिए कोई कानून-कायदा नही है—वे राजा के शासनाधीन नही हैं, और उनके लिए फाँसी की सज़ा नही हो सकती? यह बात बिल्कुल सच है। स्वार्थपर मूढ लोगो ने जिस भाव से इस तत्त्व की व्याख्या की है, उस भाव से उसको मत समझो, सच्चे वेदान्ती भाव से इस तत्त्व को समझने की चेष्टा करो। यदि ब्राह्मण कहने से ऐसे मनुष्य का वोध हो, जिसने स्वार्थपरता का एकदम नाश कर डाला है, जिसका जीवन ज्ञान और प्रेम की शक्ति को प्राप्त करने मे तथा इनका विस्तार करने मे ही बीतता है, जो देश ऐसे ही सच्चरित्र, नैष्ठिक तथा आध्यात्मिक ब्राह्मणो, स्त्री तथा पुरुषो से परिपूर्ण है, वह देश यदि विधिनिषेध के परे हो, तो इसमे आश्चर्य की कौन सी बात है? ऐसे लोगो पर शासन करने के लिए सेना या पुलिस इत्यादि की क्या आवश्यकता है? ऐसे आदमियो पर शासन करने का ही क्या काम है? अथवा ऐसे लोगो को किसी शासन-तन्त्र के अधीन रहने की ही क्या ज़रूरत है। ये लोग साधुस्वभाव महात्मा हैं—ईश्वर के अन्तरगस्वरूप हैं, ये ही हमारे आदर्श ब्राह्मण हैं और हम शास्त्रो मे देखते हैं—सत्ययुग मे पृथ्वी पर केवल एक जाति थी और वह ब्राह्मण थी। महाभारत मे हम देखते हैं, पुराकाल मे सारी पृथ्वी पर केवल ब्राह्मणो का ही निवास था। क्रमश ज्यो ज्यो उनकी अवनति होने लगी,

यह जाति भिन्न भिन्न जातियों में विभक्त होती गयी। फिर, जब कल्प चक्र घूमता घूमता सत्ययुग आ पहुँचेगा तब फिर से सभी ब्राह्मण ही हो जायेंगे। वर्तमान युग चक्र भविष्य में सत्ययुग के आने की सूचना दे रहा है, इसी बात की ओर मैं तुम्हारा ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। ऊँची जातियों को नीची करने मनचाहे आहार विहार करने और क्षणिक सुख-भोग के लिए अपने अपने वर्णाश्रम-धर्म की मर्यादा तोड़ने से इस जातिभेद की समस्या हल नहीं होगी। इसकी मीमांसा तभी होगी जब हम लोगों में से प्रत्येक मनुष्य वेदान्ती धर्म का आदेश पालन करने लगेगा जब हर कोई सच्चा धार्मिक होने की चेष्टा करेगा और प्रत्येक व्यक्ति आदर्श बन जायगा। तुम आर्य हो या अनार्य ऋषि-सन्तान हो ब्राह्मण हो या अत्यन्त नीच अन्त्यज जाति के ही क्यों न हो भारतभूमि के प्रत्येक निवासी के प्रति तुम्हारे पूर्वपुरुषों का दिया हुआ एक महान् आदेश है। तुम सबके प्रति बस एक ही आदेश है कि चुपचाप बैठे रहने से काम न होगा। निरन्तर उन्नति के लिए चेष्टा करते रहना होगा। ऊँची से ऊँची जाति से लेकर नीची से नीची जाति के लोगों (पैरिया) को भी ब्राह्मण होने की चेष्टा करनी होगी। वेदान्त का यह आदर्श केवल भारतवर्ष के लिए ही नहीं वरन् सारे संसार के लिए उपयुक्त है। हमारे जातिभेद का लक्ष्य यही है कि धीरे धीरे सारी मानव जाति आध्यात्मिक मनुष्य के महान् आदर्श को प्राप्त करने के लिए अग्रसर हो जो धृति क्षमा शौच शान्ति उपासना और ध्यान का अभ्यासी है। इस आदर्श में ईश्वर की स्थिति सन्निहित है।

इस उद्देश्य को कार्यरूप में परिणत करने का उपाय क्या है? मैं तुम लोगों को फिर एक बार याद दिला देना चाहता हूँ कि कोसने निन्दा करने या गालियों की बौछार करने से कोई सदुद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता। लगातार वर्षों तक इस प्रकार की कितनी ही चेष्टाएँ की गयी हैं, पर कभी अच्छा परिणाम प्राप्त नहीं हुआ। केवल पारस्परिक सद्भाव और प्रेम के द्वारा ही अच्छे परिणाम की आशा की जा सकती है। यह महान् विषय है और मेरी दृष्टि में जो योजनाएँ हैं उनकी व्याख्या के लिए कई भाषणों की आवश्यकता होगी जिनमें मैं प्रतिदिन उठनेवाले अपने विचारों को व्यक्त कर सकूँ। अतएव आज मैं यहीं पर अपनी वक्तृता का उपसंहार करता हूँ। हिन्दुओ! मैं तुम्हें केवल इतनी ही याद दिला देना चाहता हूँ कि हमारा यह राष्ट्रीय बेड़ा हमें सदियों से इस पार से उस पार करता आ रहा है। शायद आजकल इसमें कुछ छेद हो गये हैं शायद यह कुछ पुराना भी पड़ गया है। यदि यही बात है, तो हम सारे भारतवासियों को प्राणों की बाजी लगाकर इन छेदों को बन्द कर देने और इसका जीर्णोद्धार करने की चेष्टा करनी चाहिए। हमें अपने सभी देशभाइयों को इस खतरे की सूचना दे देनी चाहिए। वे जागें और

हमारी सहायता करें। मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक ज़ोर से चिल्लाकर लोगो को इस परिस्थिति और कर्तव्य के प्रति जागरूक करूँगा। मान लो, लोगो ने मेरी वात अनसुनी कर दी, तो भी मैं इसके लिए उन्हें न तो कोसूँगा और न भर्त्सना ही करूँगा। पुराने ज़माने मे हमारी जाति ने वहुत वडे वडे काम किये हैं, और यदि हम उनसे भी वडे वडे काम न कर सकें, तो एक साथ ही शान्तिपूर्वक डूव मरने मे हमे सन्तोष होगा। देशभक्त वनो—जिस जाति ने अतीत मे हमारे लिए इतने वडे वडे काम किये हैं, उसे प्राणो से भी अधिक प्यारी समझो। हे स्वदेशवासियो! मैं ससार के अन्यान्य राष्ट्रो के साथ अपने राष्ट्र की जितनी ही अधिक तुलना करता हूँ, उतना ही अधिक तुम लोगो के प्रति मेरा प्यार वढता जाता है। तुम लोग शुद्ध, शान्त और सत्स्वभाव हो, और तुम्ही लोग सदा अत्याचारो से पीडित रहते आये हो—इस मायामय जड जगत् की पहेली ही कुछ ऐसी है। जो हो, तुम इसकी परवाह मत करो। अन्त मे आत्मा की ही जय अवश्य होगी। इस वीच आओ हम काम मे सलग्न हो जायँ। केवल देश की निन्दा करने से काम नही चलने का। हमारी इस परम पवित्र मातृभूमि के काल-जर्जर कर्मजीर्ण आचारो और प्रथाओ की निन्दा मत करो। एकदम अधविश्वासपूर्ण और अतार्किक प्रथाओ के विरुद्ध भी एक शब्द मत कहो, क्योकि उनके द्वारा भी अतीत मे हमारी जाति और देश का कुछ न कुछ उपकार अवश्य हुआ है। सदा याद रखना कि हमारी सामाजिक प्रथाओ के उद्देश्य ऐसे महान् हैं, जैसे ससार के किसी और देश की प्रथाओ के नही हैं। मैंने ससार मे प्राय सर्वत्र जाति-पाँति का भेदभाव देखा है, पर उद्देश्य ऐसा महिमामय नही है। अतएव, जब जातिभेद का होना अनिवार्य है, तब उसे धन पर खडा करने की अपेक्षा पवित्रता और आत्मत्याग के ऊपर खडा करना कही अच्छा है। इसलिए निन्दा के शब्दो का उच्चारण एकदम छोड दो। तुम्हारा मुँह वन्द हो और हृदय खुल जाय। इस देश और सारे जगत् का उद्धार करो। तुम लोगो मे से प्रत्येक को यह सोचना होगा कि सारा भार तुम्हारे ही ऊपर है। वेदान्त का आलोक घर घर ले जाओ, प्रत्येक जीवात्मा मे जो ईश्वरत्व अन्तर्निहित है, उसे जगाओ। तव तुम्हारी सफलता का परिमाण जो भी हो, तुम्हें इस वात का सन्तोष होगा कि तुमने एक महान् उद्देश्य की सिद्धि मे ही अपना जीवन बिताया है, कर्म किया है और प्राण उत्सर्ग किया है। जैसे भी हो, महत्-कार्य की सिद्धि होने पर मानव जाति का दोनो लोको मे कल्याण होगा।

# मद्रास अभिनन्दन का उत्तर

स्वामी जी जब मद्रास पहुँचे तो उन्हें मद्रास स्वागत-समिति द्वारा एक मानपत्र भेंट किया गया। वह इस प्रकार था

परम पूज्य स्वामी जी

आज हम सब आपके पाश्चात्य देशों से धार्मिक प्रचार से लौटने के अवसर पर आपका मद्रासनिवासी धर्मावलम्बियों की ओर से आपका हार्दिक स्वागत करते हैं। आज आपकी सेवा में जो हम यह मानपत्र अर्पित कर रहे हैं उसका अर्थ यह नहीं है कि यह एक प्रकार का लोकाचार अथवा शिष्टाचार है, वरन् इसके द्वारा हम आपकी सेवा में अपने आन्तरिक एवं हार्दिक प्रेम की भेंट देते हैं तथा आपने ईश्वर की कृपा से भारतवर्ष के उच्च धार्मिक आदर्शों का प्रचार कर सत्य के प्रतिपादन का जो महान् कार्य किया है उसके निमित्त अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

जब शिकागो शहर में धर्म-महासभा का आयोजन किया गया उस समय स्वाभाविकतः हमारे देश के कुछ भाइयों के मन में इस बात की उत्सुकता उत्पन्न हुई कि हमारे श्रेष्ठ तथा प्राचीन धर्म का भी प्रतिनिधित्व वहाँ योग्यतापूर्वक किया जाय तथा उसका उचित रूप से अमेरिकन राष्ट्र में और फिर उसके द्वारा अन्य समस्त पाश्चात्य देशों में प्रचार हो। उस अवसर पर हमारा यह सौभाग्य था कि हमारी आपसे भेंट हुई और पुनः हमें उस बात का अनुभव हुआ जो बहुधा विभिन्न राष्ट्रों के इतिहास में सत्य सिद्ध हुआ है अर्थात् समय आने पर ऐसा व्यक्ति स्वयं आविर्भूत हो जाता है जो सत्य के प्रचार में सहायक होता है। और जब आपने उस धर्म महासभा में हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि रूप में जाने का बीड़ा उठाया तो हममें से अधिकांश लोगों के मन में यह निश्चित भावना उत्पन्न हुई कि उस चिरस्मरणीय धर्म महासभा में हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व बड़ी योग्यतापूर्वक होगा क्योंकि आपकी अनेकानेक शक्तियों को हम लोग थोड़ा बहुत जान चुके थे। हिन्दू धर्म के सनातन सिद्धान्तों का प्रतिपादन आपने जिस स्पष्टता शुद्धता तथा प्रामाणिकता से किया उससे केवल धर्म-महासभा पर ही एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा वरन् उसके द्वारा अन्य पाश्चात्य देशों के स्त्री-पुरुषों को भी यह अनुभव हो गया कि भारतवर्ष के इस आध्यात्मिक स्रोत से कितना ही अमरत्व तथा प्रेम का सुधापान किया जा सकता है और उसके फलस्वरूप मानव जाति का इतना सुन्दर, पूर्ण व्यापक

तथा शुद्ध विकास हो सकता है, जितना कि इस विश्व में पहले कभी नही हुआ। हम इस बात के लिए आपके विशेष कृतज्ञ हैं कि आपने ससार के महान् धर्मों के प्रतिनिधियो का ध्यान हिन्दू धर्म के उस विशेष सिद्धान्त की ओर आकर्षित किया, जिसको 'विभिन्न धर्मों मे बन्धुत्व तथा सामजस्य' कहा जा सकता है। आज यह सम्भव नही रहा है कि कोई वास्तविक शिक्षित तथा सच्चा व्यक्ति इस बात का ही दावा करे कि सत्य तथा पवित्रता पर किसी एक विशेष स्थान, सम्प्रदाय अथवा वाद का ही स्वामित्व है या वह यह कहे कि कोई विशेष धर्म-मार्ग या दर्शन ही अन्त तक रहेगा और अन्य सब नष्ट हो जायँगे। यहाँ पर हम आप ही के उन सुन्दर शब्दो को दुहराते हैं, जिनके द्वारा श्रीमद्भागवद्गीता का केन्द्रीय सामजस्य भाव स्पष्ट प्रकट होता है कि 'ससार के विभिन्न धर्म एक प्रकार के यात्रास्वरूप है, जहाँ तरह तरह के स्त्री-पुरुष इकट्ठे हुए है तथा जो भिन्न भिन्न दशाओ तथा परिस्थितियो मे से होकर एक ही लक्ष्य की ओर जा रहे हैं।'

हम तो यह कहेंगे कि यदि आपने सिर्फ इस पुण्य एव उच्च उद्देश्य को ही, जो आपको सौंपा गया था, अपने कर्त्तव्य रूप मे निवाहा होता, तो उतने से ही आपके हिन्दू भाई बडी प्रसन्नता तथा कृतज्ञतापूर्वक आपके उस अमूल्य कार्य के लिए महान् आभार मानते। परन्तु आप केवल इतना ही न करके पाश्चात्य देशो मे भी गये, तथा वहाँ जाकर आपने जनता को ज्ञान तथा शान्ति का सदेश सुनाया जो भारतवर्ष के सनातन धर्म की प्राचीन शिक्षा है। वेदान्त धर्म के परम युक्तिसम्मत होने को प्रमाणित करने मे आपने जो यत्न किया है उसके लिए आपको हार्दिक धन्यवाद देते समय हमे आपके उस महान् सकल्प का उल्लेख करते हुए बडा हर्ष होता है, जिसके आधार पर प्राचीन हिन्दू धर्म तथा हिन्दू दर्शन के प्रचार के लिए अनेकानेक केन्द्रो वाला एक सक्रिय मिशन स्थापित होगा। आप जिन प्राचीन आचार्यों के पवित्र मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं, एव जिस महान् गुरु ने आपके जीवन और उसके उद्देश्यो को उत्प्रेरित किया है, उन्हीके योग्य अपने को सिद्ध करने के लिए आपने इस महान् कार्य मे अपनी सारी शक्ति लगाने का सकल्प किया है। हम इस बात के प्रार्थी हैं कि ईश्वर हमे वह सुअवसर दे जिसमे कि हम आपके साथ इस पुण्य कार्य मे सहयोग दे सके। साथ ही हम उस सर्व-शक्तिमान दयालु परमपिता परमेश्वर से करबद्ध होकर यह भी प्रार्थना करते हैं कि वह आपको चिरजीवी करे, शक्तिशाली बनाए तथा आपके प्रयत्नो को वह गौरव तथा सफलता प्रदान करे जो सनातन सत्य के ललाट पर सदैव अकित रहती हैं।

इसके बाद खेतडी के महाराजा का निम्नलिखित मानपत्र भी पढा गया

पूज्यपाद स्वामी जी

इस अवसर पर जब कि आप मद्रास पधारे हैं, मैं यथाशक्ति शीघ्रातिशीघ्र आपकी सेवा में उपस्थित होकर, विदेश से आपके कुशलपूर्वक वापस लौट आने पर अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करता हूँ तथा पाश्चात्य देशों में आपके निःस्वार्थ प्रयत्नों को जो सफलता प्राप्त हुई है, उस पर आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। हम जानते हैं कि ये पाश्चात्य देश वे ही हैं, जिनके विद्वानों का यह दावा है कि 'यदि किसी क्षेत्र में विज्ञान ने अपना अधिकार जमा लिया तो फिर धर्म की मजाल भी नहीं है कि वह वहाँ अपना पैर रख सके' यद्यपि सच बात तो यह है कि विज्ञान ने स्वयं अपने को कभी भी सच्चे धर्म का विरोधी नहीं ठहराया। हमारा यह पवित्र आर्यावर्त देश इस बात में विशेष भाग्यशाली है कि शिकागो की धर्म-महासभा में प्रतिनिधि के रूप में जाने के लिए उसे आप जैसा एक महापुरुष मिल सका और, स्वामी जी यह केवल आपकी ही विद्वत्ता साहसिकता तथा अदम्य उत्साह का फल है कि पाश्चात्य देश वाले भी यह बात भली भाँति जान गए कि आज भी भारत के पास आध्यात्मिकता की कैसी असीम निधि है। आपके प्रयत्नों के फलस्वरूप आज यह बात पूर्ण रूप से सिद्ध हो गई है कि संसार के अनेकानेक मतमतान्तरों के विरोधाभास का सामंजस्य वेदान्त के सार्वभौम प्रकाश में हो सकता है। और संसार के लोगों को यह बात भली भाँति समझ लेने तथा इस महान् सत्य को कार्यान्वित करने की आवश्यकता है कि विश्व के विकास में प्रकृति की सदैव योजना रही है 'विविधता में एकता'। साथ ही विभिन्न धर्मों में समन्वय बन्धुत्व तथा पारस्परिक सहानुभूति एवं सहायता द्वारा ही मनुष्य जाति का जीवनव्रत उद्यापित एवं उसका चरमोद्देश्य सिद्ध होना सम्भव है। आपके महान् तथा पवित्र तत्त्वावधान में तथा आपकी श्रेष्ठ शिक्षाओं के स्फूर्तिदायक प्रभाव के आधार पर हम वर्तमान पीढ़ी के लोगों को इस बात का सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि हम अपनी ही आँखों के सामने संसार के इतिहास में एक उस युग का प्रादुर्भाव देख सकेंगे जिसमें धर्मान्धता घृणा तथा संघर्ष का नाश होकर, मुझे आशा है कि शान्ति सहानुभूति तथा प्रेम का साम्राज्य होगा। और मैं अपनी प्रजा के साथ ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूँ कि उसकी कृपा आप पर तथा आपके प्रयत्नों पर सदैव बनी रहे!

जब यह मानपत्र पढ़ा जा चुका तो स्वामी जी सभामंडप से उठ गये और एक गाड़ी में चढ़ गये जो उन्हीं के लिए खड़ी थी। स्वामी जी के स्वागत के लिए आई हुई जनता की भीड़ इतनी जबरदस्त थी तथा उसमें ऐसा जोश समाया था कि उस अवसर पर तो स्वामी जी केवल निम्नलिखित संक्षिप्त उत्तर ही दे सके; अपना पूर्ण उत्तर उन्होंने किसी दूसरे अवसर के लिए स्थगित रखा।

## स्वामी जी का उत्तर

बन्धुओ, मनुष्य की इच्छा एक होती है परन्तु ईश्वर की दूसरी। विचार यह था कि तुम्हारे मानपत्र का पाठ तथा मेरा उत्तर ठीक अंग्रेज़ी शैली पर हो, परन्तु यही ईश्वरेच्छा दूसरी प्रतीत होती है---मुझे इतने बडे जनसमूह से 'रथ' मे चढकर गीता के ढग से बोलना पड रहा है। इसके लिए हम कृतज्ञ ही हैं, अच्छा ही है कि ऐसा हुआ। इससे भाषण मे स्वभावत ओज आ जायगा तथा जो कुछ मैं तुम लोगो से कहूँगा उसमे शक्ति का सचार होगा। मैं कह नही सकता कि मेरी आवाज़ तुम सब तक पहुँच सकेगी या नही, परन्तु मैं यत्न करूँगा। इसके पहले शायद खुले मैदान मे व्यापक जनसमूह के सामने भाषण देने का अवसर मुझे कभी नही मिला था।

जिस अपूर्व स्नेह तथा उत्साहपूर्वक उल्लास से मेरा कोलम्बो से लेकर मद्रास पर्यन्त स्वागत किया गया है तथा जैसा लगता है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष मे किये जाने की सम्भावना है, वह मेरी सर्वाधिक स्वप्नमयी रगीन आशाओ से भी अधिक है। परन्तु इससे मुझे हर्ष ही होता है। और वह इसलिए कि इसके द्वारा मुझे अपना वह कथन प्रत्येक बार सिद्ध होता दिखाई देता है जो मैं कई बार पहले भी व्यक्त कर चुका हूँ कि प्रत्येक राष्ट्र का एक ध्येय उसके लिए सजीवनीस्वरूप होता है, प्रत्येक राष्ट्र का एक विशेष निर्धारित मार्ग होता है, और भारतवर्ष का विशेषत्व है धर्म। ससार के अन्य देशो मे धर्म तो केवल कई बातो मे से एक है, असल मे वहाँ तो वह एक छोटी सी चीज़ गिना जाता है। उदाहरणार्थ, इग्लैंड मे धर्म राष्ट्रीय नीति का केवल एक अश है, इग्लिश चर्च शाही घराने की एक चीज़ है और इसीलिए उनकी चाहे उसमे श्रद्धा-भक्ति हो अथवा नही, वे उसके सहायक सदैव बने रहेंगे, क्योकि वे तो यह समझते हैं कि वह उनका चर्च है। और प्रत्येक भद्र पुरुष तथा महिला से यही आशा की जाती है कि वह उसी चर्च का एक सदस्य बनकर रहे, और वही मानो भद्रता का चिह्न है। इसी प्रकार अन्य देशो मे भी एक एक प्रबल राष्ट्रीय शक्ति होती है, यह शक्ति या तो ज़बरदस्त राजनीति के रूप मे दिखाई देती है अथवा किसी बौद्धिक खोज के रूप मे। इसी प्रकार कही या तो यह सैन्यवाद के रूप मे दिखाई देती है अथवा वाणिज्यवाद के रूप मे। कह सकते है कि उन्ही क्षेत्रो मे राष्ट्र का हृदय स्थित रहता है और इस प्रकार धर्म तो उस राष्ट्र की अन्य बहुत सी चीज़ो मे से केवल एक ऊपरी सजावट की सी चीज़ रह जाती है।

पर भारतवर्ष मे धर्म ही राष्ट्र के हृदय का मर्मस्थल है, इसीको राष्ट्र की रीढ कह लो अथवा वह नीव समझो जिसके ऊपर राष्ट्ररूपी इमारत खडी है। इस देश

में राजनीति यहाँ तक कि बुद्धिविकास भी गौण समझे जाते हैं। भारत में धर्म को सर्वोपरि समझा जाता है। मैंने यह बात सैकड़ों बार सुनी है कि भारतीय जनता साधारण जानकारी की बातों से भी अभिज्ञ नहीं है और यह बात सचमुच ठीक भी है। जब मैं कोलम्बो में उतरा तो मुझे यह पता लगा कि वहाँ किसी को भी इस बात का ज्ञान न था कि यूरोप में कैसी राजनीतिक उथलपुथल मची हुई है, वहाँ क्या क्या परिवर्तन हो रहे हैं, मन्त्रिमंडल की कैसी हार हो रही है, आदि आदि। एक भी व्यक्ति को यह ज्ञात न था कि समाजवाद, अराजकतावाद आदि शब्दों का अथवा यूरोप के राजनीतिक वातावरण में अमुक परिवर्तन का क्या अर्थ है। परन्तु दूसरी ओर यदि तुम लंका के ही लोगों को ले लो तो वहाँ के प्रत्येक स्त्री-पुरुष तथा बच्चे बच्चे को मालूम था कि उनके देश में एक भारतीय संन्यासी आया है जो शिकागो की धर्म-महासभा में भाग लेने के लिए भेजा गया था तथा जिसने वहाँ अपने क्षेत्र में सफलता प्राप्त की। इससे सिद्ध होता है कि उस देश के लोग जहाँ तक ऐसी सूचना से सम्बन्ध है जो उनके मतलब की है अथवा जिससे उनके दैनिक जीवन का ताल्लुक है उससे वे जरूर अवगत हैं तथा जानने की इच्छा रखते हैं। राजनीति तथा इस प्रकार की अन्य बातें भारतीय जीवन के अत्यावश्यक विषय कभी नहीं रहे हैं। परन्तु धर्म एवं आध्यात्मिकता ही एक ऐसा मुख्य आधार रहे हैं जिसके ऊपर भारतीय जीवन निर्भर रहा है तथा फला-फूला है और इतना ही नहीं भविष्य में भी इसे इसीपर निर्भर रहना है।

संसार के राष्ट्रों द्वारा बड़ी समस्याओं का समाधान हो रहा है। भारत ने सदैव एक का पक्ष ग्रहण किया है तथा अन्य समस्त संसार ने दूसरे का पक्ष। वह समस्या यह है कि भविष्य में कौन टिक सकेगा? क्या कारण है कि एक राष्ट्र जीवित रहता है तथा दूसरा नष्ट हो जाता है? जीवनसंग्राम में घृणा टिक सकती है अथवा प्रेम, भोगविलास चिरस्थायी है अथवा त्याग, भौतिकता टिक सकती है या आध्यात्मिकता। हमारी विचारधारा उसी प्रकार की है जैसी हमारे पूर्वजों की अति प्राचीन प्रागैतिहासिक काल में थी। जिस अन्धकारमय प्राचीन काल तक पौराणिक परम्पराएँ भी पहुँच नहीं सकतीं, उसी समय हमारे यशस्वी पूर्वजों ने अपनी समस्या के पक्ष का ग्रहण कर लिया और संसार को चुनौती दे दी। हमारी समस्या को हल करने का रास्ता है वैराग्य, त्याग, निर्भीकता तथा प्रेम। बस ये ही सब टिकने योग्य हैं। जो राष्ट्र इन्द्रियों की आसक्ति का त्याग कर देता है, वही टिक सकता है। और इसका प्रमाण यह है कि आज हमें इतिहास इस बात की गवाही दे रहा है कि प्राय: प्रत्येक सदी में बरसाती मेढकों की तरह नये राष्ट्रों का उत्थान तथा पतन हो रहा है—लगभग शून्य से आरम्भ करते हैं, कुछ दिनों तक उपद्रव

मचाते है और फिर समाप्त हो जाते हैं। परन्तु यह भारत का महान् राष्ट्र जिसको अनेकानेक ऐसे दुर्भाग्यो, खतरो तथा उथलपुथल की कठिनतम समस्याओ से उलझना पडा है, जैसा कि ससार के किसी अन्य राष्ट्र को करना नही पडा, आज भी कायम है, टिका हुआ है, और इसका कारण है सिर्फ वैराग्य तथा त्याग क्योकि यह स्पष्ट ही है कि बिना त्याग के धर्म रह ही नही सकता। इसके विपरीत यूरोप एक दूसरी ही समस्या के सुलझाने मे लगा हुआ है। उसकी समस्या यह है कि एक आदमी अधिक से अधिक कितनी सम्पत्ति इकट्ठा कर सकता है, वह कितनी शक्ति जुटा सकता है, भले ही वह ईमानदारी से हो या बेईमानी से, नेकनामी से हो या बदनामी से। क्रूर, निर्दय, हृदयहीन, प्रतिद्वन्द्विता, यही यूरोप का नियम रहा है। पर हमारा नियम रहा है वर्ण-विभाग, प्रतिस्पर्धा का नाश, प्रतिस्पर्धा के बल को रोकना, इसके अत्याचारो को रौंद डालना तथा इस रहस्यमय जीवन मे मानव का पथ शुद्ध एव सरल बना देना।

स्वामी जी का भाषण इस प्रकार हो ही रहा था कि इस अवसर पर जनता की ऐसी भीड उमडी कि उनका भाषण सुनना कठिन हो गया। इसलिए स्वामी जी ने यह कहकर ही सक्षेप मे अपना भाषण समाप्त कर दिया।

मित्रो, मैं तुम्हारा जोश देखकर बहुत प्रसन्न हूँ, यह परम प्रशसनीय है। यह मत सोचना कि मैं तुम्हारे इस भाव को देखकर नाराज़ हूँ, बल्कि मैं तो खुश हूँ, बहुत खुश हूँ—बस ऐसा ही अदम्य उत्साह चाहिए, ऐसा ही जोश हो। सिर्फ इतना ही है कि इसे चिरस्थायी रखना—इसे बनाये रखना। इस आग को बुझ मत जाने देना। हमे भारत मे बहुत बडे बडे कार्य करने हैं। उसके लिए मुझे तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है। ठीक है, ऐसा ही जोश चाहिए। अच्छा, अब इस सभा को जारी रखना असम्भव प्रतीत होता है। तुम्हारे सदय व्यवहार तथा जोशीले स्वागत के लिए मैं तुम्हें अनेक धन्यवाद देता हूँ। किसी दूसरे मौके पर शान्ति मे हम-तुम फिर कुछ और बातचीत तथा भावविनिमय करेंगे—मित्रो, अभी के लिए नमस्ते।

चूंकि तुम लोगो की भीड चारो ओर है और चारो ओर घूमकर व्याख्यान देना असम्भव है, इसलिए इस समय तुम लोग केवल मुझे देखकर ही सतुष्ट हो जाओ। अपना विस्तृत व्याख्यान मैं फिर किसी दूसरे अवसर पर दूंगा। तुम्हारे उत्साहपूर्ण स्वागत के लिए पुन धन्यवाद।

# मेरी क्रान्तिकारी योजना

## [मद्रास के विक्टोरिया हॉल में दिया गया भाषण]

उस दिन अधिक भीड़ के कारण मैं व्याख्यान समाप्त नहीं कर सका था, अतएव मद्रास निवासी मेरे प्रति जो निरन्तर सदय व्यवहार करते आये हैं, उसके लिए आज मैं उन्हें अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ। मैं यह नहीं जानता कि अभिनन्दन-पत्रों में मेरे लिए जो सुन्दर सुन्दर विशेषण प्रयुक्त हुए हैं, उनके लिए मैं किस प्रकार अपनी कृतज्ञता प्रकट करूँ। मैं प्रभु से इतनी ही प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे इन कृपापूर्ण तथा उदार प्रशंसाओं के योग्य बना दें और इस योग्य भी कि मैं अपना सारा जीवन अपने धर्म और मातृभूमि की सेवा में अर्पण कर सकूँ। प्रभु मुझे इनके योग्य बनायें।

मैं समझता हूँ कि मुझमें अनेक दोषों के होते हुए भी थोड़ा साहस है। मैं भारत से पाश्चात्य देशों में कुछ सन्देश ले गया था और उसे मैंने निर्भीकता से अमेरिका और इंग्लैण्डवासियों के सामने प्रकट किया। आज का विषय आरम्भ करने के पूर्व मैं साहसपूर्वक दो शब्द तुम लोगों से कहना चाहता हूँ। कुछ दिनों से मेरे चारों ओर कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित हो रही हैं, जो मेरे कार्य की उन्नति में विशेष रूप से विघ्न डालने की चेष्टा कर रही हैं, यहाँ तक कि यदि सम्भव हो सके तो वे मुझे एकबारगी कुचल कर मेरा अस्तित्व ही नष्ट कर डालें। पर ईश्वर को धन्यवाद कि ये सारी चेष्टाएँ विफल हो गयी हैं, और इस प्रकार की चेष्टाएँ सदैव विफल ही सिद्ध होती हैं। मैं गत तीन वर्षों से देख रहा हूँ, कुछ लोग मेरे एवं मेरे कार्यों के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्त धारणाएँ बनाये हुए हैं। जब तक मैं विदेश में था, मैं चुप रहा, मैं एक शब्द भी नहीं बोला। पर आज मैं अपने देश की भूमि पर खड़ा हूँ, मैं स्पष्टीकरण के रूप में कुछ शब्द कहना चाहता हूँ। इन शब्दों का क्या फल होगा, अथवा ये शब्द तुम लोगों के हृदय में किन किन भावों का उद्रेक करेंगे, इसकी मैं परवाह नहीं करता। मुझे बहुत कम चिन्ता है, क्योंकि मैं वही संन्यासी हूँ जिसने लगभग चार वर्ष पहले अपने दण्ड और कमण्डलु के साथ तुम्हारे नगर में प्रवेश किया था, और वही सारी दुनिया इस समय भी मेरे सामने पड़ी है।

बिना और अधिक भूमिका के मैं अब अपने विषय को आरम्भ करता हूँ। सबसे पहले मुझे थियोसॉफिकल सोसायटी के सम्बन्ध मे कुछ कहना है। यह कहने की आवश्यकता नही कि उक्त सोसायटी से भारत का कुछ भला हुआ है और इसके लिए प्रत्येक हिन्दू उक्त सोसायटी और विशेषकर श्रीमती बेसेंट का कृतज्ञ है। यद्यपि मैं श्रीमती बेसेंट के सम्बन्ध मे बहुत कम ही जानता हूँ, पर जो कुछ भी मुझे उनके बारे मे मालूम है, उसके आधार पर मेरी यह धारणा है कि वे हमारी मातृभूमि की सच्ची हितचिन्तक हैं और यथाशक्ति उसकी उन्नति की चेष्टा कर रही हैं, इसलिए वे प्रत्येक सच्ची भारत-सन्तान की विशेष कृतज्ञता की अधिकारिणी हैं। प्रभु उन पर तथा उनसे सम्बन्धित सब पर आशीर्वाद की वर्षा करें! परन्तु यह एक बात है, और थियोसॉफिकल सोसायटी मे सम्मिलित होना एक दूसरी बात। भक्ति, श्रद्धा और प्रेम एक बात है, और कोई मनुष्य जो कुछ कहे, उसे बिना विचारे, बिना तर्क किये, बिना उसका विश्लेषण किये निगल जाना सर्वथा दूसरी बात। एक अफवाह चारो ओर फैल रही है और वह यह कि अमेरिका और इग्लैण्ड मे जो कुछ काम मैंने किया है, उसमे थियोसॉफिस्टो ने मेरी सहायता की है। मैं तुम लोगो को स्पष्ट शब्दो मे बता देना चाहता हूँ कि इसका प्रत्येक शब्द गलत है, प्रत्येक शब्द झूठ है। हम लोग इस जगत् मे उदार भावो एव भिन्न मतवालो के प्रति सहानभूति के सम्बन्ध मे बडी लम्बी-चौडी बातें सुना करते हैं। यह है तो बहुत अच्छी बात, पर कार्यत हम देखते हैं कि जब कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य की सब बातो मे विश्वास करता है, केवल तभी तक वह उससे सहानुभूति पाता है, पर ज्यो ही वह किसी विषय मे उससे भिन्न विचार रखने का साहस करता है, त्यो ही वह सहानभूति गायब हो जाती है, वह प्रेम खत्म हो जाता है। फिर, कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिनका अपना अपना स्वार्थ रहता है। और यदि किसी देश मे ऐसी कोई बात हो जाय, जिससे उनके स्वार्थ मे कुछ धक्का लगता हो, तो उनके हृदय मे इतनी ईर्ष्या और घृणा उत्पन्न हो जाती है कि वे उस समय क्या कर डालेंगे, कुछ कहा नही जा सकता। यदि हिन्दू अपने घरो को साफ करने की चेष्टा करते हो, तो इससे ईसाई मिशनरियो का क्या बिगडता है? यदि हिन्दू प्राणपण से अपना सुधार करने का प्रयत्न करते हो, तो इसमे ब्राह्मसमाज और अन्यान्य सुधारसस्थाओ का क्या जाता है? ये लोग हिन्दुओ के सुधार के विरोध मे क्यो खडे हो? ये लोग इस आन्दोलन के प्रबलतम शत्रु क्यो हो? क्यो?—यही मेरा प्रश्न है। मेरी समझ मे तो उनकी घृणा और ईर्ष्या की मात्रा इतनी अधिक है कि इस विषय मे उनसे किसी प्रकार का प्रश्न करना भी सर्वथा निरर्थक है।

आज से चार वर्ष पहले जब मैं अमेरिका जा रहा था—सात समुद्र पार, बिना किसी परिचय-पत्र के, बिना किसी जान-पहचान के, एक धनहीन, मित्रहीन, अज्ञात संन्यासी के रूप में—तब मैंने थियोसॉफ़िकल सोसायटी के नेता से भेंट की। स्वभावतः मैंने सोचा था कि जब ये अमेरिकावासी हैं और भारत-भक्त हैं, तो सम्भवतः अमेरिका के किसी सज्जन के नाम मुझे एक परिचय-पत्र दे देंगे। किन्तु जब मैंने उनके पास जाकर इस प्रकार के परिचय-पत्र के लिए प्रार्थना की, तो उन्होंने पूछा, "क्या आप हमारी सोसायटी के सदस्य बनेंगे?" मैंने उत्तर दिया, "नहीं, मैं किस प्रकार आपकी सोसायटी का सदस्य हो सकता हूँ? मैं तो आपके अधिकांश सिद्धान्तों पर विश्वास नहीं करता।" उन्होंने कहा, "तब मुझे खेद है, मैं आपके लिए कुछ भी नहीं कर सकता।" क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? जो हो, मैं अपने कतिपय मद्रासी मित्रों की सहायता से अमेरिका गया। उन मित्रों में से अनेक यहाँ पर उपस्थित हैं, केवल एक ही अनुपस्थित हैं, न्यायाधीश सुब्रह्मण्य अय्यर, जिनके प्रति अपनी परम कृतज्ञता प्रकट करना शेष है। उनमें प्रतिभाशाली पुरुष की अन्तर्दृष्टि विद्यमान है। इस जीवन में मेरे सच्चे मित्रों में से वे एक हैं, वे भारत माता के सच्चे सपूत हैं। अस्तु, धर्म-महासभा के कई मास पूर्व ही मैं अमेरिका पहुँच गया। मेरे पास रुपये बहुत कम थे, और वे शीघ्र ही समाप्त हो गये। इधर जाड़ा भी आ गया, और मेरे पास थे सिर्फ़ गरमी के कपड़े। उस घोर शीतप्रधान देश में मैं आखिर क्या करूँ, यह कुछ सूझता न था। यदि मैं मार्ग में भीख माँगने लगता, तो परिणाम यही होता कि मैं जेल भेज दिया जाता। उस समय मेरे पास केवल कुछ ही डालर बचे थे। मैंने अपने मद्रासवासी मित्रों के पास तार भेजा। यह बात थियोसॉफ़िस्टों को मालूम हो गयी और उनमें से एक ने लिखा, "अब शैतान शीघ्र ही मर जायगा, ईश्वर की कृपा से अच्छा ही हुआ। बला टली!" तो क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? मैं ये बातें इस समय कहना नहीं चाहता था, किन्तु मेरे देशवासी यह सब जानने के इच्छुक थे, अतः कहनी पड़ीं। गत तीन वर्षों तक इस सम्बन्ध में एक शब्द भी मैंने मुँह से नहीं निकाला। चुपचाप रहना ही मेरा मूलमंत्र रहा, किन्तु आज ये बातें मुँह से निकल पड़ीं। पर बात यहीं पर पूरी नहीं हो जाती। मैंने धर्म-महासभा में कई थियोसॉफ़िस्टों को देखा। मैंने उनसे बातचीत करने और मिलने-जुलने की चेष्टा की। उन लोगों ने जिस अवज्ञा भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा, वह आज भी मेरी नज़रों पर नाच रही है—*मानो वह कह रही थी,* "यह कहाँ का क्षुद्र कीड़ा यहाँ देवताओं के बीच आ गया?" मैं पूछता हूँ, क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? हाँ, तो धर्म-महासभा में मेरा बहुत नाम तथा यश हो गया, और तब से मेरे ऊपर अत्यधिक कार्य भार आ गया। पर प्रत्येक स्थान

पर इन लोगो ने मुझे दबाने की चेष्टा की। थियोसॉफिकल सोसायटी के सदस्यो को मेरे व्याख्यान सुनने की मनाही कर दी गयी। यदि वे मेरी वक्तृता सुनने आते, तो वे सोसायटी की सहानुभूति खो देते, क्योंकि इस सोसायटी के गुप्त (एसोटेरिक) विभाग का यह नियम ही है कि जो मनुष्य उक्त विभाग का सदस्य होता है, उसे केवल कुथमी और मोरिया (वे जो भी हो) के पास से ही शिक्षा ग्रहण करनी पडती है—अवश्य इनके दृश्य प्रतिनिधि, मिस्टर जज और मिसेज़ बेसेन्ट से। अत उक्त विभाग के सदस्य होने का अर्थ यह है कि मनुष्य अपना स्वाधीन विचार बिल्कुल छोडकर पूर्ण रूप से इन लोगो के हाथ मे आत्मसमर्पण कर दे। निश्चय ही मैं ये सब बातें नही कर सकता था, और जो मनुष्य ऐसा करे, उसे मैं हिन्दू कह भी नही सकता। मेरे हृदय मे स्वर्गीय मिस्टर जज के लिए बडी श्रद्धा है। वे गुणवान, उदार, सरल और थियोसॉफिस्टो के योग्यतम प्रतिनिधि थे। उनमे और श्रीमती बेसेन्ट मे जो विरोध हुआ था, उसके सम्बन्ध मे कुछ भी राय देने का मुझे अधिकार नही है, क्योकि दोनो ही अपने अपने 'महात्मा' की सत्यता का दावा करते हैं। और यहाँ आश्चर्य की बात तो यह है कि दोनो एक ही 'महात्मा' का दावा करते हैं। ईश्वर जाने, सत्य क्या है—वे ही एकमात्र निर्णायक हैं। और जब दोनो पक्षो मे प्रमाण की मात्रा बराबर है, तब ऐसी अवस्था मे किसी भी पक्ष मे अपनी राय प्रकट करने का किसी को अधिकार नही।

हाँ, तो इस प्रकार उन लोगो ने समस्त अमेरिका मे मेरे लिए मार्ग प्रशस्त किया। पर वे यही पर नही रुके, वे दूसरे विरोधी पक्ष—ईसाई मिशनरियो—से जा मिले। इन ईसाई मिशनरियो ने मेरे विरुद्ध ऐसे ऐसे भयानक झूठ गढे, जिनकी कल्पना तक नही की जा सकती। यद्यपि मैं उस परदेश मे अकेला और मित्रहीन था, तथापि उन्होंने प्रत्येक स्थान मे मेरे चरित्र पर दोषारोपण किया। उन्होंने मुझे प्रत्येक मकान से बाहर निकाल देने की चेष्टा की, और जो भी मेरा मित्र बनता, उसे मेरा शत्रु बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने मुझे भूखो मार डालने की कोशिश की, और यह कहते मुझे दु ख होता है कि इस काम मे मेरे एक भारतवासी भाई का भी हाथ था। वे भारत मे एक सुधारक दल के नेता हैं। ये सज्जन प्रतिदिन घोषित करते है कि 'ईसा भारत मे आये हैं।' तो क्या इसी प्रकार ईसा भारत मे आयेंगे? क्या इसी प्रकार भारत का सुधार होगा? इन सज्जन को मैं अपने बचपन से ही जानता था, ये मेरे परम मित्र भी थे। जब मैं उनसे मिला, तो बडा ही प्रसन्न हुआ, क्योंकि मैंने बहुत दिनो से अपने किसी देशभाई को नही देखा था। पर उन्होंने मेरे प्रति ऐसा व्यवहार किया। जिस दिन धर्म-महासभा ने मुझे सम्मानित किया, जिस दिन शिकागो में मैं लोकप्रिय हो गया, उसी दिन से

आज से चार वर्ष पहले जब मैं अमेरिका जा रहा था—सात समुद्र पार, बिना किसी परिचय-पत्र के, बिना किसी जान-पहचान के, एक धनहीन, मित्रहीन, अज्ञात संन्यासी के रूप में—तब मैंने थियोसॉफिकल सोसायटी के नेता से भेंट की। स्वभावतः मैंने सोचा था कि जब ये अमेरिकावासी हैं और भारत भक्त हैं, तो सम्भवतः अमेरिका के किसी सज्जन के नाम मुझे एक परिचय-पत्र दे देंगे। किन्तु जब मैंने उनके पास जाकर इस प्रकार के परिचय-पत्र के लिए प्रार्थना की, तो उन्होंने पूछा, "क्या आप हमारी सोसायटी के सदस्य बनेंगे?" मैंने उत्तर दिया, "नहीं, मैं किस प्रकार आपकी सोसायटी का सदस्य हो सकता हूँ? मैं तो आपके अधिकांश सिद्धान्तों पर विश्वास नहीं करता।" उन्होंने कहा, "तब मुझे खेद है, मैं आपके लिए कुछ भी नहीं कर सकता।" क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? जो हो, मैं अपने कतिपय मद्रासी मित्रों की सहायता से अमेरिका गया। उन मित्रों में से अनेक यहाँ पर उपस्थित हैं, केवल एक ही अनुपस्थित हैं, न्यायाधीश सुब्रह्मण्य अय्यर, जिनके प्रति अपनी परम कृतज्ञता प्रकट करना शेष है। उनमें प्रतिभाशाली पुरुष की अन्तर्दृष्टि विद्यमान है। इस जीवन में मेरे सच्चे मित्रों में से वे एक हैं, वे भारत माता के सच्चे सपूत हैं। अस्तु, धर्म-महासभा के कई मास पूर्व ही मैं अमेरिका पहुँच गया। मेरे पास रुपये बहुत कम थे, और वे शीघ्र ही समाप्त हो गये। इधर जाड़ा भी आ गया, और मेरे पास थे सिर्फ गरमी के कपड़े। उस घोर शीतप्रधान देश में मैं आखिर क्या करूँ, यह कुछ सूझता न था। यदि मैं मार्ग में भीख माँगने लगता, तो परिणाम यही होता कि मैं जेल भेज दिया जाता। उस समय मेरे पास केवल कुछ ही डालर बचे थे। मैंने अपने मद्रासवासी मित्रों के पास तार भेजा। यह बात थियोसॉफिस्टों को मालूम हो गयी और उनमें से एक ने लिखा, "अब शैतान शीघ्र ही मर जायगा, ईश्वर की कृपा से अच्छा ही हुआ। बला टली!" तो क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? मैं ये बातें इस समय कहना नहीं चाहता था, किन्तु मेरे देशवासी यह सब जानने के इच्छुक थे, अतः कहनी पड़ीं। गत तीन वर्षों तक इस सम्बन्ध में एक शब्द भी मैंने मुँह से नहीं निकाला। चुपचाप रहना ही मेरा मूलमन्त्र रहा, किन्तु आज ये बातें मुँह से निकल पड़ीं। पर बात यहीं पर पूरी नहीं हो जाती। मैंने धर्म-महासभा में कई थियोसॉफिस्टों को देखा। मैंने उनसे बातचीत करने और मिलने-जुलने की चेष्टा की। उन लोगों ने जिस अवज्ञा भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा, वह आज भी मेरी नजरों पर नाच रही है—मानो वह कह रही थी, "यह कहाँ का क्षुद्र कीड़ा यहाँ देवताओं के बीच आ गया?" मैं पूछता हूँ, क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? हाँ, तो धर्म-महासभा में मेरा बहुत नाम यश हो गया, और तब से मेरे ऊपर अत्यधिक कार्य भार आ पड़ा। पर प्रत्येक स्थान

सबका दास बना सके। मैं उन्ही महापुरुष के श्री चरणो को अपने मस्तक पर धारण किये हूँ। वे ही मेरे आदर्श हैं—मैं उन्ही आदर्श पुरुष के जीवन का अनुकरण करने की चेष्टा करूँगा। सबका सेवक बनकर ही एक हिन्दू अपने को उन्नत करने की चेष्टा करता है। उसे इसी प्रकार, न कि विदेशी प्रभाव की सहायता से, सर्वसाधारण को उन्नत करना चाहिए। बीस वर्ष की पश्चिमी सभ्यता मेरे मन मे उस मनुष्य का दृष्टान्त उपस्थित कर देती है, जो विदेश मे अपने मित्र को भूखा मार डालना चाहता है। क्यो?—केवल इसीलिए कि उसका मित्र लोकप्रिय हो गया है और उसके विचार मे वह मित्र उसके धनोपार्जन मे बाधक होता है। और असल, सनातन हिन्दू धर्म के उदाहरणस्वरूप हैं ये दूसरे व्यक्ति, जिनके सम्बन्ध मे मैंने अभी कहा है। इससे विदित हो जायगा कि सच्चा हिन्दू धर्म किस प्रकार कार्य करता है। हमारे इन सुधारको मे से एक भी, ऐसा जीवन गठन करके दिखाये तो सही जो एक पैरिया की भी सेवा के लिए तत्पर हो। फिर तो मैं उसके चरणो के समीप बैठकर शिक्षा ग्रहण करूँ, पर हाँ, उसके पहले नही। लम्बी-चौडी बातो की अपेक्षा थोडा कुछ कर दिखाना लाख गुना अच्छा है।

अब मैं मद्रास की समाज-सुधारक समितियो के बारे मे कुछ कहूँगा। उन्होने मेरे साथ बडा सदय व्यवहार किया है। उन्होंने मेरे लिए अनेक मधुर शब्दो का प्रयोग किया है और मुझे बताया है कि मद्रास और बगाल के समाज-सुधारको मे बडा अन्तर है। मैं उनसे इस बात मे सहमत हूँ। मैंने अक्सर तुम लोगो से कहा है, और यह तुम लोगो मे से बहुतो को याद भी होगा कि मद्रास इस समय बडी अच्छी अवस्था मे है। बगाल मे जैसी क्रिया-प्रतिक्रिया चल रही है, वैसी मद्रास मे नही है। यहाँ पर धीरे धीरे स्थायी रूप से सब विषयो मे उन्नति हो रही है, यहाँ पर समाज का क्रमश विकास हो रहा है, किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नही। बगाल मे कही कही कुछ कुछ पुनरुत्थान हुआ है, पर मद्रास मे यह पुनरुत्थान नही है, यह है समाज की स्वाभाविक उन्नति। अतएव दोनो प्रदेशो के निवासियो की विभिन्नता के सम्बन्ध मे समाज-सुधारक जो कुछ कहते हैं, उनसे मैं सर्वथा सहमत हूँ। परन्तु एक विभिन्नता और है, जिसे वे नही समझते। इन सस्थाओ मे से कुछ मुझे डराकर अपना सदस्य बनाना चाहती हैं। ये लोग ऐसा करें, यह एक आश्चर्यजनक बात है। जो मनुष्य अपने जीवन के चौदह वर्षों तक लगातार फाकाकशी का मुकाबला करता रहा हो, जिसे यह भी न मालूम रहा हो कि दूसरे दिन का भोजन कहाँ से आयेगा, सोने के लिए स्थान कहाँ मिलेगा, वह इतनी सरलता से धमकाया नही जा सकता। जो मनुष्य बिना कपडो के और बिना यह जाने कि दूसरे समय भोजन कहाँ से मिलेगा, उस स्थान पर रहा हो, जहाँ का तापमान शून्य से भी तीस-

उनका स्वर बदल गया और छिपे छिपे मुझे हानि पहुँचाने में उन्होंने कोई कसर उठा नहीं रखी। मैं पूछता हूँ क्या इसी तरह ईसा भारतवर्ष में आयेंगे? क्या बीस वर्ष ईसा की उपासना कर उन्होंने यही शिक्षा पाई है? हमारे ये बड़े बड़े सुधारकगण कहते हैं कि ईसाई धर्म और ईसाई कौम भारतवासियों को उन्नत बनायेंगे। तो क्या वह इसी प्रकार होगा? यदि उक्त सज्जन को इसका एक उदाहरण लिया जाय तो निस्सन्देह स्थिति कोई आशाजनक प्रतीत नहीं होती।

एक बात और। मैंने समाज-सुधारकों के मुखपत्र में पढ़ा था कि मैं शूद्र हूँ और मुझसे पूछा गया था कि एक शूद्र को संन्यासी होने का क्या अधिकार है? तो इसपर मेरा उत्तर यह है कि मैं उन महापुरुष का वंशधर हूँ जिनके चरणकमलों पर प्रत्येक ब्राह्मण 'यमाय धर्मराजाय चित्रगुप्ताय वै नमः' उच्चारण करते हुए पुष्पांजलि प्रदान करता है और जिनके वंशज विशुद्ध क्षत्रिय हैं। यदि अपने पुराणों पर विश्वास हो तो इन समाज-सुधारकों को जान लेना चाहिए कि मेरी जाति ने पुराने जमाने में अन्य सेवाओं के अतिरिक्त कई शताब्दियों तक आधे भारतवर्ष का शासन किया था। यदि मेरी जाति की गणना छोड़ दी जाय तो भारत की वर्तमान सभ्यता का क्या शेष रहेगा? अकेले बंगाल में ही मेरी जाति में सबसे बड़े दार्शनिक, सबसे बड़े कवि, सबसे बड़े इतिहासज्ञ, सबसे बड़े पुरातत्त्ववेत्ता और सबसे बड़े धर्मप्रचारक उत्पन्न हुए हैं। मेरी ही जाति ने वर्तमान समय के सबसे बड़े वैज्ञानिकों से भारतवर्ष को विभूषित किया है। इन निन्दकों को थोड़ा अपने देश के इतिहास का तो ज्ञान प्राप्त करना था, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों वर्णों के सम्बन्ध में जरा अध्ययन तो करना था, जरा यह तो जानना था कि तीनों ही वर्णों को संन्यासी होने और वेद के अध्ययन करने का समान अधिकार है। ये बातें मैंने यों ही प्रसंगवश कह दीं। वे जो मुझे शूद्र कहते हैं, इसकी मुझे तनिक भी पीड़ा नहीं। मेरे पूर्वजों ने गरीबों पर जो अत्याचार किया था उससे उसका कुछ परिशोध हो जायगा। यदि मैं पैरिया (नीच चाण्डाल) होता तो मुझे और भी आनन्द आता, क्योंकि मैं उन महापुरुष का शिष्य हूँ जिन्होंने सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण होते हुए भी एक पैरिया (चाण्डाल) के घर को साफ करने की अपनी इच्छा प्रकट की थी। अवश्य वह इस पर सहमत हुआ नहीं—और भला होता भी कैसे? एक तो ब्राह्मण, फिर उस पर संन्यासी वे आकर घर साफ करेंगे, इस पर क्या वह कभी राजी हो सकता था? निदान एक दिन आधी रात को उठकर गुप्त रूप से उन्होंने उस पैरिया के घर में प्रवेश किया और उसका पाखाना साफ कर दिया, उन्होंने अपने लम्बे लम्बे बालों से उस स्थान को पोंछ डाला। और यह काम वे लगातार कई दिनों तक करते रहे, ताकि वे अपने को

सबका दास बना सके। मैं उन्ही महापुरुष के श्री चरणो को अपने मस्तक पर धारण किये हूँ। वे ही मेरे आदर्श हैं—मैं उन्ही आदर्श पुरुष के जीवन का अनुकरण करने की चेष्टा करूँगा। सबका सेवक बनकर ही एक हिन्दू अपने को उन्नत करने की चेष्टा करता है। उसे इसी प्रकार, न कि विदेशी प्रभाव की सहायता से, सर्वसाधारण को उन्नत करना चाहिए। बीस वर्ष की पश्चिमी सभ्यता मेरे मन मे उस मनुष्य का दृष्टान्त उपस्थित कर देती है, जो विदेश मे अपने मित्र को भूखा मार डालना चाहता है। क्यो?—केवल इसीलिए कि उसका मित्र लोकप्रिय हो गया है और उसके विचार मे वह मित्र उसके धनोपार्जन मे बाधक होता है। और असल, सनातन हिन्दू धर्म के उदाहरणस्वरूप है ये दूसरे व्यक्ति, जिनके सम्बन्ध मे मैंने अभी कहा है। इससे विदित हो जायगा कि सच्चा हिन्दू धर्म किस प्रकार कार्य करता है। हमारे इन सुधारको मे से एक भी, ऐसा जीवन गठन करके दिखाये तो सही जो एक पैरिया की भी सेवा के लिए तत्पर हो। फिर तो मैं उसके चरणो के समीप बैठकर शिक्षा ग्रहण करूँ, पर हाँ, उसके पहले नही। लम्बी-चौडी बातो की अपेक्षा थोडा कुछ कर दिखाना लाख गुना अच्छा है।

अब मैं मद्रास की समाज-सुधारक समितियो के बारे मे कुछ कहूँगा। उन्होने मेरे साथ बडा सदय व्यवहार किया है। उन्होने मेरे लिए अनेक मधुर शब्दो का प्रयोग किया है और मुझे बताया है कि मद्रास और बगाल के समाज-सुधारको मे बडा अन्तर है। मैं उनसे इस बात मे सहमत हूँ। मैंने अक्सर तुम लोगो से कहा है, और यह तुम लोगो मे से बहुतो को याद भी होगा कि मद्रास इस समय बडी अच्छी अवस्था मे है। बगाल मे जैसी क्रिया-प्रतिक्रिया चल रही है, वैसी मद्रास मे नही है। यहाँ पर धीरे धीरे स्थायी रूप से सब विषयो मे उन्नति हो रही है, यहाँ पर समाज का क्रमश विकास हो रहा है, किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नही। बगाल मे कही कही कुछ कुछ पुनरुत्थान हुआ है, पर मद्रास मे यह पुनरुत्थान नही है, यह है समाज की स्वाभाविक उन्नति। अतएव दोनो प्रदेशो के निवासियो की विभिन्नता के सम्बन्ध मे समाज-सुधारक जो कुछ कहते हैं, उनसे मैं सर्वथा सहमत हूँ। परन्तु एक विभिन्नता और है, जिसे वे नही समझते। इन सस्थाओ मे से कुछ मुझे डराकर अपना सदस्य बनाना चाहती हैं। ये लोग ऐसा करें, यह एक आश्चर्यजनक बात है। जो मनुष्य अपने जीवन के चौदह वर्षों तक लगातार फाकाकशी का मुकाबला करता रहा हो, जिसे यह भी न मालूम रहा हो कि दूसरे दिन का भोजन कहाँ से आयेगा, सोने के लिए स्थान कहाँ मिलेगा, वह इतनी सरलता से धमकाया नही जा सकता। जो मनुष्य बिना कपडो के और बिना यह जाने कि दूसरे समय भोजन कहाँ से मिलेगा, उस स्थान पर रहा हो, जहाँ का तापमान शून्य से भी तीस-

किये गये थे। यह भारत में इतनी सफलता से नहीं बताया जा सकता। यही पर्याप्त कहना है जो मैं उनसे कहूँगा—प्रणाम भाइयों! मेरा थोड़ा निज का अनुभव भी है और मेरे पास समाज के लिए एक सन्देश है जो मैं बिना किसी डर के बिना भविष्य की चिन्ता किये कह दूँगा। सुधारकों से मैं कहूँगा कि मैं स्वयं उनसे कहीं बढ़कर सुधारक हूँ। वे लोग केवल इधर उधर थोड़ा सुधार करना चाहते हैं। और मैं चाहता हूँ आमूल सुधार। हम लोगों का मतभेद है केवल सुधार की प्रणाली में। उनकी प्रणाली विनाशात्मक है और मेरी संघटनात्मक। मैं सुधार में विश्वास नहीं करता, मैं विश्वास करता हूँ स्वाभाविक उन्नति में। मैं अपने को ईश्वर के स्थान पर प्रतिष्ठित कर अपने समाज के लोगों के सिर पर यह उपदेश मढ़ने का साहस नहीं कर सकता कि तुम्हें इसी भाँति चलना होगा, दूसरी तरह नहीं। मैं तो सिर्फ उस गिलहरी की भाँति होना चाहता हूँ जो राम के सेतु बाँधने के समय अपने योगदानस्वरूप थोड़ा बालू लाकर सन्तुष्ट हो गयी थी। यही मेरा भाव है। यह अद्भुत राष्ट्रीय यन्त्र युग युग से कार्य करता आ रहा है, राष्ट्रीय जीवन का यह अद्भुत प्रवाह हम लोगों के सम्मुख बह रहा है। कौन जानता है, कौन साहसपूर्वक कह सकता है कि यह अच्छा है या बुरा, और यह किस प्रकार चलेगा? हजारों घटनाचक्र उसके चारों ओर उपस्थित होकर उसे एक विशिष्ट प्रकार की शक्ति देकर कभी उसकी गति को मन्द और कभी तीव्र कर देते हैं। उसके वेग को नियमित करने का कौन साहस कर सकता है? हमारा काम तो फल की ओर दृष्टि न रख केवल काम करते जाना है, जैसा कि गीता में कहा है। राष्ट्रीय जीवन को जिस ईंधन की जरूरत है, देते जाओ, बस वह अपने ढंग से उन्नति करता जायगा, कोई उसकी उन्नति का मार्ग निर्दिष्ट नहीं कर सकता। हमारे समाज में बहुत सी बुराइयाँ हैं, पर इस तरह बुराइयाँ तो दूसरे समाजों में भी हैं। यहाँ की भूमि विधवाओं के आँसू से कभी कभी तर होती है, तो पाश्चात्य देश का वायुमण्डल अविवाहित स्त्रियों की आहों से भरा रहता है। यहाँ का जीवन गरीबी की चपेटों से जर्जरित है, तो वहाँ पर लोग विलासिता के विष से जीवन्मृत हो रहे हैं। यहाँ पर लोग इसलिए आत्महत्या करना चाहते हैं कि उनके पास खाने को कुछ नहीं है, तो वहाँ खाद्यान्न (भोज्य) की प्रचुरता के कारण लोग आत्महत्या करते हैं। बुराइयाँ सभी जगह हैं, यह तो पुराने वात-रोग की तरह है। यदि उसे पैर से हटाओ तो वह सिर में चला जाता है। वहाँ से हटाने पर वह दूसरी जगह भाग जाता है। बस उसे केवल एक जगह से दूसरी जगह ही भगा सकते हैं। ऐ बच्चो, बुराइयों के निराकरण की चेष्टा करना ही सही उपाय नहीं है। हमारे दर्शनशास्त्रों में लिखा

है कि अच्छे और बुरे का नित्य सम्बन्ध है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यदि तुम्हारे पास एक है, तो दूसरा अवश्य रहेगा। जब समुद्र मे एक स्थान पर लहर उठती है तो दूसरे स्थान पर गड्डा होना अनिवार्य है। इतना ही नही, सारा जीवन ही दोषयुक्त है। बिना किसी की हत्या किये एक साँस तक नही ली जा सकती, बिना किसी का भोजन छीने हम एक कौर भी नही खा सकते। यही प्रकृति का नियम है, यही दार्शनिक सिद्धान्त है।

इसलिए हमे केवल यह समझ लेना होगा कि सामाजिक दोषो के निराकरण का कार्य उतना वस्तुनिष्ठ नही है, जितना आत्मनिष्ठ। हम कितनी भी लम्बी चौडी डीग क्यो न हाँके समाज के दोषो को दूर करने का कार्य जितना स्वय के लिए शिक्षात्मक है, उतना समाज के लिए वास्तविक नही। समाज के दोष दूर करने के सम्बन्ध मे सबसे पहले इस तत्त्व को समझ लेना होगा, और इसे समझकर अपने मन को शान्त करना होगा, अपने खून की चढती गरमी को रोकना होगा, अपनी उत्तेजना को दूर करना होगा। ससार का इतिहास भी हमे यह बताता है कि जहाँ कही इस प्रकार की उत्तेजना से समाज के सुधार करने का प्रयत्न हुआ है, वहाँ केवल यही फल हुआ कि जिस उद्देश्य से वह किया गया था, उस उद्देश्य को ही उसने विफल कर दिया। दासत्व को नष्ट कर देने के लिए अमेरिका मे जो लडाई ठनी थी, उसकी अपेक्षा, अधिकार और स्वतत्रता की स्थापना के लिए किसी बडे सामाजिक आन्दोलन की कल्पना ही नही की जा सकती। तुम सभी लोग उसे जानते हो। पर उसका फल क्या हुआ ? यही कि आजकल के दास इस युद्ध के पूर्व के दासो की अपेक्षा सौगुनी अधिक बुरी दशा को पहुँच गये। इस युद्ध के पूर्व ये बेचारे नीग्रो कम से कम किसी की सम्पत्ति तो थे, और सम्पत्ति होने के नाते इनकी देखभाल की जाती थी कि ये कही दुर्बल और बेकाम न हो जायँ। पर आज तो ये किसी की सम्पत्ति नही हैं, इनके जीवन का कुछ भी मूल्य नही है। मामूली बातो के लिए ये जीते जी जला दिये जाते हैं, गोली से उडा दिये जाते है, और इनके हत्यारो पर कोई कानून ही लागू नही होता। क्यो ? इसीलिए कि ये 'निगर' हैं, मानो ये मनुष्य तो क्या पशु भी नही हैं ! समाज के दोषो को प्रबल उत्तेजनापूर्ण आन्दोलन द्वारा अथवा कानून के बल पर सहसा हटा देने का यही परिणाम होता है। इतिहास इस बात का साक्षी है—इस प्रकार का आन्दोलन चाहे किसी भले उद्देश्य से ही क्यो न किया गया हो। यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है। प्रत्यक्ष अनुभव से ही मैंने यह सीखा है। यही कारण है कि मैं केवल दोष ही देखने-वाली इन सस्थाओ का सदस्य नही हो सकता। दोषारोपण अथवा निन्दा करने की भला आवश्यकता क्या ? ऐसा कौन सा समाज है, जिसमे दोष न हो ? सभी

समाज में तो दोष है। यह तो सभी कोई जानते हैं। आज का एक बच्चा भी इसे जानता है; वह भी सभामंच पर खड़ा होकर हमारे सामने हिन्दू धर्म की भयानक बुराइयों पर एक लम्बा भाषण दे सकता है। जो भी अशिक्षित विदेशी पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता हुआ भारत में पहुँचता है, वह रेल पर से भारत को सरसरी नजर से देख भर लेता है और बस फिर भारत की भयानक बुराइयों पर बड़ा सारगर्भित व्याख्यान देने लगता है। हम जानते हैं कि यहाँ बुराइयाँ हैं। पर बुराई तो हर कोई दिखा सकता है। मानव समाज का सच्चा हितैषी तो वह है, जो इन कठिनाइयों से बाहर निकलने का उपाय बताये। यह तो इस प्रकार है कि कोई एक दार्शनिक एक डूबते हुए लड़के को गम्भीर भाव से उपदेश दे रहा था, तो लड़के ने कहा, 'पहले मुझे पानी से बाहर निकालिये, फिर उपदेश दीजिये।' बस ठीक इसी तरह भारतवासी भी कहते हैं, 'हम लोगों ने बहुत व्याख्यान सुन लिये, बहुत सी संस्थाएँ देख लीं, बहुत से पत्र पढ़ लिये, अब तो ऐसा मनुष्य चाहिए, जो अपने हाथ का सहारा दे हमें इन दुःखों के बाहर निकाल दे। कहाँ है वह मनुष्य जो हमसे वास्तविक प्रेम करता है, जो हमारे प्रति सच्ची सहानुभूति रखता है?' बस उसी आदमी की हमें जरूरत है। यहीं पर मेरा इन समाज-सुधारक आन्दोलनों से सर्वथा मतभेद है। आज सौ वर्ष हो गये ये आन्दोलन चल रहे हैं, पर सिवाय निन्दा और विद्वेषपूर्ण साहित्य की रचना के इनसे और क्या लाभ हुआ है? ईश्वर करता, यहाँ ऐसा न होता। इन्होंने पुराने समाज की कठोर आलोचना की है, उस पर तीव्र दोषारोपण किया है, उसकी कटु निन्दा की है और अन्त में पुराने समाज ने भी इनके समान स्वर उठाकर ईंट का जवाब ईंट से दिया है। इसके फलस्वरूप प्रत्येक भारतीय भाषा में ऐसे साहित्य की रचना हो गयी है, जो जाति के लिए, देश के लिए कलंकस्वरूप है। क्या यही सुधार है? क्या इसी तरह देश गौरव के पथ पर बढ़ेगा? यह दोष है किसका?

इसके बाद एक और महत्त्वपूर्ण विषय पर हमें विचार करना है। भारतवर्ष में हमारा शासन सदैव राजाओं द्वारा हुआ है, राजाओं ने ही हमारे सब कानून बनाये हैं। अब वे राजा नहीं हैं, और इस विषय में अग्रसर होने के लिए हमें मार्ग दिखलानेवाला अब कोई नहीं रहा। सरकार साहस नहीं करती; वह तो जनमत की गति देखकर ही अपनी कार्य-प्रणाली निश्चित करती है। अपनी समस्याओं को हल कर देनेवाला एक कल्याणकारी और प्रबल लोकमत स्थापित करने में समय लगता है—काफी लम्बा समय लगता है, और इस बीच हमें प्रतीक्षा करनी होगी। अतएव सामाजिक सुधार की सम्पूर्ण समस्या यह रूप लेती है: कहाँ हैं वे लोग, जो सुधार चाहते हैं? पहले उन्हें तैयार करो। सुधार चाहने

वाले लोग हैं कहाँ ? कुछ थोडे से लोग किसी बात को उचित समझते है और बस उसे अन्य सब पर जबरदस्ती लादना चाहते है। इन अल्पसख्य व्यक्तियो के अत्याचार के समान दुनिया मे और कोई अत्याचार नही। मुट्ठी भर लोग, जो सोचते हैं कि कतिपय बातें दोषपूर्ण है, राष्ट्र को गतिशील नही कर सकते। राष्ट्र मे आज प्रगति क्यो नही है ? क्यो वह जडभावापन्न है ? पहले राष्ट्र को शिक्षित करो, अपनी निजी विधायक सस्थाएँ बनाओ, फिर तो कानून आप ही आ जायँगे। जिस शक्ति के बल से, जिसके अनुमोदन से क़ानून का गठन होगा, पहले उसकी सृष्टि करो। आज राजा नही रहे, जिस नयी शक्ति से, जिस नये दल की सम्मति से नयी व्यवस्था गठित होगी, वह लोक-शक्ति कहाँ है ? पहले उसी लोक-शक्ति को सगठित करो। अतएव समाज-सुधार के लिए भी प्रथम कर्तव्य है—लोगो को शिक्षित करना। और जब तक यह कार्य सम्पन्न नही होता, तब तक प्रतीक्षा करनी ही पडेगी।

गत शताब्दी मे सुधार के लिए जो भी आन्दोलन हुए हैं, उनमे से अधिकाश केवल ऊपरी दिखावा मात्र रहे हैं। उनमे से प्रत्येक ने केवल प्रथम दो वर्णों से ही सम्बन्ध रखा है, शेष दो से नही। विधवा-विवाह के प्रश्न से ७० प्रतिशत भारतीय स्त्रियो का कोई सम्बन्ध नही है। और देखो, मेरी बात पर ध्यान दो, इस प्रकार के सब आन्दोलनो का सम्बन्ध भारत के केवल उच्च वर्णों से ही रहा है, जो जनसाधारण का तिरस्कार करके स्वय शिक्षित हुए हैं। इन लोगो ने अपने अपने घर को साफ करने एव अंग्रेजो के सम्मुख अपने को सुन्दर दिखाने मे कोई कसर बाकी नही रखी। पर यह तो सुधार नही कहा जा सकता। सुधार करने मे हमे चीज के भीतर, उसकी जड तक पहुँचाना होता है। इसीको मैं आमूल सुधार कहता हूँ। आग जड मे लगाओ और उसे क्रमश ऊपर उठने दो एव एक अखड भारतीय राष्ट्र सगठित करो।

पर यह एक बडी भारी समस्या है, और इसका समाधान भी कोई सरल नही है। अतएव शीघ्रता करने की आवश्यकता नही। यह समस्या तो गत कई शताब्दियो से हमारे देश के महापुरुषो को ज्ञात थी।

आजकल, विशेषत दक्षिण मे, बौद्ध धर्म और उसके अज्ञेयवाद की आलोचना करने की एक प्रथा सी चल पडी है। यह उन्हे स्वप्न मे भी ध्यान नही आता कि जो विशेष दोष आजकल हमारे समाज मे वर्तमान हैं, वे सब बौद्ध धर्म द्वारा ही छोडे गये हैं। बौद्ध धर्म ने हमारे लिए यही वसीयत छोडी है। जिन लोगो ने बौद्ध धर्म की उन्नति और अवनति का इतिहास कभी नही पढ़ा, उनके द्वारा लिखी गयी पुस्तको मे हम पढ़ते हैं कि बौद्ध धर्म के इतने विस्तार का कारण था—गौतम

बुद्ध द्वारा प्रचारित अपूर्व आचार-शास्त्र और उनका लोकोत्तर चरित्र। भगवान् बुद्धदेव के प्रति मेरी यथेष्ट श्रद्धा-भक्ति है। पर मेरे शब्दों पर ध्यान दो, बौद्ध धर्म का विस्तार उक्त महापुरुष के मत और अपूर्व चरित्र के कारण उतना नहीं हुआ, जितना बौद्धों द्वारा निर्माण किये गये बड़े बड़े मन्दिरों एवं भव्य प्रतिमाओं के कारण, समग्र देश के सम्मुख किये गये भड़कीले उत्सवों के कारण। इसी भाँति बौद्ध धर्म ने उन्नति की। इन सब बड़े बड़े मन्दिरों एवं आडम्बर भरे क्रियाकलापों के सामने घरों में हवन के लिए प्रतिष्ठित छोटे छोटे अग्निकुण्ड ठहर न सके। पर अन्त में इन सब क्रिया कलापों में भारी अवनति हो गयी—ऐसी अवनति कि उसका वर्णन भी श्रोताओं के सामने नहीं किया जा सकता। जो इस सम्बन्ध में जानने के इच्छुक हों, वे इसे किंचित् परिमाण में दक्षिण भारत के नाना प्रकार के कलाशिल्प से युक्त बड़े बड़े मन्दिरों में देख लें, और बौद्धों से उत्तराधिकार के रूप में हमने केवल यही पाया।

इसके बाद महान् सुधारक श्री शंकराचार्य और उनके अनुयायियों का अभ्युदय हुआ। उस समय से आज तक इन कई सौ वर्षों में भारतवर्ष की सर्वसाधारण जनता को धीरे धीरे उस मौलिक विशुद्ध वेदान्त के धर्म की ओर लाने की चेष्टा की गयी है। उन सुधारकों को बुराइयों का पूरा ज्ञान था, पर उन्होंने समाज की निन्दा नहीं की। उन्होंने यह नहीं कहा कि 'जो कुछ तुम्हारे पास है, वह सभी गलत है, उसे तुम फेंक दो।' ऐसा कभी नहीं हो सकता था। आज मैंने पढ़ा, मेरे मित्र डाक्टर बैरोज कहते हैं कि ईसाई धर्म के प्रभाव ने १ वर्षों में यूनानी और रोमन धर्म के प्रभाव को उलट दिया। पर जिसने कभी यूरोप, यूनान और रोम को देखा है, वह ऐसा कभी नहीं कह सकता। रोमन और यूनानी धर्मों का प्रभाव प्रोटेस्टेन्ट देशों तक में सर्वत्र व्याप्त है। प्राचीन देवता नये वेश में वर्तमान हैं—केवल नाम भर बदल दिये गये हैं। देवियाँ तो हो गयी हैं 'मेरी', देवता हो गये हैं 'सन्त' (saints) और अनुष्ठानों ने नया नया रूप धारण कर लिया है। यहाँ तक कि प्राचीन उपाधि पाँटिफेक्स मैक्सिमस पूर्ववत् ही विद्यमान है। अतएव अचानक परिवर्तन नहीं हो सकते। शंकराचार्य और रामानुज इसे जानते थे। इसलिए उस समय प्रचलित धर्म को धीरे धीरे उच्चतम आदर्श तक पहुँचा देना ही उनके लिए एक उपाय शेष था। यदि वे दूसरी प्रणाली का सहारा लेते, तो वे पाखंडी सिद्ध होते, क्योंकि उनके धर्म का प्रधान मत ही है क्रम-विकासवाद। उनके धर्म

---

१ रोम में पुरोहित विद्यालय के प्रधानाध्यापक इसी नाम से पुकारे जाते हैं, इसका अर्थ है—प्रधान पुरोहित। अभी पोप इसी नाम से सम्बोधित किये जाते हैं

का मूलतत्त्व यही है कि इन सब नाना प्रकार की अवस्थाओ मे से होकर आत्मा उच्चतम लक्ष्य पर पहुँचती है। अत ये सभी अवस्थाएँ आवश्यक और हमारी सहायक हैं। भला कौन इनकी निन्दा करने का साहस कर सकता है?

आजकल मूर्ति-पूजा को गलत बताने की प्रथा सी चल पडी है, और सब लोग विना किसी आपत्ति के उसमे विश्वास भी करने लग गये है। मैंने भी एक समय ऐसा ही सोचा था और उसके दडस्वरूप मुझे ऐसे व्यक्ति के चरण कमलो मे बैठ कर शिक्षा ग्रहण करनी पडी, जिन्होंने सब कुछ मूर्ति-पूजा के ही द्वारा प्राप्त किया था, मेरा अभिप्राय श्री रामकृष्ण परमहस से है। यदि मूर्ति-पूजा के द्वारा श्री रामकृष्ण जैसे व्यक्ति उत्पन्न हो सकते है, तब तुम क्या पसन्द करोगे—सुधारको का धर्म, या मूर्ति-पूजा? मैं इस प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ। यदि मूर्ति-पूजा के द्वारा इस प्रकार श्री रामकृष्ण परमहस उत्पन्न हो सकते हो, तो और हजारो मूर्तियो की पूजा करो। प्रभु तुम्हे सिद्धि दे! जिस किसी भी उपाय से हो सके, इस प्रकार के महापुरुषो की सृष्टि करो। और इतने पर भी मूर्ति-पूजा की निन्दा की जाती है! क्यो? यह कोई नही जानता। शायद इसलिए कि हजारो वर्ष पहले किसी यहूदी ने इसकी निन्दा की थी। अर्थात् उसने अपनी मूर्ति को छोडकर और सब की मूर्तियो की निन्दा की थी। उस यहूदी ने कहा था, यदि ईश्वर का भाव किसी विशेष प्रतीक या सुन्दर प्रतिमा द्वारा प्रकट किया जाय, तो यह भयानक दोष है, एक जघन्य पाप है, परन्तु यदि उसका अकन एक सन्दूक के रूप मे किया जाय, जिसके दोनो किनारो पर दो देवदूत बैठे हैं और ऊपर बादल का एक टुकडा लटक रहा है, तो वह बहुत ही पवित्र, पवित्रतम होगा। यदि ईश्वर पेडुकी का रूप धारण करके आये, तो वह महापवित्र होगा, पर यदि वह गाय का रूप लेकर आये, तो यह मूर्ति-पूजको का कुसस्कार होगा!—उसकी निन्दा करो। दुनिया का बस यही भाव है। इसीलिए कवि ने कहा है, 'हम मर्त्य जीव कितने निर्बोध हैं!' परस्पर एक दूसरे के दृष्टिकोण से देखना और विचार करना कितना कठिन है! और यही मनुष्य समाज की उन्नति मे घोर विघ्नस्वरूप है। यही है ईर्ष्या, घृणा और लडाई-झगडे की जड। अरे बालको, अपरिपक्व बुद्धिवाले नासमझ लडको, तुम लोग कभी मद्रास के बाहर तो गये नही, और खडे होकर सहस्रो प्राचीन सस्कारो से नियन्त्रित तीस करोड मनुष्यो पर कानून चलाना चाहते हो! क्या तुम्हे लज्जा नही आती? दूर हो जाओ धर्मनिन्दा के इस कुकर्म से, और पहले खुद अपना सबक सीखो। श्रद्धाहीन बालको, तुम कागज पर कुछ पक्तियाँ घसीट सकने मे और किसी मूर्ख को पकडकर उन्हे छपवा लेने मे अपने को समर्थ समझकर सोचते हो कि तुम जगत् के शिक्षक हो, तुम्हारा मत ही भारत का जनमत है! तो

क्या ऐसी बात है? इसीलिए मैं मद्रास के समाज-सुधारकों से कहना चाहता हूँ कि मुझमें उनके प्रति बड़ी श्रद्धा और प्रेम है। उनके विशाल हृदय, उनकी स्वदेश प्रीति, पीड़ित और निर्धन के प्रति उनके प्रेम के कारण ही मैं उनसे प्यार करता हूँ। किन्तु भाई जैसे भाई से स्नेह करता है और साथ ही उसके दोष भी दिखा देता है, ठीक इसी तरह मैं उनसे कहता हूँ कि उनकी कार्यप्रणाली ठीक नहीं है। यह प्रणाली भारत में सौ वर्ष तक आजमायी गयी, पर वह कामयाब न हो सकी। अब हमें किसी नयी प्रणाली का सहारा लेना होगा।

क्या भारतवर्ष में कभी सुधारकों का अभाव था? क्या तुमने भारत का इतिहास पढ़ा है? रामानुज, शंकर, नानक, चैतन्य, कबीर और दादू कौन थे? ये सब बड़े बड़े धर्माचार्य, जो भारत-गगन में अत्यन्त उज्ज्वल नक्षत्रों की तरह एक के बाद एक उदय हुए और फिर अस्त हो गये, कौन थे? क्या रामानुज के हृदय में नीच जातियों के लिए प्रेम नहीं था? क्या उन्होंने अपने सारे जीवन भर पैरिया (चाण्डाल) तक को अपने सम्प्रदाय में ले लेने का प्रयत्न नहीं किया? क्या उन्होंने अपने सम्प्रदाय में मुसलमान तक को मिला लेने की चेष्टा नहीं की? क्या नानक ने मुसलमान और हिन्दू दोनों को समान भाव से शिक्षा देकर समाज में एक नयी अवस्था लाने का प्रयत्न नहीं किया? इन सबने प्रयत्न किया, और उनका काम आज भी जारी है। भेद केवल इतना है कि वे आज के समाज-सुधारकों की तरह दम्भी नहीं थे, वे इनके समान अपने मुँह से कभी अभिशाप नहीं उगलते थे। उनके मुँह से केवल आशीर्वाद ही निकलता था। उन्होंने कभी भर्त्सना नहीं की। उन्होंने लोगों से कहा कि जाति को सतत उन्नतिशील होना चाहिए। उन्होंने अतीत में दृष्टि डालकर कहा, "हिन्दुओ, तुमने अभी तक जो किया, अच्छा ही किया, पर भाइयो, तुम्हें अब इससे भी अच्छा करना होगा।" उन्होंने यह नहीं कहा, 'पहले तुम दुष्ट थे, और अब तुम्हें अच्छा होना होगा।' उन्होंने यही कहा, 'पहले तुम अच्छे थे, अब और भी अच्छे बनो।' इससे जमीन-आसमान का फ़र्क पैदा हो जाता है। हम लोगों को अपनी प्रकृति के अनुसार उन्नति करनी होगी। विदेशी संस्थाओं ने बलपूर्वक जिस कृत्रिम प्रणाली को हममें प्रचलित करने की चेष्टा की है, उसके अनुसार काम करना वृथा है। वह असम्भव है। जय हो प्रभु! हम लोगों को तोड़-मरोड़कर नये सिरे से दूसरे राष्ट्रों के ढाँचे में गढ़ना असम्भव है! मैं दूसरी क़ौमों की सामाजिक प्रथाओं की निन्दा नहीं करता। वे उनके लिए अच्छी हैं, पर हमारे लिए नहीं। उनके लिए जो कुछ अमृत है, हमारे लिए वही विष हो सकता है। पहले यही बात सीखनी होगी। अन्य प्रकार के विज्ञान, अन्य प्रकार के परम्परागत संस्कार और अन्य प्रकार के आचारों से उनकी वर्तमान

सामाजिक प्रथा गठित हुई है। और हम लोगो के पीछे हैं हमारे अपने परम्परागत सस्कार और हज़ारो वर्षों के कर्म। अतएव हमे स्वभावत अपने सस्कारो के अनुसार ही चलना पडेगा, और यह हमे करना ही होगा।

तब फिर मेरी योजना क्या है? मेरी योजना है—प्राचीन महान् आचार्यों के उपदेशो का अनुसरण करना। मैंने उनके कार्य का अध्ययन किया है, और जिस प्रणाली से उन्होने कार्य किया, उनके आविष्कार करने का मुझे सौभाग्य मिला। वे सब महान् समाज-सस्थापक थे। बल, पवित्रता और जीवन-शक्ति के वे अद्‌भुत आधार थे। उन्होने सबसे अद्‌भुत कार्य किया—समाज मे बल, पवित्रता और जीवन-शक्ति सचारित की। हमे भी सबसे अद्‌भुत कार्य करना है। आज अवस्था कुछ बदल गयी है, इसलिए कार्यप्रणाली मे कुछ थोडा सा परिवर्तन करना होगा, बस इतना ही इससे अधिक कुछ नही। मैं देखता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति की भाँति प्रत्येक राष्ट्र का भी एक विशेष जीवनोद्देश्य है। वही उसके जीवन का केन्द्र है, उसके जीवन का प्रधान स्वर है, जिसके साथ अन्य सब स्वर मिलकर समरसता उत्पन्न करते हैं। किसी देश मे, जैसे इग्लैड मे, राजनीतिक सत्ता ही उसकी जीवन-शक्ति है। कलाकौशल की उन्नति करना किसी दूसरे राष्ट्र का प्रधान लक्ष्य है। ऐसे ही और दूसरे देशो का भी समझो। किन्तु भारतवर्ष मे धार्मिक जीवन ही राष्ट्रीय जीवन का केन्द्र है और वही राष्ट्रीय जीवनरूपी सगीत का प्रधान स्वर है। यदि कोई राष्ट्र अपनी स्वाभाविक जीवन-शक्ति को दूर फेक देने की चेष्टा करे—शताब्दियो से जिस दिशा की ओर उसकी विशेष गति हुई है, उससे मुड जाने का प्रयत्न करे—और यदि वह अपने इस कार्य मे सफल हो जाय, तो वह राष्ट्र मृत हो जाता है। अतएव यदि तुम धर्म को फेंककर राजनीति, समाज-नीति अथवा अन्य किसी दूसरी नीति को अपनी जीवन-शक्ति का केन्द्र बनाने मे सफल हो जाओ, तो उसका फल यह होगा कि तुम्हारा अस्तित्व तक न रह जायगा। यदि तुम इससे बचना चाहो, तो अपनी जीवन-शक्तिरूपी धर्म के भीतर से ही तुम्हें अपने सारे कार्य करने होंगे—अपनी प्रत्येक क्रिया का केन्द्र इस धर्म को ही बनाना होगा। तुम्हारे स्नायुओ का प्रत्येक स्पन्दन तुम्हारे इस धर्मरूपी मेरुदण्ड के भीतर से होकर गुज़रे।

मैंने देखा है कि 'सामाजिक जीवन पर धर्म का कैसा प्रभाव पडेगा', यह बिना दिखाये मैं अमेरिकावासियो मे धर्म का प्रचार नही कर सकता था। इग्लैड मे भी, बिना यह बताये कि 'वेदान्त के द्वारा कौन कौन से आश्चर्यजनक राजनीतिक परिवर्तन हो सकेंगे,' मैं धर्म-प्रचार नही कर सका। इसी भाँति भारत मे सामाजिक सुधार का प्रचार तभी हो सकता है, जब यह दिखा दिया जाय कि उस नयी प्रथा से

आध्यात्मिक जीवन की उन्नति में कौन सी विशेष सहायता मिलेगी। राजनीति का प्रचार करने के लिए हमें दिखाना होगा कि उसके द्वारा हमारे राष्ट्रीय जीवन की आकांक्षा—आध्यात्मिक उन्नति—की कितनी अधिक पूर्ति हो सकेगी। इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति को अपना अपना मार्ग चुन लेना पड़ता है उसी भाँति प्रत्येक राष्ट्र को भी। हमने युगों पूर्व अपना पथ निर्धारित कर लिया था और अब हमें उसीसे लगे रहना चाहिए—उसीके अनुसार चलना चाहिए। फिर, हमारा यह चयन भी तो उतना कोई बुरा नहीं। जड़ के बदले चैतन्य का मनुष्य के बदले ईश्वर का चिन्तन करना क्या संसार में इतनी बुरी चीज है? परलोक में दृढ़ आस्था इस लोक के प्रति तीव्र विरक्ति प्रबल त्याग-शक्ति एवं ईश्वर और अविनाशी आत्मा में दृढ़ विश्वास तुम लोगों में सतत विद्यमान है। क्या तुम इसे छोड़ सकते हो? नहीं तुम इसे कभी नहीं छोड़ सकते। तुम कुछ दिन भौतिकवादी होकर और भौतिकवाद की चर्चा करके भले ही मुझमें विश्वास जमाने की चेष्टा करो पर मैं जानता हूँ कि तुम क्या हो। तुमको थोड़ा धर्म अच्छी तरह समझा देने भर की देर है कि तुम परम आस्तिक हो जाओगे। सोचो अपना स्वभाव भला कैसे बदल सकते हो?

अतः भारत मे किसी प्रकार का सुधार या उन्नति की चेष्टा करने के पहले धर्म-प्रचार आवश्यक है। भारत को समाजवादी अथवा राजनीतिक विचारों से प्लावित करने के पहले आवश्यक है कि उसमें आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ ला दी जाय। सर्वप्रथम हमारे उपनिषदों पुराणों और अन्य सब शास्त्रों में जो अपूर्व सत्य छिपे हुए है उन्हें इन सब ग्रन्थों के पन्नों से बाहर निकालकर, मठों की चहारदीवारियाँ भेदकर, वनों की शून्यता से दूर लाकर, कुछ सम्प्रदाय-विशेषों के हाथों से छीनकर देश में सर्वत्र बिखेर देना होगा ताकि ये सत्य दावानल के समान सारे देश को चारों ओर से लपेट ले—उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक सब जगह फैल जायें—हिमालय से कन्याकुमारी और सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक सर्वत्र वे धधक उठें। सबसे पहले हमें यही करना होगा। सभी को इन सब शास्त्रों में निहित उपदेश सुनाने होगे क्योंकि उपनिषद में कहा है 'पहले इसे सुनना होगा फिर मनन करना होगा और उसके बाद निदिध्यासन।[1] पहले लोग इन सत्यों को सुनें। और जो भी व्यक्ति अपने शास्त्र के इन महान् सत्यों को दूसरो को सुनाने में

---

१ आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो
निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते
मते विज्ञात इदं सर्वं विदितम् ॥ बृहदारण्यक ४।५।६॥

सहायता पहुँचायेगा, वह आज एक ऐसा कर्म करेगा, जिसके समान कोई दूसरा कर्म ही नही। महर्षि व्यास ने कहा है, "इस कलियुग मे मनुष्यो के लिए एक ही कर्म शेष रह गया है। आजकल यज्ञ और कठोर तपस्याओ से कोई फल नही होता। इस समय दान ही एकमात्र कर्म है।"[1] और दानो मे धर्मदान, अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान का दान ही सर्वश्रेष्ठ है। दूसरा दान है विद्यादान, तीसरा प्राणदान और चौथा अन्नदान। इस अपूर्व दानशील हिन्दू जाति की ओर देखो! इस निर्धन, अत्यन्त निर्धन देश मे लोग कितना दान करते हैं, इसकी ओर जरा नजर डालो। यहाँ के लोग इतने अतिथिसेवी हैं कि एक व्यक्ति बिना एक कौडी अपने पास रखे उत्तर से दक्षिण तक यात्रा करके आ सकता है। और हर स्थान मे उसका ऐसा सत्कार होगा, मानो वह परम मित्र हो। यदि यहाँ कही पर रोटी का एक टुकडा भी है, तो कोई भिक्षुक भूख से नही मर सकता।

इस दानशील देश मे हमे पहले प्रकार के दान के लिए अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार के लिए साहसपूर्वक अग्रसर होना होगा। और यह ज्ञान-विस्तार भारतवर्ष की सीमा मे ही आबद्ध नही रहेगा, इसका विस्तार तो सारे ससार भर मे करना होगा। और अभी तक यही होता भी रहा है। जो लोग कहते है कि भारत के विचार कभी भारत से बाहर नही गये, जो सोचते हैं कि मैं ही पहला सन्यासी हूँ जो भारत के बाहर धर्मप्रचार करने गये, वे अपनी जाति के इतिहास को नही जानते। यह कई बार घटित हो चुका है। जब कभी भी ससार को इसकी आवश्यकता हुई, उसी समय इस निरन्तर बहनेवाले आध्यात्मिक ज्ञान-स्रोत ने ससार को प्लावित कर दिया। राजनीति सम्बन्धी विद्या का विस्तार रणभेरियो और सुसज्जित सेनाओ के बल पर किया जा सकता है। लौकिक एव समाज सम्बन्धी विद्या का विस्तार आग और तलवारो के बल पर हो सकता है। पर आध्यात्मिक विद्या का विस्तार तो शान्ति द्वारा ही सम्भव है। जिस प्रकार चक्षु और कर्णगोचर न होता हुआ भी मृदु ओस-बिन्दु गुलाब की कलियो को विकसित कर देता है, बस वैसा ही आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार के सम्बन्ध मे भी समझो। यही एक दान है, जो भारत दुनिया को बार बार देता आया है। जब कभी भी कोई दिग्विजयी जाति उठी, जिसने ससार के विभिन्न देशो को एक साथ ला दिया और आपस मे यातायात तथा सचार की सुविधा कर दी, त्यो ही भारत उठा और

---

१ इसी आशय की व्यवस्था निम्नलिखित श्लोक मे भी है
तप पर कृते युगे त्रेताया ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेक कलौ युगे॥ मनुसहिता १।८६॥

उसने संसार की समग्र उन्नति में अपना आध्यात्मिक ज्ञान का भाग भी प्रदान कर दिया। बुद्धदेव के जन्म के बहुत पहले से ही ऐसा होता आया है और इसके चिह्न आज भी चीन, एशिया माइनर और मलय द्वीप समूह में मौजूद हैं। जब उस महापराक्रमशाली दिग्विजयी यूनानी ने उस समय के ज्ञात संसार के सब भागों को एक साथ ला दिया था, तब भी यही बात घटी थी—भारत के आध्यात्मिक ज्ञान की बाढ़ ने बाहर उमड़कर संसार को प्लावित कर लिया था। आज पाश्चात्य देशवासी जिस सभ्यता का गर्व करते हैं, वह उसी प्लावन का अवशेष मात्र है। आज फिर से वही सुयोग उपस्थित हुआ है। इंग्लैंड की शक्ति ने सारे संसार की जातियों को एकता के सूत्र में इस प्रकार बाँध दिया है, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। अंग्रेजों के यातायात और संचार के साधन संसार के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक फैले हुए हैं। आज अंग्रेजों की प्रतिभा के कारण संसार अपूर्व रूप से एकता की डोर में बँध गया है। इस समय संसार के भिन्न भिन्न स्थानों में जिस प्रकार के व्यापारिक केन्द्र स्थापित हुए हैं, वैसे मानव जाति के इतिहास में पहले कभी नहीं हुए थे। अतएव इस सुयोग में भारत फौरन उठकर ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से जगत् को अपने आध्यात्मिक ज्ञान का दान दे रहा है। अब इन सब मार्गों के सहारे भारत की यह भाव राशि समस्त संसार में फैलती रहेगी। मैं जो अमेरिका गया, वह मेरी या तुम्हारी इच्छा से नहीं हुआ, वरन् भारत के भाग्य-विधाता भगवान् ने मुझे अमेरिका भेजा और वे ही इसी भाँति सैकड़ों आदमियों को संसार के अन्य सब देशों में भेजेंगे। इसे दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकती। अतएव तुमको भारत के बाहर भी धर्म प्रचार के लिए जाना होगा। इसका प्रचार जगत् की सब जातियों और मनुष्यों में करना होगा। पहले यही धर्म प्रचार आवश्यक है। धर्म-प्रचार करने के बाद उसके साथ ही साथ लौकिक विद्या और अन्यान्य आवश्यक विद्याएँ आप ही आ जायेंगी। पर यदि तुम लौकिक विद्या बिना धर्म के ग्रहण करना चाहो, तो मैं तुमसे साफ़ कहे देता हूँ कि भारत में तुम्हारा ऐसा प्रयास व्यर्थ सिद्ध होगा, वह लोगों के हृदयों में स्थान प्राप्त न कर सकेगा। यहाँ तक कि इतना बड़ा बौद्ध धर्म भी कुछ अंशों में इसी कारणवश यहाँ अपना प्रभाव न जमा सका।

इसलिए, मेरे मित्रो, मेरा विचार है कि मैं भारत में कुछ ऐसे शिक्षालय स्थापित करूँ, जहाँ हमारे नवयुवक अपने शास्त्रों के ज्ञान में शिक्षित होकर भारत तथा भारत के बाहर अपने धर्म का प्रचार कर सकें। मनुष्य, केवल मनुष्य भर चाहिए। बाकी सब कुछ अपने आप हो जायगा। आवश्यकता है वीर्यवान, तेजस्वी, श्रद्धा-सम्पन्न और दृढ़विश्वासी निष्कपट नवयुवकों की। ऐसे सौ मिल जायँ, तो संसार का कायाकल्प हो जाय। इच्छाशक्ति संसार में सबसे अधिक बलवती है। उसके

सामने दुनिया की कोई चीज नही ठहर सकती, क्योकि वह भगवान्—साक्षात् भगवान् से आती है। विशुद्ध और दृढ इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है। क्या तुम इसमे विश्वास नही करते? सबके समक्ष अपने धर्म के महान् सत्यो का प्रचार करो, ससार इनकी प्रतीक्षा कर रहा है। सैकडो वर्षों से लोगो को मनुष्य की हीनावस्था का ही ज्ञान कराया गया है। उनसे कहा गया है कि वे कुछ नही हैं। ससार भर मे सर्वत्र सर्वसाधारण से कहा गया है कि तुम लोग मनुष्य ही नही हो। शताब्दियो से इस प्रकार डराये जाने के कारण वे बेचारे सचमुच ही करीब करीब पशुत्व को प्राप्त हो गये हैं। उन्हे कभी आत्मतत्त्व के विषय मे सुनने का मौका नही दिया गया। अब उनको आत्मतत्त्व सुनने दो, यह जान लेने दो कि उनमे से नीच से नीच मे भी आत्मा विद्यमान है—वह आत्मा, जो न कभी मरती है, न जन्म लेती है, जिसे न तलवार काट सकती है न आग जला सकती है और न हवा सुखा सकती है,[1] जो अमर है, अनादि और अनन्त है, जो शुद्धस्वरूप, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है।

उन्हे अपने मे विश्वास करने दो। आखिर अग्रेजो मे और तुममे किसलिए इतना अन्तर है? उन्हे अपने धर्म अपने कर्तव्य आदि के सम्बन्ध मे कहने दो। पर मुझे अन्तर मालूम हो गया है। अन्तर यही है कि अग्रेज अपने ऊपर विश्वास करता है, और तुम नही। जब वह सोचता है कि मैं अग्रेज हूँ, तो वह उस विश्वास के बल पर जो चाहता है वही कर सकता है। इस विश्वास के आधार पर उसके अन्दर छिपा हुआ ईश्वर भाव जाग उठता है। और तब वह उसकी जो भी इच्छा होती है, वही कर सकने मे समर्थ होता है। इसके विपरीत, लोग तुमसे कहते आये हैं, तुम्हे सिखाते आये हैं कि तुम कुछ भी नही हो, तुम कुछ भी नही कर सकते, और फलस्वरूप तुम आज इस प्रकार अकर्मण्य हो गये हो। अतएव आज हम जो चाहते हैं, वह है—बल, अपने मे अटूट विश्वास।

हम लोग शक्तिहीन हो गये हैं। इसीलिए गुप्तविद्या और रहस्यविद्या—इन रोमाचक वस्तुओ ने धीरे धीरे हममे घर कर लिया है। भले ही उनमे अनेक सत्य हों, पर उन्होंने लगभग हमे नष्ट कर डाला है। अपने स्नायु बलवान बनाओ। आज हमे जिसकी आवश्यकता है, वह है—लोहे के पुट्ठे और फौलाद के स्नायु। हम लोग बहुत दिन रो चुके। अब और रोने की आवश्यकता नही। अब अपने पैरो पर खडे हो जाओ और 'मर्द' बनो। हमे ऐसे धर्म की आवश्यकता है, जिससे

---

१ नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ गीता २।२३॥

हम मनुष्य बन सकें। हमें ऐसे सिद्धान्तों की जरूरत है, जिससे हम मनुष्य हो सकें। हमें ऐसी सर्वांगसम्पन्न शिक्षा चाहिए, जो हमें मनुष्य बना सके। और यह रही सत्य की कसौटी—जो भी तुमको शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से दुर्बल बनाये उसे जहर की भाँति त्याग दो, उसमें जीवन-शक्ति नहीं है, वह कभी सत्य नहीं हो सकता। सत्य तो बलप्रद है, वह पवित्रता है, वह ज्ञानस्वरूप है। सत्य तो वह है जो शक्ति दे, जो हृदय के अन्धकार को दूर कर दे, जो हृदय में स्फूर्ति भर दे। भले ही इन रहस्य-विद्याओं में कुछ सत्य हो, पर ये तो साधारणतया मनुष्य को दुर्बल ही बनाती हैं। मेरा विश्वास करो, मेरा यह जीवन भर का अनुभव है। मैं भारत के लगभग सभी स्थानों में घूम चुका हूँ, सभी गुफाओं का अन्वेषण कर चुका हूँ और हिमालय पर भी रह चुका हूँ। मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूँ, जो जीवन भर वहीं रहे हैं। और अन्त में मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इन सब रहस्य-विद्याओं से मनुष्य दुर्बल ही होता है। मैं अपने देश से प्रेम करता हूँ, मैं तुम्हें और अधिक पतित और ज्यादा कमजोर नहीं देख सकता। अतएव तुम्हारे कल्याण के लिए, सत्य के लिए और जिससे मेरी जाति और अधिक अवनत न हो जाय, इसलिए मैं जोर से चिल्लाकर कहने के लिए बाध्य हो रहा हूँ—बस ठहरो। अवनति की ओर और न बढ़ो—जहाँ तक गये हो, बस उतना ही काफी हो चुका। अब वीर्यवान होने का प्रयत्न करो, कमजोर बनानेवाली इन सब रहस्यविद्याओं को तिलांजलि दे दो, और अपने उपनिषदों का—उस बलप्रद, आलोकप्रद, दिव्य दर्शन शास्त्र का—आश्रय ग्रहण करो। सत्य जितना ही महान् होता है, उतना ही सहज बोधगम्य होता है—स्वयं अपने अस्तित्व के समान सहज। जैसे अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए और किसी की आवश्यकता नहीं होती, बस वैसा ही। उपनिषद् के सत्य तुम्हारे सामने हैं। इनका अवलम्बन करो, इनकी उपलब्धि कर इन्हें कार्य में परिणत करो। बस देखोगे, भारत का उद्धार निश्चित है।

एक बात और कहकर मैं समाप्त करूँगा। लोग देशभक्ति की चर्चा करते हैं। मैं भी देशभक्ति में विश्वास करता हूँ, और देशभक्ति के सम्बन्ध में मेरा भी एक आदर्श है। बड़े काम करने के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है। पहला है हृदय की अनुभव-शक्ति। बुद्धि या विचार-शक्ति में क्या है? वह तो कुछ दूर जाती है और बस वहीं रुक जाती है। पर हृदय तो प्रेरणा-स्रोत है! प्रेम असम्भव द्वारों को भी उद्घाटित कर देता है। यह प्रेम ही जगत् के सब रहस्यों का द्वार है। अतएव, ऐ मेरे भावी सुधारको, मेरे भावी देशभक्तो, तुम अनुभव करो। क्या तुम अनुभव करते हो? क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि देव और ऋषियों की करोड़ों सन्तानें आज पशुतुल्य हो गयी हैं? क्या तुम हृदय

से अनुभव करते हो कि लाखो आदमी आज भूखो मर रहे है, और लाखो लोग शताब्दियो से इसी भाँति भूखो मरते आये हैं ? क्या तुम अनुभव करते हो कि अज्ञान के काले बादल ने सारे भारत को ढक लिया है ? क्या तुम यह सब सोचकर बेचैन हो जाते हो ? क्या इस भावना ने तुमको निद्राहीन कर दिया है ? क्या यह भावना तुम्हारे रक्त के साथ मिलकर तुम्हारी धमनियो मे बहती है ? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से मिल गयी है ? क्या उसने तुम्हे पागल सा बना दिया है ? क्या देश की दुर्दशा की चिन्ता ही तुम्हारे ध्यान का एकमात्र विषय बन बैठी है ? और क्या इस चिन्ता मे विभोर हो जाने से तुम अपने नाम-यश, पुत्र-कलत्र, धन-सम्पत्ति, यहाँ तक कि अपने शरीर की भी सुध विसर गये हो ? क्या तुमने ऐसा किया है ? यदि 'हाँ', तो जानो कि तुमने देशभक्त होने की पहली सीढी पर पैर रखा है—हाँ, केवल पहली ही सीढी पर ! तुममे से अधिकाश जानते हैं, मैं अमेरिका धर्म-महासभा के लिए नही गया, वरन् इस भावना का दैत्य मुझमें, मेरी आत्मा मे था। मैं पूरे बारह वर्ष सारे देश भर भ्रमण करता रहा, पर अपने देशवासियो के लिए कार्य करने का मुझे कोई रास्ता ही नही मिला। यही कारण था कि मैं अमेरिका गया। तुममे से अधिकाश, जो मुझे उस समय जानते थे, इस बात को अवश्य जानते है। इस धर्म-महासभा की कौन परवाह करता था ? यहाँ मेरे देशवासी, मेरे ही रक्त-मासमय देहस्वरूप मेरे देशवासी, दिन पर दिन डूबते जा रहे थे। उनकी कौन खबर ले ? बस यही मेरा पहला सोपान था।

अच्छा, माना कि तुम अनुभव करते हो, पर पूछता हूँ, क्या केवल व्यर्थ की बातो मे शक्तिक्षय न करके इस दुर्दशा का निवारण करने के लिए तुमने कोई यथार्थ कर्तव्य-पथ निश्चित किया है ? क्या लोगो की भर्त्सना न कर उनकी सहायता का कोई उपाय सोचा है ? क्या स्वदेशवासियो को उनकी इस जीवन्मृत अवस्था से बाहर निकालने के लिए कोई मार्ग ठीक किया है ? क्या उनके दुखो को कम करने के लिए दो सान्त्वनादायक शब्दो को खोजा है ? यही दूसरी बात है।

किन्तु इतने ही से पूरा न होगा। क्या तुम पर्वताकार विघ्न-बाधाओ को लाँघकर कार्य करने के लिए तैयार हो ? यदि सारी दुनिया हाथ में नगी तलवार लेकर तुम्हारे विरोध मे खडी हो जाय, तो भी क्या तुम जिसे सत्य समझते हो, उसे पूरा करने का साहस करोगे ? यदि तुम्हारे पुत्र-कलत्र तुम्हारे प्रतिकूल हो जायँ, भाग्य-लक्ष्मी तुमसे रूठकर चली जाय, नाम की कीर्ति भी तुम्हारा साथ छोड दे, तो भी क्या तुम उस सत्य मे सलग्न रहोगे ? फिर भी क्या तुम उसके पीछे लगे रहकर अपने लक्ष्य की ओर सतत बढते रहोगे ? जैसा कि महान् राजा भर्तृ-

हरि ने कहा है, 'चाहे नीतिनिपुण लोग निन्दा करें या प्रशंसा, लक्ष्मी आय या जहाँ उसकी इच्छा हो चली जाय, मृत्यु आज हो या सौ वर्ष बाद, धीर पुरुष तो वह है जो न्याय के पथ से तनिक भी विचलित नहीं होता।'[1] क्या तुममें ऐसी दृढ़ता है? बस यही तीसरी बात है। यदि तुममें ये तीन बातें हैं, तो तुममें से प्रत्येक अद्भुत कार्य कर सकता है। तब फिर तुम्हें समाचारपत्रों में छपवाने की अथवा व्याख्यान देते हुए फिरते रहने की आवश्यकता न होगी, स्वयं तुम्हारा मुख ही दीप्त हो उठेगा। फिर तुम चाहे पर्वत की कन्दरा में रहो, तो भी तुम्हारे विचार पर्वत की चट्टानों को भेदकर बाहर निकल आयेंगे और सैकड़ों वर्ष तक सारे संसार में प्रतिध्वनित होते रहेंगे। और हो सकता है, तब तक ऐसे ही रहें, जब तक उन्हें किसी मस्तिष्क का आधार न मिल जाय, और वे उसीके माध्यम से कार्यशील हो उठें। विचार, निष्कपटता और पवित्र उद्देश्य में ऐसी ही जबरदस्त शक्ति है।

मुझे डर है कि तुम्हें देर हो रही है, पर एक बात और। ऐ मेरे स्वदेशवासियो, मेरे मित्रो, मेरे बच्चो, राष्ट्रीय जीवनरूपी यह जहाज लाखों लोगों को जीवनरूपी समुद्र के पार करता रहा है। कई शताब्दियों से इसका यह कार्य चल रहा है और इसकी सहायता से लाखों आत्माएँ इस सागर के उस पार अमृतधाम में पहुँची हैं। पर आज शायद तुम्हारे ही दोष से इस पोत में कुछ खराबी हो गयी है, इसमें एक दो छेद हो गये हैं, तो क्या तुम इसे कोसोगे? संसार में जिसने तुम्हारा सबसे अधिक उपकार किया है, उसके विरुद्ध खड़े होकर उस पर गाली बरसाना क्या तुम्हारे लिए उचित है? यदि हमारे इस समाज में, इस राष्ट्रीय जीवनरूपी जहाज में छेद है, तो हम तो उसकी सन्तान हैं। आओ चलें, उन छेदों को बन्द कर दें — उसके लिए हँसते हँसते अपने हृदय का रक्त बहा दें। और यदि हम ऐसा न कर सकें तो हमें मर जाना ही उचित है। हम अपना भेजा निकालकर उसकी डाट बनायेंगे और जहाज के उन छेदों में भर देंगे। पर उसकी कभी भर्त्सना न करें? इस समाज के विरुद्ध एक कड़ा शब्द तक न निकालो। उसकी अतीत की गौरव-गरिमा के लिए मेरा उस पर प्रेम है। मैं तुम सबको प्यार करता हूँ, क्योंकि तुम देवताओं की सन्तान हो, महिमाशाली पूर्वजों के वंशज हो। तब भला मैं तुम्हें कैसे कोस सकता हूँ? यह असम्भव है। तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण हो। ऐ मेरे बच्चो, मैं तुम्हारे पास आया हूँ अपनी सारी योजनाएँ तुम्हारे सामने रखने के लिए। यदि तुम उन्हें सुनो, तो मैं तुम्हारे साथ काम करने को तैयार हूँ। पर यदि तुम उनको

---

१ निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

न सुनो, और मुझे ठुकराकर अपने देश के बाहर भी निकाल दो, तो भी मैं तुम्हारे पास वापस आकर यही कहूँगा, "भाई, हम सब डूब रहे हैं।" मैं आज तुम्हारे बीच बैठने आया हूँ। और यदि हमें डूबना है, तो आओ, हम सब साथ ही डूबें, पर एक भी कटु शब्द हमारे ओठों पर न आने पाये।

# भारतीय जीवन में वेदान्त का प्रभाव

[ मद्रास में दिया हुआ भाषण ]

हमारी जाति और धर्म को व्यक्त करने के लिए एक शब्द बहुत प्रचलित हो गया है। वेदान्त धर्म से मेरा क्या अभिप्राय है, इसको समझाने के लिए उक्त शब्द 'हिन्दू' की किंचित् व्याख्या करने की आवश्यकता है। प्राचीन फ़ारस देशनिवासी सिन्धु नद के लिए 'हिन्दू' इस नाम का प्रयोग करते थे। संस्कृत भाषा में जहाँ 'स' आता है, प्राचीन फ़ारसी भाषा में वहीं 'ह' रूप में परिणत हो जाता है, इसलिए सिन्धु का 'हिन्दू' हो गया। तुम सभी लोग जानते हो कि यूनानी लोग 'ह' का उच्चारण नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्होंने 'ह' को छोड़ दिया और इस प्रकार हम 'इण्डियन' नाम से जाने गये। प्राचीन काल में इस शब्द का अर्थ जो भी हो, अब इस हिन्दू शब्द की, जो सिन्धु नद के दूसरे किनारे के निवासियों के लिए प्रयुक्त होता था, कोई सार्थकता नहीं है, क्योंकि सिन्धु नद के इस ओर रहने वाले सभी एक धर्म के माननेवाले नहीं हैं। इस समय यहाँ हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, बौद्ध और जैन भी वास करते हैं। 'हिन्दू' शब्द के व्यापक अर्थ के अनुसार इन सबको हिन्दू कहना होगा, किन्तु धर्म के हिसाब से इन सबको हिन्दू नहीं कहा जा सकता। हमारा धर्म भिन्न भिन्न प्रकार के धार्मिक विश्वास, भाव तथा अनुष्ठान और क्रिया-कर्मों का समष्टि-स्वरूप है। सब एक साथ मिला हुआ है, किन्तु यह कोई साधारण नियम से संगठित नहीं हुआ, इसका कोई एक साधारण नाम भी नहीं है और न इसका कोई संघ ही है। कदाचित् केवल एक यही विषय है जहाँ सारे सम्प्रदाय एकमत हैं कि हम सभी अपने शास्त्र वेदों पर विश्वास करते हैं। यह भी निश्चित है कि जो व्यक्ति वेदों की सर्वोच्च प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करता, उसे अपने को हिन्दू कहने का अधिकार नहीं है। तुम जानते हो कि ये वेद दो भागों में विभक्त हैं—कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। कर्मकाण्ड में नाना प्रकार के यागयज्ञ और अनुष्ठान-पद्धतियाँ हैं, जिनका अधिकांश आजकल प्रचलित नहीं है। ज्ञानकाण्ड में वेदों के आध्यात्मिक उपदेश लिपिबद्ध हैं—वे उपनिषद् अथवा 'वेदान्त' के नाम से परिचित हैं और द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी अथवा अद्वैतवादी समस्त दार्शनिकों और आचार्यों ने उनको ही उच्चतम प्रमाण कहकर स्वीकार किया है। भारत

के समस्त दर्शन और सम्प्रदायो को यह प्रमाणित करना होता है कि उसका दर्शन अथवा सम्प्रदाय उपनिषद्रूपी नीव के ऊपर प्रतिष्ठित है। यदि कोई ऐसा करने मे समर्थ न हो सके तो वह दर्शन अथवा सम्प्रदाय धर्म-विरुद्ध गिना जाता है, इसलिए वर्तमान समय मे समग्र भारत के हिन्दुओ को यदि किसी साधारण नाम से परिचित करना हो तो उनको 'वेदान्ती' अथवा 'वैदिक' कहना उचित होगा। मैं वेदान्ती धर्म और वेदान्त इन दोनो शब्दो का व्यवहार सदा इसी अभिप्राय से करता हूँ।

मैं इसको और भी स्पष्ट करके समझाना चाहता हूँ, कारण यह है कि आजकल कुछ लोग वेदान्त दर्शन की 'अद्वैत' व्याख्या को ही 'वेदान्त' शब्द के समानार्थक रूप मे प्रयोग करते हैं। हम सब जानते है कि उपनिषदो के आधार पर जिन समस्त विभिन्न दर्शनो की सृष्टि हुई है, अद्वैतवाद उनमे से एक है। अद्वैतवादियो की उपनिषदो के ऊपर जितनी श्रद्धा-भक्ति है, विशिष्टाद्वैतवादियो की भी उतनी ही है और अद्वैतवादी अपने दर्शन को वेदान्त की भित्ति पर प्रतिष्ठित कह कर जितना अपनाते हैं, विशिष्टाद्वैतवादी भी उतना ही। द्वैतवादी और भारतीय अन्यान्य समस्त सम्प्रदाय भी ऐसा ही करते है। ऐसा होने पर भी साधारण मनुष्यो के मन मे 'वेदान्ती' और 'अद्वैतवादी' समानार्थक हो गये हैं और शायद इसका कुछ कारण भी है। यद्यपि वेद ही हमारे प्रधान शास्त्र हैं, हमारे पास वेदो के सिद्धान्तो की व्याख्या दृष्टान्त रूप से करने वाले परवर्ती स्मृति और पुराण भी निश्चित रूप से वेदो के समान प्रामाणिक नही हैं। यह शास्त्र का नियम है कि जहाँ श्रुति एव पुराण और स्मृति मे मतभेद हो, वहाँ श्रुति के मत का ग्रहण और स्मृति के मत का परित्याग करना चाहिए। इस समय हम देखते हैं कि अद्वैत दार्शनिक शकराचार्य और उनके मतावलम्बी आचार्यों की व्याख्या मे अधिक परिमाण मे उपनिषद् प्रमाण-स्वरूप उद्धृत हुए हैं। केवल जहाँ ऐसे विषय की व्याख्या का प्रयोजन हुआ, जिसको श्रुति मे किसी रूप मे पाने की आशा न हो, ऐसे थोडे से स्थानो में ही केवल स्मृति-वाक्य उद्धृत हुए हैं। अन्यान्य मतावलम्बी स्मृति के ऊपर ही अधिकाधिक निर्भर रहते हैं, श्रुति का आश्रय कम ही लेते हैं और ज्यो ज्यो हम द्वैतवादियो की ओर ध्यान देते है, हमको विदित होता है कि उनके उद्धृत स्मृति-वाक्यो के अनुपात का परिणाम इतना अधिक है कि वेदान्तियो से इस अनुपात की आशा नही की जाती। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके स्मृति-पुराणादि प्रमाणो के ऊपर इतना अधिक निर्भर रहने के कारण, अद्वैतवादी ही क्रमश विशुद्ध वेदान्ती कहे जाने लगे।

जो हो, हमने प्रथम ही यह दिखा दिया है कि वेदान्त शब्द से भारत के समस्त धर्म समष्टिरूप से समझे जाते हैं, और यह वेदान्त वेदो का एक भाग होने के कारण

सभी लोगों द्वारा स्वीकृत हमारा सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। आधुनिक विद्वानों के विचार जो भी हों, एक हिन्दू यह विश्वास करने को कभी तैयार नहीं है कि वेदों का कुछ अंश एक समय में और कुछ अन्य समय में लिखा गया है। उनका अब भी यह दृढ़ विश्वास है कि समग्र वेद एक ही समय में उत्पन्न हुए थे, अथवा यदि मैं कह सकूँ, उनकी सृष्टि कभी नहीं हुई, वे चिरकाल से सृष्टिकर्ता के मन में वर्तमान थे। 'वेदान्त' शब्द से मेरा यही अभिप्राय है और भारत के द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद और अद्वैतवाद सभी उसके अन्तर्गत हैं। सम्भवतः हम बौद्ध धर्म, यहाँ तक कि जैन धर्म के भी अंशविशेषों को ग्रहण कर सकते हैं, यदि उक्त धर्मावलम्बी अनुग्रहपूर्वक हमारे मध्य में आने को सहमत हों। हमारा हृदय यथेष्ट प्रशस्त है, हम उनको ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत हैं, वे ही आने को राजी नहीं हैं। हम उनको ग्रहण करने के लिए सदा प्रस्तुत हैं, कारण यह है कि विशिष्ट रूप से विश्लेषण करने पर तुम देखोगे कि बौद्ध धर्म का सार भाग इन्हीं उपनिषदों से लिया गया है, यहाँ तक कि बौद्ध धर्म का तथाकथित अद्भुत और महान् आचार-शास्त्र किसी न किसी उपनिषद् में अविकल रूप से विद्यमान है। इसी प्रकार जैन धर्म के उत्तमोत्तम सिद्धान्त भी उपनिषदों में वर्तमान हैं, केवल असंगत और मनमानी बातों को छोड़कर इसके पश्चात् भारतीय धार्मिक विचारों का जो समस्त विकास हुआ है, उसका बीज हम उपनिषदों में देखते हैं। कभी कभी इस प्रकार का निर्मूल अभियोग लगाया जाता है कि उपनिषदों में भक्ति का आदर्श नहीं है। जिन्होंने उपनिषदों का अध्ययन अच्छी तरह किया है, वे जानते हैं कि यह अभियोग बिल्कुल सत्य नहीं है। प्रत्येक उपनिषद् में अनुसन्धान करने से यथेष्ट भक्ति का विषय पाया जाता है, किन्तु इनमें से अधिकांश भाव, जो परवर्ती काल में पुराण तथा अन्यान्य स्मृतियों में इतनी पूर्णता से विकसित पाये जाते हैं, उपनिषदों में बीजरूप में विद्यमान हैं। उपनिषदों में मानो उसका ढाँचा, उसकी रूपरेखा ही वर्तमान है। किसी किसी पुराण में यह ढाँचा पूर्ण किया गया है, किन्तु कोई भी ऐसा पूर्ण विकसित भारतीय आदर्श नहीं है, जिसका मूल स्रोत उपनिषदों में खोजा न जा सकता हो। बिना उपनिषद्-विद्या के विशेष ज्ञान के अनेक व्यक्तियों ने भक्तिवाद को विदेशी स्रोत से विकसित सिद्ध करने की हास्यास्पद चेष्टा की है, किन्तु तुम सब जानते हो कि उनकी सम्पूर्ण चेष्टा विफल हुई है। तुम्हें जितनी भक्ति की आवश्यकता है, सब उपनिषदों में ही क्यों, संहिता पर्यन्त, सबमें विद्यमान है—उपासना, प्रेम, भक्ति और जो कुछ आवश्यक है सब विद्यमान है। केवल भक्ति का आदर्श अधिकाधिक उच्च होता रहा है। संहिता के भागों में भय और क्लेशयुक्त धर्म के चिह्न पाये जाते हैं। संहिता के किसी किसी स्थल पर देखा जाता है कि उपासक वरुण

अथवा अन्य किसी देवता के सम्मुख भय से कांप रहा है। और कई स्थलो पर यह भी देखा जाता है कि वे अपने को पापी समझकर अधिक यत्रणा पाते हैं, किन्तु उपनिषदो मे इस प्रकार के वर्णन के लिए कोई स्थान नही है, उपनिपदो मे भय का धर्म नही है, उपनिषदो मे प्रेम और ज्ञान का धर्म है।

ये उपनिषद् ही हमारे शास्त्र हैं। इनकी व्याख्या भिन्न भिन्न रूप से हुई है और मै तुमसे पहले कह चुका हूँ कि जहाँ परवर्ती पौराणिक ग्रन्थो और वेदो मे मतभेद होता है, वहाँ पुराणो के मत को अग्राह्य कर वेदो का मत ग्रहण करना पडेगा। किन्तु कार्यरूप मे हममे से ९० प्रतिशत मनुष्य पौराणिक और शेष १० प्रतिशत वैदिक हैं और इतने भी है या नही, इसमे भी सन्देह है। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि हमारे बीच नाना प्रकार के अत्यन्त विरोधी आचार भी विद्यमान हैं—हमारे समाज मे ऐसे भी धार्मिक विचार प्रचलित हैं, जिनका हिन्दू शास्त्रो मे कोई प्रमाण नही है। शास्त्रो का अध्ययन करके हमे यह देखकर आश्चर्य होता है कि हमारे देश मे अनेक स्थानो पर ऐसे कई आचार प्रचलित हैं, जिनका प्रमाण वेद, स्मृति अथवा पुराण आदि मे कही भी नही पाया जाता, वे केवल लोकाचार है। तथापि प्रत्येक अबोध ग्रामवासी सोचता है कि यदि उसका ग्राम्य आचार उठ जाय, तो वह हिन्दू नही रह सकता। उसकी धारणा यही है कि वेदान्त धर्म और इस प्रकार के समस्त क्षुद्र लोकाचार परस्पर घुलमिल कर एकरूप हो गये हैं। शास्त्रो का अध्ययन करने पर भी वे नही समझ सकते कि वे जो करते हैं, उसमे शास्त्रो की सम्मति नही है। उनके लिए यह समझना बडा कठिन होता है कि ऐसे समस्त आचारो का परित्याग करने से उनकी कुछ क्षति नही होगी, वरन् इससे वे अधिक अच्छे मनुप्य बनेंगे। इसके अतिरिक्त एक और कठिनाई है—हमारे शास्त्र बहुत विस्तृत हैं। पतजलिप्रणीत 'महाभाष्य' नामक भाषा-विज्ञान ग्रन्थ मे लिखा है कि सामवेद की सहस्र शाखाएँ थी। वे सब कहाँ हैं? कोई नही जानता। प्रत्येक वेद का यही हाल है। इन समस्त ग्रन्थो के अधिकाश का लोप हो गया है, सामान्य अश ही हमारे निकट वर्तमान है। एक एक ऋषि परिवार ने एक एक शाखा का भार ग्रहण किया था। इन परिवारो मे से अधिकाशो का स्वाभाविक नियम के अनुसार वशलोप हो गया, अथवा विदेशी अत्याचार से मारे गये या अन्य कारणो से उनका नाश हो गया। और उन्हीके साथ साथ जिस वेद की शाखा विशेष की रक्षा का भार उन्होने ग्रहण किया था, उसका भी लोप हो गया। यह बात हमको विशेप रूप से स्मरण रखनी चाहिए, कारण यह है कि जो कोई नये विषय का प्रचार अथवा वेदो के विरोधी भी किसी विषय का समर्थन करना चाहते हैं, उनके लिए यह युक्ति प्रधान सहायक है। जब भारत मे श्रुति और लोकाचार को लेकर तर्क

होता है अथवा जब यह सिद्ध किया जाता है कि यह लोकाचार श्रुति-विरुद्ध है तब दूसरा पक्ष यही उत्तर देता है—नहीं, यह श्रुति-विरुद्ध नहीं है, यह श्रुति की उस शाखा में था, जिसका इस समय लोप हो गया है, अतः यह प्रथा भी वेद-सम्मत है। शास्त्रों की ऐसी समस्त टीका और टिप्पणियों में किसी ऐसे सूत्र को पाना वास्तव में बड़ा कठिन है, जो सबमें समान रूप से मिलता हो। किन्तु हमको इस बात का सहज ही में विश्वास हो जाता है कि इन नाना प्रकार के विभागों तथा उपविभागों में कहीं न कहीं अवश्य ही कोई सम्मिलित भूमि अन्तर्निहित है। भवनों के ये छोटे छोटे खण्ड अवश्य किसी विशेष आदर्श योजना तथा सामञ्जस्य के आधार पर निर्मित किये गये होंगे। इस प्रतीयमान निराशाजनक विभ्रम पुंज के, जिसको हम अपना धर्म कहते हैं, मूल में अवश्य कोई न कोई एक समन्वय निहित है। अन्यथा यह इतने समय तक कदापि खड़ा नहीं रह सकता था, यह अब तक रक्षित नहीं रह सकता था।

अपने भाष्यकारों के भाष्यों को देखने से हमें एक दूसरी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अद्वैतवादी भाष्यकार जब अद्वैत सम्बन्धी श्रुति की व्याख्या करता है, उस समय वह उसके वैसे ही भाव रहने देता है, किन्तु वही भाष्यकार जब द्वैत-भावात्मक सूत्रों की व्याख्या करने में प्रवृत्त होता है, उस समय वह उसके शब्दों की खींचातानी करके अद्भुत अर्थ निकालता है। भाष्यकारों ने समय समय पर अपना अभीष्ट अर्थ व्यक्त करने के लिए 'अजा' (जन्मरहित) शब्द का अर्थ 'बकरी' भी किया है—कैसा अद्भुत परिवर्तन है! इसी प्रकार, वरन् उससे भी बुरी तरह, द्वैतवादी भाष्यकारों ने भी श्रुति की व्याख्या की है। जहाँ उनको द्वैत के अनुकूल श्रुति मिली है, उसको उन्होंने सुरक्षित रखा है, किन्तु जहाँ भी अद्वैतवाद के अनुसार पाठ आया है, वहीं उन्होंने उस श्रुति के अंश की मनमाने ढंग से विकृत करके व्याख्या की है। यह संस्कृत भाषा इतनी जटिल है, वैदिक संस्कृत इतनी प्राचीन है, संस्कृत भाषा-शास्त्र इतना पूर्ण है कि एक शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में युग युगान्तर तक तर्क चल सकता है। यदि कोई पंडित हठधर्मी हो जाय तो वह किसी व्यक्ति की बकवास को भी युक्तिबल से अथवा शास्त्र और व्याकरण के नियम उद्धृत कर शुद्ध संस्कृत सिद्ध कर सकता है। उपनिषदों को समझने के मार्ग में इस प्रकार की कई विघ्न-बाधाएँ उपस्थित होती हैं। विधाता की इच्छा से मुझे एक ऐसे व्यक्ति के साथ रहने का अवसर प्राप्त हुआ था जो जैसे ही पक्के द्वैतवादी थे वैसे ही अद्वैतवादी भी थे, जैसे ही परम भक्त थे वैसे ही ज्ञानी भी थे। इसी व्यक्ति के साथ रह कर प्रथम बार मेरे मन में आया कि उपनिषद् और अन्यान्य शास्त्रों के पाठ को केवल अन्धविश्वास से भाष्यकारों का अनुसरण

न करके, स्वाधीन और उत्तम रूप से समझना चाहिए। और मैं अपने मत मे तथा अपने अनुसन्धान मे इसी सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ कि ये समस्त शास्त्र परस्पर विरोधी नही हैं, इसलिए हमको शास्त्रो की विकृत व्याख्या का भय नही होना चाहिए। समस्त श्रुतिवाक्य अत्यन्त मनोरम हैं, अत्यन्त अद्‌भुत है और वे परस्पर विरोधी नही हैं, उनमे अपूर्व सामजस्य विद्यमान है, एक तत्त्व मानो दूसरे का सोपानस्वरूप है। मैंने इन समस्त उपनिषदो मे एक यही भाव देखा है कि प्रथम द्वैत भाव का वर्णन उपासना आदि से आरम्भ हुआ है, अन्त मे अपूर्व अद्वैत भाव के उच्छ्‌वास मे वह समाप्त हुआ है।

इसीलिए अब मैं इसी व्यक्ति के जीवन के प्रकाश मे देखता हूँ कि द्वैतवादी और अद्वैतवादियो को परस्पर विवाद करने की कोई आवश्यकता नही है, दोनो का ही राष्ट्रीय जीवन मे विशेष स्थान है। द्वैतवादी का रहना आवश्यक है, अद्वैतवादी के समान द्वैतवादी का भी राष्ट्रीय धार्मिक जीवन मे विशेष स्थान है। एक के बिना दूसरा नही रह सकता, एक दूसरे का पूरक है, एक मानो गृह है, दूसरा छत। एक मानो मूल है और दूसरा फलस्वरूप। इसलिए उपनिषदो का मनमाना विकृत अर्थ करने की चेष्टा को मैं अत्यन्त हास्यास्पद समझता हूँ। कारण, मैं देखता हूँ कि उनकी भाषा ही अपूर्व है। श्रेष्ठतम दर्शन रूप मे उनके गौरव के बिना भी, मानव जाति के मुक्ति-पथ-प्रदर्शक धर्मविज्ञान रूप मे उनके अद्‌भुत गौरव को छोड देने पर भी, उपनिषदो के साहित्य मे उदात्त भावो का ऐसा अत्यन्त अपूर्व चित्रण है, जैसा ससार भर मे और कही नही है। यही मानवीय मन के उस प्रबल विशेषत्व का, अन्तर्दृष्टिपरायण, अन्त प्रेरणीय उस हिन्दू मन का विशेष परिचय पाया जाता है। अन्यत्र अन्य जातियो के भीतर भी इस उदात्त भाव के चित्र को अकित करने की चेष्टा देखी जाती है, किन्तु प्राय सर्वत्र ही तुम देखोगे कि उनका आदर्श बाह्य प्रकृति के महान् भाव को ग्रहण करना है। उदाहरणस्वरूप मिल्टन, दान्ते, होमर अथवा अन्य किसी पाश्चात्य कवि को लिया जा सकता है। उनके काव्यो मे स्थान स्थान पर उदात्त भावव्यजक अपूर्व स्थल हैं, किन्तु उनमे सर्वत्र ही वाह्य प्रकृति की अनन्तता को इन्द्रियो के माध्यम से ग्रहण करने की चेष्टा है—वाह्य प्रकृति के अनन्त विस्तार, देश की अनन्तता के आदर्श को प्राप्त करने का प्रयत्न है। हम वेदो के सहिता भाग मे भी यही चेष्टा देखते हैं। कुछ अपूर्व ऋचाओ मे जहाँ सृष्टि का वर्णन है, वाह्य प्रकृति के विस्तार का उदात्त भाव, देश का अनन्तत्व, अभिव्यक्ति की उच्चतम भूमियाँ उपलब्ध कर सका है। किन्तु उन्होंने शीघ्र ही जान लिया कि इन उपायो से अनन्तत्व को प्राप्त नही किया जा सकता, उन्होंने समझ लिया कि अपने मन के जिन सकल भावो को वे भाषा मे व्यक्त करने की चेष्टा कर रहे थे,

उनको अनन्त देश, अनन्त विस्तार और अनन्त बाह्य प्रकृति, प्रकाशित करने में असमर्थ है। तब उन्होंने जगत्-समस्या की व्याख्या के लिए अन्य मार्गों का अवलम्बन किया। उपनिषदों की भाषा ने नया रूप धारण किया, उपनिषदों की भाषा एक प्रकार से 'नेति' वाचक है, स्थान स्थान पर अस्फुट है, मानो वह तुम्हें अतीन्द्रिय राज्य में ले जाने की चेष्टा करती है, केवल तुम्हें एक ऐसी वस्तु दिखा देती है, जिसे तुम ग्रहण नहीं कर सकते, जिसका तुम इन्द्रियों से बोध नहीं कर पाते, फिर भी उस वस्तु के सम्बन्ध में तुमको साथ ही यह निश्चय भी है कि उसका अस्तित्व है। संसार में ऐसा स्थल कहाँ है जिसके साथ इस श्लोक की तुलना हो सके?—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्।
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ॥[1]

—'वहाँ सूर्य की किरण नहीं पहुँचती, वहाँ चन्द्रमा और तारे भी नहीं चमकते, बिजली भी उस स्थान को प्रकाशित नहीं कर सकती, इस सामान्य अग्नि का तो कहना ही क्या?'

पुनश्च, समस्त संसार के समग्र दार्शनिक भाव की अत्यन्त पूर्ण अभिव्यक्ति संसार में और कहाँ पाओगे, हिन्दू जाति के समग्र चिन्तन का सारांश, मानव जाति की मोक्षाकांक्षा की समस्त कल्पना जिस प्रकार अद्भुत भाषा में अंकित हुई है, जिस प्रकार अपूर्व रूपक में वर्णित हुई है, ऐसी तुम और कहाँ पाओगे? यथा—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः॥[2]

एक ही वृक्ष के ऊपर सुन्दर पंखवाली दो चिड़ियाँ रहती हैं—दोनों वहीं मित्र हैं, उनमें एक उसी वृक्ष के फल खाती है, दूसरी फल न खाकर स्थिर भाव से चुपचाप बैठी है। नीचे की शाखा में बैठी चिड़िया कभी मीठे, कभी कड़वे फल खाती है—और इसी कारण कभी सुखी अथवा कभी दुःखी होती है, किन्तु ऊपर की शाखा में बैठी हुई चिड़िया स्थिर और गम्भीर है, वह अच्छे-बुरे कोई फल नहीं खाती, वह सुख और दुःख की परवाह नहीं करती, अपनी ही महिमा में मग्न है। ये दोनों पक्षी जीवात्मा और परमात्मा हैं। मनुष्य इस जीवन के मीठे और कड़वे फल खाता है, वह धन की खोज में मस्त है, वह इन्द्रिय सुख के

---

१ कठोपनिषद् ॥२।२।१५॥
२ मुण्डकोपनिषद् ॥३।१।१-२॥

पीछे दौडता है, सासारिक क्षणिक वृथा सुख के लिए उन्मत्त होकर पागल के समान दौडता है। उपनिषदो ने एक और स्थान पर सारथि और उसके असयत दुष्ट घोडे के साथ मनुष्य के इस इन्द्रिय-सुखान्वेषण की तुलना की है। वृथा सुख के अनुसन्धान की चेष्टा मे मनुष्य का जीवन ऐसा ही बीतता है। बच्चे कितने सुनहले स्वप्न देखते हैं, अन्तत केवल यह जानने के लिए कि ये निरर्थक हैं। वृद्धावस्था मे वे अपने अतीत कर्मों की पुनरावृत्ति करते हैं, और फिर भी नही जानते कि इस जजाल से कैसे निकला जाय। ससार यही है। किन्तु सभी मनष्यो के जीवन मे समय समय पर ऐसे स्वर्णिम क्षण आते हैं—मनुष्य के अत्यन्त शोक मे, यहाँ तक कि महा आनन्द के समय ऐसे उत्तम सुअवसर आ उपस्थित होते हैं, जब सूर्य के प्रकाश को छिपानेवाला मेघखड मानो थोडी देर के लिए हट जाता है। उस समय इस क्षण-काल के लिए अपने इस सीमाबद्ध भाव के परे उस सर्वातीत सत्ता की एक झलक पा जाते हैं जो अत्यन्त दूर है, जो पचेन्द्रियावद्ध जीवन से परे बहुत दूर है, जो इस ससार के व्यर्थ भोग और इसके सुख-दु ख से परे बहुत ही दूर है, जो प्रकृति के उस पार दूर है, जो इहलोक अथवा परलोक मे हम जिस सुख-भोग की कल्पना करते हैं उससे भी बहुत दूर है, जो धन, यश और सन्तान की तृष्णा से भी परे बहुत दूर है। मनुष्य क्षण-काल के लिए दिव्य दृश्य देखकर स्थिर होता है—और देखता है कि दूसरी चिडिया शान्त और महिमामय है, वह खट्टे या मीठे कोई भी फल नही खाती, वह अपनी महिमा मे स्वय आत्मतृप्त है, जैसा गीता मे कहा है

> यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानव ।
> आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥३।१७॥

—'जो आत्मा मे रत है, जो आत्मतृप्त है और जो आत्मा मे ही सन्तुष्ट है, उसके करने के लिए और कौन कार्य शेष रह गया है ?'

वह वृथा कार्य करके क्यो समय गँवाये ? एक बार अचानक ब्रह्म-दर्शन प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य पुन भूल जाता है, पुन जीवन के खट्टे और मीठे फल खाता है—और उस समय उसको कुछ भी स्मरण नही रहता। कदाचित् कुछ दिनो के पश्चात् वह पुन ब्रह्म के दर्शन प्राप्त करता है और जितनी चोट खाता है, उतना ही नीचे का पक्षी ऊपर बैठे हुए पक्षी के निकट आता जाता है। यदि वह सौभाग्य से ससार के तीव्र आघात पाता रहे, तो वह अपने साथी, अपने प्राण, अपने सखा उसी दूसरे पक्षी के निकट क्रमश आता है। और वह जितना ही निकट आता है, उतना ही देखता है कि उस ऊपर बैठे हुए पक्षी की देह की ज्योति आकर उसके पखो के चारो ओर खेल रही है।

और वह जितना ही निकट आता जाता है उतना ही रूपान्तरण घटित होता है। धीरे धीरे वह जब अत्यन्त निकट पहुँच जाता है, तब देखता है कि मानों वह क्रमशः मिटता जा रहा है—अन्त में उसका पूर्ण रूप से लोप हो जाता है। उस समय वह समझता है कि उसका पृथक् अस्तित्व भी न था, वह उसी हिलते हुए पत्तों के भीतर शान्त और गम्भीर भाव से बैठे हुए दूसरे पक्षी का प्रतिबिम्ब मात्र था। उस समय वह जानता है कि वह स्वयं ही वही ऊपर बैठा हुआ पक्षी है, वह सदा से शान्त भाव में बैठा हुआ था—यह उसीकी महिमा है। वह निर्भय हो जाता है, उस समय वह सम्पूर्ण रूप से तृप्त होकर धीरे और शान्त भाव में निमग्न रहता है। इसी रूपक में उपनिषद् द्वैत भाव से आरम्भ कर पूर्ण अद्वैत भाव में हमें ले जाते हैं।

उपनिषदों के अपूर्व कवित्व, उदात्त चित्रण तथा उच्चतम भावसमूह दिखलाने के लिए अनन्त उदाहरण उद्धृत किये जा सकते हैं, किन्तु इस व्याख्यान में इसके लिए समय नहीं है। तो भी एक बात और कहूँगा, उपनिषदों की भाषा और भाव की गति सरल है, उनकी प्रत्येक बात तलवार की धार के समान, हथौड़े की चोट के समान साक्षात् भाव से हृदय में आघात करती है। उनके अर्थ समझने में कुछ भी भूल होने की सम्भावना नहीं—उस संगीत के प्रत्येक सुर में शक्ति है और वह हृदय पर पूरा असर करता है। उनमें अस्पष्टता नहीं, असम्बद्ध कथन नहीं, किसी प्रकार की जटिलता नहीं, जिससे दिमाग घूम जाय। उनमें अवनति के चिह्न नहीं हैं, अन्योक्तियों द्वारा वर्णन की भी ज्यादा चेष्टा नहीं की गयी है। उपनिषदों में इस प्रकार के वर्णन भी नहीं मिलेंगे कि विशेषण के पश्चात् विशेषण देकर क्रमागत भाव को जटिल करने से प्रकृत विषय का पता न लगे, दिमाग चक्कर खाने लगे और उस साहित्यिक गोरखधंधा के बाहर निकलने का उपाय ही न सूझे। यदि यह मानवप्रणीत है, तो यह एक ऐसी जाति का साहित्य है, जिसमें अभी अपनी जातीय तेजस्विता का ह्रास नहीं हुआ।

उपनिषदों का प्रत्येक पृष्ठ मुझे शक्ति का सन्देश देता है। यह विषय विशेष रूप से स्मरण रखने योग्य है, समस्त जीवन में मैंने यही महाशिक्षा प्राप्त की है—उपनिषद् कहते हैं, हे मानव, तेजस्वी बनो, वीर्यवान बनो, दुर्बलता को त्यागो। मनुष्य प्रश्न करता है, क्या मनुष्य में दुर्बलता नहीं है? उपनिषद् कहते हैं, अवश्य है, किन्तु अधिक दुर्बलता द्वारा क्या यह दुर्बलता दूर होगी? क्या तुम मैल से मैल धोने का प्रयत्न करोगे? पाप के द्वारा पाप अथवा निर्बलता द्वारा निर्बलता दूर होती है? उपनिषद् कहते हैं, हे मनुष्य, तेजस्वी बनो, वीर्यवान बनो, उठकर खड़े हो जाओ। जगत् के साहित्य में केवल इन्हीं उपनिषदों में 'अभीः' (भयशून्य) यह शब्द बार बार व्यवहृत हुआ है—और संसार के किसी शास्त्र में ईश्वर अथवा

मानव के प्रति 'अभी'—'भयशून्य' यह विशेषण प्रयुक्त नही हुआ है। 'अभी'—निर्भय बनो! और मेरे मन मे अत्यन्त अतीत काल के उस पाश्चात्य सम्राट् सिकन्दर का चित्र उदित होता है और मैं देख रहा हूँ—वह महाप्रतापी सम्राट् सिन्धु नद के तट पर खडा होकर अरण्यवासी, शिलाखड पर बैठे हुए वृद्ध, नग्न, हमारे ही एक सन्यासी के साथ बात कर रहा है। सम्राट् सन्यासी के अपूर्व ज्ञान से विस्मित होकर उसको अर्थ और मान का प्रलोभन दिखाकर यूनान देश मे आने के लिए निमन्त्रित करता है। और वह व्यक्ति उसके स्वर्ण पर मुसकराता है, उसके प्रलोभनो पर मुसकराता है और अस्वीकार कर देता है। और तब सम्राट् ने अपने अधिकार-बल से कहा, "यदि आप नही आयेंगे तो मैं आपको मार डालूँगा।" यह सुनकर सन्यासी ने खिलखिलाकर कहा, "तुमने इस समय जैसा मिथ्या भाषण किया, जीवन मे ऐसा कभी नही किया। मुझको कौन मार सकता है? जड जगत् के सम्राट्, तुम मुझको मारोगे? कदापि नही! मैं चैतन्यस्वरूप, अज और अक्षय हूँ! मेरा कभी जन्म नही हुआ और न कभी मेरी मृत्यु हो सकती है! मैं अनन्त, सर्वव्यापी और सर्वज्ञ हूँ। क्या तुम मुझको मारोगे? निरे बच्चे हो तुम!" यही सच्चा तेज है, यही सच्चा वीर्य है! हे बन्धुगण, हे स्वदेशवासियो, मैं जितना ही उपनिषदो को पढता हूँ, उतना ही मैं तुम्हारे लिए आँसू बहाता हूँ, क्योकि उपनिषदो मे वर्णित इसी तेजस्विता को ही हमको विशेष रूप से जीवन मे चरितार्थ करना आवश्यक हो गया है। शक्ति, शक्ति—यही हमको चाहिए, हमको शक्ति की बडी आवश्यकता है। कौन प्रदान करेगा हमको शक्ति? हमको दुर्बल करने के लिए सहस्रो विषय है, कहानियाँ भी बहुत हैं। हमारे प्रत्येक पुराण मे इतनी कहानियाँ हैं कि जिससे ससार मे जितने पुस्तकालय हैं, उनका तीन चौथाई भाग पूर्ण हो सकता है, जो हमारी जाति को शक्तिहीन कर सकती हैं, ऐसी दुर्बलताओ का प्रवेश हममे विगत एक हजार वर्ष से ही हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो विगत एक हजार वर्ष से हमारे जातीय जीवन का यही एकमात्र लक्ष्य था कि किस प्रकार हम अपने को दुर्बल से दुर्बलतर बना सकेंगे। अन्त मे हम वास्तव मे हर एक के पैर के पास रेंगनेवाले ऐसे केचुओ के समान हो गये हैं कि इस समय जो चाहे वही हमको कुचल सकता है। हे बन्धुगण, तुम्हारी और मेरी नसो मे एक ही रक्त का प्रवाह हो रहा है, तुम्हारा जीवन-मरण मेरा भी जीवन-मरण है। मैं तुमसे पूर्वोक्त कारणो से कहता हूँ कि हमको शक्ति, केवल शक्ति ही चाहिए। और उपनिषद् शक्ति की विशाल खान हैं। उपनिषदो मे ऐसी प्रचुर शक्ति विद्यमान है कि वे समस्त ससार को तेजस्वी बना सकते हैं। उनके द्वारा समस्त ससार पुनरुज्जीवित, सशक्त और वीर्यसम्पन्न हो सकता है। समस्त जातियो को, सकल मतो को, भिन्न भिन्न सम्प्र-

हाथ के दुर्बल दुःखी पददलित लोगों को स्वयं अपने पैरों खड़े होकर मुक्त होने के लिए वे उच्च स्वर में उद्घोष कर रहे हैं। मुक्ति अथवा स्वाधीनता—दैहिक स्वाधीनता, मानसिक स्वाधीनता, आध्यात्मिक स्वाधीनता यही उपनिषदों के मूल मंत्र हैं।

संसार भर में ये ही एकमात्र शास्त्र हैं जिनमें उद्धार (salvation) का वर्णन नहीं, किन्तु मुक्ति का वर्णन है। प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो जाओ, दुर्बलता से मुक्त हो जाओ। और उपनिषद् तुमको यह भी बतलाते हैं कि यह मुक्ति तुममें पहले से ही विद्यमान है। उपनिषदों के उपदेश की यह और भी एक विशेषता है। तुम द्वैतवादी हो—कुछ चिन्ता नहीं, किन्तु तुमको यह स्वीकार करना ही होगा कि आत्मा स्वभाव ही से पूर्णस्वरूप है, केवल कितने ही कार्यों के द्वारा यह संकुचित हो गयी है। आधुनिक विकासवादी (evolutionist) जिसको क्रमविकास (evolution) और क्रमसंकोच (atavism) कहते हैं, रामानुज का संकोच और विकास का सिद्धान्त भी ठीक ऐसा ही है। आत्मा स्वाभाविक पूर्णता से भ्रष्ट होकर मानो संकोच को प्राप्त होती है, उसकी शक्ति अव्यक्त भाव धारण करती है, सत्कर्म और अच्छे विचारों द्वारा वह पुनः विकास को प्राप्त होती है और उसी समय उसकी स्वाभाविक पूर्णता प्रकट हो जाती है। अद्वैतवादी के साथ द्वैतवादी का इतना ही मतभेद है कि अद्वैतवादी आत्मा के विकास को नहीं, किन्तु प्रकृति के विकास को स्वीकार करता है। उदाहरणार्थ, एक परदा है और इस परदे में एक छोटा सूराख। मैं इस परदे के भीतर से इस भारी जनसमुदाय को देख रहा हूँ। मैं प्रथम केवल थोड़े से मनुष्यों को देख सकूँगा। मान लो छेद बढ़ने लगा, फिर जितना ही बड़ा होगा उतना ही मैं इन एकत्र व्यक्तियों में से अधिकांश को देख सकूँगा। अन्त में छिद्र बढ़ते बढ़ते परदा और छिद्र एक हो जायँगे, तब इस स्थिति में तुम्हारे और मेरे बीच कुछ भी नहीं रह जायगा। यहाँ तुममें और मुझमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। जो कुछ परिवर्तन हुआ वह परदे में ही हुआ। तुम आरम्भ से अन्त तक एक से थे, केवल परदे में ही परिवर्तन हुआ था। विकास के सम्बन्ध में अद्वैतवादियों का यही मत है—प्रकृति का विकास और आत्मा की आभ्यन्तर अभिव्यक्ति। आत्मा किसी प्रकार भी संकोच को प्राप्त नहीं हो सकती। वह अपरिवर्तनशील और अनन्त है। वह मानो मायारूपी परदे से ढँकी हुई है—जितना ही यह मायारूपी परदा क्षीण होता जाता है, उतनी ही आत्मा की स्वयंसिद्ध स्वाभाविक महिमा अभिव्यक्त होती है और क्रमशः वह अधिकाधिक प्रकाशमान होती है। संसार इसी एक महान् तत्त्व को भारत से सीखने की अपेक्षा कर रहा है। वे चाहे जो कहें या कितना ही अहंकार करने की चेष्टा करें, पर वे क्रमशः दिन प्रतिदिन जान लेंगे

कि विना इस तत्त्व को स्वीकार किये कोई समाज टिक नही सकता। क्या तुम नही देख रहे हो कि समस्त पदार्थों मे कैसा भीपण परिवर्तन हो रहा है? क्या तुम नही जानते कि पहले यह प्रथा थी कि जव तक कोई वस्तु अच्छी कहकर प्रमाणित न हो जाय तव तक उसे निश्चित रूप से बुरी माना जाय? शिक्षाप्रणाली मे, अपराधियो की दण्ड-व्यवस्था मे, पागलो की चिकित्सा मे, यहाँ तक कि साधारण रोग की चिकित्सा पर्यन्त सबमे इसी प्राचीन नियम को लागू किया जाता था। आधुनिक नियम क्या है? आधुनिक नियम के अनुसार शरीर स्वभाव ही से स्वस्थ है, वह अपनी प्रकृति से ही रोगो को दूर करता है। औषधि अधिक से अधिक शरीर मे सार पदार्थों के सचय मे सहायता कर सकती है। अपराधियो के सम्वन्ध मे यह आधुनिक नियम क्या कहता है? आधुनिक नियम यह स्वीकार करता है कि कोई अपराधी, वह कितना ही हीन क्यो न हो, उसमे भी ईश्वरत्व है, जिसका कभी परिवर्तन नही होता है और इसलिए अपराधियो के प्रति हमको तदनुरूप व्यवहार करना चाहिए। अव पहले के ये सव भाव बदल रहे हैं और अव सुधारालय तथा प्रायश्चित्त-गृहो की स्थापना की जा रही है। ऐसा ही सर्वत्र है। जान कर कहो अथवा विना जाने, यह भारतीय भाव कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर ईश्वरत्व वर्तमान है, नाना भावो से व्यक्त हो रहा है। और तुम्हारे शास्त्रो मे ही इसकी व्याख्या है, उनको यह स्वीकार करना पडेगा। मनुष्य के प्रति मनुष्य के व्यवहार मे महान् परिवर्तन हो जायगा और मनुष्य की दुर्बलताओ को वतलानेवाले ये प्राचीन विचार नही रहेगे। इसी शताब्दी मे इन भावो का लोप हो जायगा। इस समय लोग हमारे विरोध मे खडे होकर हमारी आलोचना कर सकते हैं। 'ससार मे पाप नही है', इस घोर पैशाचिक सिद्धान्त के प्रचारक के रूप मे ससार के प्रत्येक भाग मे मेरी आलोचना की गयी है। बहुत अच्छा, किन्तु इस समय जिन्होंने मुझको बुरा भला कहा है, उनके ही वशज मुझको अधर्म का प्रचारक नही, किन्तु धर्म का प्रचारक कहकर आशीर्वाद देंगे। मैं धर्म का प्रचारक हूँ, अधर्म का नही। मैंने अज्ञानान्धकार का प्रचार नही किया, किन्तु ज्ञान प्रकाश के विस्तार की चेष्टा की है, इसे मैं अपना गौरव समझता हूँ।

समग्र ससार का अखण्डत्व, जिसको ग्रहण करने के लिए ससार प्रतीक्षा कर रहा है, हमारे उपनिषदो का दूसरा महान् भाव है। प्राचीन काल की हदबन्दी और पार्थक्य इस समय तेज़ी से कम होते जा रहे हैं। बिजली और भाप की शक्ति, यातायात तथा सचार की सुविधाएँ बढाकर ससार के विभिन्न देशो का परस्पर परिचय करा रही है। इसके फलस्वरूप, हम हिन्दू इस समय अपने देश के अतिरिक्त अन्य सव देशो को केवल भूत-प्रेत, राक्षस, पिशाचो से पूर्ण नही देख रहे हैं और

दास के दुर्बल दुःखी पददलित लोगों को स्वयं अपने पैरों खड़े होकर मुक्त होने के लिए वे उच्च स्वर में उद्घोष कर रहे हैं। मुक्ति अथवा स्वाधीनता—दैहिक स्वाधीनता, मानसिक स्वाधीनता, आध्यात्मिक स्वाधीनता यही उपनिषदों के मूल मंत्र हैं।

संसार भर में ये ही एकमात्र शास्त्र हैं, जिनमें उद्धार (salvation) का वर्णन नहीं, किन्तु मुक्ति का वर्णन है। प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो जाओ, दुर्बलता से मुक्त हो जाओ। और उपनिषद् तुमको यह भी बतलाते हैं कि यह मुक्ति तुममें पहले से ही विद्यमान है। उपनिषदों के उपदेश की यह और भी एक विशेषता है। तुम द्वैतवादी हो—कुछ चिन्ता नहीं, किन्तु तुमको यह स्वीकार करना ही होगा कि आत्मा स्वभाव ही से पूर्णस्वरूप है, केवल कितने ही कार्यों के द्वारा वह संकुचित हो गयी है। आधुनिक विकासवादी (evolutionist) जिसको क्रमविकास (evolution) और क्रमसंकोच (atavism) कहते हैं, रामानुज का संकोच और विकास का सिद्धान्त भी ठीक ऐसा ही है। आत्मा स्वाभाविक पूर्णता से भ्रष्ट होकर मानो संकोच को प्राप्त होती है, उसकी शक्ति अव्यक्त भाव धारण करती है, सत्कर्म और अच्छे विचारों द्वारा वह पुनः विकास को प्राप्त होती है और उसी समय उसकी स्वाभाविक पूर्णता प्रकट हो जाती है। अद्वैतवादी के साथ द्वैतवादी का इतना ही मतभेद है कि अद्वैतवादी आत्मा के विकास को नहीं, किन्तु प्रकृति के विकास को स्वीकार करता है। उदाहरणार्थ, एक परदा है और इस परदे में एक छोटा सूराख। मैं इस परदे के भीतर से इस भारी जनसमुदाय को देख रहा हूँ। मैं प्रथम केवल थोड़े से मनुष्यों को देख सकूँगा। मान लो छेद बढ़ने लगा, छिद्र जितना ही बड़ा होगा, उतना ही मैं इन एकत्र व्यक्तियों में से अधिकांश को देख सकूँगा। अन्त में छिद्र बढ़ते बढ़ते परदा और छिद्र एक हो जायँगे, तब इस स्थिति में तुम्हारे और मेरे बीच कुछ भी नहीं रह जायगा। यहाँ तुममें और मुझमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। जो कुछ परिवर्तन हुआ, वह परदे में ही हुआ। तुम आरम्भ से अन्त तक एक से थे, केवल परदे में ही परिवर्तन हुआ था। विकास के सम्बन्ध में अद्वैतवादियों का यही मत है—प्रकृति का विकास और आत्मा की आभ्यन्तर अभिव्यक्ति। आत्मा किसी प्रकार भी संकोच को प्राप्त नहीं हो सकती। वह अपरिवर्तनीय और अनन्त है। वह मानो मायारूपी परदे से ढँकी हुई है—जितना ही यह मायारूपी परदा क्षीण होता जाता है, उतनी ही आत्मा की स्वयंसिद्ध स्वाभाविक महिमा अभिव्यक्त होती है और क्रमशः वह अधिकाधिक प्रकाशमान होती है। संसार इसी एक महान् तत्त्व को भारत से सीखने की अपेक्षा कर रहा है। वे चाहे जो कहें, वे कितना ही अहंकार करने की चेष्टा करें, पर वे क्रमशः दिन प्रतिदिन जान लेंगे

कि विना इस तत्त्व को स्वीकार किये कोई समाज टिक नही सकता। क्या तुम नही देख रहे हो कि समस्त पदार्थों मे कैसा भीषण परिवर्तन हो रहा है? क्या तुम नही जानते कि पहले यह प्रथा थी कि जब तक कोई वस्तु अच्छी कहकर प्रमाणित न हो जाय तब तक उसे निश्चित रूप से बुरी माना जाय? शिक्षाप्रणाली मे, अपराधियो की दण्ड-व्यवस्था मे, पागलो की चिकित्सा मे, यहाँ तक कि साधारण रोग की चिकित्सा पर्यन्त सबमे इसी प्राचीन नियम को लागू किया जाता था। आधुनिक नियम क्या है? आधुनिक नियम के अनुसार शरीर स्वभाव ही से स्वस्थ है, वह अपनी प्रकृति मे ही रोगो को दूर करता है। औषधि अधिक से अधिक शरीर मे सार पदार्थों के सचय मे सहायता कर सकती है। अपराधियो के सम्बन्ध मे यह आधुनिक नियम क्या कहता है? आधुनिक नियम यह स्वीकार करता है कि कोई अपराधी, वह कितना ही हीन क्यो न हो, उसमे भी ईश्वरत्व है, जिसका कभी परिवर्तन नही होता है और इसलिए अपराधियो के प्रति हमको तदनुरूप व्यवहार करना चाहिए। अब पहले के ये सब भाव बदल रहे हैं और अब सुधारालय तथा प्रायश्चित्त-गृहो की स्थापना की जा रही है। ऐसा ही सर्वत्र है। जान कर कहो अथवा विना जाने, यह भारतीय भाव कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर ईश्वरत्व वर्तमान है, नाना भावो से व्यक्त हो रहा है। और तुम्हारे शास्त्रो मे ही इसकी व्याख्या है, उनको यह स्वीकार करना पडेगा। मनुष्य के प्रति मनुष्य के व्यवहार मे महान् परिवर्तन हो जायगा और मनुष्य की दुर्बलताओ को बतलानेवाले ये प्राचीन विचार नही रहेगे। इसी शताब्दी मे इन भावो का लोप हो जायगा। इस समय लोग हमारे विरोध मे खडे होकर हमारी आलोचना कर सकते हैं। 'ससार मे पाप नही है', इस घोर पैशाचिक सिद्धान्त के प्रचारक के रूप मे ससार के प्रत्येक भाग मे मेरी आलोचना की गयी है। बहुत अच्छा, किन्तु इस समय जिन्होने मुझको बुरा भला कहा है, उनके ही वशज मुझको अधर्म का प्रचारक नही, किन्तु धर्म का प्रचारक कहकर आशीर्वाद देंगे। मैं धर्म का प्रचारक हूँ, अधर्म का नही। मैंने अज्ञानान्धकार का प्रचार नही किया, किन्तु ज्ञान प्रकाश के विस्तार की चेष्टा की है, इसे मैं अपना गौरव समझता हूँ।

समग्र ससार का अखण्डत्व, जिसको ग्रहण करने के लिए ससार प्रतीक्षा कर रहा है, हमारे उपनिषदो का दूसरा महान् भाव है। प्राचीन काल की हदबन्दी और पार्थक्य इस समय तेजी से कम होते जा रहे हैं। बिजली और भाप की शक्ति, यातायात तथा सचार की सुविधाएँ बढाकर ससार के विभिन्न देशो का परस्पर परिचय करा रही है। इसके फलस्वरूप, हम हिन्दू इस समय अपने देश के अतिरिक्त अन्य सब देशो को केवल भूत-प्रेत, राक्षस, पिशाचो से पूर्ण नही देख रहे हैं और

ईसाई धर्म-प्रधान देशों के लोग भी नहीं कहते कि भारत में केवल नरमांसभोजी और असभ्य लोग रहते हैं। अपने देश से बाहर जाकर हम देखते हैं कि वही बन्धु मानव सहायता के लिए अपना वही शक्तिशाली हाथ बढ़ा रहा है और वही मुख से उत्साहित कर रहा है। जिस देश में हमने जन्म लिया है उसकी अपेक्षा कभी कभी अन्य देशों में अधिक अच्छे लोग मिल जाते हैं। जब वे यहाँ आते हैं वे भी यहाँ वैसा ही भ्रातृभाव उत्साह और सहानुभूति पाते हैं। हमारे उपनिषदों ने ठीक ही कहा है, अज्ञान ही सर्व प्रकार के दुःखों का कारण है। सामाजिक अथवा आध्यात्मिक अपने जीवन को चाहे जिस अवस्था में देखो यह बिल्कुल सही उतरता है। अज्ञान से ही हम परस्पर घृणा करते हैं अज्ञान से ही हम एक दूसरे को जानते नहीं और इसीलिए प्यार नहीं करते। जब हम एक दूसरे को जान लेंगे प्रेम का उदय होगा। प्रेम का उदय निश्चित है क्योंकि क्या हम सब एक नहीं हैं? इसलिए हम देखते हैं कि चेष्टा न करने पर भी हम सबका एकत्वभाव स्वभाव ही से आ जाता है। यहाँ तक कि राजनीति और समाजनीति के क्षेत्रों में भी जो समस्याएँ बीस वर्ष पहले केवल राष्ट्रीय थीं इस समय उनकी मीमांसा केवल राष्ट्रीयता के आधार पर ही नहीं की जा सकती। उक्त समस्याएँ क्रमशः कठिन हो रही हैं और विशाल आकार धारण कर रही हैं। केवल अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर उदार दृष्टि से विचार करने पर ही उनको हल किया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन अन्तर्राष्ट्रीय संघ अन्तर्राष्ट्रीय विधान ये ही आजकल के मूलमन्त्रस्वरूप हैं। सब लोगों के भीतर एकत्वभाव किस प्रकार विस्तृत हो रहा है यही उसका प्रमाण है। विज्ञान में भी जड़ तत्त्व के सम्बन्ध में ऐसे ही सार्वभौम भाव ही इस समय आविष्कृत हो रहे हैं। इस समय तुम समस्त जड़ वस्तु को समस्त संसार को एक अखण्ड वस्तुरूप मे वृहत् जड़-समुद्र सा वर्णन करते हो जिसमें तुम मैं चन्द्र सूर्य और शेष सब कुछ इसी विभिन्न क्षुद्र भँवर मात्र है, और कुछ नहीं। मानसिक दृष्टि से देखने पर वह एक अनन्त विचार-समुद्र प्रतीत होता है तुम और मैं उस विचार-समुद्र के अत्यन्त छोटे छोटे भँवरों के सदृश हैं। आत्मपरक दृष्टि से देखने पर समग्र जगत् एक अचल अपरिवर्तनशील सत्ता अर्थात् आत्मा प्रतीत होता है। नैतिकता का स्वर भी आ रहा है और वह भी हमारे ग्रन्थों में विद्यमान है। नैतिकता की व्याख्या और आचार-शास्त्र के मूल स्रोत के लिए भी संसार व्याकुल है यह भी हमारे शास्त्रों से ही मिलेगा।

हम भारत में क्या चाहते हैं? यदि विदेशियों को इन पदार्थों की आवश्यकता है तो हमको इनकी आवश्यकता बीस गुना अधिक है। क्योंकि हमारे उपनिषद् कितने ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हों, अन्यान्य जातियों के साथ तुलना में हम अपने

पूर्वपुरुष ऋषिगणों पर कितना ही गर्व क्यों न करें, मैं तुम लोगो से स्पष्ट भाषा मे कहे देता हूँ कि हम दुर्बल है, अत्यन्त दुर्बल है। प्रथम तो है हमारी शारीरिक दुर्बलता। यह शारीरिक दुर्बलता कम से कम हमारे एक तिहाई दुःखो का कारण है। हम आलसी हैं, हम कार्य नही कर सकते, हम पारस्परिक एकता स्थापित नही कर सकते, हम एक दूसरे से प्रेम नही करते, हम बडे स्वार्थी है, हम तीन मनुष्य एकत्र होते ही एक दूसरे से घृणा करते है, ईर्ष्या करते हैं। हमारी इस समय ऐसी अवस्था है कि हम पूर्ण रूप से असगठित है, घोर स्वार्थी हो गये है, सैकडो शताब्दियो से इसीलिए झगडते है कि तिलक इस तरह धारण करना चाहिए या उस तरह। अमुक व्यक्ति की नजर पडने से हमारा भोजन दूषित होगा या नही, ऐसी गुरुतर समस्याओ के ऊपर हम बडे बडे ग्रन्थ लिखते हैं। पिछली कई शताब्दियो मे हमारा यही कारनामा रहा है। जिस जाति के मस्तिष्क की समस्त शक्ति ऐसी अपूर्व सुन्दर समस्याओ और गवेषणाओ मे लगी है, उससे किसी उच्च कोटि की सफलता की क्या आशा की जाय ! और क्या हमको अपने पर शर्म भी नही आती ? हाँ, कभी कभी शर्मिन्दा होते भी है। यद्यपि हम उनकी निस्सारता को समझते है, पर उनका परित्याग नही कर पाते। हम अनेक बातें सोचते हैं, किन्तु उनके अनुसार कार्य नही कर सकते। इस प्रकार तोते के समान बातें करना हमारा अभ्यास हो गया है—आचरण मे हम बहुत पिछडे हुए हैं। इसका कारण क्या है ? शारीरिक दौर्बल्य। दुर्बल मस्तिष्क कुछ नही कर सकता, हमको अपने मस्तिष्क को बलवान बनाना होगा। प्रथम तो हमारे युवको को बलवान बनना होगा। धर्म पीछे आयेगा। हे मेरे युवक बन्धु, तुम बलवान बनो—यही तुम्हारे लिए मेरा उपदेश है। गीता-पाठ करने की अपेक्षा तुम्हे फुटबाल खेलने से स्वर्ग-सुख अधिक सुलभ होगा। मैंने अत्यन्त साहसपूर्वक ये बाते कही हैं, और इनको कहना अत्यावश्यक है, कारण मैं तुमको प्यार करता हूँ। मैं जानता हूँ कि ककड कहाँ चुभता है। मैंने कुछ अनुभव प्राप्त किया है। बलवान शरीर से अथवा मजबूत पुट्ठो से तुम गीता को अधिक समझ सकोगे। शरीर मे ताजा रक्त होने से तुम कृष्ण की महती प्रतिभा और महान् तेजस्विता को अच्छी तरह समझ सकोगे। जिस समय तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरो के बल दृढ भाव से खडा होगा, जब तुम अपने को मनुष्य समझोगे, तब तुम उपनिषद् और आत्मा की महिमा भली भाँति समझोगे। इस तरह वेदान्त को अपनी आवश्यकताओ के अनुसार काम मे लगाना होगा।

लोग मेरे अद्वैतवाद के प्रचार से बहुधा विरक्त हो जाते हैं। अद्वैतवाद, द्वैतवाद अथवा अन्य किसी वाद का प्रचार करना मेरा उद्देश्य नही है। हमे इस समय आवश्यकता है केवल आत्मा की—उसके अपूर्व तत्त्व, उसकी अनन्त शक्ति,

ईसाई धर्म-प्रधान देशों के लोग भी नहीं कहते कि भारत में केवल नरमांसभोजी और असभ्य लोग रहते हैं। अपने देश से बाहर जाकर हम देखते हैं कि वहीं बन्धु मानव सहायता के लिए अपना वही शक्तिशाली हाथ बढ़ा रहा है और उसी शुभ से उत्साहित कर रहा है। जिस देश में हमने जन्म लिया है उसकी अपेक्षा कभी कभी अन्य देशों में अधिक अच्छे लोग मिल जाते हैं। जब वे यहाँ आते हैं, वे भी यहाँ वैसा ही भ्रातृभाव उत्साह और सहानुभूति पाते हैं। हमारे उपनिषदों में ठीक ही कहा है अज्ञान ही सर्व प्रकार के दुःखों का कारण है। सामाजिक अथवा आध्यात्मिक अपने जीवन को चाहे जिस अवस्था में देखो यह बिल्कुल सही उतरता है। अज्ञान से ही हम परस्पर घृणा करते हैं, अज्ञान से ही हम एक दूसरे को जानते नहीं और इसीलिए प्यार नहीं करते। जब हम एक दूसरे को जान लेंगे प्रेम का उदय होगा। प्रेम का उदय निश्चित है क्योंकि क्या हम सब एक नहीं हैं? इसलिए हम देखते हैं कि चेष्टा न करने पर भी हम सबका एकत्वभाव स्वभाव ही से आ जाता है। यहाँ तक कि राजनीति और समाजनीति के क्षेत्रों में भी जो समस्याएँ बीस वर्ष पहले केवल राष्ट्रीय थीं इस समय उनकी मीमांसा केवल राष्ट्रीयता के आधार पर ही नहीं की जा सकती। उक्त समस्याएँ क्रमशः कठिन हो रही हैं और विशाल आकार धारण कर रही हैं। केवल अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर उदार दृष्टि से विचार करने पर ही उनको हल किया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन अन्तर्राष्ट्रीय संघ अन्तर्राष्ट्रीय विधान ये ही आजकल के मूलमन्त्रस्वरूप हैं। सब लोगों के भीतर एकत्वभाव किस प्रकार विस्तृत हो रहा है यही उसका प्रमाण है। विज्ञान में भी जड़ तत्त्व के सम्बन्ध में ऐसे ही सार्वभौम भाव ही इस समय आविष्कृत हो रहे हैं। इस समय तुम समग्र जड़ वस्तु को समस्त संसार को एक अखण्ड वस्तुरूप में वृहत् जड़-समुद्र का वर्णन करते हो जिसमें तुम मैं चन्द्र सूर्य और शेष सब कुछ उसी विभिन्न क्षुद्र भँवर मात्र हैं, और कुछ नहीं। मानसिक दृष्टि से देखने पर वह एक अनन्त विचार-समुद्र प्रतीत होगा है तुम और मैं उस विचार-समुद्र के अत्यन्त छोटे छोटे भँवरों के सदृश हैं। आत्मपरक दृष्टि से देखने पर समग्र जगत् एक अचल अपरिवर्तनशील सत्ता अर्थात् आत्मा प्रतीत होता है। नैतिकता का स्वर भी आ रहा है और वह भी हमारे ग्रन्थों में विद्यमान है। नैतिकता की व्याख्या और आचार-शास्त्र के मूल स्रोत के लिए भी संसार व्याकुल है यह भी हमारे शास्त्रों से ही मिलेगा।

हम भारत में क्या चाहते हैं? यदि विदेशियों को इन पदार्थों की आवश्यकता है तो हमको इनकी आवश्यकता बीस गुना अधिक है। क्योंकि हमारे उपनिषद् कितने ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हों अन्यान्य जातियों के साथ तुलना में हम अपने

पूर्वपुरुष ऋषिगणो पर कितना ही गर्व क्यो न करे, मैं तुम लोगो से स्पष्ट भाषा मे कहे देता हूँ कि हम दुर्बल हैं, अत्यन्त दुर्बल हैं। प्रथम तो है हमारी शारीरिक दुर्बलता। यह शारीरिक दुर्बलता कम से कम हमारे एक तिहाई दुःखो का कारण है। हम आलसी हैं, हम कार्य नही कर सकते, हम पारस्परिक एकता स्थापित नही कर सकते, हम एक दूसरे से प्रेम नही करते, हम बडे स्वार्थी हैं, हम तीन मनुष्य एकत्र होते ही एक दूसरे से घृणा करते है, ईर्ष्या करते है। हमारी इस समय ऐसी अवस्था है कि हम पूर्ण रूप से असगठित हैं, घोर स्वार्थी हो गये हैं, सैकडो शताब्दियो से इसीलिए झगडते हैं कि तिलक इस तरह धारण करना चाहिए या उस तरह। अमुक व्यक्ति की नज़र पडने से हमारा भोजन दूषित होगा या नही, ऐसी गुरुतर समस्याओ के ऊपर हम बडे बडे ग्रन्थ लिखते हैं। पिछली कई शताब्दियो से हमारा यही कारनामा रहा है। जिस जाति के मस्तिष्क की समस्त शक्ति ऐसी अपूर्व सुन्दर समस्याओ और गवेषणाओ मे लगी है, उससे किसी उच्च कोटि की सफलता की क्या आशा की जाय ! और क्या हमको अपने पर शर्म भी नही आती ? हाँ, कभी कभी शर्मिन्दा होते भी हैं। यद्यपि हम उनकी निस्सारता को समझते हैं, पर उनका परित्याग नही कर पाते। हम अनेक बातें सोचते है, किन्तु उनके अनुसार कार्य नही कर सकते। इस प्रकार तोते के समान बातें करना हमारा अभ्यास हो गया है—आचरण मे हम बहुत पिछडे हुए हैं। इसका कारण क्या है ? शारीरिक दौर्बल्य। दुर्बल मस्तिष्क कुछ नही कर सकता, हमको अपने मस्तिष्क को बलवान बनाना होगा। प्रथम तो हमारे युवको को बलवान बनना होगा। धर्म पीछे आयेगा। हे मेरे युवक बन्धु, तुम बलवान बनो—यही तुम्हारे लिए मेरा उपदेश है। गीता-पाठ करने की अपेक्षा तुम्हे फुटबाल खेलने से स्वर्ग-सुख अधिक सुलभ होगा। मैंने अत्यन्त साहसपूर्वक ये बाते कही हैं, और इनको कहना अत्यावश्यक है, कारण मैं तुमको प्यार करता हूँ। मैं जानता हूँ कि ककड कहाँ चुभता है। मैंने कुछ अनुभव प्राप्त किया है। बलवान शरीर से अथवा मज़बूत पुट्ठो से तुम गीता को अधिक समझ सकोगे। शरीर मे ताज़ा रक्त होने से तुम कृष्ण की महती प्रतिभा और महान् तेजस्विता को अच्छी तरह समझ सकोगे। जिस समय तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरो के बल दृढ़ भाव से खडा होगा, जब तुम अपने को मनुष्य समझोगे, तब तुम उपनिषद् और आत्मा की महिमा भली भाँति समझोगे। इस तरह वेदान्त को अपनी आवश्यकताओ के अनुसार काम मे लगाना होगा।

लोग मेरे अद्वैतवाद के प्रचार से बहुधा विरक्त हो जाते हैं। अद्वैतवाद, द्वैतवाद अथवा अन्य किसी वाद का प्रचार करना मेरा उद्देश्य नही है। हमे इस समय आवश्यकता है केवल आत्मा की—उसके अपूर्व तत्त्व, उसकी अनन्त शक्ति,

अनन्त वीर्य, अनन्त शुद्धता और अनन्त पूर्णता के तत्त्व को जानने की। यदि मेरे कोई सन्तान होती तो मैं उसे जन्म के समय से ही सुनाता 'त्वमसि निरंजन'। तुमने अवश्य ही पुराण में रानी मदालसा की वह सुन्दर कहानी पढ़ी होगी। उसके सन्तान होते ही वह उसको अपने हाथ से झूले पर रखकर झुलाते हुए उसके निकट गाती थी, 'तुम हो मेरे लाल निरंजन अतिपावन निष्पाप, तुम हो सर्वशक्तिशाली तेरा है अमित प्रताप।' इस कहानी में महान् सत्य छिपा हुआ है। अपने को महान् समझो और तुम सचमुच महान् हो जाओगे। सभी लोग पूछते हैं, आपने समस्त संसार में भ्रमण करके क्या अनुभव प्राप्त किया? अंग्रेज लोग पापियों की बातें करते हैं, पर वास्तव में यदि सभी अंग्रेज अपने को पापी समझते तो वे अफ्रीका के मध्य भाग के रहनेवाले हब्शी जैसे हो जाते। ईश्वर की कृपा से इस बात पर वे विश्वास नहीं करते। इसके विपरीत अंग्रेज तो यह विश्वास करता है कि संसार के अधीश्वर होकर उसने जन्म धारण किया है। वह अपनी श्रेष्ठता पर पूरा विश्वास रखता है। उसकी धारणा है कि वह सब कुछ कर सकता है, इच्छा होने पर सूर्य लोक और चन्द्रलोक की भी सैर कर सकता है। इसी इच्छा के बल से वह बड़ा हुआ है। यदि वह अपने पुरोहितों के इन वाक्यों पर कि मनुष्य क्षुद्र है, हतभाग्य और पापी है, अनन्तकाल तक वह नरकाग्नि में दग्ध होगा, विश्वास करता तो वह आज वही अंग्रेज न होता जैसा वह आज है। यही बात मैं प्रत्येक जाति के भीतर देखता हूँ। उनके पुरोहित लोग चाहे जो कुछ कहें और वे कितने ही कुसंस्कारपूर्ण क्यों न हों, किन्तु उनके अभ्यन्तर का ब्रह्मभाव लुप्त नहीं होता, उसका विकास अवश्य होता है। हम श्रद्धा खो बैठे हैं। क्या तुम मेरे इस कथन पर विश्वास करोगे कि हम अंग्रेजों की अपेक्षा कम आत्मश्रद्धा रखते हैं—सहस्रगुना कम आत्मश्रद्धा रखते हैं? मैं साफ-साफ कह रहा हूँ। बिना कहे दूसरा उपाय भी मैं नहीं देखता। तुम देखते नहीं?—अंग्रेज जब हमारे धर्मतत्त्व को कुछ कुछ समझने लगते हैं तब वे मानो उसीको लेकर उन्मत्त हो जाते हैं। यद्यपि वे शासक हैं, तथापि अपने देशवासियों की हँसी और उपहास की उपेक्षा करके भारत में हमारे ही धर्म का प्रचार करने के लिए वे आते हैं। तुम लोगों में से कितने ऐसे हैं जो ऐसा काम कर सकते हैं? तुम क्यों ऐसा नहीं कर सकते? क्या तुम जानते नहीं इसलिए नहीं कर सकते? उनकी अपेक्षा तुम अधिक ही जानते हो। इसीसे तो ज्ञान के अनुसार तुम काम नहीं कर सकते। जितना जानने से कल्याण होगा उससे तुम ज्यादा जानते हो, यही आफत है। तुम्हारा रक्त पानी जैसा हो गया है, मस्तिष्क मुर्दार और शरीर दुर्बल! इस शरीर को बदलना होगा। शारीरिक दुर्बलता ही सब अनिष्टों की जड़ है और कुछ नहीं। गत कई सदियों से तुम

नाना प्रकार के सुधार, आदर्श आदि की बाते कर रहे हो और जब काम करने का समय आता है तब तुम्हारा पता ही नही मिलता। अत तुम्हारे आचरणो से सारा ससार क्रमश हताश हो रहा है और समाज-सुधार का नाम तक समस्त ससार के उपहास की वस्तु हो गयी है! इसका कारण क्या है? क्या तुम जानते नही हो? तुम अच्छी तरह जानते हो। ज्ञान की कमी तो तुम मे है ही नही! सब अनर्थों का मूल कारण यही है कि तुम दुर्बल हो, अत्यन्त दुर्बल हो, तुम्हारा शरीर दुर्बल है, मन दुर्बल है, और अपने पर आत्मश्रद्धा भी बिल्कुल नही है। सैकडो सदियो से ऊँची जातियो, राजाओ और विदेशियो ने तुम्हारे ऊपर अत्याचार करके, तुमको चकनाचूर कर डाला है। भाइयो! तुम्हारे ही स्वजनो ने तुम्हारा सब बल हर लिया है। तुम इस समय मेरुदण्डहीन और पददलित कीडो के समान हो। इस समय तुमको शक्ति कौन देगा? मैं तुमसे कहता हूँ, इसी समय हमको बल और वीर्य की आवश्यकता है। इस शक्ति को प्राप्त करने का पहला उपाय है—उपनिषदो पर विश्वास करना और यह विश्वास करना कि 'मैं आत्मा हूँ।' 'मुझे न तो तलवार काट सकती है, न बरछी छेद सकती है, न आग जला सकती है और न हवा सुखा सकती है, मैं सर्वशक्तिमान हूँ, सर्वज्ञ हूँ।''[1] इन आशाप्रद और परित्राणपद वाक्यो का सर्वदा उच्चारण करो। मत कहो—हम दुर्बल हैं। हम सब कुछ कर सकते हैं। हम क्या नही कर सकते? हमसे सब कुछ हो सकता है। हम सबके भीतर एक ही महिमामय आत्मा है। हमें इस पर विश्वास करना होगा। नचिकेता के समान श्रद्धाशील बनो। नचिकेता के पिता ने जब यज्ञ किया था, उसी समय नचिकेता के भीतर श्रद्धा का प्रवेश हुआ। मेरी इच्छा है—तुम लोगो के भीतर इसी श्रद्धा का आविर्भाव हो, तुममे से हर एक आदमी खडा होकर इशारे से ससार को हिला देनेवाला प्रतिभासम्पन्न महापुरुष हो, हर प्रकार से अनन्त ईश्वरतुल्य हो। मैं तुम लोगो को ऐसा ही देखना चाहता हूँ। उपनिषदो से तुमको ऐसी ही शक्ति प्राप्त होगी और वहीं से तुमको ऐसा विश्वास प्राप्त होगा।

प्राचीन काल मे केवल अरण्यवासी सन्यासी ही उपनिषदों की चर्चा करते थे। वे रहस्य के विषय बन गये थे। उपनिषद् सन्यासियो तक ही सीमित थे। शकर ने कुछ सदय हो कहा है, 'गृही मनुष्य भी उपनिषदो का अध्ययन कर सकते हैं, इससे उनका कल्याण ही होगा, कोई अनिष्ट न होगा।' परन्तु अभी तक यह सस्कार कि उपनिषदो मे वन, जगल अथवा एकान्तवास का ही वर्णन है, मनुष्यो के मन से

---

१ नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावक ।
न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत ॥गीता।२।२३॥

नहीं हुआ। मैंने तुम लोगों से उस दिन कहा था कि जो स्वयं वेदों के प्रकाशक हैं उन्हीं श्री कृष्ण के द्वारा वेदों की एकमात्र प्रामाणिक टीका गीता एक ही बार चिर काल के लिए बनी है यह सबके लिए और जीवन की सभी अवस्थाओं के लिए उपयोगी है। तुम कोई भी काम करो तुम्हारे लिए वेदान्त की आवश्यकता है। वेदान्त के इन सब महान् तत्त्वों का प्रचार आवश्यक है ये केवल अरण्य में अथवा गिरिगुहाओं में आबद्ध नहीं रहेंगे वकीलों और न्यायाधीशों में प्रार्थना-मन्दिरों में दरिद्रों की कुटियों में मछुओं के घरों में छात्रों के अध्ययन-स्थानों में—सर्वत्र ही इन तत्त्वों की चर्चा होगी और ये काम में लाये जायँगे। हर एक व्यक्ति हर एक सन्तान चाहे जो काम करे, चाहे जिस अवस्था में हो—उनकी पुकार सबके लिए है। भय का अब कोई कारण नहीं है। उपनिषदों के सिद्धान्तों को मछुए आदि साधारण जन किस प्रकार काम में लायेंगे? इसका उपाय शास्त्रों में बताया गया है। मार्ग अनन्त है, धर्म अनन्त है, कोई इसकी सीमा के बाहर नहीं जा सकता। तुम निष्कपट भाव से जो कुछ करते हो तुम्हारे लिए वही अच्छा है। अत्यन्त छोटा कर्म भी यदि अच्छे भाव से किया जाय तो उससे अद्भुत फल की प्राप्ति होती है। अतएव जो जहाँ तक अच्छे भाव से काम कर सके, करे। मछुआ यदि अपने को आत्मा समझकर चिन्तन करे, तो वह एक उत्तम मछुआ होगा। विद्यार्थी यदि अपने को आत्मा विचारे, तो वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी होगा। वकील यदि अपने को आत्मा समझे तो वह एक अच्छा वकील होगा। औरों के विषय में भी यही समझो। इसका फल यह होगा कि जातिविभाग अनन्त काल तक रह जायगा क्योंकि विभिन्न श्रेणियों में विभक्त होना ही समाज का स्वभाव है। पर रहेगा क्या नहीं? विशेष अधिकारों का अस्तित्व न रह जायगा। जातिविभाग प्राकृतिक नियम है। सामाजिक जीवन में एक विशेष काम मैं कर सकता हूँ तो दूसरा काम तुम कर सकते हो। तुम एक देश का शासन कर सकते हो तो मैं एक पुराने जूते की मरम्मत कर सकता हूँ किन्तु इस कारण तुम मुझसे बड़े नहीं हो सकते। क्या तुम मेरे जूते की मरम्मत कर सकते हो? मैं क्या देश का शासन कर सकता हूँ? यह कार्यविभाग स्वाभाविक है। मैं जूते की सिलाई करने में चतुर हूँ तुम वेदपाठ में निपुण हो। यह कोई कारण नहीं कि तुम इस विशेषता के लिए मेरे सिर पर पाँव रखो। तुम यदि हत्या भी करो तो तुम्हारी प्रशंसा और मुझे एक सेब चुराने पर ही फाँसी पर लटकना हो ऐसा नहीं हो सकता। इसको समाप्त करना ही होगा। जातिविभाग अच्छा है। जीवन-समस्या के समाधान के लिए यही एकमात्र स्वाभाविक उपाय है। मनुष्य अलग अलग वर्गों में विभक्त होंगे यह अनिवार्य है। तुम जहाँ भी जाओ जातिविभाग से छुटकारा न मिलेगा किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इस प्रकार

का विशेषाधिकार भी रहेगा। इनको जड से उखाड फेंकना होगा। यदि मछुआ को तुम वेदान्त सिखलाओगे तो वह कहेगा, हम और तुम दोनो बराबर हैं। तुम दार्शनिक हो, मैं मछुआ, पर इससे क्या? तुम्हारे भीतर जो ईश्वर है, वही मुझमे भी है। हम यही चाहते हैं कि किसीको कोई विशेष अधिकार प्राप्त न हो, और प्रत्येक मनुष्य की उन्नति के लिए समान सुभीते हो। सब लोगो को उनके भीतर स्थित ब्रह्मतत्त्व सम्बन्धी शिक्षा दो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मुक्ति के लिए स्वय चेष्टा करेगा।

उन्नति के लिए सबसे पहले स्वाधीनता की आवश्यकता है। यदि तुम लोगो मे से कोई यह कहने का साहस करे कि मैं अमुक स्त्री अथवा अमुक लडके की मुक्ति के लिए काम करूँगा, तो यह गलत है, हज़ार बार गलत होगा। मुझसे बार-बार यह पूछा जाता है कि विधवाओ की समस्या के बारे मे और स्त्रियो के प्रश्न के विषय मे आप क्या सोचते हैं? मैं इस प्रश्न का अन्तिम उत्तर यह देता हूँ—क्या मैं विधवा हूँ, जो तुम ऐसा निरर्थक प्रश्न मुझसे पूछते हो? क्या मैं स्त्री हूँ, जो तुम बारबार मुझसे यही प्रश्न करते हो? स्त्री जाति के प्रश्न को हल करने के लिए आगे बढनेवाले तुम हो कौन? क्या तुम हर एक विधवा और हर एक स्त्री के भाग्यविधाता भगवान् हो? दूर रहो! अपनी समस्याओ का समाधान वे स्वय कर लेंगी। अरे अत्याचारियो, क्या तुम समझते हो कि तुम सबके लिए सब कुछ कर सकते हो? हट जाओ, दूर रहो! ईश्वर सबकी चिन्ता करेंगे। अपने को सर्वज्ञ समझनेवाले तुम हो कौन? नास्तिको, तुम यह सोचने का दुस्साहस कैसे करते हो कि तुम्हारा ईश्वर पर अधिकार है? क्या तुम जानते नही कि प्रत्येक आत्मा ईश्वर ही का स्वरूप है? तुम अपना ही कर्म करो, तुम्हारे लिए तुम्हारे सिर पर बहुत से कर्मों का भार है। नास्तिको! तुम्हारी जाति तुमको आसमान पर चढा दे, तुम्हारा समाज तुम्हारी प्रशसा के पुल बाँध दे, मूर्ख लोग तुम्हारी तारीफ करें, किन्तु ईश्वर सो नही रहे हैं, इस लोक मे या परलोक मे इसका दण्ड तुम्हें अवश्य मिलेगा।

अतएव हर एक स्त्री को, हर एक पुरुष को और सभी को ईश्वर के ही समान देखो। तुम किसी की सहायता नही कर सकते, तुम्हे केवल सेवा करने का अधिकार है। प्रभु की सन्तान की, यदि भाग्यवान हो तो, स्वय प्रभु की ही सेवा करो। यदि ईश्वर के अनुग्रह से उसकी किसी सन्तान की सेवा कर सकोगे, तो तुम धन्य हो जाओगे, अपने ही को बहुत बडा मत समझो। तुम धन्य हो, क्योंकि सेवा करने का तुमको अधिकार मिला और दूसरो को नही मिला। केवल ईश्वर-पूजा के भाव से सेवा करो [illegible] व्यक्तियो मे हमको भगवान् को देखना चाहिए, अपनी

नहीं हटा। मैंने तुम लोगों से उस दिन कहा था कि जो स्वयं वेदों के प्रकाशक हैं, उन्हीं श्री कृष्ण के द्वारा वेदों की एकमात्र प्रामाणिक टीका गीता एक ही बार चिर काल के लिए बनी है, यह सबके लिए और जीवन की सभी अवस्थाओं के लिए उपयोगी है। तुम कोई भी काम करो, तुम्हारे लिए वेदान्त की आवश्यकता है। वेदान्त के इन सब महान् तत्त्वों का प्रचार आवश्यक है, ये केवल अरण्य में अथवा गिरिगुहाओं में आबद्ध नहीं रहेंगे, वकीलों और न्यायाधीशों में, प्रार्थना-मन्दिरों में, दरिद्रों की कुटियों में, मछुओं के घरों में, छात्रों के अध्ययन-स्थानों में—सर्वत्र ही इन तत्त्वों की चर्चा होगी और ये काम में लाये जायेंगे। हर एक व्यक्ति, हर एक सन्तान चाहे जो काम करे, चाहे जिस अवस्था में हो—उनकी पुकार सबके लिए है। भय का अब कोई कारण नहीं है। उपनिषदों के सिद्धान्तों को मछुए आदि साधारण जन किस प्रकार काम में लायेंगे? इसका उपाय शास्त्रों में बताया गया है। मार्ग अनन्त है, धर्म अनन्त है, कोई इसकी सीमा के बाहर नहीं जा सकता। तुम निष्कपट भाव से जो कुछ करते हो तुम्हारे लिए वही अच्छा है। अत्यन्त छोटा कर्म भी यदि अच्छे भाव से किया जाय, तो उससे अद्भुत फल की प्राप्ति होती है। अतएव जो जहाँ तक अच्छे भाव से काम कर सके, करे। मछुआ यदि अपने को आत्मा समझकर चिन्तन करे, तो वह एक उत्तम मछुआ होगा। विद्यार्थी यदि अपने को आत्मा विचारे, तो वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी होगा। वकील यदि अपने को आत्मा समझे, तो वह एक अच्छा वकील होगा। औरों के विषय में भी यही समझो। इसका फल यह होगा कि जातिविभाग अनन्त काल तक रह जायगा, क्योंकि विभिन्न श्रेणियों में विभक्त होना ही समाज का स्वभाव है। पर रहेगा क्या नहीं? विशेष अधिकारों का अस्तित्व न रह जायगा। जातिविभाग प्राकृतिक नियम है। सामाजिक जीवन में एक विशेष काम मैं कर सकता हूँ, तो दूसरा काम तुम कर सकते हो। तुम एक देश का शासन कर सकते हो तो मैं एक पुराने जूते की मरम्मत कर सकता हूँ, किन्तु इस कारण तुम मुझसे बड़े नहीं हो सकते। क्या तुम मेरे जूते की मरम्मत कर सकते हो? मैं क्या देश का शासन कर सकता हूँ? यह कार्यविभाग स्वाभाविक है। मैं जूते की सिलाई करने में चतुर हूँ, तुम वेदपाठ में निपुण हो। यह कोई कारण नहीं कि तुम इस विशेषता के लिए मेरे सिर पर पाँव रखो। तुम यदि हत्या भी करो तो तुम्हारी प्रशंसा और मुझे एक सेब चुराने पर ही फाँसी पर लटकना हो, ऐसा नहीं हो सकता। इसको समाप्त करना ही होगा। जातिविभाग अच्छा है। जीवन-समस्या के समाधान के लिए यही एकमात्र स्वाभाविक उपाय है। मनुष्य अलग अलग वर्गों में विभक्त होंगे, यह अनिवार्य है। तुम जहाँ भी जाओ जातिविभाग से छुटकारा न मिलेगा, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि …र

का विशेषाधिकार भी रहेगा। इनको जड से उखाड फेंकना होगा। यदि मछुआ को तुम वेदान्त सिखलाओगे तो वह कहेगा, हम और तुम दोनो वरावर हैं। तुम दार्शनिक हो, मैं मछुआ, पर इससे क्या? तुम्हारे भीतर जो ईश्वर है, वही मुझमे भी है। हम यही चाहते हैं कि किसीको कोई विशेष अधिकार प्राप्त न हो, और प्रत्येक मनुष्य की उन्नति के लिए समान सुभीते हो। सब लोगो को उनके भीतर स्थित ब्रह्मतत्त्व सम्बन्धी शिक्षा दो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मुक्ति के लिए स्वय चेष्टा करेगा।

उन्नति के लिए सबसे पहले स्वाधीनता की आवश्यकता है। यदि तुम लोगो मे से कोई यह कहने का साहस करे कि मैं अमुक स्त्री अथवा अमुक लडके की मुक्ति के लिए काम करूँगा, तो यह गलत है, हजार वार गलत होगा। मुझसे वार-वार यह पूछा जाता है कि विधवाओ की समस्या के वारे मे और स्त्रियो के प्रश्न के विषय मे आप क्या सोचते हैं? मैं इस प्रश्न का अन्तिम उत्तर यह देता हूँ—क्या मैं विधवा हूँ, जो तुम ऐसा निरर्थक प्रश्न मुझसे पूछते हो? क्या मैं स्त्री हूँ, जो तुम वारवार मुझसे यही प्रश्न करते हो? स्त्री जाति के प्रश्न को हल करने के लिए आगे वढनेवाले तुम हो कौन? क्या तुम हर एक विधवा और हर एक स्त्री के भाग्यविधाता भगवान् हो? दूर रहो! अपनी समस्याओ का समाधान वे स्वय कर लेंगी। अरे अत्याचारियो, क्या तुम समझते हो कि तुम सबके लिए सब कुछ कर सकते हो? हट जाओ, दूर रहो! ईश्वर सबकी चिन्ता करेंगे। अपने को सर्वज्ञ समझनेवाले तुम हो कौन? नास्तिको, तुम यह सोचने का दुस्साहस कैसे करते हो कि तुम्हारा ईश्वर पर अधिकार है? क्या तुम जानते नही कि प्रत्येक आत्मा ईश्वर ही का स्वरूप है? तुम अपना ही कर्म करो, तुम्हारे लिए तुम्हारे सिर पर वहुत से कर्मों का भार है। नास्तिको! तुम्हारी जाति तुमको आसमान पर चढा दे, तुम्हारा समाज तुम्हारी प्रशसा के पुल वाँध दे, मूर्ख लोग तुम्हारी तारीफ करें, किन्तु ईश्वर सो नही रहे हैं, इस लोक मे या परलोक मे इसका दण्ड तुम्हें अवश्य मिलेगा।

अतएव हर एक स्त्री को, हर एक पुरुष को और सभी को ईश्वर के ही समान देखो। तुम किसी की सहायता नही कर सकते, तुम्हे केवल सेवा करने का अधिकार है। प्रभु की सन्तान की, यदि भाग्यवान हो तो, स्वय प्रभु की ही सेवा करो। यदि ईश्वर के अनुग्रह से उसकी किसी सन्तान की सेवा कर सकोगे, तो तुम धन्य हो जाओगे, अपने ही को वहुत वडा मत समझो। तुम धन्य हो, क्योकि सेवा करने का तुमको अधिकार मिला और दूसरो को नही मिला। केवल ईश्वर-पूजा के भाव से सेवा करो। दरिद्र व्यक्तियो मे हमको भगवान को देखना चाहिए, अपनी

ही मुक्ति के लिए उनके निकट जाकर हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। अनेक दुःखी और कंगाल प्राणी हमारी मुक्ति के माध्यम हैं, ताकि हम रोगी, पागल, कोढ़ी, पापी आदि स्वरूपों में विचरते हुए प्रभु की सेवा करके अपना उद्धार करें। मेरे शब्द बड़े गम्भीर हैं और मैं उन्हें फिर दुहराता हूँ कि हम लोगों के जीवन का सर्वश्रेष्ठ सौभाग्य यही है कि हम इन भिन्न भिन्न रूपों में विराजमान भगवान् की सेवा कर सकते हैं। प्रभुत्व से किसीका कल्याण कर सकने की धारणा त्याग दो। जिस प्रकार पौधे के बढ़ने के लिए जल, मिट्टी, वायु आदि पदार्थों का संग्रह कर देने पर फिर वह पौधा अपनी प्रकृति के नियमानुसार आवश्यक पदार्थों का ग्रहण आप ही कर लेता है और अपने स्वभाव के अनुसार बढ़ता जाता है, उसी प्रकार दूसरों की उन्नति के साधन एकत्र करके उनका हित करो।

संसार में ज्ञान के प्रकाश का विस्तार करो, प्रकाश, सिर्फ प्रकाश लाओ! प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करे। जब तक सब लोग भगवान् के निकट न पहुँच जायँ, तब तक तुम्हारा कार्य शेष नहीं हुआ है। गरीबों में ज्ञान का विस्तार करो, धनियों पर और भी अधिक प्रकाश डालो, क्योंकि दरिद्रों की अपेक्षा धनियों को अधिक प्रकाश की आवश्यकता है। अपढ़ लोगों को भी प्रकाश दिखाओ। शिक्षित मनुष्यों के लिए और अधिक प्रकाश चाहिए, क्योंकि आजकल शिक्षा का मिथ्याभिमान खूब प्रबल हो रहा है। इसी तरह सबके निकट प्रकाश का विस्तार करो। और शेष सब भगवान् पर छोड़ दो, क्योंकि स्वयं भगवान् के शब्दों में—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥
(गीता २।४७)

—कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, फल में नहीं, तुम इस भाव से कर्म मत करो जिससे तुम्हें फल-भोग करना पड़े। तुम्हारी प्रवृत्ति कर्म त्याग करने की ओर न हो।

सैकड़ों युग पूर्व हमारे पूर्वपुरुषों को जिस प्रभु ने ऐसे उदात्त सिद्धान्त सिखलाये हैं, वे हमें उन आदर्शों को काम में लाने की शक्ति दें और हमारी सहायता करें।

# भारत के महापुरुष

## [मद्रास मे दिया हुआ भाषण]

भारतीय महापुरुषो के विषय मे कुछ कहने के पहले मुझे उस समय का स्मरण होता है, जिस समय का पता इतिहास को नही मिला, जिस अतीत के अन्धकार मे पैठकर भेद खोलने का पौराणिक परम्पराएँ वृथा प्रयत्न करती हैं। भारत मे इतने महापुरुष पैदा हुए हैं कि उनकी गणना नही हो सकती, और महापुरुष पैदा करना छोड हज़ारो वर्षों से इस हिन्दू जाति ने और किया ही क्या? अत इन महर्षियो मे से युगान्तर करनेवाले कुछ सर्वश्रेष्ठ आचार्यों का वर्णन अर्थात् उनके चरित्र की आलोचना करके जो कुछ मैंने समझा है, वही तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत करूँगा।

पहले अपने शास्त्रो के सम्बन्ध में हमे कुछ जान लेना चाहिए। हमारे शास्त्रो मे सत्य के दो आदर्श हैं। पहला वह है, जिसे हम सनातन सत्य कहते हैं, और दूसरा वह, जो पहले की तरह प्रामाणिक न होने पर भी, विशेष विशेष देश, काल और पात्र पर प्रयुज्य है। श्रुति अथवा वेदो मे जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप का पारस्परिक सम्बन्ध वर्णित है। मन्वादि स्मृतियो मे, याज्ञवल्क्यादि सहिताओ मे, पुराणो और तन्त्रो मे दूसरे प्रकार का सत्य है। ये दूसरी कोटि के ग्रन्थ और शिक्षाएँ श्रुति के अधीन हैं, क्योकि स्मृति और श्रुति मे यदि विरोध हो तो श्रुति को ही प्रमाणस्वरूप ग्रहण करना होगा। शास्त्रसम्मति यही है। अभिप्राय यह कि श्रुति मे जीवात्मा की नियति और उसके चरम लक्ष्यविषयक मुख्य सिद्धान्तो का वर्णन है, और इनकी व्याख्या तथा विस्तार का काम स्मृतियो और पुराणो पर छोड दिया गया है—वे प्रथमोक्त सत्य के ही सविस्तर वर्णन हैं। साधारणतया मार्ग-निर्देश के लिए श्रुति ही पर्याप्त है। धार्मिक जीवन बिताने के लिए सारतत्त्व के विषय मे श्रुति के कहे उपदेशो से अधिक न और कुछ कहा जा सकता है, और न कुछ जानने की आवश्यकता ही है। इस विषय मे जो कुछ आवश्यक है, वह श्रुति मे है, जीवात्मा की सिद्धि-प्राप्ति के लिए जो जो उपदेश चाहिए, उनका सम्पूर्ण वर्णन श्रुति मे है। केवल विशेष अवस्थाओ के विधान श्रुति मे नही है। समय समय पर स्मृतियो ने इनकी व्यवस्था दी है।

श्रुति की एक अन्य विशेषता यह है कि अनेक महर्षियो ने श्रुति मे विभिन्न सत्य सकलित किये हैं, इनमे पुरुष अधिक हैं, किन्तु कुछ महिलाएँ भी हैं। उनके

ही मुक्ति के लिए उनके निकट जाकर हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। अनेक दुःखी और कंगाल प्राणी हमारी मुक्ति के माध्यम हैं, ताकि हम रोगी पागल कोढ़ी पापी आदि स्वरूपों में विचरते हुए प्रभु की सेवा करके अपना उद्धार करें। मेरे शब्द बड़े गम्भीर हैं और मैं उन्हें फिर दुहराता हूँ कि हम लोगों के जीवन का सर्वश्रेष्ठ सौभाग्य यही है कि हम इन भिन्न भिन्न रूपों में विराजमान भगवान् की सेवा कर सकते हैं। प्रभुत्व से किसीका कल्याण कर सकने की धारणा त्याग दो। जिस प्रकार पौधे के बढ़ने के लिए जल मिट्टी वायु आदि पदार्थों का संग्रह कर देने पर फिर वह पौधा अपनी प्रकृति के नियमानुसार आवश्यक पदार्थों का ग्रहण आप ही कर लेता है और अपने स्वभाव के अनुसार बढ़ता जाता है उसी प्रकार दूसरों की उन्नति के साधन एकत्र करके उनका हित करो।

संसार में ज्ञान के प्रकाश का विस्तार करो प्रकाश सिर्फ प्रकाश लाओ। प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करे। जब तक सब लोग भगवान् के निकट न पहुँच जायें तब तक तुम्हारा कार्य शेष नहीं हुआ है। गरीबों में ज्ञान का विस्तार करो धनियों पर और भी अधिक प्रकाश डालो क्योंकि दरिद्रों की अपेक्षा धनियों को अधिक प्रकाश की आवश्यकता है। अपढ़ लोगों को भी प्रकाश दिखाओ। शिक्षित मनुष्यों के लिए और अधिक प्रकाश चाहिए, क्योंकि आजकल शिक्षा का मिथ्याभिमान खूब प्रबल हो रहा है। इसी तरह सबके निकट प्रकाश का विस्तार करो। और शेष सब भगवान् पर छोड़ दो क्योंकि स्वयं भगवान् के शब्दों में—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥
(गीता २।४७)

—'कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, फल में नहीं तुम इस भाव से कर्म मत करो जिससे तुम्हें फल-भोग करना पड़े। तुम्हारी प्रवृत्ति कर्म त्याग करने की ओर न हो।

सैकड़ों युग पूर्व हमारे पूर्वपुरुषों को जिस प्रभु ने ऐसे उदात्त सिद्धान्त सिखलाये हैं, वे हमें उन आदर्शों को काम में लाने की शक्ति दें और हमारी सहायता करें।

# भारत के महापुरुष

## [मद्रास मे दिया हुआ भाषण]

भारतीय महापुरुषो के विषय मे कुछ कहने के पहले मुझे उस समय का स्मरण होता है, जिस समय का पता इतिहास को नही मिला, जिस अतीत के अन्धकार मे पैठकर भेद खोलने का पौराणिक परम्पराएँ वृथा प्रयत्न करती हैं। भारत मे इतने महापुरुष पैदा हुए हैं कि उनकी गणना नही हो सकती, और महापुरुष पैदा करना छोड हज़ारो वर्षों से इस हिन्दू जाति ने और किया ही क्या? अत इन महर्षियो मे से युगान्तर करनेवाले कुछ सर्वश्रेष्ठ आचार्यों का वर्णन अर्थात् उनके चरित्र की आलोचना करके जो कुछ मैंने समझा है, वही तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत करूँगा।

पहले अपने शास्त्रो के सम्बन्ध मे हमे कुछ जान लेना चाहिए। हमारे शास्त्रो मे सत्य के दो आदर्श हैं। पहला वह है, जिसे हम सनातन सत्य कहते हैं, और दूसरा वह, जो पहले की तरह प्रामाणिक न होने पर भी, विशेष विशेष देश, काल और पात्र पर प्रयुज्य है। श्रुति अथवा वेदो मे जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप का पारस्परिक सम्बन्ध वर्णित है। मन्वादि स्मृतियो मे, याज्ञवल्क्यादि सहिताओ मे, पुराणो और तन्त्रो मे दूसरे प्रकार का सत्य है। ये दूसरी कोटि के ग्रन्थ और शिक्षाएँ श्रुति के अधीन हैं, क्योकि स्मृति और श्रुति मे यदि विरोध हो तो श्रुति को ही प्रमाणस्वरूप ग्रहण करना होगा। शास्त्रसम्मति यही है। अभिप्राय यह कि श्रुति मे जीवात्मा की नियति और उसके चरम लक्ष्यविषयक मुख्य सिद्धान्तो का वर्णन है, और इनकी व्याख्या तथा विस्तार का काम स्मृतियो और पुराणो पर छोड दिया गया है—वे प्रथमोक्त सत्य के ही सविस्तर वर्णन हैं। साधारणतया मार्ग-निर्देश के लिए श्रुति ही पर्याप्त है। धार्मिक जीवन बिताने के लिए सारतत्त्व के विषय मे श्रुति के कहे उपदेशो से अधिक न और कुछ कहा जा सकता है, और न कुछ जानने की आवश्यकता ही है। इस विषय मे जो कुछ आवश्यक है, वह श्रुति मे है, जीवात्मा की सिद्धि-प्राप्ति के लिए जो जो उपदेश चाहिए, उनका सम्पूर्ण वर्णन श्रुति मे है। केवल विशेष अवस्थाओ के विधान श्रुति मे नही है। समय समय पर स्मृतियो ने इनकी व्यवस्था दी है।

श्रुति की एक अन्य विशेषता यह है कि अनेक महर्षियो ने श्रुति मे विभिन्न सत्य सकलित किये हैं, इनमे पुरुष अधिक हैं, किन्तु कुछ महिलाएँ भी हैं। उनके

व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में अथवा उनके जन्म-काल आदि के विषय में हमें बहुत कम ज्ञान है, किन्तु उनके सर्वोत्कृष्ट विचार, जिन्हें श्रेष्ठ आविष्कार कहना ही उपयुक्त होगा, हमारे देश के धर्म-साहित्य वेदों में लेखबद्ध और रक्षित हैं। पर स्मृतियों में महर्षियों की जीवनी और प्रायः उनके कार्यकलाप विशेष रूप से देखने को मिलते हैं। स्मृतियों में ही हम अद्भुत, महाशक्तिशाली, प्रभावोत्पादक और संसार को संचालित करनेवाले व्यक्तियों का सर्वप्रथम परिचय प्राप्त करते हैं। कभी कभी उनके अद्भुत और उज्ज्वल चरित्र उनके उपदेशों से भी अधिक उत्कृष्ट जान पड़ते हैं।

हमारे धर्म में निर्गुण सगुण ईश्वर की शिक्षा है, यह उसकी एक विशेषता है, जिसे हमें समझना चाहिए। उसमें व्यक्तिगत सम्बन्धों से रहित अनन्त सनातन सिद्धान्तों के साथ साथ असंख्य व्यक्तियों अर्थात् अवतारों के भी उपदेश हैं, परन्तु श्रुति अथवा वेद ही हमारे धर्म के मूल स्रोत हैं, जो पूर्णतः अपौरुषेय हैं। बड़े बड़े आचार्यों, बड़े बड़े अवतारों और महर्षियों का उल्लेख स्मृतियों और पुराणों में है। और ध्यान देने योग्य एक बात यह भी है कि केवल हमारे धर्म को छोड़कर संसार में प्रत्येक अन्य धर्म किसी धर्म-प्रवर्तक अथवा धर्म-प्रवर्तकों के जीवन से ही अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध है। ईसाई धर्म ईसा से, इस्लाम धर्म मुहम्मद से, बौद्ध धर्म बुद्ध से, जैन धर्म जिनों से और अन्यान्य धर्म अन्यान्य व्यक्तियों के जीवन के ऊपर प्रतिष्ठित हैं। इसलिए इन महापुरुषों के जीवन के ऐतिहासिक प्रमाणों को लेकर उन धर्मों में जो यथेष्ट वाद-विवाद होता है, वह स्वाभाविक है। यदि कभी इन प्राचीन महापुरुषों के अस्तित्वविषयक ऐतिहासिक प्रमाण दुर्बल होते हैं तो उनकी धर्मरूपी अट्टालिका गिरकर चूर चूर हो जाती है। हमारा धर्म व्यक्तिविशेष पर प्रतिष्ठित न होकर सनातन सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित है, अतः हम उस विपत्ति से मुक्त हैं। किसी महापुरुष, यहाँ तक कि किसी अवतार के कथन को ही तुम अपना धर्म मानते हो, ऐसा नहीं है। कृष्ण के वचनों से वेदों की प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती, किन्तु वे वेदों के अनुगामी हैं, इसीसे कृष्ण के वे वाक्य प्रमाणस्वरूप हैं। कृष्ण वेदों के प्रमाण नहीं हैं, किन्तु वेद ही कृष्ण के प्रमाण हैं। कृष्ण की महानता इस बात में है कि वेदों के जितने प्रचारक हुए हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ वे ही हैं। अन्यान्य अवतार और समस्त महर्षियों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही समझो। हमारा प्रथम सिद्धान्त है कि मनुष्य की पूर्णता-प्राप्ति के लिए, उसकी मुक्ति के लिए, जो कुछ आवश्यक है, उसका वर्णन वेदों में है। कोई और नया आविष्कार नहीं हो सकता। समस्त ज्ञान के चरम लक्ष्यस्वरूप पूर्ण एकत्व के आगे तुम कभी बढ़ नहीं सकते। इस पूर्ण एकत्व का आविष्कार बहुत पहले ही वेदों ने किया है, इससे अधिक अग्रसर

होना असम्भव है। 'तत्त्वमसि' का आविष्कार हुआ कि आध्यात्मिक ज्ञान सम्पूर्ण हो गया। यह 'तत्त्वमसि' वेदो मे ही है। विभिन्न देश, काल, पात्र के अनुसार समय समय की केवल लोकशिक्षा शेष रह गयी। इस प्राचीन सनातन मार्ग मे मनुष्यो का चलना ही शेष रह गया, इसीलिए समय समय पर विभिन्न महापुरुषो और आचार्यों का अभ्युदय होता है। गीता मे श्री कृष्ण की इस प्रसिद्ध वाणी के अतिरिक्त उस तत्त्व का वर्णन ऐसे सुन्दर और स्पष्ट रूप से कही नही हुआ है

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्॥
(गीता ४।७)

—हे भारत, जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब मैं धर्म की रक्षा और अधर्म के नाश के लिए समय समय पर अवतार ग्रहण करता हूँ।' यही भारतीय धारणा है।

इससे निष्कर्ष क्या निकलता है? एक ओर ये सनातन तत्त्व हैं, जो स्वत प्रमाण हैं, जो किसी प्रकार की युक्ति के ऊपर नही टिके हैं, जो बडे से बडे ऋषियो के अथवा तेजस्वी से तेजस्वी अवतारो के वाक्यो के ऊपर नही ठहरे हैं। यहाँ हमारा कहना है कि भारतीय विचारो की उक्त विशेषता के कारण हम वेदान्त को ही ससार का एकमात्र सार्वभौम धर्म कहने का दावा कर सकते है और यह ससार का एकमात्र वर्तमान सार्वभौम धर्म है, क्योकि यह व्यक्तिविशेष के स्थान पर सिद्धान्त की शिक्षा देता है। व्यक्तिविशेष के चलाये हुए धर्म को ससार की समग्र मानव जाति ग्रहण नही कर सकती। अपने ही देश मे हम देखते है कि यहाँ कितने महापुरुष हो गये हैं। हम एक छोटे से शहर मे देखते हैं कि उस शहर के लोग अनेक व्यक्तियों को अपना आदर्श चुनते हैं। अत समस्त ससार का एकमात्र आदर्श मुहम्मद, बुद्ध अथवा ईसा मसीह ऐसा कोई एक व्यक्ति किस प्रकार हो सकता है? अथवा समस्त नैतिकता, आचरण, आध्यात्मिकता तथा धर्म का सत्य एक व्यक्ति, केवल एक व्यक्ति की आज्ञाप्ति पर किस प्रकार आधारित हो सकता है? वेदान्त धर्म मे इस प्रकार किसी व्यक्तिविशेष के वाक्यो को प्रमाण मान लेने की आवश्यकता नही। मनुष्य की सनातन प्रकृति ही इसका प्रमाण है, इसका आचार-शास्त्र मानव के सनातन आध्यात्मिक एकत्व पर प्रतिष्ठित है, जो चेष्टा द्वारा प्राप्त नही होता, किन्तु पहले ही से लब्ध है। दूसरी ओर हमारे ऋषियो ने अत्यन्त प्राचीन काल से ही समझ लिया था कि मानव जाति का अधिकाश किसी व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। उनको किसी न किसी रूप मे व्यक्तिविशेष ईश्वर अवश्य चाहिए।

जिन बुद्धदेव ने व्यक्तिविशेष ईश्वर के विरुद्ध प्रचार किया था, उनके देहत्याग के पश्चात् पचास वर्ष में ही उनके शिष्यों ने उनको ईश्वर मान लिया। किन्तु व्यक्ति-विशेष ईश्वर की भी आवश्यकता है, और हम जानते हैं कि किसी व्यक्तिविशेष ईश्वर की वृथा कल्पना से बढ़कर, जीवित ईश्वर इस लोक में समय समय पर उत्पन्न होकर हम लोगों के साथ रहते भी हैं, जब कि काल्पनिक व्यक्तिविशेष ईश्वर सौ में निन्यानबे प्रतिशत उपासना के अयोग्य ही होते हैं। किसी प्रकार के काल्पनिक ईश्वर की अपेक्षा, अपनी काल्पनिक रचना की अपेक्षा, अर्थात् ईश्वर सम्बन्धी जो भी धारणा हम बना सकते हैं उसकी अपेक्षा वे पूजा के अधिक योग्य हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में हम लोग जो भी धारणा रख सकते हैं उसकी अपेक्षा भी कृष्ण बहुत बड़े हैं। हम अपने मन में जितने उच्च आदर्श का विचार कर सकते हैं उसकी अपेक्षा बुद्धदेव अधिक उच्च आदर्श हैं, जीवित आदर्श हैं। इसीलिए सब प्रकार के काल्पनिक देवताओं को पदच्युत करके वे चिर काल से मनुष्यों द्वारा पूजे जा रहे हैं।

हमारे ऋषि यह जानते थे, इसीलिए उन्होंने समस्त भारतवासियों के लिए इन महापुरुषों की, इन अवतारों की पूजा करने का मार्ग खोला है। इतना ही नहीं, जो हमारे सर्वश्रेष्ठ अवतार हैं, उन्होंने और भी आगे बढ़कर कहा है :

यद्यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥
(गीता १०।४१)

— मनुष्यों में जहाँ अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है, समझो वहाँ मैं वर्तमान हूँ, मुझसे ही इस आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है।

यह हिन्दुओं के लिए समस्त देशों के समस्त अवतारों की उपासना करने का द्वार खोल देता है। हिन्दू किसी भी देश के किसी भी साधु-महात्मा की पूजा कर सकते हैं। हम बहुधा ईसाइयों के गिरजों और मुसलमानों की मसजिदों में जाकर उपासना भी करते हैं। यह अच्छा है। हम इस तरह उपासना क्यों न करें ? मैंने पहले ही कहा है, हमारा धर्म सार्वभौम है। यह इतना उदार, इतना प्रशस्त है कि यह सब प्रकार के आदर्शों को आदरपूर्वक ग्रहण कर सकता है। संसार में धर्मों के जितने आदर्श हैं, उनको इसी समय ग्रहण किया जा सकता है और भविष्य में जो समस्त विभिन्न आदर्श होंगे, उनके लिए हम धैर्य के साथ प्रतीक्षा कर सकते हैं। उनको भी इसी प्रकार ग्रहण करना होगा, वेदान्त धर्म ही अपनी विशाल भुजाओं को फैलाकर सबको हृदय से लगा लेगा।

ईश्वर के अवतारस्वरूप महान् ऋषियों के सम्बन्ध में हमारी लगभग यही

धारणा है। इनकी अपेक्षा एक प्रकार के नीचे दर्जे के महापुरुष और हैं। वेदो मे ऋषि शब्द का उल्लेख वारम्वार पाया जाता है और आजकल तो यह एक प्रचलित शब्द हो गया है। आर्ष वाक्य विशेष प्रमाण माने जाते हैं। हमे इसका भाव समझना चाहिए। ऋषि का अर्थ है मन्त्रद्रष्टा अर्थात् जिसने किसी तत्त्व का दर्शन किया हो। अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रश्न पूछा जाता है कि धर्म का प्रमाण क्या है? वाह्य इन्द्रियो मे धर्म की सत्यता प्रमाणित नही होती, यह अत्यन्त प्राचीन काल से ही ऋषियो ने कहा है **यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।** —'मन के सहित वाणी जिसको न पाकर जहाँ से लौट आती है।' **न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मन ।** —'जहाँ आँखो की पहुँच नही, जहाँ वाणी भी नही जा सकती और मन भी नही जा सकता।' युग युग मे यही घोषणा रही है। आत्मा का अस्तित्व, ईश्वर का अस्तित्व, अनन्त जीवन, मनुष्यो का चरम लक्ष्य आदि प्रश्नो का उत्तर वाह्य प्रकृति नही दे सकेगी। यह मन सदा परिवर्तनशील है, मानो यह सदा वहता जा रहा है। यह परिमित है, मानो इसके छोटे छोटे टुकडे कर दिये गये हैं। यह प्रकृति किस प्रकार उस अनन्त, अपरिवर्तनशील, अखड, अविभाज्य सनातन के विषय मे कुछ कह सकती है? यह कदापि सम्भव नही। इतिहास इसका साक्षी है कि चैतन्यहीन जड पदार्थ से इन प्रश्नो का उत्तर प्राप्त करने की मनुष्य जाति ने जव कभी वृथा चेष्टा की है, परिणाम कितना भयानक हुआ है। फिर यह वेदोक्त ज्ञान कहाँ से आया? ऋषि होने से यह ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञान इन्द्रियो मे नही है। पर क्या इन्द्रियाँ ही मनुष्यो के लिए सव कुछ हैं? यह कहने का किसे साहस है कि इन्द्रियाँ ही सारसर्वस्व हैं? हमारे जीवन मे, हममे से प्रत्येक के जीवन मे, सम्भवत जव हमारे सामने ही किसी प्रियजन की मृत्यु हो जाती है, जव हमको कोई आघात पहुँचता है अथवा जव अत्यधिक आनन्द हमको प्राप्त होता है, उसमे शान्ति के क्षण आते हैं। अनेक दूसरे अवसरो पर ऐसा भी होता है कि मन स्थिर होकर क्षण भर के लिए अपने सच्चे स्वरूप का अनुभव करता है, उस अनन्त की झलक पा जाता है, जहाँ न मन की पहुँच है और न शब्दो की। साधारण जनो के भी जीवन मे ऐसा होता है, पर इसको अभ्यास के द्वारा प्रगाढ, स्थिर और पूर्ण रूप देना होगा। युगो पहले ऋषियो ने आविष्कार किया था कि आत्मा न तो इन्द्रियो द्वारा ही बद्ध है और न किसी सीमा से ही घिर सकती है, केवल इतना ही नही, वह इन्द्रियग्राह्य ज्ञान के द्वारा भी सीमावद्ध नही हो सकती। हमे समझना होगा कि ज्ञान उस आत्मारूपी अनन्त शृखला का एक क्षुद्र अश-मात्र है। सत्ता ज्ञान से अभिन्न नही है, ज्ञान उसी सत्ता का एक अश है। ऋषियो ने ज्ञान की अतीत भूमि मे निर्भय होकर

जिन बुद्धदेव ने व्यक्तिविशेष ईश्वर के विरुद्ध प्रचार किया था, उनके देहत्याग के पश्चात् पचास वर्ष में ही उनके शिष्यों ने उनको ईश्वर मान लिया। किन्तु व्यक्ति-विशेष ईश्वर की भी आवश्यकता है, और हम जानते हैं कि किसी व्यक्तिविशेष ईश्वर की वृथा कल्पना से बढ़कर जीवित ईश्वर इस लोक में समय समय पर उत्पन्न होकर हम लोगों के साथ रहते भी हैं, जब कि काल्पनिक व्यक्तिविशेष ईश्वर सौ में निन्यानबे प्रतिशत उपासना के अयोग्य ही होते हैं। किसी प्रकार के काल्पनिक ईश्वर की अपेक्षा, अपनी काल्पनिक रचना की अपेक्षा, अर्थात् ईश्वर सम्बन्धी जो भी धारणा हम बना सकते हैं, उसकी अपेक्षा वे पूजा के अधिक योग्य हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में हम लोग जो भी धारणा रख सकते हैं, उसकी अपेक्षा भी कृष्ण बहुत बड़े हैं। हम अपने मन में जितने उच्च आदर्श का विचार कर सकते हैं, उसकी अपेक्षा बुद्धदेव अधिक उच्च आदर्श हैं, जीवित आदर्श हैं। इसीलिए सब प्रकार के काल्पनिक देवताओं को परास्त करके वे चिर काल से मनुष्यों द्वारा पूजे जा रहे हैं।

हमारे ऋषि यह जानते थे, इसीलिए उन्होंने समस्त भारतवासियों के लिए इन महापुरुषों की, इन अवतारों की पूजा करने का मार्ग खोला है। इतना ही नहीं, जो हमारे सर्वश्रेष्ठ अवतार हैं, उन्होंने और भी आगे बढ़कर कहा है :

यद्यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥
(गीता १०।४१)

—'मनुष्यों में जहाँ अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है, समझो वहाँ मैं वर्तमान हूँ, मुझसे ही इस आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है।'

यह हिन्दुओं के लिए समस्त देशों के समस्त अवतारों की उपासना करने का द्वार खोल देता है। हिन्दू किसी भी देश के किसी भी साधु-महात्मा की पूजा कर सकते हैं। हम बहुधा ईसाइयों के गिरजों और मुसलमानों की मसजिदों में जाकर उपासना भी करते हैं। यह अच्छा है। हम इस तरह उपासना क्यों न करें? मैंने पहले ही कहा है, हमारा धर्म सार्वभौम है। यह इतना उदार, इतना प्रशस्त है कि यह सब प्रकार के आदर्शों को आदरपूर्वक ग्रहण कर सकता है। संसार में धर्मों के जितने आदर्श हैं, उनको इसी समय ग्रहण किया जा सकता है और भविष्य में जो समस्त विभिन्न आदर्श होंगे, उनके लिए हम धैर्य के साथ प्रतीक्षा कर सकते हैं। उनको भी इसी प्रकार ग्रहण करना होगा, वेदान्त धर्म ही अपनी विशाल भुजाओं को फैलाकर सबको हृदय से लगा लेगा।

ईश्वर के अवतारस्वरूप महान् ऋषियों के सम्बन्ध में हमारी धारणा यही

धारणा है। इनकी अपेक्षा एक प्रकार के नीचे दर्जे के महापुरुष और हैं। वेदो मे ऋषि शब्द का उल्लेख बारम्बार पाया जाता है और आजकल तो यह एक प्रचलित शब्द हो गया है। आर्ष वाक्य विशेष प्रमाण माने जाते हैं। हमे इसका भाव समझना चाहिए। ऋषि का अर्थ है मन्त्रद्रष्टा अर्थात् जिसने किसी तत्त्व का दर्शन किया हो। अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रश्न पूछा जाता है कि धर्म का प्रमाण क्या है? बाह्य इन्द्रियो से धर्म की सत्यता प्रमाणित नही होती, यह अत्यन्त प्राचीन काल से ही ऋषियो ने कहा है **यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।** —'मन के सहित वाणी जिसको न पाकर जहाँ से लौट आती है।' **न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मन।** —'जहाँ आँखो की पहुँच नही, जहाँ वाणी भी नही जा सकती और मन भी नही जा सकता।' युग युग से यही घोषणा रही है। आत्मा का अस्तित्व, ईश्वर का अस्तित्व, अनन्त जीवन, मनुष्यो का चरम लक्ष्य आदि प्रश्नो का उत्तर बाह्य प्रकृति नही दे सकेगी। यह मन सदा परिवर्तनशील है, मानो यह सदा बहता जा रहा है। यह परिमित है, मानो इसके छोटे छोटे टुकडे कर दिये गये हैं। यह प्रकृति किस प्रकार उस अनन्त, अपरिवर्तनशील, अखड, अविभाज्य सनातन के विषय मे कुछ कह सकती है? यह कदापि सम्भव नही। इतिहास इसका साक्षी है कि चैतन्यहीन जड पदार्थ से इन प्रश्नो का उत्तर प्राप्त करने की मनुष्य जाति ने जब कभी वृथा चेष्टा की है, परिणाम कितना भयानक हुआ है। फिर यह वेदोक्त ज्ञान कहाँ से आया? ऋषि होने से यह ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञान इन्द्रियो से नही है। पर क्या इन्द्रियाँ ही मनुष्यो के लिए सब कुछ हैं? यह कहने का किसे साहस है कि इन्द्रियाँ ही सारसर्वस्व हैं? हमारे जीवन मे, हममे से प्रत्येक के जीवन मे, सम्भवत जब हमारे सामने ही किसी प्रियजन की मृत्यु हो जाती है, जब हमको कोई आघात पहुँचता है अथवा जब अत्यधिक आनन्द हमको प्राप्त होता है, उसमे शान्ति के क्षण आते हैं। अनेक दूसरे अवसरो पर ऐसा भी होता है कि मन स्थिर होकर क्षण भर के लिए अपने सच्चे स्वरूप का अनुभव करता है, उस अनन्त की झलक पा जाता है, जहाँ न मन की पहुँच है और न शब्दो की। साधारण जनो के भी जीवन मे ऐसा होता है, पर इसको अभ्यास के द्वारा प्रगाढ, स्थिर और पूर्ण रूप देना होगा। युगो पहले ऋषियो ने आविष्कार किया था कि आत्मा न तो इन्द्रियो द्वारा ही बद्ध है और न किसी सीमा से ही घिर सकती है, केवल इतना ही नही, वह इन्द्रियग्राह्य ज्ञान के द्वारा भी सीमाबद्ध नही हो सकती। हमे समझना होगा कि ज्ञान उस आत्मारूपी अनन्त शृखला का एक क्षुद्र अश-मात्र है। सत्ता ज्ञान से अभिन्न नही है, ज्ञान उसी सत्ता का एक अश है। ऋषियो ने ज्ञान की अतीत भूमि मे निर्भय होकर

आत्मा का अनुसन्धान किया था। ज्ञान पंचेन्द्रियों द्वारा सीमाबद्ध है। आध्यात्मिक जगत् के सत्य को प्राप्त करने के लिए मनुष्यों को ज्ञान की अतीत भूमि में इन्द्रियों के परे जाना होगा। और इस समय भी ऐसे मनुष्य हैं, जो पंचेन्द्रियों की सीमा के परे जा सकते हैं। वे ही ऋषि कहलाते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक सत्यों का साक्षात्कार किया है।

अपने सामने की इस मेज को जिस प्रकार हम प्रत्यक्ष प्रमाण से जानते हैं उसी तरह वेदोक्त सत्यों का प्रमाण भी प्रत्यक्ष अनुभव है। यह हम इन्द्रियों से देख रहे हैं और आध्यात्मिक सत्यों का भी हम जीवात्मा की ज्ञानातीत अवस्था में साक्षात् करते हैं। ऐसा ऋषित्व प्राप्त करना देश, काल, लिंग अथवा जातिविशेष के ऊपर निर्भर नहीं करता। वात्स्यायन निर्भयतापूर्वक घोषणा करते हैं कि यह ऋषित्व ऋषियों की सन्तानों, आर्य-अनार्यों, यहाँ तक कि म्लेच्छों की भी साधारण सम्पत्ति है।

यही वेदों का ऋषित्व है। हमको भारतीय धर्म के इस आदर्श को सर्वदा स्मरण रखना होगा और मेरी इच्छा है कि संसार की अन्य जातियाँ भी इस आदर्श को समझकर याद रखें, क्योंकि इससे धार्मिक लड़ाई-झगड़े कम हो जायेंगे। शास्त्र ग्रन्थों में धर्म नहीं होता अथवा सिद्धान्तों, मतवादों, धर्मोक्तियों तथा तार्किक उक्तियों में भी धर्म की प्राप्ति नहीं होती। धर्म तो स्वयं साक्षात्कार करने की वस्तु है। ऋषि होना होगा। ऐ मेरे मित्रो, जब तक तुम ऋषि नहीं बनोगे, जब तक आध्यात्मिक सत्य के साथ साक्षात् नहीं होगा, निश्चय है कि तब तक तुम्हारा धार्मिक जीवन आरम्भ नहीं हुआ। जब तक तुम्हारी यह अतिचेतन (ज्ञानातीत) अवस्था आरम्भ नहीं होती, तब तक धर्म केवल कहने ही की बात है, तब तक यह केवल धर्म-प्राप्ति के लिए तैयार होना ही है। तुम केवल दूसरों से सुनी सुनायी बातों को दुहराते तिहराते भर हो, और यहाँ बुद्ध का कुछ ब्राह्मणों से वाद-विवाद करते समय का सुन्दर कथन लागू होता है। ब्राह्मणों ने बुद्धदेव के पास आकर ब्रह्म के स्वरूप पर प्रश्न किये। उस महापुरुष ने उन्हींसे प्रश्न किया, "आपने क्या ब्रह्म को देखा है?" उन्होंने कहा, "नहीं, हमने ब्रह्म को नहीं देखा।" बुद्धदेव ने पुनः उनसे प्रश्न किया, "आपके पिता ने क्या उसको देखा है?" — 'नहीं, उन्होंने भी नहीं देखा।' "क्या आपके पितामह ने उसको देखा है?" — हम समझते हैं कि उन्होंने भी उसको नहीं देखा। तब बुद्धदेव ने कहा, 'मित्रो, आपके पितृ-पितामहों ने भी जिसको नहीं देखा, ऐसे पुरुष के विषय में आप किस प्रकार विचार द्वारा एक दूसरे को पराजय करने की चेष्टा कर रहे हैं?' समस्त संसार यही कर रहा है। वेदान्त की भाषा में हम कहेंगे—नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।

—'यह आत्मा वागाडम्बर से प्राप्त नही की जा सकती, प्रखर बुद्धि से भी नही, यहाँ तक कि बहुत वेदपाठ से भी उसकी प्राप्ति करना सम्भव नही।'

ससार की समस्त जातियो से वेदो की भाषा मे हमको कहना होगा तुम्हारा लडना और झगडना वृथा है, तुम जिस ईश्वर का प्रचार करना चाहते हो, क्या तुमने उसको देखा है ? यदि तुमने उसको नही देखा तो तुम्हारा प्रचार वृथा है, जो तुम कहते हो, वह स्वय नही जानते, और यदि तुम ईश्वर को देख लोगे तो तुम झगडा नही करोगे, तुम्हारा चेहरा चमकने लगेगा। उपनिषदो के एक प्राचीन ऋषि ने अपने पुत्र को ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु के पास भेजा था। जब लडका वापस आया, तो पिता ने पूछा, "तुमने क्या सीखा ?" पुत्र ने उत्तर दिया, "अनेक विद्याएँ सीखी हैं।" पिता ने कहा, "यह कुछ नही है, जाओ, फिर वापस जाओ।" पुत्र गुरु के पास गया, लडके के लौट आने पर पिता ने फिर वही प्रश्न पूछा और लडके ने फिर वही उत्तर दिया। उसको एक बार और वापस जाना पडा। इस बार जब वह लौटकर आया तो उसका चेहरा चमक रहा था। तब पिता ने कहा, "बेटा, आज तुम्हारा चेहरा ब्रह्मज्ञानी के समान चमक रहा है।" जब तुम ईश्वर को जान लोगे तो तुम्हारा मुख, स्वर, सारी आकृति बदल जायगी। तब तुम मानव जाति के लिए महाकल्याणस्वरूप हो जाओगे। ऋषि की शक्ति को कोई नही रोक सकेगा। यही ऋषित्व है और यही हमारे धर्म का आदर्श। और शेष जो कुछ है—ये सब वाग्विलास, युक्ति-विचार, दर्शन, द्वैतवाद, अद्वैतवाद, यहाँ तक कि वेद भी—यही ऋषित्व प्राप्त करने के सोपान मात्र है, गौण हैं। ऋषित्व प्राप्त करना ही मुख्य है। वेद, व्याकरण, ज्योतिषादि सब गौण है। जिसके द्वारा हम उस अव्यय ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त करते हैं, वही चरम ज्ञान है। जिन्होंने यह प्राप्त किया है, वे ही वैदिक ऋषि हैं। हम समझते हैं कि यह ऋषि एक कोटि, एक वर्ग का नाम है, जिस ऋषित्व को यथार्थ हिन्दू होते हुए हमे अपने जीवन की किसी न किसी अवस्था मे प्राप्त करना ही होगा, और ऋषित्व प्राप्त करना ही हिन्दुओ के लिए मुक्ति है। कुछ सिद्धान्तो मे ही विश्वास करने से, सहस्रो मन्दिरो के दर्शन से अथवा ससार भर की कुल नदियो मे स्नान करने से, हिन्दू मत के अनुसार मुक्ति नही होगी। ऋषि होने पर, मत्रद्रष्टा होने पर ही मुक्ति प्राप्त होगी।

बाद के युगो पर विचार करने पर हम देखते हैं कि उस समय सारे ससार को आलोडित करनेवाले अनेक महापुरुषो तथा श्रेष्ठ अवतारो ने जन्म ग्रहण किया है। अवतारो की सख्या बहुत है। भागवत के अनुसार भी अवतारो की सख्या असख्य है, इनमे से राम और कृष्ण ही भारत मे विशेष भाव से पूजे जाते हैं। प्राचीन वीर युगो के आदर्शस्वरूप, सत्यपरायणता और समग्र नैतिकता के साकार मूर्ति-

स्वरूप आदर्श तनय आदर्श पति आदर्श पिता सर्वोपरि आदर्श राजा राम का चरित्र हमारे सम्मुख महान् ऋषि वाल्मीकि के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। महाकवि ने जिस भाषा में रामचरित का वर्णन किया है, उसकी अपेक्षा अधिक पावन प्रांजल मधुर अथवा सरल भाषा हो ही नहीं सकती। और सीता के विषय में क्या कहा जाय! तुम संसार के समस्त प्राचीन साहित्य को छान डालो और मैं तुमसे निःसंकोच कहता हूँ कि तुम संसार के भावी साहित्य का भी मंथन कर सकते हो किन्तु उसमें से तुम सीता के समान दूसरा चरित्र नहीं निकाल सकोगे। सीता-चरित्र अद्वितीय है। यह चरित्र सदा के लिए एक ही बार चित्रित हुआ है। राम तो कदाचित् अनेक हो गये हैं, किन्तु सीता और नहीं हुईं। भारतीय स्त्रियों को जैसा होना चाहिए, सीता उनके लिए आदर्श हैं। स्त्री-चरित्र के जितने भारतीय आदर्श हैं वे सब सीता के ही चरित्र से उत्पन्न हुए हैं और समस्त आर्यावर्त भूमि में सहस्रों वर्षों से वे स्त्री-पुरुष-बालक की पूजा पा रही हैं। महामहिमामयी सीता स्वयं शुद्धता से भी शुद्ध, धैर्य तथा सहिष्णुता का सर्वोच्च आदर्श सीता सदा इसी भाव से पूजी जायेंगी। जिन्होंने अविचलित भाव से ऐसे महादुःख का जीवन व्यतीत किया वही नित्य साध्वी सदा शुद्धस्वभाव सीता आदर्श पत्नी सीता मनुष्य लोक की आदर्श देवलोक की भी आदर्श नारी पुण्य चरित्र सीता सदा हमारी राष्ट्रीय देवी बनी रहेंगी। हम सभी उनके चरित्र को भली भाँति जानते हैं, इसलिए उनका विशेष वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। चाहे हमारे सब पुराण नष्ट हो जायँ यहाँ तक कि हमारे वेद भी लुप्त हो जायँ हमारी संस्कृत भाषा सदा के लिए काल स्रोत में विलुप्त हो जाय किन्तु मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो जब तक भारत में अतिशय ग्राम्य भाषा बोलनेवाले पाँच भी हिन्दू रहेंगे तब तक सीता की कथा विद्यमान रहेगी। सीता का प्रवेश हमारी जाति की अस्थि-मज्जा में हो चुका है प्रत्येक हिन्दू नर-नारी के रक्त में सीता विराजमान हैं हम सभी सीता की सन्तान हैं। हमारी नारियों को आधुनिक भावों में रँगने की जो चेष्टाएँ हो रही हैं यदि उन सब प्रयत्नों में उनको सीता चरित्र के आदर्श से भ्रष्ट करने की चेष्टा होगी तो वे सब असफल होंगे जैसा कि हम प्रतिदिन देखते हैं। भारतीय नारियों से सीता के चरण-चिह्नों का अनुसरण कराकर अपनी उन्नति की चेष्टा करनी होगी यही एकमात्र पथ है।

उसके पश्चात् हैं भगवान् श्रीकृष्ण जो नाना भाव से पूजे जाते हैं और जो पुरुष के समान ही स्त्री के बच्चों के समान ही वृद्ध के परम प्रिय इष्ट देवता हैं। मेरा अभिप्राय उनसे है जिन्हें भागवतकार अवतार कह के भी तृप्त नहीं होते बल्कि कहते हैं—

"अन्यान्य अवतार उस भगवान् के अश और फलस्वरूप है, किन्तु कृष्ण तो स्वय भगवान् हैं।"[1]

और जब हम उनके विविध भाव-समन्वित चरित्र का अवलोकन करते हैं, तब उनके प्रति प्रयुक्त ऐसे विशेषणो से हमको आश्चर्य नही होता। वे एक ही स्वरूप मे अपूर्व सन्यासी और अद्भुत गृहस्थ थे, उनमे अत्यन्त अद्भुत रजोगुण तथा शक्ति का विकास था और साथ ही वे अत्यन्त अद्भुत त्याग का जीवन बिताते थे। बिना गीता का अध्ययन किये कृष्ण-चरित्र कभी समझ मे नही आ सकता, क्योकि अपने उपदेशो के वे आकारस्वरूप थे। प्रत्येक अवतार, जिसका प्रचार करने वे आये थे, उसके जीवित उदाहरण के रूप मे अवतरित हुए। गीता के प्रचारक कृष्ण सदा भगवद्गीता के उपदेशो की साकार मूर्ति थे, वे अनासक्ति के उज्ज्वल उदाहरण थे। उन्होंने अपना सिंहासन त्याग दिया और कभी उसकी चिन्ता नही की। जिनके कहने ही से राजा अपने सिंहासनो को छोड देते थे, ऐसे समग्र भारत के नेता ने स्वय राजा होना नही चाहा। उन्होंने बाल्यकाल मे जिस सरल भाव से गोपियो के साथ क्रीडा की, जीवन की अन्य अवस्थाओ मे भी उनका वह सरल स्वभाव नही छूटा। उनके जीवन की उस चिरस्मरणीय घटना की याद आती है, जिसका समझना अत्यन्त कठिन है। जब तक कोई पूर्ण ब्रह्मचारी और पवित्र स्वभाव का नही बनता, तब तक उसे इसके समझने की चेष्टा करना उचित नही। उस प्रेम के अत्यन्त अद्भुत विकास को, जो उस वृन्दावन की मधुर लीला मे रूपक भाव से वर्णित हुआ है, प्रेमरूपी मदिरा के पान से जो उन्मत्त हुआ हो, उसको छोडकर और कोई नही समझ सकता। कौन उन गोपियो को प्रेम से उत्पन्न विरह-यत्रणा के भाव को समझ सकता है, जो प्रेम आदर्शस्वरूप है, जो प्रेम प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नही चाहता, जो प्रेम स्वर्ग की भी आकाक्षा नही करता, जो प्रेम इहलोक और परलोक की किसी भी वस्तु की कामना नही करता? और हे मित्रो, इसी गोपी-प्रेम के माध्यम से सगुण और निर्गुण ईश्वरवाद के सघर्ष का एकमात्र समाधान मिल सका है। हम जानते हैं, सगुण ईश्वर मनुष्य की उच्चतम धारणा है। हम यह भी जानते हैं कि दार्शनिक दृष्टि से समग्र जगद्व्यापी, समस्त ससार जिसकी अभिव्यक्ति है, उस निर्गुण ईश्वर मे विश्वास ही स्वाभाविक है। पर साथ ही हम साकार वस्तु की कामना करते हैं, ऐसी वस्तु चाहते है, जिसको हम पकड सकें, जिसके चरणो पर अपने हृदय को उत्सर्ग कर सकें। इसलिए सगुण ईश्वर ही मनुष्य स्वभाव की उच्चतम धारणा है। किन्तु युक्ति इस धारणा से विस्मित रह

---

१ एते चाशकला पुस कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

स्वरूप आदर्श तनय आदर्श पति आदर्श पिता सर्वोपरि आदर्श राजा राम का चरित्र हमारे सम्मुख महान् ऋषि वाल्मीकि के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। महाकवि ने जिस भाषा में रामचरित्र का वर्णन किया है, उसकी अपेक्षा अधिक पावन, प्राञ्जल, मधुर अथवा सरल भाषा हो ही नहीं सकती। और सीता के विषय में क्या कहा जाय! तुम संसार के समस्त प्राचीन साहित्य को छान डालो और मैं तुमसे निःसंकोच कहता हूँ कि तुम संसार के भावी साहित्य का भी मंथन कर सकते हो, किन्तु उसमें से तुम सीता के समान दूसरा चरित्र नहीं निकाल सकोगे। सीता चरित्र अद्वितीय है। यह चरित्र सदा के लिए एक ही बार चित्रित हुआ है। राम तो कदाचित् अनेक हो गये हैं, किन्तु सीता और नहीं हुई। भारतीय स्त्रियों को जैसा होना चाहिए, सीता उनके लिए आदर्श है। स्त्री चरित्र के जितने भारतीय आदर्श हैं, वे सब सीता के ही चरित्र से उत्पन्न हुए हैं और समस्त आर्यावर्त भूमि में सहस्रों वर्षों से वे स्त्री-पुरुष-बालक की पूजा पा रही हैं। महामहिमामयी सीता, स्वयं शुद्धता से भी शुद्ध, धैर्य तथा सहिष्णुता का सर्वोच्च आदर्श सीता सदा इसी भाव से पूजी जायेंगी। जिन्होंने अविचलित भाव से ऐसे महादुःख का जीवन व्यतीत किया, वही नित्य साध्वी सदा शुद्धस्वभाव सीता, आदर्श पत्नी सीता, मनुष्य लोक की आदर्श, देवलोक की भी आदर्श नारी पुण्य-चरित्र सीता सदा हमारी राष्ट्रीय देवी बनी रहेंगी। हम सभी उनके चरित्र को भली भाँति जानते हैं, इसलिए उनका विशेष वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। चाहे हमारे सब पुराण नष्ट हो जायँ, यहाँ तक कि हमारे वेद भी लुप्त हो जायँ, हमारी संस्कृत भाषा सदा के लिए काल स्रोत में विलुप्त हो जाय, किन्तु मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो, जब तक भारत में अतिशय ग्राम्य भाषा बोलनेवाले पाँच भी हिन्दू रहेंगे, तब तक सीता की कथा विद्यमान रहेगी। सीता का प्रवेश हमारी जाति की अस्थि-मज्जा में हो चुका है, प्रत्येक हिन्दू नर-नारी के रक्त में सीता विराजमान हैं। हम सभी सीता की सन्तान हैं। हमारी नारियों को आधुनिक भाव में रँगने की जो चेष्टाएँ हो रही हैं, यदि उन सब प्रयत्नों में उनको सीता-चरित्र के आदर्श से भ्रष्ट करने की चेष्टा होगी, तो वे सब असफल होंगे, जैसा कि हम प्रतिदिन देखते हैं। भारतीय नारियों से सीता के चरण-चिह्नों का अनुसरण कराकर अपनी उन्नति की चेष्टा करनी होगी, यही एकमात्र पथ है।

उसके पश्चात् हैं भगवान् श्रीकृष्ण, जो नाना भाव से पूजे जाते हैं और जो पुरुष के समान ही स्त्री के, बच्चों के समान ही वृद्ध के परम प्रिय इष्ट देवता हैं। मेरा अभिप्राय उनसे है, जिन्हें भागवतकार अवतार कहके भी तृप्त नहीं होते बल्कि कहते हैं—

"अन्यान्य अवतार उस भगवान् के अंश और फलस्वरूप है, किन्तु कृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं।"[1]

और जब हम उनके विविध भाव-समन्वित चरित्र का अवलोकन करते हैं, तब उनके प्रति प्रयुक्त ऐसे विशेषणों से हमको आश्चर्य नही होता। वे एक ही स्वरूप मे अपूर्व सन्यासी और अद्भुत गृहस्थ थे, उनमे अत्यन्त अद्भुत रजोगुण तथा शक्ति का विकास था और साथ ही वे अत्यन्त अद्भुत त्याग का जीवन बिताते थे। बिना गीता का अध्ययन किये कृष्ण-चरित्र कभी समझ मे नही आ सकता, क्योंकि अपने उपदेशो के वे आकारस्वरूप थे। प्रत्येक अवतार, जिसका प्रचार करने वे आये थे, उसके जीवित उदाहरण के रूप मे अवतरित हुए। गीता के प्रचारक कृष्ण सदा भगवद्गीता के उपदेशो की साकार मूर्ति थे, वे अनासक्ति के उज्ज्वल उदाहरण थे। उन्होंने अपना सिंहासन त्याग दिया और कभी उसकी चिन्ता नही की। जिनके कहने ही से राजा अपने सिंहासनो को छोड देते थे, ऐसे समग्र भारत के नेता ने स्वयं राजा होना नही चाहा। उन्होंने बाल्यकाल मे जिस सरल भाव से गोपियो के साथ क्रीडा की, जीवन की अन्य अवस्थाओ मे भी उनका वह सरल स्वभाव नही छूटा। उनके जीवन की उस चिरस्मरणीय घटना की याद आती है, जिसका समझना अत्यन्त कठिन है। जब तक कोई पूर्ण ब्रह्मचारी और पवित्र स्वभाव का नही बनता, तब तक उसे इसके समझने की चेष्टा करना उचित नही। उस प्रेम के अत्यन्त अद्भुत विकास को, जो उस वृन्दावन की मधुर लीला मे रूपक भाव से वर्णित हुआ है, प्रेमरूपी मदिरा के पान से जो उन्मत्त हुआ हो, उसको छोडकर और कोई नही समझ सकता। कौन उन गोपियो को प्रेम से उत्पन्न विरह-यत्रणा के भाव को समझ सकता है, जो प्रेम आदर्शस्वरूप है, जो प्रेम प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नही चाहता, जो प्रेम स्वर्ग की भी आकाक्षा नही करता, जो प्रेम इहलोक और परलोक की किसी भी वस्तु की कामना नही करता? और हे मित्रो, इसी गोपी-प्रेम के माध्यम से सगुण और निर्गुण ईश्वरवाद के सघर्ष का एकमात्र समाधान मिल सका है। हम जानते हैं, सगुण ईश्वर मनुष्य की उच्चतम धारणा है। हम यह भी जानते हैं कि दार्शनिक दृष्टि से समग्र जगद्व्यापी, समस्त ससार जिसकी अभिव्यक्ति है, उस निर्गुण ईश्वर मे विश्वास ही स्वाभाविक है। पर साथ ही हम साकार वस्तु की कामना करते हैं, ऐसी वस्तु चाहते हैं, जिसको हम पकड सकें, जिसके चरणो पर अपने हृदय को उत्सर्ग कर सकें। इसलिए सगुण ईश्वर ही मनुष्य स्वभाव की उच्चतम धारणा है। किन्तु युक्ति इस धारणा से विस्मित रह

१ एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

जाती है। यह वही अति प्राचीन प्राचीनतम समस्या है जिसका ब्रह्मसूत्रों में विचार किया गया है, वनवास के समय युधिष्ठिर के साथ द्रौपदी ने जिसका विचार किया है, यदि एक सगुण, सम्पूर्ण दयामय सर्वशक्तिमान ईश्वर है तो इस नारकीय संसार का अस्तित्व क्यों है? उसने उसकी सृष्टि क्यों की? उस ईश्वर को महापक्षपाती कहना ही उचित है। इसकी किसी प्रकार मीमांसा नहीं होती। इसकी मीमांसा गोपियों के प्रेम के सम्बन्ध में जो तुम पढ़ते हो, मात्र उससे हो सकती है। वे कृष्ण के प्रति प्रयुक्त किसी विशेषण को घृणा करती हैं, वे यह जानने की चिन्ता नहीं करतीं कि कृष्ण सृष्टिकर्ता हैं, वे यह जानने की चिन्ता नहीं करतीं कि वह सर्वशक्तिमान हैं, वे यह जानने की भी चिन्ता नहीं करतीं कि वह सर्वसमर्थवान हैं। वे केवल यही समझती हैं कि कृष्ण प्रेममय है, यही उनके लिए यथेष्ट है। गोपियाँ कृष्ण को केवल वृन्दावन का कृष्ण समझती हैं। बहुत सेनाओं के नेता राजाधिराज कृष्ण उनके निकट सदा गोप ही थे।

न धनं न जनं न च सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

—हे जगदीश, मैं धन, जन, कविता अथवा सुन्दरी—कुछ भी नहीं चाहता, हे ईश्वर, आपके प्रति जन्मजन्मान्तरों में मेरी अहैतुकी भक्ति हो। यह अहैतुकी भक्ति, यह निष्काम कर्म, यह निरपेक्ष कर्तव्य-निष्ठा का आदर्श धर्म के इतिहास में एक नया अध्याय है। मानव-इतिहास में प्रथम बार भारतभूमि पर सर्वश्रेष्ठ अवतार श्री कृष्ण के मुँह से पहले पहल यह तत्त्व निकला था। भय और प्रलोभनों के धर्म सदा के लिए विदा हो गये और मनुष्य-हृदय में नरक-भय और स्वर्ग-सुख-भोग के प्रलोभन होते हुए भी ऐसे सर्वोत्तम आदर्श का अभ्युदय हुआ, जैसे प्रेम प्रेम के निमित्त, कर्तव्य कर्तव्य के निमित्त, कर्म कर्म के निमित्त।

और यह प्रेम कैसा है? मैंने तुम लोगों से कहा है कि गोपी-प्रेम को समझना बड़ा कठिन है। हमारे बीच भी ऐसे मूर्खों का अभाव नहीं है जो श्री कृष्ण के जीवन के ऐसे अति अपूर्व अंश के अद्भुत तात्पर्य को समझने में असमर्थ हैं। मैं पुनः कहता हूँ कि हमारे ही रक्त से उत्पन्न अनेक अपवित्र मूर्ख हैं जो गोपी-प्रेम का नाम सुनते ही मानो उसको अत्यन्त अपावन समझकर भय से दूर भाग जाते हैं। उनसे मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि पहले अपने मन को शुद्ध करो और तुमको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जिस इतिहासकार ने गोपियों के इस अद्भुत प्रेम का वर्णन किया है, वह आजन्म पवित्र, नित्य शुद्ध व्यासपुत्र शुकदेव हैं। जब तक हृदय में स्वार्थपरता रहेगी, तब तक भगवत्प्रेम असम्भव है। यह केवल दूकानदारी

है कि 'मैं आपको कुछ देता हूँ, भगवान् आप भी मुझको कुछ दीजिए।' और भगवान् कहते हैं, "यदि तुम ऐसा न भी करोगे, तो तुम्हारे मरने पर मैं तुम्हे देख लूंगा—चिरकाल तक तुम्हे जलाकर मारूँगा।" सकाम व्यक्ति की ईश्वर-धारणा ऐसी ही होती है। जब तक मस्तिष्क मे ऐसे भाव रहेगे, तब तक गोपियो की प्रेमजनित विरह की उन्मत्तता मनुष्य किस प्रकार समझेंगे! 'एक बार, केवल एक ही बार यदि उन मधुर अधरो का चुम्बन प्राप्त हो! जिसका तुमने एक बार चुम्बन किया है, चिरकाल तक तुम्हारे लिए उसकी पिपासा बढती जाती है, उसके सकल दु ख दूर हो जाते हैं, तब अन्यान्य विषयो की आसक्ति दूर हो जाती है, केवल तुम्ही उस समय प्रीति की वस्तु हो जाते हो।"[1]

पहले काचन, नाम तथा यश और क्षुद्र मिथ्या ससार के प्रति आसक्ति को छोडो। तभी, केवल तभी तुम गोपी-प्रेम को समझोगे। यह इतना विशुद्ध है कि बिना सब कुछ छोडे इसको समझने की चेष्टा करना ही अनुचित है। जब तक अन्त करण पूर्ण रूप से पवित्र नही होता, तव तक इसको समझने की चेष्टा करना वृथा है। हर समय जिनके हृदय मे काम, धन, यशोलिप्सा के वुलबुले उठते हैं, ऐसे लोग गोपी-प्रेम की आलोचना करने तथा समझने का साहस करते हैं! कृष्ण-अवतार का मुख्य उद्देश्य यही गोपी-प्रेम की शिक्षा है, यहाँ तक कि गीता का महान् दर्शन भी उस प्रेमोन्मत्तता की बराबरी नही कर सकता। क्योकि गीता मे साधक को धीरे धीरे उसी चरम लक्ष्य मुक्ति के साधन का उपदेश दिया गया है, किन्तु इसमे रसास्वाद की उन्मत्तता, प्रेम की मदोन्मत्तता विद्यमान है, यहाँ गुरु और शिष्य, शास्त्र और उपदेश, ईश्वर और स्वर्ग सब एकाकार हैं, भय के भाव का चिह्न-मात्र नही है, सब बह गया है—शेष रह गयी है केवल प्रेमोन्मत्तता। उस समय ससार का कुछ भी स्मरण नही रहता, भक्त उस समय ससार मे उसी कृष्ण, एकमात्र उसी कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ नही देखता, उस समय वह समस्त प्राणियो मे कृष्ण के ही दर्शन करता है, उसका मुंह भी उस समय कृष्ण के ही समान दीखता है, उसकी आत्मा उस समय कृष्णमय हो जाती है। यह है कृष्ण की महिमा!

छोटी छोटी बातो मे समय वृथा मत गँवाओ, उनके जीवन के जो मुख्य चरित्र हैं, जो तात्त्विक अश हैं, उन्हीका सहारा लेना चाहिए। कृष्ण के जीवन-चरित्र मे वहुत से ऐतिहासिक अन्तर्विरोध मिल सकते हैं, कृष्ण के चरित्र मे वहुत से प्रक्षेप हो सकते हैं। ये सभी सत्य हो सकते हैं, किन्तु फिर भी उस समय समाज मे जो एक

---

१ सुरतवर्धन शोकनाशन स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्वितम्।
इतररागविस्मारण नृणा वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्॥ श्रीमद्भागवत॥

अपूर्व नये भाव का उदय हुआ था उसका कुछ आधार अवश्य था। अन्य किसी भी महापुरुष या पैगम्बर के जीवन पर विचार करने पर यह जान पड़ता है कि वह पैगम्बर अपने पूर्ववर्ती कितने ही भावों का विकास मात्र है हम देखते हैं कि उसने अपने देश में यहाँ तक कि उस समय जैसी शिक्षा प्रचलित थी केवल उसीका प्रचार किया है यहाँ तक कि उस महापुरुष के अस्तित्व पर भी सन्देह हो सकता है, किन्तु मैं चुनौती देता हूँ कि कोई यह साबित कर दे कि कृष्ण के निष्काम कर्म निरपेक्ष कर्तव्य निष्ठा और निष्काम प्रेम-तत्त्व के ये उपदेश संसार में मौलिक आविष्कार नहीं हैं। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि किसी एक व्यक्ति ने निश्चय ही इन तत्त्वों को प्रस्तुत किया है। यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि ये तत्त्व किसी दूसरे मनुष्य से लिये गये हैं। कारण यह कि कृष्ण के उत्पन्न होने के समय सर्वसाधारण में इन तत्त्वों का प्रचार नहीं था। भगवान् श्री कृष्ण ही इनके प्रथम प्रचारक हैं उनके शिष्य वेदव्यास ने पूर्वोक्त तत्त्वों का साधारण जनों में प्रचार किया। ऐसा श्रेष्ठ आदर्श और कभी चित्रित नहीं हुआ। हम उनके ग्रन्थ में गोपीजनवल्लभ वृन्दावन-विहारी से और कोई उच्च तर आदर्श नहीं पाते। जब तुम्हारे हृदय में इस उन्मत्तता का प्रवेश होगा जब तुम भाग्यवती गोपियों के भाव को समझोगे तभी तुम जानोगे कि प्रेम क्या वस्तु है! जब समस्त संसार तुम्हारी दृष्टि से अन्तर्धान हो जायेगा जब तुम्हारे हृदय में और कोई कामना नहीं रहेगी जब तुम्हारा चित्त पूर्णरूप से शुद्ध हो जायेगा अन्य कोई लक्ष्य न होगा यहाँ तक कि जब तुममें सत्यानुसन्धान की वासना भी नहीं रहेगी तभी तुम्हारे हृदय में उस प्रेमोन्मत्तता का आविर्भाव होगा तभी तुम गोपियों की अनन्त अहैतुकी प्रेम-भक्ति की महिमा समझोगे। यही लक्ष्य है। यदि तुमको यह प्रेम मिला तो सब कुछ मिल गया।

इस बार हम नीचे की तहों में प्रवेश करते हुए गीता-प्रचारक कृष्ण की विवेचना करेंगे। भारत में इस समय कितने ही लोगों में ऐसी चेष्टा दिखायी पड़ती है, जो घोड़े के आगे गाड़ी जोतनेवालों की सी होती है। हममें से बहुतों की यह धारणा है कि श्री कृष्ण का गोपियों के साथ प्रेमलीला करना बड़ी ही खटकनेवाली बात है। यूरोप के लोग भी इसे पसन्द नहीं करते। अमुक पण्डित इस गोपी-प्रेम को अच्छा नहीं समझते अतएव अवश्य गोपियों को बहा दो! बिना यूरोप के साहबों के अनुमोदन के कृष्ण कैसे टिक सकते हैं? कदापि नहीं टिक सकते। महाभारत में दो-एक स्थानों को छोड़कर, वे भी वैसे उल्लेखनीय नहीं गोपियों का प्रसंग तो है ही नहीं। केवल द्रौपदी की प्रार्थना में और शिशुपाल-वध के समय शिशुपाल की वक्तृता में वृन्दावन का वर्णन आया है। ये सब प्रक्षेप अंश हैं।

यूरोप के साहब लोग जिसको नही चाहते, वह सब फेंक देना चाहिए। गोपियो का वर्णन, यहाँ तक कि कृष्ण का वर्णन भी प्रक्षिप्त है ! जो लोग ऐसी घोर वाणिज्य-वृत्ति के हैं, जिनके धर्म का आदर्श भी व्यवसाय ही से उत्पन्न हुआ है, उनका विचार यही है कि वे इस ससार मे कुछ करके स्वर्ग प्राप्त करेंगे। व्यवसायी सूद दर सूद चाहते हैं, वे यहाँ ऐसा कुछ पुण्य-सचय करना चाहते है, जिसके फल से स्वर्ग मे जाकर सुख-भोग करेंगे। इनके धर्ममत मे गोपियो के लिए अवश्य स्थान नही है। अब हम उस आदर्श-प्रेमी श्री कृष्ण का वर्णन छोडकर और भी नीचे की तह मे प्रवेश करके गीता-प्रचारक श्री कृष्ण की विवेचना करेंगे। यहाँ भी हम देखते है कि गीता के समान वेदो का भाष्य कभी नही बना है और बनेगा भी नही। श्रुति अथवा उपनिषदो का तात्पर्य समझना बडा कठिन है, क्योकि नाना भाष्यकारो ने अपने अपने मतानुसार उनकी व्याख्या करने की चेष्टा की है। अन्त मे जो स्वय श्रुति के प्रेरक है, उन्ही भगवान् ने आविर्भूत होकर गीता के प्रचारक रूप से श्रुति का अर्थ समझाया और आज भारत मे उस व्याख्या-प्रणाली की जैसी आवश्यकता है, सारे ससार मे इसकी जैसी आवश्यकता है, वैसी किसी और वस्तु की नही। यह बडे ही आश्चर्य की बात है कि परवर्ती शास्त्र-व्याख्याता गीता तक की व्याख्या करने मे बहुधा भगवान् के वाक्यो का अर्थ और भाव-प्रवाह नही समझ सके। गीता मे क्या है और आधुनिक भाष्य-कारो मे हम क्या देखते है ? एक अद्वैतवादी भाष्यकार ने किसी उपनिषद् की व्याख्या की, जिसमे बहुत से द्वैतभाव के वाक्य है। उसने उनको तोड-मरोडकर कुछ अर्थ ग्रहण किया और उन सबका अपनी व्याख्या के अनुरूप मनमाना अर्थ लगा लिया। फिर द्वैतवादी भाष्यकार ने भी व्याख्या करनी चाही, उसमे अनेक अद्वैतमूलक अश हैं, जिनकी खीचतान उसने उनसे द्वैतमूलक अर्थ ग्रहण करने के लिए की। परन्तु गीता मे इस प्रकार के किसी अर्थ के बिगाडने की चेष्टा तुमको नही मिलेगी। भगवान् कहते हैं, ये सब सत्य हैं, जीवात्मा धीरे धीरे स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से अति सूक्ष्म सीढियो पर चढती जाती है, इस प्रकार क्रमश-वह उस चरम लक्ष्य अनन्त पूर्णस्वरूप को प्राप्त होती है। गीता मे इसी भाव को समझाया गया है, यहाँ तक कि कर्मकाड भी गीता मे स्वीकृत हुआ है और यह दिखलाया गया है कि यद्यपि कर्मकाड साक्षात् मुक्ति का साधन नही है, किन्तु गौण भाव से मुक्ति का साधन है, तथापि वह सत्य है, मूर्ति-पूजा भी सत्य है, सब प्रकार के अनुष्ठान और क्रिया-कर्म भी सत्य हैं, केवल एक विषय पर ध्यान रखना होगा—वह है चित्त की शुद्धि। यदि हृदय शुद्ध और निष्कपट हो, तभी उपासना ठीक उतरती है और हमे चरम लक्ष्य तक पहुँचा देती है। ये विभिन्न

अपूर्व नये भाव का उदय हुआ था उसका कुछ आधार अवश्य था। अन्य किसी भी महापुरुष या पैग़म्बर के जीवन पर विचार करने पर यह जान पड़ता है कि वह पैग़म्बर अपने पूर्ववर्ती कितने ही भावों का विकास मात्र है हम देखते हैं कि उसने अपने देश में यहाँ तक कि उस समय जैसी शिक्षा प्रचलित थी केवल उसीका प्रचार किया है यहाँ तक कि उस महापुरुष के अस्तित्व पर भी सन्देह हो सकता है, किन्तु मैं चुनौती देता हूँ कि कोई यह साबित कर दे कि कृष्ण के निष्काम कर्म निरपेक्ष कर्तव्य-निष्ठा और निष्काम प्रेम-तत्त्व के ये उपदेश संसार में मौलिक आविष्कार नहीं हैं। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि किसी एक व्यक्ति ने निश्चय ही इन तत्त्वों को प्रस्तुत किया है। यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि ये तत्त्व किसी दूसरे मनुष्य से लिये गये हैं। कारण यह कि कृष्ण के उत्पन्न होने के समय सर्वसाधारण में इन तत्त्वों का प्रचार नहीं था। भगवान् श्री कृष्ण ही इनके प्रथम प्रचारक हैं उनके शिष्य वेदव्यास ने पूर्वोक्त तत्त्वों का साधारण जनों में प्रचार किया। ऐसा श्रेष्ठ आदर्श और कभी चित्रित नहीं हुआ। हम उनके ग्रन्थ में गोपीजनवल्लभ वृन्दावन-विहारी से और कोई उच्चतर आदर्श नहीं पाते। जब तुम्हारे हृदय में इस उन्मत्तता का प्रवेश होगा जब तुम भाग्यवती गोपियों के भाव को समझोगे तभी तुम जानोगे कि प्रेम क्या वस्तु है। जब समस्त संसार तुम्हारी दृष्टि से अन्तर्धान हो जायेगा जब तुम्हारे हृदय में और कोई कामना नहीं रहेगी जब तुम्हारा चित्त पूर्णरूप से शुद्ध हो जायेगा अन्य कोई लक्ष्य न होगा यहाँ तक कि जब तुममें सत्यानुसन्धान की वासना भी नहीं रहेगी तभी तुम्हारे हृदय में उस प्रेमोन्मत्तता का आविर्भाव होगा तभी तुम गोपियों की अनन्त अहैतुकी प्रेम-भक्ति की महिमा समझोगे। यही लक्ष्य है। यदि तुमको यह प्रेम मिला तो सब कुछ मिल गया।

इस बार हम नीचे की तहों में प्रवेश करते हुए गीता-प्रचारक कृष्ण की विवेचना करेंगे। भारत में इस समय कितने ही लोगों में ऐसी चेष्टा दिखायी पड़ती है, जो घोड़े के आगे गाड़ी जोतनेवालों की सी होती है। हममें से बहुतों की यह धारणा है कि श्री कृष्ण का गोपियों के साथ प्रेमलीला करना बड़ी ही खटकनेवाली बात है। यूरोप के लोग भी इसे पसन्द नहीं करते। अमुक पण्डित इस गोपी-प्रेम को अच्छा नहीं समझते अतएव अवश्य गोपियों को बहा दो! बिना यूरोप के साहबों के अनुमोदन के कृष्ण कैसे टिक सकते हैं? कदापि नहीं टिक सकते। महाभारत में दो-एक स्थानों को छोड़कर, वे भी वैसे उल्लेखनीय नहीं गोपियों का प्रसंग तो है ही नहीं। केवल द्रौपदी की प्रार्थना में और शिशुपाल-वध के समय शिशुपाल की वक्तृता में वृन्दावन का वर्णन आया है। ये सब प्रक्षेप अंश हैं।

हमारे शाक्यमुनि गौतम हैं। उनके उपदेशो और प्रचार-कार्य से तुम सभी अवगत हो। हम उनको ईश्वरावतार समझकर उनकी पूजा करते हैं, नैतिकता का इतना बडा निर्भीक प्रचारक ससार मे और उत्पन्न नही हुआ, कर्मयोगियो मे सर्वश्रेष्ठ स्वय कृष्ण ही मानो शिष्यरूप से अपने उपदेशो को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए उत्पन्न हुए। पुन वही वाणी सुनाई दी, जिसने गीता मे शिक्षा दी थी, **स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।** (गीता २।४०)—'इस धर्म का थोडा सा अनुष्ठान करने पर भी महाभय से रक्षा होती है।' **स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परा गतिम्।** (गीता ९।३२)—'स्त्री, वैश्य और शूद्र तक परमगति को प्राप्त होते हैं। गीता के वाक्य, श्री कृष्ण की वज्र के समान गम्भीर और महती वाणी, सबके बन्धन, सबकी शृखला तोड देती है और सभी को उस परम पद पाने का अधिकारी कर देती है।

**इहैव तैर्जित सर्गो येषा साम्ये स्थित मनः।**
**निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिता ॥**
(गीता ५।१९)

—'जिनका मन साम्य भाव मे अवस्थित है, उन्होंने यही सारे ससार को जीत लिया है। ब्रह्म समस्वभाव और निर्दोष है, इसलिए वे ब्रह्म मे ही अवस्थित हैं।'

**सम पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।**
**न हिनस्त्यात्मनात्मान ततो याति परा गतिम् ॥**
(गीता १३।२८)

—'परमेश्वर को सर्वत्र तुल्य रूप से अवस्थित देखकर ज्ञानी आत्मा से आत्मा की हिंसा नही करता, इसलिए वह परम गति को प्राप्त होता है।'

गीता के उपदेशो के जीते-जागते उदाहरणस्वरूप, गीता के उपदेशक दूसरे रूप मे पुन इस मर्त्य लोक मे पधारे, जिससे जनता द्वारा उसका एक कण भी कार्यरूप मे परिणत हो सके। ये ही शाक्यमुनि हैं। ये दीन-दु खियो को उपदेश देने लगे। सर्वसाधारण के हृदय तक पहुँचने के लिए देवभाषा संस्कृत को भी छोड ये लोकभाषा मे उपदेश देने लगे। राजसिंहासन को त्यागकर ये दु खी, गरीब, पतित, भिखमगो के साथ रहने लगे। इन्होंने दूसरे राम के समान चाडाल को भी छाती से लगा लिया।

तुम सभी उनके महान् चरित्र और अद्भुत प्रचार-कार्य को जानते हो। किन्तु इस प्रचार-कार्य मे एक भारी त्रुटि थी, जिसके लिए हम आज तक दु ख

उपासना-प्रणालियाँ सत्य हैं, क्योंकि यदि वे सत्य न होतीं तो उनकी सृष्टि ही क्यों हुई? विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय कुछ पाखण्डी एवं दुष्ट लोगों द्वारा नहीं बनाये गये हैं, और न उन्होंने धन के लोभ से इन धर्मों और सम्प्रदायों की सृष्टि की है, जैसा कि कुछ आधुनिक लोगों का मत है। बाह्यदृष्टि से उनकी व्याख्या कितनी ही युक्तियुक्त क्यों न प्रतीत हो पर यह बात सत्य नहीं है, इनकी सृष्टि इस तरह नहीं हुई। जीवात्मा की स्वाभाविक आवश्यकता के लिए इन सबका अभ्युदय हुआ है। विभिन्न श्रेणियों के मनुष्यों की धर्म-पिपासा को परितृप्त करने के लिए इनका अभ्युदय हुआ है, इसलिए तुम्हें इनके विरुद्ध शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं। जिस दिन इनकी आवश्यकता नहीं रहेगी, उस दिन उस आवश्यकता के अभाव के साथ साथ इनका भी लोप हो जायगा। पर जब तक उनकी आवश्यकता रहेगी, तब तक तुम्हारी आलोचना और तुम्हारी शिक्षा के बावजूद ये अवश्य विद्यमान रहेंगे। तलवार और बन्दूक के जोर से तुम संसार को खून में बहा दे सकते हो किन्तु जब तक मूर्तियों की आवश्यकता रहेगी, तब तक मूर्ति-पूजा अवश्य रहेगी। ये विभिन्न अनुष्ठान-पद्धतियाँ और धर्म के विभिन्न सोपान अवश्य रहेंगे और हम भगवान् श्री कृष्ण के उपदेश से समझ सकते हैं कि इनकी क्या आवश्यकता है।

इसके बाद ही भारतीय इतिहास का एक शोकजनक अध्याय शुरू होता है। हम गीता में भी भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के विरोध के कोलाहल की दूर से आती हुई आवाज सुन पाते हैं और देखते हैं कि समन्वय के वे अद्भुत प्रचारक भगवान् श्री कृष्ण बीच में पड़कर विरोध को हटा रहे हैं। वे कहते हैं, "सारा जगत् मुझमें उसी तरह गुँथा हुआ है, जिस तरह धागे में मणि गुँथी रहती है।"[1] साम्प्रदायिक झगड़ों की दूर से सुनायी देनेवाली धीमी आवाज हम तभी से सुन रहे हैं। सम्भव है कि भगवान् के उपदेश से ये झगड़े कुछ देर के लिए रुक गये हों तथा समन्वय और शान्ति का संचार हुआ हो, किन्तु यह विरोध फिर उत्पन्न हुआ। केवल धर्ममत ही पर नहीं, सम्भवतः वर्ण के आधार पर भी यह विवाद चलता रहा—हमारे समाज के दो प्रबल अंग ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों, राजाओं तथा पुरोहितों के बीच विवाद आरम्भ हुआ था। और एक हजार वर्ष तक जिस विशाल तरंग ने समग्र भारत को सराबोर कर दिया था उसके सर्वोच्च शिखर पर हम एक और महामहिम मूर्ति को देखते हैं और वे

---

१ मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥ गीता ७।७॥

हमारे शाक्यमुनि गौतम हैं। उनके उपदेशो और प्रचार-कार्य से तुम सभी अवगत हो। हम उनको ईश्वरावतार समझकर उनकी पूजा करते है, नैतिकता का इतना बडा निर्भीक प्रचारक ससार मे और उत्पन्न नही हुआ, कर्मयोगियो मे सर्वश्रेष्ठ स्वय कृष्ण ही मानो शिष्यरूप से अपने उपदेशो को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए उत्पन्न हुए। पुन वही वाणी सुनाई दी, जिसने गीता मे शिक्षा दी थी, **स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।** (गीता २।४०)—'इस धर्म का थोडा सा अनुष्ठान करने पर भी महाभय से रक्षा होती है।' **स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परा गतिम्।** (गीता ९।३२)—'स्त्री, वैश्य और शूद्र तक परमगति को प्राप्त होते हैं। गीता के वाक्य, श्री कृष्ण की वज्र के समान गम्भीर और महती वाणी, सबके बन्धन, सबकी शृखला तोड देती है और सभी को उस परम पद पाने का अधिकारी कर देती है।

**इहैव तैर्जित सर्गो येषा साम्ये स्थित मन ।**
**निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिता ॥**
(गीता ५।१९)

—'जिनका मन साम्य भाव मे अवस्थित है, उन्होने यही सारे ससार को जीत लिया है। ब्रह्म समस्वभाव और निर्दोष है, इसलिए वे ब्रह्म मे ही अवस्थित हैं।'

**सम पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।**
**न हिनस्त्यात्मनात्मान ततो याति परां गतिम्॥**
(गीता १३।२८)

—'परमेश्वर को सर्वत्र तुल्य रूप से अवस्थित देखकर ज्ञानी आत्मा से आत्मा की हिंसा नही करता, इसलिए वह परम गति को प्राप्त होता है।'

गीता के उपदेशो के जीते-जागते उदाहरणस्वरूप, गीता के उपदेशक दूसरे रूप मे पुन इस मर्त्य लोक मे पधारे, जिससे जनता द्वारा उसका एक कण भी कार्य-रूप मे परिणत हो सके। ये ही शाक्यमुनि हैं। ये दीन-दु खियो को उपदेश देने लगे। सर्वसाधारण के हृदय तक पहुँचने के लिए देवभाषा संस्कृत को भी छोड ये लोकभाषा मे उपदेश देने लगे। राजसिंहासन को त्यागकर ये दु खी, गरीब, पतित, भिखमगो के साथ रहने लगे। इन्होने दूसरे राम के समान चाडाल को भी छाती से लगा लिया।

तुम सभी उनके महान् चरित्र और अद्‌भुत प्रचार-कार्य को जानते हो। किन्तु इस प्रचार-कार्य मे एक भारी त्रुटि थी, जिसके लिए हम आज तक दु ख

भोग रहे हैं। भगवान् बुद्ध का कुछ दोष नहीं है, उनका चरित्र परम विशुद्ध और उज्ज्वल है। खेद का विषय है कि बौद्ध धर्म के प्रचार से जो विभिन्न असभ्य और अशिक्षित जातियाँ धर्म में घुसने लगीं, वे बुद्धदेव के उच्च आदर्शों का ठीक अनुसरण न कर सकीं। इन जातियों में नाना प्रकार के कुसंस्कार और बीभत्स उपासना-पद्धतियाँ थीं, उनके झुंड के झुंड आर्यों के समाज में घुसने लगे। कुछ समय के लिए ऐसा प्रतीत हुआ कि वे सभ्य बन गये, किन्तु एक ही शताब्दी में उन्होंने अपने सर्प, भूत प्रेत आदि निकाल लिये, जिनकी उपासना उनके पूर्वज किया करते थे और इस प्रकार सारा भारत कुसंस्कारों का लीलाक्षेत्र बनकर घोर अवनति को पहुँचा। पहले बौद्ध प्राणिहिंसा की निन्दा करते हुए वैदिक यज्ञों के घोर विरोधी हो गये थे। उस समय घर घर इन यज्ञों का अनुष्ठान होता था। हर एक घर पर यज्ञ के लिए आग जलती थी—बस, उपासना के लिए और कुछ ठाट-बाट न था। बौद्ध धर्म के प्रचार से इन यज्ञों का लोप हो गया। उनकी जगह बड़े बड़े ऐश्वर्ययुक्त मन्दिर, आडम्बरी अनुष्ठान-पद्धतियाँ, शानदार पुरोहित तथा वर्तमान काल में भारत में और जो कुछ दिखायी देता है, सबका आविर्भाव हुआ। कितने ही ऐसे आधुनिक पंडितों के, जिनसे अधिक ज्ञान की अपेक्षा की जाती है, ग्रन्थों को पढ़ने से यह विदित होता है कि बुद्ध ने ब्राह्मणों की मूर्ति-पूजा उठा दी थी। मुझे यह पढ़कर हँसी आ जाती है। वे नहीं जानते कि बौद्ध धर्म ही ने भारत में ब्राह्मण-धर्म और मूर्ति-पूजा की सृष्टि की थी।

एक ही दो वर्ष हुए, रूस-निवासी एक प्रतिष्ठित पुरुष ने एक पुस्तक प्रकाशित की। उसमें उन्होंने लिखा कि उन्हें ईसा मसीह के एक अद्भुत जीवन चरित्र का पता लगा है। उसी पुस्तक में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है कि ईसा धर्म शिक्षार्थ ब्राह्मणों के पास जगन्नाथ जी के मन्दिर में गये थे, किन्तु उनकी संकीर्णता और मूर्ति-पूजा से तंग आकर वे वहाँ से तिब्बत के लामाओं के पास गये और वहाँ से सिद्ध होकर स्वदेश लौटे। जिन्हें भारत के इतिहास का थोड़ा सा ज्ञान है वे इसी विवरण से जान सकते हैं कि पुस्तक में आद्योपान्त कैसा छल-प्रपंच भरा हुआ है, क्योंकि जगन्नाथ जी का मन्दिर तो एक प्राचीन बौद्ध मन्दिर है। हमने इसको एवं अन्यान्य बौद्ध मन्दिरों को हिन्दू मन्दिर बना लिया। इस प्रकार के कार्य हम इस समय भी बहुत करते रहेंगे। यही जगन्नाथ का इतिहास है और उस समय वहाँ एक भी ब्राह्मण न था, फिर भी कहा जा रहा है कि ईसा मसीह वहाँ ब्राह्मणों से उपदेश लेने के लिए गये थे। हमारे दिग्गज रूसी पुरातत्त्ववेत्ता की ऐसी ही राय है।

इस प्रकार प्राणिमात्र के प्रति दया के सिवा, अपूर्व आचारनिष्ठ धर्म और

नित्य आत्मा के अस्तित्व या अनस्तित्व सम्बन्धी बाल की खाल निकालनेवाले विचारो के होते हुए भी समग्र बौद्ध धर्मरूपी प्रासाद चूर चूर होकर गिर गया और उसका खँडहर बडा ही वीभत्स है। बौद्ध धर्म की अवनति से जिन घृणित आचारो का आविर्भाव हुआ, उनका वर्णन करने के लिए मेरे पास न समय है, न इच्छा ही। अति कुत्सित अनुष्ठान-पद्धतियाँ, अत्यन्त भयानक और अश्लील ग्रन्थ—जो मनुष्यो द्वारा न तो कभी लिखे गये थे, और न मनुष्य ने जिनकी कभी कल्पना तक की थी, अत्यन्त भीषण पाशव अनुष्ठान-पद्धतियाँ, जो और कभी धर्म के नाम से प्रचलित नही हुई थी—ये सभी गिरे हुए बौद्ध धर्म की सृष्टि हैं।

परन्तु भारत को जीवित रहना ही था, इसीलिए पुन भगवान् का आविर्भाव हुआ। जिन्होंने कहा था, "जब कभी धर्म की हानि होती है, तभी मैं आता हूँ"—वे फिर से आये। इस बार दक्षिण देश मे भगवान् का आविर्भाव हुआ। उस ब्राह्मण युवक का, जिसके बारे मे कहा गया है कि उसने सोलह वर्ष की उम्र मे ही अपनी सारी ग्रन्थ-रचना समाप्त की थी, उसी अद्भुत प्रतिभाशाली शकराचार्य का अभ्युदय हुआ। इस सोलह वर्ष के बालक के लेखो से आधुनिक सभ्य ससार विस्मित हो रहा है, वह अद्भुत बालक था। उसने सकल्प किया था कि समग्र भारत को उसके प्राचीन विशुद्ध मार्ग मे ले जाऊँगा। पर यह कार्य कितना कठिन और विशाल था, इसका विचार भी करो। उस समय भारत की जैसी अवस्था थी, इसका भी तुम लोगो को दिग्दर्शन कराता हूँ। जिन भीषण आचारो का सुधार करने को तुम लोग अग्रसर हो रहे हो, वे उसी अध पतन के युग के फल हैं। तातार, बलूची आदि भयानक जातियो के लोग भारत मे आकर बौद्ध बने और हमारे साथ मिल गये। अपने राष्ट्रीय आचारो को भी वे साथ लाये। इस तरह हमारा राष्ट्रीय जीवन अत्यन्त भयानक पाशव आचारो से भर गया। उक्त ब्राह्मण युवक को बौद्धो से विरासत मे यही मिला था और उसी समय से अब तक भारत भर मे इसी अध पतित बौद्ध धर्म पर वेदान्त की पुनर्विजय का कार्य सम्पन्न हो रहा है। अब भी यही काम जारी है, अब भी उसका अन्त नही हुआ। महा-दार्शनिक शकर ने आकर दिखलाया कि बौद्ध धर्म और वेदान्त के साराश मे विशेष अन्तर नही है। किन्तु उनके शिष्य अपने आचार्य के उपदेशो का मर्म न समझ हीन हो गये और आत्मा तथा ईश्वर का अस्तित्व अस्वीकार करके नास्तिक हो गये। शकर ने यही दिखलाया और तब सभी बौद्ध अपने प्राचीन धर्म का अवलम्बन करने लगे। पर वे इन अनुष्ठानो के आदी बन गये थे। इन अनुष्ठानो के लिए क्या किया जाय, यह कठिन समस्या उठ खडी हुई।

तब भक्तिमान रामानुज का अभ्युदय हुआ। शंकर की प्रतिभा प्रखर थी किन्तु उनका हृदय रामानुज के समान उदार नहीं था। रामानुज का हृदय शंकर की अपेक्षा अधिक विशाल था। उन्होंने पददलितों की पीड़ा का अनुभव किया और उनसे सहानुभूति की। उस समय की प्रचलित अनुष्ठान-पद्धतियों में उन्होंने यथाशक्ति सुधार किया और नयी अनुष्ठान-पद्धतियाँ, नयी उपासना-प्रणालियों की सृष्टि उन लोगों के लिए की, जिनके लिए ये अत्यावश्यक थीं। इसीके साथ साथ उन्होंने ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक सबके लिए सर्वोच्च आध्यात्मिक उपासना का द्वार खोल दिया। यह था रामानुज का कार्य। उनके कार्य का प्रभाव चारों ओर फैलने लगा, उत्तर भारत तक उसका प्रसार हुआ, वहाँ भी कई आचार्य इसी तरह कार्य करने लगे, किन्तु यह बहुत देर में मुसलमानों के शासन-काल में हुआ। उत्तर भारत के इन अपेक्षाकृत आधुनिक आचार्यों में से चैतन्य सर्वश्रेष्ठ हुए। रामानुज के समय से धर्म-प्रचार की एक विशेषता की ओर ध्यान दो—तब से धर्म का द्वार सर्वसाधारण के लिए खुला रहा। शंकर के पूर्ववर्ती आचार्यों का यह जैसा मूल मन्त्र था, रामानुज के परवर्ती आचार्यों का भी यह वैसा ही मूल मन्त्र रहा। मैं नहीं जानता कि लोग शंकर को अनुदार मत के पोषक क्यों कहते हैं। उनके लिखे ग्रन्थों में ऐसा कुछ भी नहीं मिलता, जो उनकी संकीर्णता का परिचय दे। जिस तरह भगवान् बुद्धदेव के उपदेश उनके शिष्यों के हाथ बिगड़ गये हैं, उसी तरह शंकराचार्य के उपदेशों पर संकीर्णता का जो दोष लगाया जाता है, सम्भवतः वह उनकी शिक्षा के कारण नहीं, वरन् उनके शिष्यों की अयोग्यता के कारण है। उत्तर भारत के महान् सन्त चैतन्य गोपियों के प्रेमोन्मत्त भाव के प्रतिनिधि थे। चैतन्यदेव स्वयं एक ब्राह्मण थे, उस समय के एक प्रसिद्ध नैयायिक वंश में उनका जन्म हुआ था। वे न्याय के अध्यापक थे, तर्क द्वारा सबको परास्त करते थे—यही उन्होंने बचपन से जीवन का उच्चतम आदर्श समझ रखा था। किसी महापुरुष की कृपा से इनका सम्पूर्ण जीवन बदल गया, तब इन्होंने वाद विवाद, तर्क, न्याय का अध्यापन सब कुछ छोड़ दिया। संसार में भक्ति के जितने बड़े बड़े आचार्य हुए हैं, प्रेमोन्मत्त चैतन्य उनमें से एक श्रेष्ठ आचार्य हैं। उनकी भक्ति-तरंग सारे बंगाल में फैल गयी, जिससे सबके हृदय को शान्ति मिली। उनके प्रेम की सीमा न थी। साधु, असाधु, हिन्दू, मुसलमान, पवित्र, अपवित्र, वेश्या, पतित—सभी उनके प्रेम के भागी थे, वे सब पर दया रखते थे। यद्यपि काल के प्रभाव से सभी अवनति को प्राप्त होते हैं और उनका चलाया हुआ धर्म-सम्प्रदाय घोर अवनति की दशा को पहुँच गया है, फिर भी आज तक वह दरिद्र, दुर्बल, जातिच्युत, पतित, किसी भी समाज में जिनका स्थान नहीं है, ऐसे लोगों का

आश्रयस्थान है। परन्तु साथ ही सत्य के लिए मुझे स्वीकार करना ही होगा कि दार्शनिक सम्प्रदायो मे ही हम अद्भुत उदार भाव देखते है। शकर-मतावलम्बी कोई भी यह बात स्वीकार नही करेगा कि भारत के विभिन्न सम्प्रदायो मे वास्तव मे कोई भेद है, किन्तु जाति-भेद के विषय मे शकर अत्यन्त सकीर्णता का भाव रखते थे। इसके विपरीत, प्रत्येक वैष्णवाचार्य मे हम जातिविषयक प्रश्नो की शिक्षा के बारे मे अद्भुत उदारता देखते है, जब कि उनमे धार्मिक प्रश्नो के विषय मे अत्यन्त सकीर्णता पाते है।

एक का था अद्भुत मस्तिष्क, दूसरे का था विशाल हृदय। अब एक ऐसे अद्भुत पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, जिसमे ऐसा ही हृदय और मस्तिष्क दोनो एक साथ विराजमान हो, जो शकर के प्रतिभा-सम्पन्न मस्तिष्क एव चैतन्य के अद्भुत, विशाल, अनन्त हृदय का एक ही साथ अधिकारी हो, जो देखे कि सब सम्प्रदाय एक ही आत्मा, एक ही ईश्वर की शक्ति से चालित हो रहे है और प्रत्येक प्राणी मे वही ईश्वर विद्यमान है, जिसका हृदय भारत मे अथवा भारत के बाहर दरिद्र, दुर्बल, पतित सबके लिए द्रवित हो, लेकिन साथ ही जिसकी विशाल बुद्धि ऐसे महान् तत्त्वो की परिकल्पना करे, जिनसे भारत मे अथवा भारत के बाहर सब विरोधी सम्प्रदायो मे समन्वय साधित हो और इस अद्भुत समन्वय द्वारा वह एक हृदय और मस्तिष्क के सार्वभौम धर्म को प्रकट करे। एक ऐसे ही पुरुष ने जन्म ग्रहण किया और मैंने वर्षों तक उनके चरणो तले बैठकर शिक्षा-लाभ का सौभाग्य प्राप्त किया। ऐसे एक पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, इसकी आवश्यकता पडी थी, और वह उत्पन्न हुआ। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि उसका समग्र जीवन एक ऐसे शहर के पास व्यतीत हुआ, जो पाश्चात्य भावो से उन्मत्त हो रहा था, जो भारत के सब शहरो की अपेक्षा विदेशी भावो से अधिक भरा हुआ था। वहाँ पुस्तकीय ज्ञान से हर प्रकार से अनभिज्ञ वह रहता था, यह महाप्रतिभासम्पन्न व्यक्ति अपना नाम तक लिखना नही जानता था।[1] किन्तु हमारे विश्वविद्यालय के बडे बडे अत्यन्त प्रतिभावान स्नातको ने उसको एक महान् बौद्धिक प्रतिभा के रूप मे स्वीकार किया। वे अद्भुत महा-पुरुष थे—श्री रामकृष्ण परमहस । यह तो एक बडी लम्बी कहानी है, आज रात को तुम्हे उनके विषय मे कुछ भी बताने का समय नही है। इसलिए मुझे भारतीय

---

१ सामान्यत यह प्रचलित है कि वे बिल्कुल निरक्षर थे, पर बाद मे अनुसधान से पता चला कि वे थोड़ा बहुत लिखना-पढ़ना भी जानते थे।—सपादक।

तब मनस्वी रामानुज का अभ्युदय हुआ। शंकर की प्रतिभा प्रखर थी, किन्तु उनका हृदय रामानुज के समान उदार नहीं था। रामानुज का हृदय शंकर की अपेक्षा अधिक विशाल था। उन्होंने पददलितों की पीड़ा का अनुभव किया और उनसे सहानुभूति की। उस समय की प्रचलित अनुष्ठान-पद्धतियों में उन्होंने यथाशक्ति सुधार किया और नयी अनुष्ठान-पद्धतियों, नयी उपासना-प्रणालियों की सृष्टि उन लोगों के लिए की, जिनके लिए वे अत्यावश्यक थीं। पर साथ साथ उन्होंने ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक सबके लिए सर्वोच्च आध्यात्मिक उपासना का द्वार खोल दिया। यह था रामानुज का कार्य। उनके कार्य का प्रभाव चारों ओर फैलने लगा, उत्तर भारत तक उसका प्रसार हुआ, वहाँ भी कई आचार्य इसी तरह कार्य करने लगे, किन्तु यह बहुत देर में मुसलमानों के शासन-काल में हुआ। उत्तर भारत के इन अपेक्षाकृत आधुनिक आचार्यों में से चैतन्य सर्वश्रेष्ठ हुए। रामानुज के समय से धर्म प्रचार की एक विशेषता की ओर ध्यान दो—तब से धर्म का द्वार सर्वसाधारण के लिए खुला रहा। शंकर के पूर्ववर्ती आचार्यों का यह जैसा मूल मन्त्र था, रामानुज के परवर्ती आचार्यों का भी यह वैसा ही मूल मन्त्र रहा। मैं नहीं जानता कि लोग शंकर को अनुदार मत के पोषक क्यों कहते हैं। उनके लिखे ग्रन्थों में ऐसा कुछ भी नहीं मिलता, जो उनकी संकीर्णता का परिचय दे। जिस तरह भगवान् बुद्धदेव के उपदेश उनके शिष्यों के हाथ बिगड़ गये हैं, उसी तरह शंकराचार्य के उपदेशों पर संकीर्णता का जो दोष लगाया जाता है, सम्भवतः वह उनकी शिक्षा के कारण नहीं, वरन् उनके शिष्यों की अयोग्यता के कारण है। उत्तर भारत के महान् सन्त चैतन्य गोपियों के प्रेमोन्मत्त भाव के प्रतिनिधि थे। चैतन्यदेव स्वयं एक ब्राह्मण थे, उस समय के एक प्रसिद्ध नैयायिक वंश में उनका जन्म हुआ था। वे न्याय के अध्यापक थे, तर्क द्वारा सबको परास्त करते थे—यही उन्होंने बचपन से जीवन का उच्चतम आदर्श समझ रखा था। किसी महापुरुष की कृपा से उनका सम्पूर्ण जीवन बदल गया, तब उन्होंने वाद विवाद, तर्क, न्याय का अध्यापन सब कुछ छोड़ दिया। संसार में भक्ति के जितने बड़े बड़े आचार्य हुए हैं, प्रेमोन्मत्त चैतन्य उनमें से एक श्रेष्ठ आचार्य हैं। उनकी भक्ति-तरंग सारे बंगाल में फैल गयी, जिससे सबके हृदय को शान्ति मिली। उनके प्रेम की सीमा न थी। साधु, असाधु, हिन्दू, मुसलमान, पवित्र, अपवित्र, वेश्या, पतित—सभी उनके प्रेम के भागी थे, वे सब पर दया रखते थे। यद्यपि काल के प्रभाव से सभी अवनति को प्राप्त होते हैं और उनका चलाया हुआ सम्प्रदाय घोर अवनति की दशा को पहुँच गया है, फिर भी आज तक यह दरिद्र, दुर्बल, जातिच्युत, पतित, किसी भी समाज में जिनका स्थान नहीं है, ऐसे लोगों का

आश्रयस्थान है। परन्तु साथ ही सत्य के लिए मुझे स्वीकार करना ही होगा कि दार्शनिक सम्प्रदायों में ही हम अद्‌भुत उदार भाव देखते है। शकर-मतावलम्बी कोई भी यह बात स्वीकार नहीं करेगा कि भारत के विभिन्न सम्प्रदायों मे वास्तव मे कोई भेद है, किन्तु जाति-भेद के विषय मे शकर अत्यन्त सकीर्णता का भाव रखते थे। इसके विपरीत, प्रत्येक वैष्णवाचार्य मे हम जातिविषयक प्रश्नो की शिक्षा के बारे मे अद्‌भुत उदारता देखते है, जब कि उनमे धार्मिक प्रश्नो के विषय मे अत्यन्त सकीर्णता पाते है।

एक का था अद्‌भुत मस्तिष्क, दूसरे का था विशाल हृदय। अब एक ऐसे अद्‌भुत पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, जिसमे ऐसा ही हृदय और मस्तिष्क दोनो एक साथ विराजमान हो, जो शकर के प्रतिभा-सम्पन्न मस्तिष्क एव चैतन्य के अद्‌भुत, विशाल, अनन्त हृदय का एक ही साथ अधिकारी हो, जो देखे कि सब सम्प्रदाय एक ही आत्मा, एक ही ईश्वर की शक्ति से चालित हो रहे हैं और प्रत्येक प्राणी मे वही ईश्वर विद्यमान है, जिसका हृदय भारत मे अथवा भारत के बाहर दरिद्र, दुर्बल, पतित सबके लिए द्रवित हो, लेकिन साथ ही जिसकी विशाल बुद्धि ऐसे महान् तत्त्वो की परिकल्पना करे, जिनसे भारत मे अथवा भारत के बाहर सब विरोधी सम्प्रदायो मे समन्वय साधित हो और इस अद्‌भुत समन्वय द्वारा वह एक हृदय और मस्तिष्क के सार्वभौम धर्म को प्रकट करे। एक ऐसे ही पुरुष ने जन्म ग्रहण किया और मैंने वर्षों तक उनके चरणो तले बैठकर शिक्षा-लाभ का सौभाग्य प्राप्त किया। ऐसे एक पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, इसकी आवश्यकता पडी थी, और वह उत्पन्न हुआ। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि उसका समग्र जीवन एक ऐसे शहर के पास व्यतीत हुआ, जो पाश्चात्य भावो से उन्मत्त हो रहा था, जो भारत के सब शहरो की अपेक्षा विदेशी भावो से अधिक भरा हुआ था। वहाँ पुस्तकीय ज्ञान से हर प्रकार से अनभिज्ञ वह रहता था, यह महाप्रतिभासम्पन्न व्यक्ति अपना नाम तक लिखना नही जानता था।[1] किन्तु हमारे विश्वविद्यालय के बडे बडे अत्यन्त प्रतिभावान स्नातको ने उसको एक महान् बौद्धिक प्रतिभा के रूप मे स्वीकार किया। वे अद्‌भुत महा-पुरुष थे—श्री रामकृष्ण परमहस। यह तो एक बडी लम्बी कहानी है, आज रात को तुम्हे उनके विषय मे कुछ भी बताने का समय नही है। इसलिए मुझे भारतीय

---

१ सामान्यत यह प्रचलित है कि वे बिल्कुल निरक्षर थे, पर बाद मे अनुसधान से पता चला कि वे थोड़ा बहुत लिखना-पढना भी जानते थे।—सपादक।

सब महापुरुषों के पूर्णप्रकाशस्वरूप युगाचार्य श्री रामकृष्ण का उल्लेख भर करके आज समाप्त करना होगा। उनके उपदेश आजकल हमारे लिए विशेष कल्याणकारी हैं। उनके भीतर जो ईश्वरीय शक्ति थी उस पर विशेष ध्यान दो। वे एक दरिद्र ब्राह्मण के लड़के थे। उनका जन्म बंगाल के सुदूर, अज्ञात अपरिचित किसी एक गाँव में हुआ था। आज यूरोप अमेरिका के सहस्रों व्यक्ति वास्तव में उनकी पूजा कर रहे हैं भविष्य में और भी सहस्रों मनुष्य उनकी पूजा करेंगे। ईश्वर की लीला कौन समझ सकता है?

भाइयो तुम यदि इसमें विधाता का हाथ नहीं देखते तो अन्धे हो, सचमुच जन्मान्ध हो। यदि समय मिला यदि दूसरा अवसर मिल सका तो इनके सम्बन्ध मे विस्तारपूर्वक कहूँगा। इस समय केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि यदि मैंने जीवन भर में एक भी सत्य वाक्य कहा है तो वह उन्हीका केवल उनका ही वाक्य है पर यदि मैंने ऐसे वाक्य कहे हैं जो असत्य भ्रमपूर्ण अथवा मानव जाति के लिए हितकारी न हों तो वे सब मेरे ही वाक्य हैं और उनके लिए पूरा उत्तरदायी मैं ही हूँ।

# हमारा प्रस्तुत कार्य

यह व्याख्यान ट्रिप्लिकेन, मद्रास की साहित्य-समिति मे दिया गया था। अमेरिका जाने के पहले स्वामी विवेकानन्द जी का इस समिति के सदस्यो से परिचय हुआ था। इन सदस्यो के साथ स्वामी जी ने अनेक विषयो पर चर्चा की थी। इससे वे सदस्यगण तथा मद्रास की जनता बहुत ही प्रभावित हुई थी। अन्त मे इन सज्जनो के विशेष आग्रह एव प्रयत्न से ही वे अमेरिका की शिकागो धर्म-महासभा मे हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप मे भेजे गये थे। अतएव इस व्याख्यान का एक विशेष महत्त्व है।

## स्वामी जी का भाषण

ससार ज्यो ज्यो आगे बढ रहा है, त्यो त्यो जीवन-समस्या गहरी और व्यापक हो रही है। उस पुराने ज़माने मे जब कि समस्त जगत् के अखडत्वरूप वेदान्ती सत्य का प्रथम आविष्कार हुआ था, तभी से उन्नति के मूल मत्रो और सार तत्त्वो का प्रचार होता आ रहा है। विश्वब्रह्माड का एक परमाणु सारे ससार को अपने साथ बिना घसीटे तिल भर भी नही हिल सकता। जब तक सारे ससार को साथ साथ उन्नति के पथ पर आगे नही बढाया जायगा, तब तक ससार के किसी भी भाग मे किसी भी प्रकार की उन्नति सम्भव नही है। और दिन प्रति दिन यह और भी स्पष्ट हो रहा है कि किसी प्रश्न की मीमासा सिर्फ जातीय, राष्ट्रीय या किन्ही सकीर्ण भूमियो पर नही टिक सकती। हर एक विषय को तथा हर एक भाव को तब तक बढाना चाहिए, जब तक उसमे सारा ससार न आ जाय, हर एक आकाक्षा को तब तक बढाते रहना चाहिए, जब तक वह समस्त मनुष्य जाति को ही नही, वरन् समस्त प्राणिजगत् को आत्मसात् न कर ले। इससे विदित होगा कि क्यो हमारा देश गत कई सदियो से वैसा महान् नही रह गया है, जैसा वह प्राचीन काल मे था। हम देखते हैं कि जिन कारणो से वह गिर गया है, उनमे से एक कारण है, दृष्टि की सकीर्णता तथा कार्यक्षेत्र का सकोच।

जगत् मे ऐसे दो आश्चर्यजनक राष्ट्र हो गये हैं, जो एक ही जाति से प्रस्फुटित हुए हैं, परन्तु भिन्न परिस्थितियो और घटनाओ मे स्थापित रहकर हर एक ने जीवन की समस्याओ को अपने ही निराले ढग से हल कर लिया है—मेरा मतलब

प्राचीन हिन्दू और प्राचीन यूनानी जातियों से है। भारतीय आर्यों की उत्तरी सीमा हिमालय की उन बर्फीली चोटियों से घिरी हुई है, जिनके तल में सम भूमि पर समुद्र सी स्वच्छतोया सरिताएँ हिलोरें मार रही हैं और वहाँ वे अनंत अरण्य वर्तमान हैं, जो आर्यों को संसार के अन्तिम छोर से प्रतीत हुए। इन सब मनोरम दृश्यों को देखकर आर्यों का मन सहज ही अन्तर्मुख हो उठा। आर्यों का मस्तिष्क सूक्ष्म भावग्राही था और चारों ओर घिरी हुई महान् दृश्यावली देखने का यह स्वाभाविक फल हुआ कि आर्य अन्तस्तत्व के अनुसंधान में लग गये, चित्त का विश्लेषण भारतीय आर्यों का मुख्य ध्येय हो गया। दूसरी ओर, यूनानी जाति संसार के एक दूसरे भाग में पहुँची, जो उदात्त की अपेक्षा सुन्दर अधिक था। यूनानी टापुओं के भीतर के वे सुन्दर दृश्य, उनके चारों ओर की वह हास्यमयी किन्तु निराभरण प्रकृति देखकर यूनानियों का मन स्वभावतः बहिर्मुख हुआ और उसने बाह्य संसार का विश्लेषण करना चाहा। परिणामतः हम देखते हैं कि समस्त विश्लेषणात्मक विज्ञानों का विकास भारत से हुआ और सामान्यीकरण के विज्ञानों का विकास यूनान से। हिन्दुओं का मानस अपनी ही कार्य-दिशा में अग्रसर हुआ और उसने अद्भुत परिणाम प्राप्त किये हैं। यहाँ तक कि वर्तमान समय में भी हिन्दुओं की वह विचार-शक्ति —वह अपूर्व शक्ति जिसे भारतीय मस्तिष्क अब तक धारण करता है, बेजोड़ है। हम सभी जानते हैं कि हमारे लड़के दूसरे देश के लड़कों से प्रतियोगिता में सदा ही विजय प्राप्त करते हैं। परन्तु साथ ही शायद मुसलमानों के विजय प्राप्त करने के दो शताब्दी पहले ही जब हमारी जातीय शक्ति क्षीण हुई, उस समय हमारी यह जातीय प्रतिभा ऐसी अतिरंजित हुई कि वह स्वयं ही अधःपतन की ओर अग्रसर हुई थी और वही अधःपतन अब भारतीय शिल्प संगीत विज्ञान आदि हर विषय में दिखायी दे रहा है। शिल्प में अब वह व्यापक परिकल्पना नहीं रह गयी भावों की वह उदात्तता तथा रूपाकार के सौष्ठव की वह चेष्टा अब और नहीं रह गयी, किन्तु उसकी जगह अत्यधिक अलंकरण तथा भड़कीलेपन का समावेश हो गया। जाति की सारी मौलिकता नष्ट हो गयी। संगीत में चित्त को मस्त कर देनेवाले वे गम्भीर भाव जो प्राचीन संगीत में पाये जाते हैं, अब नहीं रहे—पहले की तरह उनमें से प्रत्येक स्वर अब अपने पैरों नहीं खड़ा हो सकता, वह अपूर्व एकतानता नहीं छेड़ सकता। हर एक स्वर अपनी विशिष्टता खो बैठा। हमारे समग्र आधुनिक संगीत में नाना प्रकार के स्वर-ग्रामों की खिचड़ी हो गयी है, उसकी बहुत ही बुरी दशा हो गयी है। संगीत की अवनति का यही चिह्न है। इसी प्रकार यदि तुम अपनी भावात्मक परिकल्पनाओं का विश्लेषण करके देखो तो तुमको वही अतिरंजना और अलंकरण की ही चेष्टा और मौलिकता का नाश मिलेगा। और, यहाँ तक कि

तुम्हारे विशेष क्षेत्र धर्म मे भी, वही भयानक अवनति हुई है। उस जाति मे तुम क्या आशा कर सकते हो, जो सैकडो वर्ष तक यह जटिल प्रश्न हल करती रह गयी कि पानी भरा लोटा दाहिने हाथ से पीना चाहिए या बाये हाथ से। इससे और अधिक अवनति क्या हो सकती है कि देश के बडे बडे मेधावी मनुष्य भोजन के प्रश्न को लेकर तर्क करते हुए सैकडो वर्ष बिता दे, इस बात पर वाद-विवाद करते हुए कि तुम हमे छूने लायक हो या हम तुम्हें, और इस छून-अछून के कारण कौन सा प्रायश्चित्त करना पडेगा? वेदान्त के वे तत्त्व, ईश्वर और आत्मा सम्बन्धी सबसे उदात्त तथा महान् सिद्धान्त, जिनका सारे ससार मे प्रचार हुआ था, प्राय नष्ट हो गये, निविड अरण्यनिवासी कुछ सन्यासियो द्वारा रक्षित होकर वे छिपे रहे और शेष सब लोग केवल छूत-अछूत, खाद्य-अखाद्य और वेशभूषा जैसे गुरुतर प्रश्नो को हल करने मे व्यस्त रहे! हमे मुसलमानो से कई अच्छे विषय मिले, इसमे कुछ सन्देह नही। ससार मे हीनतम मनुष्य भी श्रेष्ठ मनुष्यो को कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य दे सकते है, किन्तु वे हमारी जाति मे शक्ति-सचार नही कर सके।

इसके पश्चात् शुभ के लिए हो, चाहे अशुभ के लिए, भारत मे अग्रेजो की विजय हुई। किसी जाति के लिए विजित होना नि सदेह बुरी चीज है, विदेशियो का शासन कभी भी कल्याणकारी नही होता। किन्तु तो भी, अशुभ के माध्यम से कभी कभी शुभ का आगमन होता है। अतएव अग्रेजो की विजय का शुभ फल यह है इग्लैण्ड तथा समग्र यूरोप को सभ्यता के लिए यूनान के प्रति ऋणी होना चाहिए, क्योकि यूरोप के सभी भावो मे मानो यूनान की ही प्रतिध्वनि सुनाई दे रही है, यहाँ तक कि उसके हर एक मकान मे, मकान के हर एक फरनीचर मे यूनान की ही छाप दीख पडती है। यूरोप के विज्ञान, शिल्प आदि सभी यूनान ही के प्रतिबिम्ब हैं। आज वही प्राचीन यूनान तथा प्राचीन हिन्दू भारतभूमि पर मिल रहे हैं। इस प्रकार धीर और नि स्तब्ध भाव से एक परिवर्तन आ रहा है और आज हमारे चारो ओर जो उदार, जीवनप्रद पुनरुत्थान का आन्दोलन दिखाई दे रहा है, वह सब इन दोनो विभिन्न भागो के सम्मिलन का ही फल है। अब मानव जीवन सम्बन्धी अधिक व्यापक और उदार धारणाएँ हमारे सम्मुख हैं। यद्यपि हम पहले कुछ भ्रम मे पड गये थे और भावो को सकीर्ण करना चाहते थे, पर अब हम देखते हैं कि आजकल ये जो महान् भाव और जीवन की ऊँची धारणाएँ काम कर रही हैं, हमारे प्राचीन ग्रन्थो मे लिखे हुए तत्त्वो की स्वाभाविक परिणति ही है। ये उन बातो का यथार्थ न्यायसगत कार्यान्वय मात्र हैं, जिनका हमारे पूर्वजो ने पहले ही प्रचार किया था।

त होना—यही

हमारा लक्ष्य है। परन्तु हम ध्यान न देकर अपने शास्त्रोपदेशों के विरुद्ध दिनों दिन अपने को संकीर्ण से संकीर्णतर करते जा रहे हैं।

हमारी उन्नति के मार्ग में कुछ विघ्न हैं और उनमें प्रधान है हमारी यह धारणा कि संसार में हम प्रमुख जाति के हैं। मैं हृदय से भारत को प्यार करता हूँ स्वदेश के हितार्थ मैं सदा कमर कसे तैयार रहता हूँ पूर्वजों पर मेरी आन्तरिक श्रद्धा और भक्ति है फिर भी मैं अपना यह विचार नहीं त्याग सकता कि संसार से हमें भी बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त करनी है शिक्षाग्रहणार्थ हमें सबके पैरों तले बैठना चाहिए, क्योंकि ध्यान इस बात पर देना आवश्यक है कि सभी हमें महान् शिक्षा दे सकते हैं। हमारे महान् श्रेष्ठ स्मृतिकार मनु महाराज की उक्ति है 'नीच जातियों से भी श्रद्धा के साथ हितकारी विद्या ग्रहण करनी चाहिए, और निम्नतम अन्त्यज ही क्यों न हो सेवा द्वारा उससे भी श्रेष्ठ धर्म की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।'[1]

अतएव यदि हम मनु की सच्ची सन्तान हैं तो हमें उनके आदेशों का अवश्य ही प्रतिपालन करना चाहिए और जो कोई हमें शिक्षा देने के योग्य है, उसीसे *ऐहिक या पारमार्थिक विषयों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए हमें सदा तैयार रहना* चाहिए। किन्तु साथ ही यह भी न भूलना चाहिए कि संसार को हम भी कोई विशेष शिक्षा दे सकते हैं। भारत का बाहर के देशों से सम्बन्ध जोड़े बिना हमारा काम नहीं चल सकता। किसी समय हम लोगों ने जो इसके विपरीत सोचा था वह हमारी मूर्खता मात्र थी और उसीकी सजा का फल है कि हजारों वर्षों से हम दासता के बन्धनों में बँध गये हैं। हम लोग दूसरी जातियों से अपनी तुलना करने के लिए विदेश नहीं गये और हमने संसार की गति पर ध्यान रखकर चलना नहीं सीखा। यही है भारतीय मन की अवनति का प्रधान कारण। हमें यथेष्ट सजा मिल चुकी अब हमें ऐसा नहीं करना चाहिए। भारत से बाहर जाना भारतीयों के लिए अनुचित है—इस प्रकार की वाहियात बातें बच्चों की ही हैं। उन्हें दिमाग से बिलकुल निकाल फेंकनी चाहिए। जितना ही तुम भारत से बाहर अन्यान्य देशों में घूमोगे उतना ही तुम्हारा और तुम्हारे देश का कल्याण होगा। यदि तुम पहले ही से—कई सदियों के पहले ही से—ऐसा करते तो तुम आज उन राष्ट्रों से पदाक्रान्त न होते जिन्होंने तुम्हें दबाने की कोशिश की। जीवन का पहला और स्पष्ट लक्षण है विस्तार। अगर तुम जीवित रहना चाहते हो तो तुम्हें विस्तार करना ही होगा। जिस क्षण से तुम्हारे जीवन का विस्तार बन्द हो जायेगा उसी

---

१ श्रद्दधानो शुभां विद्यामाददीतावरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि॥

क्षण से जान लेना कि मृत्यु ने तुम्हें घेर लिया है, विपत्तियाँ तुम्हारे सामने हैं। मैं यूरोप और अमेरिका गया था, इसका तुम लोगो ने सहृदयतापूर्ण उल्लेख किया है। मुझे वहाँ जाना पडा, क्योकि यही विस्तार या राष्ट्रीय जीवन के पुनर्जागरण का पहला चिह्न है। इस फिर से जगनेवाले राष्ट्रीय जीवन ने भीतर ही भीतर विस्तार प्राप्त करके मुझे मानो दूर फेक दिया था और इस तरह और भी हजारो लोग फेंके जायँगे। मेरी बात ध्यान से सुनो। यदि राष्ट्र को जीवित रहना है, तो ऐसा होना आवश्यक है। अतएव यह विस्तार राष्ट्रीय जीवन के पुनरभ्युदय का सर्वप्रधान लक्षण है और मनुष्य की सारी ज्ञानसमष्टि तथा समग्र जगत् की उन्नति के लिए हमारा जो कुछ योगदान होना चाहिए, वह भी इस विस्तार के साथ भारत से बाहर दूसरे देशो को जा रहा है। परन्तु यह कोई नया काम नही। तुम लोगो मे से जिनकी यह धारणा है कि हिन्दू अपने देश की चहारदीवारी के भीतर ही चिर काल से पडे हैं, वे बडी ही भूल करते है। तुमने अपने प्राचीन शास्त्र पढे नही, तुमने अपने जातीय इतिहास का ठीक ठीक अध्ययन नही किया। हर एक जाति को अपनी प्राण-रक्षा के लिए दूसरी जातियो को कुछ देना ही पडेगा। प्राण देने पर ही प्राणो की प्राप्ति होती है, दूसरो से कुछ लेना होगा तो बदले मे मूल्य के रूप मे उन्हें कुछ देना ही होगा। हम जो हज़ारो वर्षों से जीवित हैं, यह हमको विस्मित करता है, और इसका समाधान यही है कि हम ससार के दूसरे देशो को सदा देते रहे हैं, अनजान लोग भले ही जो सोचें।

भारत का दान है धर्म, दार्शनिक ज्ञान और आध्यात्मिकता। धर्म-प्रचार के लिए यह आवश्यक नही कि सेना उसके आगे आगे मार्ग निष्कटक करती हुई चले। ज्ञान और दार्शनिक तत्त्व को शोणित-प्रवाह पर से ढोने की आवश्यकता नही। ज्ञान और दार्शनिक तत्त्व खून से भरे जख्मी आदमियो के ऊपर से सदर्प विचरण नही करते। वे शान्ति और प्रेम के पखो से उडकर शान्तिपूर्वक आया करते हैं, और सदा हुआ भी यही। अतएव ससार के लिए भारत को सदा कुछ देना पडा है। लन्दन मे किसी युवती ने मुझसे पूछा, "तुम हिन्दुओ ने क्या किया? तुमने कभी किसी भी जाति को नही जीत पाया है।" अग्रेज जाति की दृष्टि मे—वीर साहसी, क्षत्रियप्रकृति अग्रेज जाति की दृष्टि मे—दूसरे व्यक्ति पर विजय प्राप्त करना ही एक व्यक्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ गौरव की बात समझी जाती है। यह उनके दृष्टिविन्दु से सत्य भले ही हो, किन्तु हमारी दृष्टि इसके बिल्कुल विपरीत है। जब मैं अपने मन से यह प्रश्न करता हूँ कि भारत के श्रेष्ठत्व का क्या कारण है, तब मुझे यह उत्तर मिलता है कि हमने कभी दूसरी जाति पर विजय प्राप्त नही की, यही हमारा महान गौरव है। [illegible] निन्दा सुन रहे हो

कि हिन्दुओं का धर्म दूसरों के धर्म को जीत लेने में सचेष्ट नहीं और मैं बड़े दुःख से कहता हूँ कि यह बात ऐसे ऐसे व्यक्तियों के मुँह की होती है जिनसे हम अधिकतर ज्ञान की अपेक्षा करते हैं। मुझे यह जान पड़ता है कि हमारा धर्म दूसरे धर्मों की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट है। इस तथ्य के समर्थन की प्रधान युक्ति यही है कि हमारे धर्म ने कभी दूसरे धर्मों पर विजय प्राप्त नहीं की उसने कभी खून की नदियाँ नहीं बहायीं उसने सदा आशीर्वाद और शान्ति के शब्द कहे सबको उसने प्रेम और सहानुभूति की कथा सुनायी। यहीं केवल यहीं दूसरे धर्म से द्वेष न रखने के भाव सबसे पहले प्रचारित हुए, केवल यहीं परधर्म-सहिष्णुता तथा सहानुभूति के ये भाव कार्यरूप म परिणत हुए। अन्य देशों म यह केवल सिद्धान्त-चर्चा मात्र है। यहीं केवल यहीं यह देखने में आता है कि हिन्दू मुसलमानों के लिए मसजिदें और ईसाइयों के लिए गिरजे बनवाते हैं।

अतएव भाइयो तुम समझ गये होगे कि किस तरह हमारे भाव धीरे धीरे शान्त और अज्ञात रूप से दूसरे देशों में गये हैं। भारत के सब विषयों में यही बात है। भारतीय विचार का सबसे बड़ा लक्षण है उसका शान्त स्वभाव और उसकी नीरवता। जो प्रभूत शक्ति इसके पीछे है, उसका प्रकाश जबरदस्ती से नहीं होता। भारतीय विचार सदा जादू सा असर करता है। जब कोई विदेशी हमारे साहित्य का अध्ययन करता है तो पहले वह उसे अरुचिपूर्ण प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें उसके निज के साहित्य जैसी उद्दीपना नहीं तीव्र गति नहीं जिससे उसका हृदय सहज ही उछल पड़े। यूरोप के दुःखान्त नाटकों की हमारे करुण नाटकों से तुलना करो पश्चिमी नाटक कार्य-प्रधान हैं वे कुछ देर के लिए उद्दीप्त तो कर देते हैं किन्तु समाप्त होते ही तुरन्त प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है और तुम्हारे मस्तिष्क से उसका सम्पूर्ण प्रभाव निकल जाता है। भारत के करुण नाटकों में मानो सम्मोहन की शक्ति भरी हुई है। वे मन्दगति से चुपचाप अपना काम करते हैं, किन्तु तुम ज्यों ज्यों उनका अध्ययन करते हो त्यों त्यों तुम्हें मुग्ध करने लगते हैं। फिर तुम टस से मस नहीं हो सकते तुम बँध जाते हो हमारे साहित्य में जिस किसीने प्रवेश किया उसे उसका बन्धन अवश्य ही स्वीकार करना पड़ा और चिर काल के लिए हमारे साहित्य से उसका अनुराग हो गया। अनदेखे और अनसुने गिरनेवाला कोमल ओस कण जिस प्रकार सुन्दरतम गुलाब की कलियों को खिला देता है, वैसा ही असर भारत के दान का संसार की विचारधारा पर पड़ता रहता है। शांत अज्ञेय किन्तु महाशक्ति के अदम्य बल से उसने सारे जगत् की विचार-राशि में क्रान्ति मचा दी है—एक नया ही युग खड़ा कर दिया है किन्तु तो भी कोई नहीं जानता कब ऐसा हुआ। किसी ने प्रसंगवशात् मुझसे कहा था 'भारत के किसी

प्राचीन ग्रन्थकार का नाम ढूंढ निकालना कितना कठिन काम है!" इसपर मैंने यह उत्तर दिया कि यही भारतीयो का स्वभाव है। भारत के लेखक आजकल के लेखको जैसे नही थे, जो ग्रन्थो का ९० फीसदी भाव दूसरे लेखको से साफ उडा लेते हैं और जिनका अपना केवल दशमाश होता है, किन्तु तो भी जो ग्रन्थारम्भ मे भूमिका लिखते हुए यह कहते नही चूकते कि इन मत-मतान्तरो का पूरा उत्तर-दायित्व मुझ पर है। मनुष्य जाति के हृदय मे उच्च भाव भरनेवाले वे महामनीषी उन ग्रन्थो की रचना करके ही सन्तुष्ट थे, उन्होंने ग्रन्थो मे अपना नाम तक नही दिया, और अपने ग्रन्थ भावी पीढियो को सौपकर वे शान्तिपूर्वक इस ससार से चल बसे। हमारे दर्शनकारो या पुराणकारो के नाम कौन जानता है? वे सभी व्यास, कपिल आदि उपाधियो ही से परिचित है, वे ही श्री कृष्ण के योग्य सपूत हैं, वे ही गीता के यथार्थ अनुयायी हैं, उन्होने ही श्रीकृष्ण के इस महान उपदेश—'कर्म मे ही तुम्हारा अधिकार है, फल मे कदापि नही'[1]—का पालन कर दिखाया।

मित्रो, इस प्रकार भारत ने ससार मे अपना कर्म किया, परन्तु इसके लिए भी एक बात अत्यन्त आवश्यक है। वाणिज्य-द्रव्य की भाँति, विचारो का समूह भी किसीके बनाये हुए मार्ग से ही चलता है। विचार-राशि के एक देश से दूसरे देश को जाने के पहले, उसके जाने का मार्ग तैयार होना चाहिए। ससार के इतिहास मे, जब कभी किसी बडे दिग्विजयी राष्ट्र ने ससार के भिन्न भिन्न देशो को एक सूत्र मे बाँधा है, तब उसके बनाये हुए मार्ग से भारत की विचारधारा बह चली है और प्रत्येक जाति की नस नस मे समा गयी है। आये दिन इस प्रकार के प्रमाण जुटते जा रहे है कि बुद्ध के जन्म के पहले ही भारत के विचार सारे ससार मे फैल चुके थे। बौद्ध धर्म के उदय के पहले ही चीन, फारस और पूर्वी द्वीप-समूहो[2] मे वेदान्त का प्रवेश हो चुका था। फिर जब यूनान की प्रबल शक्ति ने पूर्वी भूखडो को एक ही सूत्र मे बाँधा था, तब वहाँ भारत की विचार धारा प्रवाहित हुई थी, और ईसाई धर्मावलम्बी जिस सभ्यता की डीग हाँक रहे हैं, वह भी भारतीय विचारो के छोटे छोटे कणो के सग्रह के सिवा और कुछ नही। बौद्ध धर्म, अपनी समस्त महानता के साथ जिसकी विद्रोही सन्तान है और ईसाई धर्म जिसकी नगण्य नकल मात्र है, वही हमारा धर्म है। युगचक्र फिर घूमा है, वैसा ही समय फिर आया है, इग्लैण्ड की प्रचड शक्ति ने भूमडल के भिन्न भिन्न भागो को फिर एक दूसरे से जोड दिया है। अग्रेजो के मार्ग रोमन जाति के मार्गों की तरह केवल स्थल भाग मे ही

---

१. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन॥ गीता २।४७॥

२ सुमात्रा, जावा, बोर्नियो आदि।

नहीं अतल महासागरों के सब भागों में भी दौड़ रहे हैं। संसार के सभी भाग एक दूसरे से जुड़ गये हैं और विद्युत् शक्ति नव संदेश-वाहक की भाँति अपना अद्भुत नाटक खेल रही है। इन अनुकूल अवस्थाओं को प्राप्त कर भारत फिर जाग रहा है और संसार की उन्नति तथा सारी सभ्यता को अपने योगदान के लिए वह तैयार हो रहा है। इसीके फलस्वरूप प्रकृति ने मानो जबरदस्ती मुझे धर्म का प्रचार करने के लिए इंग्लैण्ड और अमेरिका भेजा। हममें से हर एक को यह अनुभव करना चाहिए था कि प्रचार का समय आ गया है। चारों ओर शुभ लक्षण दीख रहे हैं और भारतीय आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारों की फिर से सारे संसार पर विजय होगी। अतएव हमारे सामने समस्या दिन दिन बृहत्तर आकार धारण कर रही है। क्या हमें केवल अपने ही देश को जगाना होगा? नहीं यह तो एक तुच्छ बात है, मैं एक कल्पनाशील मनुष्य हूँ—मेरी यह भावना है कि हिन्दू जाति सारे संसार पर विजय प्राप्त करेगी।

जगत् में बड़ी बड़ी विजयी जातियाँ हो चुकी हैं हम भी महान् विजेता रह चुके हैं। हमारी विजय की कथा को भारत के महान् सम्राट् अशोक ने धर्म और आध्यात्मिकता ही की विजय बताया है। फिर से भारत को जगत् पर विजय प्राप्त करना होगा। यही मेरे जीवन का स्वप्न है और मैं चाहता हूँ कि तुममें से प्रत्येक जो कि मेरी बातें सुन रहा है अपने अपने मन में उसी स्वप्न का पोषण करे, और उसे कार्य रूप में परिणत किये बिना न छोड़े। लोग हर रोज तुमसे कहेंगे कि पहले अपने घर को सँभालो बाद में विदेशों में प्रचार करना। पर मैं तुम लोगों से स्पष्ट शब्दों में कह देता हूँ कि तुम सबसे अच्छा काम तभी करते हो जब दूसरे के लिए करते हो। अपने लिए सबसे अच्छा काम तुमने तभी किया जब कि तुमने औरों के लिए काम किया। अपने विचारों का समुद्रों के उस पार विदेशी भाषाओं में प्रचार करने का प्रयत्न किया और यह सभा ही इस बात का प्रमाण है कि तुम्हारा अन्यान्य देशों को अपने विचारों से शिक्षित करने का प्रयत्न तुम्हारे अपने देश को भी लाभ पहुँचा रहा है। यदि मैं अपने विचारों को भारत ही में सीमाबद्ध रखता तो उस प्रभाव का एक चौथाई भी न हो पाता जो कि मेरे इंग्लैण्ड और अमेरिका जाने से इस देश में हुआ। हमारे सामने यही एक महान् आदर्श है, और हर एक को इसके लिए तैयार रहना चाहिए—वह आदर्श है भारत की विश्व पर विजय—उससे छोटा कोई आदर्श न चलेगा और हम सभी को इसके लिए तैयार होना चाहिए और भरसक कोशिश करनी चाहिए। अगर विदेशी आकर इस देश को अपनी सेनाओं से प्लावित कर दें तो कुछ परवाह नहीं। उठो भारत तुम अपनी आध्यात्मिकता द्वारा जगत् पर विजय प्राप्त करो। जैसा कि इसी देश में पहले पहल

चार किया गया है, प्रेम ही घृणा पर विजय प्राप्त करेगा, घृणा घृणा को नही जीत सकती, हमे भी वैसा ही करना पडेगा। भौतिकवाद और उससे उत्पन्न क्लेश भौतिकवाद से कभी दूर नही हो सकते। जब एक सेना दूसरी सेना पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करती है तो वह मानव जाति को पशु बना देती है और इस प्रकार वह पशुओ की सख्या बढा देती है। आध्यात्मिकता पाश्चात्य देशो पर अवश्य विजय प्राप्त करेगी। धीरे धीरे पाश्चात्यवासी यह अनुभव कर रहे हैं कि उन्हें राष्ट्र के रूप मे बने रहने के लिए आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। वे इसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, चाव से इसकी बाट जोह रहे है। उसकी पूर्ति कहाँ से होगी? वे आदमी कहाँ हैं, जो भारतीय महर्षियो का उपदेश जगत् के सब देशो मे पहुँचाने के लिए तैयार हो? कहाँ है वे लोग, जो इसलिए सब कुछ छोडने को तैयार हो कि ये कल्याणकर उपदेश ससार के कोने कोने तक फैल जायँ? सत्य के प्रचार के लिए ऐसे ही वीर हृदय लोगो की आवश्यकता है। वेदान्त के महासत्यो को फैलाने के लिए ऐसे वीर कर्मियो को बाहर जाना चाहिए। जगत् को इसकी चाहना है, इसके बिना जगत् विनष्ट हो जायगा। सारा पाश्चात्य जगत् मानो एक ज्वालामुखी पर स्थित है, जो कल ही फूटकर उसे चूर चूर कर सकता है। उन्होने सारी दुनियाँ छान डाली, पर उन्हें तनिक भी शान्ति नही मिली। उन्होने इन्द्रिय-सुख का प्याला पीकर खाली कर डाला, पर फिर भी उससे उन्हे तृप्ति नही मिली। भारत के धार्मिक विचारो को पाश्चात्य देशो की नस नस मे भर देने का यही समय है। इसलिए मद्रासी नवयुवको, मैं विशेषकर तुम्हीको इसे याद रखने को कहता हूँ। हमे बाहर जाना ही पडेगा, अपनी आध्यात्मिकता तथा दार्शनिकता से हमे जगत् को जीतना होगा। दूसरा कोई उपाय ही नही है, अवश्यमेव इसे करो, या मरो। राष्ट्रीय जीवन, सतेज और प्रबुद्ध राष्ट्रीय जीवन के लिए बस यही एक शर्त है कि भारतीय विचार विश्व पर विजय प्राप्त करें।

साथ ही हमे न भूलना चाहिए कि आध्यात्मिक विचारो की विश्व-विजय से मेरा मतलब है उन सिद्धान्तो के प्रचार से, जिनसे जीवन-सचार हो, न कि उन सैकडो कुसस्कारो से, जिन्हें हम सदियो से अपनी छाती से लगाते आये हैं। इनको तो इस भारत-भूमि से भी उखाडकर दूर फेंक देना चाहिए, जिससे वे सदा के लिए नष्ट हो जायँ। इस जाति के अध पतन के ये ही कारण है और ये दिमाग को कमज़ोर बना देते हैं। हमे उस दिमाग से बचना चाहिए, जो उच्च और महान् चिन्तन नही कर सकता, जो निस्तेज होकर मौलिक चिन्तन की सारी शक्तियाँ खो बैठता है, और जो धर्म के नाम पर चले आनेवाले सब प्रकार के छोटे-छोटे कुसस्कारो के विष से अपने को जर्जरित कर रहा है। हमारी दृष्टि मे भारत के लिए कई आपदाएँ

खड़ी है। इनमें से दो स्काइला और करीबडिस से घोर भौतिकवाद और इसकी प्रतिक्रिया से पैदा हुए घोर कुसंस्कार से अवश्य बचना चाहिए। आज हमें एक तरफ वह मनुष्य दिखायी पड़ता है, जो पाश्चात्य ज्ञान रूपी मदिरा-पान से मत्त होकर अपने को सर्वज्ञ समझता है। वह प्राचीन ऋषियों की हँसी उड़ाया करता है। उसके लिए हिन्दुओं के सब विचार बिल्कुल वाहियात चीज है, हिन्दू दर्शन-शास्त्र बच्चों का कलरव मात्र है और हिन्दू धर्म मूर्खों का मात्र अंधविश्वास। दूसरी तरफ वह आदमी है जो शिक्षित तो है पर जिस पर किसी एक चीज की सनक सवार है और वह उल्टी राह लेकर हर एक छोटी सी बात का अलौकिक अर्थ निकालने की कोशिश करता है। अपनी विशेष जाति या देव-देवियों या गाँव से सम्बन्ध रखनेवाले जितने कुसंस्कार हैं उनको उचित सिद्ध करने के लिए दार्शनिक आध्यात्मिक तथा बच्चों को सुहानेवाले न जाने क्या क्या अर्थ उसके पास सर्वदा ही मौजूद हैं। उसके लिए प्रत्येक ग्राम्य कुसंस्कार वेदों की आज्ञा है और उसकी समझ में उसे कार्य रूप में परिणत करने पर ही जातीय जीवन निर्भर है। तुम्हें इन सबसे बचना चाहिए।

तुममें से प्रत्येक मनुष्य कुसंस्कारपूर्ण मूर्ख होने के बदले यदि घोर नास्तिक भी हो जाय तो मुझे पसन्द है, क्योंकि नास्तिक तो जीवन्त है, तुम उसे किसी तरह परिवर्तित कर सकते हो। परन्तु यदि कुसंस्कार घुस जायँ तो मस्तिष्क बिगड़ जायगा, कमजोर हो जायगा और मनुष्य विनाश की ओर अग्रसर होने लगेगा। तो इन दो संकटों से बचो। हमें निर्भीक साहसी मनुष्यों का ही प्रयोजन है। हम खून में तेजी और स्नायुओं में बल की आवश्यकता है—लोहे के पुट्ठे और फौलाद के स्नायु चाहिए, न कि दुर्बलता लानेवाले वाहियात विचार। इन सबको त्याग दो, सब प्रकार के रहस्यों से बचो। धर्म में कोई छिपाव नहीं है। क्या वेदान्त वेद संहिता अथवा पुराण में कोई ऐसी रहस्य की बात है? प्राचीन ऋषियों ने अपने धर्म प्रचार के लिए क्या गोपनीय समितियाँ स्थापित की थीं? क्या ऐसा कोई लेख है कि अपने महान् सत्यों को मानव जाति में प्रचारित करने के लिए उन्होंने ऐसे ढंग आडम्बर के से हथकंडों का उपयोग किया था? हर बात को रहस्यमय बनाना और कुसंस्कार—ये सदा दुर्बलता के ही चिह्न होते हैं। ये अवनति और मृत्यु के ही चिह्न हैं। इसलिए उनसे बचे रहो; बलवान् बनो और अपने पैरों पर खड़े हो जाओ। संसार में अनेक अद्भुत एवं आश्चर्यजनक वस्तुएँ हैं। प्रकृति के बारे में हमारी जो धारणाएँ हैं उनकी तुलना में हम उन्हें अति प्राकृतिक कह सकते हैं परन्तु उनमें से एक भी रहस्यमय नहीं है। इस भारतभूमि पर यह कभी प्रचारित नहीं हुआ कि धर्म के सत्य गोपनीय विषय हैं अथवा यह कि वे हिमालय की बर्फीली चोटियों पर बसनेवाली गुप्त समितियों की ही विशेष सम्पत्ति

हैं। मैं हिमालय मे गया था, तुम लोग वहाँ पर नही गये होगे, वह स्थान तुम्हारे घरो से कई सौ मील दूर है। मैं सन्यासी हूँ और गत चौदह वर्षो से मैं पैदल घूम रहा हूँ। ये गुप्त समितियाँ कही भी नहीं है। इन अधविश्वासो के पीछे मत दौडो। तुम्हारे और जाति के लिए बेहतर होगा कि तुम घोर नास्तिक बन जाओ—क्योकि कम से कम उससे तुम्हारा कुछ बल बना रहेगा, पर इस प्रकार कुसस्कारपूर्ण होना तो अवनति तथा मृत्यु है। मानव जाति को धिक्कार है कि शक्तिशाली लोग इन अधविश्वासो पर अपना समय गँवा रहे है, दुनिया के सडे से सडे कुसस्कारो की व्याख्या के लिए रूपको के आविष्कार करने मे अपना सारा समय नष्ट कर रहे है। साहसी बनो, सब विषयो की उस तरह व्याख्या करने की कोशिश मत करो। बात यह है कि हमारे बहुतेरे कुसस्कार है, हमारी देह पर बहुत से बुरे धब्बे तथा घाव हैं—इनको काट और चीर-फाडकर एकदम निकाल देना होगा—नष्ट कर देना होगा। इनके नष्ट होने से हमारा धर्म, हमारा जातीय जीवन हमारी आध्यात्मिकता नष्ट नहीं होगी। प्रत्येक धर्म का मूल तत्त्व सुरक्षित है और जितनी जल्दी ये धब्बे मिटाये जायँगे, उतने ही अधिक ये मूल तत्त्व चमकेंगे। इन्ही पर डटे रहो।

तुम लोग सुनते हो कि हर एक धर्म जगत् का सार्वभौम धर्म होने का दावा करता है। मैं तुमसे पहले ही कह देता हूँ कि शायद कभी भी ऐसी कोई चीज नही हो सकेगी, पर यदि कोई धर्म यह दावा कर सके तो वह तुम्हारा ही धर्म है—दूसरा कोई नही, क्योकि दूसरा हर एक धर्म किसी व्यक्ति या व्यक्तियो के समूह पर निर्भर है। अन्यान्य सभी धर्म किन्ही व्यक्तियो के जीवन पर अवलम्बित होकर बने हैं, जिन्हें उनके अनुयायी ऐतिहासिक पुरुष समझते है, और जिसको वे धर्म की शक्ति समझते हैं, वह वास्तव मे उनकी निर्बलता है, क्योकि यदि इन पुरुषो की ऐतिहासिकता का खडन किया जाय तो उनके धर्मरूपी प्रासाद गिरकर धूलि मे मिल जायँगे। इन महान् धर्म-सस्थापको के जीवन-चरित्रो मे से आधा अश तो उडा दिया गया है और बाकी आधे के विषय मे घोर सन्देह उपस्थित किया गया है। अतएव हर एक सत्य, जिसकी प्रामाणिकता इन्हींके शब्दो पर निर्भर थी, हवा मे मिला जा रहा है। पर हमारे धर्म के सत्य किसी व्यक्ति विशेष पर निर्भर नही हैं, यद्यपि हमारे धर्म मे महापुरुषो की सख्या यथेष्ट है। कृष्ण की महिमा यह नही है कि वे कृष्ण थे, पर यह कि वे वेदान्त के महान् आचार्य थे। यदि ऐसा न होता तो उनका नाम भी भारत से उसी तरह उठ जाता जैसे कि बुद्ध का नाम उठ गया है।

अत चिर काल से हमारी निष्ठा धर्म के तत्त्वो के प्रति ही रही है, न कि व्यक्तियो के प्रति। व्यक्ति केवल तत्त्वो के प्रकट रूप हैं—उनके उदाहरणस्वरूप हैं। यदि

तत्त्व बने रहे तो व्यक्ति एक नहीं, हजारों और लाखों की संख्या में पैदा होंगे। यदि तत्त्व बचा रहा तो बुद्ध जैसे सैकड़ों और हजारों पुरुष पैदा होंगे, परन्तु यदि तत्त्व का नाश हुआ और वह भुला दिया गया एवं सारी जाति का जीवन तथाकथित ऐतिहासिक व्यक्ति पर ही निर्भर रहने में प्रयत्नशील रहे, तो उस धर्म के सामने बाधाएँ और खतरे हैं। हमारा धर्म ही एकमात्र ऐसा है, जो किसी व्यक्ति या व्यक्तियों पर निर्भर नहीं, वह तत्त्वों पर प्रतिष्ठित है। पर साथ ही उसमें लाखों के लिए स्थान है। नये लोगों को स्थान देने के लिए उसमें काफ़ी गुंजाइश है, पर उनमें से प्रत्येक को उन तत्त्वों का एक उदाहरणस्वरूप होना चाहिए। हमें यह न भूलना चाहिए। हमारे धर्म के ये तत्त्व अब तक सुरक्षित हैं, और हममें से प्रत्येक का जीवन-व्रत यही होना चाहिए कि हम उन्हीं की रक्षा करें, उन्हें युग-युगान्तर से जमा होनेवाले मैल और गर्द से बचायें। यह एक अद्भुत घटना है कि हमारी जाति के बारंबार अवनति के गर्त में गिरने पर भी वेदान्त के ये तत्त्व कभी मलिन नहीं हुए। किसीने, वह कितना ही दुष्ट क्यों न हो, उन्हें दूषित करने का साहस नहीं किया। संसार भर में अन्य सब शास्त्रों की अपेक्षा हमारे शास्त्र सर्वाधिक सुरक्षित रहे हैं। अन्यान्य शास्त्रों की तुलना में इनमें कोई भी प्रक्षिप्त अंश नहीं घुस पाया है, पाठों की तोड़मरोड़ नहीं हुई है, उनके विचारों का सारभाग नष्ट नहीं हो पाया है। वह ज्यों का त्यों बना रहा है और मानव अथवा मन को आदर्श लक्ष्य की ओर परिचालित करता रहा है।

तुम देखते हो कि इन ग्रन्थों के भाष्य भिन्न भिन्न भाष्यकारों ने किये, उनका प्रचार बड़े बड़े आचार्यों ने किया, और उन्हीं पर सम्प्रदायों की नींव डाली गयी, और तुम देखते हो कि इन वेद ग्रन्थों में ऐसे अनेक तत्त्व हैं, जो आपाततः परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। कुछ ऐसे पाठांश हैं, जो सम्पूर्ण द्वैतभाव के हैं और कितने ही बिल्कुल अद्वैत भाव के। द्वैतवाद के भाष्यकार द्वैतवाद छोड़कर और कुछ समझ नहीं पाते, अतएव वे अद्वैतवाद के पाठांशों पर बुरी तरह वार करने की कोशिश करते हैं। सभी द्वैतवादी धर्माचार्य तथा पुरोहितगण उन्हें द्वैतात्मक अर्थ देना चाहते हैं। अद्वैतवाद के भाष्यकार द्वैतवाद के सूत्रों की वही दशा करते हैं, परन्तु यह वेदों का दोष नहीं। यह चेष्टा करना कोरी मूर्खता है कि सम्पूर्ण वेद द्वैत भावात्मक हैं। उसी प्रकार समग्र वेदों को अद्वैत भाव समर्थक प्रमाणित करने की चेष्टा भी निरी मूर्खता है। वेदों में द्वैतवाद अद्वैतवाद दोनों ही हैं। आजकल के नये भावों के प्रकाश में हम उन्हें पहले से कुछ अच्छी तरह समझ सकते हैं। ये विभिन्न धारणाएँ जिनकी गति द्वैतवाद और अद्वैतवाद दोनों ओर है, मन की क्रमोन्नति के लिए आवश्यक हैं, और इसी कारण वेद उनका प्रचार करते हैं। समग्र मनुष्य

जाति पर कृपा करके वेद उच्चतम लक्ष्य के भिन्न भिन्न सोपानो का निर्देश करते हैं। यह नही कि वे एक दूसरे के विरोधी हो। बच्चे जैसे अवोध मनुष्यो को मोहने के लिए वेदो ने वृथा वाक्यो का प्रयोग नही किया है। उनकी जरूरत है और वह केवल बच्चो के लिए नही, वरन् प्रौढ वुद्धिवालो के लिए भी। जव तक शरीर है और जब तक हम इस शरीर से ही अपनी तद्रूपता स्थापित करने के विभ्रम मे पडे रहेंगे, जब तक हमारी पाँच इन्द्रियाँ हैं और जब तक हम इस स्थूल जगत् को देखते हैं, हमारे लिए व्यक्तिविशेष ईश्वर या सगुण ईश्वर आवश्यक है। यदि हमारे ये सभी भाव हैं, तो जैसा कि महामनीषी रामानुज ने प्रमाणित किया है, हमको ईश्वर, जीव और जगत् इनमे से एक को स्वीकार करने पर शेष सबको स्वीकार करना ही पडेगा। अतएव जब तक हम बाहरी ससार देख रहे हैं, तब तक सगुण ईश्वर और जीवात्मा को स्वीकार न करना निरा पागलपन है। परन्तु महापुरुषो के जीवन मे वह समय आ सकता है, जब जीवात्मा अपने सब बंधनो से अतीत होकर, प्रकृति के परे, उस सर्वातीत प्रदेश मे चला जाता है, जिसके बारे मे श्रुति कहती है :

**यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।**[1]
**न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मन ।**[2]
**नाह मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।**[3]

—'मन के साथ वाणी जिसे न पाकर लौट आती है।' 'वहाँ न नेत्र पहुँचते है, न वाक्य, न मन।' 'मैं उसे जानता हूँ, न यही कह सकता हूँ। और नहीं जानता, न यही।' तभी जीवात्मा सारे बन्धनो को पार कर जाता है, तभी, केवल तभी उसके हृदय मे अद्वैतवाद का यह मूल तत्त्व प्रकाशित होता है कि समस्त ससार और मैं एक हूँ, मैं और ब्रह्म एक हूँ। और तुम देखोगे कि यह सिद्धान्त न केवल शुद्ध ज्ञान और दर्शन ही से प्राप्त हुआ है, किन्तु प्रेम के द्वारा भी उसकी कुछ झलक पायी गयी है। तुमने भागवत मे पढ़ा होगा कि जब श्री कृष्ण अन्तर्धान हो गये और गोपियाँ उनके वियोग से विकल हो गयी, तो अन्त तक श्री कृष्ण की भावना का गोपियो के चित्त पर इतना प्रभाव पडा कि हर एक गोपी अपनी देह को भूल गयी और सोचने लगी कि वही श्री कृष्ण है, और अपने को उसी तरह सज्जित करके क्रीडा करने लगी, जिस तरह श्री कृष्ण करते थे। अतएव हमने यह समझ लिया कि यह एकत्व का अनुभव प्रेम से भी होता है। फारस के एक पुराने सूफी कवि अपनी

---

१ तैत्तिरीयोपनिषद् ॥ २।९ ॥
२ केनोपनिषद् ॥ १।३ ॥
३ कठोपनिषद् ॥ २।२ ॥

एक कविता में कहते हैं— "मैं अपने प्यारे के पास गया और देखा तो द्वार बन्द था मैंने दरवाजे पर धक्का लगाया तो भीतर से आवाज आयी 'कौन है? मैंने उत्तर दिया—'मैं हूँ। द्वार न खुला। मैंने दूसरी बार आकर दरवाजा खटखटाया तो उसी स्वर मे फिर पूछा कि कौन है, मैंने उत्तर दिया—'मैं अमुक हूँ। फिर भी द्वार न खुला। तीसरी बार मैं गया और वही ध्वनि हुई—'कौन है? मैंने कहा 'मैं तुम हूँ मेरे प्यारे। द्वार खुल गया।"

अतएव हमें समझना चाहिए कि ब्रह्म प्राप्ति के अनेक सोपान हैं और यद्यपि पुराने भाष्यकारों में जिन्हें हमें श्रद्धा की दृष्टि से देखना चाहिए, एक दूसरे से विवाद होता रहा हमें विवाद न करना चाहिए क्योंकि ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। क्या प्राचीन काल में क्या वर्तमान समय में सर्वज्ञत्व पर किसी एक का सर्वाधिकार नहीं है। यदि अतीत काल में अनेक ऋषि महापुरुष हो गये हैं, तो निश्चय जानो कि वर्तमान समय में भी अनेक होंगे। यदि व्यास वाल्मीकि और शंकराचार्य आदि पुराने जमाने में हो गये है तो क्या कारण है कि अब भी तुममें हर एक शंकराचार्य न हो सकेगा? हमारे धर्म में एक विशेषता और है, जिसे तुम्हें याद रखना चाहिए। अन्यान्य शास्त्रों में भी ईश्वरी प्रेरणा को प्रमाणस्वरूप बतलाया जाता है। परन्तु इन प्रेरितों की संख्या उनके मत में एक दो अथवा बहुत ही अल्प व्यक्तियों तक सीमित है। उन्हींके माध्यम से सर्व साधारण जनता में इस सत्य का प्रचार हुआ और हम सभी को उनकी बात माननी ही पड़ेगी। नाजरथ के ईसा में सत्य का प्रकाश हुआ था और हम सभी को उसे मान लेना होगा। परन्तु भारत के मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के हृदय में उसी सत्य का आविर्भाव हुआ था। और उन्हीं ऋषियों में उस सत्य का भविष्य में भी आविर्भाव होगा किन्तु वह न बातूनियों में होगा न पुस्तकें चाट जानेवालों में न बड़े विद्वानों में न भाषावेत्ताओं में वह केवल तत्त्वदर्शियों में ही संभव है।

'आत्मा ज्यादा बातें बकने से नहीं प्राप्त होती न वह बड़ी बुद्धिमत्ता से ही सुलभ है और न वह वेदों के पठन से ही मिल सकती है।'[1] वेद स्वयं यह बात कहते हैं। क्या तुम किन्हीं दूसरे शास्त्रों में इस प्रकार की निर्भीक वाणी पाते हो कि शास्त्र पाठ द्वारा भी आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती? तुम्हारे लिए हृदय को शुद्ध करना आवश्यक है। धर्म का अर्थ न गिरजे में जाना है, न ललाट रँगना है न विचित्र ढंग का वेष धरना है। इन्द्रधनुष के सब रंगों से तुम अपने को चाहे भले ही रँग

---

१ नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
—कठोपनिषद् ॥ १।२।२३ ॥

लो, किन्तु यदि तुम्हारा हृदय उन्मुक्त नही हुआ है, यदि तुमने ईश्वर का साक्षात्कार नही किया है, तब यह सब व्यर्थ है। जिसने हृदय को रँग लिया है, उसके लिए दूसरे रग की आवश्यकता नही। यही धर्म का सच्चा अनुभव है। परन्तु हमे यह न भूलना चाहिए कि रग और ऊपर कही गयी कुल बातें अच्छी तब तक मानी जा सकती हैं, जब तक वे हमे धर्ममार्ग मे सहायता दें, तभी तक उनका हम स्वागत करते हैं। परन्तु वे प्राय अध पतित कर देती हैं और सहायता की जगह विघ्न ही खडा करती हैं, क्योकि इन्ही बाह्योपचारो को मनुष्य धर्म समझ लेता है। फिर मन्दिर का जाना आध्यात्मिक जीवन और पुरोहित को कुछ देना ही धर्मजीवन माना जाने लगता है। ये बातें बडी भयानक और हानिकारक हैं, इन्हें दूर करना चाहिए। हमारे शास्त्रो मे बार बार कहा गया है कि बहिरिन्द्रियो के ज्ञान के द्वारा धर्म कभी प्राप्त नही हो सकता। धर्म वही है, जो हमे उस अक्षर पुरुष का साक्षात्कार कराता है, और हर एक के लिए धर्म यही है। जिसने इस इन्द्रियातीत सत्ता का साक्षात्कार कर लिया, जिसने आत्मा का स्वरूप उपलब्ध कर लिया, जिसने भगवान् को प्रत्यक्ष देखा—हर वस्तु मे देखा, वही ऋषि हो गया। और तब तक तुम्हारा जीवन धर्मजीवन नही, जब तक तुम ऋषि नही हो जाते। तभी तुम्हारे प्रकृत धर्म का आरम्भ होगा और अभी तो ये सब तैयारियाँ ही हैं। तभी तुम्हारे भीतर धर्म का प्रकाश फैलेगा, अभी तो तुम केवल मानसिक व्यायाम कर रहे हो और शारीरिक कष्ट झेल रहे हो।

अतएव हमे अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि हमारा धर्म स्पष्ट रूप से यह कह रहा है कि जो कोई मुक्ति-प्राप्ति की इच्छा रखे, उसे ही इस ऋषित्व का लाभ करना होगा, मन्त्रद्रष्टा होना होगा, ईश्वर-साक्षात्कार करना होगा। यही मुक्ति है और यही हमारे शास्त्रो के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त। इसके बाद अपने शास्त्रो का अपने आप अवलोकन करना आसान हो जाता है, हम स्वय ही अपने शास्त्रो का अर्थ समझ सकते हैं। उनमे से हमारे लिए जितना आवश्यक है, उतना ग्रहण कर सकते हैं तथा स्वय ही सत्य को समझ सकते हैं। साथ ही हमे उन प्राचीन ऋषियो के प्रति, उनके कार्य के लिए, पूर्ण सम्मान प्रदर्शित करना चाहिए। वे प्राचीन ऋषिगण महान् थे, परन्तु हमे और भी महान् होना है। अतीत काल मे उन्होंने बडे बडे काम किये, परन्तु हमे उनसे भी बडा काम कर दिखाना है। प्राचीन भारत मे सैकडो ऋषि थे, और अब हमारे बीच लाखो होंगे—निश्चय ही होंगे। इस बात पर तुममे से हर एक जितनी जल्दी विश्वास करेगा, भारत का और समग्र ससार का उतना ही अधिक हित होगा। तुम जो कुछ विश्वास करोगे, तुम वही हो जाओगे। यदि तुम अपने को महापुरुष समझोगे तो कल ही तुम महापुरुष हो जाओगे। तुम्हें

रोक दे ऐसी कोई चीज नहीं है। आपाततविरोधी सम्प्रदायों के बीच यदि कोई साधारण मत है, तो वह यही है कि आत्मा में पहले से ही महिमा तेज और पवित्रता वर्तमान है। केवल रामानुज के मत में आत्मा कभी कभी संकुचित हो जाती है और कभी कभी विकसित परन्तु शंकराचार्य के मतानुसार संकोच-विकास भ्रम मात्र है। इस मतभेद पर ध्यान मत दो। सभी तो यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्त या अव्यक्त चाहे जिस भाव में रहे वह शक्ति है जरूर। और जितनी शीघ्रता से उस पर विश्वास कर सकोगे उतना ही तुम्हारा कल्याण होगा। समस्त शक्ति तुम्हारे भीतर है तुम कुछ भी कर सकते हो और सब कुछ कर सकते हो, यह विश्वास करो। मत विश्वास करो कि तुम दुर्बल हो। आजकल हममें से अधिकांश जैसे अपने को अधपागल समझते हैं तुम अपने को वैसा मत समझो। इतना ही नहीं तुम कुछ भी और हर एक काम बिना किसी की सहायता के ही कर सकते हो। तुममें सब शक्ति है। तत्पर हो जाओ। तुममें जो देवत्व छिपा हुआ है उसे प्रकट करो।

# भारत का भविष्य

मद्रास का यह अन्तिम व्याख्यान एक विशाल मडप मे लगभग चार हज़ार श्रोताओ के सम्मुख दिया गया था

## स्वामी जी का भाषण

यह वही प्राचीन भूमि है, जहाँ दूसरे देशो को जाने से पहले तत्त्व ज्ञान ने आकर अपनी वासभूमि बनायी थी, यह वही भारत है, जहाँ के आध्यात्मिक प्रवाह का स्थूल प्रतिरूप उसके बहनेवाले समुद्राकार नद है, जहाँ चिरन्तन हिमालय श्रेणीबद्ध उठा हुआ अपने हिमशिखरो द्वारा मानो स्वर्गराज्य के रहस्यो की ओर निहार रहा है। यह वही भारत है, जिसकी भूमि पर ससार के सर्वश्रेष्ठ ऋषियो की चरण-रज पड चुकी है। यही सबसे पहले मनुष्य-प्रकृति तथा अन्तर्जगत् के रहस्योद्‌घाटन की जिज्ञासाओ के अकुर उगे थे। आत्मा का अमरत्व, अन्तर्यामी ईश्वर एव जगत्प्रपच तथा मनुष्य के भीतर सर्वव्यापी परमात्मा विषयक मतवादो का पहले पहल यही उद्‌भव हुआ था। और यही धर्म और दर्शन के आदर्शों ने अपनी चरम उन्नति प्राप्त की थी। यह वही भूमि है, जहाँ से उमडती हुई बाढ की तरह धर्म तथा दार्शनिक तत्त्वो ने समग्र ससार को बार बार प्लावित कर दिया, और यही भूमि है, जहाँ से पुन ऐसी ही तरगे उठकर निस्तेज जातियो मे शक्ति और जीवन का सचार कर देंगी। यह वही भारत है जो शताब्दियो के आघात, विदेशियो के शत शत आक्रमण और सैकडो आचार व्यवहारो के विपर्यय सहकर भी अक्षय बना हुआ है। यह वही भारत है जो अपने अविनाशी वीर्य और जीवन के साथ अब तक पर्वत से भी दृढतर भाव से खडा है। आत्मा जैसे अनादि, अनन्त और अमृतस्वरूप है, वैसे ही हमारी भारतभूमि का जीवन है, और हम इसी देश की सन्तान हैं।

भारत की सतानो, तुमसे आज मैं यहाँ कुछ व्यावहारिक बातें कहूँगा, और तुम्हें तुम्हारे पूर्व गौरव की याद दिलाने का उद्देश्य केवल इतना ही है कितनी ही बार मुझसे कहा गया है कि अतीत की ओर नज़र डालने से सिर्फ मन की अवनति ही होती है और इससे कोई फल नही होता, अत हमे भविष्य की ओर दृष्टि रखनी चाहिए। यह सच है। परन्तु अतीत से ही भविष्य का निर्माण होता है। अत

ठीक से ऐसी कोई चीज नहीं है। आपातविरोधी सम्प्रदायों के बीच यदि कोई साधारण मत है, तो यह यही है कि आत्मा में पहले से ही महिमा तेज और पवित्रता वर्तमान है। केवल रामानुज के मत से आत्मा कभी कभी संकुचित हो जाती है और कभी कभी विकसित परन्तु शंकराचार्य के मतानुसार संकोच-विकास भ्रम मात्र है। इस मतभेद पर ध्यान मत दो। सभी तो यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्त या अव्यक्त चाहे जिस भाव में रहे वह शक्ति है जरूर। और जितनी शीघ्रता से उस पर विश्वास कर सकोगे उतना ही तुम्हारा कल्याण होगा। समस्त शक्ति तुम्हारे भीतर है तुम कुछ भी कर सकते हो और सब कुछ कर सकते हो यह विश्वास करो। मत विश्वास करो कि तुम दुर्बल हो। आजकल हममें से अधिकांश जैसे अपने को अधपागल समझते हैं तुम अपने को वैसा मत समझो। इतना ही नहीं तुम कुछ भी और हर एक काम बिना किसी की सहायता के ही कर सकते हो। तुममे सब शक्ति है। तत्पर हो जाओ। तुममें जो देवत्व छिपा हुआ है उसे प्रकट करो।

# भारत का भविष्य

मद्रास का यह अन्तिम व्याख्यान एक विशाल मडप मे लगभग चार हज़ार श्रोताओ के सम्मुख दिया गया था

## स्वामी जी का भाषण

यह वही प्राचीन भूमि है, जहाँ दूसरे देशो को जाने से पहले तत्त्व ज्ञान ने आकर अपनी वासभूमि बनायी थी, यह वही भारत है, जहाँ के आध्यात्मिक प्रवाह का स्थूल प्रतिरूप उसके वहनेवाले समुद्राकार नद है, जहाँ चिरन्तन हिमालय श्रेणीबद्ध उठा हुआ अपने हिमशिखरो द्वारा मानो स्वर्गराज्य के रहस्यो की ओर निहार रहा है। यह वही भारत है, जिसकी भूमि पर ससार के सर्वश्रेष्ठ ऋषियो की चरण-रज पड चुकी है। यही सबसे पहले मनुष्य-प्रकृति तथा अन्तर्जगत् के रहस्योद्घाटन की जिज्ञासाओ के अकुर उगे थे। आत्मा का अमरत्व, अन्तर्यामी ईश्वर एव जगत्प्रपच तथा मनुष्य के भीतर सर्वव्यापी परमात्मा विषयक मतवादो का पहले पहल यही उद्भव हुआ था। और यही धर्म और दर्शन के आदर्शों ने अपनी चरम उन्नति प्राप्त की थी। यह वही भूमि है, जहाँ से उमडती हुई बाढ की तरह धर्म तथा दार्शनिक तत्त्वो ने समग्र ससार को बार बार प्लावित कर दिया, और यही भूमि है, जहाँ से पुन ऐसी ही तरगे उठकर निस्तेज जातियो मे शक्ति और जीवन का सचार कर देंगी। यह वही भारत है जो शताब्दियो के आघात, विदेशियो के शत शत आक्रमण और सैकडो आचार व्यवहारो के विपर्यय सहकर भी अक्षय बना हुआ है। यह वही भारत है जो अपने अविनाशी वीर्य और जीवन के साथ अब तक पर्वत से भी दृढतर भाव से खडा है। आत्मा जैसे अनादि, अनन्त और अमृतस्वरूप है, वैसे ही हमारी भारतभूमि का जीवन है, और हम इसी देश की सन्तान हैं।

भारत की सतानो, तुमसे आज मैं यहाँ कुछ व्यावहारिक बातें कहूँगा, और तुम्हे तुम्हारे पूर्व गौरव की याद दिलाने का उद्देश्य केवल इतना ही है कितनी ही बार मुझसे कहा गया है कि अतीत की ओर नजर डालने से सिर्फ मन की अवनति ही होती है और इससे कोई फल नही होता, अत हमे भविष्य की ओर दृष्टि रखनी चाहिए। यह सच है। परन्तु अतीत से ही भविष्य का निर्माण होता है। अत

जहाँ तक हो सके अतीत की ओर देखो पीछे जो चिरन्तन निर्झर बह रहा है आकण्ठ उसका जल पिओ और उसके बाद सामने देखो और भारत को उज्ज्वलतर, महत्तर और पहले से और भी ऊँचा उठाओ। हमारे पूर्वज महान् थे। पहले यह बात हमें याद करनी होगी। हमें समझना होगा कि हम किन उपादानों से बने हैं, कौन सा खून हमारी नसों में बह रहा है। उस खून पर हमें विश्वास करना होगा। और अतीत के उसके कृतित्व पर भी इस विश्वास और अतीत गौरव के ज्ञान से हम अवश्य एक ऐसे भारत की नींव डालेंगे जो पहले से श्रेष्ठ होगा। अवश्य ही यहाँ बीच बीच में दुर्दशा और अवनति के युग भी रहे हैं पर उनको मैं अधिक महत्त्व नहीं देता। हम सभी उसके विषय में जानते हैं। ऐसे युगों का होना आवश्यक था। किसी विशाल वृक्ष से एक सुन्दर पका हुआ फल पैदा हुआ फल जमीन पर गिरा मुरझाया और सड़ा इस विनाश से जो अंकुर उगा सम्भव है वह पहले के वृक्ष से बड़ा हो जाय। अवनति के जिस युग के भीतर से हमें गुजरना पड़ा वे सभी आवश्यक थे। इसी अवनति के भीतर से भविष्य का भारत आ रहा है वह अंकुरित हो चुका है, उसके नये पल्लव निकल चुके हैं और उस शक्तिधर विशालकाय ऊर्ध्वमूल वृक्ष का निकलना शुरू हो चुका है। और उसीके सम्बन्ध में मैं तुमसे कहने जा रहा हूँ।

किसी भी दूसरे देश की अपेक्षा भारत की समस्याएँ अधिक जटिल और गुरुतर हैं। जाति धर्म भाषा शासन-प्रणाली—ये ही एक साथ मिलकर एक राष्ट्र की सृष्टि करते हैं। यदि एक एक जाति को लेकर हमारे राष्ट्र से तुलना की जाय तो हम देखेंगे कि जिन उपादानों से संसार के दूसरे राष्ट्र संगठित हुए हैं वे संख्या में यहाँ के उपादानों से कम हैं। यहाँ आर्य हैं द्रविड़ हैं तातार हैं तुर्क हैं मुगल हैं यूरोपीय हैं,—मानो संसार की सभी जातियाँ इस भूमि में अपना अपना खून मिला रही हैं। भाषा का यहाँ एक विचित्र ढंग का जमावड़ा है आचार-व्यवहारों के सम्बन्ध में दो भारतीय जातियों में जितना अन्तर है, उतना पूर्वी और यूरोपीय जातियों में नहीं।

हमारे पास एकमात्र सम्मिलन भूमि है हमारी पवित्र परम्परा हमारा धर्म। एकमात्र सामान्य आधार वही है और उसी पर हमें संगठन करना होगा। यूरोप में राजनीतिक विचार ही राष्ट्रीय एकता का कारण है। किन्तु एशिया में राष्ट्रीय ऐक्य का आधार धर्म ही है अतः भारत के भविष्य संगठन की पहली शर्त के तौर पर उसी धार्मिक एकता की ही आवश्यकता है। देश भर में एक ही धर्म सबको स्वीकार करना होगा। एक ही धर्म से मेरा क्या मतलब है? यह उस तरह का एक ही धर्म नहीं जिसका ईसाइयों, मुसलमानों या बौद्धों में प्रचार है। हम जानते

है, हमारे विभिन्न सम्प्रदायो के सिद्धान्त तथा दावे चाहे कितने ही विभिन्न क्यो न हो, हमारे धर्म मे कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जो सभी सम्प्रदायो द्वारा मान्य हैं। इस तरह हमारे सम्प्रदायो के ऐसे कुछ सामान्य आधार अवश्य हैं, उनको स्वीकार करने पर हमारे धर्म मे अद्भुत विविधता के लिए गुजाइश हो जाती है, और साथ ही विचार और अपनी रुचि के अनुसार जीवन निर्वाह के लिए हमे सम्पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो जाती है। हम लोग, कम से कम वे जिन्होंने इस पर विचार किया है, यह बात जानते है। और अपने धर्म के ये जीवनप्रद सामान्य तत्त्व हम सबके सामने लाये और देश के सभी स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, उन्हे जाने-समझें तथा जीवन मे उतारें—यही हमारे लिए आवश्यक है। सर्वप्रथम यही हमारा कार्य है।

अत हम देखते हैं कि एशिया मे और विशेषत भारत मे जाति, भाषा, समाज सम्बन्धी सभी बाधाएँ धर्म की इस एकीकरण शक्ति के सामने उड जाती हैं। हम जानते हैं कि भारतीय मन के लिए धार्मिक आदर्श से बडा और कुछ भी नही है। धर्म ही भारतीय जीवन का मूल मत्र है, और हम केवल सबसे कम बाधावाले मार्ग का अनुसरण करके ही कार्य मे अग्रसर हो सकते हैं। यह केवल सत्य ही नही कि धार्मिक आदर्श यहाँ सबसे बडा आदर्श है, किन्तु भारत के लिए कार्य करने का एकमात्र सम्भाव्य उपाय यही है। पहले उस पथ को सुदृढ किये बिना, दूसरे मार्ग से कार्य करने पर उसका फल घातक होगा। इसीलिए भविष्य के भारत निर्माण का पहला कार्य, वह पहला सोपान, जिसे युगो के उस महाचल पर खोद कर बनाना होगा, भारत की यह धार्मिक एकता ही है। यह शिक्षा हम सबको मिलनी चाहिए कि हम हिन्दू—द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी या अद्वैतवादी, अथवा दूसरे सम्प्रदाय के लोग, जैसे शैव, वैष्णव, पाशुपत आदि भिन्न भिन्न मतो के होते हुए भी आपस मे कुछ सामान्य भाव भी रखते हैं, और अब वह समय आ गया है कि अपने हित के लिए, अपनी जाति के हित के लिए हम इन तुच्छ भेदो और विवादो को त्याग दें। सचमुच ये झगडे बिल्कुल वाहियात हैं, हमारे शास्त्र इनकी निन्दा करते हैं, हमारे पूर्व पुरुषो ने इनके बहिष्कार का उपदेश दिया है, और वे महापुरुष गण, जिनके वशज हम अपने को बताते हैं और जिनका खून हमारी नसो मे बह रहा है, अपनी सतानो को छोटे छोटे भेदो के लिए झगडते हुए देखकर उनको घोर घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

लडाई झगडे छोडने के साथ ही अन्य विषयो की उन्नति अवश्य होगी, यदि जीवन का रक्त सशक्त एव शुद्ध है तो शरीर मे विषैले कीटाणु नही रह सकते। हमारी आध्यात्मिकता ही हमारा जीवन-रक्त है। यदि यह साफ बहता रहे,

यदि यह खून एवं सशक्त बना रहे तो सब कुछ ठीक है। राजनीतिक सामाजिक चाहे जिस किसी तरह की ऐहिक त्रुटियाँ हों चाहे देश की निर्धनता ही क्यों न हो, यदि खून शुद्ध है तो सब सुधर जायँगी। क्योंकि यदि रोगवाले कीटाणु शरीर से निकाल दिये जायँ तो फिर दूसरी कोई बुराई खून में नहीं समा सकती। उदाहरणार्थ आधुनिक चिकित्सा शास्त्र की एक उपमा लो। हम जानते हैं कि किसी बीमारी के फैलने के दो कारण होते हैं—एक तो बाहर से कुछ विषैले कीटाणुओं का प्रवेश दूसरा शरीर की अवस्था विशेष। यदि शरीर की अवस्था ऐसी न हो जाय कि वह कीटाणुओं को घुसने दे यदि शरीर की जीवनी शक्ति इतनी क्षीण न हो जाय कि कीटाणु शरीर में घुसकर बढ़ते रहें तो संसार में किसी भी कीटाणु में इतनी शक्ति नहीं जो शरीर में पैठकर बीमारी पैदा कर सके। वास्तव में प्रत्येक मनुष्य के शरीर के भीतर सदा करोड़ों कीटाणु प्रवेश करते रहते हैं परन्तु जब तक शरीर बलवान् है हमें उनकी कोई खबर नहीं रहती। जब शरीर कमज़ोर हो जाता है, तभी ये विषैले कीटाणु उस पर अधिकार कर लेते हैं और रोग पैदा करते हैं। राष्ट्रीय जीवन के बारे में भी यही बात है। जब राष्ट्रीय जीवन कमज़ोर हो जाता है, तब हर तरह के रोग के कीटाणु उसके शरीर में इकट्ठे जमकर उसकी राजनीति समाज शिक्षा और बुद्धि को रुग्ण बना देते हैं। अतएव उसकी चिकित्सा के लिए हमें इस बीमारी की जड़ तक पहुँचकर रक्त से कुल दोषों को निकाल देना चाहिए। तब उद्देश्य यह होगा कि मनुष्य बलवान् हो खून शुद्ध हो और शरीर तेजस्वी जिससे वह सब बाहरी विषों को दबा और हटा देने लायक हो सके।

हमने देखा है कि हमारा धर्म ही हमारे तेज हमारे बल नहीं नहीं हमारे जातीय जीवन की भी मूल भित्ति है। इस समय मैं यह तर्क वितर्क करने नहीं जा रहा हूँ कि धर्म उचित है या नहीं सही है या नहीं और अन्त तक यह लाभदायक है या नहीं। किन्तु अच्छा हो या बुरा धर्म ही हमारे जातीय जीवन का प्राण है तुम उससे निकल नहीं सकते। अभी और चिर काल के लिए भी तुम्हें उसीका अवलम्ब ग्रहण करना होगा और तुम्हें उसीके आधार पर खड़ा होना होगा चाहे तुम्हें इस पर उतना विश्वास हो या न हो जो मुझे है। तुम इसी धर्म में बँधे हुए हो और अगर तुम इसे छोड़ दो तो चूर चूर हो जाओगे। वही हमारी जाति का जीवन है और उसे अवश्य ही सशक्त बनाना होगा। तुम जो युगों के धक्के सहकर भी अक्षय हो इसका कारण केवल यही है कि धर्म के लिए तुमने बहुत कुछ प्रयत्न किया था उस पर सब कुछ निछावर किया था। तुम्हारे पूर्वजों ने धर्म-रक्षा के लिए सब कुछ साहसपूर्वक सहन किया था मृत्यु को भी उन्होंने हृदय

से लगाया था। विदेशी विजेताओ द्वारा मन्दिर के बाद मन्दिर तोडे गये, परन्तु उस बाढ के बह जाने मे देर नही हुई कि मन्दिर के कलश फिर खडे हो गये। दक्षिण के ये ही कुछ पुराने मन्दिर और गुजरात के सोमनाथ के जैसे मन्दिर तुम्हें राशि राशि ज्ञान प्रदान करेंगे। वे जाति के इतिहास के भीतर वह गहरी अन्तर्दृष्टि देंगे, जो ढेरो पुस्तको से भी नही मिल सकती। देखो कि किस तरह ये मन्दिर सैकडो आक्रमणो और सैकडो पुनरुत्थानो के चिह्न धारण किये हुए हैं, ये बार बार नष्ट हुए और बार बार ध्वसावशेष से उठकर नया जीवन प्राप्त करते हुए अब पहले ही की तरह अटल भाव से खडे है। इसलिए इस धर्म मे ही हमारा जातीय मन है, हमारा जातीय जीवन प्रवाह है। इसका अनुसरण करोगे तो यह तुम्हें गौरव की ओर ले जायगा। इसे छोडोगे तो मृत्यु निश्चित है। अगर तुम उस जीवन प्रवाह से बाहर निकल आये तो मृत्यु ही एकमात्र परिणाम होगा और पूर्ण नाश ही एकमात्र परिणति। मेरे कहने का यह मतलब नही कि दूसरी चीज की आवश्यकता ही नही। मेरे कहने का यह अर्थ नही कि राजनीतिक या सामाजिक उन्नति अनावश्यक है, किन्तु मेरा तात्पर्य यही है और मैं तुम्हें सदा इसकी याद दिलाना चाहता हूँ कि ये सब यहाँ गौण विषय हैं, मुख्य विषय धर्म है। भारतीय मन पहले धार्मिक है, फिर कुछ और। अत धर्म को ही सशक्त बनाना होगा। पर यह किया किस तरह जाय ? मै तुम्हारे सामने अपने विचार रखता हूँ। बहुत दिनो से, यहाँ तक कि अमेरिका के लिए मद्रास का समुद्री तट छोडने के वर्षों पहले से ये मेरे मन मे थे और उन्हीको प्रचारित करने के लिए मैं अमेरिका और इग्लैण्ड गया था। धर्म-महासभा या किसी और वस्तु की मुझे बिल्कुल परवाह नही थी, वह तो एक सुयोग मात्र था। वस्तुत मेरे ये सकल्प ही थे जो सारे ससार मे मुझे लिये फिरते रहे।

मेरा विचार है, पहले हमारे शास्त्र ग्रन्थो मे भरे पडे आध्यात्मिकता के रत्नो को, जो कुछ ही मनुष्यो के अधिकार मे मठो और अरण्यो मे छिपे हुए हैं, बाहर लाना है। जिन लोगो के अधिकार मे ये छिपे हुए हैं, केवल उन्हींसे इस ज्ञान का उद्धार करना नही, वरन् उससे भी दुर्भेद्य पेटिका अर्थात् जिस भाषा मे ये सुरक्षित हैं, उन शताब्दियो के पर्त खाये हुए सस्कृत शब्दो से उन्हें निकालना होगा। तात्पर्य यह है कि मै उन्हें सबके लिए सुलभ कर देना चाहता हूँ। मैं इन तत्त्वो को निकालकर सबकी, भारत के प्रत्येक मनुष्य की, सामान्य सम्पत्ति बनाना चाहता हूँ, चाहे वह सस्कृत जानता हो या नही। इस मार्ग की बहुत बडी कठिनाई हमारी गौरवशाली भाषा सस्कृत ही है, यह कठिनाई तब तक दूर नही हो सकती, जब तक यदि सम्भव हो तो हमारी जाति के सभी मनुष्य सस्कृत के अच्छे विद्वान् न हो जायँ। यह कठिनाई

यदि यह शुद्ध एवं सशक्त बना रहे, तो सब कुछ ठीक है। राजनीतिक, सामाजिक, चाहे जिस किसी तरह की ऐहिक त्रुटियाँ हों, चाहे देश की निर्धनता ही क्यों न हो, यदि खून शुद्ध है तो सब सुधर जायेंगे। क्योंकि यदि रोगवाले कीटाणु शरीर से निकाल दिये जायें तो फिर दूसरी कोई बुराई खून में नहीं समा सकती। उदाहरणार्थ आधुनिक चिकित्सा शास्त्र की एक उपमा लो। हम जानते हैं कि किसी बीमारी के फैलने के दो कारण होते हैं—एक तो बाहर से कुछ विषैले कीटाणुओं का प्रवेश, दूसरा शरीर की अवस्था विशेष। यदि शरीर की अवस्था ऐसी न हो जाय कि वह कीटाणुओं को घुसने दे, यदि शरीर की जीवनी शक्ति इतनी क्षीण न हो जाय कि कीटाणु शरीर में घुसकर बढ़ते रहें, तो संसार में किसी भी कीटाणु में इतनी शक्ति नहीं, जो शरीर में पैठकर बीमारी पैदा कर सके। वास्तव में प्रत्येक मनुष्य के शरीर के भीतर सदा करोड़ों कीटाणु प्रवेश करते रहते हैं, परन्तु जब तक शरीर बलवान् है, हमें उनकी कोई खबर नहीं रहती। जब शरीर कमजोर हो जाता है, तभी ये विषैले कीटाणु उस पर अधिकार कर लेते हैं और रोग पैदा करते हैं। राष्ट्रीय जीवन के बारे में भी यही बात है। जब राष्ट्रीय जीवन कमजोर हो जाता है, तब हर तरह के रोग के कीटाणु उसके शरीर में इकट्ठे जमकर उसकी राजनीति, समाज, शिक्षा और बुद्धि को रुग्ण बना देते हैं। अतएव उसकी चिकित्सा के लिए हम इस बीमारी की जड़ तक पहुँचकर रक्त से कुल दोषों को निकाल देना चाहिए। तब उद्देश्य यह होगा कि मनुष्य बलवान् हो, खून शुद्ध हो और शरीर तेजस्वी, जिससे वह सब बाहरी विषों को दबा और हटा देने लायक हो सके।

हमने देखा है कि हमारा धर्म ही हमारे तेज, हमारे बल, यही नहीं, हमारे जातीय जीवन की भी मूल भित्ति है। इस समय मैं यह तर्क-वितर्क करने नहीं जा रहा हूँ कि धर्म उचित है या नहीं, सही है या नहीं, और अन्त तक यह लाभदायक है या नहीं। किन्तु अच्छा हो या बुरा, धर्म ही हमारे जातीय जीवन का प्राण है, तुम उससे निकल नहीं सकते। अभी और चिर काल के लिए भी तुम्हें उसीका अवलम्ब ग्रहण करना होगा और तुम्हें उसीके आधार पर खड़ा होना होगा, चाहे तुम्हें इस पर उतना विश्वास हो या न हो, जो मुझे है। तुम इसी धर्म में बँधे हुए हो, और अगर तुम इसे छोड़ दो तो चूर चूर हो जाओगे। वही हमारी जाति का जीवन है और उसे अवश्य ही सशक्त बनाना होगा। तुम जो युगों के धक्के सहकर भी अक्षय हो, इसका कारण केवल यही है कि धर्म के लिए तुमने बहुत कुछ प्रयत्न किया था, उस पर सब कुछ निछावर किया था। तुम्हारे पूर्वजों ने धर्म-रक्षा के लिए सब कुछ साहसपूर्वक सहन किया था, मृत्यु को भी उन्होंने हृदय

से लगाया था। विदेशी विजेताओ द्वारा मन्दिर के बाद मन्दिर तोडे गये, परन्तु उस बाढ के बह जाने मे देर नही हुई कि मन्दिर के कलश फिर खडे हो गये। दक्षिण के ये ही कुछ पुराने मन्दिर और गुजरात के सोमनाथ के जैसे मन्दिर तुम्हें राशि राशि ज्ञान प्रदान करेंगे। वे जाति के इतिहास के भीतर वह गहरी अन्तर्दृष्टि देंगे, जो ढेरो पुस्तको से भी नही मिल सकती। देखो कि किस तरह ये मन्दिर सैकडो आक्रमणो और सैकडो पुनरुत्थानो के चिह्न धारण किये हुए हैं, ये बार बार नष्ट हुए और बार बार ध्वसावशेष से उठकर नया जीवन प्राप्त करते हुए अब पहले ही की तरह अटल भाव से खडे हैं। इसलिए इस धर्म मे ही हमारा जातीय मन है, हमारा जातीय जीवन प्रवाह है। इसका अनुसरण करोगे तो यह तुम्हें गौरव की ओर ले जायगा। इसे छोडोगे तो मृत्यु निश्चित है। अगर तुम उस जीवन प्रवाह से बाहर निकल आये तो मृत्यु ही एकमात्र परिणाम होगा और पूर्ण नाश ही एकमात्र परिणति। मेरे कहने का यह मतलब नही कि दूसरी चीज़ की आवश्यकता ही नही। मेरे कहने का यह अर्थ नही कि राजनीतिक या सामाजिक उन्नति अनावश्यक है, किन्तु मेरा तात्पर्य यही है और मैं तुम्हें सदा इसकी याद दिलाना चाहता हूँ कि ये सब यहाँ गौण विषय हैं, मुख्य विषय धर्म है। भारतीय मन पहले धार्मिक है, फिर कुछ और। अत धर्म को ही सशक्त बनाना होगा। पर यह किया किस तरह जाय? मैं तुम्हारे सामने अपने विचार रखता हूँ। बहुत दिनो से, यहाँ तक कि अमेरिका के लिए मद्रास का समुद्री तट छोडने के वर्षों पहले से ये मेरे मन मे थे और उन्हीको प्रचारित करने के लिए मैं अमेरिका और इग्लैण्ड गया था। धर्म-महासभा या किसी और वस्तु की मुझे बिल्कुल परवाह नही थी, वह तो एक सुयोग मात्र था। वस्तुत मेरे ये सकल्प ही थे जो सारे ससार मे मुझे लिये फिरते रहे।

मेरा विचार है, पहले हमारे शास्त्र ग्रन्थो मे भरे पडे आध्यात्मिकता के रत्नो को, जो कुछ ही मनुष्यो के अधिकार मे मठो और अरण्यो मे छिपे हुए हैं, बाहर लाना है। जिन लोगो के अधिकार मे ये छिपे हुए है, केवल उन्हींसे इस ज्ञान का उद्धार करना नही, वरन् उससे भी दुर्भेद्य पेटिका अर्थात् जिस भाषा मे ये सुरक्षित हैं, उन शताब्दियो के पर्त खाये हुए सस्कृत शब्दो से उन्हें निकालना होगा। तात्पर्य यह है कि मैं उन्हें सबके लिए सुलभ कर देना चाहता हूँ। मैं इन तत्त्वो को निकालकर सबकी, भारत के प्रत्येक मनुष्य की, सामान्य सम्पत्ति बनाना चाहता हूँ, चाहे वह सस्कृत जानता हो या नही। इस मार्ग की बहुत बडी कठिनाई हमारी गौरवशाली भाषा सस्कृत ही है, यह कठिनाई तब तक दूर नही हो सकती, जब तक यदि सम्भव हो तो हमारी जाति के सभी मनुष्य सस्कृत के अच्छे विद्वान् न हो जायँ। यह कठिनाई

तुम्हारी समझ में आ जायगी, जब मैं कहूँगा कि जीवनभर का अध्ययन करने पर भी जब मैं उनकी कोई नयी पुस्तक उठाता हूँ, तब मुझे वह बिल्कुल नयी जान पड़ती है। अब सोचो कि जिन लोगों ने कभी विशेष रूप से इस भाषा का अध्ययन करने का समय नहीं पाया, उनके लिए यह भाषा कितनी अधिक क्लिष्ट होगी। अतः मनुष्यों की बोलचाल की भाषा में उन विचारों की शिक्षा देनी होगी। साथ ही संस्कृत की भी शिक्षा अवश्य होती रहनी चाहिए, क्योंकि संस्कृत शब्दों की ध्वनि मात्र से ही जाति को एक प्रकार का गौरव, शक्ति और बल प्राप्त हो जाता है। महान् रामानुज, चैतन्य और कबीर ने भारत की नीची जातियों को उठाने का जो प्रयत्न किया था, उसमें उन महान् धर्माचार्यों को अपने ही जीवन-काल में अद्भुत सफलता मिली थी। किन्तु फिर उनके बाद उस कार्य का जो शोचनीय परिणाम हुआ, उसकी व्याख्या होनी चाहिए, और जिस कारण उन बड़े बड़े धर्माचार्यों के तिरोभाव के प्रायः एक ही शताब्दी के भीतर वह उन्नति रुक गयी, उसकी भी व्याख्या करनी होगी। इसका रहस्य यह है—उन्होंने नीची जातियों को उठाया था। वे सब चाहते थे कि ये उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ हो जायँ, परन्तु उन्होंने जनता में संस्कृत का प्रचार करने में अपनी शक्ति नहीं लगायी। यहाँ तक कि भगवान् बुद्ध ने भी यह भूल की कि उन्होंने जनता में संस्कृत शिक्षा का अध्ययन बंद कर दिया। वे तुरन्त फल पाने के इच्छुक थे, इसीलिए उस समय की भाषा पाली में संस्कृत से अनुवाद कर उन्होंने उन विचारों का प्रचार किया। यह बहुत ही सुन्दर हुआ था, जनता ने उनका अभिप्राय समझा, क्योंकि वे जनता की बोलचाल की भाषा में उपदेश देते थे। यह बहुत ही अच्छा हुआ था, इससे उनके भाव बहुत शीघ्र फैले और बहुत दूर दूर तक पहुँचे। किन्तु इसके साथ साथ संस्कृत का भी प्रचार होना चाहिए था। ज्ञान का विस्तार हुआ सही, पर उसके साथ साथ प्रतिष्ठा नहीं बनी, संस्कार नहीं बना। संस्कृति ही युग के आघातों को सहन कर सकती है, मात्र ज्ञान-राशि नहीं। तुम संसार के सामने प्रभूत ज्ञान रख सकते हो, परन्तु इससे उसका विशेष उपकार न होगा। संस्कार को रक्त में व्याप्त हो जाना चाहिए। वर्तमान समय में हम कितने ही राष्ट्रों के सम्बन्ध में जानते हैं, जिनके पास विशाल ज्ञान का भण्डार है, परन्तु इससे क्या? वे बाघ की तरह नृशंस हैं, वे बर्बरों के सदृश हैं, क्योंकि उनका ज्ञान संस्कार में परिणत नहीं हुआ है। सभ्यता की तरह ज्ञान भी चमड़े की ऊपरी सतह तक ही सीमित है, छिछला है, और एक खरोंच लगते ही वह पुरानी नृशंसता जग उठती है। ऐसी घटनाएँ हुआ करती हैं। यही भय है। जनता को उसकी बोलचाल की भाषा में शिक्षा दो, उसको भाव दो, वह बहुत कुछ जान जायगी, परन्तु साथ ही

कुछ और भी जरूरी है उसको सस्कृति का बोध दो। जब तक तुम यह नही कर सकते, तब तक उनकी उन्नत दशा कदापि स्थायी नही हो सकती। एक ऐसे नवीन वर्ण की सृष्टि होगी, जो सस्कृत भाषा सीखकर शीघ्र ही दूसरे वर्णों के ऊपर उठेगी और पहले की तरह उनपर अपना प्रभुत्व फैलायेगी। ऐ पिछडी जाति के लोगो, मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि तुम्हारे बचाव का, तुम्हारी अपनी दशा को उन्नत करने का एकमात्र उपाय सस्कृत पढना है, और यह लडना-झगडना और उच्च वर्णों के विरोध मे लेख लिखना व्यर्थ है। इससे कोई उपकार न होगा, इससे लडाई-झगडे और बढेंगे, और यह जाति, दुर्भाग्यवश पहले ही से जिसके टुकडे टुकडे हो चुके हैं, और भी टुकडो मे बँटती रहेगी। जातियो मे समता लाने के लिए एकमात्र उपाय उस सस्कार और शिक्षा का अर्जन करना है, जो उच्च वर्णों का बल और गौरव है। यदि यह तुम कर सको तो जो कुछ तुम चाहते हो, वह तुम्हें मिल जायगा।

इसके साथ मैं एक और प्रश्न पर विचार करना चाहता हूँ, जो खासकर मद्रास से सम्बन्ध रखता है। एक मत है कि दक्षिण भारत मे द्राविड नाम की एक जाति के मनुष्य थे, जो उत्तर भारत की आर्य नामक जाति से बिल्कुल भिन्न थे और दक्षिण भारत के ब्राह्मण ही उत्तर भारत से आये हुए आर्य हैं, अन्य जातियाँ दक्षिणी ब्राह्मणो से बिल्कुल ही पृथक् जाति की हैं। भाषा-वैज्ञानिक महाशय, मुझे क्षमा कीजिएगा, यह मत बिलकुल निराधार है। इसका एकमात्र प्रमाण यह है कि उत्तर और दक्षिण की भाषा मे भेद है। दूसरा भेद मेरी नज़र मे नही आता। हम यहाँ उत्तर भारत के इतने लोग हैं, मैं अपने यूरोपीय मित्रो से कहता हूँ कि वे इस सभा के उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत के लोगो को चुनकर अलग कर दें। भेद कहाँ है? ज़रा सा भेद भाषा मे है। पूर्वोक्त मतवादी कहते है कि दक्षिणी ब्राह्मण जब उत्तर से आये थे, तब वे सस्कृत बोलते थे, अभी यहाँ आकर द्राविड भाषा बोलते बोलते सस्कृत भूल गये। यदि ब्राह्मणो के सम्बन्ध मे ऐसी बात है तो फिर दूसरी जातियो के सम्बन्ध मे भी यही बात क्यो न होगी? क्यो न कहा जाय कि दूसरी जातियाँ भी एक एक करके उत्तर भारत से आयी हैं, उन्होंने द्राविड भाषा को अपनाया और सस्कृत भूल गयी? यह युक्ति तो दोनो ओर लग सकती है। ऐसी वाहियात बातो पर विश्वास न करो। यहाँ ऐसी कोई द्राविड जाति रही होगी, जो यहाँ से लुप्त हो गयी है, और उनमे से जो कुछ थोडे से रह गये थे, वे जगलो और दूसरे दूसरे स्थानो मे बस गये। यह बिलकुल सम्भव है कि सस्कृत के बदले वह द्राविड भाषा ले ली गयी हो, परन्तु ये सब आर्य ही हैं, जो उत्तर से आये। सारे भारत के मनुष्य आर्यों के सिवा और कोई नही।

इसके बाद एक दूसरा विचार है कि शूद्र लोग निश्चय ही या अनार्य हैं। तब वे क्या हैं? वे गुलाम हैं। विद्वान् कहते हैं इतिहास को दुहराता है। अमरीकी, अंग्रेज, डच और पुर्तगाली बेचारे [illegible] पकड़ लेते थे, जब तक वे जीवित रहते उनसे घोर परिश्रम कराते थे; मिश्रित संतानें भी दासता में उत्पन्न होकर चिर काल तक दासता में थी। इस अद्भुत उदाहरण से मन हजारों वर्ष पीछे जाकर यहीं की घटनाओं की कल्पना करता है, और हमारे पुरातत्त्ववेत्ता भारत [illegible] में स्वप्न देखते हैं कि भारत काली आँखोंवाले आदिवासियों से भरा [illegible] और उज्ज्वल आर्य बाहर से आये—परमात्मा जाने कहाँ से। कुछ [illegible] के मत से वे मध्य तिब्बत से आये, दूसरे कहते हैं वे मध्य एशिया से आये। कुछ स्वदेशप्रेमी अंग्रेज हैं जो सोचते हैं कि आर्य लाल बालोंवाले थे। दूसरे अपने [illegible] अनुसार दूसरे सोचते हैं कि वे सब काले बालोंवाले थे। अगर लेखक खुद काले बाल वाला मनुष्य हुआ तो सभी आर्य काले बालोंवाले थे! कुछ दिन हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया था कि आर्य स्विट्ज़रलैण्ड की झीलों के किनारे रहते थे। मुझे जरा भी दुःख न होता अगर वे सबके सब इन सब सिद्धान्तों के समेत वहीं डूब मरते। आजकल कोई कोई कहते हैं कि वे उत्तरी ध्रुव में रहते थे। ईश्वर आर्यों और उनके निवास स्थलों पर कृपा दृष्टि रखे। इन सिद्धान्तों की सत्यता के बारे में यही कहना है कि हमारे शास्त्रों में एक भी शब्द नहीं है, जो प्रमाणित करे कि आर्य भारत के बाहर से किसी देश से आये। हाँ प्राचीन भारत में अफगानिस्तान भी शामिल था बस इतना ही। और यह सिद्धान्त भी कि शूद्र अनार्य और असंख्य थे बिल्कुल अतार्किक और अयौक्तिक है। उन दिनों यह सम्भव ही नहीं था कि मुट्ठी भर आर्य यहाँ आकर लाखों अनार्यों पर अधिकार जमाकर बस गये हों। अजी, वे अनार्य उन्हें खा जाते, पाँच ही मिनट में उनकी चटनी बना डालते।

इस समस्या की एकमात्र व्याख्या महाभारत में मिलती है। उसमें लिखा है कि सत्ययुग के आरम्भ में एक ही जाति ब्राह्मण थी और फिर पेशे के भेद से वह भिन्न भिन्न जातियों में बँटती गयी। बस यही एकमात्र व्याख्या सच और युक्तिपूर्ण है। भविष्य में जो सत्ययुग आ रहा है उसमें ब्राह्मणेतर सभी जातियाँ फिर ब्राह्मण रूप में परिणत होंगी।

इसीलिए भारतीय जाति-समस्या की मीमांसा इस प्रकार होती है कि उच्च वर्णों को गिराना नहीं होगा, ब्राह्मणों का अस्तित्व लोप करना नहीं होगा। भारत में ब्राह्मणत्व ही मनुष्यत्व का चरम आदर्श है। इसे शंकराचार्य ने गीता के भाष्यारम्भ

मे बडे ही सुन्दर ढग से पेश किया है, जहाँ कि उन्होने ब्राह्मणत्व की रक्षा के लिए प्रचारक के रूप मे कृष्ण के आने का कारण बतलाया है। यही उनके अवतरण का महान् उद्देश्य था। इस ब्राह्मण का, इस ब्रह्मज्ञ पुरुष का, इस आदर्श और सिद्ध पुरुष का रहना परमावश्यक है, इसका लोप कदापि नही होना चाहिए। और इस समय इस जाति-भेद की प्रथा मे जितने दोष हैं, उनके रहते हुए भी, हम जानते है कि हमें ब्राह्मणो को यह श्रेय देने के लिए तैयार रहना होगा कि दूसरी जातियो की अपेक्षा उन्हीमे से अधिसख्यक मनुष्य यथार्थ ब्राह्मणत्व को लेकर आये हैं। यह सच है। दूसरी जातियो को उन्हे यह श्रेय देना ही होगा, यह उनका प्राप्य है। हमे बहुत स्पष्टवादी होकर साहस के साथ उनके दोषो की आलोचना करनी चाहिए। पर साथ ही उनका प्राप्य श्रेय भी उन्हे देना चाहिए। अंग्रेजी की पुरानी कहावत याद रखो—'हर एक मनुष्य को उसका प्राप्य दो।' अत मित्रो, जातियो का आपस मे झगडना बेकार है। इससे क्या लाभ होगा? इससे हम और भी बँट जायँगे, और भी कमज़ोर हो जायँगे, और भी गिर जायँगे। एकाधिकार तथा उसके दावे के दिन लद गये, भारतभूमि से वे चिर काल के लिए अन्तर्हित हो गये और यह भारत मे ब्रिटिश शासन का एक सुफल है। यहाँ तक कि मुसलमानो के शासन से भी हमारा उपकार हुआ था, उन्होने भी इस एकाधिकार को तोडा था। सब कुछ होने पर भी वह शासन सर्वांशत बुरा नही था, कोई भी वस्तु सर्वांशत न बुरी होती है और न अच्छी ही। मुसलमानो की भारत-विजय पददलितो और गरीबो का मानो उद्धार करने के लिए हुई थी। यही कारण है कि हमारी एक पचमाश जनता मुसलमान हो गयी। यह सारा काम तलवार से ही नही हुआ। यह सोचना कि यह सभी तलवार और आग का काम था, बेहद पागलपन होगा। अगर तुम सचेत न होगे तो मद्रास के तुम्हारे एक पचमाश—नही, अर्धांश लोग ईसाई हो जायँगे। जैसा मैंने मलाबार प्रदेश मे देखा, क्या वैसी वाहियात बातें ससार मे पहले भी कभी थी? जिस रास्ते से उच्च वर्ण के लोग चलते हैं, गरीब पैरिया उससे नही चलने पाता। परन्तु ज्यो ही उसने कोई बेढब अंग्रेजी नाम या कोई मुसलमानी नाम रख लिया कि बस, सारी बातें सुधर जाती हैं। यह सब देखकर इसके सिवा तुम और क्या निष्कर्ष निकाल सकते हो कि सब मलाबारी पागल हैं, और उनके घर पागलखाने हैं? और जब तक वे होश सँभाल कर अपनी प्रथाओ का सशोधन न कर लें, तब तक भारत की सभी जातियो को उनकी खिल्ली उडानी चाहिए। ऐसी बुरी और नृशस प्रथाओ को आज भी जारी रखना क्या उनके लिए लज्जा का विषय नही? उनके अपने बच्चे तो भूखो मरते हैं, परन्तु ज्यो ही उन्होने किसी दूसरे धर्म का आश्रय लिया कि फिर उन्हें

अच्छा भोजन मिल जाता है। सब जातियों में बाँटनी चाहिए।

उच्च वर्णों को नीचे उतारकर इस समस्या की मीमांसा [illegible] जातियों को ऊँची जातियों के बराबर उठाना होगा। और यद्यपि [illegible] जिनका अपने शास्त्रों का ज्ञान और अपने पूर्वजों के महान् [illegible] मस्तिष्क शून्य है अधिक नहीं तुम कुछ का कुछ कहते हुए सुनते [illegible] जो कुछ कहा है हमारे शास्त्रों में वर्णित कार्य-प्रणाली वही है। [illegible] समझते वे हैं जिनके मस्तिष्क है तथा पूर्वजों के कार्यों का समझ [illegible] सम की क्षमता रखते हैं। वे तटस्थ होकर युग-युगान्तरों से चलते [illegible] जीवन की विविध गति को लक्ष्य करते हैं। वे नये और पुराने सभी [illegible] क्रमशः इसकी परम्परा देख पाते हैं। अच्छा, तो वह योजना—वह [illegible] क्या है? उस आदर्श का एक छोर ब्राह्मण है और दूसरा छोर [illegible] सम्पूर्ण कार्य चांडाल को उठाकर ब्राह्मण बनाना है। शास्त्रों में धीरे धीरे तुम देख पाते हो कि नीची जातियों को अधिकाधिक अधिकार दिये जाते हैं। कुछ ग्रन्थ भी हैं जिनमें तुम्हें ऐसे कठोर वाक्य पढ़ने को मिलते हैं—'अगर शूद्र वेद सुन ले तो उसके कानों में सीसा गलाकर भर दो और अगर वह वेद की एक भी पंक्ति याद कर ले तो उसकी जीभ काट डालो। यदि वह किसी ब्राह्मण को 'ऐ ब्राह्मण' कह दे तो भी उसकी जीभ काट लो।' यह पुराने जमाने की नृशंस बर्बरता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं परन्तु स्मृतिकारों को दोष न दो, क्योंकि उन्होंने समाज के किसी अंश में प्रचलित प्रथाओं को ही लिपिबद्ध किया है। ऐसे आसुरी प्रकृति के लोग प्राचीन काल में कभी कभी पैदा हो गये थे। ऐसे असुर लोग कमोबेश सभी युगों में होते आये हैं। इसलिए बाद के समय में तुम देखोगे कि इस स्वर में थोड़ी नरमी आ गयी है, जैसे 'शूद्रों को तंग न करो, परन्तु उन्हें उच्च शिक्षा भी न दो।' फिर धीरे धीरे हम दूसरी स्मृतियों में—खासकर उन स्मृतियों में जिनका आजकल पूरा प्रभाव है, यह लिखा पाते हैं कि अगर शूद्र ब्राह्मणों के आचार-व्यवहारों का अनुकरण करें तो वे अच्छा करते हैं, उन्हें उत्साहित करना चाहिए। इस प्रकार यह सब होता जा रहा है। तुम्हारे सामने इन सब कार्य-प्रणालियों का विस्तृत वर्णन करने का मुझे समय नहीं है और न ही इसका कि इनका विस्तृत विवरण कैसे प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु प्रत्यक्ष घटनाओं का विचार करने से हम देखते हैं सभी जातियाँ धीरे धीरे उठेंगी। आज जो हजारों जातियाँ हैं, उनमें से कुछ तो ब्राह्मणों में शामिल भी हो रही हैं। कोई जाति अगर अपने को ब्राह्मण कहने लगे तो इस पर कोई क्या कर सकता है

जाति-भेद कितना भी कठोर क्यो न हो, वह इसी रूप मे ही सृष्ट हुआ है। कल्पना करो कि यहाँ कुछ जातियाँ हैं, जिनमे हर एक की जन-सख्या दस हजार है। अगर ये सव इकट्ठी होकर अपने को ब्राह्मण कहने लगे तो इन्हे कौन रोक सकता है? ऐसा मैंने अपने ही जीवन मे देखा है। कुछ जातियाँ जोरदार हो गयी, और ज्योही उन सब की एक राय हुई, फिर उनसे 'नहीं' भला कौन कह सकता है? —क्योकि और कुछ भी हो, हर एक जाति दूसरी जाति से सम्पूर्ण पृथक् है। कोई जाति किसी दूसरी जाति के कामो मे, यहाँ तक कि एक ही जाति की भिन्न भिन्न शाखाएँ भी एक दूसरे के कार्यों मे हस्तक्षेप नही करती। और शकराचार्य आदि शक्तिशाली युग-प्रवर्तक ही वडे वडे वर्ण-निर्माता थे। उन लोगो ने जिन अद्भुत वातो का आविष्कार किया था, वे सव मै तुमसे नही कह सकता, और सम्भव है कि तुममे से कोई कोई उससे अपना रोष प्रकट करे। किन्तु अपने भ्रमण और अनुभव से मैंने उनके सिद्धात ढूंढ निकाले, और इससे मुझे अद्भुत परिणाम प्राप्त हुए। कभी कभी उन्होंने दल के दल वलूचियो को लेकर क्षण भर मे उन्हें क्षत्रिय बना डाला, दल के दल धीवरो को लेकर क्षण भर मे ब्राह्मण वना दिया। वे सव ऋषि-मुनि थे और हमे उनकी स्मृति के सामने सिर झुकाना होगा। तुम्हे भी ऋषि-मुनि वनना होगा, कृतकार्य होने का यही गूढ रहस्य है। न्यूनाधिक सवको ही ऋषि होना होगा। ऋषि के क्या अर्थ हैं? ऋषि का अर्थ है पवित्र आत्मा। पहले पवित्र वनो, तभी तुम शक्ति पाओगे। 'मैं ऋषि हूँ', कहने मात्र ही से न होगा, किन्तु जब तुम यथार्थ ऋषित्व लाभ करोगे तो देखोगे, दूसरे आप ही आप तुम्हारी आज्ञा मानते हैं। तुम्हारे भीतर से कुछ रहस्यमय वस्तु नि सृत होती है, जो दूसरो को तुम्हारा अनुसरण करने को बाध्य करती है, जिससे वे तुम्हारी आज्ञा का पालन करते हैं। यहाँ तक कि अपनी इच्छा के विरुद्ध अज्ञात भाव से वे तुम्हारी योजनाओ की कार्यसिद्धि मे सहायक होते हैं। यही ऋषित्व है।

विस्तृत कार्यप्रणाली के बारे मे यही कहना है कि पीढ़ियो तक उसका अनुसरण करना होगा। मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह एक सुझाव मात्र है। जिसका उद्देश्य यह दिखाना है कि ये लडाई-झगडे बन्द हो जाने चाहिए। मुझे विशेष दु ख इस वात पर होता है कि वर्तमान समय मे भी जातियो के वीच मे इतना मतभेद चलता रहता है। इसका अन्त हो जाना चाहिए। यह दोनो ही पक्षो के लिए व्यर्थ है, खासकर ब्राह्मणो के लिए, क्योकि इस तरह के एकाधिकार और विशेष दावो के दिन लद गये। हर एक अभिजात वर्ग का कर्तव्य है कि अपने कुलीन तत्र की कब्र वह आप ही खोदे, और जितना शीघ्र इसे कर सके, उतना ही अच्छा है। जितनी ही वह देर करेगा, उतनी ही वह सडेगी और उसकी मृत्यु भी

अच्छा मौका मिल जाता है। अब जातियों में आपसी लड़ाई बिल्कुल नहीं होनी चाहिए।

उच्च वर्णों को नीचे उतारकर इस समस्या की मीमांसा न होगी, किन्तु नीची जातियों को ऊँची जातियों के बराबर उठाना होगा। और यद्यपि कुछ लोगों से, जिनका अपने शास्त्रों का ज्ञान और अपने पूर्वजों के महान् उद्देश्यों के समझने की शक्ति शून्य से अधिक नहीं, तुम कुछ का कुछ कहते हुए सुनते हो, फिर भी मैं जो कुछ कहता हूँ, हमारे शास्त्रों में वर्णित कार्य-प्रणाली यही है। वे नहीं समझते, समझते वे हैं जिनके मस्तिष्क है तथा पूर्वजों के कार्यों का समस्त प्रयोजन समझने की क्षमता रखते हैं। वे तटस्थ होकर युग-युगान्तरों से गुजरते हुए जातीय जीवन की विचित्र गति को लक्ष्य करते हैं। वे नये और पुराने सभी शास्त्रों में क्रमशः इसकी परम्परा देख पाते हैं। अच्छा तो यह योजना—यह प्रणाली क्या है? उस आदर्श का एक छोर ब्राह्मण है और दूसरा छोर चाण्डाल और सम्पूर्ण कार्य चाण्डाल को उठाकर ब्राह्मण बनाना है। शास्त्रों में धीरे धीरे तुम देख पाते हो कि नीची जातियों को अधिकाधिक अधिकार दिये जाते हैं। कुछ ग्रन्थ भी हैं जिनमें तुम्हें ऐसे कठोर वाक्य पढ़ने को मिलते हैं—'अगर शूद्र वेद सुन ले तो उसके कानों में सीसा पिघलाकर भर दो और अगर वह वेद की एक भी पंक्ति याद कर ले तो उसकी जीभ काट डालो, यदि वह किसी ब्राह्मण को 'ऐ ब्राह्मण' कह दे तो भी उसकी जीभ काट लो।' यह पुराने जमाने की नृशंस बर्बरता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं, परन्तु स्मृतिकारों को दोष न दो, क्योंकि उन्होंने समाज के किसी अंश में प्रचलित प्रथाओं को ही सिर्फ लिपिबद्ध किया है। ऐसे आसुरी प्रकृति के लोग प्राचीन काल में कभी कभी पैदा हो गये थे। ऐसे असुर लोग कमोबेश सभी युगों में होते आये हैं। इसलिए बाद के समय में तुम देखोगे कि इस स्वर में थोड़ी नरमी आ गयी है, जैसे 'शूद्रों को तंग न करो, परन्तु उन्हें उच्च शिक्षा भी न दो।' फिर धीरे धीरे हम दूसरी स्मृतियों में—खासकर उन स्मृतियों में जिनका आजकल पूरा प्रभाव है, यह लिखा पाते हैं कि अगर शूद्र ब्राह्मणों के आचार-व्यवहारों का अनुकरण करें तो वे अच्छा करते हैं, उन्हें उत्साहित करना चाहिए। इस प्रकार यह सब होता जा रहा है। तुम्हारे सामने इन सब कार्य-पद्धतियों का विस्तृत वर्णन करने का मुझे समय नहीं है और न ही इसका कि इनका विस्तृत विवरण कैसे प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु प्रत्यक्ष घटनाओं का विचार करने से हम देखते हैं, सभी जातियाँ धीरे धीरे उठेंगी। आज जो हजारों जातियाँ हैं, उनमें से कुछ तो ब्राह्मणों में शामिल भी हो रही हैं। कोई जाति अगर अपने को ब्राह्मण कहने लगे तो इस पर कोई क्या कह सकता है?

साधारण जनता के लिए वह खजाना खोल नही दिया। हम इसीलिए अवनत हो गये। और हमारा पहला कार्य यही है कि हम अपने पूर्वजो के बटोरे हुए धर्मरूपी अमोल रत्न जिन तहखानो मे छिपे हुए है, उन्हे तोडकर बाहर निकाले और उन्हे सबको दे। यह कार्य सबसे पहले ब्राह्मणो को ही करना होगा। बगाल मे एक पुराना अधविश्वास है कि जिस गोखुरे सॉप ने काटा हो, यदि वह खुद अपना विष खीच ले तो रोगी जरूर बच जायगा। अतएव ब्राह्मणो को ही अपना विष खीच लेना होगा। ब्राह्मणेतर जातियो से मैं कहता हूँ, ठहरो, जल्दी मत करो, ब्राह्मणो से लडने का मौका मिलते ही उसका उपयोग न करो, क्योकि मैं पहले दिखा चुका हूँ कि तुम अपने ही दोष से कष्ट पा रहे हो। तुम्हे आध्यात्मिकता का उपार्जन करने और सस्कृत सीखने से किसने मना किया था? इतने दिनो तक तुम क्या करते रहे? क्यो तुम इतने दिनो तक उदासीन रहे? और दूसरो ने तुमसे बढकर मस्तिष्क, वीर्य, साहस और क्रिया-शक्ति का परिचय दिया, इस पर अब चिढ क्यो रहे हो? समाचार पत्रो मे इन सब व्यर्थ वाद-विवादो और झगडो मे शक्ति क्षय न करके, अपने ही घरो मे इस तरह लडते-झगडते न रहकर—जो कि पाप है—ब्राह्मणो के समान ही सस्कार प्राप्त करने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दो। बस तभी तुम्हारा उद्देश्य सिद्ध होगा। तुम क्यो सस्कृत के पडित नही होते? भारत की सभी जातियो मे सस्कृत शिक्षा का प्रचार करने के लिए तुम क्यो नही करोडो रुपये खर्च करते? मेरा प्रश्न तो यही है। जिस समय तुम यह कार्य करोगे, उसी क्षण तुम ब्राह्मणो के बराबर हो जाओगे। भारत मे शक्तिलाभ का रहस्य यही है।

सस्कृत मे पाडित्य होने से ही भारत मे सम्मान प्राप्त होता है। सस्कृत भाषा का ज्ञान होने से ही कोई भी तुम्हारे विरुद्ध कुछ कहने का साहस न करेगा। यही एकमात्र रहस्य है, अत इसे जान लो और सस्कृत पढो। अद्वैतवादी की प्राचीन उपमा दी जाय तो कहना होगा कि समस्त जगत् अपनी माया से आप ही सम्मोहित हो रहा है। इच्छाशक्ति ही जगत् मे अमोघ शक्ति है। प्रबल इच्छाशक्ति का अधिकारी मनुष्य एक ऐसी ज्योतिर्मयी प्रभा अपने चारो ओर फैला देता है कि दूसरे लोग स्वत उस प्रभा से प्रभावित होकर उसके भाव से भावित हो जाते है। ऐसे महापुरुष अवश्य ही प्रकट हुआ करते हैं। और इसके पीछे भावना क्या है? जब वे आविर्भूत होते हैं, तब उनके विचार हम लोगो के मस्तिष्क मे प्रवेश करते हैं और हममे से कितने ही आदमी उनके विचारो तथा भावो को अपना लेते हैं और शक्तिशाली बन जाते हैं। किसी सगठन या सघ मे इतनी शक्ति क्यो होती है? सगठन को केवल भौतिक या जड शक्ति मत मानो। इसका क्या कारण है, अथवा

उतनी ही भयंकर होगी। अतः यह ब्राह्मण जाति का [illegible] सब जातियों के उद्धार की चेष्टा करे। यदि यह ऐसा [illegible] ऐसा करती है, तभी तक यह ब्राह्मण है, [illegible] है तो वह ब्राह्मण नहीं है। इधर तुम्हें भी उचित है कि [illegible] करो। इससे तुम्हें स्वर्ग मिलेगा। पर यदि तुम [illegible] की [illegible] फल स्वर्ग न होकर उसके विपरीत होगा—हमारे शास्त्रों का [illegible] विषय में तुम्हें सावधान हो जाना चाहिए। यथार्थ ब्राह्मण कोई कर्म नहीं करते। सांसारिक कर्म दूसरी जातियों के लिए है, [illegible] नहीं। ब्राह्मणों से मेरा यह निवेदन है कि वे जो कुछ जानते हैं और सदियों से उन्होंने जिस ज्ञान एवं संस्कृति का संचय किया है, [illegible] भारतीय जनता को उन्नत करने के लिए भरसक प्रयत्न करें। [illegible] क्या है इसका स्मरण करना भारतीय ब्राह्मणों का कर्तव्य है 'ब्राह्मणों को जो इतना सम्मान और विशेष अधिकार दिये जाते [illegible] यह है कि उनके पास धर्म का भंडार है।'[1] उन्हें यह भंडार खोलकर संसार में बाँट देने चाहिए। यह सच है कि ब्राह्मणों ने ही [illegible] जातियों में धर्म का प्रचार किया और उन्होंने ही सबसे पहले, जब दूसरी जातियों में त्याग के भाव का उन्मेष ही नहीं हुआ था, जीवन के लिए सब कुछ छोड़ा। यह ब्राह्मणों का दोष नहीं कि वे अन्य जातियों से आगे बढ़े। दूसरी जातियों ने भी ब्राह्मणों की तरह [illegible] करने की चेष्टा क्यों नहीं की? क्यों उन्होंने चुप बैठे रहकर ब्राह्मणों को [illegible] मार लेने दिया?

परन्तु दूसरों की अपेक्षा अधिक अवसर होना तथा सुविधाएँ प्राप्त [illegible] बात है और दुरुपयोग के लिए उन्हें बनाये रखना दूसरी बात। शक्ति जब [illegible] बुरे उद्देश्य के हेतु लगायी जाती है तो वह आसुरी हो जाती है; उसका उपयोग [illegible] के लिए ही होना चाहिए। अतः युगों की यह संचित शिक्षा तथा संस्कार, जिसके ब्राह्मण संरक्षक होते आये हैं, अब साधारण जनता को देना पड़ेगा, और [illegible] उन्होंने साधारण जनता को यह सम्पत्ति नहीं दी, इसीलिए मुसलमानों का आक्रमण सफल हो सका था। हम तो हजारों वर्षों तक [illegible] विजेता [illegible] इसका कारण यही है कि ब्राह्मणों ने [illegible]

१ [illegible]
[illegible]

इसके सिवा हमारे भीतर एक और वडा भारी दोप है। महिलाएँ मुझे क्षमा करेंगी, पर असल वात यह है कि सदियो से गुलामी करते करते हम औरतो के राष्ट्र के समान वन गये हैं। चाहे इस देश मे हो या किसी अन्य देश मे, कही भी तुम तीन स्त्रियो को शायद ही कभी एक साथ पाँच मिनट से अधिक देर तक झगडा किये विना देख पाओगे। यूरोपीय देशो मे स्त्रियाँ वहुत वडी वडी सभा-समितियाँ स्थापित करती हैं और अपनी शक्ति की वडी वडी घोषणाएँ करती है। इसके वाद वे आपस मे झगडा करने लग जाती है। इसी वीच कोई पुरुष आता है और उन पर अपना प्रभुत्व जमा लेता है। सारे ससार मे उन पर शासन करने के लिए अव भी पुरुषो की आवश्यकता होती है। हमारी भी ठीक वही हालत है। हम भी स्त्रियो के समान हो गये है। यदि कोई स्त्री स्त्रियो का नेतृत्व करने चलती है, तो सव मिलकर फौरन उसकी खरी आलोचना करना शुरू कर देती हैं—उसकी खिल्लियाँ उडाने लग जाती है, और अन्त मे उसे नेतृत्व से हटाकर, उसे वैठाकर ही दम लेती है। यदि कोई पुरुष आता है और उनके साथ ज़रा सख्त वर्ताव करता है और वीच वीच मे डाँट फटकार सुना देता है, तो वस ठीक हो जाती हैं, इस प्रकार के वशीकरण की वे अभ्यस्त हो गयी हैं। सारा ससार ही इस प्रकार के वशीकरण एव सम्मोहन करनेवालो से भरा है। ठीक इसी तरह यदि हम लोगो मे से किसीने आगे वढना चाहा, हमे रास्ता दिखाने की कोशिश की, तो हम फौरन उसकी टाँग पकडकर पीछे खीचेंगे और उसे विठा देंगे। परन्तु यदि कोई विदेशी हमारे वीच मे कूद पडे और हमे पैरो से ठोकर मारे, तो हम वडी खुशी से उसके पैर सहलाने लग जायँगे। हम लोग इसके अभ्यस्त हो गये हैं। क्या ऐसी वात नही है? और कही गुलाम स्वामी वन सकता है, इसलिए गुलाम वनना छोडो।

आगामी पचास वर्ष के लिए यह जननी जन्मभूमि भारतमाता ही मानो आराध्य देवी वन जाय। तव तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी-देवताओ के हट जाने मे कुछ भी हानि नही है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर है और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी-देवताओ को हम देख नही पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौडें और जिस विराट् देवता को हम अपने चारो ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करे? जव हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे, तभी हम दूसरे देव-देवियो की पूजा करने योग्य होंगे, अन्यथा नही। आध मील चलने की हमे शक्ति ही नही और हम हनुमान जी की तरह एक ही छलाँग मे समुद्र पार करने की इच्छा करें, ऐसा नही हो सकता। जिसे देखो वही योगी वनने की धुन मे है, जिसे देखो वही समाधि

यह कौन सी वस्तु है, जिसके द्वारा कुल चार करोड़ अंग्रेज पूरे तीस करोड़ भारतवासियों पर शासन करते हैं? इस प्रश्न का मनोवैज्ञानिक समाधान क्या है? यही कि वे चार करोड़ मनुष्य अपनी अपनी इच्छाशक्ति को समवेत कर देते हैं अर्थात् शक्ति का अनन्त भाण्डार बना लेते हैं और तुम तीस करोड़ मनुष्य अपनी अपनी इच्छाओं को एक दूसरे से पृथक किये रहते हो। बस यही इसका रहस्य है कि वे कम होकर भी तुम्हारे ऊपर शासन करते हैं। अतः यदि भारत को महान् बनाना है, उसका भविष्य उज्ज्वल बनाना है, तो इसके लिए आवश्यकता है संगठन की, शक्ति-संग्रह की और बिखरी हुई इच्छाशक्ति को एकत्र कर उसमें समन्वय लाने की।

अथर्ववेद संहिता की एक विलक्षण ऋचा याद आ गयी, जिसमें कहा गया है, 'तुम सब लोग एक मन हो जाओ, सब लोग एक ही विचार के बन जाओ, क्योंकि प्राचीन काल में एक मन होने के कारण ही देवताओं ने बलि पायी है।'[1] देवता मनुष्य द्वारा इसीलिए पूजे गये कि वे एकचित्त थे, एक मन हो जाना ही समाज गठन का रहस्य है। और यदि तुम 'आर्य' और 'द्राविड़', 'ब्राह्मण' और 'अब्राह्मण' जैसे तुच्छ विषयों को लेकर 'तू तू मैं मैं' करोगे—झगड़े और पारस्परिक विरोध भाव को बढ़ाओगे—तो समझ लो कि तुम उस शक्ति-संग्रह से दूर हटते जाओगे, जिसके द्वारा भारत का भविष्य बनने जा रहा है। इस बात को याद रखो कि भारत का भविष्य सम्पूर्णतः उसी पर निर्भर करता है। बस, इच्छा-शक्ति का संचय और उनका समन्वय कर उन्हें एकमुखी करना ही वह सारा रहस्य है। प्रत्येक चीनी अपनी शक्तियों को भिन्न भिन्न मार्गों से परिचालित करता है, तथा मुट्ठी भर जापानी अपनी इच्छा-शक्ति एक ही मार्ग से परिचालित करते हैं, और उसका फल क्या हुआ है, वह तुम लोगों से छिपा नहीं है। इसी तरह की बात सारे संसार में देखने में आती है। यदि तुम संसार के इतिहास पर दृष्टि डालो, तो तुम देखोगे कि सर्वत्र छोटे छोटे सुगठित राष्ट्र बड़े बड़े असंगठित राष्ट्रों पर शासन कर रहे हैं। ऐसा होना स्वाभाविक है, क्योंकि छोटे संगठित राष्ट्र अपने भावों को आसानी के साथ केन्द्रीभूत कर सकते हैं। और इस प्रकार वे अपनी शक्ति को विकसित करने में समर्थ होते हैं। दूसरी ओर जितना बड़ा राष्ट्र होगा, उतना ही संगठित करना कठिन होगा। वे मानो अनियंत्रित लोगों की भीड़ मात्र हैं, वे कभी परस्पर सम्बद्ध नहीं हो सकते। इसलिए ये सब मतभेद के झगड़े एकदम बन्द हो जाने चाहिए।

---

१ संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ ६।६४।१॥

इसके सिवा हमारे भीतर एक और वडा भारी दोष है। महिलाएँ मुझे क्षमा करेंगी, पर असल बात यह है कि सदियो से गुलामी करते करते हम औरतो के राष्ट्र के समान वन गये हैं। चाहे इस देश मे हो या किसी अन्य देश मे, कही भी तुम तीन स्त्रियो को शायद ही कभी एक साथ पाँच मिनट से अधिक देर तक झगडा किये विना देख पाओगे। यूरोपीय देशो मे स्त्रियाँ वहुत वडी वडी सभा-समितियाँ स्थापित करती हैं और अपनी शक्ति की वडी वडी घोषणाएँ करती हैं। इसके वाद वे आपस मे झगडा करने लग जाती हैं। इसी बीच कोई पुरुष आता है और उन पर अपना प्रभुत्व जमा लेता है। सारे ससार मे उन पर शासन करने के लिए अव भी पुरुषो की आवश्यकता होती है। हमारी भी ठीक वही हालत है। हम भी स्त्रियो के समान हो गये है। यदि कोई स्त्री स्त्रियो का नेतृत्व करने चलती है, तो सव मिलकर फौरन उसकी खरी आलोचना करना शुरू कर देती हैं—उसकी खिल्लियाँ उडाने लग जाती हैं, और अन्त मे उसे नेतृत्व से हटाकर, उसे बैठाकर ही दम लेती हैं। यदि कोई पुरुष आता है और उनके साथ ज़रा सख्त वर्ताव करता है और बीच बीच मे डाँट फटकार सुना देता है, तो वस ठीक हो जाती है, इस प्रकार के वशीकरण की वे अभ्यस्त हो गयी हैं। सारा ससार ही इस प्रकार के वशीकरण एव सम्मोहन करनेवालो से भरा है। ठीक इसी तरह यदि हम लोगो मे से किसीने आगे बढना चाहा, हमे रास्ता दिखाने की कोशिश की, तो हम फौरन उसकी टाँग पकडकर पीछे खीचेंगे और उसे बिठा देंगे। परन्तु यदि कोई विदेशी हमारे बीच मे कूद पडे और हमे पैरो से ठोकर मारे, तो हम बडी खुशी से उसके पैर सहलाने लग जायँगे। हम लोग इसके अभ्यस्त हो गये हैं। क्या ऐसी बात नही है? और कही गुलाम स्वामी वन सकता है, इसलिए ग़ुलाम बनना छोडो।

आगामी पचास वर्ष के लिए यह जननी जन्मभूमि भारतमाता ही मानो आराध्य देवी बन जाय। तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी-देवताओ के हट जाने मे कुछ भी हानि नही है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी-देवताओ को हम देख नही पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौडें और जिस विराट् देवता को हम अपने चारो ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करें? जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे, तभी हम दूसरे देव-देवियो की पूजा करने योग्य होंगे, अन्यथा नही। आध मील चलने की हमे शक्ति ही नही और हम हनुमान जी की तरह एक ही छलाँग मे समुद्र पार करने की इच्छा करें, ऐसा नही हो सकता। जिसे देखो वही योगी बनने की धुन मे है, जिसे देखो वही समाधि

लगाने जा रहा है! ऐसा नहीं होने का। दिन भर तो दुनिया के सैकड़ों प्रपंचों में लिप्त रहोगे, कर्मकाण्ड में व्यस्त रहोगे और शाम को आँख मूँदकर, नाक दबाकर साँस चढ़ाओगे-उतारोगे। क्या योग की सिद्धि और समाधि को इतना सहज समझ रखा है कि ऋषि लोग तुम्हारे तीन बार नाक फड़फड़ाने और साँस चढ़ाने से हवा में मिलकर तुम्हारे पेट में घुस जायेंगे? क्या इसे तुमने कोई हँसी मजाक मान लिया है? ये सब विचार वाहियात हैं। जिसे ग्रहण करने या अपनाने की आवश्यकता है, वह है चित्तशुद्धि। और उसकी प्राप्ति कैसे होती है? इसका उत्तर यह है कि सबसे पहले उस विराट की पूजा करो, जिसे तुम अपने चारों ओर देख रहे हो—'उसकी' पूजा करो। 'वर्शिप' ही इस संस्कृत शब्द का ठीक समानार्थक है, अंग्रेजी के किसी अन्य शब्द से काम नहीं चलेगा। ये मनुष्य और पशु, जिन्हें हम आस-पास और आगे-पीछे देख रहे हैं, ये ही हमारे ईश्वर हैं। इनमें सबसे पहले पूज्य हैं हमारे अपने देशवासी। परस्पर ईर्ष्या-द्वेष करने और झगड़ने के बजाय हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। यह अत्यन्त भयावह कर्म है, जिसके लिए हम कष्ट भोग रहे हैं। फिर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं।

अस्तु, यह विषय इतना विस्तृत है कि मेरी समझ में ही नहीं आता कि मैं कहाँ पर अपना वक्तव्य समाप्त करूँ। इसलिए मद्रास में मैं किस प्रकार काम करना चाहता हूँ, इस विषय में संक्षेप में अपना मत व्यक्त कर व्याख्यान समाप्त करता हूँ। सबसे पहले हमें अपनी जाति की आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा का भार ग्रहण करना होगा। क्या तुम इस बात की सार्थकता को समझ रहे हो? तुम्हें इस विषय पर सोचना विचारना होगा, इस पर तर्क वितर्क और आपस में परामर्श करना होगा, दिमाग लगाना होगा और अन्त में उसे कार्य रूप में परिणत करना होगा। जब तक तुम यह काम पूरा नहीं करते हो, तब तक तुम्हारी जाति का उद्धार होना असम्भव है। जो शिक्षा तुम अभी पा रहे हो, उसमें कुछ अच्छा अंश भी है और बुराइयाँ बहुत हैं। इसलिए ये बुराइयाँ उसके भले अंश को दबा देती हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि यह शिक्षा मनुष्य बनानेवाली नहीं कही जा सकती। यह शिक्षा केवल तथा सम्पूर्णतः निषेधात्मक है। निषेधात्मक शिक्षा या निषेध की बुनियाद पर आधारित शिक्षा मृत्यु से भी भयानक है। कोमल मति बालक पाठशाला में भर्ती होता है और सबसे पहली बात जो उसे सिखायी जाती है, वह यह कि तुम्हारा बाप मूर्ख है। दूसरी बात जो वह सीखता है, वह यह है कि

१ अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम्।
अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याभिन्नेन चक्षुषा॥ श्रीमद्भागवत ३।२९।२७॥

तुम्हारा दादा पागल है। तीसरी बात है कि तुम्हारे जितने शिक्षक और आचार्य हैं, वे पाखडी है। और चौथी बात है कि तुम्हारे जितने पवित्र धर्म ग्रन्थ है, उनमे झूठी और कपोलकल्पित बाते भरी हुई है। इस प्रकार की निषेधात्मक बाते सीखते सीखते जब बालक सोलह वर्ष की अवस्था को पहुँचता है, तब वह निषेधो की खान बन जाता है—उसमे न जान रहती है और न रीढ। अत इसका जैसा परिणाम होना चाहिए था, वैसा ही हुआ है। पिछले पचास वर्षों से दी जानेवाली इस शिक्षा ने तीनो प्रान्तो मे एक भी स्वतंत्र विचारो का मनुष्य पैदा नही किया, और जो स्वतत्र विचार के लोग हैं, उन्होने यहाँ शिक्षा नही पायी है, विदेशो मे पायी है, अथवा अपने भ्रममूलक कुसस्कारो का निवारण करने के लिए पुन अपने पुराने शिक्षालयो मे जाकर अध्ययन किया है। शिक्षा का मतलब यह नही है कि तुम्हारे दिमाग मे ऐसी बहुत सी बातें इस तरह ठूँस दी जायँ कि अन्तर्द्वन्द्व होने लगे और तुम्हारा दिमाग उन्हे जीवन भर पचा न सके। जिस शिक्षा से हम अपना जीवन निर्माण कर सके, मनुष्य बन सके, चरित्र गठन कर सकें और विचारो का सामजस्य कर सके, वही वास्तव मे शिक्षा कहलाने योग्य है। यदि तुम पाँच ही भावो को पचा कर तदनुसार जीवन और चरित्र गठित कर सके हो, तो तुम्हारी शिक्षा उस आदमी की अपेक्षा बहुत अधिक है, जिसने एक पूरे पुस्तकालय को कठस्थ कर रखा है। कहा भी है—**यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।** अर्थात्—'वह गधा, जिसके ऊपर चन्दन की लकडियो का बोझ लाद दिया गया हो, बोझ की ही बात जान सकता है, चन्दन के मूल्य को वह नही समझ सकता।' यदि बहुत तरह की खबरों का सचय करना ही शिक्षा है, तब तो ये पुस्तकालय ससार मे सर्वश्रेष्ठ मुनि और विश्वकोश ही ऋषि हैं। इसलिए हमारा आदर्श यह होना चाहिए कि अपने देश की समग्र आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा के प्रचार का भार अपने हाथो मे ले लें और जहाँ तक सम्भव हो, राष्ट्रीय रीति से राष्ट्रीय सिद्धान्तो के आधार पर शिक्षा का विस्तार करें। हाँ, यह ठीक है कि यह एक बहुत बडी योजना है। मैं नही कह सकता कि यह कभी भी कार्य रूप मे परिणत होगी या नही, पर इसका विचार छोडकर हमे यह काम फौरन शुरू कर देना चाहिए। लेकिन कैसे? किस तरह से काम मे हाथ लगाया जाय? उदाहरण के लिए मद्रास का ही काम ले लो। सबसे पहले हमे एक मन्दिर की आवश्यकता है, क्योकि सभी कार्यों मे प्रथम स्थान हिन्दू लोग धर्म को ही देते हैं। तुम कहोगे कि ऐसा होने से हिन्दुओ के विभिन्न मतावलम्बियो मे परस्पर झगडे होने लगेंगे। पर मैं तुमको किसी मत विशेष के अनुसार वह मन्दिर बनाने को नही कहता। वह इन साम्प्रदायिक भेद भावो के परे होगा। उसका एकमात्र प्रतीक होगा ॐ, जो कि हमारे किसी भी धर्म सम्प्रदाय के

मिद् महानतम प्रतीक है। यदि हिन्दुओं में कोई ऐसा सम्प्रदाय हो जो इस ओंकार को न माने तो समझ लो कि वह हिन्दू कहलाने योग्य नहीं है। वहाँ सब लोग अपने अपने सम्प्रदाय के अनुसार ही हिन्दुत्व की व्याख्या कर सकेंगे पर मन्दिर हम सब के लिए एक ही होना चाहिए। अपने सम्प्रदाय के अनुसार जो देवी देवताओं की प्रतिमा-पूजा करना चाहें अन्यत्र जाकर करें, पर इस मन्दिर में वे औरों से झगड़ा न करें। इस मन्दिर में वे ही धार्मिक तत्त्व समझाये जायँगे जो सब सम्प्रदायों में समान हैं। साथ ही हर एक सम्प्रदायवाले को अपने मत की शिक्षा देने का यहाँ पर अधिकार रहेगा पर एक प्रतिबन्ध रहेगा कि वे अन्य सम्प्रदायों से झगड़ा नहीं करने पायेंगे। बोलो तुम क्या कहते हो? संसार तुम्हारी राय जानना चाहता है, उसे यह सुनने का समय नहीं है कि तुम औरों के विषय में क्या विचार प्रकट कर रहे हो। औरों की बात छोड़ तुम अपनी ही ओर ध्यान दो।

इस मन्दिर के सम्बन्ध में एक दूसरी बात यह है कि इसके साथ ही एक और संस्था हो जिससे धार्मिक शिक्षक और प्रचारक तैयार किये जायँ और वे सभी घूम-फिरकर धर्म प्रचार करने को भेजे जायँ। परन्तु वे केवल धर्म का ही प्रचार न करें, वरन् उसके साथ साथ लौकिक शिक्षा का भी प्रचार करें। जैसे हम धर्म का प्रचार द्वार द्वार जाकर करते हैं वैसे ही हमें लौकिक शिक्षा का भी प्रचार करना पड़ेगा। यह काम आसानी से हो सकता है। शिक्षकों तथा धर्म प्रचारकों के द्वारा हमारे कार्य का विस्तार होता जायगा और क्रमशः अन्य स्थानों में ऐसे ही मन्दिर प्रतिष्ठित होंगे और इस प्रकार समस्त भारत में यह कार्य फैल जायगा। यही मेरी योजना है। तुमको यह बड़ी भारी मालूम होगी पर इसकी इस समय बहुत आवश्यकता है। तुम पूछ सकते हो, इस काम के लिए धन कहाँ से आयेगा? धन की जरूरत नहीं। धन कुछ नहीं है। पिछले बारह वर्षों से मैं ऐसा जीवन व्यतीत कर रहा हूँ कि मैं यह नहीं जानता कि आज कहाँ खा रहा हूँ तो कल कहाँ खाऊँगा। और न मैंने कभी इसकी परवाह ही की। धन या किसी भी वस्तु की जब मुझे इच्छा होगी तभी वह प्राप्त हो जायगी, क्योंकि वे सब मेरे गुलाम हैं, न कि मैं उनका गुलाम हूँ। जो मेरा गुलाम है उसे मेरी इच्छा होते ही मेरे पास आना पड़ेगा। अतः उसकी कोई चिन्ता न करो।

अब प्रश्न यह है कि काम करनेवाले कहाँ मिलें? मद्रास के नवयुवको, तुम्हारे ऊपर ही मेरी आशा है। क्या तुम अपने राष्ट्र की पुकार सुनोगे? यदि तुम मुझ पर विश्वास करने का साहस करो, तो मैं कहता हूँ कि तुममें से प्रत्येक का भविष्य उज्ज्वल है। अपने आप पर अगाध अटूट विश्वास रखो, वैसा ही विश्वास जैसा मैं बाल्यकाल से अपने ऊपर रखता था और जिसे मैं अब कार्यान्वित कर रहा हूँ। तुममें से प्रत्येक

अपने आप पर विश्वास रखो। यह विश्वास रखो कि प्रत्येक की आत्मा मे अनन्त शक्ति विद्यमान है। तभी तुम सारे भारतवर्ष को पुनरुज्जीवित कर सकोगे। फिर तो हम दुनिया के सभी देशो मे खुले आम जायँगे और आगामी दस वर्षों मे हमारे भाव उन सब विभिन्न शक्तियो के एक अशस्वरूप हो जायँगे, जिनके द्वारा ससार का प्रत्येक राष्ट्र सगठित हो रहा है। हमे भारत मे बसनेवाली और भारत के बाहर बसनेवाली सभी जातियो के अन्दर प्रवेश करना होगा। इसके लिए हमे कर्म करना होगा। और इस काम के लिए मुझे युवक चाहिए। वेदो मे कहा है, 'युवक, बलशाली, स्वस्थ, तीव्र मेघावाले और उत्साहयुक्त मनुष्य ही ईश्वर के पास पहुँच सकते हैं।' तुम्हारे भविष्य को निश्चित करने का यही समय है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि अभी इस भरी जवानी मे, इस नये जोश के ज़माने मे ही काम करो, जीर्ण शीर्ण हो जाने पर काम नही होगा। काम करो, क्योकि काम करने का यही समय है। सबसे अधिक ताज़े, बिना स्पर्श किये हुए और बिना सूँघे फूल ही भगवान् के चरणो पर चढाये जाते हैं और वे उसे ही ग्रहण करते हैं। अपने पैरो आप खडे हो जाओ, देर न करो, क्योकि जीवन क्षणस्थायी है। वकील बनने की अभिलाषा आदि से कही अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करने हैं। तथा इससे भी ऊँची अभिलाषा रखो और अपनी जाति, देश, राष्ट्र और समग्र मानव समाज के कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग करना सीखो। इस जीवन मे क्या है? तुम हिन्दू हो और इसलिए तुम्हारा यह सहज विश्वास है कि तुम अनन्त काल तक रहनेवाले हो। कभी कभी मेरे पास नास्तिकता के विषय पर वार्तालाप करने के लिए कुछ युवक आया करते हैं। पर मेरा विश्वास है कि कोई हिन्दू नास्तिक नही हो सकता। सम्भव है कि किसीने पाश्चात्य ग्रन्थ पढे हो और अपने को भौतिकवादी समझने लग गया हो। पर ऐसा केवल कुछ समय के लिए होता है। यह बात तुम्हारे खून के भीतर नही है। जो बात तुम्हारी रग रग मे रमी हुई है, उसे तुम निकाल नही सकते और न उसकी जगह और किसी धारणा पर तुम्हारा विश्वास ही हो सकता है। इसीलिए वैसी चेष्टा करना व्यर्थ होगा। मैंने भी बाल्यावस्था मे ऐसी चेष्टा की थी, पर वैसा नही हो सकता। जीवन की अवधि अल्प है, पर आत्मा अमर और अनन्त है, और मृत्यु अनिवार्य है। इसलिए आओ, हम अपने आगे एक महान् आदर्श खडा करें और उसके लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दें। यही हमारा निश्चय हो और वे भगवान्, जो हमारे शास्त्रो के अनुसार साधुओ के परित्राण के लिए ससार मे बार बार आविर्भूत होते हैं, वे ही महान् कृष्ण हमको आशीर्वाद दें एव हमारे उद्देश्य की सिद्धि मे सहायक हो।

# दान

जब स्वामी जी मद्रास में थे, उस समय एक बार उनके सभापतित्व में 'चेन्नापुरी अन्नदान समाजम्' नामक एक दातव्य संस्था का वार्षिक समारोह मनाया गया। इस अवसर पर उन्होंने एक संक्षिप्त भाषण दिया, जिसमें उन्होंने उसी समारोह के एक पूर्व वक्ता महोदय के विचारों पर कुछ प्रकाश डाला। इन वक्ता महोदय ने कहा था कि यह अनुचित है कि अन्य सब जातियों की अपेक्षा केवल ब्राह्मण को ही विशेष दान दिया जाता है। इसी प्रसंग में स्वामी जी ने कहा कि इस बात के दो पहलू हैं—एक अच्छा, दूसरा बुरा। यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो प्रतीत होगा कि राष्ट्र की समस्त शिक्षा एवं सभ्यता अधिकतर ब्राह्मणों में ही पायी जाती है, साथ ही ब्राह्मण ही समाज के विचारशील तथा मननशील व्यक्ति रहे हैं। यदि थोड़ी देर के लिए मान लो कि तुम उनके वे साधन छीन लो, जिनके सहारे वे चिन्तन मनन करते हैं, तो परिणाम यह होगा कि सारे राष्ट्र को धक्का लगेगा। इसके बाद स्वामी जी ने यह बतलाया कि यदि हम भारत के दान की शैली की, जो बिना विचार अथवा भेदभाव के होती है, तुलना दूसरे राष्ट्रों की उस शैली से करें, जिसका एक प्रकार से कानूनी रूप होता है, तो हमें यह प्रतीत होगा कि हमारे यहाँ एक भिखमंगा भी बस उतने से सन्तुष्ट हो जाता है, जो उसे तुरन्त दे दिया जाय, और उतने में ही वह अपनी सब की जिन्दगी बसर करता है। परन्तु इसके विपरीत पाश्चात्य देशों में पहली बात तो यह है कि कानून भिखमंगों को सेवाश्रम में जाने के लिए बाध्य करता है। परन्तु मनुष्य भोजन की अपेक्षा स्वतन्त्रता अधिक पसन्द करता है, इसलिए वह सेवाश्रम में न जाकर समाज का दुश्मन डाकू बन जाता है। और फिर इसी कारण हमें इस बात की जरूरत पड़ती है कि हम मजिस्ट्रेट, पुलिस, जेल तथा अन्य साधनों का निर्माण करें। यह निश्चित है कि समाज के शरीर में जब तक 'सभ्यता' नामक बीमारी बनी रहेगी, तब तक उसके साथ साथ गरीबी रहेगी और इसीलिए गरीबों को सहायता देने की आवश्यकता भी रहेगी। यही कारण है कि भारत वासियों की बिना भेदभाव की दान शैली और पाश्चात्य देशों की विभेदमूलक दान शैली में अन्तर पता चलेगा। भारतीय दान-शैली में साधु एवं संन्यासियों की बात है, उनका तो यह हाल है कि भले ही उनमें से कोई सच्चे संन्यासी न हों, परन्तु फिर भी उन्हें भिक्षाटन करने के लिए अपने शास्त्रों के कम से कम कुछ अंशों को

आपका कार्य बढा। अनेक राज्यो के भिन्न भिन्न शहरो से आपके पास निमत्रण पर निमत्रण आते रहे और उन्हे भी आपको स्वीकार करना पडता था, कितने ही प्रकार की शकाओ का समाधान करना होता था, प्रश्नो का उत्तर देना पडता था, लोगो की अनेक समस्याओ को हल करना पडता था और हम जानते हैं कि यह सारा कार्य आपने बडे उत्साह एव योग्यता तथा सच्चाई के साथ किया। इस सबका फल भी चिरस्थायी ही निकला। आपकी शिक्षाओ का अमरीकी राष्ट्रमडल के अनेक प्रबुद्ध क्षेत्रो पर बडा गहरा असर पडा और उसीके कारण उन लोगो मे अनेक दिशाओ मे विचार विनिमय, मनन तथा अन्वेषण का भी बीजारोपण हुआ। अनेक लोगो की हिन्दू धर्म के प्रति जो प्राचीन गलत धारणाएँ थी, वे भी बदल गयी और हिन्दू धर्म के प्रति उनकी श्रद्धा एव भक्ति बढ गयी। उसके बाद शीघ्र ही धर्म सम्बन्धी तुलनात्मक अध्ययन तथा आध्यात्मिक तत्त्वो के अन्वेषण के लिए जो अनेक नये नये क्लब तथा समितियाँ स्थापित हुईं, वे इस बात की स्पष्ट द्योतक हैं कि दूर पाश्चात्य देशो मे आपके प्रयत्नो का फल क्या हुआ तथा कैसा हुआ! आप तो लन्दन मे वेदान्त-दर्शन की शिक्षा प्रदान करनेवाले विद्यालय के सस्थापक कहे जा सकते हैं। आपके नियमित रूप से व्याख्यान होते रहे, जनता भी उन्हे ठीक समय पर सुनने आयी तथा उनकी व्यापक रूप से प्रशसा हुई। निश्चय ही उनका प्रभाव व्याख्यान-भवन तक ही सीमित नही रहा, वरन् उसके बाहर भी हुआ। आपकी शिक्षाओ द्वारा जनता मे जिस प्रीति तथा श्रद्धा का उद्रेक हुआ, उसका द्योतक वह भावनापूर्ण मान-पत्र है, जो आपको लन्दन छोडते समय वहाँ के वेदान्त-दर्शन के विद्यार्थियो ने दिया था।

वेदान्ताचार्य के नाते आपको जो सफलता प्राप्त हुई, उसका कारण केवल यही नही रहा है कि आप आर्य धर्म के सत्य सिद्धान्तो से गहन रूप से परिचित हैं, और न यही कि आपके भाषण तथा लेख इतने सुन्दर तथा जोशीले होते हैं, वरन् इसका कारण मुख्यत स्वय आपका व्यक्तित्व ही रहा है। आपके भाषण, निवन्ध तथा पुस्तको मे आध्यात्मिकता तथा साहित्यिक दोनो प्रकार की विशेषताएँ हैं और इसलिए अपना पूरा असर किये विना वे कभी रह ही नही सकते। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि इनका प्रभाव यदि और भी अधिक पडा है तो उसका कारण है, आपका सादा, परोपकारी तथा नि स्वार्थ जीवन, आपकी नम्रता, आपकी भक्ति तथा आपकी लगन।

यहाँ पर जव हम आपकी उन सेवाओ का उल्लेख कर रहे हैं जो आपने हिन्दू धर्म के उदात्त सत्य सिद्धान्तो के आचार्य होने के नाते की हैं, तो हम अपना यह परम कर्तव्य समझते हैं कि हम आपके पूज्य गुरुदेव तथा पथप्रदर्शक श्री रामकृष्ण परमहस

# कलकत्ता-अभिनन्दन का उत्तर

स्वामी जी जब कलकत्ता पहुँचे तो लोगों ने उनका स्वागत बड़े जोश खरोश के साथ किया। शहर के अनेक सजे सजाये रास्तों से उनका बड़ा भारी जुलूस निकला और रास्ते के चारों ओर जनता की जबरदस्त भीड़ थी जो उनका दर्शन पाने के लिए उत्सुक थी। उनका औपचारिक स्वागत एक सप्ताह बाद शोभा बाजार के स्व. राजा राधाकान्तदेव बहादुर के निवासस्थान पर हुआ, जिसका सभापतित्व राजा विनयकृष्ण देव बहादुर ने किया। सभापति द्वारा कुछ संक्षिप्त परिचय के साथ स्वामी जी की सेवा में निम्नलिखित मान-पत्र एक सुन्दर चाँदी की मंजूषा में रखकर भेंट किया गया—

सेवा में

श्रीमत् स्वामी विवेकानन्द जी

प्रिय बन्धु,

हम कलकत्ता तथा बंगाल के अन्य स्थानों के हिन्दू निवासी आज आपके अपनी जन्मभूमि में वापस आने के अवसर पर आपका हृदय से स्वागत करते हैं। महाराज आपका स्वागत करते समय हम अत्यन्त गर्व तथा कृतज्ञता का अनुभव करते हैं क्योंकि आपने महान् कर्म तथा आदर्श द्वारा संसार के भिन्न भिन्न भागों में केवल हमारे धर्म को ही गौरवान्वित नहीं किया है, वरन् हमारे देश और विशेषतः हमारे बंगाल प्रान्त का सिर ऊँचा किया है।

सन् १८९३ ई. में शिकागो शहर में जो विश्व-मेला हुआ था, उसकी अंगभूत धर्म-महासभा के अवसर पर आपने आर्य धर्म के तत्त्वों का विशेष रूप से वर्णन किया। आपके भाषण का सार अधिकतर श्रोताओं के लिए बड़ा शिक्षाप्रद तथा रहस्योद्घाटन करनेवाला था और ओज तथा माधुर्य के कारण वह उसी प्रकार हृदयग्राही भी था। सम्भव है कि आपके उस भाषण को कुछ लोगों ने सन्देह की दृष्टि से सुना हो तथा कुछ ने उस पर तर्क वितर्क भी किया हो, परन्तु इसका सामान्य प्रभाव तो यही हुआ कि उसके द्वारा अधिकांश शिक्षित अमरीकी जनता के धार्मिक विचारों में क्रान्ति हो गयी। उनके मन में जो एक नया प्रकाश पड़ा, उसका उन्होंने अपनी स्वाभाविक निष्कपटता तथा सत्य के प्रति अनुराग के वश हो अधिक से अधिक लाभ उठाने का निश्चय किया। फलतः आपको विस्तृत सुयोग प्राप्त हुआ और

स्वामी जी ने इसका निम्नलिखित उत्तर दिया

## स्वामी जी का भाषण

मनुष्य अपनी व्यक्ति-चेतना को सार्वभौम चेतना मे लीन कर देना चाहता है, वह जगत् प्रपच का कुल सम्बन्ध छोड देना चाहता है, वह अपने समस्त सम्बन्धो की माया काटकर ससार से दूर भाग जाना चाहता है। वह सम्पूर्ण दैहिक पुराने सस्कारो को छोडने की चेष्टा करता है। यहाँ तक कि वह एक देहधारी मनुष्य है, इसे भी भूलने का भरसक प्रयत्न करता है। परन्तु अपने अन्तर के अन्तर मे सदा ही एक मृदु अस्फुट ध्वनि उसे सुनायी पडती है, उसके कानो मे सदा ही एक स्वर बजता रहता है, न जाने कौन दिन रात उसके कानो मे मधुर स्वर से कहता रहता है, पूर्व मे हो या पश्चिम मे, **जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी**। भारत साम्राज्य की राजधानी के अधिवासियो, तुम्हारे पास मैं सन्यासी के रूप मे नही, धर्मप्रचारक की हैसियत से भी नही, बल्कि पहले की तरह कलकत्ते के उसी बालक के रूप मे बातचीत करने के लिए आया हुआ हूँ। हाँ, मेरी इच्छा होती है कि आज इस नगर के रास्ते की धूल पर बैठकर बालक की तरह सरल अन्त करण से तुमसे अपने मन की सब बाते खोल कर कहूँ। तुम लोगो ने मुझे अनुपम शब्द 'भाई' सम्बोधित किया है, इसके लिए तुम्हे हृदय से धन्यवाद देता हूँ। हाँ, मैं तुम्हारा भाई हूँ, तुम भी मेरे भाई हो। पश्चिमी देशो से लौटने के कुछ ही समय पहले एक अंग्रेज मित्र ने मुझसे पूछा था, 'स्वामी जी, चार वर्षों तक विलास की लीलाभूमि गौरवशाली महाशक्तिमान् पश्चिमी भूमि पर भ्रमण कर चुकने पर आपकी मातृभूमि अब आपको कैसी लगेगी ? मैं बस यही कह सका, 'पश्चिम मे आने से पहले भारत को मैं प्यार ही करता था, अब तो भारत की धूलि ही मेरे लिए पवित्र है, भारत की हवा अब मेरे लिए पावन है, भारत अब मेरे लिए तीर्थ है।'

कलकत्तावासियो, मेरे भाइयो, तुम लोगो ने मेरे प्रति जो अनुग्रह दिखाया है, उसके लिए तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट करने मे मैं असमर्थ हूँ। अथवा तुम्हे धन्यवाद ही क्या दूँ, क्योकि तुम मेरे भाई हो—तुमने भाई का, एक हिन्दू भाई का ही कर्तव्य निभाया है, क्योकि ऐसा पारिवारिक बन्धन, ऐसा सम्बन्ध, ऐसा प्रेम हमारी मातृभूमि की सीमा के बाहर और कही नही है।

शिकागो की धर्म-महासभा निस्सन्देह एक विराट् समारोह थी। भारत के कितने ही नगरो से हम लोगो ने इस सभा के आयोजक महानुभावो को धन्यवाद दिया है। हम लोगो के प्रति उन्होने जैसी अनुकम्पा प्रदर्शित की है, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं, परन्तु इस धर्म-महासभा का यथार्थ इतिहास मैं तुम्हे सुना

को भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करें। मुख्यतः उन्हींके कारण हमें आपकी प्राप्ति हुई है। अपनी अद्वितीय रहस्यमयी अन्तर्दृष्टि द्वारा उन्होंने आपमें उस दैवी ज्योति का अंश शीघ्र ही पहचान लिया था और आपके लिए उस उज्ज्वल जीवन की भविष्य वाणी कर दी थी जिसे आज हम हर्षपूर्वक सफल होते देख रहे हैं। यह वे ही थे जिन्होंने आपकी छिपी हुई दैवी शक्ति तथा दिव्य दृष्टि को आपके लिए खोल दिया, आपके विचारों एवं जीवन के उद्देश्यों को दैवी झुकाव दे दिया तथा उस अदृश्य राज्य के तत्त्वों के अन्वेषण में आपको सहायता प्रदान की। भावी पीढ़ियों के लिए उनकी अमूल्य विरासत आप ही हैं।

हे महात्मन्, दृढ़ता और बहादुरी के साथ उसी मार्ग पर बढ़े चलिए, जो आपने अपने कार्य के लिए चुना है। आपके सम्मुख सारा संसार जीतने को है। आपको हिन्दू धर्म की व्याख्या करनी है और उसका संदेश अनभिज्ञ से लेकर नास्तिक तथा जानबूझकर बने अंधे तक पहुँचाना है। जिस उत्साह से आपने कार्य आरम्भ किया उससे हम मुग्ध हो गये हैं और आपने जो सफलता प्राप्त कर ली है, वह कितने ही देशों को ज्ञात है। परन्तु अभी भी कार्य का काफी अंश शेष है और उसके लिए हमारा देश, बल्कि हम कह सकते हैं आपका ही देश आपकी ओर निहार रहा है। हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा प्रचार अभी कितने ही हिन्दुओं के निकट आपको करना है। अतएव आप इस महान् कार्य में संलग्न हों। हमें आपमें तथा अपने इस सत्कार्य के ध्येय में पूर्ण विश्वास है। हमारा जातीय धर्म इस बात का इच्छुक नहीं है कि उसे कोई भौतिक विजय प्राप्त हो। इसका ध्येय सदैव आध्यात्मिकता रहा है, और इसका साधन सदैव सत्य रहा है, जो इन चर्मचक्षुओं से परे है तथा जो केवल ज्ञान-दृष्टि से ही देखा जा सकता है। आप समग्र संसार को और जहाँ आवश्यक हो हिन्दुओं को भी जगा दीजिए, ताकि वे अपने ज्ञान चक्षु खोलें, इन्द्रियों से परे हों, धार्मिक ग्रन्थों का उचित रूप से अध्ययन करें, परम सत्य का साक्षात्कार करें और मनुष्य होने के नाते अपने कर्तव्य तथा स्थान का अनुभव करें। इस प्रकार की जागृति कराने या उद्बोधन के लिए आपसे बढ़कर अधिक योग्य कोई नहीं है। अपनी ओर से हम आपको यह सदैव ही पूर्ण विश्वास दिलाते हैं कि आपके इस सत्कार्य में, जिसका बीड़ा आपने स्पष्टतः दैवी प्रेरणा से उठाया है, हमारा सदैव ही हार्दिक, भक्तिपूर्ण तथा सेवात्मक विनम्र सहयोग रहेगा।

परम प्रिय बन्धु,

हम हैं,

आपके प्रिय मित्र तथा भक्तगण

स्वामी जी ने इसका निम्नलिखित उत्तर दिया.

## स्वामी जी का भाषण

मनुष्य अपनी व्यक्ति-चेतना को सार्वभौम चेतना मे लीन कर देना चाहता है, वह जगत् प्रपच का कुल सम्बन्ध छोड देना चाहता है, वह अपने समस्त सम्बन्धो की माया काटकर ससार से दूर भाग जाना चाहता है। वह सम्पूर्ण दैहिक पुराने सस्कारो को छोडने की चेष्टा करता है। यहाँ तक कि वह एक देहधारी मनुष्य है, इसे भी भूलने का भरसक प्रयत्न करता है। परन्तु अपने अन्तर के अन्तर मे सदा ही एक मृदु अस्फुट ध्वनि उसे सुनायी पडती है, उसके कानो मे सदा ही एक स्वर बजता रहता है, न जाने कौन दिन रात उसके कानो मे मधुर स्वर से कहता रहता है, पूर्व मे हो या पश्चिम मे, **जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।** भारत साम्राज्य की राजधानी के अधिवासियो, तुम्हारे पास मैं सन्यासी के रूप मे नही, धर्मप्रचारक की हैसियत से भी नही, बल्कि पहले की तरह कलकत्ते के उसी बालक के रूप मे बातचीत करने के लिए आया हुआ हूँ। हाँ, मेरी इच्छा होती है कि आज इस नगर के रास्ते की धूल पर बैठकर बालक की तरह सरल अन्त करण से तुमसे अपने मन की सब बातें खोल कर कहूँ। तुम लोगो ने मुझे अनुपम शब्द 'भाई' सम्बोधित किया है, इसके लिए तुम्हे हृदय से धन्यवाद देता हूँ। हाँ, मैं तुम्हारा भाई हूँ, तुम भी मेरे भाई हो। पश्चिमी देशो से लौटने के कुछ ही समय पहले एक अंग्रेज मित्र ने मुझसे पूछा था, 'स्वामी जी, चार वर्षों तक विलास की लीलाभूमि गौरवशाली महाशक्तिमान् पश्चिमी भूमि पर भ्रमण कर चुकने पर आपकी मातृभूमि अब आपको कैसी लगेगी ? मैं बस यही कह सका, 'पश्चिम मे आने से पहले भारत को मैं प्यार ही करता था, अब तो भारत की धूलि ही मेरे लिए पवित्र है, भारत की हवा अब मेरे लिए पावन है, भारत अब मेरे लिए तीर्थ है।'

कलकत्तावासियो, मेरे भाइयो, तुम लोगो ने मेरे प्रति जो अनुग्रह दिखाया है, उसके लिए तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट करने मे मैं असमर्थ हूँ। अथवा तुम्हे धन्यवाद ही क्या दूँ, क्योकि तुम मेरे भाई हो—तुमने भाई का, एक हिन्दू भाई का ही कर्तव्य निभाया है, क्योकि ऐसा पारिवारिक बन्धन, ऐसा सम्बन्ध, ऐसा प्रेम हमारी मातृभूमि की सीमा के बाहर और कही नही है।

शिकागो की धर्म-महासभा निस्सन्देह एक विराट् समारोह थी। भारत के कितने ही नगरो से हम लोगो ने इस सभा के आयोजक महानुभावो को धन्यवाद दिया है। हम लोगो के प्रति उन्होंने जैसी अनुकम्पा प्रदर्शित की है, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं, परन्तु इस धर्म-महासभा का यथार्थ इतिहास मैं तुम्हे सुना-

कहना चाहता हूँ। उनकी इच्छा थी कि वे अपनी प्रभुता की प्रतिष्ठा करें। महासभा के कुछ व्यक्तियों की इच्छा थी कि ईसाई धर्म की प्रतिष्ठा करें और दूसरे धर्मों को हास्यास्पद सिद्ध करें। परन्तु फल कुछ और ही हुआ। विधाता के विधान में वैसा ही होना था। मेरे प्रति अनेक लोगों ने सदय व्यवहार किया था। उन्हें यथेष्ट धन्यवाद दिया जा चुका है।

सच्ची बात यह है कि मैं धर्म-महासभा का उद्देश्य लेकर अमेरिका नहीं गया। वह सभा तो मेरे लिए एक गौण वस्तु थी, उससे हमारा रास्ता बहुत कुछ साफ हो गया और कार्य करने की बहुत कुछ सुविधा हो गयी, इसमें सन्देह नहीं। इसके लिए हम महासभा के सदस्यों के विशेष रूप से कृतज्ञ हैं। परन्तु वास्तव में हमारा धन्यवाद संयुक्त राज्य अमेरिका के निवासी, सहृदय, आतिथेय, महान् अमरीकी जाति को मिलना चाहिए, जिसमें दूसरी जातियों की अपेक्षा भ्रातृभाव का अधिक विकास हुआ है। रेलगाड़ी पर पाँच मिनट किसी अमेरिकन के साथ बातचीत करने से वह तुम्हारा मित्र हो जायगा, दूसरे ही क्षण तुम्हें अपने घर पर अतिथि के रूप में निमंत्रित करेगा और अपने हृदय की सारी बात खोलकर रख देगा। यही अमरीकी जाति का चरित्र है और हम इसे खूब पसन्द करते हैं। मेरे प्रति उन्होंने जो अनुकम्पा दिखलायी, उसका वर्णन नहीं हो सकता। मेरे साथ उन्होंने कैसा अपूर्व स्नेहपूर्ण व्यवहार किया, उसे प्रकट करने में मुझे कई वर्ष लग जायेंगे। इसी तरह अटलान्टिक महासागर के दूसरे पार रहने वाली अंग्रेज जाति को भी हमें धन्यवाद देना चाहिए। ब्रिटिश भूमि पर अंग्रेजों के प्रति मुझसे अधिक घृणा का भाव लेकर कभी किसीने पैर न रखा होगा। इस मंच पर जो अंग्रेज बन्धु हैं, वे ही इसके साक्षी देंगे। परन्तु जितना ही मैं उन लोगों के साथ रहने लगा, जितना ही उनके साथ मिलने लगा, जितना ही ब्रिटिश जाति के जीवन-यन्त्र की गति लक्ष्य करने लगा — उस जाति का हृदय-स्पन्दन किस जगह हो रहा है, यह जितना ही समझने लगा, उतना ही उन्हें प्यार करने लगा। अब मेरे भाइयो, यहाँ ऐसा कोई न होगा जो मुझसे अधिक अंग्रेजों को प्यार करता हो। उनके सम्बन्ध में यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि वहाँ क्या क्या हो रहा है और साथ ही हमें उनके साथ मिलना भी होगा। हमारे जातीय दर्शनशास्त्र वेदान्त ने जिस तरह सम्पूर्ण दुःख का कारण अज्ञान को निश्चित किया है, उसी तरह अंग्रेज [illegible]

[illegible]

अंग्रेज या कोई दूसरे पश्चिमी महाशय भारत आते है और यहाँ दु ख और दारिद्रय का अबाध राज्य देखते हैं तो वे तुरन्त इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस देश मे धर्म नही टिक सकता, नैतिकता नही टिक सकती। उनका अपना अनुभव निस्सन्देह सत्य है। यूरोप की निष्ठुर जलवायु और दूसरे अनेक कारणो से वहाँ दारिद्रय और पाप एक जगह रहते देखे जाते हैं, परन्तु भारत मे ऐसा नही है। मेरा अनुभव है कि भारत मे जो जितना दरिद्र है वह उतना ही अधिक साधु है। परन्तु इसको जानने के लिए समय की जरूरत है। भारत के राष्ट्रीय जीवन का यह रहस्य समझने के लिए कितने विदेशी दीर्घ काल तक भारत मे रहकर प्रतीक्षा करने के लिए तैयार हैं? इस राष्ट्र के चरित्र का धैर्य के साथ अध्ययन करें और समझें ऐसे मनुष्य थोडे ही हैं। यही, केवल यही ऐसी जाति का वास है, जिसके निकट गरीबी का मतलब अपराध और पाप नही है। यही एक ऐसी जाति है, जहाँ न केवल गरीबी का मतलब अपराध नही लगाया जाता, बल्कि उसे यहाँ बडा ऊँचा आसन दिया जाता है। यहाँ दरिद्र सन्यासी के वेश को ही सबसे ऊँचा स्थान मिलता है। इसी तरह हमे भी पश्चिमी सामाजिक रीति रिवाजो का अध्ययन बडे धैर्य के साथ करना होगा। उनके सम्बन्ध मे एकाएक कोई उन्मत्त धारणा बना लेना ठीक न होगा। उनके स्त्री-पुरुषो का आपस मे हेलमेल और उनके आचार व्यवहार सब एक खास अर्थ रखते है, सबमे एक पहलू अच्छा भी होता है। तुम्हे केवल यत्नपूर्वक धैर्य के साथ उसका अध्ययन करना होगा। मेरे इस कथन का यह अर्थ नही कि हमे उनके आचार व्यवहारो का अनुकरण करना है, अथवा वे हमारे आचारो का अनुकरण करेंगे। सभी जातियो के आचार व्यवहार शताब्दियो के मन्द गति से होनेवाले क्रमविकास के फलस्वरूप हैं, और सभी मे एक गम्भीर अर्थ रहता है। इसलिए न हमे उनके आचार व्यवहारो का उपहास करना चाहिए और न उन्हे हमारे आचार व्यवहारो का।

मैं इस सभा के समक्ष एक और बात कहना चाहता हूँ। अमेरिका की अपेक्षा इग्लैड मे मेरा काम अधिक सतोषजनक हुआ है। निर्भीक, साहसी एव अध्यवसायी अग्रेज जाति के मस्तिष्क मे यदि किसी तरह एक बार कोई भाव सचारित किया जा सके—यद्यपि उसकी खोपडी दूसरी जातियो की अपेक्षा स्थूल है, उसमे कोई भाव सहज ही नही समाता—तो फिर वह वही दृढ हो जाता है, कभी बाहर नही होता। उस जाति की असीम व्यावहारिकता और शक्ति के कारण बीजरूप से समाये हुए उस भाव से अकुर का उद्गम होता है और बहुत शीघ्र फल देता है। ऐसा किसी दूसरे देश मे नही है। इस जाति की जैसी असीम व्यावहारिकता और जीवनी शक्ति है, वैसी तुम अन्य किसी जाति मे न देखोगे। इस जाति मे कल्पना

कम है और कर्मण्यता अधिक। और कौन जान सकता है कि इस अंग्रेज जाति के भावों का मूल स्रोत कहाँ है! उसके हृदय के गहन प्रदेश में कौन समझ सकता है कितनी कल्पनाएँ और भावोच्छ्वास छिपे हुए हैं! यह वीरों की जाति है, ये यथार्थ क्षत्रिय हैं, भाव छिपाना—उन्हें कभी प्रकट न करना उनकी शिक्षा है, बचपन से उन्हें यही शिक्षा मिली है। बहुत कम अंग्रेज देखने को मिलेंगे जिन्होंने कभी अपने हृदय का भाव प्रकट किया होगा। पुरुषों की तो बात ही क्या, अंग्रेज स्त्रियाँ भी कभी हृदय के उच्छ्वास को जाहिर नहीं होने देतीं। मैंने अंग्रेज महिलाओं को ऐसे भी कार्य करते हुए देखा है, जिन्हें करने में अत्यन्त साहसी बंगाली भी लड़खड़ा जायेंगे। किन्तु बहादुरी के इस ठाटबाट के साथ ही इस क्षत्रियोचित कवच के भीतर अंग्रेज हृदय की भावनाओं का गम्भीर प्रस्रवण छिपा हुआ है। यदि एक बार भी अंग्रेजों के साथ तुम्हारी घनिष्ठता हो जाय, यदि उनके साथ तुम घुल मिल गये, यदि उनसे एक बार भी अपने सम्मुख उनके हृदय की बात व्यक्त करवा सके तो वे तुम्हारे परम मित्र हो जायेंगे, सदा के लिए तुम्हारे दास हो जायेंगे। इसलिए मेरी राय में दूसरे स्थानों की अपेक्षा इंग्लैंड में मेरा प्रचार-कार्य अधिक संतोषजनक हुआ है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि अगर कल मेरा शरीर छूट जाय, तो मेरा प्रचार कार्य इंग्लैंड में अक्षुण्ण रहेगा और क्रमशः विस्तृत होता जायगा।

भाइयो, तुम लोगों ने मेरे हृदय के एक दूसरे तार—सबसे अधिक कोमल तार को स्पर्श किया है—वह है मेरे गुरुदेव, मेरे आचार्य, मेरे जीवनादर्श, मेरे इष्ट, मेरे प्राणों के देवता श्री रामकृष्ण परमहंस का उल्लेख! यदि मनसा, वाचा, कर्मणा मैंने कोई सत्कार्य किया हो, यदि मेरे मुँह से कोई ऐसी बात निकली हो, जिससे संसार के किसी भी मनुष्य का कुछ उपकार हुआ हो, तो उसमें मेरा कुछ भी गौरव नहीं, वह उनका है। परन्तु यदि मेरी जिह्वा ने कभी अभिशाप की वर्षा की हो, यदि मुझसे कभी किसीके प्रति घृणा का भाव निकला हो, तो वे मेरे हैं, उनके नहीं। जो कुछ दुर्बल है, वह सब मेरा है, पर जो कुछ भी जीवनप्रद है, बलप्रद है, पवित्र है, वह सब उन्हींकी शक्ति का खेल है, उन्हींकी वाणी है और वे स्वयं हैं। मित्रो, यह सत्य है कि संसार अभी तक उन महापुरुष से परिचित नहीं हुआ। हम लोग संसार के इतिहास में शत शत महापुरुषों की जीवनी पढ़ते हैं। इसमें उनके शिष्यों के लेखन एवं कार्य-कलापों का हाथ रहा है। हजारों वर्ष तक लगातार उन लोगों ने उन प्राचीन महापुरुषों के जीवन-चरितों को काट-छाँटकर सँवारा है। परन्तु इतने पर भी जो जीवन मैंने अपनी आँखों देखा है, जिसकी छाया में मैं रह चुका हूँ, जिनके चरणों में बैठकर मैंने सब सीखा है, उन श्री रामकृष्ण परमहंस का जीवन जैसा उज्ज्वल और महिमान्वित है, वैसा मेरे विचार में और किसी महापुरुष का नहीं।

भाइयो, तुम सभी गीता की वह प्रसिद्ध वाणी जानते हो —

> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
> परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
> धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।

—'जब जब धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब तब मैं शरीर धारण करता हूँ। साधुओं का परित्राण करने, असाधुओं का नाश करने और धर्म की स्थापना करने के लिए विभिन्न युगों में मैं आया करता हूँ।'

इसके साथ एक और बात तुम्हें समझनी होगी, वह यह कि आज ऐसी ही वस्तु हमारे सामने मौजूद है। इस तरह की एक आध्यात्मिकता की बाढ़ के प्रबल वेग से आने के पहले समाज में कुछ छोटी छोटी तरंगें उठती दीख पड़ती हैं। इन्हींमें से एक अज्ञात, अनजान, अकल्पित तरंग आती है, क्रमशः प्रबल होती जाती है, दूसरी छोटी छोटी तरंगों को मानो निगल कर वह अपने में मिला लेती है। और इस तरह अत्यन्त विपुलाकार और प्रबल होकर वह एक बहुत बड़ी बाढ़ के रूप में समाज पर वेग से गिरती है कि कोई उसकी गति को रोक नहीं सकता। इस समय भी वैसा ही हो रहा है। यदि तुम्हारे पास आँखें हैं तो तुम उसे अवश्य देखोगे। यदि तुम्हारा हृदय-द्वार खुला है तो तुम उसको अवश्य ग्रहण करोगे। यदि तुममें सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति है तो तुम उसे अवश्य प्राप्त करोगे। अंधा, बिल्कुल अंधा है वह, जो समय के चिह्न नहीं देख रहा है, नहीं समझ रहा है। क्या तुम नहीं देखते हो, वह दरिद्र ब्राह्मण बालक जो एक दूर गाँव में—जिसके बारे में तुममें से बहुत कम ही लोगों ने सुना होगा—जन्मा था, इस समय सम्पूर्ण संसार में पूजा जा रहा है, और उसे वे पूजते हैं, जो शताब्दियों से मूर्ति-पूजा के विरोध में आवाज़ उठाते आये हैं? यह किसकी शक्ति है? यह तुम्हारी शक्ति है या मेरी? नहीं, यह और किसीकी शक्ति नहीं। जो शक्ति यहाँ श्री रामकृष्ण परमहंस के रूप में आविर्भूत हुई थी, यह वही शक्ति है, और मैं, तुम, साधु, महापुरुष, यहाँ तक कि अवतार और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी उसी न्यूनाधिक रूप में पुंजीभूत शक्ति की लीला मात्र हैं। इस समय हम लोग उस महाशक्ति की लीला का आरम्भ मात्र देख रहे हैं। वर्तमान युग का अन्त होने के पहले ही तुम लोग इसकी अधिकाधिक आश्चर्यमयी लीलाएँ देख पाओगे। भारत के पुनरुत्थान के लिए इस शक्ति का आविर्भाव ठीक ही समय पर हुआ है। क्योंकि जो मूल जीवनी शक्ति भारत को सदा स्फूर्ति प्रदान करेगी, उसकी बात कभी कभी हम लोग भूल जाते हैं।

प्रत्येक जाति के लिए उद्देश्य-साधन की अलग अलग कार्यप्रणालियाँ हैं। कोई राजनीति, कोई समाज-सुधार और कोई किसी दूसरे विषय को अपना प्रधान आधार बनाकर कार्य करती है। हमारे लिए धर्म की पृष्ठभूमि लेकर कार्य करने के सिवा दूसरा उपाय नहीं है। अंग्रेज राजनीति के माध्यम से धर्म भी समझ सकते हैं। अमरीकी शायद समाज-सुधार के माध्यम से भी धर्म समझ सकते हैं। परन्तु हिन्दू राजनीति, समाज-विज्ञान और दूसरा जो कुछ है, सबको धर्म के माध्यम से ही समझ सकते हैं। जातीय जीवन-संगीत का मानो यही प्रधान स्वर है, दूसरे तो उसीमें कुछ परिवर्तित किये हुए नाना गौण स्वर हैं, और उसी प्रधान स्वर के नष्ट होने की शंका हो रही थी। ऐसा लगता था, मानो हम लोग अपने जातीय जीवन के इस मूल भाव को हटाकर उसकी जगह एक दूसरा भाव स्थापित करने जा रहे थे, हम लोग जिस मेरुदण्ड के बल से खड़े हुए हैं, मानो उसकी जगह दूसरा कुछ स्थापित करने जा रहे थे, अपने जातीय जीवन के धर्मरूप मेरु-दंड की जगह राजनीति का मेरुदंड स्थापित करने जा रहे थे। यदि इसमें हमें सफलता मिलती, तो इसका फल पूर्ण विनाश होता, परन्तु ऐसा होनेवाला नहीं था। यही कारण है कि इस महाशक्ति का आविर्भाव हुआ। मुझे इस बात की चिन्ता नहीं है कि तुम इस महापुरुष को किस अर्थ में ग्रहण करते हो और उसके प्रति कितना आदर रखते हो, किन्तु मैं तुम्हें यह चुनौती के रूप में अवश्य बता देना चाहता हूँ कि अनेक शताब्दियों से भारत में विद्यमान अद्भुत शक्ति का यह प्रकट रूप है और एक हिन्दू के नाते तुम्हारा यह कर्तव्य है कि तुम इस शक्ति का अध्ययन करो तथा भारत के कल्याण, उसके पुनरुत्थान और समस्त मानव जाति के हित के लिए इस शक्ति के द्वारा क्या कार्य किये गये हैं, इसका पता लगाओ। मैं तुमको विश्वास दिलाता हूँ कि संसार के किसी भी देश में सार्वभौम धर्म और विभिन्न सम्प्रदायों में भ्रातृभाव के उत्थापित और पर्यालोचित होने के बहुत पहले ही इस नगर के पास एक ऐसे महापुरुष थे, जिनका सम्पूर्ण जीवन एक आदर्श धर्म-महासभा का स्वरूप था।

हमारे शास्त्रों में सबसे बड़ा आदर्श निर्गुण ब्रह्म है, और ईश्वर की इच्छा से यदि सभी निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त कर सकते, तब तो बात ही कुछ और थी, परन्तु चूँकि ऐसा नहीं हो सकता, इसलिए सगुण आदर्श का रहना मनुष्य जाति के बहु संख्यक वर्ग के लिए बहुत आवश्यक है। इस तरह के किसी महान् आदर्श पुरुष पर हार्दिक अनुराग रखते हुए उनकी पताका के नीचे *आश्रय लिये बिना न* कोई जाति उठ सकती है, न बढ़ सकती है, न कुछ कर सकती है। राजनीतिक, यहाँ तक कि सामाजिक या व्यापारिक आदर्शों का प्रतिनिधित्व करनेवाले कोई भी

पुरुष सर्वसाधारण भारतवासियो के ऊपर कभी भी अपना प्रभाव नही जमा सकते। हमे चाहिए आध्यात्मिक आदर्श। आध्यात्मिक महापुरुषो के नाम पर हमे सोत्साह एक हो जाना चाहिए। हमारे आदर्श पुरुष आध्यात्मिक होने चाहिए। श्री रामकृष्ण परमहस हमे एक ऐसा ही आदर्श पुरुष मिला है। यदि यह जाति उठना चाहती है, तो मैं निश्चयपूर्वक कहूँगा कि इस नाम के चारो ओर उत्साह के साथ एकत्र हो जाना चाहिए। श्री रामकृष्ण परमहस का प्रचार हम, तुम या चाहे जो कोई करे, इससे प्रयोजन नही। तुम्हारे सामने मैं इस महान् आदर्श पुरुष को रखता हूँ, और अब इस पर विचार करने का भार तुम पर है। इस महान् आदर्श पुरुष को लेकर क्या करोगे, इसका निश्चय तुम्हें अपनी जाति, अपने राष्ट्र के कल्याण के लिए अभी कर डालना चाहिए। एक बात हमे याद रखनी चाहिए कि तुम लोगो ने जितने महापुरुष देखे हैं और मैं स्पष्ट रूप से कहूँगा कि जितने भी महापुरुषो के जीवन-चरित पढे है, उनमे इनका जीवन सबसे पवित्र था, और तुम्हारे सामने यह तो स्पष्ट ही है कि आध्यात्मिक शक्ति का ऐसा अद्‌भुत आविर्भाव तुम्हारे देखने की तो बात ही अलग, इसके बारे मे तुमने कभी पढा भी न होगा। उनके तिरोभाव के दस वर्ष के भीतर ही इस शक्ति ने सम्पूर्ण ससार को घेर लिया है, यह तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो। अतएव कर्तव्य की प्रेरणा से अपनी जाति और धर्म की भलाई के लिए मैं यह महान् आध्यात्मिक आदर्श तुम्हारे सामने प्रस्तुत करता हूँ। मुझे देखकर उसकी कल्पना न करना। मैं एक बहुत ही दुर्बल माध्यम मात्र हूँ। उनके चरित्र का निर्णय मुझे देखकर न करना। वे इतने बडे थे कि मैं या उनके शिष्यो मे से कोई दूसरा सैकडो जीवन तक चेष्टा करते रहने के बावजूद भी उनके यथार्थ स्वरूप के एक करोडवें अश के तुल्य भी न हो सकेगा। तुम लोग स्वय ही अनुमान करो। तुम्हारे हृदय के अन्तस्तल मे वे 'सनातन साक्षी' वर्तमान हैं, और मैं हृदय से प्रार्थना करता हूँ कि हमारी जाति के कल्याण के लिए, हमारे देश की उन्नति के लिए तथा समग्र मानव जाति के हित के लिए वही श्री रामकृष्ण परमहस तुम्हारा हृदय खोल दें, और इच्छा-अनिच्छा के बावजूद भी जो महायुगान्तर अवश्यम्भावी है, उसे कार्यान्वित करने के लिए वे तुम्हें सच्चा और दृढ बनावे। तुम्हें और हमे रुचे या न रुचे, इससे प्रभु का कार्य रुक नही सकता, अपने कार्य के लिए वे धूलि से भी सैकडो और हजारो कर्मी पैदा कर सकते हैं। उनकी अधीनता मे कार्य करने का अवसर मिलना ही हमारे परम सौभाग्य और गौरव की बात है। इससे आदर्श का विस्तार होता है। जैसा तुम लोगो ने कहा है, हमे सम्पूर्ण ससार जीतना है। हाँ, यह हमे करना ही होगा। भारत को अवश्य ही ससार पर विजय प्राप्त करनी है। इसकी अपेक्षा किसी छोटे आदर्श से मुझे कभी

भी सन्तोष न होगा। यह आदर्श सम्भव है बहुत बड़ा हो और तुममें से अनेक को इसे सुनकर आश्चर्य होगा किन्तु हमें इसे ही अपना आदर्श बनाना है। या तो हम सम्पूर्ण संसार पर विजय प्राप्त करेंगे या मिट जायेंगे। इसके सिवा और कोई विकल्प नहीं है। जीवन का चिह्न है विस्तार। हमें संकीर्ण सीमा के बाहर जाना होगा हृदय का प्रसार करना होगा और यह दिखाना होगा कि हम जीवित हैं अन्यथा हमें इसी पतन की दशा में सड़कर मरना होगा इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है। इन दोनों में एक चुन लो फिर जिओ या मरो। छोटी छोटी बातों को लेकर हमारे देश में जो द्वेष और कलह हुआ करता है, वह हम लोगों में सभी को मालूम है। परन्तु मेरी बात मानो ऐसा सभी देशों में है। जिन सब राष्ट्रों के जीवन का मेरुदंड राजनीति है, वे सब राष्ट्र आत्मरक्षा के लिए वैदेशिक नीति का सहारा लिया करते हैं। जब उनके अपने देश में आपस में बहुत अधिक लड़ाई-झगड़ा आरम्भ हो जाता है तब वे किसी विदेशी राष्ट्र से झगड़ा मोल ले लेते हैं इस तरह तत्काल घरेलू लड़ाई बन्द हो जाती है, हमारे भीतर भी गृहविवाद है, परन्तु उसे रोकने के लिए कोई वैदेशिक नीति नहीं है। संसार के सभी राष्ट्रों में अपने शास्त्रों का सत्य प्रचार ही हमारी सनातन वैदेशिक नीति होनी चाहिए, यह हमें एक अखंड जाति के रूप में संगठित करेगी। तुम राजनीति में विशेष रुचि लेनेवालों से मेरा प्रश्न है कि क्या इसके लिए तुम कोई और प्रमाण चाहते हो? आज की इस सभा से ही मेरी बात का यथेष्ट प्रमाण मिल रहा है।

दूसरे, इन सब स्वार्थपूर्ण विचारों को छोड़ देने पर भी हमारे पीछे निःस्वार्थ महान् और सजीव दृष्टान्त पाये जाते हैं। भारत के पतन और दारिद्र्य-दुःख का प्रधान कारण यह है कि घोंघे की तरह अपना सर्वांग समेटकर उसने अपना कार्यक्षेत्र संकुचित कर लिया था तथा आर्येतर दूसरी मानव जातियों के लिए, जिन्हें सत्य की तृष्णा थी अपने जीवनप्रद सत्य-रत्नों का भांडार नहीं खोला था। हमारे पतन का एक और प्रधान कारण यह भी है कि हम लोगों ने बाहर जाकर दूसरे राष्ट्रों से अपनी तुलना नहीं की और तुम लोग जानते हो जिस दिन से राजा राममोहन राय ने संकीर्णता की वह दीवार तोड़ी उसी दिन से भारत में थोड़ा सा जीवन दिखायी देने लगा जिसे आज तुम देख रहे हो। उसी दिन से भारत के इतिहास ने एक दूसरा मोड़ लिया और इस समय वह क्रमशः उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। अतीत काल में यदि छोटी छोटी नदियाँ ही यहाँ वालों ने देखी हों तो समझना कि अब बहुत बड़ी बाढ़ आ रही है और कोई भी उसकी गति रोक न सकेगा। अतः तुम्हें विदेश जाना होगा आदान-प्रदान ही अभ्युदय का रहस्य है। क्या हम दूसरों से सदा लेते ही रहेंगे? क्या हम लोग सदा ही पश्चिमवासियों

के पद-प्रान्त मे बैठकर ही सब बाते, यहाँ तक कि धर्म भी सीखेंगे ? हाँ, हम उन लोगो से कल-कारखाने के काम सीख सकते है, और भी दूसरी बहुत सी बाते उनसे सीख सकते है, परन्तु हमे भी उन्हें कुछ सिखाना होगा। और वह है हमारा धर्म, हमारी आध्यात्मिकता। ससार सर्वांगीण सभ्यता की अपेक्षा कर रहा है। गत शत शताब्दियो की अवनति, दु ख और दुर्भाग्य के आवर्त मे पडकर भी हिन्दू जाति उत्तराधिकार मे प्राप्त धर्मरूपी जिन अमूल्य रत्नो को यत्नपूर्वक अपने हृदय से लगाये हुए है, उन्ही रत्नो की आशा से ससार उसकी ओर आग्रहभरी दृष्टि से निहार रहा है। तुम्हारे पूर्वजो के उन्ही अपूर्व रत्नो के लिए भारत से बाहर के मनुष्य किस तरह उद्ग्रीव हो रहे हैं, यह मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ? यहाँ हम अनर्गल बकवास किया करते हैं, आपस मे झगडते रहते हैं, श्रद्धा के जितने गभीर विषय हैं उन्हें हँसकर उडा देते है, यहाँ तक कि इस समय प्रत्येक पवित्र वस्तु को हँसकर उडा देने की प्रवृत्ति एक जातीय दुर्गुण हो गयी है। इसी भारत मे हमारे पूर्वज जो सजीवक अमृत रख गये हैं, उसका एक कण मात्र पाने के लिए भी भारत से बाहर के लाखो मनुष्य कितने आग्रह के साथ हाथ फैलाये हुए हैं, यह हमारी समझ मे भला कैसे आ सकता है ! इसलिए हमे भारत के बाहर जाना ही होगा। हमारी आध्यात्मिकता के बदले मे वे जो कुछ दें, वही हमे लेना होगा। चैतन्यराज्य के अपूर्व तत्त्वसमूहो के बदले हम जड राज्य के अद्भुत तत्त्वो को प्राप्त करेंगे। चिर काल तक शिष्य रहने से हमारा काम न होगा, हमे आचार्य भी होना होगा। समभाव के न रहने पर मित्रता सभव नही। और जब एक पक्ष सदा ही आचार्य का आसन पाता रहता है और दूसरा पक्ष सदा ही उसके पदप्रान्त मे बैठकर शिक्षा ग्रहण किया करता है, तब दोनो मे कभी भी समभाव की स्थापना नही हो सकती। यदि अग्रेज और अमरीकी जाति से समभाव रखने की तुम्हारी इच्छा हो, तो जिस तरह तुम्हें उनसे शिक्षा प्राप्त करनी है, उसी तरह उन्हें शिक्षा देनी भी होगी, और अब भी कितनी ही शताब्दियो तक ससार को शिक्षा देने की सामग्री तुम्हारे पास यथेष्ट है। इस समय यही करना होगा। उत्साह की आग हमारे हृदय मे जलनी चाहिए। हम बगालियों को कल्पना शक्ति के लिए प्रसिद्धि मिल चुकी है और मुझे विश्वास है कि यह शक्ति हममे है भी। कल्पनाप्रिय भावुक जाति कहकर हमारा उपहास भी किया गया है। परन्तु, मित्रो ! मैं तुमसे कहना चाहूँगा कि निस्सदेह बुद्धि का आसन ऊँचा है, परन्तु यह अपनी परिमित सीमा के बाहर नही बढ सकती। हृदय—केवल हृदय के भीतर से ही दैवी प्रेरणा का स्फुरण होता है, और उसकी अनुभव शक्ति से ही उच्चतम जटिल रहस्यो की मीमासा होती है, और इसीलिए 'भावुक' बगालियो को ही यह काम करना होगा। **उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरा-**

निबोधत। —'उठो, जागो और जब तक अभीप्सित वस्तु को प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक बराबर उसकी ओर बढ़ते जाओ।'[1] कलकत्ता निवासी युवको! उठो, जागो, शुभ मुहूर्त आ गया है। सब चीज़ें अपने आप तुम्हारे सामने खुलती जा रही हैं। हिम्मत करो और डरो मत। केवल हमारे ही शास्त्रों में ईश्वर के लिए 'अभीः' विशेषण का प्रयोग किया गया है। हमें 'अभीः', निर्भय होना होगा, तभी हम अपने कार्य में सिद्धि प्राप्त करेंगे। उठो, जागो, तुम्हारी मातृभूमि को इस महाबलि की आवश्यकता है। इस कार्य की सिद्धि युवकों से ही हो सकेगी। 'युवा आशिष्ठ, द्रढिष्ठ, बलिष्ठ, मेधावी'[2] उन्हीं के लिए यह कार्य है। और ऐसे सैकड़ों–हज़ारों युवक कलकत्ते में हैं। जैसा कि तुम लोग कहते हो, यदि मैंने कुछ किया है, तो याद रखना, मैं वही एक नगण्य बालक हूँ, जो किसी समय कलकत्ते की सड़कों पर खेला करता था। अगर मैंने इतना किया, तो इससे कितना अधिक तुम कर सकोगे! उठो—जागो, संसार तुम्हें पुकार रहा है। भारत के अन्य भागों में बुद्धि है, धन भी है, परन्तु उत्साह की आग केवल हमारी ही जन्मभूमि में है। उसे बाहर आना ही होगा; इसलिए कलकत्ते के युवको, अपने रक्त में उत्साह भरकर जागो। मत सोचो कि तुम गरीब हो, मत सोचो कि तुम्हारे मित्र नहीं हैं। अरे, क्या कभी तुमने देखा है कि रुपया मनुष्य का निर्माण करता है? नहीं, मनुष्य ही सदा रुपये का निर्माण करता है। यह सम्पूर्ण संसार मनुष्य की शक्ति से, उत्साह की शक्ति से, विश्वास की शक्ति से निर्मित हुआ है।

तुममें से जिन लोगों ने उपनिषदों में सबसे अधिक सुन्दर कठोपनिषद् का अध्ययन किया है, उन्हें स्मरण होगा कि किस तरह वे राजा एक महायज्ञ का अनुष्ठान करने चले थे और दक्षिणा में अच्छी अच्छी चीज़ें न देकर अनुपयोगी गायें और घोड़े दे रहे थे और कथा के अनुसार उसी समय उनके पुत्र नचिकेता के हृदय में श्रद्धा का आविर्भाव हुआ। मैं तुम्हारे लिए इस 'श्रद्धा' शब्द का अंग्रेजी अनुवाद न करूँगा, क्योंकि यह गलत होगा। समझने के लिए अर्थ की दृष्टि से यह एक अद्भुत शब्द है और बहुत कुछ तो इसके समझने पर निर्भर करता है। हम देखेंगे कि यह किस तरह शीघ्र ही फल देनेवाली है। श्रद्धा के आविर्भाव के साथ ही हम नचिकेता को मन ही मन इस तरह बातचीत करते हुए देखते हैं, 'मैं बहुतों से श्रेष्ठ हूँ, कुछ लोगों से छोटा भी हूँ, परन्तु कहीं भी ऐसा नहीं हूँ कि सबसे छोटा

---

१ कठोपनिषद् १।३।१४॥

२ युवा स्यात्साधुयुवाध्यायकः। आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः।
तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्॥ तैत्तिरीयोपनिषद्॥२।८॥

होऊँ, अत मैं भी कुछ कर सकता हूँ।' उसका यह आत्मविश्वास और साहस बढता गया और जो समस्या उसके मन मे थी, उस बालक ने उसे हल करना चाहा, —वह समस्या मृत्यु की समस्या थी। इसकी मीमासा यम के घर जाने पर ही हो सकती थी, अत वह बालक वही गया। निर्भीक नचिकेता यम के घर जाकर तीन दिन तक प्रतीक्षा करता रहा, और तुम जानते हो कि किस तरह उसने अपना अभीप्सित प्राप्त किया। हमे जिस चीज की आवश्यकता है, वह यह श्रद्धा ही है। दुर्भाग्यवश भारत से इसका प्राय लोप हो गया है, और हमारी वर्तमान दुर्दशा का कारण भी यही है। एकमात्र इस श्रद्धा के भेद से ही मनुष्य मनुष्य मे अन्तर पाया जाता है? इसका और दूसरा कारण नही। यह श्रद्धा ही है, जो एक मनुष्य को बडा और दूसरे को कमज़ोर और छोटा बनाती है। हमारे गुरुदेव कहा करते थे, जो अपने को दुर्बल सोचता है, वह दुर्बल ही हो जाता है, और यह बिल्कुल ठीक ही है। इस श्रद्धा को तुम्हें पाना ही होगा। पश्चिमी जातियो द्वारा प्राप्त की हुई जो भौतिक शक्ति तुम देख रहे हो, वह इस श्रद्धा का ही फल है, क्योकि वे अपने दैहिक बल के विश्वासी हैं, और यदि तुम अपनी आत्मा पर विश्वास करो तो वह और कितना अधिक कारगर होगा? उस अनन्त आत्मा, उस अनन्त शक्ति पर विश्वास करो, तुम्हारे शास्त्र और तुम्हारे ऋषि एक स्वर से उसका प्रचार कर रहे है। वह आत्मा अनन्त शक्ति का आधार है, कोई उसका नाश नही कर सकता, उसकी वह अनन्त शक्ति प्रकट होने के लिए केवल आह्वान की प्रतीक्षा कर रही है। यहाँ दूसरे दर्शनो और भारत के दर्शनो मे महान् अन्तर पाया जाता है। द्वैतवादी हो, चाहे विशिष्टद्वैतवादी या अद्वैतवादी हो, सभी को यह दृढ विश्वास है कि आत्मा मे सम्पूर्ण शक्ति अवस्थित है, केवल उसे व्यक्त करना होता है। इसके लिए हमे श्रद्धा की ही जरूरत है, हमे, यहाँ जितने भी मनुष्य हैं, सभी को इसकी आवश्यकता है। इसी श्रद्धा को प्राप्त करने का महान् कार्य तुम्हारे सामने पडा हुआ है। हमारे जातीय खून मे एक प्रकार के भयानक रोग का बीज समा रहा है, और वह है प्रत्येक विषय को हँसकर उडा देना, गाम्भीर्य का अभाव, इस दोष का सम्पूर्ण रूप से त्याग करो। वीर बनो, श्रद्धा सम्पन्न होओ, और सब कुछ तो इसके बाद आ ही जायगा।

अब तक मैंने कुछ भी नही किया, यह कार्य तुम्हें करना होगा। अगर कल मैं मर जाऊँ तो इस कार्य का अन्त नही होगा। मुझे दृढ विश्वास है, सर्वसाधारण जनता के भीतर से हजारो मनुष्य आकर इस व्रत को ग्रहण करेंगे और इस कार्य की इतनी उन्नति तथा विस्तार करेंगे, जिसकी आशा मैंने कभी कल्पना मे भी न की होगी। मुझे अपने देश पर विश्वास है—विशेषत अपने देश के युवको पर।

बंगाल के युवकों पर सबसे बड़ा भार है। इतना बड़ा भार किसी दूसरे प्रान्त के युवकों पर कभी नहीं आया। पिछले दस वर्षों तक मैंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। इससे मेरी दृढ़ धारणा हो गयी है कि बंगाल के युवकों के भीतर से ही उस शक्ति का प्रकाश होगा, जो भारत को उसके आध्यात्मिक अधिकार पर फिर से प्रतिष्ठित करेगी। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ, इन हृदयवान् उत्साही बंगाली युवकों के भीतर से ही सैकड़ों वीर उठेंगे, जो हमारे पूर्वजों द्वारा प्रचारित सनातन आध्यात्मिक सत्यों का प्रचार करने और शिक्षा देने के लिए संसार के एक छोर से दूसरे छोर तक भ्रमण करेंगे। और तुम्हारे सामने यही महान् कर्तव्य है। अतएव एक बार और तुम्हें उस उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत रूपी महान् आदर्श वाक्य का स्मरण दिलाकर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ। डरना नहीं, क्योंकि मनुष्य जाति के इतिहास में देखा जाता है कि जितनी शक्तियों का विकास हुआ है, सभी साधारण मनुष्यों के भीतर से ही हुआ है। संसार में बड़े बड़े जितने प्रतिभाशाली मनुष्य हुए हैं, सभी साधारण मनुष्यों के भीतर से ही हुए हैं, और इतिहास की घटनाओं की पुनरावृत्ति होगी ही। किसी बात से मत डरो। तुम अद्भुत कार्य करोगे। जिस क्षण तुम डर जाओगे, उसी क्षण तुम बिल्कुल शक्तिहीन हो जाओगे। संसार में दुःख का मुख्य कारण भय ही है, यही सबसे बड़ा कुसंस्कार है, यह भय हमारे दुःखों का कारण है और यह निर्भीकता है जिससे क्षण भर में स्वर्ग प्राप्त होता है। अतएव उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

महानुभावो, मेरे प्रति आप लोगों ने जो अनुग्रह प्रकट किया है, उसके लिए आप लोगों को मैं फिर से धन्यवाद देता हूँ। मैं आप लोगों से इतना ही कह सकता हूँ कि मेरी इच्छा, मेरी प्रबल और आन्तरिक इच्छा यह है कि मैं संसार की और सर्वोपरि अपने देश और देशवासियों की थोड़ी सी भी सेवा कर सकूँ।

# सर्वाङ्ग वेदान्त

## [स्टार थिएटर, कलकत्ता मे दिया हुआ भाषण]

### स्वामी जी का भाषण

बहुत दूर—जहाँ न तो लिपिबद्ध इतिहास और न परम्पराओ का मन्द प्रकाश ही प्रवेश कर पाता है, अनन्त काल से वह स्थिर उजाला हो रहा है, जो बाह्य परिस्थितिवश कभी तो कुछ धीमा पड जाता है और कभी अत्यन्त उज्ज्वल, किन्तु वह सदा शाश्वत और स्थिर रहकर अपना पवित्र प्रकाश केवल भारत मे ही नही, बल्कि सम्पूर्ण विचार-जगत् मे अपनी मौन अननुभाव्य, शान्त फिर भी सर्वसक्षम शक्ति से उसी प्रकार भरता रहा है, जिस प्रकार प्रात काल के शिशिरकण लोगो की दृष्टि बचाकर चुपचाप गुलाब की सुन्दर कलियो को खिला देते है—यह प्रकाश उपनिषदो के तत्त्वो का, वेदान्त दर्शन का रहा है। कोई नही जानता कि इसका पहले पहल भारतभूमि मे कब उद्भव हुआ। इसका निर्णय अनुमान के बल से कभी नही हो सका। विशेषत, इस विषय के पश्चिमी लेखको के अनुमान एक दूसरे के इतने विरोधी है कि उनकी सहायता से इन उपनिषदो के समय का निश्चय नही किया जा सकता। हम हिन्दू आध्यात्मिक दृष्टि से उनकी उत्पत्ति नही स्वीकार करते। मैं बिना किसी सकोच के कहता हूँ कि यह वेदान्त, उपनिषद्-प्रतिपाद्य दर्शन अध्यात्म राज्य का प्रथम और अन्तिम विचार है, जो मनुष्य को अनुग्रह के रूप मे प्राप्त हुआ है।

इस वेदान्तरूपी महासमुद्र से ज्ञान की प्रकाश-तरगें उठ उठकर समय समय पर पश्चिम और पूर्व की ओर फैलती रही हैं। पुराकाल मे वे पश्चिम मे प्रवाहित हुई और एथेन्स, सिकन्दरिया और अन्तियोक जाकर उन्होने यूनानवालो के विचारो को बल प्रदान किया। इसमे कोई सन्देह नही कि प्राचीन यूनानवालो पर साख्य दर्शन की विशेष छाप पडी थी। और साख्य तथा भारत के अन्यान्य सब दार्शनिक मत, उपनिषद् या वेदान्त पर ही प्रतिष्ठित है। भारत मे भी प्राचीन काल मे और आज भी कितने ही विरोधी सम्प्रदायो के रहने पर भी सभी उपनिषद् या वेदान्त रूप एकमात्र प्रमाण पर ही अधिष्ठित है। तुम द्वैतवादी हो, चाहे विशिष्टाद्वैतवादी, शुद्धाद्वैतवादी हो, चाहे अद्वैतवादी अथवा चाहे और जिस प्रकार के अद्वैत-

वादी या द्वैतवादी हो, या तुम अपने को चाहे जिस नाम से पुकारो, तुम्हें अपने शास्त्र उपनिषदों का प्रामाण्य स्वीकार करना ही होगा। यदि भारत का कोई सम्प्रदाय उपनिषदों का प्रामाण्य न माने तो वह 'सनातन' मत का अनुयायी नहीं कहा जा सकता। और जैनों-बौद्धों के मत भी उपनिषदों का प्रमाण न स्वीकार करने के कारण ही भारतभूमि से हटा दिये गये थे। इसलिए चाहे हम जानें या न जानें वेदान्त भारत के सब सम्प्रदायों में प्रविष्ट है और हम जिसे हिन्दू धर्म कहते हैं—यह अनगिनती शाखाओंवाला महान् वट वृक्ष के समान हिन्दू धर्म—वेदान्त के ही प्रभाव से खड़ा है। चाहे हम जानें, चाहे न जानें, परन्तु हम वेदान्त का ही विचार करते हैं, वेदान्त ही हमारा जीवन है, वेदान्त ही हमारी साँस है, मृत्यु तक हम वेदान्त ही के उपासक हैं, और प्रत्येक हिन्दू का यही हाल है। अतः भारत भूमि में भारतीय श्रोताओं के सामने वेदान्त का प्रचार करना मानो एक असंगति है। परन्तु यदि किसी का प्रचार करना है तो वह इसी वेदान्त का, विशेषतः इस युग में इसका प्रचार अत्यन्त आवश्यक हो गया है। क्योंकि हमने तुमसे अभी अभी कहा है कि भारत के सब सम्प्रदायों को उपनिषदों का प्रामाण्य मानकर चलना चाहिए, परन्तु इन सब सम्प्रदायों में हमें ऊपर ऊपर अनेक विरोध देखने को मिलते हैं। बहुत बार प्राचीन बड़े बड़े ऋषि भी उपनिषदों में निहित अपूर्व समन्वय को नहीं समझ सके। बहुधा मुनियों ने भी आपस के मतभेद के कारण विवाद किया है। यह मतविरोध किसी समय इतना बढ़ गया था कि यह एक कहावत हो गयी थी कि जिसका मत दूसरे से भिन्न न हो, वह मुनि ही नहीं—नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्। परन्तु अब ऐसा विरोध नहीं चल सकता। अब उपनिषदों के मंत्रों में गूढ़ रूप से जो समन्वय छिपा हुआ है, उसकी विशद व्याख्या और प्रचार की आवश्यकता सभी के लिए आन पड़ी है, फिर चाहे कोई द्वैतवादी हो, विशिष्टाद्वैतवादी हो या अद्वैतवादी, उसे संसार के सामने स्पष्ट रूप से रखना चाहिए। और यह काम सिर्फ भारत में ही नहीं, उसके बाहर भी होना चाहिए। मुझे ईश्वर की कृपा से इस प्रकार के एक महापुरुष के पैरों तले बैठकर शिक्षा ग्रहण करने का महासौभाग्य मिला था, जिनका सम्पूर्ण जीवन ही उपनिषदों का महासमन्वयस्वरूप था—जिनका जीवन उनके उपदेशों की अपेक्षा हजार गुना बढ़कर उपनिषदों का जीवन्त भाष्य स्वरूप था। उन्हें देखने पर मालूम होता था, मानो उपनिषद् के भाव वास्तव में मानवरूप धारण करके प्रकट हुए हों। उस समन्वय का कुछ अंश शायद मुझे भी मिला है। मैं नहीं जानता कि इसको प्रकट करने में मैं समर्थ हो सकूँगा या नहीं। परन्तु मेरा प्रयत्न यही है। अपने जीवन में मैं यह दिखाने की कोशिश करूँगा कि वैदान्तिक सम्प्रदाय एक दूसरे के विरोधी नहीं, वे एक दूसरे के अवश्यम्भावी

परिणाम हैं, एक दूसरे के पूरक हैं, वे एक से दूसरे पर चढने के सोपान हैं, जब तक कि वह अद्वैत—**तत्त्वमसि**—लक्ष्य प्राप्त न हो जाय।

भारत मे एक वह समय था जब कर्मकाड का बोलबाला था। वेदो के इस अश मे अनेक ऊँचे आदर्श हैं, इसमे कोई सन्देह नही। हमारी वर्तमान नित्य पूजाओ मे से कुछ यद्यपि अभी भी वैदिक कर्मकाड के अनुसार ही की जाती हैं, इतना होते हुए भी भारत मे वैदिक कर्मकाड का प्राय लोप हो गया है। अब हमारा जीवन वेदो के कर्मकाड के अनुसार बहुत ही कम नियमित और अनुशासित होता है। अपने दैनिक जीवन मे हम प्राय पौराणिक अथवा तान्त्रिक हैं, यहाँ तक कि जहाँ कही भारत के ब्राह्मण वैदिक मत्रो को काम मे लाते हैं, वहाँ अधिकाशत उनका विचार वेदो के अनुसार नही, किन्तु तत्रो या पुराणो के अनुसार होता है। अतएव वेदो के कर्मकाड के विचार से अपने को वैदिक बताना हमारी समझ मे युक्तिपूर्ण नही जँचता, परन्तु यह असदिग्ध है कि हम सभी वेदान्ती हैं। जो लोग अपने को हिन्दू कहते है, अच्छा होता यदि वे अपने को वेदान्ती कहते। और जैसा कि हमने तुम्हें पहले ही बतलाया है कि उसी वेदान्ती नाम के भीतर सब सम्प्रदाय—द्वैतवादी हो, चाहे अद्वैतवादी—आ जाते हैं।

वर्तमान समय मे भारत मे जितने सम्प्रदाय हैं, उनके मुख्यत दो भाग किये जा सकते हैं—द्वैतवादी और अद्वैतवादी। इनमे से कुछ सम्प्रदाय जिन छोटे छोटे मतभेदो पर अधिक बल देते हैं और जिनकी सहायता से वे विशुद्धाद्वैतवादी और विशिष्टाद्वैतवादी आदि नये नये नाम लेना चाहते हैं, उनसे विशेष कुछ बनता बिगडता नही। उन्हें या तो द्वैतवादियो की श्रेणी मे शामिल किया जा सकता है अथवा अद्वैतवादियो की श्रेणी मे। और जो सम्प्रदाय वर्तमान समय के है, उनमे से कुछ तो बिल्कुल नये है और दूसरे पुराने सम्प्रदायो के नवीन सस्करण जान पडते हैं। पहली श्रेणी के प्रतिनिधि स्वरूप मैं रामानुजाचार्य का जीवन और दर्शन प्रस्तुत करूँगा और दूसरी के प्रतिनिधि रूप मे शकराचार्य का जीवन और दर्शन।

रामानुज उत्तरकालीन भारत के प्रधान द्वैतवादी दार्शनिक हैं। अन्य द्वैतवादियो ने प्रत्यक्षत या परोक्षत अपने तत्त्व-प्रचार मे और अपने सम्प्रदायो के सगठन मे, यहाँ तक कि अपने सगठन की छोटी छोटी बातो मे भी उन्हीका अनुसरण किया है। रामानुज और उनके प्रचार-कार्य के साथ भारत के दूसरे द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदायो की तुलना करो तो आश्चर्य होगा, कि उनके आपस के उपदेशो, साधना-प्रणालियो और साम्प्रदायिक नियमो मे बडा सादृश्य है। अन्यान्य वैष्णवाचार्यो मे दाक्षिणात्य आचार्य मध्व मुनि और उनके बाद हमारे बगदेश के महाप्रभु श्री चैतन्य का नाम उल्लेख योग्य है, जिन्होंने मध्वाचार्य के दर्शन का बगाल

से प्रचार किया था। दक्षिण में कई सम्प्रदाय और हैं जैसे विशिष्टाद्वैतवादी शैव। शैव प्रायः अद्वैतवादी होते हैं। सिंहल और दक्षिण के कुछ स्थानों को छोड़कर भारत में सर्वत्र शैव अद्वैतवादी हैं। विशिष्टाद्वैतवादी शैवों ने 'विष्णु' नाम की जगह सिर्फ 'शिव' नाम बैठाया है और आत्मा विषयक सिद्धान्त को छोड़ अन्यान्य सब विषयों में रामानुज के ही मत को ग्रहण किया है। रामानुज के अनुयायी आत्मा को अणु अर्थात् अत्यन्त छोटा कहते हैं, परन्तु शंकराचार्य के मतानुयायी उसे विभु अर्थात् सर्वव्यापी स्वीकार करते हैं। प्राचीन काल में अद्वैत मत के कई सम्प्रदाय थे। ऐसा लगता है कि प्राचीन समय में ऐसे अनेक सम्प्रदाय थे जिन्हें शंकराचार्य के सम्प्रदाय ने पूर्णतया आत्मसात् कर अपने में मिला लिया था। वेदान्त के किसी किसी भाष्य में विशेषतः विज्ञानभिक्षु के भाष्य में शंकर पर बीच बीच में कटाक्ष किया गया दिखायी देता है। विज्ञानभिक्षु यद्यपि अद्वैतवादी थे फिर भी उन्होंने शंकर के मायावाद को उड़ा देने की कोशिश की थी। अतः साफ जान पड़ता है कि ऐसे अनेक सम्प्रदाय थे जिनका मायावाद पर विश्वास न था यहाँ तक कि उन्होंने शंकर को 'प्रच्छन्न बौद्ध' कहने में भी संकोच नहीं किया। उनकी यह धारणा थी कि मायावाद को बौद्धों से लेकर शंकर ने वेदान्त के भीतर रखा है। जो कुछ भी हो वर्तमान समय में सभी अद्वैतवादी शंकराचार्य के अनुगामी हैं और शंकराचार्य तथा उनके शिष्य उत्तर भारत और दक्षिण भारत दोनों खण्डों में अद्वैतवाद के विशेष प्रचारक रहे हैं। शंकराचार्य का प्रभाव हमारे बंगाल में और पंजाब तथा काश्मीर में ज्यादा नहीं फैला परन्तु दक्षिण के सभी स्मार्त शंकराचार्य के अनुयायी हैं और वाराणसी अद्वैतवाद का एक केन्द्र होने के कारण उत्तर भारत के अनेक स्थानों में उनका प्रभाव बहुत ज्यादा है।

*परन्तु मौलिक तत्त्व के आविष्कार करने का दावा न शंकराचार्य ने किया* है और न रामानुज ने। रामानुज ने तो साफ कहा है कि हमने बोधायन के भाष्य का अनुसरण करके तदनुसार ही वेदान्त सूत्रों की व्याख्या की है। भगवद्बोधायनकृतां विस्तीर्णां ब्रह्मसूत्रवृत्तिं पूर्वाचार्याः संचिक्षिपुः तन्मतानुसारेण सूत्राक्षराणि व्याख्यास्यन्ते।—'भगवान् बोधायन ने ब्रह्मसूत्र पर विस्तारपूर्वक भाष्य लिखा था जिसे पूर्व आचार्यों ने संक्षिप्त कर *दिया*। उनके मतानुसार मैं सूत्र के शब्दों की व्याख्या कर रहा हूँ।' अपने 'श्री भाष्य' के आरम्भ में ही रामानुज ने ये बातें लिख दी हैं। उन्होंने बोधायनकृत ब्रह्मसूत्र भाष्य को लिया और उसे संक्षिप्त कर दिया और वही संक्षिप्त रूप आजकल हमें उपलब्ध है। बोधायन भाष्य देखने का अवसर मुझे कभी नहीं मिला। उसे अभी तक देख नहीं सका हूँ। पर-

लोकगत स्वामी दयानन्द सरस्वती व्याससूत्रों के बोधायन भाष्य के सिवा अन्य सभी भाष्यो को अस्वीकार कर देना चाहते थे, और यद्यपि वे अवसर मिलने पर रामानुज के ऊपर कटाक्ष किये बिना न रहते थे, वे भी कभी बोधायन भाष्य को सर्वसाधारण के सामने नही रख सके। परन्तु रामानुज ने स्पष्टत कहा है कि बोधायन के विचार, और कही कही तो उसके अश तक, लेकर हमने अपने वेदान्त-भाष्य की रचना की है। यह अनुमान किया जा सकता है कि शकराचार्य ने भी प्राचीन भाष्यकारो के ग्रथो का अवलम्बन कर अपने भाष्य का प्रणयन किया होगा। उनके भाष्य मे कई जगह प्राचीन भाष्यो के नाम आये हैं। और जब कि उनके गुरु और गुरु के गुरु स्वय उन्हीके जैसे एक ही अद्वैत मत के प्रवर्तक और वेदान्ती थे—और कभी कभी किसी विषय मे वे शकर की अपेक्षा अद्वैत तत्त्व के प्रकाशन मे अधिक अग्रसर एव साहसी थे—तब यह साफ समझ मे आ जाता है कि शकर ने भी किसी नये भाव तत्त्व का प्रचार नही किया। रामानुज ने जिस प्रकार बोधायन भाष्य के सहारे अपना भाष्य लिखा था, अपनी भाष्य-रचना मे शकर ने भी वैसा ही किया। परन्तु अभी तक यह निर्णय नही किया जा सका है कि शकर ने किस भाष्य को आधार मानकर भाष्य लिखा।

जिन दर्शनो को तुमने पढा है या जिनके नाम सुने हैं, वे सब के सब उपनिषद् के प्रमाण पर आधारित हैं। जब भी उन्होंने श्रुति की दुहाई दी है, तब उपनिषदो को ही लक्ष्य किया है। जब वे श्रुति को उद्धृत करते हैं, उनका मतलब उपनिषदो से रहता है। भारत मे उपनिषदो के बाद अन्य कई दर्शनो का जन्म हुआ, परन्तु व्यास द्वारा लिखे गये वेदान्त दर्शन की तरह किसी दूसरे दर्शन की प्रतिष्ठा भारत मे नही हो सकी। पर वेदान्त दर्शन भी प्राचीन साख्य दर्शन का ही विकसित रूप है। और सारे भारत के, यहाँ तक कि सारे ससार के सभी दर्शन और सभी मत कपिल के विशेष रूप से ऋणी हैं। मनस्तात्त्विक और दार्शनिक विषयो का कपिल जैसा महान् व्याख्याता भारत के इतिहास मे शायद ही दूसरा हुआ हो। ससार में सर्वत्र ही कपिल का प्रभाव दीख पडता है। जहाँ कोई मान्यताप्राप्त दार्शनिक मत विद्यमान है, वही उनका प्रभाव खोजा जा सकता है। वह हजार वर्ष पहले का चाहे भले ही हो, किन्तु वहाँ वे ही कपिल—वे ही तेजस्वी, गौरवयुक्त, अपूर्व प्रतिभाशाली कपिल दृष्टिगोचर होते हैं। उनके मनस्तत्त्व और दर्शन के अधिकाश को थोडा सा फेर-फार करके भारत के भिन्न भिन्न सभी सम्प्रदायो ने ग्रहण किया है। हमारी जन्मभूमि बगाल के नैयायिक भारत के दार्शनिक क्षेत्र मे विशेष प्रभाव फैलाने मे समर्थ नही हो सके। वे सामान्य, विशेष, जाति, द्रव्य, गुण आदि बोझिल पारिभाषिक क्षुद्र शब्दो मे उलझ गये, जिन्हें कोई अच्छी तरह समझना

चाहे तो सारी उम्र बीत जाय। वे दर्शनालोचन का भार वेदान्तियों पर छोड़कर स्वयं 'न्याय' लेकर बैठे। परन्तु आधुनिक काल में भारत के सभी दार्शनिक सम्प्रदायों ने बंग देश के नैयायिकों की तर्क सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली ग्रहण की है। जगदीश गदाधर और शिरोमणि के नाम मलाबार देश में कहीं कहीं उसी प्रकार प्रसिद्ध हैं जिस प्रकार नदिया में। किन्तु व्यास का दर्शन वेदान्तसूत्र भारत में सब जगह सुप्रतिष्ठ है, और दर्शन ने वेदान्त-प्रतिपाद्य ब्रह्म को (युक्तिपूर्ण ढंग से) मनुष्य के लिए व्यक्त करने का उसका जो उद्देश्य रहा है उसे साधित करके उसने स्थायित्व लाभ किया। इस वेदान्त दर्शन में युक्ति को पूर्णतया श्रुति के अधीन रखा गया है, शंकराचार्य ने भी एक जगह घोषित किया है कि व्यास ने युक्ति-विचार का यत्न नहीं किया। उनके सूत्रप्रणयन का एकमात्र उद्देश्य यह था कि वेदान्त मंत्ररूपी पुष्पों को एक ही सूत्र में गूँथकर एक माला तैयार करें। उनके सूत्र वहीं तक मान्य हैं जहाँ तक वे उपनिषदों के अधीन हैं, इसके आगे नहीं।

इस समय भारत के सभी सम्प्रदाय व्याससूत्रों को प्रामाणिक ग्रन्थों में श्रेष्ठ स्वीकार करते हैं। और जब यहाँ कोई नवीन सम्प्रदाय प्रारम्भ होता है तो वह व्याससूत्रों पर अपने ज्ञानानुकूल नया भाष्य लिखकर अपनी जड़ जमाता है। कभी कभी इन भाष्यकारों के मत में बहुत फर्क आता दीख पड़ता है। कभी कभी तो मूल सूत्रों की अर्थविकृति देखकर जी ऊब जाता है। अस्तु। व्याससूत्रों को इस समय भारत में सबसे अच्छे प्रमाण ग्रन्थ का आसन मिल गया है और व्याससूत्रों पर एक नया भाष्य बिना लिखे भारत में कोई सम्प्रदाय संस्थापन की आशा नहीं कर सकता।

व्याससूत्रों के बाद ही विश्वप्रसिद्ध गीता का प्रामाण्य है। शंकराचार्य का गौरव गीता के प्रचार से ही बढ़ा। इस महापुरुष ने अपने महान् जीवन में जो बड़े बड़े कर्म किये गीता का प्रचार और उसकी एक सुन्दर भाष्य रचना भी उन्हींमे है। और भारत के सनातनमार्गी सम्प्रदाय-संस्थापकों में से हुए एक ने उनका अनुगमन किया और तदनुसार गीता पर एक एक भाष्य की रचना की।

उपनिषद् अनेक हैं। कोई कोई यह कहते हैं कि उनकी संख्या एक सौ आठ है और कोई कोई और भी अधिक कहते हैं। उनमें से कुछ स्पष्ट ही आधुनिक हैं यथा अल्लोपनिषद्। उसमें अल्लाह की स्तुति है और मुहम्मद को रसूलल्ला कहा गया है। मैंने सुना है कि यह अकबर के राज्यकाल में हिन्दू और मुसलमानों में मेल कराने के लिए रचा गया था। कभी कभी संहिता विभाग में अल्ला इल्ला जैसे किसी शब्द को बरबस ग्रहण कर, उसके आधार पर उपनिषद् रच लिया

गया है। इस प्रकार इम अल्लोपनिषद् मे मुहम्मद रसूलल्ला हुए। इसका तात्पर्य चाहे जो कुछ हो, किन्तु इस प्रकार के और भी अनेक साम्प्रदायिक उपनिषद् है। यह स्पष्ट समझ मे आ जाता है कि वे विल्कुल आधुनिक हैं और उपनिषदो की ऐसी रचना बहुत कठिन भी नही थी, क्योकि वेदो के सहिता भाग की भाषा इतनी पुरानी है कि उसमे व्याकरण के नियम नही माने गये। कई साल हुए, वैदिक व्याकरण पढने की मेरी इच्छा हुई और मैंने वडे आग्रह से पाणिनि और महाभाष्य पढना आरम्भ किया। परन्तु मुझे वडा आश्चर्य हुआ, जब मैंने देखा कि वैदिक व्याकरण के प्रधान भाग केवल साधारण नियमो के अपवाद ही है। व्याकरण मे एक साधारण विधान माना गया, परन्तु इसके वाद ही यह बतलाया गया कि वेदो मे यह नियम अपवादस्वरूप होगा। अत हम देखते हैं कि बचाव के लिए यास्क की निरुक्ति का उपयोग कर कोई भी मनुष्य चाहे जो कुछ लिखकर वडी आसानी से उसे वेद कहकर प्रचार कर सकता है। साथ ही इसके अधिकाश भाग मे बहुसख्यक पर्याय शब्द रखे गये हैं। जहाँ इतने सुभीते है, वहाँ तुम जितना चाहो उपनिषद् लिख सकते हो। यदि सस्कृत का कुछ ज्ञान हो तो प्राचीन वैदिक शब्दो की तरह कुछ शब्द गढ लेने ही से काम हो जायगा, व्याकरण का तो कुछ भय रहा ही नही। फिर तो रसूलल्ला हो, चाहे जो सुल्ला हो, उसे अपने ग्रन्थ मे तुम अनायास रख सकते हो। इस प्रकार अनेक उपनिषदो की रचना हो गयी है और सुनते हैं कि अब भी होती है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि भारत के कुछ भागो मे भिन्न भिन्न सम्प्रदायो के लोग अब भी ऐसे उपनिषदो का प्रणयन करते है, परन्तु इन उपनिषदो मे कुछ ऐसे हैं, जो स्पष्टत अपनी प्रामाणिकता की गवाही देते हैं, और इन्हीको शकर, वाद मे रामानुज और दूसरे वडे वडे भाष्यकारो ने स्वीकार किया है तथा इनका भाष्य किया है।

उपनिषदो के और भी दो एक तत्त्वो की ओर मैं तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, क्योकि ये उपनिषद् ज्ञानसमुद्र है और मुझ जैसा अयोग्य मनुष्य यदि उनके सम्पूर्ण तत्त्वो की व्याख्या करना चाहे तो वर्षों बीत जायँगे, एक व्याख्यान मे कुछ न होगा। अतएव उपनिषदो के अध्ययन के प्रसग मे मेरे मन मे जो दो एक वातें आयी हैं, उनकी ओर तुम्हारा ध्यान दिलाना चाहता हूँ। पहले तो ससार मे इनकी तरह अपूर्व काव्य और नही हैं। वेदो के सहिता भाग को पढते समय उसमे भी जगह जगह अपूर्व काव्य-सौन्दर्य का परिचय मिलता है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद सहिता के नासदीय सूक्तो को पढो। उसमे प्रलय के गम्भीर अन्धकार के वर्णन मे है—**तम आसीत् तमसा गूढमग्रे** इत्यादि—'जब अन्धकार से अन्धकार ढँका हुआ था।' इसके पाठ ही से यह जान पडता है कि कवित्व का अपूर्व गाम्भीर्य

इसमें भरा है। तुमने क्या इस ओर दृष्टि डाली है कि भारत के बाहर के देशों में तथा भारत में भी गम्भीर भावों के चित्र खींचने के अनेक प्रयत्न किये गये हैं? भारत के बाहरी देशों में यह प्रयत्न सदा जड़ प्रकृति के अनन्त भावों के वर्णन में ही हुआ है—केवल अनन्त बहिःप्रकृति, अनन्त जड़, अनन्त देश का वर्णन हुआ है। जब भी मिल्टन या दान्ते या किसी दूसरे प्राचीन अथवा आधुनिक यूरोपीय बड़े कवि ने अनन्त के चित्र खींचने की कोशिश की है, तभी उन्होंने कवित्व-पक्षों के सहारे अपने बाहर दूर आकाश में विचरते हुए, बाह्य अनन्त प्रकृति का कुछ कुछ आभास देने की चेष्टा की है। यह चेष्टा यहाँ भी हुई है। बाह्य प्रकृति का अनन्त विस्तार जिस प्रकार वेद संहिता में चित्रित होकर पाठकों के सामने रखा गया है, वैसा अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिलता। संहिता के इस 'तम आसीत् तमसा गूढम्' वाक्य को याद रखकर तीन भिन्न भिन्न कवियों के अन्धकार वर्णन के साथ इसकी तुलना करके देखो। हमारे कालिदास ने कहा है—'सूचीभेद्य अन्धकार' उधर मिल्टन कहते हैं 'उजाला नहीं है दृश्यमान अन्धकार है।' परन्तु ऋग्वेद संहिता में है—अन्धकार से अन्धकार ढँका हुआ है, अन्धकार के भीतर अन्धकार छिपा हुआ है। हम उष्ण कटिबन्ध के रहनेवाले सहज ही में समझ सकते हैं कि जब सहसा नवीन वर्षागम होता है, तब सम्पूर्ण दिङ्मंडल अन्धकाराच्छन्न हो जाता है और उमड़ती हुई काली घटाएँ दूसरे बादलों को घेर लेती हैं। इसी प्रकार कविता चलती है, परन्तु संहिता के इस अंश में भी बाहरी प्रकृति का वर्णन किया गया है। बाहरी प्रकृति का विश्लेषण करके मानव-जीवन की महान् समस्याएँ अन्यत्र जैसे हल की गयी हैं, वैसे ही यहाँ भी। जिस प्रकार प्राचीन यूनान अथवा आधुनिक यूरोप जीवन-समस्या का समाधान पाने के लिए तथा जगत्कारण सम्बन्धी पारमार्थिक तत्त्वों की खोज के लिए बाह्य प्रकृति के अन्वेषण में संलग्न हुए, उसी प्रकार हमारे पूर्वजों ने भी किया और पाश्चात्यों के समान वे भी असफल हुए। परन्तु पश्चिमी जातियों ने इस विषय में और कोई प्रयत्न नहीं किया, वहीं वे पड़ी रहीं। बहिर्जगत् में जीवन और मृत्यु की महान् समस्याओं के समाधान में व्यर्थ प्रयास होने पर वे आगे नहीं बढ़ीं। हमारे पूर्वजों ने भी इसे असम्भव समझा था, परन्तु उन्होंने इस समाधान की प्राप्ति में इन्द्रियों की पूरी असमर्थता संसार के सामने निर्भय होकर घोषित की। उपनिषद् से अच्छा उत्तर कहीं नहीं मिलेगा।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
'मन के साथ वाणी जिसे न पाकर वहाँ से लौट आती है।'
न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनः।

'वहाँ न आँखो की पहुंच है, न वाणी की।'

ऐसे अनेक वाक्य हैं, जिन्होंने इन्द्रियो को इस महासमस्या के समाधान के लिए सर्वथा अक्षम बताया है, किन्तु वे पूर्वज इतना ही कहकर रुक नही गये। वाह्य प्रकृति से लौटकर वे मनुष्य की अन्त प्रकृति की ओर प्रवृत्त हुए। इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए वे स्वय अपनी आत्मा के निकट गये, वे अन्तर्मुख हुए। वे समझ गये थे कि प्राणहीन जड से कभी सत्य की प्राप्ति न होगी। उन्होने देखा कि वहि प्रकृति से प्रश्न करने पर कोई उत्तर नही मिलता, न उससे कोई आशा की जा सकती है, अतएव वाहर सत्य की खोज की चेष्टा वृथा जानकर वहि प्रकृति का त्याग करके वे उसी ज्योतिर्मय जीवात्मा की ओर मुडे और वहाँ उन्हे उत्तर भी मिला तमेवैक जानथ आत्मान अन्या वाचो विमुचथ।—'एकमात्र उसी आत्मा का ज्ञान प्राप्त करो और दूसरे वृथा वाक्य छोडो।' उन्होंने आत्मा मे ही सारी समस्याओ का समाधान पाया। वही उन्होंने विश्वेश्वर परमात्मा को जाना और जीवात्मा के साथ उसका सम्वन्ध, उसके प्रति हमारा कर्तव्य और उसके आधार पर हमारा पारस्परिक सम्वन्ध—आदि ज्ञान प्राप्त किया। और इस आत्मतत्त्व के वर्णन के सदृश उदात्त ससार मे और दूसरी कविता नहीं है। जड के वर्णन की भाषा मे इस आत्मा को चित्रित करने की चेष्टा न रही, यहाँ तक कि आत्मा के वर्णन मे उन्होने गुणो का निर्देश करना विल्कुल छोड दिया। तव अनन्त की धारणा के लिए इन्द्रियो की सहायता की आवश्यकता नही रही। वाह्य इन्द्रियग्राह्य, अचेतन, मृत, जड स्वभाव, अवकाशरूपी अनन्त का वर्णन लुप्त हो गया। वरन् इसके स्थान पर आत्मतत्त्व का ऐसा वर्णन मिलता है, जो इतना सूक्ष्म है, जैसा कि इस कथन मे निर्दिष्ट है

**न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारक नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।**
**तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्यभासा सर्वमिदं विभाति॥**[1]

ससार मे और कौन सी कविता इसकी अपेक्षा अधिक उदात्त होगी ? 'वहाँ न सूर्य का प्रकाश है, न चन्द्रतारकाओ का, यह विजली उसे प्रकाशित नही कर सकती, तो मृत्युलोक की इस अग्नि की वात ही क्या ? उसीके प्रकाश से सब कुछ प्रकाशित होता है।'

ऐसी कविता तुमको कही नही मिल सकती और कही न पाओगे। उस अपूर्व कठोपनिषद् को लो। इस काव्य का रचना-चमत्कार कैसा सर्वांग सुन्दर है। किस

---

१ मुडकोपनिषद् ॥२।२।१७॥

मनोहर रीति से यह आरम्भ किया गया है। उस छोटे से बालक नचिकेता के हृदय में श्रद्धा का आविर्भाव, उसकी यमदर्शन की अभिलाषा और सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि यम स्वयं उसे जीवन और मृत्यु का महान् पाठ पढ़ा रहे हैं। और वह बालक उनसे क्या जानना चाहता है?—मृत्यु-रहस्य।

उपनिषदों के सम्बन्ध की जिस दूसरी बात पर तुम्हें ध्यान देना चाहिए, वह है उनका अपौरुषेयत्व। यद्यपि उनमें हमें अनेक आचार्यों और वक्ताओं के नाम मिलते हैं, पर उनमें से एक भी उपनिषदों के प्रमाणस्वरूप नहीं गिने जाते। उपनिषदों का एक भी मंत्र उनमें से किसीके जीवन के ऊपर निर्भर नहीं है। ये सब आचार्य और वक्ता मानो छायामूर्ति की भाँति रंगमंच के पीछे अवस्थित हैं। उन्हें मानो कोई स्पष्टतया नहीं देख पाता, उनकी सत्ता मानो साफ समझ में नहीं आती। यथार्थ शक्ति उपनिषदों के उन अपूर्व महिमामय, ज्योतिर्मय, तेजोमय मंत्रों के भीतर निहित है, जो बिलकुल व्यक्तिनिरपेक्ष हैं। बीसियों याज्ञवल्क्य आयें, रहें और चले जायें, इससे कोई हानि नहीं, मंत्र तो बने ही रहेंगे। किन्तु फिर भी वे किसी व्यक्तिविशेष के विरोधी नहीं हैं। वे इतने विशाल और उदार हैं कि संसार में अब तक जितने महापुरुष या आचार्य पैदा हुए और भविष्य में जितने आयेंगे, उन सबको समाहित कर सकते हैं। उपनिषद् अवतारों या महापुरुषों की उपासना के विरोधी नहीं हैं, बल्कि उसका समर्थन करते हैं। किन्तु साथ ही वे सम्पूर्ण रूप से व्यक्तिनिरपेक्ष हैं। उपनिषद् का ईश्वर जिस प्रकार निर्गुण अर्थात् व्यक्तिनिरपेक्ष है, उसी प्रकार समग्र उपनिषद् व्यक्तिनिरपेक्षता-रूप अपूर्व तत्त्व के ऊपर प्रतिष्ठित है। ज्ञानी, चिन्तनशील, दार्शनिक तथा युक्तिवादी उसमें इतनी व्यक्तिनिरपेक्षता पाते हैं, जितना कोई आधुनिक विज्ञानवेत्ता चाह सकता है।

और ये ही हमारे शास्त्र हैं। तुम्हें याद रखना चाहिए कि ईसाइयों के लिए जैसे बाइबिल है, मुसलमानों के लिए कुरान, बौद्धों के लिए त्रिपिटक, पारसियों के लिए जन्द-अवस्ता, वैसे ही हमारे लिए उपनिषद् हैं। ये ही हमारे शास्त्र हैं, दूसरे नहीं। पुराण, तन्त्र और अन्यान्य ग्रन्थ, यहाँ तक कि व्याससूत्र भी गौण हैं, हमारे मुख्य प्रमाण हैं वेद। मन्वादि स्मृतियाँ और पुराणों का जितना अंश उपनिषदों से मेल खाता है, उतना ही ग्रहणीय है, यदि असहमति प्रकट करें तो उन्हें निर्दयतापूर्वक छोड़ देना चाहिए। हमें यह सदा स्मरण रखना होगा, परन्तु भारत के दुर्भाग्य से वर्तमान समय में हम यह बिलकुल भूल गये हैं। इस समय छोटे छोटे ग्राम्य आचारों को मानो उपनिषदों के उपदेशों के स्थान पर प्रामाण्य प्राप्त हो गया है। बंगाल के सुदूर देहातों में अब जो आचार प्रचलित हैं, वे मानो वेद-वाक्य हैं, नहीं, उनसे भी बढ़कर हैं। और 'सनातन-मतावलम्बी' इस

शब्द का प्रभाव भी कितना विचित्र है! एक देहाती की निगाह मे वही सच्चा हिन्दू है, जो कर्मकाड की हर एक छोटी छोटी बात का पालन करता है और जो नही करता, उसे अहिन्दू कहकर दुत्कार दिया जाता है। दुर्भाग्य से हमारी मातृभूमि मे ऐसे अनेक लोग हैं, जो किसी तत्रविशेष का अवलम्बन कर सर्वसाधारण जनता को उसी तत्र-मत का अनुसरण करने का उपदेश देते है। जो वैसा नही करते, वे उनके मत मे सच्चे हिन्दू नही हैं। अत हमारे लिए यह स्मरण रखना अत्यन्त आवश्यक है कि उपनिषद् ही मुख्य प्रमाण हैं। गृह्य और श्रौत सूत्र भी वेदो के प्रमाणाधीन हैं। यही उपनिषद् हमारे पूर्वपुरुष ऋषियो के वाक्य हैं और यदि तुम हिन्दू होना चाहो तो तुम्हे यह विश्वास करना ही होगा। तुम ईश्वर के बारे मे जैसा चाहो विश्वास कर सकते हो, परन्तु वेदो का प्रामाण्य यदि नही मानते तो तुम घोर नास्तिक हो। ईसाई, बौद्ध या दूसरे शास्त्रो तथा हमारे शास्त्रो मे यही अन्तर है। उन्हें शास्त्र न कहकर पुराण कहना चाहिए, क्योकि उनमे जलप्लावन का इतिहास, राजाओ और राजवशधरो का इतिहास, महापुरुषो के जीवन-चरित आदि विषय लेखबद्ध हैं। ये सब पुराणो के लक्षण हैं, अत इनका जितना अश वेदो से मेल खाता हो, उतना ही ग्रहणीय है, परन्तु जो अश नही मेल खाता, उसके मानने की आवश्यकता नही। बाइबिल और दूसरी जातियो के शास्त्र भी जहाँ तक वेदो से सहमत हैं, वही तक अच्छे हैं, लेकिन जहाँ ऐसा नही है, वे हमारे लिए अस्वीकार्य हैं। कुरान के सम्बन्ध मे भी यही बात है। इन ग्रन्थो मे अनेक नीति-उपदेश है, अत वेदो के साथ उनका जहाँ तक ऐक्य हो, वही तक, पुराणो के समान, उनका प्रामाण्य है, इससे अधिक नही। वेदो के सम्बन्ध मे मेरा यह विश्वास है कि वेद कभी लिखे नही गये, वेदो की उत्पत्ति नही हुई। एक ईसाई मिशनरी ने मुझसे किसी समय कहा था, हमारी बाइबिल ऐतिहासिक नीव पर स्थापित है और इसीलिए सत्य है, इस पर मैंने जवाब दिया था, "हमारे शास्त्र इसीलिए सत्य हैं कि उनकी कोई ऐतिहासिक भित्ति नही है, तुम्हारे शास्त्र जब कि ऐतिहासिक हैं, तब अवश्य ही वे कुछ दिन पहले किसी मनुष्य द्वारा रचे गये थे, तुम्हारे शास्त्र मनुष्यप्रणीत हैं, हमारे नही। हमारे शास्त्रो की अनैतिहासिकता ही उनकी सत्यता का प्रमाण है।" वेदो के साथ आजकल दूसरे शास्त्रो का यही सम्बन्ध है।

अब हम उपनिषदो की शिक्षा की पर्यालोचना करेंगे। उनमे अनेक भावो के श्लोक हैं। कोई कोई सम्पूर्ण द्वैत भावात्मक हैं और अन्य अद्वैत भावात्मक है। किन्तु उनमे कई बातें हैं, जिन पर भारत के सभी सम्प्रदाय एकमत हैं। पहले तो सभी सम्प्रदाय ससारवाद या पुनर्जन्मवाद स्वीकार करते हैं। दूसरे, सब

सम्प्रदायों का मनोविज्ञान भी एक ही प्रकार का है। पहले यह स्थूल शरीर, इसके पीछे सूक्ष्म शरीर या मन है और इसके भी परे जीवात्मा है। पश्चिमी और भारतीय मनोविज्ञान में यह विशेष भेद है कि पश्चिमी मनोविज्ञान में मन और आत्मा में कोई अन्तर नहीं माना गया है, परन्तु हमारे यहाँ ऐसा नहीं। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार मन अथवा अन्तःकरण मानो जीवात्मा के हाथों का यन्त्र-मात्र है। इसीकी सहायता से वह शरीर अथवा बाहरी संसार में काम करता है। इस विषय में सभी का मत एक है। और सभी सम्प्रदाय एक स्वर से यह स्वीकार करते हैं कि जीवात्मा अनादि और अनन्त है। जब तक उसे सम्पूर्ण मुक्ति नहीं मिलती तब तक उसे बार बार जन्म लेना होगा। इस विषय में सब सहमत हैं। एक और मुख्य विषय में सबकी एक राय है, और यही भारतीय और पश्चिमी चिन्तन प्रणाली में विशेष मौलिक तथा अत्यन्त जीवन्त एवं महत्त्वपूर्ण अन्तर है, यहाँवाले जीवात्मा में सब शक्तियों की अवस्थिति स्वीकार करते हैं। यहाँ शक्ति और प्रेरणा के बाह्य आवाहन के स्थान पर उनका आन्तरिक स्फुरण स्वीकार किया गया है। हमारे शास्त्रों के अनुसार सब शक्तियाँ सब प्रकार की महत्ता और पवित्रता आत्मा में ही विद्यमान है। योगी तुमसे कहेंगे कि अणिमा लघिमा आदि सिद्धियाँ जिन्हें वे प्राप्त करना चाहते हैं, वास्तव में प्राप्त करने की नहीं वे पहले से ही आत्मा में मौजूद हैं सिर्फ उन्हें व्यक्त करना होगा। पतंजलि के मत में तुम्हारे पैरों तले चलनेवाले छोटे से छोटे कीड़ों तक में योगी की अष्ट सिद्धियाँ वर्तमान हैं केवल अपने देहरूपी आधार की अनुपयुक्तता के कारण ही वे प्रकाशित नहीं हो पातीं। जब भी उन्हें उत्कृष्टतर शरीर प्राप्त होगा वे शक्तियाँ अभिव्यक्त हो जायँगी परन्तु होती हैं वे पहले से ही विद्यमान। उन्होंने अपने सूत्रों में एक जगह कहा है निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्।[१] —'शुभाशुभ कर्म प्रकृति के परिणाम (परिवर्तन) के प्रत्यक्ष कारण नहीं हैं, वरन् वे प्रकृति के विकास की बाधाओं को दूर करनेवाले निमित्त कारण हैं। जैसे किसान को यदि अपने खेत में पानी लाना है तो सिर्फ खेत की मेंड़ काटकर पास के भरे तालाब से जल का योग कर देता है और पानी अपने स्वाभाविक प्रवाह से आकर खेत को भर देता है।' यहाँ पतंजलि ने किसी बड़े तालाब से किसान द्वारा अपने खेत में जल लाने का प्रसिद्ध उदाहरण दिया है। तालाब लबालब भरा है और एक क्षण में उसका पानी किसान के पूरे खेत को भर सकता है, परन्तु तालाब तथा खेत के बीच में मिट्टी की एक मेंड़ है। ज्यों ही रुकावट पैदा करने

१ पातंजल योगसूत्र ।।४।३।।

वाली यह मेड तोड दी जाती है, त्यो ही तालाव का पानी अपनी ताकत और वेग से खेत मे पहुँच जाता है। ठीक उसी प्रकार जीवात्मा मे सारी शक्ति, पूर्णता और पवित्रता पहले ही से भरी है, केवल माया का परदा पडा हुआ है, जिससे वे प्रकट नही होने पाती। एक वार आवरण को हटा देने से आत्मा अपनी स्वाभाविक पवित्रता प्राप्त करती है—उसकी सारी शक्ति व्यक्त हो जाती है। तुम्हें याद रखना चाहिए कि प्राच्य और पाश्चात्य चिन्तन-प्रणाली मे यह वडा भेद है। पश्चिम-वाले यह भयानक मत सिखाते हैं कि हम जन्म से ही महापापी है और जो लोग यह भयावह मत नही मानते, उन्हे वे जन्मजात दुष्ट कहते हैं। वे यह कभी नही सोचते कि अगर हम स्वभाव से ही वुरे हो तो हमारे भले होने की आशा नही, क्योंकि मनुष्य की प्रकृति कभी वदल नही सकती। 'प्रकृति का परिवर्तन'—यह वाक्य स्व-विरोधी है। जिसका परिवर्तन होता है, उसे प्रकृति नही कहना चाहिए। यह विषय हमे स्मरण रखना चाहिए। इस पर भारत के द्वैतवादी, अद्वैतवादी और सभी सम्प्रदाय एकमत हैं।

भारत के सव सम्प्रदाय एक अन्य विषय पर भी एकमत है, वह है ईश्वर का अस्तित्व। इसमे सन्देह नही कि ईश्वर के वारे मे सभी सम्प्रदायो की धारणा भिन्न भिन्न है। द्वैतवादी सगुण, केवल सगुण ईश्वर पर ही विश्वास करते हैं। मैं यह सगुण शब्द तुम्हे कुछ और भी अच्छी तरह समझाना चाहता हूँ। इस सगुण के अर्थ से देहधारी, सिहासन पर वैठे हुए, ससार का शासन करनेवाले किसी पुरुष-विशेष से मतलब नही। सगुण अर्थ से गुणयुक्त समझना चाहिए। इस सगुण ईश्वर का वर्णन शास्त्रो मे अनेक स्थलो मे देखने को मिलता है, और सभी सम्प्रदाय इस ससार का शासक, स्रष्टा, पालक और सहर्ता सगुण ईश्वर मानते हैं। अद्वैत-वादी इस सगुण ईश्वर के सम्बन्ध में और भी कुछ ज्यादा मानते हैं। वे इस सगुण ईश्वर की एक उच्चतर अवस्था के विश्वासी हैं, जिसे सगुण-निर्गुण नाम दिया जा सकता है। जिसके कोई गुण नही है, उसका किसी विशेषण द्वारा वर्णन करना असम्भव है। और अद्वैतवादी उसे 'सत्-चित्-आनन्द' के सिवा कोई और विशेषण नही देना चाहते। शकर ने ईश्वर को सच्चिदानन्द विशेषण से पुकारा है, परन्तु उपनिषदो मे ऋषियो ने इससे भी आगे बढकर कहा है, 'नेति नेति' अर्थात् 'यह नही, यह नही।' इस विषय मे सभी सम्प्रदाय एकमत हैं। अब मैं द्वैतवादियों के मत के पक्ष मे कुछ कहूँगा। जैसा कि मैंने कहा है, रामानुज को मैं भारत का प्रसिद्ध द्वैतवादी तथा वर्तमान समय के द्वैतवादी सम्प्रदायो का सबसे वडा प्रतिनिधि मानता हूँ। खेद की बात है कि हमारे बगाल के लोग भारत के उन बडे बडे धर्माचार्यों के विषय मे जिनका जन्म दूसरे प्रान्तो मे हुआ था, बहुत ही थोडा ज्ञान रखते

है। मुसलमानों के राज्यकाल में एक चैतन्य को छोड़कर बड़े बड़े और सभी धार्मिक नेता दक्षिण भारत में पैदा हुए थे और इस समय दाक्षिणात्यों का ही मस्तिष्क वास्तव में भारत भर का शासन कर रहा है। यहाँ तक कि चैतन्य भी इन्हीं सम्प्रदायों में से एक के मध्वाचार्य के सम्प्रदाय के अनुयायी थे। अस्तु, रामानुज के मतानुसार नित्य पदार्थ तीन हैं—ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति। सभी जीवात्माएँ नित्य हैं परमात्मा के साथ उनका भेद सदैव बना रहेगा और उनकी स्वतंत्र सत्ता का कभी लोप नहीं होगा। रामानुज कहते हैं, तुम्हारी आत्मा हमारी आत्मा से अनन्त काल के लिए पृथक रहेगी और यह प्रकृति भी चिर काल तक पृथक रूप से विद्यमान रहेगी क्योंकि उसका अस्तित्व वैसे ही सत्य है, जैसे कि जीवात्मा और ईश्वर का अस्तित्व। परमात्मा सर्वत्र अन्तर्निहित और आत्मा का सार तत्त्व है। ईश्वर अन्तर्यामी है और इसी अर्थ को लेकर रामानुज कहीं कहीं परमात्मा को जीवात्मा से अभिन्न—जीवात्मा का सारभूत पदार्थ बताते हैं, और ये जीवात्माएँ प्रलय के समय जब कि उनके मतानुसार सारी प्रकृति संकुचित अवस्था को प्राप्त होती है, संकुचित हो जाती हैं और कुछ काल तक उसी संकुचित तथा सूक्ष्म अवस्था में रहती हैं। और दूसरे कल्प के आरम्भ में वे अपने पिछले कर्मों के अनुसार फिर विकास पाती हैं और अपना कर्मफल भोगती हैं। रामानुज का मत है कि जिस कर्म से आत्मा की स्वाभाविक पवित्रता और पूर्णता का संकोच हो वही अशुभ है, और जिससे उसका विकास हो वह शुभ कर्म। जो कुछ आत्मा के विकास में सहायता पहुँचाये वह अच्छा है और जो कुछ उसे संकुचित करे, वह बुरा। और इसी तरह आत्मा की प्रगति हो रही है कभी तो वह संकुचित हो रही है और कभी विकसित। अन्त में ईश्वर के अनुग्रह से उसे मुक्ति मिलती है। रामानुज कहते हैं जो शुद्ध स्वभाव हैं और अनुग्रह के लिए प्रयत्नशील हैं, वे ही उसे पाते हैं।

श्रुति में एक प्रसिद्ध वाक्य है आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः। —जब आहार शुद्ध होता है तब सत्त्व भी शुद्ध हो जाता है और सत्त्व शुद्ध होने पर स्मृति अर्थात् ईश्वर-स्मरण (अद्वैतवादियों के लिए स्वकीय पूर्णता की स्मृति) ध्रुव अचल और स्थायी हो जाता है। इस वाक्य को लेकर भाष्यकारों में घनघोर विवाद हुआ है। पहली बात तो यह है कि इस 'सत्त्व' शब्द का क्या अर्थ है? हम लोग जानते हैं सांख्य के अनुसार—और इस विषय को हमारे सभी दर्शन-सम्प्रदायों ने स्वीकार किया है कि—इस देह का निर्माण तीन प्रकार के उपादानों से हुआ है—गुणों से नहीं। साधारण मनुष्यों की यह धारणा है कि सत्त्व रज और तम तीनों गुण हैं परन्तु वास्तव में वे गुण नहीं वे संसार के उपादान-कारण

स्वरूप है। और आहार शुद्ध होने पर यह सत्त्व-पदार्थ निर्मल हो जाता है। शुद्ध सत्त्व को प्राप्त करना ही वेदान्त का एकमात्र उपदेश है। मैंने तुमसे पहले भी कहा है कि जीवात्मा स्वभावत पूर्ण और शुद्धस्वरूप है और वेदान्त के मत मे वह रज और तम दो पदार्थो मे ढँका हुआ है। सत्त्व पदार्थ अत्यन्त प्रकाशस्वभाव है और उसके भीतर से आत्मा की ज्योति जगमगाती हुई स्वच्छन्दतापूर्वक उसी प्रकार निकलती है, जिस प्रकार शीशे के भीतर से आलोक। अतएव यदि रज और तम पदार्थ दूर हो जायें तो केवल सत्त्व रह जाय, तो आत्मा की शक्ति और पवित्रता प्रकाशित हो जायगी, और वह अपने को पहले से अधिक व्यक्त कर सकेगी।

अत यह सत्त्वप्राप्ति अत्यन्त आवश्यक है और श्रुति कहती है, 'आहार शुद्ध होने पर सत्त्व शुद्ध होता है।' रामानुज ने 'आहार' शब्द को भोज्य पदार्थ के अर्थ मे ग्रहण किया है और उन्होंने इसे अपने दर्शन के अगो मे से एक मुख्य अग माना है। इतना ही नही, इसका प्रभाव सम्पूर्ण भारत पर और भिन्न भिन्न सम्प्रदायो पर पडा है। अतएव हमारे लिए इसका अर्थ समझ लेना अत्यावश्यक है, क्योकि रामानुज के मत से यह आहार-शुद्धि हमारे जीवन का एक मुख्य अवलम्ब है। आहार किन कारणो से दूषित होता है? रामानुज का कथन है कि तीन प्रकार के दोषो से खाद्य पदार्थ दूषित हो जाता है। प्रथम है जाति दोष अर्थात् भोज्य पदार्थों की जाति मे प्रकृतिगत दोष जैसे कि लहसुन, प्याज़ और इसी प्रकार के अन्यान्य पदार्थों की गन्ध। दूसरा है आश्रय दोष अर्थात् जिस पदार्थ को कोई दूसरा छू लेता है अर्थात् जो पदार्थ किसी दूसरे के हाथ से मिलता है, वह छूनेवाले के दोषो से दूषित हो जाता है, दुष्ट मनुष्य के हाथ का भोजन तुम्हें भी दुष्ट कर देगा। मैंने स्वय भारत के बडे बडे अनेक महात्माओ को उनके जीवन-काल मे दृढतापूर्वक इस नियम का पालन करते हुए देखा है। और हाँ, भोजन देनेवाले के—यहाँ तक कि यदि किसीने कभी भोजन छुआ हो, तो उसके भी गुण-दोषो के समझ लेने की उनमे यथेष्ट शक्ति थी, और यह मैंने अपने जीवन मे एक बार नही, सैकडो बार प्रत्यक्ष अनुभव किया है। तीसरा है निमित्त दोष, भोज्य पदार्थों मे बाल, कीडे या धूल पड जाने से निमित्त दोष होता है। हमे इस समय इस शेषोक्त दोष से बचने की विशेष चेष्टा करनी चाहिए। भारत पर इसका अत्यधिक प्रभाव है। यदि वह भोजन किया जाय, जो इन तीनो प्रकार के दोषो से मुक्त है, तो अवश्य ही सत्त्वशुद्धि होगी। अगर ऐसा ही है तो धर्म तो बायें हाथ का खेल हो गया। अगर पाक-साफ भोजन ही से धर्म होता हो तो फिर हर एक मनुष्य धर्मात्मा बन सकता है। जहाँ तक मेरा ख्याल है, इस ससार मे ऐसा कमजोर या असमर्थ कोई भी न होगा, जो अपने को इन बुराइयो से न बचा सके। अस्तु। शकराचार्य

कहते हैं 'आहार' शब्द का अर्थ है इन्द्रियों द्वारा मन में विचारों का समावेश, आहरण होना या लाना। जब मन निर्मल होता है, तब सत्त्व भी निर्मल हो जाता है, किन्तु इसके पहले नहीं। तुम्हें जो रुचे वही भोजन कर सकते हो। अगर केवल खाद्य पदार्थ ही सत्त्व को मलमुक्त करता है तो खिलाओ बन्दर को जिन्दगी भर दूध-भात देखें तो वह एक बड़ा योगी होता है या नहीं! अगर ऐसा ही होता तो गायें और हिरन परम योगी हो गये होते। यह उक्ति प्रसिद्ध है

नित नहाने से हरि मिले तो जल जन्तु होई।
फल मूल खाके हरि मिले तो बाँदुड़ बाँदराई।
तिरन भखन से हरि मिले तो बहुत मृगी अजा।

परन्तु इस समस्या का समाधान क्या है? आवश्यक दोनों ही हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आहार के सम्बन्ध में शंकराचार्य का सिद्धान्त मुख्य है परन्तु यह भी सत्य है कि शुद्ध भोजन से शुद्ध विचार होने में सहायता मिलती है। दोनों का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों आवश्यक हैं परन्तु त्रुटि यही है कि आजकल हम भारतवासी शंकराचार्य का उपदेश भूल गये हैं। हम लोगों ने आहार का अर्थ शुद्ध भोजन मान लिया है। यही कारण है कि जब लोग मुझे यह कहते हुए सुनते हैं कि धर्म अब रसोई में घुस गया है, तब वे मुझ पर बिगड़ उठते हैं परन्तु यदि मेरे साथ तुम मद्रास चलते तो मेरे वाक्यों को स्वीकार कर लेते। बंगाली उनसे अच्छे हैं। मद्रास में किसी उच्च वर्ण के मनुष्य के भोजन पर यदि किसी नीच जाति की दृष्टि पड़ गयी तो वह भोजन फेंक दिया जाता है। परन्तु इतने पर भी मैंने नहीं देखा कि वहाँ के लोग उन्नत हो गये। यदि केवल इस प्रकार या उस प्रकार का भोजन करने ही से और उसे इसकी उसकी दृष्टि से बचाने ही से लोग सिद्ध हो जाते तो तुम देखते कि सभी मद्रासी सिद्ध-महात्मा हो गये होते परन्तु वे ऐसे नहीं हैं।

इस प्रकार, यद्यपि दोनों मत एकत्र करके एक सम्पूर्ण सिद्धान्त बनाना है, किन्तु घोड़े के आगे गाड़ी न जोतो। आजकल भोजन और वर्णाश्रम धर्म के सम्बन्ध में बड़ा शोरगुल उठ रहा है और बंगाली तो इन्हें लेकर और भी गला फाड़ रहे हैं। तुममें से हर एक से मेरा प्रश्न है कि तुम वर्णाश्रम के सम्बन्ध में क्या जानते हो? इस समय इस देश में चातुर्वर्ण्य विभाग कहाँ है? मेरे प्रश्नों का उत्तर भी दो। मैं तो वर्णचतुष्टय कहीं देखता। जिस प्रकार हमारे बंगालियों की कहावत है कि 'बिना सिर के सिरदर्द होता है' उसी प्रकार यहाँ तुम वर्णाश्रम विभाग की चर्चा करना चाहते हो। यहाँ अब चार जातियों का नाम नहीं है। मैं केवल

ब्राह्मण और शूद्र देखता हूँ। यदि क्षत्रिय और वैश्य हैं, तो वे कहाँ हैं? और ऐ ब्राह्मणो, क्यो तुम उन्हे हिन्दू धर्म के नियमानुसार यज्ञोपवीत धारण करने की आज्ञा नही देते?—क्यो तुम उन्हें वेद नही पढाते, जो हर एक हिन्दू को पढना चाहिए?—और यदि वैश्य और क्षत्रिय न रहे, किन्तु केवल ब्राह्मण और शूद्र ही रहें तो शास्त्रानुसार ब्राह्मणो को उस देश मे कदापि न रहना चाहिए, जहाँ केवल शूद्र हो, अतएव अपना बोरिया-बँधना लेकर यहाँ से कूच कर जाओ। क्या तुम जानते हो, जो लोग म्लेच्छ-भोजन खाते हैं और म्लेच्छो के राज्य मे बसते हैं, जैसे कि तुम गत हज़ार वर्षों से बस रहे हो, उनके लिए शास्त्रो मे क्या आज्ञा है? क्या उसका प्रायश्चित्त तुम्हें मालूम है? प्रायश्चित्त है तुषानल—अपने ही हाथो अपनी देह जला देना। तुम आचार्य के आसन पर बैठना चाहते हो, परन्तु कपटाचरण नही छोडते। यदि तुम्हें अपने शास्त्रो पर विश्वास है तो अपने को उसी प्रकार जला दो, जिस प्रकार उन एक ख्यातनामा ब्राह्मण ने, जो महावीर सिकन्दर के साथ यूनान गये थे, म्लेच्छ का भोजन खा लेने के कारण तुषानल मे अपना शरीर जला दिया था। यदि तुम ऐसा कर सके तो देखोगे, सारी जाति तुम्हारा चरण चूमेगी। स्वय तो तुम अपने शास्त्रो पर विश्वास नही करते और दूसरो का उन पर विश्वास कराना चाहते हो! अगर तुम समझते हो कि इस ज़माने मे वैसा नही कर सकते, तो अपनी दुर्बलता स्वीकार करके दूसरो की भी दुर्बलता क्षमा करो, दूसरी जातियो को उन्नत करो, उनकी सहायता करो, उन्हें वेद पढ़ने दो, ससार के अन्य किन्ही भी आर्यों के समकक्ष उन्हें भी आर्य बनने दो, और ऐ बगाल के ब्राह्मणो, तुम भी वैसे ही सदाशय आर्य बनो।

यह घृण्य वामाचार छोडो, जो देश का नाश कर रहा है। तुमने भारत के अन्यान्य भाग नही देखे। जब मैं देखता हूँ कि हमारे समाज मे कितना वामाचार फैला हुआ है, तब अपनी सस्कृति के समस्त अहकार के साथ यह (समाज) मेरी नज़रो मे अत्यन्त गिरा हुआ स्थान मालूम होता है। इन वामाचार सम्प्रदायो ने मधुमक्खियो की तरह हमारे बगाल के समाज को छा लिया है। वे ही जो दिन में गरज कर आचार के सम्बन्ध मे प्रचार करते हैं, रात को घोर पैशाचिक कृत्य करने से बाज़ नही आते, और अति भयानक ग्रन्थसमूह उनके कर्म के समर्थक है। घोर दुष्कर्म करने का आदेश उन्हे ये शास्त्र देते हैं। तुम बगालियो को यह विदित है। बगालियो के शास्त्र वामाचार-तन्त्र हैं। ये ग्रन्थ ढेरो प्रकाशित होते हैं, जिन्हे लेकर तुम अपनी सन्तानो के मन को विषाक्त करते हो, किन्तु उन्हें श्रुतियो की शिक्षा नही देते। ऐ कलकत्तावासियो, क्या तुम्हे लज्जा नही आती कि अनुवादसहित वामाचार-तन्त्रो का यह वीभत्स सग्रह तुम्हारे बालको और बालिकाओ के हाथ रखा जाय, उनका चित्त

विषमिश्रित हो और वे जन्म से यही धारणा लेकर बढ़ें कि हिन्दुओं के शास्त्र वे मायावाद ग्रन्थ हैं? यदि तुम शक्तिमान हो तो अपने बच्चों से उन्हें अलग रखो, और उन्हें यथार्थ शास्त्र वेद, गीता, उपनिषद् पढ़ने दो।

भारत के द्वैतवादी सम्प्रदायों के अनुसार सभी जीवात्माएँ अनन्त काल तक पृथक् रहेंगी। ईश्वर जगत् का निमित्त कारण है और उसने पहले से ही वर्तमान उपादान कारण से संसार की सृष्टि की। उधर अद्वैतवादियों के मत से ईश्वर संसार का निमित्त और उपादान दोनों कारण है। वह केवल संसार का स्रष्टा ही नहीं, किन्तु उसने अपने ही से संसार का सर्जन किया। यही अद्वैतवादियों का सिद्धान्त है। कुछ अधकचरे द्वैतवादी सम्प्रदाय हैं जिनका यह विश्वास है कि ईश्वर ने अपने ही भीतर से संसार की सृष्टि की और साथ ही वह विश्व से शाश्वत पृथक् भी है, तथा हर एक वस्तु चिर काल के लिए उस जगन्नियन्ता के शाश्वत अधीन है। ऐसे भी सम्प्रदाय हैं, जो यह मानते हैं कि ईश्वर ने अपने को उपादान बनाकर इस जगत् का उत्पादन किया और जीव अन्त में सान्त भाव छोड़कर अनन्त होते हुए निर्वाण प्राप्त करेंगे, परन्तु ये सम्प्रदाय लुप्त हो चुके हैं। अद्वैतवादियों का एक वह सम्प्रदाय जिसे कि तुम वर्तमान भारत में देखते हो, शंकर का अनुयायी है। शंकर का मत यह है कि माया के माध्यम से देखने के कारण ही ईश्वर संसार का निमित्त और उपादान दोनों कारण है, किन्तु वास्तव में नहीं। ईश्वर यह जगत् नहीं बना, बल्कि यह जगत् है ही नहीं, केवल ईश्वर ही है—वह सर्व जगन्नियन्ता। अद्वैत वेदान्त का यह मायावाद समझना अत्यन्त कठिन है। हमारे दार्शनिक विषय का यह बहुत ही कठिन अंश है, इसकी पर्यालोचना करने के लिए अब समय नहीं है। तुममें जो पश्चिमी दर्शनों से परिचित हैं, वे जानते हैं, इसका कुछ कुछ अंश काण्ट के दर्शन से मेल खाता है। परन्तु जिन्होंने काण्ट पर लिखे हुए प्रोफेसर मैक्समूलर के निबन्ध पढ़े हैं, उन्हें मैं सावधान करता हूँ कि उनके निबन्धों में एक बड़ी भारी भूल है। प्रोफेसर महोदय के मत में जो देश, काल और निमित्त हमारे ज्ञान के प्रतिबन्धक हैं, उन्हें पहले काण्ट ने आविष्कृत किया, परन्तु वास्तव में उनके प्रथम आविष्कर्ता शंकर हैं। शंकर ने देश, काल और निमित्त को माया के साथ अभिन्न रखकर उनका वर्णन किया है। सौभाग्य से शंकर के भाष्यों में ऐसे दो एक स्थल मुझे मिल गये। उन्हें मैंने अपने मित्र प्रोफेसर महोदय के पास भेज दिया। अतः काण्ट के पहले भी यह तत्त्व भारत में अज्ञात नहीं था। अस्तु, अद्वैत वेदान्तियों का यह मायावाद विचित्र सिद्धान्त है। उनके मत में जगत् केवल भ्रम ही तो है, यह जो भेद दृष्टिगोचर हो रहा है, वह केवल माया के कारण। यह एकत्व, यह एकमेवाद्वितीयम् ब्रह्म ही हमारा चरम लक्ष्य है और यहीं पर भारतीय और पाश्चात्य विचारों का चिर द्वन्द्व भी स्पष्ट है। हजारों वर्षों से भारत ने

मायावाद की घोषणा करते हुए ससार को चुनौती दी है और ससार की विभिन्न जातियो ने यह चुनौती स्वीकार भी की, जिसका फल यह हुआ कि वे पराभूत हो गयी हैं और तुम जीवित हो। भारत की घोषणा यह है कि ससार भ्रम है, इन्द्रजाल है, माया है, अर्थात् चाहे तुम मिट्टी से एक एक दाना बीनकर भोजन करो या चाहे तुम्हारे लिए सोने की थाली मे भोजन परोसा जाय, चाहे तुम महलो मे रहो, चाहे कोई महाशक्तिशाली महाराजाधिराज हो अथवा चाहे द्वार-द्वार का भिक्षुक, किन्तु परिणाम सभी का एक है और वह है मृत्यु, गति सभी की एक है, सभी माया है। यही भारत की प्राचीन सूक्ति है। वारम्वार भिन्न भिन्न जातियाँ सिर उठाती और इसके खडन करने की चेष्टा करती हैं, वे वढती हैं, भोगसाधन को वे अपना ध्येय वनाती हैं, उनके हाथ मे शक्ति आती है, पूर्णतया शक्ति का प्रयोग करती है, भोग की चरम सीमा को पहुँचती हैं और दूसरे ही क्षण वे विलुप्त हो जाती हैं। हम चिर काल से खडे हैं, क्योकि हम देखते है कि हर एक वस्तु माया है। महामाया के वच्चे सदा वचे रहते हैं, परन्तु भोग रूपी अविद्या के लाडले देखते ही देखते कूच कर जाते हैं।

यहाँ एक दूसरे विषय मे भी प्राच्य और पाश्चात्य विचार-प्रणाली मे भेद है। जिस तरह तुम जर्मन दर्शन मे हेगेल और शॉपेनहॉवर के मत देखते हो, बिल्कुल उसी तरह के विचार प्राचीन भारत मे भी मिलते हैं। परन्तु हमारे सौभाग्य से हेगेलीय मतवाद का उन्मूलन उसके अकुर-दशा मे ही हो गया था, हमारी जन्मभूमि मे उसे वढने और उसकी विषाक्त शाखा-प्रशाखाओ को फैलने नही दिया गया। हेगेल का एक मत यह है कि एकमात्र परम सत्ता अन्धकारमय और विशृखल है, और साकार व्यष्टि उसकी अपेक्षा श्रेष्ठ है अर्थात् अ-जगत् से (जगत् नही है, इस भाव से) जगत् (जगत् है यह भाव ) श्रेष्ठ है, मुक्ति से ससार श्रेष्ठ है। हेगेल का यही मूल भाव है, अतएव उनके मत मे तुम ससार मे जितना ही अवगाहन करोगे, जितनी ही तुम्हारी आत्मा जीवन के कर्मजालो से आवृत होगी, उतना ही तुम उन्नत होगे। पश्चिमवाले कहते हैं—क्या तुम देखते नही, हम कैसी बडी बडी इमारते उठाते हैं, सडकें साफ रखते हैं, हर तरह के सुख भोगते हैं ? इसके पीछे—प्रत्येक इन्द्रिय-भोग के पीछे—दु ख, वेदना, पैशाचिकता और घृणा-विद्वेष चाहे भले ही छिपे हो, किन्तु उससे कोई हानि नही।

दूसरी ओर हमारे देश के दार्शनिक पहले ही से यह घोषणा कर रहे हैं कि हर एक अभिव्यक्ति, जिसे तुम विकास कहते हो, उस अव्यक्त की अपने को व्यक्त करने की निरर्थक चेष्टा मात्र है। हे ससार के सर्वशक्तिशाली कारणस्वरूप, तुम छोटी छोटी गडहियो मे अपना स्वरूप देखने का वृथा प्रयत्न करते हो! कुछ दिनो के लिए यह प्रयत्न करके तुम समझोगे कि यह व्यर्थ था, और जहाँ से तुम आये हो, वही

छोड़ा करने की ठानोगे। यही वैराग्य है, और यही है धर्म का
बिना त्याग या वैराग्य के धर्म या नैतिकता का उदय
ही से धर्म का आरम्भ होता है और त्याग ही में
'त्याग करो, त्याग करो—इसके सिवा और दूसरा पथ नहीं है।'
न [illegible] त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।

'मुक्ति न सन्तानों से होती है, न धन से न कर्म से यह
से मिलता है!'

यही भारत के सब शास्त्रों का आदेश है। यह सच है कि कितने [illegible] महाराजाओं ने सिंहासन पर बैठे हुए भी संसार के बड़े बड़े त्यागियों के [illegible] निर्वाह किया है, परन्तु जनक जैसे श्रेष्ठ त्यागी को भी कुछ समय के लिए [illegible] सम्बन्ध छोड़ना पड़ा था। उनसे बड़ा त्यागी क्या और कोई था? [illegible] हम सभी जनक कहलाना चाहते हैं? हाँ वे जनक हैं—नंगे, भूखे, [illegible] के जनक। जनक शब्द उनके लिए केवल इसी अर्थ में आ सकता है। [illegible] जनक के समान उनमें ब्रह्मनिष्ठा नहीं है। वे हमारे आजकल के जनक हैं। ऐसे जनकत्व की मात्रा जरा कम करके सीधे रास्ते पर आओ। यदि तुम त्याग कर सको तो तुम्हें धर्म मिल सकता है। यदि तुम त्याग नहीं कर सकते तो तुम पूर्व से लेकर पश्चिम तक सारे संसार में जितनी पुस्तकें हैं उन्हें पढ़कर, समस्त पुस्तकालयों को निगलकर धुरन्धर पंडित हो सकते हो, परन्तु यदि तुम केवल कर्मकाण्ड में लगे रहे तो यह कुछ नहीं है, इसमें आध्यात्मिकता कहीं नहीं है। केवल त्याग के द्वारा ही इस अमृतत्व की प्राप्ति होती है। त्याग ही महाशक्ति है। जिसके भीतर इस महाशक्ति का आविर्भाव होता है, वह और की तो बात ही क्या विश्व की ओर नजर उठाकर नहीं देखता। उसी समय ब्रह्माण्ड उसके लिए गाय के खुर से बनाये हुए गड्ढे के समान नजर आता है—ब्रह्माण्डं गोष्पदायते।

त्याग ही भारत की पताका है। इसी पताका को समस्त जगत् में फहराकर, मरती हुई सभी जातियों को भारत यही एक शाश्वत विचार बारंबार प्रेषित कर, उन्हें सब प्रकार के अत्याचारों एवं अन्यायों के विरुद्ध सावधान कर रहा है। यह मानो ललकार कर कहे जा रहा है, 'सावधान, त्याग के पथ का, शान्ति के पथ का अवलम्बन करो नहीं तो मर जाओगे!' हे हिन्दुओ, इस त्याग की पताका को न छोड़ना—उसको और ऊँचा उठाओ। चाहे तुम दुर्बल भले ही हो और त्याग चाहे नहीं भी कर सको, परन्तु आदर्श को छोटा मत करो। हम दुर्बल हैं—हम संसार का त्याग नहीं कर सकते, परन्तु ढोंग रचने के इरादे से मत रहो, शास्त्रों का अर्थ तोड़कर [illegible] हुए अज्ञानी लोगों की आँखों में धूल मत झोंको। ऐसा मत [illegible]

दुर्बल हैं? कारण, यह त्याग का आदर्श अत्यन्त महान् है। क्या हानि है, यदि लडाई मे लाखो गिर जायँ, पर दस सिपाही या केवल दो एक ही वीर विजयी होकर लौटें। युद्ध मे जिन लाखो लोगो को वीरगति मिलती है, वे सचमुच धन्य हैं।—क्योकि उनके शोणितरूपी मूल्य से विजय-लाभ होता है, एक को छोडकर सारे वैदिक सम्प्रदायो ने इस त्याग ही को अपना एकमात्र आदर्श बनाया है। केवल बम्बई प्रान्त के वल्लभाचार्य सम्प्रदाय ने वैसा नही किया, और तुममे से अनेक को विदित है कि जहाँ त्याग नही, वहाँ अन्त मे क्या दशा होती है। इस त्याग के आदर्श की रक्षा के लिए यदि हमे कट्टरता और निरी कट्टरता स्वीकार करनी पडे, भस्ममडित ऊर्ध्वबाहु जटाजूटधारियो को स्थान देना पडे, तो वह भी अच्छा है। कारण, यद्यपि वे अस्वाभाविक हो सकते हैं तथापि पुरुषत्व का लोप करनेवाली जो विलासिता भारत मे घुसकर हमारा खून पी रही है, सारी जाति को कपटाचरण की शिक्षा दे रही है, उस विलासिता के स्थान मे त्याग का आदर्श रखकर समग्र जाति को सावधान करने के लिए वे हमारे लिए वाछनीय हैं। अतएव हमे थोडी त्याग-तपस्या चाहिए। प्राचीन काल मे भारत मे त्याग ही की विजय थी, अब भी भारत मे इसे विजय प्राप्त करना है। यह त्याग भारत के आदर्शों मे अब भी सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च है। यह बुद्ध की भूमि, रामानुज की भूमि, रामकृष्ण परमहस की भूमि, त्याग की भूमि, वह भूमि, जहाँ प्राचीन काल से कर्मकाड के विरुद्ध प्रतिवाद किया गया और जहाँ आज भी ऐसे सैकडो महापुरुष हैं जिन्होने सब विषयो का त्याग कर दिया और जीवन्मुक्त बने बैठे हैं, क्या वह भूमि अपने आदर्श को छोड देगी? कदापि नही। यहाँ ऐसे मनुष्य रह सकते हैं, जिनका मस्तिष्क पश्चिमी विलासिता के आदर्श से विकृत हो गया है, यहाँ ऐसे हजारो नही, लाखो मनुष्य रह सकते हैं, जो विलास मद मे चूर हो रहे हैं, जो पश्चिम के शाप मे—इन्द्रिय-परतत्रता मे—ससार के शाप मे डूबे हुए हैं, किन्तु इतने पर भी हमारी मातृभूमि मे हजारो ऐसे भी होगे, धर्म जिनके लिए शाश्वत सत्य है और जो जरूरत पडने पर फलाफल का विचार किये बिना ही सब कुछ त्याग देने के लिए सदा तैयार हो जायँगे।

हमारे इन सब सम्प्रदायो मे एक और सामान्य आदर्श है। उसको भी मैं तुम्हारे सम्मुख रखना चाहता हूँ। यह भी एक व्यापक विषय है। यह अद्वितीय विचार केवल भारत ही मे विशेष रूप से पाया जाता है कि धर्म का साक्षात्कार करना चाहिए। **नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।**—'इस आत्मा को न कोई वाग्बल से प्राप्त कर सकता है, न बुद्धि-कौशल से और न अधिक शास्त्राध्ययन से।' इतना ही नही, ससार मे केवल हमारे ही शास्त्र ऐसे हैं, जो घोषणा करते हैं कि आत्मा को कोई न तो शास्त्रो का पाठ करके प्राप्त कर सकता है, न वार्ता

काँटा चलने की ठानोगे। यही वैराग्य है, और यही है बिना त्याग या वैराग्य के धर्म या नैतिकता कम [illegible] ही से धर्म का आरम्भ होता है और त्याग ही में उसकी [illegible]

'त्याग करो त्याग करो—इसके सिवा और दूसरा पथ नहीं है'।

न [illegible] त्यागेनैकेन अमृतत्वमानशुः।

'मुक्ति न सन्तानों से होती है, न धन से न कर्म से वह [illegible] से मिलता है'!

यही भारत के सब शास्त्रों का आदेश है। यह सच है कि कितने [illegible] महाराजों ने सिंहासन पर बैठे हुए भी संसार के बड़े बड़े त्यागियों के [illegible] निर्वाह किया है परन्तु जनक जैसे श्रेष्ठ त्यागी को भी कुछ समय के लिए [illegible] सम्बन्ध छोड़ना पड़ा था। उनसे बड़ा त्यागी क्या और कोई था? परन्तु [illegible] हम सभी जनक कहलाना चाहते हैं? हाँ वे जनक हैं—नंगे भूखे, [illegible] के जनक। जनक शब्द उनके लिए केवल इसी अर्थ में आ सकता है। [illegible] जनक के समान उनमें ब्रह्मनिष्ठा नहीं है। वे हमारे आजकल के जनक हैं। [illegible] जनकत्व की मात्रा जरा कम करके सीधे रास्ते पर आओ। यदि तुम [illegible] सको तो तुम्हें धर्म मिल सकता है। यदि तुम त्याग नहीं कर सकते तो तुम पूर्व से लेकर पश्चिम तक सारे संसार में जितनी पुस्तकें हैं उन्हें पढ़कर, [illegible] पुस्तकालयों को निगलकर धुरन्धर पंडित हो सकते हो परन्तु यदि तुम केवल [illegible] कर्मकाण्ड में लगे रहे तो यह कुछ नहीं है, इसमें आध्यात्मिकता कहीं नहीं है। केवल त्याग के द्वारा ही इस अमृतत्व की प्राप्ति होती है। त्याग ही महाशक्ति है, जिसके भीतर इस महाशक्ति का आविर्भाव होता है, वह और की तो बात ही क्या विश्व की ओर नजर उठाकर नहीं देखता। तभी सारा ब्रह्माण्ड उसके लिए गाय के खुर से बनाये हुए गड्ढे के समान नजर आता है—ब्रह्माण्डं गोष्पदायते।

त्याग ही भारत की पताका है। इसी पताका को समग्र जगत् में फहराकर, मरती हुई सभी जातियों को भारत यही एक शाश्वत विचार बारंबार [illegible] कर, सभी तरह प्रकार के अत्याचारों एवं असाधुताओं के विरुद्ध सावधान कर रहा है। वह मानो ललकार कर उनसे कह रहा है, 'सावधान त्याग के पथ का [illegible] के पथ का [illegible] करो नहीं तो मर जाओगे।' ऐ हिन्दुओ इस त्याग की पताका को न छोड़ना—इसको और ऊँचा उठाओ। चाहे तुम दुर्बल भले ही हो, और त्याग चाहे भले ही न कर सको, परन्तु आदर्श को छोटा मत करो। हम दुर्बल हैं—हम संसार का त्याग नहीं कर सकते परन्तु ढोंग रचने के इरादे में मत रहो, शास्त्रों का अर्थ [illegible] की दुहाई देते हुए अज्ञानी लोगों की आँखों में धूल मत झोंको। फिर यह, [illegible] लिए यह

दुर्बल हैं? कारण, यह त्याग का आदर्श अत्यन्त महान् है। क्या हानि है, यदि लडाई मे लाखो गिर जायँ, पर दस सिपाही या केवल दो एक ही वीर विजयी होकर लौटें। युद्ध मे जिन लाखो लोगो को वीरगति मिलती है, वे सचमुच धन्य हैं।—क्योकि उनके शोणितरूपी मूल्य से विजय-लाभ होता है, एक को छोडकर सारे वैदिक सम्प्रदायो ने इस त्याग ही को अपना एकमात्र आदर्श बनाया है। केवल बम्बई प्रान्त के वल्लभाचार्य सम्प्रदाय ने वैसा नही किया, और तुममे से अनेक को विदित है कि जहाँ त्याग नही, वहाँ अन्त मे क्या दशा होती है। इस त्याग के आदर्श की रक्षा के लिए यदि हमे कट्टरता और निरी कट्टरता स्वीकार करनी पडे, भस्ममडित ऊर्ध्वबाहु जटाजूटधारियो को स्थान देना पडे, तो वह भी अच्छा है। कारण, यद्यपि वे अस्वाभाविक हो सकते हैं तथापि पुरुषत्व का लोप करनेवाली जो विलासिता भारत मे घुसकर हमारा खून पी रही है, सारी जाति को कपटाचरण की शिक्षा दे रही है, उस विलासिता के स्थान मे त्याग का आदर्श रखकर समग्र जाति को सावधान करने के लिए वे हमारे लिए वाछनीय हैं। अतएव हमे थोडी त्याग-तपस्या चाहिए। प्राचीन काल मे भारत मे त्याग ही की विजय थी, अब भी भारत मे इसे विजय प्राप्त करना है। यह त्याग भारत के आदर्शों मे अब भी सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च है। यह बुद्ध की भूमि, रामानुज की भूमि, रामकृष्ण परमहस की भूमि, त्याग की भूमि, वह भूमि, जहाँ प्राचीन काल से कर्मकाड के विरुद्ध प्रतिवाद किया गया और जहाँ आज भी ऐसे सैकडो महापुरुष हैं जिन्होने सब विषयो का त्याग कर दिया और जीवन्मुक्त बने बैठे हैं, क्या वह भूमि अपने आदर्श को छोड देगी? कदापि नही। यहाँ ऐसे मनुष्य रह सकते हैं, जिनका मस्तिष्क पश्चिमी विलासिता के आदर्श से विकृत हो गया है, यहाँ ऐसे हजारो नही, लाखो मनुष्य रह सकते हैं, जो विलास मद मे चूर हो रहे हैं, जो पश्चिम के शाप मे—इन्द्रिय-परतत्रता मे—ससार के शाप मे डूबे हुए हैं, किन्तु इतने पर भी हमारी मातृभूमि मे हजारो ऐसे भी होंगे, धर्म जिनके लिए शाश्वत सत्य है और जो जरूरत पडने पर फलाफल का विचार किये विना ही सब कुछ त्याग देने के लिए सदा तैयार हो जायँगे।

हमारे इन सब सम्प्रदायो मे एक और सामान्य आदर्श है। उसको भी मैं तुम्हारे सम्मुख रखना चाहता हूँ। यह भी एक व्यापक विषय है। यह अद्वितीय विचार केवल भारत ही मे विशेष रूप से पाया जाता है कि धर्म का साक्षात्कार करना चाहिए। **नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।**—'इस आत्मा को न कोई वाग्बल से प्राप्त कर सकता है, न बुद्धि-कौशल से और न अधिक शास्त्राध्ययन से।' इतना ही नही, ससार मे केवल हमारे ही शास्त्र ऐसे हैं, जो घोषणा करते है कि आत्मा को कोई न तो शास्त्रों का पाठ करके प्राप्त कर सकता है, न वार्ता

से और न व्याख्यान ही की जाती है किन्तु यह ज्ञान गुरु से शिष्य को मिलता है। जब शिष्य में अन्तर्दृष्टि होती है का स्पष्ट बोध हो जाता है और इस तरह वह प्रत्यक्ष होता है।

एक बात और है। बंगाल में एक अद्भुत रीति का कुलगुरु प्रथा। यह यह कि मेरा बाप तुम्हारा गुरु था, अब मेरा बाप तुम्हारे बाप का गुरु था, इसलिए मैं तुम्हारा गुरु हूँ। कहना चाहिए, इस सम्बन्ध में श्रुतिसम्मत अर्थ यह है—गुरु का रहस्य समझते हैं, कोई किताबी कीड़ा नहीं, वैयाकरण [illegible] नहीं, किन्तु वे जिन्हें वेदों के यथार्थ तात्पर्य का ज्ञान है। [illegible] तो इस प्रकार है, यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न [illegible] —'जिस प्रकार चन्दन का भार ढोनेवाला गधा केवल चन्दन के भार [illegible] है, परन्तु उसके मूल्यवान् गुणों को नहीं।' ऐसे मनुष्यों की हमें [illegible] यदि उन्होंने स्वयं धर्मोपलब्धि नहीं की, तो वे हमें कौन सी शिक्षा दे [illegible] जब मैं इस कलकत्ता शहर में एक बालक था, तब धर्म की [illegible] यहाँ वहाँ जाया करता था और एक लम्बा व्याख्यान सुनकर वक्ता [illegible] पूछता था, क्या आपने परमात्मा को देखा है? ईश्वर-दर्शन के नाम [illegible] आश्चर्य का ठिकाना न रहता और एकमात्र श्री रामकृष्ण परमहंस [illegible] जिन्होंने मुझसे कहा, 'हाँ, हमने ईश्वर को देखा है।' उन्होंने केवल इतना ही [illegible] किन्तु यह भी कहा, 'हम तुम्हें भी ईश्वर-दर्शन के मार्ग पर ला सकते हैं।' शास्त्रों के पाठ को तोड़-मरोड़कर मनोष्ट अर्थ कर लेने ही से कोई गुरु नहीं हो जाता।

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद् भुक्तये न तु मुक्तये॥
(विवेक चूड़ामणि ५८)

—हर तरह से शास्त्रों की व्याख्या कर लेने का कौशल केवल पंडितों के मनोरंजन के लिए है, मुक्ति के लिए नहीं?

जो 'श्रोत्रिय' हैं—वेदों का रहस्य समझते हैं, और जो 'अवृजिन' हैं—निष्पाप हैं और 'अकामहत' हैं—जिन्हें काम छू भी नहीं गया है, जो तुम्हें शिक्षा देकर कुछ अर्थप्राप्ति की आशा नहीं रखते वे ही सन्त हैं, वे ही साधु हैं। [illegible] आकर हर एक पेड़-पौधे को कलियों और कलियों से [illegible]

पौधे से प्रतिदान नही माँगता, क्योकि भलाई करना उसका स्वाभाविक धर्म है, उसी प्रकार वह आता है।

**तीर्णा स्वय भीमभवार्णव जना अहेतुनान्यानपि तारयन्त ।**—'वे इस भीषण भवसागर के उस पार स्वय भी चले गये हैं और बिना किसी लाभ की आशा किये दूसरो को भी पार करते हैं।' ऐसे ही मनुष्य गुरु हैं, और ध्यान रखो दूसरा कोई गुरु नही कहा जा सकता। क्योकि--

**अविद्यायामन्तरे वर्तमाना स्वय धीरा पडितम्मन्यमाना ।**
**जङ्घन्यमाना परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा ॥**[१]

—'अविद्या के अन्धकार मे डूबे हुए भी अपने को अहकारवश सुधी और महापडित समझनेवाले ये मूर्ख दूसरो की सहायता करना चाहते हैं, परन्तु ये कुटिल मार्ग मे ही भ्रमण किया करते हैं। अन्धे का हाथ पकडकर चलनेवाले अन्धे की तरह ये गुरु और शिष्य दोनो ही गड्ढे मे गिरते हैं।' यही वेदो की उक्ति है। इस उक्ति को अपनी वर्तमान प्रथा से मिलाओ। तुम वेदान्ती हो, तुम सच्चे हिन्दू हो, तुम परम्परानिष्ठ धर्म के माननेवाले हो। मैं तुम्हे और भी सच्चा परम्परानिष्ठ धर्मी बनाना चाहता हूँ। तुम सनातन मार्ग का जितना ही अवलम्बन करोगे, उतने ही बुद्धिमान बनोगे, और जितना ही तुम आजकल की कट्टरता के फेर मे पडोगे, उतने ही तुम मूर्ख बनोगे। तुम अपने उसी अति प्राचीन सनातन पथ से चलो, क्योकि उस समय के शास्त्रो के हर एक शब्द मे सबल, स्थिर और निष्कपट हृदय की छाप लगी हुई है, उसका हर एक स्वर अमोघ है। इसके बाद राष्ट्र का पतन शुरू हुआ—शिल्प मे, विज्ञान मे, धर्म मे, हर एक विषय मे राष्ट्रीय अवनति का आरम्भ हो गया। उसके कारणो पर विचार-विमर्श करने का अब अवकाश नही है, परन्तु अवनति के काल मे जो पुस्तके लिखी गयी हैं, उन सबमे इसी व्याधि और राष्ट्रीय पतन के प्रमाण मिलते हैं—राष्ट्रीय ओज के बदले उनसे केवल रोने की आवाज़ सुनायी पडती है। जाओ, जाओ—उस प्राचीन समय के भाव लाओ जब राष्ट्रीय शरीर मे वीर्य और जीवन था। तुम फिर वीर्यवान बनो, उसी प्राचीन झरने का पानी पिओ—भारत को पुनर्जीवित करने का एकमात्र उपाय अब यही है।

अद्वैतवादियो के मत मे हम लोगो का व्यक्तित्व, जो इस समय विद्यमान है, भ्रम मात्र है। समग्र ससार के लिए इस बात को ग्रहण कर पाना बहुत ही कठिन रहा है। जैसे ही तुम किसी से कहो कि वह 'व्यक्ति' नही है, वह इतना डर जाता है

---

१ कठोपनिषद् २।५ ॥

कि उसका अपना व्यक्तित्व चाहे वह कैसा ही क्यों
अद्वैतवादी कहते हैं कि व्यक्तित्व जैसी वस्तु कभी रहती ही
पल परिवर्तित हो रहे हो। कभी तुम बालक थे तब तुम
इस समय तुम युवक हो अब दूसरी तरह के विचार करते
जाओगे तब दूसरी ही तरह सोचोगे। हर एक व्यक्ति
यह सच है तो तुम्हारा निजी व्यक्तित्व कहाँ रह गया ?
व्यक्तित्व न शरीर के सम्बन्ध में रह जाता है, न मन के सम्बन्ध में
के सम्बन्ध में। इनके परे यह आत्मा ही है। और अद्वैतवादी कहते
स्वयं ब्रह्म है दो अनन्त कदापि नहीं रह सकते।
स्वरूप है। सच तो यह है कि हम विचारशील प्राणी हैं, सब
लेना चाहते हैं। अच्छा तो तर्क या युक्ति है क्या चीज ?
पदार्थों को क्रमशः ऊँची से ऊँची श्रेणी में वर्गीकृत कर अन्त में किसी
पहुँचाना जिसके ऊपर फिर उसकी गति न हो।
तभी मिल सकता है, जब वह असीम की श्रेणी तक पहुँचायी जायगी। [illegible]
को लेकर तुम उसका विश्लेषण करते रहो परन्तु जब तक तुम उसे [illegible]
अनन्त तक नहीं पहुँचाते तब तक तुम्हें शान्ति नहीं मिल सकती और [illegible]
कहते हैं अस्तित्व केवल इसी अनन्त का है और सब माया है, किसी भी [illegible]
सत्ता नहीं। कोई भी जड़ वस्तु क्यों न हो उसमें जो यथार्थ सत्ता है, वह यही [illegible]
हम यही ब्रह्म हैं और नामरूप आदि जितने हैं सब माया है। नाम और रूप [illegible]
तो तुम और हम सब एक हो जायँगे। तुम्हें इस 'अहम्' (मैं) शब्द को अच्छी तरह [illegible]
जाना चाहिए। प्रायः लोग कहते हैं 'यदि मैं ब्रह्म हूँ तो जो मेरे जी में आये, [illegible]
मैं क्यों नहीं कर सकता ?' यहाँ इस शब्द का व्यवहार दूसरे ही अर्थ में किया जा
रहा है। जब तुम अपने को बद्ध समझ रहे हो तब तुम आत्मस्वरूप ब्रह्म, जिसे
कोई अभाव नहीं जो अन्तर्ज्योति है, नहीं रह गये। वह अन्तरात्मा है, आत्मतृप्त
है, वह कुछ भी नहीं चाहता उसमें कोई कामना नहीं है, वह सम्पूर्ण निर्भय और
सम्पूर्ण स्वाधीन है। वही ब्रह्म है। उसी ब्रह्मस्वरूप में हम सभी एक हैं।

अतः द्वैतवादियों और अद्वैतवादियों में यह बड़ा अन्तर प्रतीत होता है। तुम
देखोगे शंकराचार्य जैसे बड़े बड़े भाष्यकारों ने भी अपने मत की पुष्टि के लिए,
जगह जगह पर शास्त्रों का ऐसा अर्थ किया है जो मेरी समझ में समीचीन नहीं है।
रामानुज ने भी कहीं कहीं शास्त्रों का ऐसे ढंग से अर्थ किया है कि वह [illegible] समझ
में नहीं आता। हमारे पण्डितों तक की यह धारणा है कि इन
में एक ही सम्प्रदाय सत्य है, बाकी सब झूठे हैं

**एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**—'सत्ता एक ही है, परन्तु मुनियो ने भिन्न भिन्न नामो से उसका वर्णन किया है।' और इस अत्यन्त अद्भुत भाव को हमे अब भी दुनिया को देना है। हमारे जातीय जीवन का मूल मत्र यही है, और **एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**—इस मूल मत्र को चरितार्थ करने मे ही हमारी जाति की समग्र जीवन-समस्या का समाधान है। भारत मे कुछ थोडे से ज्ञानियो के अतिरिक्त, मेरा मतलब है, बहुत कम आध्यात्मिक व्यक्तियो को छोडकर हम सब सर्वदा ही इस तत्त्व को भूल जाते हैं। हम इस महान् तत्त्व को सदा भूल जाते हैं और तुम देखोगे, अधिकाश पडित, लगभग ९८ फी सदी, इस मत के पोषक हैं कि या तो अद्वैतवाद सत्य है, अथवा विशिष्टाद्वैतवाद अथवा द्वैतवाद, और यदि तुम पाँच मिनट के लिए वाराणसी धाम के किसी घाट पर जाकर बैठो, तो तुम्हे मेरी बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जायगा। तुम देखोगे कि इन भिन्न भिन्न सम्प्रदायो का मत लेकर लोग निरन्तर लड-झगड रहे हैं।

हमारे समाज और पडितो की ऐसी ही दशा है। इस परिस्थिति मे एक ऐसे महापुरुष का आविर्भाव हुआ जिनका जीवन उस सामजस्य की व्याख्या था, जो भारत के सभी सम्प्रदायो का आधारस्वरूप था और जिसको उन्होंने कार्यरूप मे परिणत कर दिखाया। इस महापुरुष से मेरा मतलब श्री रामकृष्ण परमहस से है। उनके जीवन से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये दोनो मत आवश्यक हैं। ये गणितज्योतिष के भूकेन्द्रिक और सूर्यकेन्द्रिक मतो की तरह है। जब बालक को ज्योतिष की शिक्षा दी जाती है, तब उसे भूकेन्द्रिक मत ही पहले सिखलाया जाता है और वह ज्योतिर्विज्ञान के प्रश्नो को भूकेन्द्रिक सिद्धान्त पर घटित करता है। परन्तु जब वह ज्योतिष के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वो का अध्ययन करता है, तब सूर्यकेन्द्रिक मत की शिक्षा उसके लिए आवश्यक हो जाती है। एव वह पहले से और अच्छा समझता है। पचेन्द्रियो मे फँसा हुआ जीव स्वभावत द्वैतवादी होता है। जब तक हम पचेन्द्रियो मे पडे हैं, तब तक हम सगुण ईश्वर ही देख सकते है—सगुण ईश्वर के सिवा और दूसरा भाव हम नही देख सकते। हम ससार को ठीक इसी रूप मे देखेंगे। रामानुज कहते हैं, "जब तक तुम अपने को देह, मन या जीव सोचोगे तब तक तुम्हारे ज्ञान की हर एक क्रिया मे जीव, जगत् और इन दोनो के कारणस्वरूप वस्तुविशेष का ज्ञान रहेगा।" परन्तु मनुष्य के जीवन मे ऐसा भी समय आता है, जब शरीर-ज्ञान बिल्कुल चला जाता है, जब मन भी क्रमश. सूक्ष्मानुसूक्ष्म होता हुआ प्राय अन्तर्हित हो जाता है, जब देहबुद्धि मे डाल देनेवाली भावना, भीति और दुर्बलता सभी मिट जाते हैं। तभी—केवल तभी उस प्राचीन महान् उपदेश की सत्यता समझ मे आती है। वह उपदेश क्या है?

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥
(

—'जिनका मन साम्यभाव में अवस्थित है, उन्होंने यहीं जन्म को जीत लिया है। चूंकि ब्रह्म निर्दोष और सर्वत्र सम है, में अवस्थित हैं।

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥
(गीता १३।२८)

—'सर्वत्र ईश्वर को सम भाव से सर्वत्र अवस्थित देखते हुए वे आत्मा [illegible] की हिंसा नहीं करते, अतः परम गति को प्राप्त होते हैं।

# अलमोड़ा-अभिनन्दन का उत्तर

स्वामी जी के अल्मोडा पहुँचने पर वहाँ की जनता ने उन्हें निम्नलिखित मान-पत्र भेंट किया

**महात्मन्,**

जिस समय से हम अल्मोडा-निवासियो ने यह सुना कि पाश्चात्य देशो मे आध्यात्मिक दिग्विजय के पश्चात् आप इग्लैण्ड से अपनी मातृभूमि भारत फिर वापस आ रहे हैं, उस समय से हम सब आपके दर्शन करने को स्वभावत बडे लालायित थे, और सर्वशक्तिमान परमेश्वर की कृपा से आखिर आज वह शुभ घडी आ गयी। भक्तशिरोमणि कविसम्राट् तुलसीदास ने कहा भी है, **जापर जाकर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलहि न कछु सन्देहू।** और वही आज चरितार्थ भी हो गया। आज हम सब परम श्रद्धा तथा भक्ति से आपका स्वागत करने को यहाँ एकत्र हुए हैं और हमे हर्ष है कि इस नगर मे अनेक कष्ट उठाकर एक बार[1] फिर पधारकर आपने हम सब पर वडी कृपा की है। आपकी इस कृपा के लिए धन्यवाद देने को हमारे पास शब्द भी नही हैं। महाराज, आप धन्य हैं और आपके वे पूज्य गुरुदेव भी धन्य हैं, जिन्होंने आपको योगमार्ग की दीक्षा दी। यह भारत-भूमि धन्य है, जहाँ इस भयावह कलियुग मे भी आप जैसे आर्यवशियो के नेता विद्यमान हैं। आपने अति अल्पावस्था मे ही अपनी सरलता, निष्कपटता, महच्चरित्र, सर्वभूतानुकम्पा, कठोर साधना, आचरण और ज्ञानोपदेश की चेष्टा द्वारा समस्त ससार मे अक्षय यश लाभ किया है और उस पर हमे गर्व है।

यदि सच पूछा जाय तो आपने वह कठिन कार्य कर दिखाया है, जिसका बीडा इस देश मे श्री शकराचार्य के समय से फिर किसीने नही उठाया। क्या हम मे से किसीने कभी यह स्वप्न मे भी आशा की थी कि प्राचीन भारतीय आर्यों की एक सन्तान केवल अपनी तपस्या के वल पर इग्लैण्ड तथा अमेरिका के विद्वान् लोगो को यह सिद्ध कर दिखायेगी कि प्राचीन हिन्दू धर्म अन्य सब धर्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। शिकागो की विश्व-धर्म-महासभा मे ससार के विभिन्न धर्म-प्रतिनिधियो के

---

१ पाश्चात्य देशो मे जाने से अनेक वर्ष पहले हिमालय-भ्रमणकाल मे स्वामी जी यहाँ पधारे थे।

सम्मुख जो वहाँ एकत्र थे आपने भारतीय सनातन धर्म से सिद्ध कर दिखाया कि उन सबकी आँखें खुल गयीं। उन विद्वानों ने अपने अपने धर्म की श्रेष्ठता अपने अपने ढंग से खूब [illegible] आप उन सबसे आगे निकल गये। आपने यह पूर्ण रूप से सिद्ध [illegible] धर्म का मुकाबला संसार का कोई भी धर्म नहीं कर सकता [illegible] परन्तु उपर्युक्त महाद्वीपों के भिन्न भिन्न स्थानों पर वैदिक ज्ञान [illegible] आपने वहाँ के बहुत से विद्वानों का ध्यान प्राचीन आर्य-धर्म तथा [illegible] आकर्षित कर दिया। इंग्लैण्ड में भी आपने प्राचीन हिन्दू धर्म का [illegible] कर दिया है जिसका अब वहाँ से हटना असम्भव है।

आज तक यूरोप तथा अमेरिका के आधुनिक सभ्य राष्ट्र हमारे [illegible] स्वरूप से नितान्त अनभिज्ञ थे परन्तु आपने अपनी आध्यात्मिक [illegible] उनकी आँखें खोल दी और उन्हें अब यह मालूम हो गया है कि [illegible] धर्म जिसे वे अज्ञानवश 'पाखंडियों की रूढ़ियों का धर्म अथवा केवल मूर्ख [illegible] पोथों का ढेर' ही समझा करते थे अमूल्य हीरों की खान है। वस्तुतः,

> वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतान्यपि।
> एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च॥

—'सौ मूर्ख पुत्रों की अपेक्षा एक ही गुणी पुत्र अच्छा है, एक ही चन्द्रमा अंधकार का विनाश करता है, तारागण नहीं।' वास्तव में आप जैसे साधु तथा धार्मिक पुरुष का जीवन ही संसार के लिए कल्याणकर है और भारत माता को अपनी इस गिरी हुई दशा में आप जैसी पुण्यात्मा सन्तानों से ही सान्त्वना मिल रही है। बहुत से आज तक कितने ही लोग समुद्र के इस पार से उस पार गये हैं, परन्तु केवल आपने ही अपनी पूर्व सुकृति के बल से हमारे इस प्राचीन हिन्दू धर्म की वास्तविकता समुद्र के पार अन्य देशों में सिद्ध कर दिखलायी। [illegible] सर्वत्र आपने मानव जाति को आध्यात्मिकता का ज्ञान कराना ही अपने जीवन का ध्येय बना लिया है और धार्मिक ज्ञान का उपदेश देने के लिए आप सदैव ही प्रस्तुत हैं।

हमें यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि यहाँ हिमालय की गोद में आपका विचार एक मठ स्थापित करने का है और हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि आपका यह उद्देश्य सफल हो। शंकराचार्य ने भी अपनी आध्यात्मिक दिग्विजय के पश्चात् भारत के प्राचीन हिन्दू धर्म के रक्षार्थ हिमालय में बदरिकाश्रम में एक मठ स्थापित किया था। इसी प्रकार यदि आपकी भी इच्छा पूर्ण हो जाय तो इससे भारतवर्ष का बड़ा हित होगा। इस मठ के स्थापित हो जाने से हम कुमायूँ निवासियों को बड़ा

आध्यात्मिक लाभ होगा और फिर हम इस बात का पूरा यत्न करेंगे कि हमारा प्राचीन धर्म हमारे बीच मे से धीरे धीरे लुप्त न हो जाय।

आदि काल से भारतवर्ष का यह प्रदेश तपस्या की भूमि रहा है। भारतवर्ष के बडे बडे ऋषियो ने अपना समय इसी स्थान पर तपस्या तथा साधना मे बिताया है, परन्तु वह तो अब पुरानी बात हो गयी और हमे पूर्ण विश्वास है कि यहाँ मठ की स्थापना करके कृपया आप हमे उसका फिर अनुभव करा देंगे। यही वह पुण्य-भूमि है जो भारतवर्ष भर मे पवित्र मानी जाती थी तथा यही सच्चे धर्म, कर्म, साधना तथा सत्य का क्षेत्र था, यद्यपि आज समय के प्रभाव से वे सब बाते नष्ट होती जा रही हैं। और हमे विश्वास है कि आपके शुभ प्रयत्नो द्वारा यह प्रदेश फिर प्राचीन धार्मिक क्षेत्र मे परिणत हो जायगा।

महाराज, हम शब्दो द्वारा प्रकट नही कर सकते कि आपके यहाँ पधारने से हमको कितना हर्ष हुआ है। ईश्वर आपको चिरजीवी करे, आपको पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करे तथा आपका जीवन परोपकारी हो। आपकी आध्यात्मिक शक्तियो की उत्तरोत्तर उन्नति हो, जिससे आपके प्रयत्नो द्वारा भारतवर्ष की इस दुरवस्था का शीघ्र ही अन्त हो जाय।

लाला बदरी शा की ओर से पडित हरिनाम पाडे ने और एक मानपत्र पढा। एक अन्य पडित जी ने भी इस अवसर पर एक सस्कृत मानपत्र पढा। जितने दिन स्वामी जी अल्मोडे मे थे, उतने दिन वे शा जी के यहाँ अतिथि के रूप मे रहे थे।

स्वामी जी ने मानपत्रो का निम्नलिखित उत्तर दिया

## स्वामी जी का भाषण

यह स्थान हमारे पूर्वजो के स्वप्न का देश है, जिसमे भारत जननी श्री पार्वती जी ने जन्म लिया था। यह वही पवित्र स्थान है, जहाँ भारतवर्ष का प्रत्येक यथार्थ सत्य-पिपासु व्यक्ति अपने जीवन-काल के अन्तिम दिन व्यतीत करना चाहता है। इसी दिव्य स्थान के पहाडो की चोटियो पर, इसकी गुफाओ के भीतर तथा इसके कल-कल बहनेवाले झरनो के तट पर महर्षियो ने अनेकानेक गूढ भावो तथा विचारो को सोच निकाला है, उनका मनन किया है। और आज हम देखते हैं कि उन विचारो का केवल एक अश ही इतना महान् है कि उस पर विदेशी तक मुग्ध हैं तथा ससार के धुरधर विद्वानो एव मनीषियो ने उसे अतुलनीय कहा है। यह वही स्थान है, जहाँ मैं बचपन से ही अपना जीवन व्यतीत करने की सोच रहा हूँ और जैसा तुम सब जानते हो मैंने कितनी ही बार इस बात की चेष्टा की है कि मैं यहाँ रह सकूँ। परन्तु उपयुक्त समय के न आने से, तथा मेरे सम्मुख बहुत सा कार्य

होने के कारण मैं इस पवित्र स्थान में निवास
कि मैं अपने जीवन के शेष दिन इसी गिरिराज में
अनेक ऋषि रह चुके हैं, जहाँ दर्शन का जन्म हुआ
मैं यह सब उस ढंग से भले न कर
मेरी दिली इच्छा है कि मैं पूर्ण शान्ति से तथा छिपा
रहूँ—लेकिन हाँ इतनी आशा जरूर है तथा मैं प्रार्थना
भी करता हूँ कि संसार के अन्य सब स्थानों को छोड़
यहीं व्यतीत होंगे।

इस पवित्र प्रदेश के निवासी बन्धुओ, तुम लोगों ने मेरे
हुए छोटे से काम के लिए कृपापूर्वक जो प्रशंसासूचक शब्द
तुम्हें अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ। परन्तु इस समय मेरा मन
किसी देश के कार्य के सम्बन्ध में कुछ भी कहना नहीं चाहता। यहाँ
जैसे गिरिराज की एक चोटी के बाद दूसरी चोटी मेरी दृष्टि के
मेरी कार्य करने की समस्त इच्छाएँ तथा भाव भी मेरे
हुए वे धीरे धीरे शान्त से होने लगे और इस विषय पर
कि क्या कार्य हुआ है तथा भविष्य में क्या कार्य होगा मेरा मन
शाश्वत भाव की ओर खिंच गया जिसकी शिक्षा हमें गिरिराज हिमालय
से देता रहा है, जो इस स्थान के वातावरण में भी प्रतिध्वनित हो रहा है,
जिसका निनाद मैं आज भी यहाँ की कलकलनादिनी सरिताओं में सुनता हूँ, और
वह भाव है—त्याग।

सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्—'इस संसार में प्रत्येक
वस्तु में भय भरा है, यह भय केवल वैराग्य से ही दूर हो सकता है, इसीसे मनुष्य
निर्भय हो सकता है।' सचमुच यह वैराग्य का ही स्थान है। मित्रो, अब मेरा
समय भी कम है तथा परिस्थिति भी ऐसी नहीं है कि मैं तुम्हारे समक्ष विस्तार से भाषण
कर सकूँ। अतएव मैं यही कहकर अपना भाषण समाप्त करता हूँ कि गिरिराज
हिमालय वैराग्य एवं त्याग के सूचक हैं तथा यह सर्वोच्च शिक्षा, जो हम मानवता
को सदैव देते रहेंगे, त्याग ही है। जिस प्रकार हमारे पूर्वज अपने जीवन के अन्तकाल
में इस हिमालय पर खिंचे हुए चले आते थे, उसी प्रकार भविष्य में पृथ्वी भर की
शक्तिशाली आत्माएँ इस गिरिराज की ओर आकर्षित होकर चली आयेंगी।
वह उस समय होगा जब कि भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के आपस के झगड़े आदि याद
नहीं किये जायेंगे, जब धार्मिक रूढ़ियों के सम्बन्ध का विवाद
जब हमारे और तुम्हारे धर्म सम्बन्धी सभी विवाद

मनुष्य मात्र यह समझ लेगा कि केवल एक ही चिरन्तन धर्म है और वह है स्वय मे परमेश्वर की अनुभूति, और शेष जो कुछ है वह सब व्यर्थ है। यह जानकर अनेक व्यग्र आत्माएँ यहाँ आयेंगी कि यह ससार एक महा धोखे की टट्टी है, यहाँ सब कुछ मिथ्या है और यदि कुछ सत्य है तो वह है ईश्वर की उपासना—केवल ईश्वर की उपासनाएँ।

मित्रो, यह तुम्हारी कृपा है कि तुमने मेरे एक विचार का जिक्र किया है और मेरा वह विचार इस स्थान पर एक आश्रम स्थापित करने का है। मैंने शायद तुम लोगो को यह बात काफी स्पष्ट रूप से समझा दी है कि यहाँ पर आश्रम की स्थापना क्यो की जाय तथा ससार मे अन्य सब स्थानो को छोड़कर मैंने इसी स्थान को क्यो चुना है, जहाँ से इस विश्वधर्म की शिक्षा का प्रसार हो सके। कारण स्पष्ट ही है कि इन पर्वतश्रेणियो के साथ हमारी हिन्दू जाति की सर्वोत्तम स्मृतियाँ सबद्ध हैं। यदि यह हिमालय धार्मिक भारत के इतिहास से पृथक् कर दिया जाय तो शेष बहुत कम रह जायगा। अतएव यही पर एक केन्द्र होना चाहिए—जो कर्मप्रधान न हो, वरन् शान्ति का हो, ध्यान-धारण का हो, और मुझे पूर्ण आशा है कि एक न एक दिन ऐसा अवश्य होगा। मैं यह भी आशा करता हूँ कि तुम लोगो से फिर और कभी मिलूँगा जब तुमसे वार्तालाप का इससे अच्छा अवसर होगा। अभी मैं इतना ही कहता हूँ कि तुमने मेरे प्रति जो प्रेमभाव दिखलाया है, उसके लिए मैं बड़ा कृतज्ञ हूँ और मैं यह मानता हूँ कि तुमने यह प्रेम तथा कृपा मुझ व्यक्ति के प्रति नही दिखायी है, वरन् एक ऐसे के प्रति दिखायी है जो हमारे प्राचीन हिन्दू धर्म का प्रतिनिधि है। हमारे इस धर्म की भावना हमारे हृदयो मे सदैव बनी रहे। ईश्वर करे, हम सब सदैव ऐसे ही शुद्ध बने रहें, जैसे हम इस समय हैं तथा हमारे हृदयो मे आध्यात्मिकता के लिए उत्साह भी सदैव इतना ही तीव्र रहे।

## वैदिक उपदेश तात्त्विक और

जब स्वामी जी के अल्मोड़े में ठहरने की अवधि
उनके यहाँ के मित्रों ने उनसे प्रार्थना की कि आप [illegible] एक
स्वामी जी ने उनकी प्रार्थना पर विचार कर उन्हें अपनी
भाषा में व्याख्यान देने का उनका यह पहला ही अवसर था।
धीरे धीरे बोलना शुरू किया परन्तु शीघ्र ही अपने विषय पर
ही देर में उन्होंने यह अनुभव किया कि जैसे जैसे वे बोलते जाते
उपयुक्त शब्द तथा वाक्य निकलते जाते थे। वहाँ पर कुछ
शायद यह अनुमान करते थे कि हिन्दी भाषा में व्याख्यान देने में
कठिनाई पड़ती है कहने लगे कि इस व्याख्यान में स्वामी जी की पूर्ण
और सम्भवतः वह अपने ढंग का अद्वितीय था। उनके व्याख्यान में [illegible]
अधिकृत प्रयोग से यह भी सिद्ध हो गया कि तत्पुरुष-समास की शिक्षा में [illegible]
स्वप्नातीत सम्भावनाएँ हैं।

स्वामी जी ने और एक व्याख्यान इंग्लिश भाषा में अंग्रेजी में भी दिया था। [illegible] सभा के अध्यक्ष थे गुरखा रेजिमेण्ट के कर्नल पुली। उस व्याख्यान का विषय था 'वैदिक उपदेश तात्त्विक और व्यावहारिक' जिसका सारांश इस प्रकार है :

पहले स्वामी जी ने इस बात का ऐतिहासिक वर्णन किया कि किसी [illegible] जाति में उसके ईश्वर की उपासना किस प्रकार बढ़ती है तथा वह जाति ज्यों ज्यों अन्य जातियों को जीतती जाती है, उस ईश्वर की उपासना भी फैलती जाती है। इसके बाद उन्होंने वेदों के कुछ विशेषताओं तथा उनकी शिक्षाओं का संक्षेप में वर्णन किया और फिर आत्मा के विषय पर कुछ प्रकाश डाला। इस सिलसिले में पाश्चात्य प्रणाली से तुलना करते हुए उन्होंने बतलाया कि वह प्रणाली धार्मिक तथा नैतिक महत्व के रहस्यों का उत्तर बाह्य जगत् में ढूंढने की चेष्टा करती है जब कि प्राच्य प्रणाली इन सब बातों का समाधान बाह्य प्रकृति में न पाकर उसे अपनी अन्तरात्मा में ही ढूंढ निकालने की चेष्टा करती है। उन्होंने इस बात का ठीक ही दावा किया है कि हिन्दू जाति को ही इस बात का गौरव है कि उसने इसीने अंतःनिरीक्षण प्रणाली की खोज निकाला और यह उसका [illegible] अपनी चीज तथा विशेषता है। इसी जाति ने [illegible]

की अमूल्य निधि भी दी है जो उसी प्रणाली का फल है। स्वभावत इस विषय के वाद, जो किसी भी हिन्दू को अत्यन्त प्रिय है, स्वामी जी आध्यात्मिक गुरु होने के नाते उस समय मानो आध्यात्मिकता के शिखर पर ही पहुँच गये, जब वे आत्मा तथा ईश्वर के सम्बन्ध की चर्चा करने लगे, जब यह दर्शाने लगे कि आत्मा ईश्वर से एकरूप हो जाने के लिए कितनी लालायित रहती है तथा अन्त मे किस प्रकार ईश्वर के साथ एकरूप हो जाती है। और कुछ समय के लिए सचमुच ऐसा ही भास हुआ कि वक्ता, वे शब्द, श्रोतागण तथा सभी को अभिभूत करनेवाली भावना मानो सब एकरूप हो गये हो। ऐसा कुछ भान ही नही रह गया कि 'मैं' या 'तू' अथवा 'मेरा' या 'तेरा' कोई चीज है। छोटी छोटी टोलियाँ जो उस समय वहाँ एकत्र हुई थी, कुछ समय के लिए अपने अलग अलग अस्तित्व को भूल गयी तथा उस महान् आचार्य के श्री मुख से निकले हुए शब्दो द्वारा प्रचड आध्यात्मिक तेज मे एकरूप हो गयी, वे सब मानो मत्रमुग्ध से रह गये।

जिन लोगो को स्वामी जी के भाषण सुनने का बहुधा अवसर प्राप्त हुआ है, उन्हें इस प्रकार के अन्य कई अवसरो का भी स्मरण हो आयेगा, जब वे वास्तव मे जिज्ञासु तथा ध्यानमग्न श्रोताओ के सम्मुख भाषण देने वाले स्वय स्वामी विवेकानन्द नही रह जाते थे, श्रोताओ के सब प्रकार के भेद-भाव तथा व्यक्तित्व विलुप्त हो जाते थे, नाम और रूप नष्ट हो जाते थे तथा केवल वह सर्वव्यापी आत्म-तत्त्व रह जाता था, जिसमे श्रोता, वक्ता तथा उच्चारित शब्द बस एकरूप होकर रह जाते थे।

# भक्ति

## (सियालकोट में दिया हुआ भाषण)*

पंजाब तथा काश्मीर के निमंत्रण मिलने पर स्वामी जी ने यात्रा की। काश्मीर में वे एक महीने से ज्यादा समय तक थे। नरेश तथा उनके भाइयों ने स्वामी जी के कामों की बड़ी कदर [illegible] से कुछ दिनों तक मरी, रावलपिंडी और जम्मू में रहे, वहाँ उन्होंने [illegible] व्याख्यान दिया। फिर वह सियालकोट गये और वहाँ उन्होंने दो [illegible] एक व्याख्यान अंग्रेजी में था और एक हिन्दी में। हिन्दी [illegible] का 'भक्ति' जिसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

संसार में जितने धर्म हैं उनकी उपासना प्रणाली में विभिन्नता [illegible] वे वस्तुतः एक ही हैं। किसी किसी स्थान पर लोग मन्दिरों का निर्माण [illegible] में उपासना करते हैं, कुछ लोग अग्नि की उपासना करते हैं, किसी [illegible] लोग मूर्ति-पूजा करते हैं तथा कितने ही व्यक्ति ईश्वर के अस्तित्व में ही विश्वास नहीं करते। ये सब ठीक है, इन सबमें प्रबल विभिन्नता विद्यमान है, किन्तु यदि प्रत्येक धर्म के सार, उसके मूल तत्व, उसके वास्तविक सत्य के ऊपर विचार कर देखें तो वे सर्वथा अभिन्न हैं। इस प्रकार के भी धर्म हैं जो ईश्वरोपासना की आवश्यकता ही नहीं स्वीकार करते। यही क्या, वे ईश्वर का अस्तित्व भी नहीं मानते। किन्तु तुम देखोगे वे सभी धर्मावलम्बी साधु-महात्माओं की ईश्वर की भाँति उपासना करते हैं। बौद्ध धर्म इस बात का उल्लेखनीय उदाहरण है। भक्ति सभी धर्मों में है, कहीं ईश्वर भक्ति है तो कहीं महात्माओं के प्रति भक्ति का प्राबल्य है। सभी जगह इस भक्ति-रूप उपासना का सर्वोपरि प्रभाव देखा जाता है। ज्ञान-लाभ की अपेक्षा भक्ति-लाभ करना सहज है। ज्ञान-लाभ करने में कठिन अभ्यास और अनुकूल परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। शरीर सर्वथा स्वस्थ एवं रोगशून्य न होने से तथा मन सर्वथा विषयों से अनासक्त न होने से योग का अभ्यास नहीं किया जा सकता, किन्तु सभी अवस्थाओं के लोग बड़ी सरलता से भक्ति-साधना कर सकते हैं। भक्तिमार्ग के आचार्य शाण्डिल्य महर्षि ने कहा है कि ईश्वर के प्रति अतिशय अनुराग को भक्ति कहते हैं। प्रह्लाद ने भी यही बात कही है। यदि किसी व्यक्ति को एक दिन भोजन न मिले तो उसे बहुत [illegible] की मृत्यु होने पर उसको कैसी यन्त्रणा होती है। जो [illegible]

उनके भी प्राण भगवान् के विरह मे इसी प्रकार छटपटाते है। भक्ति मे यह बडा गुण है कि उसके द्वारा चित्त शुद्ध हो जाता है और परमेश्वर के प्रति दृढ भक्ति होने से केवल उसीके द्वारा चित्त शुद्ध हो जाता है। **नाम्नामकारि बहुधा निजसर्व-शक्ति** '—'हे भगवन् तुम्हारे असख्य नाम हैं और तुम्हारे प्रत्येक नाम मे तुम्हारी अनन्त शक्ति वर्तमान है।' और प्रत्येक नाम मे गम्भीर अर्थ गर्भित है। तुम्हारे नाम उच्चारण करने के लिए स्थान, काल आदि किसी भी चीज का विचार करना आवश्यक नही। हमे सदा मन मे ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए और इसके लिए स्थान, काल का विचार नही करना चाहिए।

ईश्वर विभिन्न साधको के द्वारा विभिन्न नामो से उपासित होते है, किन्तु यह भेद केवल दृष्टिमात्र का है, वास्तव मे कोई भेद नही है। कुछ लोग सोचते है कि हमारी ही साधना-प्रणाली अधिक कार्यकारी है, और दूसरे अपनी साधना-प्रणाली को ही मुक्ति पाने का अधिक सक्षम उपाय बताते हैं। किन्तु यदि दोनो की ही मूल भित्ति का अनुसन्धान किया जाय तो पता चलेगा कि दोनो ही एक है। शैव शिव को ही सर्वापेक्षा अधिक शक्तिशाली समझते हैं। वैष्णव विष्णु को ही सर्वशक्तिमान मानते हैं, देवी के उपासको के लिए देवी ही जगत् मे सबसे अधिक शक्तिशालिनी हैं। प्रत्येक उपासक अपने सिद्धान्त की अपेक्षा और किसी बात का विश्वास ही नही करता, किन्तु यदि मनुष्य को स्थायी भक्ति की उपलब्धि करनी है तो उसे यह द्वेष-बुद्धि छोडनी ही होगी। द्वेष भक्ति-पथ मे बडा बाधक है—जो मनुष्य उसे छोड सकेगा, वही ईश्वर को पा सकेगा। तब भी इष्ट-निष्ठा विशेष रूप से आवश्यक है। भक्तश्रेष्ठ हनुमान ने कहा है

**श्रीनाथे जानकीनाथे अभेद परमात्मनि।**
**तथापि मम सर्वस्व राम कमललोचन ॥**

—'मैं जानता हूँ, जो परमात्मा लक्ष्मीपति हैं, वे ही जानकीपति हैं, तथापि कमललोचन राम ही मेरे सर्वस्व हैं।' प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव जन्म से ही औरो से भिन्न होता है और वह तो उसके साथ बना ही रहेगा। समस्त ससार किसी समय एक धर्मावलम्बी नही हो सकता, इसका मुख्य कारण यही भावो मे विभिन्नता है। ईश्वर करे, ससार कभी भी एक धर्मावलम्बी न हो। यदि कभी ऐसा हो जाय तो ससार का सामजस्य नष्ट होकर विशृखलता आ जायगी। अस्तु, मनुष्य को अपनी ही प्रकृति का अनुसरण करना चाहिए। यदि मनुष्य को ऐसे गुरु मिल

---

१. श्री कृष्ण चैतन्य।

मार्ग पर उसको उसीके भावानुरूप मार्ग पर चलकर मनुष्य उन्नति करने में समर्थ होगा। उसको वहीं यात्रा करनी होगी। जो व्यक्ति जिस पथ पर चलने की चलने देना चाहिए किन्तु यदि हम उसे दूसरे मार्ग पर वह उसके पास जो कुछ है, उसे भी खो बैठेगा वह जिसी जिस भाँति एक मनुष्य का चेहरा दूसरे के चेहरे से भिन्न होता मनुष्य की प्रकृति दूसरी की प्रकृति से भिन्न होती है। किसी प्रकृति के ही अनुसार चलने देने में क्या आपत्ति है? एक नदी है—यदि उसके बहाव को ठीक कर नदी को उसी धारा अधिक तेज हो जायगी और वेग बढ़ जायगा। किन्तु यदि की दिशा को बदल कर उसे दूसरी दिशा में प्रवाहित करने का तो तुम यह परिणाम देखोगे कि उसका परिमाण क्षीण हो जायगा भी कम हो जायगा। यह जीवन एक बड़े महत्त्व की चीज है अतः इसे भाव के अनुसार ही चलाना चाहिए। भारत में विविध धर्मों में कभी विरोध नहीं था वरन् प्रत्येक धर्म स्वाधीन भाव से अपना कार्य करता रहा, इसीलिए यहाँ अभी तक प्रकृत धर्मभाव बना है। इस स्थान पर यह बात भी समझ लेनी होगी कि विभिन्न धर्मों में तब विरोध उत्पन्न होता है, जब मनुष्य यह विश्वास कर लेता है कि सत्य का मूल मन्त्र मेरे ही पास है और जो मनुष्य मुझ जैसा विश्वास नहीं करता वह मूर्ख है और दूसरा व्यक्ति सोचता है कि अमुक व्यक्ति ढोंगी है, क्योंकि अगर वह ऐसा न होता तो मेरा अनुगमन करता।

यदि ईश्वर की यह इच्छा होती कि सभी लोग एक ही धर्म का अवलम्बन करें तो इतने विभिन्न धर्मों की उत्पत्ति क्यों होती? सब लोगों को एक धर्मावलम्बी बनाने के लिए अनेक प्रकार के प्रयोग और चेष्टाएँ हुईं किन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ। तलवार के जोर से जिस स्थान पर लोगों को एक धर्मावलम्बी बनाने की चेष्टा की गयी वहाँ भी एक की जगह दस धर्मों की उत्पत्ति हो गयी—इतिहास इस बात का प्रमाण है। समस्त संसार में सबके अनुकूल एक धर्म नहीं हो सकता। क्रिया तथा प्रतिक्रिया इन दो शक्तियों से मनुष्य मननशील हुआ है। यदि इन शक्तियों का प्रयोग मन पर न होता तो मनुष्य कुछ सोच ही न सकता इतना ही क्यों वह मनुष्य ही न कहा जा सकता। मनुष्य मननशील प्राणी है, वह मननशील है। 'मन्' धातु से मनुष्य शब्द बनता है मनुष्य शब्द का अर्थ है मननशील। मननशीलता की शक्ति के नाश हो जाने पर मनुष्य और एक साधारण पशु में कोई अन्तर न रह जायगा। ऐसे व्यक्ति को देखकर सबके हृदय में घृणा का उद्रेक होगा।

ईश्वर करे, भारतवर्ष मे कभी ऐसी अवस्था न उत्पन्न हो। अत मनुष्यत्व कायम रखने के लिए एकत्व मे अनेकत्व की आवश्यकता है। सभी विषयो मे इस अनेकत्व या विविधता की आवश्यकता है, कारण जितने दिन यह अनेकत्व रहेगा, उतने ही दिन जगत् का अस्तित्व भी रहेगा। अवश्य ही अनेकत्व या विविधता कहने से केवल यह अर्थ नही समझना चाहिए कि उनमे छोटे-बडे का अन्तर है। परन्तु यदि सब जीवन के अपने अपने कार्य को समान अच्छाई के साथ करते रहें, तब भी विविधता वैसे ही बनी रहेगी। सभी धर्मों मे अच्छे अच्छे लोग है, इसलिए सभी धर्म लोगो की श्रद्धा को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, अतएव किसी भी धर्म से घृणा करना उचित नही।

यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है—जो धर्म अन्याय की पुष्टि करे, क्या उस धर्म के प्रति भी सम्मान दिखाना होगा? अवश्य ही इस प्रश्न का उत्तर 'नही' के सिवा दूसरा क्या हो सकता है? ऐसे धर्म को जितनी जल्दी दूर किया जा सके उतना ही अच्छा है, कारण उससे लोगो का अमगल ही होगा। नैतिकता के ऊपर ही सब धर्मों की भित्ति प्रतिष्ठित है, सदाचार को धर्म की अपेक्षा भी उच्च स्थान देना होगा। यहाँ पर यह भी समझ लेना चाहिए कि आचार का अर्थ बाह्य और आभ्यन्तरिक दोनो प्रकार की शुद्धि से है। जल तथा अन्यान्य शास्त्रोक्त वस्तुओ के प्रयोग से शरीर-शुद्धि हो सकती है, आभ्यान्तर शुद्धि के लिए मिथ्या भाषण, सुरापान एव अन्य गर्हित कार्यों का त्याग करना होगा। साथ ही परोपकार भी करना होगा। केवल मद्यपान, चोरी, जुआ, झूठ बोलना आदि असत् कार्यों के त्याग से ही काम न चलेगा। इतना तो प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। इतना करने से मनुष्य किसी प्रशसा का पात्र न हो सकेगा। अपने कर्तव्य-पालन के साथ साथ दूसरो की कुछ सेवा भी करनी चाहिए। जैसे तुम आत्मकल्याण करते हो, वैसे दूसरो का भी अवश्य कल्याण करो।

अब मैं भोजन के नियम के सम्बन्ध मे कुछ कहना चाहता हूँ। इस समय भोजन की समस्त प्राचीन विधियो का लोप हो गया है। लोगो मे एक यही धारणा विद्यमान है कि 'इनके साथ मत खाओ, उनके साथ मत खाओ।' सैकडो वर्ष पूर्व भोजन सम्बन्धी जो सुन्दर नियम थे, उनमे आज केवल छुआछूत का नियम ही बचा है। शास्त्र मे भोजन के तीन प्रकार के दोष लिखे है—(१) जाति दोष—जो खाद्य पदार्थ स्वभाव से ही अशुद्ध है, जैसे प्याज, लहसुन आदि। यह जाति-दुष्ट खाद्य हुआ। जो व्यक्ति इन चीजो को अधिक मात्रा मे खाता है, उनमे काम-वासना बढती है और वह अनैतिक कार्यों मे प्रवृत्त हो सकता है, जो ईश्वर तथा मनुष्य की दृष्टि मे सब प्रकार से घृणित है। (२) गन्दे तथा कीडे-मकोडो से

दूषित आहार को निमित्तदोष से दूषित कहते हैं। इस लिए ऐसे स्थान में भोजन करना होगा जो धूल दोष — दुष्ट व्यक्ति से छुआ हुआ खाद्य पदार्थ भी त्याज्य का भय खाने से मन में अपवित्र भाव पैदा होते हैं। यदि वह व्यक्ति लम्पट एवं कुकर्मी हो तो उसके हाथ का

इस समय हम सब बातों

तो सिर्फ इसी बात का झुठ मौजूद है कि ऐसी वैसी हाथ का छुआ न खायेंगे चाहे वह व्यक्ति कितना ही पवित्र आचरण का क्यों न हो। इन सब नियमों की किस भाँति उपेक्षा होती है [illegible] प्रमाण किसी हलवाई की दूकान पर जाकर देखने से मिल जायगा। [illegible] कि मक्खियाँ सब ओर भनभनाती हुई सब चीजों पर बैठती हैं, [illegible] उड़कर मिठाई के ऊपर पड़ती है और हलवाई के कपड़े [illegible] है। क्यों नहीं सब खरीदनेवाले मिलकर कहते कि दूकान में [illegible] हम लोग मिठाई न खरीदेंगे। ऐसा करने से मक्खियाँ खाद्य पदार्थ पर [illegible] एवं अपने साथ हैजा तथा अन्यान्य संक्रामक बीमारियों के कीटाणु [illegible] भोजन के नियमों में हमें सुधार करना चाहिए, किन्तु हम उन्नति न कर [illegible] के मार्ग की ही ओर क्रमशः अग्रसर हुए हैं। मनुस्मृति में लिखा है, जल में [illegible] न चाहिए, किन्तु हम नदियों में हर प्रकार का मैला फेंकते हैं। इन सब बातों की विवेचना करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि बाह्य शौच की विशेष आवश्यकता है। शास्त्रकार भी इस बात को भली भाँति जानते थे। किन्तु अब [illegible] पवित्र-अपवित्र विचारों का प्रकृत उद्देश्य लुप्त हो गया है, [illegible] आडम्बर मात्र शेष है। चोरों लम्पटों मतवालों अपराधियों को हम लोग अपनी जाति-बन्धु स्वीकार कर लेंगे किन्तु यदि एक उच्च जातीय मनुष्य किसी नीच जातीय व्यक्ति के साथ जो उसीके समान सम्माननीय है, बैठकर खाये, तो वह जाति च्युत कर दिया जायगा और फिर वह सदा के लिए पतित मान लिया जायगा। यह प्रथा हमारे देश के लिए विनाशकारी [illegible] है। अस्तु, यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि पापी के संसर्ग से पाप और साधु के संसर्ग से साधुता आती है और असत् संसर्ग का दूर से परिहार करना ही बाह्य शौच है।

आभ्यन्तरिक शुद्धि कहीं अधिक दुस्तर कार्य है। आभ्यन्तरिक शुद्धि के लिए सत्य भाषण निर्धन विपन्न और अभावग्रस्त व्यक्तियों की [illegible] आवश्यकता है। किन्तु क्या हम सर्वदा सत्य बोलते हैं? [illegible]

कि कोई मनुष्य अपने किसी काम के लिए किसी धनी व्यक्ति के मकान पर जाता है और उसे 'गरीब परवर,' 'दीनबन्धु' आदि बडे बडे विशेषणो से विभूषित करता है, चाहे वह धनी व्यक्ति अपने मकान पर आये हुए किसी गरीब व्यक्ति का गला ही क्यो न काटता हो। अत ऐसे धनी व्यक्ति को गरीब परवर, दीनबन्धु कहना स्पष्ट झूठ है और हम ऐसी बातें कहकर ही अपने मन को मलिन करते हैं। इसीलिए शास्त्रो मे लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति बारह वर्ष तक सत्य भाषणादि के द्वारा चित्तशुद्धि करे और बारह वर्ष तक यदि उसके मन मे कोई खराब विचार न आये तो वह जो कहेगा, वही सत्य निकलेगा। सत्य मे ऐसी ही अमोघ शक्ति है, और जिसने बाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धि की है वही भक्ति का अधिकारी है। पर भक्ति की विशेषता इस बात मे है कि वह स्वय मन को बहुत शुद्ध कर देती है। यद्यपि यहूदी, मुसलमान तथा ईसाई बाह्य शौच को हिन्दुओ की तरह इतना विशेष महत्त्व नही देते, तथापि वे भी किसी न किसी प्रकार से बाह्य शौच का अवलम्बन करते ही है—उन्हे भी मालूम हो गया है कि बाह्य शौच की किसी न किसी परिमाण मे आवश्यकता है। यद्यपि यहूदियो मे मूर्ति-पूजा निषिद्ध थी, पर उनका भी एक मन्दिर था। उस मन्दिर मे 'आर्क' नामक एक सन्दूक रखी हुई थी और उस सन्दूक के भीतर 'मूसा के दस ईश्वरादेश' सुरक्षित रखे हुए थे। इस सन्दूक के ऊपर विस्तारित पक्षयुक्त दो स्वर्गीय दूतो की मूर्तियाँ बनी थी, और उनके ठीक बीच मे वे बादल के रूप मे ईश्वर के आविर्भाव का दर्शन करते थे। बहुत दिन हुए, यहूदियो का वह प्राचीन मन्दिर नष्ट हो गया, किन्तु उनके नये मन्दिरो की रचना ठीक इसी पुराने ढग पर हुई है, और इन मन्दिरो मे सन्दूक के भीतर धर्म-पुस्तकें रखी हुई हैं। रोमन कैथोलिक और यूनानी ईसाइयो मे कुछ रूपो मे मूर्ति-पूजा प्रचलित है। वे ईसा की मूर्ति और उनके माता-पिता की मूर्तियो की पूजा करते हैं। प्रोटेस्टेन्टो मे मूर्ति-पूजा नही है, किन्तु वे भी ईश्वर को व्यक्तिविशेष समझकर उपासना करते हैं। यह भी मूर्ति-पूजा का रूपान्तर मात्र है। पारसियो और ईरानियो मे अग्नि-पूजा खूब प्रचलित है। मुसलमान अच्छे अच्छे पीरो-फकीरो की पूजा करते हैं और नमाज़ के समय काबे की ओर मुँह करते हैं। यह सब देखकर जान पडता है कि धर्म-साधना की प्रथमावस्था मे मनुष्यो को कुछ बाह्य अवलम्बनो की आवश्यकता पडती है। जिस समय मन खूब शुद्ध हो जाता है, उस समय सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयो मे चित्त एकाग्र करना सम्भव हो सकता है।

'जब जीव ब्रह्म से एकत्व का प्रयत्न करता है, यह सर्वोत्तम है, जब ध्यान का अभ्यास किया जाता है, यह मध्यम कोटि है, जब नाम का

दूषित आहार को निमित्तदोष से दुष्ट कहते हैं। इस लिए ऐसे स्थान में भोजन करना होगा जो इन दोष — दुष्ट व्यक्ति से छुआ हुआ खाद्य पदार्थ का अन्न खाने से मन में अपवित्र भाव पैदा होते हैं। यदि वह व्यक्ति लम्पट एवं कुकर्मी हो तो उसके हाथ का

इस समय हम सब बातों

तो सिर्फ इसी बात का हठ मौजूद है कि ऊँची से ऊँची जाति का न [illegible] हाथ का छुआ न खायेंगे चाहे वह व्यक्ति कितना ही पवित्र [illegible] आचरण का क्यों न हो। इन सब नियमों की किस भाँति उपेक्षा होती है [illegible] प्रमाण किसी हलवाई की दुकान पर जाकर देखने से मिल जायगा। [illegible] कि मक्खियाँ सब ओर भनभनाती हुई सब चीजों पर बैठती हैं, [illegible] उड़कर मिठाई के ऊपर पड़ती है और हलवाई के कपड़े स्वयं [illegible] हैं। क्यों नहीं सब खरीदनेवाले मिलकर कहते कि दुकान में शीशा [illegible] हम लोग मिठाई न खरीदेंगे। ऐसा करने से मक्खियाँ खाद्य पदार्थ पर न [illegible] एवं अपने साथ हैजा तथा अन्यान्य संक्रामक बीमारियों के कीटाणु न ला [illegible] भोजन के नियमों में हम सुधार करना चाहिए, किन्तु हम उन्नति न कर [illegible] के मार्ग की ही ओर क्रमशः अग्रसर हुए हैं। मनुस्मृति में लिखा है, जल में थूकना न चाहिए, किन्तु हम नदियों में हर प्रकार का मैला फेंकते हैं। इन सब बातों की विवेचना करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि बाह्य शौच की विशेष आवश्यकता है। शास्त्रकार भी इस बात को भली भाँति जानते थे। किन्तु इस समय [illegible] पवित्र-अपवित्र विचारों का प्रकृत उद्देश्य लुप्त हो गया है, इस समय केवल आडम्बर मात्र शेष है। चोरों लम्पटों मद्यपों अपराधियों को हम लोग अपनी जाति-बन्धु स्वीकार कर लेंगे, किन्तु यदि एक उच्च जातीय मनुष्य किसी नीच जातीय व्यक्ति के साथ जो उसीके समान सम्माननीय है, बैठकर खाये, तो वह जाति च्युत कर दिया जायगा और फिर वह सदा के लिए पतित मान लिया जायगा। यह प्रथा हमारे देश के लिए विनाशकारी सिद्ध हुई है। अस्तु, यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि पापी के स्पर्श से पाप और साधु के संसर्ग से साधुता आती है और असत् संसर्ग का दूर से परिहार करना ही बाह्य शौच है।

आभ्यन्तरिक शुद्धि कहीं अधिक दुस्तर कार्य है। आभ्यन्तरिक शुद्धि के लिए सत्य भाषण निर्धन विपन्न और अभावग्रस्त व्यक्तियों की सेवा आदि की आवश्यकता है। किन्तु क्या हम सर्वदा सत्य बोलते हैं? [illegible] हैं

कि कोई मनुष्य अपने किसी काम के लिए किसी धनी व्यक्ति के मकान पर जाता है और उसे 'गरीब परवर,' 'दीनबन्धु' आदि बडे बडे विशेषणों से विभूषित करता है, चाहे वह धनी व्यक्ति अपने मकान पर आये हुए किसी गरीब व्यक्ति का गला ही क्यो न काटता हो। अत ऐसे धनी व्यक्ति को गरीब परवर, दीनबन्धु कहना स्पष्ट झूठ है और हम ऐसी बाते कहकर ही अपने मन को मलिन करते है। इसीलिए शास्त्रो मे लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति बारह वर्ष तक सत्य भाषणादि के द्वारा चित्तशुद्धि करे और बारह वर्ष तक यदि उसके मन मे कोई खराब विचार न आये तो वह जो कहेगा, वही सत्य निकलेगा। सत्य मे ऐसी ही अमोघ शक्ति है, और जिसने बाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धि की है वही भक्ति का अधिकारी है। पर भक्ति की विशेषता इस बात मे है कि वह स्वय मन को बहुत शुद्ध कर देती है। यद्यपि यहूदी, मुसलमान तथा ईसाई बाह्य शौच को हिन्दुओ की तरह इतना विशेष महत्त्व नही देते, तथापि वे भी किसी न किसी प्रकार से बाह्य शौच का अवलम्बन करते ही हैं—उन्हे भी मालूम हो गया है कि बाह्य शौच की किसी न किसी परिमाण मे आवश्यकता है। यद्यपि यहूदियो मे मूर्ति-पूजा निषिद्ध थी, पर उनका भी एक मन्दिर था। उस मन्दिर मे 'आर्क' नामक एक सन्दूक रखी हुई थी और उस सन्दूक के भीतर 'मूसा के दस ईश्वरादेश' सुरक्षित रखे हुए थे। इस सन्दूक के ऊपर विस्तारित पक्षयुक्त दो स्वर्गीय दूतो की मूर्तियाँ बनी थी, और उनके ठीक बीच मे वे बादल के रूप मे ईश्वर के आविर्भाव का दर्शन करते थे। बहुत दिन हुए, यहूदियो का वह प्राचीन मन्दिर नष्ट हो गया, किन्तु उनके नये मन्दिरो की रचना ठीक इसी पुराने ढग पर हुई है, और इन मन्दिरो मे सन्दूक के भीतर धर्म-पुस्तकें रखी हुई हैं। रोमन कैथोलिक और यूनानी ईसाइयो मे कुछ रूपो मे मूर्ति-पूजा प्रचलित है। वे ईसा की मूर्ति और उनके माता-पिता की मूर्तियो की पूजा करते हैं। प्रोटेस्टेन्टो मे मूर्ति-पूजा नही है, किन्तु वे भी ईश्वर को व्यक्तिविशेष समझकर उपासना करते हैं। यह भी मूर्ति-पूजा का रूपान्तर मात्र है। पारसियो और ईरानियो मे अग्नि-पूजा खूब प्रचलित है। मुसलमान अच्छे अच्छे पीरों-फकीरो की पूजा करते हैं और नमाज़ के समय काबे की ओर मुँह करते हैं। यह सब देखकर जान पडता है कि धर्म-साधना की प्रथमावस्था मे मनुष्यों को कुछ बाह्य अवलम्बनों की आवश्यकता पडती है। जिस समय मन खूब शुद्ध हो जाता है, उस समय सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयो मे चित्त एकाग्र करना सम्भव हो सकता है।

'जब जीव ब्रह्म से एकत्व का प्रयत्न करता है, यह सर्वोत्तम है, जब ध्यान का अभ्यास किया जाता है, यह मध्यम कोटि है, जब नाम का

जप किया जाता है, वह निम्न कोटि है और बाह्य पूजा निम्नातिनिम्न है।[1]

किन्तु इस स्थान पर यह अच्छी तरह समझ लेना होगा कि बाह्य पूजा के निम्नातिनिम्न होने पर भी उसमें कोई पाप नहीं है। जो व्यक्ति जैसी उपासना कर सकता है, उसके लिए वही ठीक है। यदि उसे अपने पथ से निवृत्त किया गया तो वह अपने कल्याण के लिए, अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए दूसरे किसी मार्ग का अवलम्बन करेगा। इसलिए जो मूर्ति-पूजा करते हैं, उनकी निन्दा करना उचित नहीं। वे उन्नति की जिस सीढ़ी तक चढ़ चुके हैं, उनके लिए वही आवश्यक है। ज्ञानी जनों को इन सब व्यक्तियों को अग्रसर होने में सहायता करने का प्रयत्न करना चाहिए किन्तु उपासना प्रणाली को लेकर झगड़ा करने की आवश्यकता नहीं है। कुछ लोग धन और कोई पुत्र की प्राप्ति के लिए ईश्वर की उपासना करते हैं और अपने को बड़े भागवत समझते हैं किन्तु यह वास्तविक भक्ति नहीं है—वे लोग भी सच्चे भागवत नहीं हैं। अगर वे सुन लें कि अमुक स्थान पर एक साधु आया है और वह तांबे का सोना बनाता है तो वे दल के दल वहाँ एकत्र हो जायँगे तिस पर भी वे अपने को भागवत कहने में लज्जित नहीं होते। पुत्र प्राप्ति के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते धनी होने के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते स्वर्ग-लाभ के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते यहाँ तक कि नरक की यंत्रणा से छूटने के लिए की गयी ईश्वरोपासना को भी भक्ति नहीं कह सकते। भय या लोभ से कभी भक्ति की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वे ही सच्चे भागवत हैं, जो कह सकते हैं— हे जगदीश्वर! मैं धन जन परम सुन्दरी स्त्री अथवा पाण्डित्य कुछ भी नहीं चाहता। हे ईश्वर! मैं प्रत्येक जन्म में आपकी अहेतुकी भक्ति चाहता हूँ।[2] जिस समय यह अवस्था प्राप्त होती है, उस समय मनुष्य सब जीवों में ईश्वर को तथा ईश्वर में सब जीवों को देखने लगता है। उसी समय उसे पूर्ण भक्ति प्राप्त होती है। उसी समय वह ब्रह्मा से लेकर कीटाणु तक सभी वस्तुओं में विष्णु के दर्शन करता है। तभी वह पूरी तरह समझ सकता है कि ईश्वर के अतिरिक्त संसार में और कुछ नहीं है और केवल तभी वह अपने को हीन से हीन समझकर यथार्थ भक्त की भाँति ईश्वर

---

१ उत्तमो ब्रह्मसद्भावो ध्यानभावस्तु मध्यमः।
स्तुतिर्जपोऽधमो भावो बाह्यपूजाऽधमाधमा॥ महानिर्वाण तंत्र १४।१२२॥

२ न धनं न जनं न च सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

की उपासना करता है। उस समय उसे बाह्य अनुष्ठान एव तीर्थ-यात्रा आदि की प्रवृत्ति नही रह जाती—वह प्रत्येक मनुष्य को ही यथार्थ देवमन्दिरस्वरूप समझता है।

शास्त्रो मे भक्ति का नाना प्रकार से वर्णन किया गया है। हम ईश्वर को अपना पिता कहते हैं, इसी प्रकार हम उसे माता आदि भी कहते हैं। हम लोगो मे भक्ति की दृढ स्थापना के लिए इन सम्बन्धो की कल्पना की गयी है, जिससे हम ईश्वर के अधिक सान्निध्य और प्रेम का अनुभव कर सकें। ये शब्द अत्यन्त प्रेमपूर्ण हैं। सच्चे धार्मिक ईश्वर को अपने प्राणो से भी अधिक प्यार करते हैं, इसलिए वे उसे माता-पिता कहे बिना नही रह सकते। रासलीला मे राधा और कृष्ण की कथा को लो। यह कथा भक्त के यथार्थ भाव को व्यक्त करती है, क्योकि ससार मे स्त्री-पुरुष के प्रेम से अधिक प्रबल कोई दूसरा प्रेम नही हो सकता। जहाँ इस प्रकार का प्रबल अनुराग होगा, वहाँ कोई भय, कोई वासना या कोई आसक्ति नही रह सकती—केवल एक अच्छेद्य बन्धन दोनो को तन्मय कर देता है। माता-पिता के प्रति सन्तान का जो प्रेम है वह भयमिश्रित है, कारण उनके प्रति उसका श्रद्धा-भाव रहता है। ईश्वर सृष्टि करता है या नही, वह हमारी रक्षा करता है या नही, इस सबसे हमारा क्या मतलब है और इसकी हम क्यो चिन्ता करें? वह हम लोगो का प्रियतम, आराध्य देवता है, अत भय के भाव को छोड़कर हमे उसकी उपासना करनी चाहिए। जिस समय मनुष्य की सब वासनाएँ मिट जाती हैं, जिस समय वह और किसी विषय का चिन्तन नही करता, जिस समय वह ईश्वर के लिए पागल हो जाता है, उसी समय मनुष्य ईश्वर से वस्तुत प्रेम करता है। सासारिक प्रेमी जिस भाँति अपने प्रियतम से प्रेम करते हैं, उसी प्रकार हमें ईश्वर से भी प्रेम करना होगा। कृष्ण स्वय ईश्वर थे, राधा उनके प्रेम मे पागल थी। जिन ग्रन्थो मे राधा-कृष्ण की प्रेमकथाएँ वर्णित हैं, उन्हें पढो तो पता चलेगा कि ईश्वर से कैसे प्रेम करना चाहिए। किन्तु इस अपूर्व प्रेम के तत्त्व को कितने लोग समझते हैं? बहुत से ऐसे मनुष्य है जिनका हृदय पाप से परिपूर्ण है, वे नही जानते कि पवित्रता या नैतिकता किसे कहते हैं। वे क्या इन तत्त्वो को समझ सकते हैं? वे किसी भाँति इन तत्त्वो को समझ ही नही सकते। जिस समय मन से सारे सासारिक वासनापूर्ण विचार दूर हो जाते हैं और जब निर्मल नैतिक तथा आध्यात्मिक भाव-जगत् मे मन की अवस्थिति हो जाती है, उस समय वे अशिक्षित होने पर भी शास्त्र की अति जटिल समस्याओ के रहस्य को समझने मे समर्थ होते हैं। किन्तु इस प्रकार के मनुष्य ससार मे कितने हैं या हो सकते हैं? ऐसा कोई धर्म नही है जिसे लोग विकृत न कर दें। उदाहरणार्थ ज्ञान की

हाई देकर लोग अनायास ही कह सकते हैं कि आत्मा जब देह से सम्पूर्णतया पृथक है, तो देह चाहे जो पाप करे, आत्मा उस कार्य में लिप्त नहीं हो सकती। यदि वे ठीक तरह से धर्म का अनुसरण करते तो हिन्दू, मुसलमान ईसाई अथवा कोई भी दूसरा धर्मावलम्बी क्यों न हो सभी पवित्रता के अवतारस्वरूप होते। किन्तु मनुष्य अपनी अपनी अच्छी या बुरी प्रकृति के अनुसार परिचालित होते हैं, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु संसार में सदा कुछ मनुष्य ऐसे भी होते हैं जो ईश्वर का नाम सुनते ही उन्मत्त हो जाते हैं ईश्वर का गुणगान करते करते जिनकी आँखों से प्रेमाश्रु की प्रबल धारा बहने लगती है। इसी प्रकार के लोग सच्चे भक्त हैं।

भक्ति की प्रथम अवस्था में भक्त ईश्वर को प्रभु और अपने को दास समझता है। अपनी दैनंदिन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह ईश्वर के प्रति कृतज्ञ अनुभव करता है इत्यादि। इस प्रकार के भावों को एकदम छोड़ देना चाहिए। केवल एक ही आकर्षक शक्ति है और वह है ईश्वर। उसी आकर्षक शक्ति के कारण सूर्य चन्द्र एवं अन्यान्य सभी चीजें गतिमान होती हैं। इस संसार की अच्छी या बुरी सभी चीजें ईश्वराभिमुख चल रही हैं। हमारे जीवन की सारी घटनाएँ, अच्छी या बुरी हमें उसीकी ओर ले जाती हैं। एक मनुष्य ने दूसरे का अपने स्वार्थ के लिए खून किया। जो कुछ भी हो अपने लिए हो या दूसरों के लिए हो प्रेम ही इस कार्य का मूल है। खराब हो या अच्छा हो प्रेम ही सब चीजों का प्रेरक है। शेर जब भैंस को मारता है तब वह अपनी या अपने बच्चों की भूख मिटाने के लिए ऐसा करता है।

ईश्वर प्रेम का मूर्त रूप है। सदा सब अपराधों को क्षमा करने के लिए प्रस्तुत अनादि अनन्त ईश्वर प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। लोग जानें या न जानें वे उसकी ओर आकृष्ट हो रहे हैं। पति की परमानुरागिनी स्त्री नहीं जानती कि उसके पति म भी वही महान् दिव्य आकर्षक शक्ति है जो उसको अपने स्वामी की ओर ले जाती है। हमारा उपास्य है—केवल यही प्रेम का ईश्वर। जब तक हम उसे स्रष्टा पालनकर्ता आदि समझते हैं तब तक उसकी बाह्य पूजा आदि की आवश्यकता है किन्तु जिस समय इन सारी भावनाओं का परित्याग कर उसे प्रेम का अवतारस्वरूप समझते हैं एवं सब वस्तुओं में उसे और उसमें सब वस्तुओं को देखते हैं, उसी समय हम परा भक्ति प्राप्त करते हैं।

# हिन्दू धर्म के सामान्य आधार

लाहौर पहुँचने पर आर्य समाज और सनातन धर्मसभा दोनो के नेताओ ने स्वामी जी का भव्य स्वागत किया। स्वामी जी ने अपने अल्पकालीन लाहौर-प्रवास के दौरान में तीन भाषण दिये। पहला 'हिन्दू धर्म के सामान्य आधार' पर, दूसरा 'भक्ति' पर और तीसरा विख्यात भाषण 'वेदान्त' पर था। उनका पहला भाषण निम्नलिखित है

## स्वामी जी का भाषण

यह वही भूमि है, जो पवित्र आर्यावर्त मे पवित्रतम मानी जाती है, यह वही ब्रह्मावर्त है, जिसका उल्लेख हमारे महर्षि मनु ने किया है। यह वही भूमि है, जहाँ से आत्म-तत्त्व की उच्चाकाक्षा का वह प्रबल स्रोत प्रवाहित हुआ है, जो आनेवाले युगो मे, जैसा कि इतिहास से प्रकट है, ससार को अपनी वाढ से आप्लावित करनेवाला है। यह वही भूमि है, जहाँ से उसकी वेगवती नद-नदियो के समान आध्यात्मिक महत्त्वाकाक्षाएँ उत्पन्न हुई और धीरे धीरे एक धारा मे सम्मिलित होकर शक्तिसम्पन्न हुई और अन्त मे ससार की चारो दिशाओ मे फैल गयी तथा वज्र-गम्भीर ध्वनि से उन्होंने अपनी महान् शक्ति की घोषणा समस्त जगत् मे कर दी। यह वही वीर भूमि है, जिसे भारत पर चढाई करनेवाले शत्रुओ के सभी आक्रमणो तथा अतिक्रमणो का आघात सबसे पहले सहना पडा था। आर्यावर्त मे घुसनेवाली वाहरी वर्वर जातियो के प्रत्येक हमले का सामना इसी वीर भूमि को अपनी छाती खोलकर करना पडा था। यह वही भूमि है, जिसने इतनी आपत्तियाँ झेलने के वाद भी अव तक अपने गौरव और शक्ति को एकदम नही खोया। यही भूमि है, जहाँ वाद मे दयालु नानक ने अपने अद्भुत विश्व-प्रेम का उपदेश दिया, जहाँ उन्होंने अपना विशाल हृदय खोलकर सारे ससार को—केवल हिन्दुओ को नही, वरन् मुसलमानो को भी—गले लगाने के लिए अपने हाथ फैलाये। यही पर हमारी जाति के सवसे वाद के तथा महान् तेजस्वी वीरो मे से एक, गुरु गोविन्द सिंह ने धर्म की रक्षा के लिए अपना एव अपने प्राण-प्रिय कुटुम्वियो का रक्त वहा दिया, और जिनके लिए यह खून की नदी वहायी गयी, उन लोगो ने भी जव उनका साथ छोड

दिया तब वे मर्माहत सिंह की भाँति चुपचाप दक्षिण देश में निर्जन-वास के लिए चले गये और अपने देश-भाइयों के प्रति अधरों पर एक भी कटु वचन न लाकर, तनिक भी असन्तोष प्रकट न कर, शान्त भाव से इहलोक छोड़ कर चले गये।

हे पंचनद देशवासी भाइयो! यहाँ अपनी इस प्राचीन पवित्र भूमि में तुम लोगों के सामने मैं *आचार्य के रूप में नहीं खड़ा हुआ हूँ*, कारण तुम्हें शिक्षा देने योग्य ज्ञान मेरे पास बहुत ही थोड़ा है। मैं तो पूर्वी प्रान्त से अपने पश्चिमी प्रान्त के भाइयों के पास इसीलिए आया हूँ कि उनके साथ हृदय खोलकर वार्तालाप करूँ, उन्हें अपने अनुभव बताऊँ और उनके अनुभव से स्वयं लाभ उठाऊँ। मैं यहाँ यह देखने नहीं आया कि हमारे बीच क्या क्या मतभेद हैं, वरन् मैं तो यह खोजने आया हूँ कि हम लोगों की मिलन-भूमि कौन सी है। यहाँ मैं यह जानने का प्रयत्न कर रहा हूँ कि वह कौन सा आधार है, जिस पर हम लोग आपस में सदा भाई बने रह सकते हैं, किस नींव पर प्रतिष्ठित होने से वह वाणी जो अनन्त काल से सुनायी दे रही है, उत्तरोत्तर अधिक प्रबल होती रहेगी। मैं यहाँ तुम्हारे सामने कुछ रचनात्मक कार्यक्रम रखने आया हूँ, ध्वंसात्मक नहीं। कारण आलोचना के दिन अब चले गये और आज हम रचनात्मक कार्य करने के लिए उत्सुक हैं। यह सत्य है कि संसार को समय समय पर आलोचना की जरूरत हुआ करती है, यहाँ तक कि कठोर आलोचना की भी, पर वह केवल अल्प काल के लिए ही होती है। हमेशा के लिए तो उन्नतिकारी और रचनात्मक कार्य ही वांछित होते हैं, आलोचनात्मक या ध्वंसात्मक नहीं। लगभग पिछले सौ वर्ष से हमारे इस देश में सर्वत्र आलोचना की बाढ़ सी आ गयी है, उधर सभी अन्धकारमय प्रदेशों पर पाश्चात्य विज्ञान का तीव्र प्रकाश डाला गया है, जिससे लोगों की दृष्टि अन्य स्थानों की अपेक्षा कोनों और गली-कूचों की ओर ही अधिक खिंच गयी है। स्वभावतः इस देश में सर्वत्र महान् और तेजस्वी मेधासम्पन्न पुरुषों का जन्म हुआ जिनके हृदय में सत्य और न्याय के प्रति प्रबल अनुराग था, जिनके अन्तःकरण में अपने देश के लिए और सबसे बढ़कर ईश्वर तथा अपने धर्म के लिए अगाध प्रेम था। क्योंकि ये महापुरुष अत्यधिक संवेदनशील थे, उनमें देश के प्रति इतना गहरा प्रेम था, इसलिए उन्होंने प्रत्येक वस्तु की जिसे बुरा समझा, तीव्र आलोचना की। अतीतकालीन इन महापुरुषों की जय हो! उन्होंने देश का बहुत ही कल्याण किया है। पर आज हम एक महावाणी सुनायी दे रही है, 'बस करो, बस करो!' निन्दा पर्याप्त हो चुकी, दोष-दर्शन बहुत हो चुका! अब तो पुनर्निर्माण का, फिर से संगठन करने का समय आ गया है। अब अपनी समस्त

विखरी हुई शक्तियो को एकत्र करने का, उन सबको एक ही केन्द्र मे लाने का और उस सम्मिलित शक्ति द्वारा देश को प्राय सदियो से रुकी हुई उन्नति के मार्ग मे अग्रसर करने का समय आ गया है। घर की सफाई हो चुकी है। अब आवश्यकता है उसे नये सिरे से आवाद करने की। रास्ता साफ कर दिया गया है। आर्य सन्तानो, अव आगे वढो।

सज्जनो! इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर मैं आपके सामने आया हूँ और आरम्भ मे ही यह प्रकट कर देना चाहता हूँ कि मैं किसी दल या विशिष्ट सम्प्रदाय का नही हूँ। सभी दल और सभी सम्प्रदाय मेरे लिए महान् और महिमामय हैं। मैं उन सबसे प्रेम करता हूँ, और अपने जीवन भर मैं यही ढूंढने का प्रयत्न करता रहा कि उनमे कौन कौन सी वाते अच्छी और सच्ची है। इसीलिए आज मैंने सकल्प किया है कि तुम लोगो के सामने उन वातो को पेश करूँ, जिनमे हम एकमत है, जिससे कि हमे एकता की सम्मिलन-भूमि प्राप्त हो जाय, और यदि ईश्वर के अनुग्रह से यह सम्भव हो तो आओ, हम उसे ग्रहण करे और उसे सिद्धान्त की सीमाओ से बाहर निकालकर कार्यरूप मे परिणत करें। हम लोग हिन्दू हैं। मैं 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग किसी बुरे अर्थ मे नही कर रहा हूँ, और मैं उन लोगो से कदापि सहमत नही, जो उससे कोई बुरा अर्थ समझते हो। प्राचीन काल मे उस शब्द का अर्थ था—सिन्धु नद के दूसरी ओर वसनेवाले लोग। हमसे घृणा करनेवाले वहुतेरे लोग आज उस शब्द का कुत्सित अर्थ भले ही लगाते हो, पर केवल नाम मे क्या घरा है? यह तो हम पर ही पूर्णतया निर्भर है कि 'हिन्दू' नाम ऐसी प्रत्येक वस्तु का द्योतक रहे, जो महिमामय हो, आध्यात्मिक हो, अथवा वह ऐसी वस्तु का द्योतक रहे जो कलक का समानार्थी हो, जो एक पददलित, निकम्मी और धर्म-भ्रष्ट जाति का सूचक हो। यदि आज 'हिन्दू' शब्द का कोई बुरा अर्थ है तो उसकी परवाह मत करो। आओ, अपने कार्यों और आचरणो द्वारा यह दिखाने को तैयार हो जाओ कि समग्र ससार की कोई भी भाषा इससे ऊँचा, इससे महान् शब्द का आविष्कार नहीं कर सकी है। मेरे जीवन के सिद्धान्तो मे से एक यह भी सिद्धान्त रहा है कि मैं अपने पूर्वजो की सन्तान कहलाने मे लज्जित नही होता। मुझ जैसा गर्वीला मानव इस ससार मे शायद ही हो, पर मैं यह स्पष्ट रूप से वता देना चाहता हूँ कि यह गर्व मुझे अपने स्वय के गुण या शक्ति के कारण नही, वरन् अपने पूर्वजो के गौरव के कारण है। जितना ही मैंने अतीत का अध्ययन किया है, जितनी ही मैंने भूत काल की ओर दृष्टि डाली है, उतना ही यह गर्व मुझमे अधिक आता गया है। उससे मुझे श्रद्धा की उतनी ही दृढता और साहस प्राप्त हुआ है, जिसने मुझे धरती की घूलि से ऊपर उठाया है और मैं अपने उन

महान् पूर्वजों के निश्चित किये हुए कार्यक्रम के अनुसार कार्य करने को प्रेरित हुआ हूँ। ऐ उन्हीं प्राचीन आर्यों की सन्तानो! ईश्वर करे, तुम लोगों के हृदय में भी वही गर्व आविर्भूत हो जाय, अपने पूर्वजों के प्रति वही विश्वास तुम लोगों के रक्त में भी दौड़ने लगे, वह तुम्हारे जीवन से मिलकर एक हो जाय और संसार के उद्धार के लिए कार्यशील हो!

भाइयो! यह पता लगाने के पहले कि हम ठीक किस बात में एकमत हैं तथा हमारे जातीय जीवन का सामान्य आधार क्या है, हमें एक बात स्मरण रखनी होगी। जैसे प्रत्येक मनुष्य का एक व्यक्तित्व होता है, ठीक उसी तरह प्रत्येक जाति का भी अपना एक व्यक्तित्व होता है। जिस प्रकार एक व्यक्ति कुछ विशिष्ट बातों में, अपने विशिष्ट लक्षणों में अन्य व्यक्तियों से पृथक् होता है, उसी प्रकार एक जाति भी कुछ विशिष्ट लक्षणों में दूसरी जाति से भिन्न हुआ करती है। और जिस प्रकार प्रकृति की व्यवस्था में किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति करना हर एक मनुष्य का जीवनोद्देश्य होता है, जिस प्रकार अपने पूर्व कर्म द्वारा निर्धारित विशिष्ट मार्ग से उस मनुष्य को चलना पड़ता है, ठीक ऐसा ही जातियों के विषय में भी है। प्रत्येक जाति को किसी न किसी दैवनिर्दिष्ट उद्देश्य को पूरा करना पड़ता है, प्रत्येक जाति को संसार में एक सन्देश देना पड़ता है तथा प्रत्येक जाति को एक व्रतविशेष का उद्यापन करना होता है। अतः आरम्भ से ही हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमारी जाति का वह व्रत क्या है, विधाता ने उसे भविष्य के किस निर्दिष्ट उद्देश्य के लिए नियुक्त किया है, विभिन्न राष्ट्रों की पृथक्-पृथक् उन्नति और अधिकार में हमें कौन सा स्थान ग्रहण करना है, विभिन्न जातीय स्वरों की समरसता में हमें कौन सा स्वर अलापना है। हम अपने देश में बचपन में यह किस्सा सुना करते हैं कि कुछ सर्पों के फन में मणि होती है और जब तक मणि वहाँ है, तब तक तुम सर्प को मारने का कोई भी उपाय करो, वह नहीं मर सकता। हम लोगों ने किस्से-कहानियों में दैत्यों और दानवों की बातें पढ़ी हैं। उनके प्राण 'हीरामन तोते' के कलेजे में बन्द रहते हैं और जब तक उस 'हीरामन तोते' की जान में जान रहेगी, तब तक उस दानव का बाल भी बाँका न होगा, चाहे तुम उसके टुकड़े टुकड़े ही क्यों न कर डालो। यह बात राष्ट्रों के सम्बन्ध में भी सत्य है। राष्ट्रविशेष का जीवन भी ठीक उसी प्रकार मानो किसी बिन्दु में केन्द्रित रहता है, वहीं उस राष्ट्र की राष्ट्रीयता रहती है और जब तक उस मर्मस्थान पर चोट नहीं पड़ती, तब तक वह राष्ट्र मर नहीं सकता। इस तथ्य के प्रकाश में हम संसार के इतिहास की एक अद्वितीय एवं सबसे अपूर्व घटना को समझ सकते हैं। हमारी इस पददलित मातृभूमि पर बारम्बार बर्बर जातियों

के आक्रमणो के दौर आते रहे हैं। 'अल्लाहो अकबर' के गगनभेदी नारो से भारत-गगन सदियो तक गूंजता रहा है और मृत्यु की अनिश्चित छाया प्रत्येक हिन्दू के सिर पर मंडराती रही है। ऐसा कोई हिन्दू न रहा होगा, जिसे पल पल पर मृत्यु की आशका न होती रही हो। ससार के इतिहास मे इस देश से अधिक दु ख पानेवाला तथा अधिक पराधीनता भोगनेवाला और कौन देश है? पर तो भी हम जैसे पहले थे, आज भी लगभग वैसे ही बने हुए है, आज भी हम आवश्यकता पडने पर बारम्बार विपत्तियो का सामना करने को तैयार है, और इतना ही नही, हाल मे ऐसे भी लक्षण दिखायी दिये हैं कि हम केवल शक्तिमान ही नही, वरन् बाहर जाकर दूसरो को अपने विचार देने के लिए भी उद्यत है, कारण, विस्तार ही जीवन का लक्षण है।

हम आज देखते है कि हमारे भाव और विचार भारत की सरहदो के पिंजडे मे ही बन्द नही हैं, बल्कि वे तो, हम चाहे या न चाहे, भारत के बाहर बढ रहे हैं, अन्य देशो के साहित्य मे प्रविष्ट हो रहे है, उन देशो मे अपना स्थान प्राप्त कर रहे है और इतना ही नही, कही कही तो वे आदेशदाता गुरु के आसन तक पहुँच गये हैं। इसका कारण यही है कि ससार की सम्पूर्ण उन्नति मे भारत का दान सबसे श्रेष्ठ रहा है, क्योकि उसने ससार को ऐसे दर्शन और धर्म का दान दिया है, जो मानव-मन को सलग्न रखनेवाला सबसे अधिक महान्, सबसे अधिक उदात्त और सबसे श्रेष्ठ विषय है। हमारे पूर्वजो ने बहुतेरे अन्य प्रयोग किये। हम सब यह जानते हैं कि अन्य जातियो के समान, वे भी पहले बहिर्जगत् के रहस्य के अन्वेषण मे लग गये, और अपनी विशाल प्रतिभा से वह महान् जाति, प्रयत्न करने पर, उस दिशा मे ऐसे ऐसे अद्भुत आविष्कार कर दिखाती, जिन पर समस्त ससार को सदैव अभिमान रहता। पर उन्होंने इस पथ को किसी उच्चतर ध्येय की प्राप्ति के लिए छोड दिया। वेद के पृष्ठो से उसी महान् ध्येय की प्रतिध्वनि सुनायी देती है—**अथ परा, यया तदक्षरमधिगम्यते**—'वही परा विद्या है, जिससे हमे उस अविनाशी पुरुष की प्राप्ति होती है।' इस परिवर्तनशील, नश्वर प्रकृति सम्बन्धी विद्या—मृत्यु, दु ख और शोक से भरे इस जगत् से सम्बन्धित विद्या बहुत बडी भले ही हो, एव सचमुच ही वह बडी है, परन्तु जो अपरिणामी और आनन्दमय है, जो चिर शान्ति का निधान है, जो शाश्वत जीवन और पूर्णत्व का एकमात्र आश्रय-स्थान है, एकमात्र जहाँ ही सारे दु खो का अवसान होता है, उस ईश्वर से सम्बन्ध रखनेवाली विद्या ही हमारे पूर्वजो की राय मे सबसे श्रेष्ठ और उदात्त है। हमारे पूर्वज यदि चाहते, तो ऐसे विज्ञानो का अन्वेषण सहज ही कर सकते थे, जो हमे केवल अन्न, वस्त्र और अपने साथियो पर आधिपत्य

वे सकते हैं जो हमें केवल दूसरों पर विजय प्राप्त करना और उन पर प्रभुत्व करना सिखाते हैं जो बली को निर्बल पर हुकूमत करने की शिक्षा देते हैं। पर उस परमेश्वर की अपार दया से हमारे पूर्वजों ने उस ओर बिलकुल ध्यान न देकर एकदम दूसरी दिशा पकड़ी जो पूर्वोक्त मार्ग से अनन्त गुनी श्रेष्ठ और महान् थी जिसमें पूर्वोक्त पथ की अपेक्षा अनन्त गुना आनन्द था। इस मार्ग को अपनाकर वे ऐसी अनन्य निष्ठा के साथ उस पर अग्रसर हुए कि आज वह हमारा जातीय विशेषत्व बन गया सहस्रों वर्ष से पिता-पुत्र की उत्तराधिकार-परम्परा से आता हुआ आज वह हमारे जीवन से घुल-मिल गया है हमारी रगों में बहनेवाले रक्त की बूँद बूँद से मिलकर एक हो गया है वह मानो हमारा दूसरा स्वभाव ही बन गया है यहाँ तक कि आज 'धर्म' और 'हिन्दू' ये दो शब्द समानार्थी हो गये हैं। यही हमारी जाति का वैशिष्ट्य है और इस पर कोई आघात नहीं कर सकता। बर्बर जातियों ने यहाँ आकर तलवारों और तोपों के बल पर अपने बर्बर धर्मों का प्रचार किया पर उनमें से एक भी हमारे मर्मस्थल को स्पर्श न कर सका सर्प की उस 'मणि' को न छू सका जातीय जीवन के प्राणस्वरूप उस 'हीरामन तोते' को न मार सका। अतः यही हमारी जाति की जीवनी शक्ति है और जब तक यह अव्याहत है तब तक संसार में ऐसी कोई ताकत नहीं जो इस जाति का विनाश कर सके। यदि हम अपनी इस सर्वश्रेष्ठ विरासत आध्यात्मिकता को न छोड़ें तो संसार के सारे अत्याचार-उत्पीड़न और दुःख हमें बिना चोट पहुँचाये ही निकल जायेंगे और हम लोग दुःख-कष्टाग्नि की उन ज्वालाओं में से प्रह्लाद के समान बिना जले बाहर निकल आयेंगे। यदि कोई हिन्दू धार्मिक नहीं है तो मैं उसे हिन्दू ही नहीं कहूँगा। दूसरे देशों में भले ही मनुष्य पहले राजनीतिक हो और फिर धर्म से थोड़ा सा लगाव रखे पर यहाँ भारत में तो हमारे जीवन का सबसे बड़ा और प्रथम कर्तव्य धर्म का अनुष्ठान है और फिर उसके बाद यदि अवकाश मिले तो दूसरे विषय भले ही आ जायँ। इस तथ्य को ध्यान में रखने से हम यह बात अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे कि अपने जातीय हित के लिए हमें आज क्यों सबसे पहले अपनी जाति की समस्त आध्यात्मिक शक्तियों को ढूँढ निकालना होगा जैसा कि अतीत काल में किया गया था और चिर काल तक किया जायगा। अपनी बिखरी हुई आध्यात्मिक शक्तियों का एकत्र करना ही भारत में जातीय एकता स्थापित करने का एकमात्र उपाय है। जिनकी हृत्तन्त्री एक ही आध्यात्मिक स्वर में बँधी है, उन सबके सम्मिलन से ही भारत में जाति का संगठन होगा।

इस देश में पर्याप्त पन्थ या सम्प्रदाय हुए हैं। आज भी ये पन्थ पर्याप्त संख्या

मे हैं और भविष्य मे भी पर्याप्त सख्या मे रहेगे, क्योकि हमारे धर्म की यह विशेपता रही है कि उसमे व्यापक तत्त्वो की दृष्टि से इतनी उदारता है कि यद्यपि वाद मे उनमे से अनेक सम्प्रदाय फैले हैं और उनकी बहुविध शाखा-प्रशाखाएँ फूटी हैं तो भी उनके तत्त्व हमारे सिर पर फैले हुए इस अनन्त आकाश के समान विशाल हैं, स्वय प्रकृति की भाँति नित्य और सनातन हैं। अत सम्प्रदायो का होना तो स्वाभाविक ही है, परन्तु जिसका होना आवश्यक नही है, वह है इन सम्प्रदायो के वीच के झगडे-झमेले। सम्प्रदाय अवश्य रहे, पर साम्प्रदायिकता दूर हो जाय। साम्प्रदायिकता से ससार की कोई उन्नति नही होगी, पर सम्प्रदायो के न रहने से ससार का काम नही चल सकता। एक ही साम्प्रदायिक विचार के लोग सब काम नही कर सकते। ससार की यह अनन्त शक्ति कुछ थोडे से लोगो से परिचालित नही हो सकती। यह बात समझ लेने पर हमारी समझ मे यह भी आ जायगा कि हमारे भीतर किसलिए यह सम्प्रदाय-भेदरूपी श्रमविभाग अनिवार्य रूप से आ गया है। भिन्न भिन्न आध्यात्मिक शक्ति-समूहो का परिचालन करने के लिए सम्प्रदाय कायम रहे। परन्तु जब हम देखते हैं कि हमारे प्राचीनतम शास्त्र इस बात की घोषणा कर रहे हैं कि यह सब भेद-भाव केवल ऊपर का है, देखने भर का है, और इन सारी विभिन्नताओ के वावजूद इनको एक साथ बाँधे रहनेवाला परम मनोहर स्वर्ण सूत्र इनके भीतर पिरोया हुआ है, तब इसके लिए हमे एक दूसरे के साथ लडने-झगडने की कोई आवश्यकता नही दिखायी देती। हमारे प्राचीनतम शास्त्रो ने घोषणा की है कि **एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**—'विश्व मे एक ही सद्वस्तु विद्यमान है, ऋषियो ने उसी एक का भिन्न भिन्न नामो से वर्णन किया है।' अत ऐसे भारत मे, जहाँ सदा से सभी सम्प्रदाय समान रूप से सम्मानित होते आये हैं, यदि अब भी सम्प्रदायो के बीच ईर्ष्या-द्वेष और लडाई-झगडे बने रहे तो धिक्कार है हमे, जो हम अपने को उन महिमान्वित पूर्वजो के वशधर बताने का दु साहस करें!

मेरा विश्वास है कि कुछ ऐसे महान् तत्त्व हैं, जिन पर हम सब सहमत हैं, जिन्हे हम सभी मानते हैं—चाहे हम वैष्णव हो या शैव, शाक्त हो या गाणपत्य, चाहे प्राचीन वेदान्ती सिद्धान्तो को मानते हो या अर्वाचीनो के ही अनुयायी हो, पुरानी लकीर के फकीर हो अथवा नवीन सुधारवादी हो—और जो भी अपने को हिन्दू कहता है, वह इन तत्त्वो मे विश्वास रखता है। सम्भव है कि इन तत्त्वो की व्याख्याओ मे भेद हो—और वैसा होना भी चाहिए, क्योकि हमारा यह मानदड रहा है कि हम सवको जवरदस्ती अपने साँचे मे न ढालें। हम जिस तरह की व्याख्या करें, सवको वही व्याख्या माननी पडेगी अथवा हमारी ही प्रणाली का अनुसरण

करना होगा—जबरदस्ती ऐसी चेष्टा करना पाप है। आज यहाँ पर जो लोग एकत्र हुए हैं शायद वे सभी एक स्वर से यह स्वीकार करेंगे कि हम लोग वेदों को अपने धर्म-रहस्यों का सनातन उपदेश मानते हैं। हम सभी यह विश्वास करते हैं कि वेदरूपी यह पवित्र शब्द राशि अनादि और अनन्त है। जिस प्रकार प्रकृति का न आदि है न अन्त, उसी प्रकार इसका भी आदि-अन्त नहीं है। और जब कभी हम इस पवित्र ग्रन्थ के प्रकाश में आते हैं तब हमारे धर्म-सम्बन्धी सारे भेद भाव और झगड़े मिट जाते हैं। इसमें हम सभी सहमत हैं कि हमारे धर्म विषयक जितने भी भेद हैं, उनकी अन्तिम मीमांसा करनेवाला यही वेद है। वेद क्या है, इस पर हम लोगों में मतभेद हो सकता है। कोई सम्प्रदाय वेद के किसी एक अंश को दूसरे अंश से अधिक पवित्र समझ सकता है। पर इससे तब तक कुछ बनता बिगड़ता नहीं जब तक हम यह विश्वास करते हैं कि वेदों के प्रति श्रद्धालु होने के कारण हम सभी आपस में भाई भाई हैं तथा उन सनातन पवित्र और अपूर्व ग्रन्थों से ही ऐसी प्रत्येक पवित्र महान् और उत्तम वस्तु का उद्भव हुआ है जिसके हम आज अधिकारी हैं। अच्छा यदि हमारा ऐसा ही विश्वास है तो फिर सबसे पहले इसी तत्त्व का भारत में सर्वत्र प्रचार किया जाय। यदि यही सत्य है तो फिर वेद सर्वदा ही जिस प्राधान्य के अधिकारी हैं तथा जिसमें हम सभी विश्वास करते हैं वह प्रधानता वेदों को दी जाय। अतः हम सबकी प्रथम मिलन भूमि है वेद।

दूसरी बात यह है कि हम सब ईश्वर में विश्वास करते हैं जो संसार की सृष्टि-स्थिति-लय-कारिणी शक्ति है जिसमें यह सारा चराचर कल्पान्त में लय होकर दूसरे कल्प के आरम्भ में पुनः अद्भुत जगत् प्रपंच रूप से बाहर निकल आता एवं अभिव्यक्त होता है। हमारी ईश्वर विषयक कल्पना भिन्न भिन्न प्रकार की हो सकती है—कुछ लोग ईश्वर को सम्पूर्ण सगुण रूप में, कुछ उन्हें सगुण पर मानव भावापन्न रूप में नहीं और कुछ उन्हें सम्पूर्ण निर्गुण रूप में ही मान सकते हैं और सभी अपनी अपनी धारणा की पुष्टि में वेद के प्रमाण भी दे सकते हैं। पर इन सब विभिन्नताओं के होते हुए भी हम सभी ईश्वर में विश्वास करते हैं। इसी बात को दूसरे शब्दों में ऐसा भी कह सकते हैं कि जिससे यह समस्त चराचर उत्पन्न हुआ है, जिसके अवलम्ब से वह जीवित है और अन्त में जिसमें वह फिर से लीन हो जाता है, उस अद्भुत अनन्त शक्ति पर जो विश्वास नहीं करता, वह अपने को हिन्दू नहीं कह सकता। यदि ऐसी बात है तो इस तत्त्व को भी समग्र भारत में फैलाने की चेष्टा करनी होगी। तुम इस ईश्वर का चाहे जिस भाव से प्रचार करो, ईश्वर सम्बन्धी तुम्हारा भाव भले ही मेरे भाव से भिन्न हो, पर हम इसके लिए आपस में झगड़ा नहीं करेंगे। हम चाहते हैं ईश्वर का प्रचार फिर

वह किसी भी रूप मे क्यो न हो। हो सकता है, ईश्वर सम्बन्धी इन विभिन्न धारणाओ मे कोई अधिक श्रेष्ठ हो, पर याद रखना, उनमे कोई भी धारणा बुरी नही है। उन धारणाओ मे कोई उत्कृष्ट, कोई उत्कृष्टतर और कोई उत्कृष्टतम हो सकती है, पर हमारे धर्म-तत्त्व की पारिभाषिक शब्दावली मे 'बुरा' नाम का कोई शब्द नही है। अत, ईश्वर के नाम का चाहे जो कोई जिस भाव से प्रचार करे, वह निश्चय ही ईश्वर के आशीर्वाद का भाजन होगा। उसके नाम का जितना ही अधिक प्रचार होगा, देश का उतना ही कल्याण होगा। हमारे बच्चे बचपन से ही इस भाव को हृदय मे धारण करना सीखे—अत्यन्त दरिद्र और नीचातिनीच मनुष्य के घर से लेकर बडे से बडे धनी-मानी और उच्चतम मनुष्य के घर मे भी ईश्वर के शुभ नाम का प्रवेश हो!

अब तीसरा तत्त्व मैं तुम लोगो के सामने प्रकट करना चाहता हूँ। हम लोग औरो की तरह यह विश्वास नही करते कि इस जगत् की सृष्टि केवल कई हज़ार वर्ष पहले हुई है और एक दिन इसका सदा के लिए ध्वस हो जायगा। साथ ही, हम यह भी विश्वास नही करते कि इसी जगत् के साथ शून्य से जीवात्मा की भी सृष्टि हुई है। मैं समझता हूँ कि इस विषय मे भी हम सब सहमत हो सकते हैं। हमारा विश्वास है कि प्रकृति अनादि और अनन्त है, पर हाँ, कल्पान्त मे यह स्थूल बाह्य जगत् अपनी सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होता है, और कुछ काल तक उस सूक्ष्मावस्था मे रहने के बाद पुन उसका प्रक्षेपण होता है तथा प्रकृति नामक इस अनन्त प्रपच की अभिव्यक्ति होती है। यह तरगाकार गति अनन्त काल से—जब स्वय काल का ही आरम्भ नही हुआ था तभी से—चल रही है और अनन्त काल तक चलती रहेगी।

पुन हिन्दू मात्र का यह विश्वास है कि मनुष्य केवल यह स्थूल जड शरीर ही नही है, न ही उसके अभ्यन्तरस्थ यह 'मन' नामक सूक्ष्म शरीर ही प्रकृत मनुष्य है, वरन् प्रकृत मनुष्य तो इन दोनो से अतीत एव श्रेष्ठ है। कारण, स्थूल शरीर परिणामी है और मन का भी वही हाल है, परन्तु इन दोनो से परे 'आत्मा' नामक अनिर्वचनीय वस्तु है जिसका न आदि है, न अन्त। मैं इस 'आत्मा' शब्द का अग्रेज़ी मे अनुवाद नही कर सकता, क्योकि इसका कोई भी पर्याय गलत होगा। यह आत्मा 'मृत्यु' नामक अवस्था से परिचित नही। इसके सिवाय एक और विशिष्ट बात है, जिसने हमारे साथ अन्यान्य जातियो का बिलकुल मतभेद है। वह यह है कि आत्मा एक देह का अन्त होने पर दूसरी देह धारण करती है, ऐसा करते करते वह एक ऐसी अवस्था मे पहुँचती है, जब उसे फिर शरीर धारण करने की कोई इच्छा या आवश्यकता नही रह जाती, तब वह मुक्त हो जाती है

और फिर से कभी जन्म नहीं लेती। यहाँ मेरा तात्पर्य अपने शास्त्रों के संसार वाद या पुनर्जन्मवाद तथा आत्मा के नित्यत्ववाद से है। हम चाहे जिस सम्प्रदाय के हों पर इस विषय में हम सभी सहमत हैं। इस आत्मा-परमात्मा के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में हमारे मत भिन्न हो सकते हैं। एक सम्प्रदाय आत्मा को परमात्मा से अनन्त काल तक अलग मान सकता है, दूसरे के मत से आत्मा उसी अनन्त अग्नि की एक चिनगारी हो सकती है और फिर अन्यों के मतानुसार वह उस अनन्त से एकरूप और अभिन्न हो सकती है। पर जब तक हम सब लोग इस मौलिक तत्त्व को मानते हैं कि आत्मा अनन्त है, उसकी सृष्टि कभी नहीं हुई और इसलिए उसका नाश भी कभी नहीं हो सकता, उसे तो भिन्न भिन्न शरीरों में क्रमशः उन्नति करते करते अन्त में मनुष्य शरीर धारण कर पूर्णत्व प्राप्त करना होगा—तब तक हम आत्मा एवं परमात्मा के इस सम्बन्ध के विषय में चाहे जैसी व्याख्या क्यों न करें, उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। इसके विषय में हम सभी सहमत हैं। और इसके बाद आध्यात्मिकता के क्षेत्र में सबसे उदात्त, सर्वाधिक विभेद को व्यक्त करनेवाले और आज तक के सबसे अपूर्व आविष्कार की बात आती है। तुम लोगों में से जिन्होंने पाश्चात्य चिन्तन प्रणाली का अध्ययन किया होगा, उन्होंने सम्भवतः यह लक्ष्य किया होगा कि एक ऐसा मौलिक प्रभेद है, जो पाश्चात्य विचारों को एक ही आघात में पौर्वात्य विचारों से पृथक कर देता है। वह यह है कि भारत में हम सभी, चाहे हम शाक्त हों या शैव या वैष्णव, अथवा बौद्ध या जैन ही क्यों न हों—हम सब के सब यही विश्वास करते हैं कि आत्मा स्वभावतः शुद्ध, पूर्ण, अनन्त, शक्तिसम्पन्न और आनन्दमय है। अन्तर केवल इतना है कि द्वैतवादियों के मत से आत्मा का वह स्वाभाविक आनन्दस्वभाव पिछले बुरे कर्मों के कारण संकुचित हो गया है एवं ईश्वर के अनुग्रह से वह फिर विकसित हो जायगा और आत्मा पुनः अपने पूर्ण स्वभाव को प्राप्त हो जायगी। पर अद्वैतवादी कहते हैं कि आत्मा के संकुचित होने की यह धारणा भी अंशतः भ्रमात्मक है—हम तो माया के आवरण के कारण ही ऐसा समझते हैं कि आत्मा अपनी सारी शक्ति खो बैठी है, जब कि वास्तव में उसकी समस्त शक्ति तब भी पूर्ण रूप से अभिव्यक्त रहती है। जो भी अन्तर हो पर हम एक ही केन्द्रीय तत्त्व पर पहुँचते हैं कि आत्मा स्वभावतः ही पूर्ण है और यही प्राच्य और पाश्चात्य भावों के बीच एक ऐसा अन्तर डाल देता है जिसमें कहीं समझौता नहीं है। जो कुछ महान् है, जो कुछ शुभ है, पौर्वात्य उसका अन्वेषण अभ्यन्तर में करता है। जब हम पूजा-उपासना करते हैं तब आँखें बन्द कर ईश्वर को अन्दर ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं, और पाश्चात्य अपने बाहर ही ईश्वर को ढूँढ़ता फिरता है। पाश्चात्यों

के धर्मग्रन्थ प्रेरित (inspired) हैं, जब कि हमारे धर्मग्रन्थ अन्त प्रेरित (expired) हैं, नि श्वास की तरह वे निकले है, ईश्वरनि श्वसित हैं, मन्त्रद्रष्टा ऋषियो के हृदयो मे निकले हैं।[1]

यह एक प्रधान बात है, जिसे अच्छी तरह समझ लेने की आवश्यकता है। प्यारे भाइयो ! मैं तुम लोगो को यह बताये देता हूँ कि यही बात भविष्य मे हमे विशेष रूप से बार बार बतलानी और समझानी पडेगी। क्योकि यह मेरा दृढ विश्वास है और मैं तुम लोगो से भी यह बात अच्छी तरह समझ लेने को कहता हूँ कि जो व्यक्ति दिन-रात अपने को दीन-हीन या अयोग्य समझे हुए बैठा रहेगा, उसके द्वारा कुछ भी नही हो सकता। वास्तव मे अगर दिन-रात वह अपने को दीन, नीच एव 'कुछ नही' समझता है तो वह 'कुछ नही' ही बन जाता है। यदि तुम कहो कि 'मेरे अन्दर शक्ति है' तो तुममे शक्ति जाग उठेगी। और यदि तुम सोचो कि 'मैं 'कुछ नही हूँ,' दिन-रात यही सोचा करो, तो तुम सचमुच ही 'कुछ नही' हो जाओगे। तुम्हे यह महान् तत्त्व सदा स्मरण रखना चाहिए। हम तो उसी सर्व शक्तिमान परम पिता की सन्तान हैं, उसी अनन्त ब्रह्माग्नि की चिनगारियाँ हैं—भला हम 'कुछ नही' क्योकर हो सकते हैं ? हम सब कुछ हैं, हम सब कुछ कर सकते हैं, और मनुष्य को सब कुछ करना ही होगा, हमारे पूर्वजो मे ऐसा ही दृढ आत्मविश्वास था। इसी आत्मविश्वास रूपी प्रेरणा-शक्ति ने उन्हे सभ्यता की उच्च से उच्चतर सीढी पर चढाया था। और, अब यदि हमारी अवनति हुई हो, हममे दोष आया हो तो मैं तुमसे सच कहता हूँ, जिस दिन हमारे पूर्वजो ने अपना यह आत्मविश्वास गँवाया, उसी दिन से हमारी यह अवनति, यह दुरवस्था आरम्भ हो गयी। आत्मविश्वास-हीनता का मतलब है ईश्वर मे अविश्वास। क्या तुम्हे विश्वास है कि वही अनन्त मगलमय विधाता तुम्हारे भीतर से काम कर रहा है ? यदि तुम ऐसा विश्वास करो कि वही सर्वव्यापी अन्तर्यामी प्रत्येक अणु-परमाणु मे—तुम्हारे शरीर, मन और आत्मा मे ओत-प्रोत है, तो फिर क्या तुम कभी उत्साह से वचित रह सकते हो ? मैं पानी का एक छोटा सा बुलबुला हो सकता हूँ, और तुम एक पर्वताकार तरग, तो इससे क्या ? वह अनन्त समुद्र जैसा तुम्हारे लिए, वैसा ही मेरे लिए भी आश्रय है। उस जीवन, शक्ति और आध्यात्मिकता के असीम सागर पर जैसा तुम्हारा, वैसा ही मेरा भी अधिकार है। मेरे जन्म से ही, मुझमे जीवन होने से ही, यह प्रमाणित हो रहा है कि तुम्हारे समान, चाहे तुम पर्वताकार तरग ही क्यो न हो, मैं भी उसी

---

१ Inspire का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है—श्वास का बाहर से अन्दर जाना और Expire का—श्वास का भीतर से बाहर निकलना।

अनन्त जीवन, अनन्त शिव और अनन्त शक्ति के साथ नित्यसंयुक्त है। अतएव भाइयो ! तुम अपनी सन्तानों को उनके जन्म-काल से ही इस महान्, जीवनप्रद, उच्च और उदात्त तत्त्व की शिक्षा देना शुरू कर दो। उन्हें अद्वैतवाद की ही शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं; तुम चाहे द्वैतवाद की शिक्षा दो या जिस किसी 'वाद' की जो भी तुम्हें रुचे। परन्तु हम पहले ही देख चुके हैं कि यही सर्वमान्य 'वाद' भारत में सर्वत्र स्वीकृत है। आत्मा की पूर्णता के इस अपूर्व सिद्धान्त को सभी सम्प्रदायवाले समान रूप से मानते हैं। हमारे महान् दार्शनिक कपिल महर्षि ने कहा है कि पवित्रता यदि आत्मा की प्रकृति न हो, तो आत्मा बाद में कभी भी पवित्रता को प्राप्त नहीं हो सकती, क्योंकि जो स्वभावतः पूर्ण नहीं है, वह यदि किसी प्रकार पूर्णता पा भी ले, तो वह पूर्णता उसमें स्थिर भाव से नहीं रह सकती, उससे पुनः चली जायगी। यदि अपवित्रता ही मनुष्य का स्वभाव हो, तो भले ही वह कुछ समय के लिए पवित्रता प्राप्त कर ले, पर वह सदा के लिए अपवित्र ही बना रहेगा। कभी न कभी ऐसा समय आयगा, जब वह पवित्रता धुल जायगी, दूर हो जायगी, और फिर वही पुरानी स्वाभाविक अपवित्रता अपना सिक्का जमा लेगी। अतएव हमारे सभी दार्शनिक कहते हैं कि पवित्रता ही हमारा स्वभाव है, अपवित्रता नहीं; पूर्णता ही हमारा स्वभाव है, अपूर्णता नहीं। इस बात को तुम सदा स्मरण रखो। उस महर्षि के सुन्दर दृष्टान्त को सदैव स्मरण रखो, जो शरीर त्याग करते समय अपने मन से अपने किये हुए उत्कृष्ट कार्यों और उच्च विचारों का स्मरण करने के लिए कहते हैं।[1] देखो, उन्होंने अपने मन से अपने दोषों और दुर्बलताओं को याद करने के लिए नहीं कहा है। यह सच है कि मनुष्य में दोष हैं, दुर्बलताएँ हैं, पर तुम सर्वदा अपने वास्तविक स्वरूप का स्मरण करो। बस यही इन दोषों और दुर्बलताओं को दूर करने का अमोघ उपाय है।

मैं समझता हूँ कि ये कतिपय तत्त्व भारतवर्ष के सभी भिन्न भिन्न सम्प्रदायवाले स्वीकार करते हैं, और सम्भवतः भविष्य में इसी सर्वस्वीकृत आधार पर समस्त सम्प्रदायों के लोग—वे उदार हों या कट्टर, पुरानी लकीर के फकीर हों या नयी रोशनीवाले—सभी के सभी आपस में मिलकर रहेंगे। पर सबसे बढ़कर एक अन्य बात भी हमें याद रखनी चाहिए, खेद है कि इसे हम प्रायः भूल जाते हैं। वह यह है कि भारत में धर्म का तात्पर्य है 'प्रत्यक्षानुभूति'; इससे कम कदापि नहीं। हमें ऐसी बात कोई नहीं सिखा सकता कि 'यदि तुम इस मत को स्वीकार करो तो तुम्हारा उद्धार हो जायगा', क्योंकि हम उस बात पर विश्वास करते ही नहीं।

---

1. ॐ क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर। ईशोपनिषद् १७॥

तुम अपने को जैसा बनाओगे, अपने को जैसे साँचे मे ढालोगे, वैसे ही बनोगे। तुम जो कुछ हो, जैसे हो, वह ईश्वर की कृपा और अपने प्रयत्न से बने हो। किसी मतामत मे विश्वास मात्र से तुम्हारा कोई विशेष उपकार नही होगा। 'अनुभूति', 'अनुभूति' की यह महती शक्तिमयी वाणी भारत के ही आध्यात्मिक गगनमडल से आविर्भूत हुई है, और एकमात्र हमारे ही शास्त्रो ने यह बारम्बार कहा है कि 'ईश्वर के दर्शन' करने होगे। यह बात बडे साहस की है, इसमे सन्देह नही, पर इसका लेशमात्र भी मिथ्या नही है, यह अक्षरश सत्य है। धर्म की प्रत्यक्ष अनुभूति करनी होगी, केवल सुनने से काम नही चलेगा, तोते की तरह कुछ थोडे से शब्द और धर्म विषयक बातें रट लेने से काम नही चलेगा, केवल बुद्धि द्वारा स्वीकार कर लेने से भी काम न चलेगा—आवश्यकता है हमारे अन्दर धर्म के प्रवेश करने की। अत ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास रखने का सबसे बडा प्रमाण यह नही है कि तर्क से सिद्ध है, वरन् ईश्वर के अस्तित्व का सर्वोच्च प्रमाण तो यह है कि हमारे यहाँ के प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी पहुँचे हुए लोगो ने ईश्वर का साक्षात्कार किया है। आत्मा के अस्तित्व पर हम केवल इसलिए विश्वास नही करते कि हमारे पास उसके प्रमाण मे उत्कृष्ट युक्तियाँ हैं, वरन् इसलिए कि प्राचीन काल मे भारतवर्ष के सहस्रो व्यक्तियो ने आत्मा के प्रत्यक्ष दर्शन किये है, आज भी ऐसे बहुत से है, जिन्होने आत्मोपलब्धि की है, और भविष्य मे भी ऐसे हज़ारो लोग होगे, जिन्हे आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति होगी। और जब तक मनुष्य ईश्वर के दर्शन न कर लेगा, आत्मा की उपलब्धि न कर लेगा, तब तक उसकी मुक्ति असम्भव है। अतएव, आओ, सबसे पहले हम इस बात को भली भाँति समझ लें, और हम इसे जितना ही अधिक समझेंगे, उतना ही भारत मे साम्प्रदायिकता का ह्रास होगा, क्योकि यथार्थ धार्मिक वही है, जिसने ईश्वर के दर्शन पाये हैं, जिसने अन्तर मे उसकी प्रत्यक्ष उपलब्धि की है। तब तो, 'जिसने उसे देख लिया, जो हमारे निकट से भी निकट और फिर दूर से भी दूर है, उसके हृदय की गाँठें खुल जाती हैं, उसके सारे सशय दूर हो जाते है और वह कर्मफल के समस्त बन्धनो से छुटकारा पा जाता है।"[1]

हा हन्त! हम लोग बहुधा अर्थहीन वागाडम्बर को ही आध्यात्मिक सत्य समझ बैठते हैं, पाडित्य से भरी सुललित वाक्य-रचना को ही गम्भीर धर्मानुभूति समझ लेते हैं। इसीसे यह सारी साम्प्रदायिकता आती है, सारा विरोध-भाव उत्पन्न होता है। यदि हम एक बार इस बात को भली भाँति समझ लें कि

---

१ भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसशया ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥ मुडकोपनिषद् २।२।८॥

प्रत्यक्षानुभूति ही प्रकृत धर्म है तो हम अपने ही हृदय को टटोलेंगे और यह समझने का प्रयत्न करेंगे कि हम धर्म-राज्य के सत्यों की उपलब्धि की ओर कहाँ तक अग्रसर हुए हैं। और तब हम यह समझ जायँगे कि हम स्वयं अन्धकार में भटक रहे हैं और अपने साथ दूसरों को भी उसी अन्धकार में भटका रहे हैं। बस इतना समझने पर हमारी साम्प्रदायिकता और लड़ाई मिट जायगी। यदि कोई तुमसे साम्प्रदायिक झगड़ा करने को तैयार हो तो उससे पूछो "तुमने क्या ईश्वर के दर्शन किये हैं? क्या तुम्हें कभी आत्म-दर्शन प्राप्त हुआ है? यदि नहीं तो तुम्हें ईश्वर के नाम का प्रचार करने का क्या अधिकार है? तुम तो स्वयं अँधेरे में भटक रहे हो और मुझे भी उसी अँधेरे में घसीटने की कोशिश कर रहे हो? 'अन्धा अन्धे को राह दिखावे' के अनुसार तुम मुझे भी गड्ढे में ले गिरोगे। अतएव किसी दूसरे के दोष निकालने के पहले तुमको अधिक विचार कर लेना चाहिए। सबको अपनी अपनी राह से चलने दो—'प्रत्यक्ष अनुभूति' की ओर अग्रसर होने दो। सभी अपने अपने हृदय में उस सत्यस्वरूप आत्मा के दर्शन करने का प्रयत्न करें। और जब वे उस भूमा के उस अनावृत सत्य के दर्शन कर लेंगे तभी उससे प्राप्त होनेवाले अपूर्व आनन्द का अनुभव कर सकेंगे। आत्मोपलब्धि से प्रसूत होनेवाला यह अपूर्व आनन्द कपोल-कल्पित नहीं है वरन् भारत के प्रत्येक ऋषि ने प्रत्येक सत्य द्रष्टा पुरुष ने इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया है। और तब उस आत्मदर्शी हृदय से आप ही आप प्रेम की वाणी फूट निकलेगी क्योंकि उसे ऐसे परम पुरुष का स्पर्श प्राप्त हुआ है जो स्वयं प्रेमस्वरूप है। बस तभी हमारे सारे साम्प्रदायिक लड़ाई झगड़े दूर होंगे और तभी हम 'हिन्दू' शब्द को तथा प्रत्येक हिन्दू-नामधारी व्यक्ति को यथार्थतः समझने हृदय में धारण करने तथा गम्भीर रूप से प्रेम करने व आलिंगन करने में समर्थ होंगे। मेरी बात पर ध्यान दो केवल तभी तुम वास्तव में हिन्दू कहलाने योग्य होगे जब 'हिन्दू' शब्द को सुनते ही तुम्हारे अन्दर बिजली दौड़ने लग जायगी। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू कहला सकोगे जब तुम किसी भी प्रान्त के कोई भी भाषा बोलनेवाले प्रत्येक हिन्दू-संज्ञक व्यक्ति को एकदम अपना तथा और स्नेही समझने लगोगे। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू माने जाओगे जब किसी भी हिन्दू कहलानेवाले का दुःख तुम्हारे हृदय में तीर की तरह आकर चुभेगा मानो तुम्हारा अपना लड़का ही विपत्ति में पड़ गया हो! केवल तभी तुम यथार्थतः 'हिन्दू' नाम के योग्य होगे जब तुम उनके लिए समस्त अत्याचार और उत्पीड़न सहने के लिए तैयार रहोगे। इसके ज्वलन्त दृष्टान्त हैं—तुम्हारे ही गुरु गोविन्द सिंह जिनकी चर्चा मैं आरम्भ में ही कर चुका हूँ। इस महात्मा ने देश के शत्रुओं के विरुद्ध लोहा लिया हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपने हृदय का रक्त बहाया अपने पुत्रों को

अपनी आँखो के सामने मौत के घाट उतरते देखा—पर जिनके लिए इन्होने अपना और अपने प्राणो से बढकर प्यारे पुत्रो का खून बहाया, उन्ही लोगो ने, इनकी सहायता करना तो दूर रहा, उल्टे इन्हे त्याग दिया।—यहाँ तक कि उन्हे इस प्रदेश से भी हटना पडा। अन्त मे मर्मान्तिक चोट खाये हुए सिंह की भाँति यह नरकेसरी शान्तिपूर्वक अपने जन्म-स्थान को छोड दक्षिण भारत मे जाकर मृत्यु की राह देखने लगा, परन्तु अपने जीवन के अन्तिम मुहूर्त तक उसने अपने उन कृतघ्न देशवासियो के प्रति कभी अभिशाप का एक शब्द भी मुँह से नही निकाला। मेरी बात पर ध्यान दो। यदि तुम देश की भलाई करना चाहते हो तो तुममे से प्रत्येक को गुरु गोविन्द सिंह बनना पडेगा। तुम्हें अपने देशवासियो मे भले ही हज़ारो दोष दिखायी दे, पर तुम उनकी रग रग मे बहनेवाले हिन्दू रक्त की ओर ध्यान दो। तुम्हे पहले अपने इन स्वजातीय नर-रूप देवताओ की पूजा करनी होगी, भले ही वे तुम्हारी बुराई के लिए लाख चेष्टा किया करे। इनमे से प्रत्येक व्यक्ति यदि तुम पर अभिशाप और निन्दा की बौछार करे तो भी तुम इनके प्रति प्रेमपूर्ण वाणी का ही प्रयोग करो। यदि ये तुम्हे त्याग दे, पैरो से ठुकरा दें तो तुम उसी वीरकेसरी गोविन्द सिंह की भाँति समाज से दूर जाकर नीरव भाव से मौत की राह देखो। जो ऐसा कर सकता है, वही सच्चा हिन्दू कहलाने का अधिकारी है। हमे अपने सामने सदा इसी प्रकार का आदर्श उपस्थित रखना होगा। पारस्परिक विरोध-भाव को भूलकर चारो ओर प्रेम का प्रवाह बहाना होगा।

लोग भारत के पुनरुद्धार के लिए जो जी मे आये, कहे। मैं जीवन भर काम करता रहा हूँ, कम से कम काम करने का प्रयत्न करता रहा हूँ, मैं अपने अनुभव के बल पर तुमसे कहता हूँ कि जब तक तुम सच्चे अर्थों मे धार्मिक नही होते, तब तक भारत का उद्धार होना असम्भव है। केवल भारत ही क्यो, सारे ससार का कल्याण इसी पर निर्भर है। क्योकि, मैं तुम्हें स्पष्टतया बताये देता हूँ कि इस समय पाश्चात्य सभ्यता अपनी नीव तक हिल गयी है। भौतिकवाद की कच्ची रेतीली नीव पर खडी होनेवाली बडी से बडी इमारतें भी एक न एक दिन अवश्य ही आपद्ग्रस्त होगी, ढह जायँगी। इस विषय मे ससार का इतिहास ही सबसे बडा साक्षी है। जाति पर जाति उठी हैं और भौतिकवाद की नीव पर उन्होंने अपने गौरव का प्रासाद खडा किया है। उन्होंने ससार के समक्ष यह घोषणा की है कि जड के सिवा मनुष्य और कुछ नही है। ध्यान दो, पाश्चात्य भाषा मे 'मनुष्य आत्मा छोडता है' (A man gives up the ghost), पर हमारी भाषा मे 'मनुष्य शरीर छोडता है।' पाश्चात्य मनुष्य अपने सम्बन्ध मे पहले देह को ही लक्ष्य करता है, उसके बाद उसके एक आत्मा है। पर हम लोगो के अनुसार मनुष्य पहले आत्मा ही है, और फिर उसके एक देह

भी है। इन दो विभिन्न वाक्यों की छानबीन करने पर तुम देखोगे कि प्राच्य और पाश्चात्य विचार-प्रणाली में आकाश पाताल का अन्तर है। इसीलिए जितनी सभ्यताएँ भौतिक सुख-स्वच्छन्दता की रेतीली नींव पर कायम हुई थीं वे सभी थोड़े ही समय के लिए जीवित रहकर एक एक करके संसार से लुप्त हो गयीं परन्तु भारत की सभ्यता और भारत के चरणों के पास बैठकर शिक्षा ग्रहण करनेवाले चीन और जापान की सभ्यता आज भी जीवित है और इतना ही नहीं बल्कि उनमें पुनरुत्थान के लक्षण भी दिखायी दे रहे हैं। 'फ़िनिक्स'[1] के समान हजारों बार नष्ट होने पर भी वे पुनः अधिक तेजस्वी होकर प्रस्फुटित होने को तैयार हैं। पर भौतिक वाद के आधार पर जो सभ्यताएँ स्थापित हैं वे यदि एक बार नष्ट हो गयीं तो फिर उठ नहीं सकतीं—एक बार यदि महल ढह पड़ा तो बस सदा के लिए धूल में मिल गया! अतएव धैर्य के साथ राह देखते रहो हम लोगों का भविष्य उज्ज्वल है।

उतावले मत बनो किसी दूसरे का अनुकरण करने की चेष्टा मत करो। दूसरे का अनुकरण करना सभ्यता की निशानी नहीं है यह एक महान् पाठ है, जो हमें याद रखना है। मैं यदि आप ही राजा की सी पोशाक पहन लूँ तो क्या इतने ही से मैं राजा बन जाऊँगा? शेर की खाल ओढ़कर गधा कभी शेर नहीं बन सकता। अनुकरण करना हीन और डरपोक की तरह अनुकरण करना कभी उन्नति के पथ पर आगे नहीं बढ़ा सकता। वह तो मनुष्य के अधःपतन का लक्षण है। जब मनुष्य अपने आप पर घृणा करने लग जाता है, तब समझना चाहिए कि उस पर अन्तिम चोट बैठ चुकी है। जब वह अपने पूर्वजों को मानने में लज्जित होता है तो समझ लो कि उसका विनाश निकट है। यद्यपि मैं हिन्दू जाति में एक नगण्य व्यक्ति हूँ तथापि अपनी जाति और अपने पूर्वजों के गौरव से मैं अपना गौरव मानता हूँ। अपने को हिन्दू बताते हुए, हिन्दू कहकर अपना परिचय देते हुए, मुझे एक प्रकार का गर्व सा होता है। मैं तुम लोगों का एक तुच्छ सेवक होने में अपना गौरव समझता हूँ। तुम लोग आर्य ऋषियों के वंशधर हो—उन ऋषियों के जिनकी महत्ता की तुलना नहीं हो सकती। मुझे इसका गर्व है कि मैं तुम्हारे देश का एक नगण्य नागरिक हूँ। अतएव भाइयो आत्मविश्वासी बनो। पूर्वजों के नाम से अपने को लज्जित नहीं गौरवान्वित समझो। याद रहे किसीका अनुकरण कदापि न करो। कदापि नहीं। जब कभी तुम औरों के विचारों का अनुकरण करते हो तुम अपनी स्वाधीनता गँवा बैठते हो। यहाँ तक कि आध्यात्मिक विषय में भी यदि दूसरों के

---

१ यूनानी दन्तकथाओं के अनुसार फ़िनिक्स (Phoenix) एक चिड़िया है जो अकेली ५ वर्ष तक जीती है और पुनः अपने भस्म में से जी उठती है।

आज्ञाधीन हो कार्य करोगे, तो अपनी सारी शक्ति, यहाँ तक कि विचार की शक्ति भी खो बैठोगे। अपने स्वय के प्रयत्नो द्वारा अपने अन्दर की शक्तियो का विकास करो। पर देखो, दूसरे का अनुकरण न करो। हाँ, दूसरो के पास जो कुछ अच्छाई हो, उसे अवश्य ग्रहण करो। हमे दूसरो से अवश्य सीखना होगा। ज़मीन मे बीज बो दो, उसके लिए पर्याप्त मिट्टी, हवा और पानी की व्यवस्था करो, जब वह बीज अकुरित होकर कालान्तर मे एक विशाल वृक्ष के रूप मे फैल जाता है, तब क्या वह मिट्टी बन जाता है, या हवा या पानी ? नही, वह तो विशाल वृक्ष ही बनता है—मिट्टी, हवा और पानी से रस खीचकर वह अपनी प्रकृति के अनुसार एक महीरुह का रूप ही धारण करता है। उसी प्रकार तुम भी करो—औरो से उत्तम बाते सीखकर उन्नत बनो। जो सीखना नही चाहता, वह तो पहले ही मर चुका है। महर्षि मनु ने कहा है

**आददीत परा विद्या प्रयत्नादवरादपि।**
**अन्त्यादपि पर धर्म स्त्रीरत्न दुष्कुलादपि॥**

—'स्त्री-रत्न को, भले ही वह कुलीन न हो, अपनी पत्नी के रूप मे स्वीकार करो और नीच व्यक्ति की सेवा करके उससे भी श्रेष्ठ विद्या सीखने का प्रयत्न करो। चाडाल द्वारा भी श्रेष्ठ धर्म की शिक्षा ग्रहण करो।' औरो के पास जो कुछ भी अच्छा पाओ, सीख लो, पर उसे अपने भाव के साँचे मे ढालकर लेना होगा। दूसरे की शिक्षा ग्रहण करते समय उसके ऐसे अनुगामी न बनो कि अपनी स्वतन्त्रता गँवा बैठो। भारत के इस जातीय जीवन को भूल मत जाना। पल भर के लिए भी ऐसा न सोचना कि भारतवर्ष के सभी अधिवासी यदि अमुक जाति की वेश-भूषा धारण कर लेते या अमुक जाति के आचार-व्यवहारादि के अनुयायी बन जाते तो बडा अच्छा होता। यह तो तुम भली भाँति जानते हो कि कुछ ही वर्षों का अभ्यास छोड देना कितना कठिन होता है! फिर यह ईश्वर ही जानता है कि तुम्हारे रक्त मे कितने सहस्र वर्षों का सस्कार जमा हुआ है, कितने सहस्र वर्षों से यह प्रबल जातीय जीवन-स्रोत एक विशेष दिशा की ओर प्रवाहित हो रहा है। और क्या तुम यह समझते हो कि वह प्रबल धारा, जो प्राय अपने समुद्र के समीप पहुँच चुकी है, पुन उलटकर हिमालय की हिमाच्छादित चोटियो पर वापस जा सकती है? यह असम्भव है! यदि ऐसी चेष्टा करोगे तो जाति ही नष्ट हो जायगी। अत, इस जातीय जीवन-स्रोत को पूर्ववत् प्रवाहित होने दो। हाँ, जो बाँध इसके रास्ते मे रुकावट डाल रहे हैं, उन्हे काट दो, इसका रास्ता साफ़ करके प्रवाह को मुक्त कर दो, देखोगे, यह जातीय जीवन-स्रोत अपनी स्वाभाविक प्रेरणा से फूट कर आगे बढ निकलेगा और

यह जाति अपनी सर्वांगीण उन्नति करते करते अपने चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर होती जायगी।

भाइयो ! यही कार्य-प्रणाली है, जो हमें भारत में धर्म के क्षेत्र में अपनानी होगी। इसके सिवा और भी कई महती समस्याएँ हैं, जिनकी चर्चा समयाभाव के कारण इस रात मैं नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए जाति-भेद सम्बन्धी अद्भुत समस्या को ही ले लो। मैं जीवन भर इस समस्या पर हर एक पहलू से विचार करता रहा हूँ। भारत के प्रायः प्रत्येक प्रान्त में जाकर मैंने इस समस्या का अध्ययन किया है। इस देश के लगभग हर एक भाग की विभिन्न जातियों से मैं मिल-जुका हूँ। पर जितना ही मैं इस विषय पर विचार करता हूँ मेरे सामने उतनी ही कठिनाइयाँ आ पड़ती हैं और मैं इसके उद्देश्य अथवा तात्पर्य के विषय में किंकर्तव्यविमूढ़ सा हो जाता हूँ। अन्त में अब मेरी आँखों के सामने एक क्षीण आलोक-रेखा दिखायी देने लगी है, इधर कुछ ही समय से इसका मूल उद्देश्य मेरी समझ में आने लगा है।

इसके बाद फिर खान-पान की समस्या भी बड़ी विषम है। वास्तव में यह एक बड़ी जटिल समस्या है। साधारणतः हम लोग इसे जितना अनावश्यक समझते हैं, सच पूछो तो यह उतनी अनावश्यक नहीं है। मैं तो इस सिद्धान्त पर आ पहुँचा हूँ कि आजकल खान-पान के बारे में हम लोग जिस बात पर जोर देते हैं वह एक बड़ी विचित्र बात है—वह शास्त्रानुमोदित नहीं है। तात्पर्य यह कि खान-पान में वास्तविक पवित्रता की अवहेलना करके ही हम लोग कष्ट पा रहे हैं। हम शास्त्रानुमोदित आहार प्रथा के वास्तविक अभिप्राय को बिल्कुल भूल गये हैं।

इसी प्रकार, और भी कई समस्याएँ हैं जिन्हें मैं तुम लोगों के समक्ष रखना चाहता हूँ और साथ ही यह बतलाना चाहता हूँ कि इन समस्याओं के समाधान क्या हैं तथा किस प्रकार इन समाधानों को कार्यरूप में परिणत किया जा सकता है। पर दुःख है, सभा के व्यवस्थित रूप से आरम्भ होने में देर हो गयी और अब मैं तुम लोगों को और अधिक नहीं रोकना चाहता। अतः जाति-भेद तथा अन्यान्य समस्याओं पर मैं फिर भविष्य में कभी कुछ कहूँगा।

अब केवल एक बात और कहकर मैं आध्यात्मिक तत्त्व विषयक अपना वक्तव्य समाप्त कर दूँगा। भारत में धर्म बहुत दिनों से गतिहीन बना हुआ है। हम चाहते हैं कि उसमें गति उत्पन्न हो। मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य के जीवन में धर्म प्रतिष्ठित हो। मैं चाहता हूँ कि प्राचीन काल की तरह राजमहल से लेकर दरिद्र के झोपड़े तक सर्वत्र समान भाव से धर्म का प्रवेश हो। याद रखो, धर्म ही इस जाति का साधारण उत्तराधिकार एवं जन्मसिद्ध स्वत्व है। इस धर्म को हर एक आदमी के दरवाजे तक निःस्वार्थ भाव से पहुँचाना होगा। ईश्वर के राज्य में जिस प्रकार

वायु सबके लिए समान रूप से प्राप्त होती है, उसी प्रकार भारतवर्ष मे धर्म को सुलभ बनाना होगा। भारत मे इसी प्रकार का कार्य करना होगा। पर छोटे छोटे दल बाँध आपसी मतभेदो पर विवाद करते रहने से नही बनेगा, हमे तो उन बातो का प्रचार करना होगा, जिनमे हम सब सहमत है और तब आपसी मतभेद आप ही आप दूर हो जायँगे। मैंने भारतवासियो से बारम्बार कहा है और अब भी कह रहा हूँ कि कमरे मे यदि सैकडो वर्षों से अन्धकार फैला हुआ है, तो क्या 'घोर अन्धकार!', 'भयकर अन्धकार!!' कहकर चिल्लाने से अन्धकार दूर हो जायगा? नही, रोशनी जला दो, फिर देखो कि अँधेरा आप ही आप दूर हो जाता है या नही। मनुष्य के सुधार का, उसके सस्कार का यही रहस्य है। उसके समक्ष उच्चतर बातें, उच्चतर प्रेरणाएँ रखो, पहले मनुष्य मे, उसकी मनुष्यता मे विश्वास रखो। ऐसा विश्वास लेकर क्यो प्रारम्भ करें कि मानव हीन और पतित है? मैं आज तक मनुष्य पर, बुरे से बुरे मनुष्य पर भी, विश्वास करके कभी विफल नही हुआ हूँ। जहाँ कही भी मैंने मानव मे विश्वास किया, वहाँ मुझे इच्छित फल ही प्राप्त हुआ है—सर्वत्र सफलता ही मिली है, यद्यपि प्रारम्भ मे सफलता के अच्छे लक्षण नही दिखायी देते थे। अत, मनुष्य मे विश्वास रखो, चाहे वह पडित हो या घोर मूर्ख, साक्षात् देवता जान पडे या मूर्तिमान शैतान, सबसे पहले मनुष्य मे विश्वास रखो, और तदुपरान्त यह विश्वास लाने का प्रयत्न करो कि यदि उसमे दोष हैं, यदि वह गलतियाँ करता है, यदि वह अत्यन्त घृणित और असार सिद्धान्तो को अपनाता है तो वह अपने यथार्थ स्वभाव के कारण ऐसा नही करता, वरन् उच्चतर आदर्शों के अभाव मे वैसा करता है। यदि कोई व्यक्ति असत्य की ओर जाता है, तो उसका कारण यही समझो कि वह सत्य को ग्रहण नही कर पाता। अत, मिथ्या को दूर करने का एकमात्र उपाय यही है कि उसे सत्य का ज्ञान कराया जाय। उसे सत्य का ज्ञान दे दो और उसके साथ अपने पूर्व मन के भाव की तुलना उसे करने दो। तुमने तो उसे सत्य का असली रूप दिखा दिया, बस यही तुम्हारा काम समाप्त हो गया। अब वह स्वय उस सत्य के साथ अपने पूर्व भाव की तुलना करके देखे। यदि तुमने वास्तव मे उसे सत्य का ज्ञान करा दिया है तो निश्चय जानो, मिथ्या भाव अवश्य दूर हो जायगा। प्रकाश कभी अन्धकार का नाश किये बिना नही रह सकता। सत्य अवश्य ही उसके भीतर के सद्भावो को प्रकाशित करेगा। यदि सारे देश का आध्यात्मिक सस्कार करना चाहते हो, तो उसके लिए यही रास्ता है—'नान्य पन्था'। वाद-विवाद या लडाई-झगडो मे कभी अच्छा फल नही हो सकता। लोगो से यह भी कहने की आवश्यकता नही कि तुम लोग जो कुछ कर रहे हो, वह ठीक नही है, खराब है। जो कुछ अच्छा है, उसे उनके सामने रख दो, फिर देखो, वे कितने आग्रह के साथ उसे ग्रहण करते

है और फिर देखोगे कि मनुष्य मात्र में जो अविनाशी ईश्वरीय शक्ति है, वह जाग्रत हो जाती है और जो कुछ उत्तम है, जो कुछ महिमामय है, उसे ग्रहण करने के लिए हाथ फैला देती है।

जो हमारी समग्र जाति का स्रष्टा, पालक एवं रक्षक है, हमारे पूर्वजों का ईश्वर है, भले ही वह विष्णु, शिव, शक्ति या गणेश आदि नामों से पुकारा जाता हो, सगुण या निर्गुण अथवा साकार या निराकार रूप से उसकी उपासना की जाती हो, जिसे जानकर हमारे पूर्वज 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' कह गये हैं, वह अपनी अनन्त प्रेम-शक्ति के साथ हममें प्रवेश करे, अपने शुभाशीर्वादों की हम पर वर्षा करे, हमें एक दूसरे को समझने की सामर्थ्य दे, जिससे हम यथार्थ प्रेम के साथ, सत्य के प्रति तीव्र अनुराग के साथ एक दूसरे के हित के लिए कार्य कर सकें, जिससे भारत के आध्यात्मिक पुनर्निर्माण के इस महत्कार्य में हमारे अन्दर अपने व्यक्तिगत नाम यश, व्यक्तिगत स्वार्थ, व्यक्तिगत बड़प्पन की वासना के अंकुर न फूटें।

# भक्ति

## [लाहौर में ९ नवम्बर, १८९७ को दिया हुआ भाषण]

समस्त उपनिषदो के गम्भीर निनादी प्रवाह के अतराल से, वडी दूर से आने-वाली प्रतिध्वनि की तरह, एक शब्द हमारे कानो तक पहुँचता है। यद्यपि उसके आयतन और उच्चता मे उसकी वहुत कुछ वृद्धि हुई है, पर समग्र वेदान्त साहित्य मे, स्पष्ट होने पर भी वह उतना प्रवल नही है। उपनिषदो का प्रधान उद्देश्य हमारे आगे भूमा का भाव और चित्र अकित करना ही जान पडता है। फिर भी इस अपूर्व उदात्त भाव के पीछे कही कही हमे कवित्व का भी आभास मिलता है, जैसे हम पढते हैं

> **न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्।**
> **नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्नि॰॥**
> (कठोपनिषद् २।२।१५)

—'वहाँ सूर्य प्रकाश नही करता, चन्द्र और सितारे भी वहाँ नही हैं, ये बिजलियाँ भी वहाँ नही चमकती, फिर इस भौतिक अग्नि का तो कहना ही क्या है!' इन दोनो अद्भुत पक्तियो का अपूर्व हृदयस्पर्शी कवित्व सुनते सुनते हम मानो इस इन्द्रियगम्य जगत् से—यहाँ तक कि वुद्धि-जगत् से भी दूर, वहुत दूर, ऐसे एक जगत् मे जा पहुँचते हैं जिसे किसी काल मे ज्ञान का विषय नही वनाया जा सकता, यद्यपि वह सदा हमारे पास ही मौजूद रहता है। इसी महान् भाव की छाया की तरह उसका अनुगामी एक और महान् भाव है, जिसको मानव जाति और भी आसानी के साथ प्राप्त कर सकती है, जो मनुष्य के दैनिक जीवन मे अनुसरण करने के अधिक उपयुक्त है, और जिसे मानव जीवन के प्रत्येक विभाग मे प्रविष्ट कराया जा सकता है। वह क्रमश पुष्ट होता आया है और परवर्ती युगो मे पुराणो मे और भी पूर्णता के साथ, और भी स्पष्ट भाषा मे व्यक्त किया गया है—और वह है भक्ति का आदर्श। भक्ति का वीज पहले से ही विद्यमान है, सहिताओ मे भी इसका थोडा वहुत परिचय मिलता है, उससे कुछ अधिक विकास उपनिषदो मे देखने मे आता है, किन्तु पुराणो मे उसका विस्तृत निरूपण दिखायी देता है।

अत भक्ति को भली भाँति समझने के लिए हमे अपने पुराणो को समझना

होगा। इस बीच पुराणों की प्रामाणिकता को लेकर बहुत कुछ वाद-विवाद हो चुका है, कितने ही अनिश्चित और असम्बद्ध अंशों को लेकर आलोचना-प्रत्यालोचना हो चुकी है, कितने ही समालोचकों ने कई अंशों के विषय में यह दिखाया है कि वर्तमान विज्ञान के आलोक में वे ठहर नहीं सकते आदि आदि। परन्तु इन वाद-विवादों को छोड़ देने पर, पौराणिक उक्तियों के वैज्ञानिक, भौगोलिक और ज्योतिषिक सत्यासत्य का निर्णय करना छोड़ देने पर, तथा प्रायः सभी पुराणों का आरम्भ से अन्त तक भली भाँति निरीक्षण करने पर हमें एक तत्त्व निश्चित और स्पष्ट रूप से दिखायी देता है, वह है भक्तिवाद। साधु, महात्मा और राजर्षियों के चरित्र का वर्णन करते हुए भक्तिवाद बारम्बार उल्लिखित, उदाहृत और आलोचित हुआ है। सौन्दर्य के महान् आदर्श के—भक्ति के आदर्श के दृष्टान्तों को समझाना और दर्शाना ही सब पुराणों का प्रधान उद्देश्य जान पड़ता है। मैंने पहले ही कहा है कि यह आदर्श साधारण मनुष्यों के लिए अधिकतर उपयोगी है। ऐसे लोग बहुत कम हैं जो वेदान्तालोक की पूर्ण छटा का वैभव समझ सकते हों अथवा उसका यथोचित आदर कर सकते हों—उनके तत्त्वों पर अमल करना बड़ी दूर की बात है। क्योंकि वास्तविक वेदान्ती का सबसे पहला काम है अभीः अर्थात् निर्भीक होना। यदि कोई वेदान्ती होने का दावा करता हो तो उसे अपने हृदय से भय को सदा के लिए निर्वासित कर देना होगा। और हम जानते हैं कि ऐसा करना कितना कठिन है। जिन्होंने संसार के सब प्रकार के लगाव छोड़ दिये हैं और जिनके ऐसे बन्धन बहुत ही कम रह गये हैं जो उन्हें दुर्बल हृदय कापुरुष बना सकते हों, वे भी मन ही मन इस बात को अनुभव करते हैं कि वे समय समय पर कितने दुर्बल और कैसे निर्वीर्य हो जाते हैं। जिन लोगों के चारों ओर ऐसे बन्धन हैं, जो भीतर-बाहर अगणित हजारों विषयों में उलझे हुए हैं, जीवन में प्रत्येक क्षण विषयों का आकर्षण जिन्हें नीचे से नीचे खिंचे जा रहा है, वे कितने दुर्बल होते हैं क्या यह भी कहना होगा? हमारे पुराण ऐसे ही लोगों को भक्ति का अत्यन्त मनोहारी सन्देश देते हैं।

उन लोगों के लिए ही सुकोमल और कवित्वमय भावों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, ध्रुव प्रह्लाद तथा अन्यान्य सैकड़ों हजारों सन्तों की अद्भुत और अनोखी जीवन-कथाएँ वर्णित की गयी हैं। इन दृष्टान्तों का उद्देश्य यही है कि लोग उसी भक्ति का अपने अपने जीवन में विकास करें और उन्हें इन दृष्टान्तों द्वारा रास्ता साफ दिखायी दे। तुम लोग पुराणों की वैज्ञानिक सत्यता पर विश्वास करो या न करो, पर तुम लोगों में ऐसा कोई भी आदमी नहीं है जिस पर प्रह्लाद ध्रुव या इन पौराणिक सन्तों के आख्यानों में से किसी एक का कुछ भी असर न

पडा हो। और यह भी नही कहा जा सकता कि इन पुराणो की उपयोगिता केवल आजकल के ज़माने मे ही है, पहले नही थी। पुराणो के प्रति हमारे कृतज्ञ रहने का एक और कारण यह भी है कि पिछले युग मे अवनत बौद्ध धर्म हमे जिस राह से ले चल रहा था, पुराणो ने उसकी अपेक्षा प्रशस्ततर, उन्नततर और सर्वसाधारण के उपयुक्त धर्म-मार्ग बताया। भक्ति का सहज और सरल भाव सुबोध भाषा मे व्यक्त अवश्य किया गया है, पर उतने से ही काम नही चलेगा। हमे अपने दैनिक जीवन मे उस भाव का व्यवहार करना होगा। ऐसा करने से हम देखेंगे कि भक्ति का वही भाव क्रमश परिस्फुट होकर अन्त मे प्रेम का सारभूत बन जाता है। जब तक व्यक्तिगत और जड वस्तुओ के प्रति प्रीति रहेगी, तब तक कोई पुराणो के उपदेशो से आगे न बढ सकेगा। जब तक दूसरो की सहायता अपेक्षित रहेगी, अथवा दूसरो पर निर्भर किया जायगा, जब तक यह मानवीय दुर्बलता बनी रहेगी, तब तक ये पुराण भी किसी न किसी रूप मे मौजूद रहेंगे। तुम उन पुराणो के नाम बदल सकते हो, उनकी निन्दा कर सकते हो, पर तुमको दूसरे कुछ नये पुराण बना लेने ही पडेंगे। अगर हम लोगो मे किसी ऐसे महापुरुष का आविर्भाव हो जो इन पुराणो को ग्रहण करना अस्वीकार कर दे, तो तुम देखोगे कि उनके देहान्त हो जाने के बीस ही वर्ष बाद उनके शिष्यो ने उनके जीवन के आधार पर एक नया पुराण रच डाला है। बस यही अन्तर होगा।

मनुष्य की प्रकृति यही चाहती है, उसके लिए ये आवश्यक हैं। पुराणो की आवश्यकता केवल उन्ही लोगो को नही है जो सारी मानवीय दुर्बलताओ के परे होकर परमहसोचित निर्भीकता प्राप्त कर चुके हैं, जिन्होने माया के सारे बन्धन काट डाले हैं, यहाँ तक कि स्वाभाविक अभावो तक को भी पार कर गये हैं जो सब कुछ जीत चुके हैं और जो इस लोक मे देवता हैं, केवल ऐसे महापुरुषो को ही पुराणो की आवश्यकता नही है। सगुण रूप मे ईश्वर की उपासना किये बिना साधारण मनुष्य का काम नही चल सकता। यदि वह प्रकृति के मध्य स्थित भगवान् की पूजा नही करता, तो उसे स्त्री, पुत्र, पिता, भाई, आचार्य या किसी न किसी व्यक्ति को भगवान् के स्थान पर प्रतिष्ठित करके उसकी पूजा करनी पडती है। पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो को ऐसा करने की अधिक आवश्यकता पडती है। प्रकाश का स्पन्दन सर्वत्र रहता है। बिल्ली या उसी श्रेणी के अन्य जानवर अँधेरे मे भी देख पाते हैं। इसी बात से प्रकाश का स्पन्दन अन्धकार मे होना भी सिद्ध होता है। परन्तु हम यदि किसी चीज़ को देखना चाहते हैं, तो उस चीज़ मे उसी स्तर के अनुकूल स्पन्दन होना चाहिए, जिस स्तर मे हम लोग मौजूद हैं। मतलब यह कि हम एक निर्गुण, निराकार सत्ता के विषय मे बातचीत या चर्चा भले ही करें, पर जब तक

हम लोग इस मर्त्यलोक के साधारण मनुष्य की स्थिति में रहेंगे तब तक हमें मनुष्यों में ही भगवान् को देखना पड़ेगा। इसीलिए हमारी भगवान् विषयक धारणा एवं उपासना स्वभावतः मानुषी है। सचमुच ही 'यह शरीर भगवान् का सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है।' इसीसे हम देखते हैं कि युगों से मनुष्य मनुष्य की ही उपासना करता आ रहा है। लोगों का इस मनुष्योपासना के विषय में जब कभी स्वाभाविक रूप से विकसित अतिशयाचार देखने में आता है, तो उसकी निन्दा या आलोचना भी होती है। फिर भी हमें यह दिखायी देता है कि इसकी रीढ़ काफी मजबूत है। ऊपर की शाखा-प्रशाखाएँ भले ही कड़ी आलोचना के योग्य हों पर उनकी जड़ बहुत ही गहराई तक पहुँची हुई और सुदृढ़ है। ऊपरी आडम्बरों के होने पर भी उसमें एक सार-तत्त्व है। मैं तुमसे यह कहना नहीं चाहता कि तुम बिना समझे बूझे किन्हीं पुरानी कथाओं अथवा अवैज्ञानिक अनर्थक सिद्धान्तों को जबरदस्ती गले के नीचे उतार जाओ। दुर्भाग्यवश कई पुराणों में वामाचारी व्याख्याएँ प्रवेश पा गयी हैं। मैं यह नहीं चाहता कि तुम उन सब पर विश्वास करो। मैं ऐसा करने को नहीं कह सकता बल्कि मेरा मतलब यह है कि इन पुराणों के अस्तित्व की रक्षा का कारण एक सार-तत्त्व है जिसे लुप्त नहीं होने देना चाहिए। और वह सार-तत्त्व है उनमें निहित भक्ति सम्बन्धी उपदेश धर्म को मनुष्य के दैनिक जीवन में परिणत करना दर्शनों के उच्चाकाश में विचरण करनेवाले धर्म को साधारण मनुष्यों के लिए दैनिक जीवनोपयोगी एवं व्यावहारिक बनाना।

## 'ट्रिब्यून' में प्रकाशित रिपोर्ट

इस भाषण की जो रिपोर्ट 'ट्रिब्यून' में प्रकाशित हुई उसका विवरण निम्नलिखित है :

वक्ता महोदय ने भक्ति की साधना में प्रतीक-प्रतिमाओं की उपयोगिता का समर्थन किया और उन्होंने कहा कि मनुष्य इस समय जिस अवस्था में है, ईश्वरेच्छा से यदि ऐसी अवस्था न होती तो बड़ा अच्छा होता। परन्तु विद्यमान तथ्य का प्रतिवाद व्यर्थ है। मनुष्य चैतन्य और आध्यात्मिकता आदि विषयों पर चाहे जितनी बातें क्यों न बनाये पर वास्तव में वह अभी जड़भावापन्न ही है। ऐसे जड़ मनुष्य को हाथ पकड़कर धीरे धीरे उठाना होगा—तब तक उठाना होगा जब तक वह चैतन्यमय सम्पूर्ण आध्यात्मिक भावापन्न न हो जाय। आजकल के जमाने में ९९ फी सदी ऐसे आदमी हैं जिनके लिए आध्यात्मिकता को समझना कठिन है। जो प्रेरक शक्तियाँ हमें धकेलकर आगे बढ़ा रही हैं, तथा हम जो कुछ प्राप्त करना चाहते हैं वे सभी जड़ हैं। हर्बर्ट स्पेन्सर के शब्दों में मेरा कहना है कि हम

केवल उसी रास्ते से आगे बढ सकते है, जो अल्पतम प्रतिरोध का हो। और पुराण-प्रणेताओ को यह बात भली भाँति मालूम थी, तभी वे हमारे लिए ऐसी पद्धति बता गये हैं। इस प्रकार के कार्य मे पुराणो को विस्मयजनक और बेजोड सफलता मिली है। भक्ति का आदर्श अवश्य ही आध्यात्मिक है, पर उसका रास्ता जड वस्तु के भीतर से होकर है और इस रास्ते के सिवा दूसरा रास्ता भी नही है। अत, जड जगत् मे जो कुछ ऐसा है, जो आध्यात्मिकता प्राप्त करने मे हमारी सहायता कर सकता है, उसे ग्रहण करना होगा, और उसे इस तरह काम मे लाना होगा कि मानव क्रमश आगे बढता हुआ पूर्ण आध्यात्मिक स्थिति मे विकसित हो सके। शास्त्र आरम्भ से ही लिंग, जाति या धर्म का भेदभाव छोडकर सबको वेद-पाठ करने का अधिकार प्रदान करते हैं। हमे भी इसी तरह उदार होना चाहिए। यदि मनुष्य जड मन्दिर बनाकर भगवान् मे प्रीति कर सके तो अच्छा ही है। यदि भगवान् की मूर्ति बनाकर इस प्रेम के आदर्श पर पहुँचने मे मनुष्य को कुछ भी सहायता मिलती है तो उसे एक की जगह बीस मूर्तियाँ पूजने दो। चाहे कोई भी काम क्यो न हो, यदि उसके द्वारा धर्म के उस उच्चतम आदर्श पर पहुँचने मे सहायता मिलती हो तो उसे वह अबाध गति से करने दो, पर हाँ, वह काम नैतिकता के विरुद्ध न हो। 'नैतिकता के विरुद्ध न हो', ऐसा इसलिए कहा गया कि नैतिकता विरोधी काम हमारे धर्म-मार्ग के सहायक नही होते, बल्कि विघ्न ही उपस्थित किया करते हैं।

स्वामी जी ने मूर्ति-पूजा के विरोध की समीक्षा करते हुए कहा कि भारतवर्ष मे सर्वप्रथम कबीर ने ही ईश्वरोपासना के लिए मूर्ति का व्यवहार करने के विरुद्ध आवाज़ उठायी थी। परन्तु भारत मे ऐसे कितने ही बडे बडे दार्शनिक और धर्म-सस्थापक हुए हैं, जिन्होंने भगवान् का सगुण रूप अस्वीकार कर निर्भीकता के साथ अपने निर्गुण मत का प्रचार करने पर भी मूर्ति-पूजा की निन्दा नही की। हाँ, उन्होंने मूर्ति-पूजा को उच्च कोटि की उपासना नही माना है, और न किसी पुराण मे ही मूर्ति-पूजन को ऊँचे दर्जे की उपासना ठहराया गया है।

यहूदियो के मूर्ति-पूजन के इतिहास का ज़िक्र करते हुए स्वामी जी ने कहा कि जिहोवा एक सन्दूक के भीतर रहते हैं, ऐसा विश्वास करनेवाले यहूदी लोग भी मूर्तिपूजक ही थे। इस ऐतिहासिक दृष्टान्त के उपस्थित रहते हमे मूर्ति-पूजा की इसलिए निन्दा नही करनी चाहिए कि और लोग उसे दोषपूर्ण बताते हैं। मूर्ति या किसी और भी जड वस्तु के प्रतीक को, जो मनुष्य को धर्म की प्राप्ति मे सहायता करे, बिना सकोच ग्रहण करना चाहिए। पर हमारा कोई भी धर्मग्रन्थ ऐसा नही है, जो स्पष्ट शब्दो मे यह नही कहता कि जड वस्तु की सहायता से अनुष्ठित होने-वाली उपासना निकृष्ट श्रेणी की है। सारे भारतवर्ष के सब लोगो को बलपूर्वक

ही प्रकाशित होते हैं, इसलिए वे सभी एक ही प्रकार या एक ही श्रेणी के हैं। जिस तरह दूर और पास से फ़ोटोग्राफ़ लेने पर एक ही सूर्य का चित्र अनेक प्रकार से दीख पड़ता है और ऐसा मालूम होता है कि प्रत्येक चित्र भिन्न भिन्न सूर्यों का है, उसी तरह सापेक्ष सत्य के विषय में भी समझना चाहिए। सभी सापेक्ष सत्य निरपेक्ष सत्य के साथ ठीक इसी रीति से सम्बद्ध हैं। अतएव प्रत्येक सापेक्ष सत्य या धर्म उसी नित्य निरपेक्ष सत्य का आभास होने के कारण सत्य है।

'विश्वास ही धर्म का मूल है'—मेरे इस कथन पर स्वामी जी ने मुसकराकर कहा, "राजा होने पर फिर खाने-पीने का कष्ट नहीं रहता, किन्तु राजा होना ही तो कठिन है। क्या विश्वास कभी जोर-जबरदस्ती करने से होता है? बिना अनुभव के ठीक ठीक विश्वास होना असम्भव है।"

किसी प्रसंग में उनको 'साधु' कहने पर उन्होंने उत्तर दिया, "हम लोग क्या साधु हैं? ऐसे अनेक साधु हैं, जिनके दर्शन या स्पर्श मात्र से ही दिव्य ज्ञान का उदय होता है।"

'संन्यासी इस प्रकार आलसी होकर क्यों समय बिताते हैं? दूसरों की सहायता के ऊपर क्यों निर्भर रहते हैं और समाज के लिए कोई हितकर काम क्यों नहीं करते?'—इन सब प्रश्नों के उत्तर में स्वामी जी बोले, "अच्छा बताओ तो भला, तुम इतने कष्ट से अर्थोपार्जन कर रहे हो। उसका बहुत थोड़ा सा अंश केवल अपने लिए व्यय करते हो, शेष में से कुछ अंश दूसरे लोगों के लिए, जिन्हें तुम अपना समझते हो, व्यय करते हो। वे लोग उसके लिए न तुम्हारा उपकार मानते हैं और न उनके लिए जितना व्यय करते हो, उससे सन्तुष्ट ही होते हैं। बाकी तुम कौड़ी कौड़ी जोड़ रहे हो। तुम्हारे मर जाने पर कोई दूसरा उसका भोग करेगा, और हो सकता है, यह कहकर गाली भी दे कि तुम अधिक रुपया नहीं रख गये। ऐसा तो गया-गुजरा तुम्हारा हाल है। और मैं तो ऐसा कुछ भी नहीं करता। भूख लगने पर पेट पर हाथ रखकर, हाथ को मुँह के पास ले जाकर दिखला देता हूँ, जो पाता हूँ खा लेता हूँ, कुछ भी कष्ट नहीं उठाता, कुछ भी संग्रह नहीं करता। हम दोनों में कौन बुद्धिमान है?—तुम या मैं!" मैं तो सुनकर अवाक् रह गया। इसके पहले मैंने अपने सामने किसीको भी इस प्रकार स्पष्ट रूप से बोलने का साहस करते नहीं देखा था।

आहार आदि करके कुछ विश्राम कर चुकने के बाद फिर उन्हीं वकील महाशय के निवास-स्थान पर गया। वहाँ अनेक प्रकार के वार्तालाप और चर्चा चलने लगी। लगभग नौ बजे रात को स्वामी जी को लेकर मैं अपने निवास-स्थान की ओर

लौटा। आते आते मैंने कहा, "स्वामी जी, आपको आज तर्क-वितर्क मे बहुत कष्ट हुआ।"

वे बोले, "बच्चा, तुम लोग तो ठहरे उपयोगितावादी (utilitarian)। यदि मैं चुप होकर बैठा रहूँ, तो क्या तुम लोग मुझे एक मुट्ठी भी खाने को दोगे! मैं इस प्रकार अनवरत बकता हूँ, लोगो को सुनकर आनन्द होता है, इसीलिए वे दल के दल आते हैं। किन्तु यह जान लो, जो लोग सभा मे तर्क-वितर्क करते हैं, अनेक प्रश्न पूछते हैं, वे वास्तविक सत्य को समझने की इच्छा से वैसा नही करते। मैं भी समझ जाता हूँ, कौन किस भाव से क्या कह रहा है और उसे उसी तरह उत्तर देता हूँ।"

मैंने स्वामी जी से पूछा, "अच्छा स्वामी जी, सभी प्रश्नो के इस प्रकार उत्तम उत्तम उत्तर आप तुरन्त किस प्रकार दे लेते हैं?"

वे बोले, "ये सब प्रश्न तुम्हारे लिए नवीन हैं, किन्तु मुझसे तो कितने ही मनुष्य कितनी बार इन प्रश्नो को पूछ चुके हैं, और उनका उत्तर कितनी ही बार दे चुका हूँ।" रात मे भोजन करते समय और भी अनेक बातें उन्होने कही। पैसा न छूते हुए देश-भ्रमण करते करते कहाँ कैसी कैसी घटनाएँ हुईं, यह सब वर्णन करने लगे। सुनते सुनते मेरे मन मे हुआ—अहा! न जाने इन्होने कितना कष्ट, कितनी विपत्तियाँ सही हैं। किन्तु वे तो उन सब घटनाओ को इस प्रकार हँसते हँसते सुनाने लगे, मानो वे अत्यन्त मनोरजक कहानियाँ हो। कही पर उनका तीन दिन तक बिना कुछ खाये रहना, किसी स्थान मे मिर्चा खाने के कारण पेट में ऐसी जलन होना, जो एक कटोरी इमली का पना पीने पर भी शान्त नही हुई, कही पर 'यहाँ साधु-सन्यासियो को स्थान नही'—इस प्रकार झिडके जाना, और कही खुफिया पुलिस की कडी नजर मे रहना—आदि सब घटनाएँ, जिन्हे सुनकर हमारे शरीर का खून पानी हो जाय, उनके लिए तो मानो एक तमाशा थी।

रात अधिक हुई देखकर उनके लिए सोने का प्रबन्ध कर मैं भी सोने के लिए चला गया, किन्तु रात मे नीद नही आयी। सोचने लगा—कैसा आश्चर्य, इतने वर्षों का दृढ सन्देह और अविश्वास स्वामी जी को देखकर और उनकी दो-चार बातें सुनकर ही दूर हो गया! अब और कुछ पूछने को नही रहा। जैसे जैसे दिन बीतने लगे, हमारी ही क्या—हमारे नौकर-चाकरो की भी उनके प्रति इतनी श्रद्धा-भक्ति हो गयी कि कभी कभी स्वामी जी उन लोगो की सेवा और आग्रह के मारे परेशान हो उठते थे।

२० अक्तूबर, १८९२ ई०। सबेरे उठकर स्वामी जी को प्रणाम किया। इस समय साहस कुछ बढ़ गया है, श्रद्धा-भक्ति भी हुई है। स्वामी जी भी मुझसे

अनेक वन नदी अरण्य आदि का विवरण सुनकर सन्तुष्ट हुए हैं। इस शहर में आज उनका चौथा दिन है। पाँचवें दिन उन्होंने कहा "संन्यासियों को नगर में तीन दिन से और गाँव में एक दिन से अधिक ठहरना उचित नहीं। मैं अब जल्दी चला जाना चाहता हूँ।" परन्तु मैं किसी प्रकार उनकी यह बात मानने को राजी न था। बिना तर्क द्वारा समझे मैं कैसे मानूँ! फिर अनेक वाद-विवाद के बाद वे बोले "एक स्थान में अधिक दिन रहने पर माया-ममता बढ़ जाती है। हम लोगों ने घर और आत्मीय जनों का परित्याग किया है। अतः जिन भावों से उस प्रकार की माया में मुग्ध होने की सम्भावना है उनसे दूर रहना ही हम लोगों के लिए अच्छा है।

मैंने कहा "आप कभी भी मुग्ध होनेवाले नहीं हैं।" अन्त में मेरा अतिशय आग्रह देखकर और भी दो-चार दिन ठहरना उन्होंने स्वीकार कर लिया। इस बीच मेरे मन में हुआ यदि स्वामी जी सर्वसाधारण के लिए व्याख्यान दें तो हम लोग भी उनका व्याख्यान सुनेंगे और दूसरों का भी कल्याण होगा। मैंने इसके लिए बहुत अनुरोध किया किन्तु व्याख्यान देने पर शायद नाम-यश की स्पृहा जग उठे, ऐसा कहकर उन्होंने मेरे अनुरोध को किसी भी तरह नहीं माना। पर उन्होंने यह भी बात मुझे बतायी कि उन्हें सभा में प्रश्नों का उत्तर देने में कोई आपत्ति नहीं है।

एक दिन बातचीत के सिलसिले में स्वामी जी 'पिकविक् पेपर्स' (Pickwick Papers) के दो-तीन पृष्ठ कण्ठस्थ बोल गये। मैंने उस पुस्तक को अनेक बार पढ़ा है। समझ गया—उन्होंने पुस्तक के किस स्थान से आवृत्ति की है। सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। सोचने लगा—संन्यासी होकर सामाजिक ग्रन्थ में से इन्होंने इतना कैसे कण्ठस्थ किया! हो न हो इन्होंने पहले इस पुस्तक को अनेक बार पढ़ा है। पूछने पर उन्होंने कहा "दो बार पढ़ा है। एक बार स्कूल में पढ़ने के समय और दूसरी बार आज से पाँच-छः मास पहले।"

आश्चर्यचकित होकर मैंने पूछा "फिर आपको किस प्रकार यह स्मरण रहा? और हम लोगों को क्यों नहीं रहता?"

स्वामी जी ने उत्तर दिया "एकाग्र मन से पढ़ना चाहिए और खाद्य के सार भाग द्वारा निर्मित वीर्य का नाश न करके उसका अधिकाधिक परिपाक (assimilation) कर लेना चाहिए।"

और एक दिन की बात है। स्वामी जी दोपहर में बिछौने पर लेटे हुए एक पुस्तक पढ़ रहे थे। मैं दूसरे कमरे में था। एकाएक स्वामी जी इतने जोर से हँस पड़े कि क्या हो गया सोचकर मैं उनके कमरे के दरवाजे के पास आकर खड़ा

हो गया। देखा, बात कोई विशेष नही है। वे जैसे पुस्तक पढ रहे थे, वैसे ही पढ़ रहे हैं। लगभग पन्द्रह मिनट खडा रहा, तो भी उनका ध्यान मेरी ओर नही गया। पुस्तक छोडकर उनका ध्यान किसी दूसरी ओर नही था। कुछ देर बाद मुझे देखकर अन्दर आने के लिए कहा, और मैं इतनी देर से खडा हूँ, यह सुनकर बोले, "जब जो काम करना हो, तब उसे पूरी लगन और शक्ति के साथ करना चाहिए। गाज़ीपुर के पवहारी बाबा ध्यान, जप, पूजा-पाठ जिस प्रकार एकचित्त से करते थे, उसी प्रकार वे अपने पीतल के लोटे को भी एकचित्त से माँजते थे। ऐसा माँजते थे कि सोने के समान चमकने लगता था।"

एक बार मैंने स्वामी जी से पूछा, "स्वामी जी, चोरी करना पाप क्यो है? सभी धर्म चोरी करने का निषेध क्यो करते है? मेरे विचार मे तो 'यह मेरा है', 'यह दूसरे का'—ये सब भावनाएँ केवल कल्पना मात्र हैं। मुझसे बिना पूछे ही जब कोई मेरा आत्मीय बन्धु मेरी किसी वस्तु का व्यवहार करता है, तो वह चोरी क्यो नही कहलाती? और पशु-पक्षी आदि जब हमारी कोई वस्तु नष्ट कर देते हैं, तो हम उसे चोरी क्यो नही कहते?"

स्वामी जी ने कहा, "हाँ, ऐसी कोई वस्तु या कार्य नहीं है, जो सभी अवस्था में और सभी समय बुरा और पाप कहा जा सके। फिर दूसरी ओर, अवस्था-भेद से प्रत्येक वस्तु ही बुरी और प्रत्येक कार्य ही पाप कहा जा सकता है। फिर भी, जिससे दूसरे को किसी प्रकार का कष्ट हो एव जिसके आचरण से शारीरिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक किसी प्रकार की दुर्बलता आये, उस कर्म को नही करना चाहिए, वह पाप है, और उससे विपरीत कर्म ही पुण्य है। सोचो, तुम्हारी कोई वस्तु किसीने चुरा ली, तो तुम्हे दु ख होगा या नही? तुम्हे जैसा लगता है, वैसा ही सम्पूर्ण जगत् के बारे मे भी समझो। इस दो दिन की दुनिया मे जब किसी छोटी वस्तु के लिए तुम एक प्राणी को दु ख दे सकते हो, तो धीरे धीरे भविष्य मे क्या बुरा काम नही कर सकोगे? फिर, यदि पाप-पुण्य न रहे, तो समाज ही न चले। समाज मे रहने पर उसके नियम आदि पालन करने पडते हैं। वन मे जाकर नगे होकर नाचो—कोई कुछ न कहेगा, किन्तु शहर मे इस प्रकार का आचरण करने पर पुलिस द्वारा तुम्हे पकड़वाकर किसी निर्जन स्थान में बन्द रख देना ही उचित होगा।"

स्वामी जी कई बार हास-परिहास के भीतर से विशेष शिक्षा दिया करते थे। वे गुरु होते हुए भी, उनके पास बैठना मास्टर के पास बैठने के समान नही था। अभी खूब रग-रस चल रहा है, बालक के समान हँसते हँसते हँसी के बहाने कितनी ही बातें कहे जा रहे हैं, सभी लोगो को हँसा रहे हैं, और दूसरे

ही क्षण ऐसे गम्भीर होकर जटिल प्रश्नों की व्याख्या करना आरम्भ कर देते हैं कि उपस्थित सभी लोग विस्मित होकर सोचने लगते हैं, 'इनके भीतर इतनी शक्ति! अभी तो देख रहे थे कि ये हमारे ही समान एक व्यक्ति हैं!

लोग सभी समय उनके पास शिक्षा लेने के लिए आते। उनका द्वार सभी समय खुला रहता। दर्शनार्थियों में से अनेक भिन्न भिन्न उद्देश्य से भी आते—कोई उनकी परीक्षा लेने के लिए, तो कोई मजेदार बात सुनने के लिए, कोई इसलिए कि उनके पास आने से बड़े बड़े धनी लोगों से बातचीत हो सकेगी, और कोई संसार-ताप से जर्जरित होकर उनके पास दो घड़ी शीतल होने एवं ज्ञान और धर्म का लाभ करने के लिए। किन्तु उनकी ऐसी अद्भुत क्षमता थी कि कोई किसी भाव से क्यों न आये उसे उसी क्षण समझ जाते थे और उसके साथ उसी तरह व्यवहार करते थे। उनकी मर्मभेदी दृष्टि से किसीके लिए अपना या कुछ छिपाकर रखना सम्भव नहीं था। एक समय किसी प्रतिष्ठित धनी का एकमात्र पुत्र विश्वविद्यालय की परीक्षा से बचने के लिए स्वामी जी के निकट बारम्बार आने लगा और साधु होऊँगा ऐसा भाव प्रकाशित करने लगा। वह मेरे एक मित्र का पुत्र था। मैंने स्वामी जी से पूछा 'यह लड़का आपके पास किस मतलब से इतना अधिक आता-जाता है? उसे क्या आप संन्यासी होने का उपदेश देंगे? उसका बाप मेरा मित्र है।

स्वामी जी ने कहा 'वह केवल परीक्षा के भय से साधु होना चाहता है। मैंने उससे कहा है एम ए पास कर चुकने के बाद साधु होने के लिए आना साधु होने की अपेक्षा एम ए पास करना कहीं सुगम है।

स्वामी जी जितने दिन मेरे यहाँ ठहरे, प्रत्येक दिन सन्ध्या समय उनका वार्तालाप सुनने के लिए इतनी अधिक संख्या में लोगों का आगमन होता था मानो कोई सभा लगी हो। इसी समय एक दिन मेरे निवास-स्थान पर, एक चन्दन के वृक्ष के नीचे तकिया के सहारे बैठकर उन्होंने जो बात कही थी उन्हें आजन्म न भूल सकूँगा। उस प्रसंग को उठाने में बहुत सी बातें कहनी होंगी। इसलिए उसे दूसरे समय के लिए ही रख छोड़ना युक्तिसंगत है। इस समय और एक अपनी बात कहूँगा। कुछ समय पहले से मेरी पत्नी की इच्छा किसी गुरु से मन्त्र-दीक्षा लेने की थी। मुझे उसमें आपत्ति नहीं थी। उस समय मैंने उससे कहा था "ऐसे व्यक्ति को गुरु बनाना जिसकी भक्ति मैं भी कर सकूँ। गुरु के घर में प्रवेश करते ही, यदि तुम्हारे अन्यथा भाव आ जाय तो तुम्हें किसी प्रकार का आनन्द या उपकार नहीं होगा। यदि किसी सत्पुरुष को गुरु रूप में पाऊँगा तो हम दोनों साथ ही दीक्षा-मन्त्र लेंगे अन्यथा नहीं। इस बात को उसने भी स्वीकार किया।

स्वामी जी के आगमन के बाद मैंने उससे पूछा, "यदि ये सन्यासी तुम्हारे गुरु हो, तो तुम उनकी शिष्या हो सकती हो ?"

वह उत्कण्ठा से बोली, "क्या वे गुरु होंगे ? होने से तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगी !"

स्वामी जी से एक दिन डरते डरते मैंने पूछा, "स्वामी जी, मेरी एक प्रार्थना पूर्ण करेंगे ?" स्वामी जी ने पूछा, "कहो, क्या कहना है ?" तब मैंने उनसे अनुरोध-पूर्वक कहा, "आप हम दोनो को दीक्षा दें।"

वे बोले, "गृहस्थ के लिए गृहस्थ गुरु ही ठीक है। गुरु होना बहुत कठिन है। शिष्य का समस्त भार ग्रहण करना पडता है। दीक्षा के पहले गुरु के साथ शिष्य का कम से कम तीन बार साक्षात्कार होना आवश्यक है।" इस प्रकार स्वामी जी ने मुझे टालने की चेष्टा की। जब उन्होंने देखा कि मैं किसी भी तरह माननेवाला नही, तो अन्त मे उन्हे स्वीकृति देनी ही पडी और २५ अक्तूबर, १८९२ ई० को उन्होने हम दोनो को दीक्षा दी। इस समय मेरी प्रबल इच्छा हुई कि स्वामी जी का फोटो खिचवाऊँ। परन्तु इसके लिए वे शीघ्र राजी नही हुए। अन्त मे बहुत वाद-विवाद के बाद, मेरा तीव्र आग्रह देखकर २८ तारीख को फोटो खिचवाने के लिए सम्मत हुए, फोटो खीचा गया। इसके पहले एक व्यक्ति के अतिशय आग्रह पर भी स्वामी जी ने फोटो नही खिचवाया था, इसलिए फोटो की दो प्रतियाँ उस व्यक्ति को भी भेज देने के लिए उन्होने मुझसे कहा। मैंने स्वामी जी की इस आज्ञा को बडी प्रसन्नता से स्वीकार किया। एक दिन बातचीत के सिलसिले मे स्वामी जी ने कहा, "कुछ दिन तुम्हारे साथ जगल मे तम्बू डालकर रहने की मेरी इच्छा है। किन्तु शिकागो मे धर्म-महासभा होगी, यदि वहाँ जाने की सुविधा हुई, तो वही जाऊँगा।" मैंने चन्दे की सूची तैयार कर धनसग्रह करने का प्रस्ताव किया, परन्तु उन्होंने न जाने क्या सोचकर उसे स्वीकार नही किया। स्वामी जी का इस समय व्रत ही था—रुपये-पैसे का स्पर्श या ग्रहण न करना। मेरे अत्यधिक अनुरोध करने पर स्वामी जी मरहठी चप्पल के बदले एक जोडा जूता और बेत की एक छडी स्वीकार करने के लिए राजी हुए। इसके पहले कोल्हापुर की रानी ने स्वामी जी से बहुत अनुरोध किया था कि वे कुछ ग्रहण करें, पर स्वामी जी इससे सहमत नही हुए थे। अन्त मे रानी ने दो गेरुए वस्त्र स्वामी जी के लिए भेजे, स्वामी जी ने यह ग्रहण कर लिया, और पुराने वस्त्र वही छोडते हुए बोले, "सन्यासियो के पास जितना कम बोझा हो, उतना ही अच्छा।"

इसके पहले मैंने भगवद्गीता पढने की अनेक बार चेष्टा की थी, किन्तु समझ न सकने के कारण मैंने ऐसा सोच लिया कि उसमे समझने के लायक ऐसी कोई बडी बात नही है, और उसे पढना ही छोड दिया। स्वामी जी एक दिन

गीता लेकर हम लोगों को समझाने लगे। तब ज्ञात हुआ कि गीता कैसा अद्भुत ग्रन्थ है। गीता का मर्म समझना जिस प्रकार मैंने उनसे सीखा उसी प्रकार दूसरी ओर ज्यूलिस वर्ने के वैज्ञानिक उपन्यास एवं कार्लाइल का 'सार्टोर रिसार्टस' पढ़ना भी उन्हींसे सीखा।

उस समय स्वास्थ्य के लिए मैं औषधियों का अत्यधिक व्यवहार करता था। इस बात को जानकर वे एक दिन बोले 'जब देखो कि किसी रोग ने अत्यधिक प्रबल होकर शय्याशायी कर दिया है, उठने की शक्ति नहीं रही तभी औषधि का सेवन करना, अन्यथा नहीं। स्नायुओं की दुर्बलता आदि रोगों में से तो ९० प्रतिशत काल्पनिक हैं। इन सब रोगों से डॉक्टर लोग जितने लोगों को बचाते हैं उससे अधिक को तो मार डालते हैं। फिर इस प्रकार सर्वदा रोग रोग करते रहने से क्या होगा? जितने दिन जियो आनन्द से रहो। पर जिस आनन्द से एक बार कष्ट हो चुका है, उसके पीछे फिर और कभी न दौड़ना। तुम्हारे-हमारे समान एक के मर जाने से पृथ्वी अपने केन्द्र से कोई दूर तो छूट न जायगी और न जगत् का किसी तरह का कोई नुक्सान ही होगा। इस समय कुछ कारणों से अपने ऊपर के अफ़सरों के साथ मेरी बनती नहीं थी। उनके सामान्य कुछ कहने से ही मेरा सिर गरम हो जाता था और इस प्रकार इस अच्छी नौकरी से भी मैं एक दिन के लिए भी सुखी न हुआ। स्वामी जी से मैंने जब ये सब बातें कहीं तो वे बोले 'नौकरी किसलिए करते हो? वेतन के लिए ही न, वेतन तो ठीक महीने के महीने नियमित रूप से पाते ही रहते हो? फिर मन में दुःख क्यों? और यदि नौकरी छोड़ देने की इच्छा हो तो कभी भी छोड़ दे सकते हो। किसीने तुम्हें बाँधकर तो रखा नहीं है, फिर 'विषम बन्धन में पड़ा हूँ' सोचकर इस दुःखमय संसार में और भी दुःख क्यों बढ़ाते हो? और एक बात जरा सोचो जिसके लिए तुम वेतन पाते हो आफिस के उन सब कामों को करने के अतिरिक्त तुमने अपने ऊपरवाले साहबों को सन्तुष्ट करने के लिए कभी कुछ किया भी है? कभी तो तुमने उसके लिए चेष्टा नहीं की फिर भी वे लोग तुमसे सन्तुष्ट नहीं हैं ऐसा सोचकर उनके ऊपर गुस्से हुए हो! क्या यह बुद्धिमानों का काम है? यह जान लो हम लोग दूसरों के प्रति हृदय में जैसा भाव रखते हैं, वही कार्य में प्रकाशित होता है और प्रकाशित न होने पर भी उन लोगों के भी भीतर हमारे प्रति ठीक उसी भाव का उदय होता है। हम अपने मन के अनुरूप ही जगत् को देखते हैं— हमारे भीतर जैसा है वैसा ही जगत् में प्रकाशित देखते हैं। 'आप भले तो जग भला'—यह उक्ति कितनी सत्य है कोई नहीं समझता। आज से किसीकी बुराई देखना एकदम छोड़ देने की चेष्टा करो। देखोगे तुम जितना ही वैसा

कर सकोगे, उतना ही उनके भीतर का भाव और उनके कार्य तक परिवर्तित हो जायँगे।" बस, उसी दिन से औषधि-सेवन का मेरा पागलपन दूर हो गया, और दूसरो के दोष ढूंढने की चेष्टा को त्याग देने के फलस्वरूप क्रमश मेरे जीवन का एक नया पृष्ठ खुल गया।

एक बार स्वामी जी के सामने यह प्रश्न उपस्थित किया गया—"अच्छा क्या है और बुरा क्या है?" इस पर वे बोले, "जो अभीष्ट कार्य का साधनभूत है, वही अच्छा है और जो उसका प्रतिरोधक है, वही बुरा। अच्छे-बुरे का विचार जगह की ऊँचाई-निचाई के विचार के समान है। तुम जितने ऊपर उठोगे, उतने ही वे दोनो एक होते जायँगे। कहा जाता है, चन्द्रमा मे पहाड और समतल दोनो हैं, किन्तु हम लोग सब एक देखते हैं, वैसा ही अच्छे-बुरे के सम्बन्ध मे भी समझो।" स्वामी जी मे यह एक असाधारण शक्ति थी कि कोई चाहे कैसा भी प्रश्न क्यो न पूछे, तुरन्त उनके भीतर से ऐसा सुन्दर और उपयुक्त उत्तर आता था कि मन का सन्देह एकदम दूर हो जाता था।

और एक दिन की बात है—स्वामी जी ने समाचारपत्र मे पढा कि अनाहार के कारण कलकत्ते मे एक मनुष्य मर गया। यह समाचार पढकर स्वामी जी इतने दु खी हुए कि उसका वर्णन नही हो सकता। वे बारम्बार कहने लगे, "अब तो देश गया!" कारण पूछने पर बोले, "देखते नही, दूसरे देशो मे गरीबो की सहायता के लिए 'पूवर-हाउस', 'वर्क-हाउस', 'चैरिटी फड' आदि सस्थाओ के रहने पर भी प्रतिवर्ष सैकडो मनुष्य अनाहार की ज्वाला मे समाप्त हो जाते हैं—समाचारपत्रो मे ऐसा देखने मे आता है। पर हमारे देश मे एक मुट्ठी भिक्षा की प्रथा होने से अनाहार के कारण लोगो का मरना कभी सुना नही गया। मैंने आज पहली बार अखबार मे यह समाचार पढा कि दुर्भिक्ष न होते हुए भी कलकत्ता जैसे शहर मे अन्न के बिना मनुष्य मरे।"

अग्रेजी शिक्षा की कृपा से मैं भिखारियो को दो-चार पैसे देना अपव्यय समझता था। सोचता था, इस प्रकार जो कुछ थोडा सा दान किया जाता है, उससे उनका कोई उपकार तो होता नही, अपितु बिना परिश्रम के पैसा पाकर, उसे शराब-गाँजा आदि मे खर्च कर वे और भी अध पतित हो जाते हैं। लाभ इतना ही है कि दाता का व्यर्थ खर्च कुछ वढ़ जाता है। इसलिए सोचता था, वहुत लोगो को कुछ कुछ देने की अपेक्षा एक को अधिक देना अच्छा है। स्वामी जी से इस विषय मे जब मैंने पूछा, तो वे बोले, "भिखारी के आने पर यदि शक्ति हो, तो कुछ देना ही अच्छा है। दोगे तो केवल दो-एक पैसा, उसके लिए, वह किसमे खर्च करेगा सद्व्यय होगा या अपव्यय, ये सव वातें लेकर माथापच्ची

करने की क्या आवश्यकता? और यदि सचमुच ही वह उस पैसे का गाँजा पी उड़ा देता हो, तो भी उसे देने से समाज का लाभ ही है, नुकसान नहीं। क्योंकि तुम्हारे समान लोग यदि दया करके उसे कुछ न देंगे तो वह तुम लोगों के पास से चोरी करके लेगा। वैसा न करके जो दो पैसे माँगकर गाँजा पीकर चुप होकर बैठा रहता है, वह क्या तुम लोगों का ही लाभ नहीं है? अतएव इस प्रकार के दान में भी लोगों का उपकार ही है, अपकार नहीं।"

मैंने पहले से ही स्वामी जी को बाल्य विवाह के बिल्कुल विरुद्ध देखा है। वे सर्वदा सभी को विशेषतः बालकों को हिम्मत बाँधकर समाज के इस कलंक के विरोध में खड़े होने के लिए तथा उद्योगी और उत्साहपूर्ण होने के लिए उपदेश देते थे। स्वदेश के प्रति इस प्रकार अनुराग भी मैंने और किसी में नहीं देखा। स्वामी जी के पाश्चात्य देशों से लौटने के बाद जिन लोगों ने उनके प्रथम दर्शन किये हैं वे नहीं जानते कि वहाँ जाने के पूर्व वे संन्यास-आश्रम के कठोर नियमों का पालन करते हुए, कांचन का स्पर्श तक न करते हुए कितने दिनों तक भारत के समस्त प्रान्तों में भ्रमण करते रहे। किसी के एक बार ऐसा कहने पर कि उनके समान शक्तिमान पुरुष के लिए नियम आदि का इतना बन्धन आवश्यक नहीं है, वे बोले, 'देखो, मन बड़ा पागल है, बड़ा उन्मत्त है, कभी भी शान्त नहीं रहता, थोड़ा मौका पाते ही अपने रास्ते खींच ले जाता है। इसलिए सभी को निर्धारित नियमों के भीतर रहना आवश्यक है। संन्यासी को भी मन पर अधिकार रखने के लिए नियम के अनुसार चलना पड़ता है। सभी मन में सोचते हैं कि मन के ऊपर उनका पूरा अधिकार है, वे तो जान-बूझकर कभी कभी मन को थोड़ी छूट दे देते हैं। किन्तु मन पर किसका कितना अधिकार हुआ है, यह एक बार ध्यान करने के लिए बैठते ही मालूम हो जाता है। 'एक विषय पर चिन्तन करूँगा' ऐसा सोचकर बैठने पर दस मिनट भी उस विषय में मन स्थिर रखना असम्भव हो जाता है। सभी सोचते हैं कि वे पत्नी के वशीभूत नहीं हैं, वे तो केवल प्रेम के कारण पत्नी को अपने ऊपर आधिपत्य करने देते हैं। मन को वशीभूत कर लिया है—यह सोचना भी ठीक उसी तरह है। मन पर विश्वास करके कभी निश्चिन्त न रहना।

एक दिन बातचीत के सिलसिले में मैंने कहा, "स्वामी जी, देखता हूँ धर्म को ठीक ठीक समझने के लिए बहुत अध्ययन की आवश्यकता है।

वे बोले, 'अपने धर्म समझने के लिए अध्ययन की आवश्यकता नहीं, किन्तु दूसरों को समझाने के लिए उसकी विशेष आवश्यकता है। भगवान् श्री रामकृष्ण देव तो 'रामकेष्ट' नाम से हस्ताक्षर करते थे, किन्तु धर्म का सार-तत्त्व उनसे अधिक भला किसने समझा है?

मेरा विश्वास था, साधु-सन्यासियो का स्थूलकाय और सर्वदा सन्तुष्टचित्त होना असम्भव है। एक दिन हँसते हँसते उनके ऊपर ऐसा कटाक्ष करने पर उन्होंने भी मज़ाक मे कहा, "यही तो मेरा 'अकाल रक्षाकोष' (फैमिन इन्श्योरेन्स फड) है। यदि मैं पाँच-सात दिन तक भोजन न पाऊँ, तो भी मेरी चर्बी मुझे जीवित रखेगी। तुम लोग तो एक दिन न खाने से ही चारो ओर अन्धकार देखने लगोगे। जो धर्म मनुष्य को सुखी नही बनाता, वह वास्तविक धर्म है ही नही, उसे मन्दाग्नि-प्रसूत रोगविशेष समझो।" स्वामी जी सगीत-विद्या मे विशेष पारगत थे। एक दिन एक गाना भी उन्होंने प्रारम्भ किया था, किन्तु मैं तो 'सगीत मे औरगजेब' था, फिर मुझे सुनने का अवसर ही कहाँ? उनके वार्तालाप ने ही हम लोगो को मोहित कर लिया था।

आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान के सभी विभाग, जैसे—रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, मिश्रित गणित आदि पर उनका विशेष अधिकार था एव उन विषयो से सम्बद्ध सभी प्रश्नो को वे बडी सरल भाषा मे दो-चार बातो मे ही समझा देते थे। फिर, पाश्चात्य विज्ञान की सहायता एव दृष्टान्त से धर्मविषयक तथ्यो को विशद रूप से समझाने तथा यह दिखाने मे कि धर्म और विज्ञान का एक ही लक्ष्य है, एक ही दिशा मे गति है—उनकी क्षमता अद्वितीय थी।

लाल मिर्च, काली मिर्च आदि तीखे पदार्थ उन्हें बडे प्रिय थे। इसका कारण पूछने पर उन्होने एक दिन कहा, "पर्यटन-काल मे सन्यासियो को देश-विदेश मे अनेक प्रकार का दूषित जल पीना पडता है, यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। इस दोष को दूर करने के लिए उनमे से बहुत से गाँजा, चरस आदि मादक द्रव्य पीते हैं। मैं भी इसीलिए इतनी मिर्च खाता हूँ।"

खेतडी के राजा, कोल्हापुर के छत्रपति एव दक्षिण के अनेक राजा उन पर विशेष भक्ति करते थे। उनका भी उन लोगो पर बडा प्रेम था। असाधारण त्यागी होकर, राजे-रजवाडो के साथ इतनी घनिष्ठता वे क्यो रखते हैं, यह बात बहुतो की समझ मे नही आती थी। कोई कोई निर्बोध तो इस बात को लेकर उनके ऊपर आक्षेप करने मे भी नही चूकते थे।

इसका कारण पूछने पर एक दिन उन्होंने कहा, "ज़रा सोच तो देखो, हज़ार हज़ार दरिद्र लोगो को उपदेश देने और सत्कार्य के अनुष्ठान मे तत्पर कराने से जो कार्य होगा, उसकी अपेक्षा एक राजा को इस दिशा मे ला सकने पर कितना अधिक कार्य हो जायगा। निर्धन प्रजा की इच्छा करने पर भी सत्कार्य करने की क्षमता उसके पास कहाँ? किन्तु राजा के हाथ मे सहस्रो प्रजाओ के मगल-विधान की क्षमता पहले से ही है, केवल उसे करने की इच्छा भर नही है। वह इच्छा यदि

करने की क्या आवश्यकता ? और यदि सचमुच ही वह उस पैसे को दीक्षा में उड़ा देता हो, तो भी उसे देने से समाज का लाभ ही है, नुकसान नहीं। क्योंकि तुम्हारे समान लोग यदि दया करके उसे कुछ न दें, तो वह तुम लोगों के पास से चोरी करके लेगा। वैसा न कर वह जो दो पैसे माँगकर दारू पीकर चुप होकर बैठा रहता है, यह क्या तुम लोगों का ही लाभ नहीं है ? अतएव इस प्रकार के दान में भी लोगों का उपकार ही है, अपकार नहीं।"

मैंने पहले से ही स्वामी जी को बाल्य विवाह के विरुद्ध देखा है। वे सर्वदा शिष्यों को, विशेषकर बालकों को, हिम्मत बाँधकर समाज के इस कलंक के विरोध में खड़ा होने के लिए तथा उद्योगी और कर्तव्यनिष्ठ होने के लिए उपदेश देते थे। स्वदेश के प्रति इस प्रकार अनुराग भी मैंने और किसी में नहीं देखा। स्वामी जी के पाश्चात्य देशों से लौटने के बाद जिन लोगों ने उनके प्रथम दर्शन किए हैं, वे नहीं जानते कि वहाँ जाने के पूर्व वे सन्यास-आश्रम के कठोर नियमों का पालन करते हुए, कांचन का स्पर्श तक न करते हुए कितने दिनों तक भारत के समस्त प्रान्तों में भ्रमण करते रहे। किसी ने एक बार ऐसा कहने पर कि उनके समान शक्तिमान पुरुष के लिए नियम आदि का इतना बन्धन आवश्यक नहीं है, वे बोले, "देखो, मन बड़ा पागल है, बड़ा उन्मत्त है, कभी भी शान्त नहीं रहता, थोड़ा मौका पाते ही अपने रास्ते खींच ले जाता है। इसलिए सभी को निर्धारित नियमों के भीतर रहना आवश्यक है। सन्यासी को भी मन पर अधिकार रखने के लिए नियम के अनुसार चलना पड़ता है। सभी मन में सोचते हैं कि मन के ऊपर उनका पूरा अधिकार है, वे तो जान-बूझकर कभी कभी मन को थोड़ी छूट दे देते हैं। किन्तु मन पर किसका कितना अधिकार हुआ है, वह एक बार ध्यान करने के लिए बैठते ही मालूम हो जाता है। 'एक विषय पर चिन्तन करूँगा' ऐसा सोचकर बैठने पर दस मिनट भी उस विषय में मन स्थिर रखना असम्भव हो जाता है। सभी सोचते हैं कि वे पत्नी के वशीभूत नहीं हैं, वे तो केवल प्रेम के कारण पत्नी को अपने ऊपर आधिपत्य करने देते हैं। मन को वशीभूत कर लिया है—यह सोचना भी ठीक उसी तरह है। मन पर विश्वास करके कभी निश्चिन्त न रहना।"

एक दिन बातचीत के सिलसिले में मैंने कहा, "स्वामी जी, देखता हूँ धर्म को ठीक ठीक समझने के लिए बहुत अध्ययन की आवश्यकता है।"

वे बोले, "अपने धर्म समझने के लिए अध्ययन की आवश्यकता नहीं, किन्तु दूसरों को समझाने के लिए उसकी विशेष आवश्यकता है। भगवान् श्री रामकृष्ण देव तो 'रामकेष्ट' नाम से हस्ताक्षर करते थे, किन्तु धर्म का सार-तत्त्व उनसे अधिक भला किसने समझा है ?

अनन्त है, यह नही समझा। जो भी हो, एक वस्तु अनन्त है, यह बात समझ मे आती है, किन्तु दो वस्तुएं यदि अनन्त हो, तो कौन कहां रहेगी ? कुछ और आगे बढो, तो देखोगे, काल जो है, देश भी वही है, फिर और अग्रसर होने पर समझोगे, सभी वस्तुएं अनन्त हैं, और वे सभी अनन्त वस्तुएं एक है, दो या दस नही।"

इस प्रकार स्वामी जी के पदार्पण से २६ अक्तूबर तक मेरे निवास-स्थान पर आनन्द का स्रोत बहता रहा। २७ तारीख को वे बोले, "और नही ठहरूँगा, रामेश्वर जाने के विचार से बहुत दिन हुए इस ओर निकला हूँ। पर यदि इसी प्रकार चला, तो इस जन्म मे शायद रामेश्वर पहुँचना न हो सकेगा।" मैं बहुत अनुरोध करके भी उन्हे नही रोक सका। २७ अक्तूबर की 'मेल' से उनका मरमागोआ जाना ठहरा। इस थोडे से समय मे उन्होंने कितने लोगो को मुग्ध कर लिया था, यह कहा नही जा सकता। टिकट खरीदकर उन्हें गाडी मे बिठाया और साष्टांग प्रणाम कर मैंने कहा, "स्वामी जी, मैंने जीवन मे आज तक किसीको भी आन्तरिक भक्ति के साथ प्रणाम नही किया। आज आपको प्रणाम कर मैं कृतार्थ हो गया।"

* * *

स्वामी जी को मैंने केवल तीन बार देखा। प्रथम, उनके अमेरिका जाने से पूर्व। उस समय की बहुत सी बातें आप लोगो को सुना चुका हूँ। बेलगाँव मे उनके साथ मेरा प्रथम साक्षात्कार हुआ। द्वितीय, जब उन्होंने दूसरी बार इंग्लैण्ड और अमेरिका की यात्रा की थी, उसके कुछ दिन पहले। तृतीय एव अन्तिम बार दर्शन हुआ उनके देहत्याग के छ -सात मास पहले। पर इतने ही अवसरो पर मैंने उनसे जो कुछ सीखा, उसका आद्योपान्त वर्णन करना असम्भव है। बहुत सी बातें मेरे अपने सम्बन्ध की हैं, इसलिए उन्हें कहने की आवश्यकता नही, और बहुत सी बातो को भूल भी गया हूँ। जो कुछ स्मरण है, उसमे से पाठको के लिए उपयोगी विषयो को बतलाने की चेष्टा करूँगा।

इंग्लैण्ड से लौट आने के बाद उन्होंने हिन्दुओ के जाति-विचार के सम्बन्ध मे और किसी किसी सम्प्रदाय के व्यवहार के ऊपर तीव्र आलोचना करते हुए मद्रास मे जो व्याख्यान दिये थे, उन्हें पढकर मैंने सोचा, स्वामी जी की भाषा कुछ अधिक कडी हो गयी है। और उनके समीप मैंने अपने इस अभिप्राय को प्रकट भी किया। सुनकर वे बोले, "जो कुछ मैंने कहा है, सब सत्य कहा है। और जिनके सम्बन्ध मे मैंने इस प्रकार की भाषा का व्यवहार किया है, उनके कार्यों की तुलना मे वह बिन्दु मात्र भी कडी नही है। सत्य बात मे सकोच का या उसे छिपाने का तो मैं कोई कारण नही देखता। यह न सोचना कि जिनके कार्यों पर मैंने इस प्रकार समालोचना की है, उनके ऊपर मेरा क्रोध था या है, अथवा जैसा कोई कोई सोचते हैं कि कर्तव्य

उसके भीतर किसी प्रकार धार्मिकता भर सकूँ, तो ऐसा होने पर उसके साथ साथ उसके अधीन सारी प्रजा की अवस्था बदल सकती है और इस प्रकार जगत् का कितना अधिक कल्याण हो सकता है।

धर्म वाद-विवाद में नहीं है, वह तो प्रत्यक्ष अनुभव का विषय है, इसको समझाने के लिए वे बात बात में कहा करते थे, 'गुड़ का स्वाद खाने में ही है। अनुभव करो, बिना अनुभव किये कुछ भी न समझोगे।' उन्हें ढोंगी संन्यासियों से अत्यन्त चिढ़ थी। वे कहते थे, "घर में रहकर मन पर अधिकार स्थापित करके फिर बाहर निकलना अच्छा है, नहीं तो नव अनुराग कम होने पर ऐसे संन्यासी प्रायः गाँजा खोर संन्यासियों के दल में मिल जाते हैं।

मैंने कहा, "किन्तु घर में रहकर वैसा होना तो अत्यन्त कठिन है। सभी प्राणियों को समान दृष्टि से देखना, राग-द्वेष का त्याग करना आदि जिन बातों को आप धर्मलाभ में प्रधान सहायक कहते हैं, उनका अनुष्ठान करना यदि मैं आज से ही आरम्भ कर दूँ, तो कल से ही मेरे नौकर-चाकर और अधीनस्थ कर्मचारीगण यहाँ तक कि सगे-सम्बन्धी लोग भी मुझे एक क्षण भी शान्ति से न रहने देंगे।"

उत्तर में भगवान् श्री रामकृष्ण देव की सर्प और संन्यासीवाली कथा का दृष्टान्त देकर उन्होंने कहा, 'फुफकारना कभी बन्द मत करना और कर्तव्य-पालन करने की बुद्धि से सभी काम किये जाना। कोई अपराध करे, तो दण्ड देना, किन्तु दण्ड देते समय कभी भी क्रुद्ध न होना।' फिर पूर्वोक्त प्रसंग को छेड़ते हुए बोले, 'एक समय मैं एक तीर्थस्थान के पुलिस इन्स्पेक्टर का अतिथि हुआ। वह बड़ा धार्मिक और भक्तिमान् था। उसका वेतन १२५ रु. था, किन्तु देखा, उसके घर का खर्च मासिक दो-तीन सौ का रहा होगा। जब अधिक परिचय हुआ, तो मैंने पूछा, आय की अपेक्षा आपका खर्च तो अधिक देख रहा हूँ—यह कैसे चलता है? वह थोड़ा हँसकर बोला, 'आप ही लोग चलाते हैं। इस तीर्थस्थल में जो साधु-संन्यासी आते हैं, वे सब आपके समान तो नहीं होते। सन्देह होने पर उनके पास क्या है, क्या नहीं, इसकी तलाशी करता हूँ। बहुतों के पास प्रचुर मात्रा में रुपया-पैसा निकलता है। जिन पर मुझे चोरी का सन्देह होता है, वे रुपया-पैसा छोड़कर भाग जाते हैं, और मैं उन पैसों को अपने कब्जे में कर लेता हूँ। पर अन्य किसी प्रकार का घूस आदि नहीं लेता।"

स्वामी जी के साथ एक दिन अनन्त (infinity) वस्तु के सम्बन्ध में वार्तालाप हुआ। उन्होंने जो बात कही, वह बड़ी ही सुन्दर एवं सत्य है। वे बोले, 'दो अनन्त वस्तुएँ कभी नहीं रह सकतीं।' पर मैंने कहा, "काल तो अनन्त है, और देश भी अनन्त है।" इस पर वे बोले, "देश अनन्त है, यह तो समझा, किन्तु काल

है, दूसरे की नही, इस प्रकार का भाव क्या अन्याय नही है?' मैं तो सुनकर दग रह गया।

"नाक और पैर की लघुता लेकर ही चीन मे सौन्दर्य का विचार होता है, यह सभी जानते हैं। आहार आदि के सम्बन्ध मे भी ऐसा ही है। अंग्रेज हम लोगों के समान खुशबूदार चावल का भात खाना पसन्द नही करते। एक समय किसी जगह के एक जज साहब की अन्यत्र बदली हो जाने पर वहाँ के बहुत से वकीलो ने उनके सम्मान के लिए बढिया अनाज आदि भेजा। उसमे कुछ सेर खुशबूदार चावल भी थे। जज साहब ने उस चावल का भात खाकर मन मे सोचा—यह सडा हुआ चावल है, और वकीलो से भेट होने पर कहा, 'तुम लोगो को मेरे लिए सडा चावल भेजना उचित न था।'

"किसी समय मैं रेलगाडी मे जा रहा था। उसी डब्बे मे चार-पाँच साहब भी बैठे थे। बातचीत के सिलसिले मे तम्बाकू के बारे मे मैंने कहा, 'सुगन्धित गुडाकू का पानी से भरे हुए हुक्के मे व्यवहार करना ही तम्बाकू का श्रेष्ठ उपभोग है।' मेरे पास खूब अच्छा तम्बाकू था। मैंने उन लोगो को देखने के लिए दिया। वे सूंघकर बोले, 'यह तो अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त है! इसे आप सुगन्धित कहते हैं!' इस प्रकार गन्ध, आस्वाद, सौन्दर्य आदि सभी विषयो मे समाज, देश और काल के भेद से भिन्न भिन्न मत हैं।"

स्वामी जी की पूर्वोक्त कथाओ को हृदयगम करते मुझे देरी नही लगी। मैंने सोचा, पहले मुझे शिकार करना कितना प्रिय था, किसी पशु-पक्षी को देखने पर उसे मारने के लिए मन छटपटाने लगता था। न मार सकने पर अत्यन्त कष्ट भी मालूम होता था। पर अब उस प्रकार प्राणियो का वध करना बिल्कुल ही अच्छा नही लगता। अतएव किसी वस्तु का अच्छा या बुरा लगना केवल अभ्यास पर निर्भर है।

अपने मत को अक्षुण्ण रखने मे प्रत्येक मनुष्य का एक विशेष आग्रह देखा जाता है। धर्म के क्षेत्र मे तो उसका विशेष प्रकाश दिखायी देता है। स्वामी जी इस सम्बन्ध मे एक कहानी बतलाया करते थे. एक समय एक छोटे राज्य को जीतने के लिए एक दूसरे राजा ने दल-बल के साथ चढाई की। शत्रुओ के हाथ से बचाव कैसे हो, इस सम्बन्ध मे विचार करने के लिए उस राज्य मे एक बड़ी सभा बुलायी गयी। सभा मे इजीनियर, बढई, चमार, लोहार, वकील, पुरोहित आदि सभी उपस्थित थे। इजीनियर ने कहा, "शहर के चारो ओर एक बहुत बडी खाई खुदवाइए।" बढई बोला, "काठ की एक दीवाल खडी कर दी जाय।" चमार बोला, "चमडे के समान मजबूत और कोई चीज नही है, चमडे की ही दीवाल खडी की जाय।" लोहार बोला, "इस सबकी कोई आवश्यकता नही है, लोहे की दीवाल

समझकर जो कुछ मैंने किया है उसके लिए अब मैं दुःखित हूँ। इन सब बातों में कोई सार नहीं। मैंने क्रोध के कारण ऐसा नहीं किया है और जो मैंने किया है उसके लिए मैं दुःखित नहीं हूँ। आज भी यदि उस प्रकार का कोई अप्रिय कार्य करना कर्तव्य मालूम होगा तो अवश्य निःसंकोच वैसा करूँगा।

ढोंगी संन्यासियों के विषय में उनका मत पहले कुछ कह चुका हूँ। किसी दूसरे दिन इस सम्बन्ध में प्रसंग उठने पर उन्होंने कहा, 'हाँ, अवश्य बहुत से बदमाश वारण्ट के डर से अथवा घोर दुष्कर्म करके छिपने के लिए संन्यासी के वेष में घूमते फिरते हैं, किन्तु तुम लोगों का भी कुछ दोष है। तुम लोग सोचते हो, संन्यासी होते ही उसे ईश्वर के समान त्रिगुणातीत हो जाना चाहिए। उसे पेट भर अच्छी तरह खाने में दोष, बिछौने पर सोने में दोष, यहाँ तक कि उसे जूता और छाता तक व्यवहार में लाने की गुंजाइश नहीं। क्यों? वह भी तो मनुष्य है। तुम लोगों के मत में जब तक कोई पूर्ण परमहंस न हो जाय, तब तक उसे गेरुआ वस्त्र पहनने का अधिकार नहीं। पर यह भूल है। एक समय एक संन्यासी के साथ मेरा वार्तालाप हुआ। अच्छी पोशाक पर उनकी खूब रुचि थी। तुम लोग उन्हें देखकर अवश्य ही घोर विलासी समझते। किन्तु वे सचमुच यथार्थ संन्यासी थे।

स्वामी जी कहा करते थे, "देश, काल और पात्र के भेद से मानसिक भावों और अनुभवों में काफी तारतम्य हुआ करता है। धर्म के सम्बन्ध में भी ठीक वैसा ही है। प्रत्येक मनुष्य की भी एक न एक विषय में अधिक रुचि पायी जाती है। जगत् में सभी अपने को अधिक बुद्धिमान समझते हैं। ठीक है, यहाँ तक कोई विशेष हानि नहीं। किन्तु जब मनुष्य सोचने लगता है कि केवल मैं ही समझता हूँ, दूसरा कोई नहीं, तभी सारे बखेड़े उपस्थित हो जाते हैं। सभी चाहते हैं कि दूसरे सब लोग भी उन्हींके समान प्रत्येक वस्तु को देखें और समझें। प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि उसने जिस बात को सत्य समझा है या जिसे जाना है, उसे छोड़कर और कोई सत्य हो ही नहीं सकता। सांसारिक विषय के क्षेत्र में हो अथवा धर्म के क्षेत्र में इस प्रकार के भाव को मन में किसी तरह न आने देना चाहिए।

'जगत् के किसी भी विषय में सब पर एक ही नियम लागू नहीं हो सकता। देश, काल और पात्र के भेद से नीति एवं सौन्दर्य-ज्ञान भी विभिन्न देखा जाता है। तिब्बत की स्त्रियों में बहु-पति की प्रथा प्रचलित है। हिमालय भ्रमणकाल में मेरी इस प्रकार के एक तिब्बती परिवार से भेंट हुई थी। इस परिवार में छः पुरुष थे, उन छः पुरुषों की एक ही स्त्री थी। अधिक परिचय हो जाने के बाद मैंने एक दिन उनकी इस कुप्रथा के बारे में कुछ कहा, इस पर वे कुछ खीझकर बोले, 'तुम साधु-संन्यासी होकर लोगों को स्वार्थपरता सिखाना चाहते हो? यह मेरी ही उपभोग्य

अपनी माँ को खाना नही देता, वह दूसरे की माँ का क्या पालन करेगा?" स्वामी जी यह स्वीकार करते थे कि हमारे प्रचलित धर्म मे, आचार-व्यवहार मे, सामाजिक प्रथा मे अनेक दोष हैं। वे कहते थे, "उन सभी का सशोधन करने की चेष्टा करना हम लोगो का मुख्य कर्तव्य है, किन्तु इसके लिए सवाद-पत्रो मे अग्रेज़ो के समीप उन दोषो को घोषित करने की क्या आवश्यकता है? घर की गलतियो को जो बाहर दिखलाता है, उसके समान गधा और कौन है? गन्दे कपडे को लोगो की आँखो के सामने नही रखना चाहिए।"

ईसाई मिशनरियो के बारे मे एक दिन चर्चा हुई। बातचीत के सिलसिले मे मैंने कहा कि उन लोगो ने हमारे देश का कितना उपकार किया है और कर रहे हैं। सुनकर वे बोले, "किन्तु अपकार भी तो कोई कम नही किया। देशवासियो के मन की श्रद्धा को बिल्कुल नष्ट कर देने का अद्भुत प्रबन्ध उन्होने कर छोडा है। श्रद्धा के साथ साथ मनुष्यत्व का भी नाश हो जाता है। इस बात को क्या कोई समझता है? हमारे देव-देवियो और हमारे धर्म की निन्दा किये बिना वे अपने धर्म की श्रेष्ठता क्यो नही दिखा पाते? और एक बात है जो जिस धर्म-मत का प्रचार करना चाहते हैं, उन्हे उसमे पूर्ण विश्वास होना चाहिए और तद-नुरूप कार्य करना चाहिए। अधिकाश मिशनरी कहते कुछ हैं और करते कुछ। मुझे कपट से बडी चिढ है।"

एक दिन उन्होंने धर्म और योग के सम्बन्ध मे अत्यन्त सुन्दर ढग से बहुत सी बातें कही। उनका मर्म जहाँ तक स्मरण है, उद्धृत कर रहा हूँ

"समस्त प्राणी सतत सुखी होने की चेष्टा मे रत रहते हैं, किन्तु बहुत ही थोडे लोग सुखी हो पाते हैं। काम-धाम भी सभी सतत करते रहते है, किन्तु उसका ईप्सित फल पाना प्राय देखा नही जाता। इस प्रकार विपरीत फल उप-स्थित होने का कारण क्या है, वह भी समझने की कोई चेष्टा नही करता। इसी-लिए मनुष्य दु ख पाता है। धर्म के सम्बन्ध मे कैसा भी विश्वास क्यो न हो, यदि कोई उस विश्वास के बल से अपने को यथार्थ सुखी अनुभव करता है, तो ऐसी स्थिति मे उसके उस मत को परिवर्तित करने की चेष्टा करना किसीके लिए भी उचित नही है, और ऐसा करने से कोई अच्छा फल भी नही होगा। पर हाँ, मुँह से कोई कुछ भी क्यो न कहे, जब देखो कि किसीका केवल धर्म सम्बन्धी कथा-वार्ता सुनने मे ही आग्रह है, पर उसके आचरण मे नही, तो जानना कि उसे किसी भी विषय मे दृढ विश्वास नही है।

"धर्म का मूल उद्देश्य है—मनुष्य को सुखी करना। किन्तु अगले जन्म मे सुखी होने के लिए इस जन्म मे दु ख-भोग करना कोई बुद्धिमानी का काम नही

सबसे अच्छी होगी, उसे भेदकर गोली या गोला नहीं आ सकता। वकील बोले, "कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है, हमारा राज्य लेने का शत्रु को कोई अधिकार नहीं है—यही एक बात शत्रु को तर्क-युक्ति द्वारा समझा दी जाय। पुरोहित बोले, 'तुम लोग तो पागल जैसे बकते हो। होम-याग करो, स्वस्त्ययन करो, तुलसी दो, शत्रु कुछ भी नहीं कर सकता।" इस प्रकार उन्होंने राज्य बचाने का कोई उपाय निश्चित करने के बदले अपने अपने मत का पक्ष लेकर घोर तर्क-वितर्क आरम्भ कर दिया। यही है मनुष्य का स्वभाव!

यह कहानी सुनकर मुझे भी मानव मन के एकतरफ़े झुकाव के सम्बन्ध में एक कथा याद आ गयी। स्वामी जी से मैंने कहा, 'स्वामी जी, मुझे बचपन में पागलों के साथ बातचीत करना बड़ा अच्छा लगता था। एक दिन मैंने एक पागल देखा—खासा बुद्धिमान, थोड़ी-बहुत अंग्रेजी भी जानता था, वह केवल पानी ही चाहता था! उसके पास एक फूटा लोटा था। पानी की कोई नयी जगह देखते ही चाहे नाला हो, डोबा हो, बस वहीं का पानी पीने लगता था। मैंने उससे इतना पानी पीने का कारण पूछा, तो वह बोला, 'Nothing like water, Sir! (पानी जैसी दूसरी कोई चीज ही नहीं, महाशय!) मैंने उसे एक अच्छा लोटा देने की इच्छा प्रकट की, पर वह किसी प्रकार राजी नहीं हुआ। कारण पूछने पर बोला, 'यह लोटा फूटा हुआ है, इसीलिए इतने दिनों तक मेरे पास टिका हुआ है। अच्छा रहता तो कब का चोरी चला गया होता!' "

स्वामी जी यह कथा सुनकर बोले, "वह तो बड़ा मजे का पागल दिखता है! ऐसे लोगों को सनकी कहते हैं। हम सभी लोगों में इस प्रकार का कोई आग्रह या सनकीपन हुआ करता है। हम लोगों में उसे दबा रखने की क्षमता है। पागल में वह नहीं है। हम लोगों में और पागलों में भेद केवल इतना ही है। रोग, शोक, अहंकार, काम, क्रोध, ईर्ष्या या अन्य कोई अत्याचार अथवा अनाचार से दुर्बल होकर, मनुष्य के अपने इस संयम को खो बैठने से ही सारी गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है! मन के आवेग को वह फिर सँभाल नहीं पाता। हम लोग तब कहते हैं, 'यह पागल हो गया है।' बस इतना ही!"

स्वामी जी का स्वदेश के प्रति अत्यन्त अनुराग था, यह बात पहले ही बता चुका हूँ। एक दिन इस सम्बन्ध में बातचीत के प्रसंग में उनसे कहा गया कि संसारी लोगों का अपने अपने देश के प्रति अनुराग रखना नित्य कर्तव्य है, परन्तु संन्यासियों को अपने देश की माया छोड़कर, सभी देशों पर समदृष्टि रखकर, सभी देशों की कल्याण-चिन्ता हृदय में रखना अच्छा है। इसके उत्तर में स्वामी जी ने जो ज्वलन्त बातें कहीं, उनको जीवन में कभी नहीं भूल सकता। वे बोले, "जो

हुए कहते हैं—'काम करो, किन्तु फल मुझे अर्पण करो, अर्थात् मेरे लिए ही काम करो।'"

किसी विषय का इतिहास कहाँ तक ठीक ठीक लिखा जा सकता है, इस विषय मे लेखक को वहुत सन्देह है। उसके अनेक कारण हैं। गवर्नर जनरल साहव के किसी शहर मे पदार्पण से लेकर उस शहर से जाने तक की घटना अपनी आँखो से देखने और वाद मे उसीका विवरण प्रसिद्ध प्रसिद्ध सवाद-पत्रो मे पढने की सुविधा हमारे सदृश लोगो को अधिकतर होती है। आदि से अन्त तक हम लोगो की देखी हुई घटनाओ के साथ इन सभी विवरणो की इतनी विभिन्नता देखी जाती है कि विस्मित हो जाना पडता है। चार दिन पहले जो घटना हुई है, उसीको लिपिवद्ध करना जव इतना कठिन है, तो चार सौ, चार हजार अथवा चार लाख वर्ष पहले जो घटना हुई है, उसका इतिहास कहाँ तक ठीक ठीक लिपिवद्ध हुआ है, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

और एक वात है, ईसाई मिशनरियो मे से वहुत से कहा करते है—'उनकी वाइविल की प्रत्येक घटना जिस वर्ष, जिस महीने, जिस दिन, जिस घटे और जिस मिनट घटित हुई है, वह विल्कुल सामने घडी रखकर लिपिवद्ध की गयी है।' किंतु एक ओर conflict between religion and science (धर्म और विज्ञान मे द्वन्द्व) आदि पुस्तको मे वाइविल की उत्पत्ति के सम्वन्ध मे उनके ही देश के आधुनिक पण्डितो का विचार पढकर वाइविल की ऐतिहासिकता जिस प्रकार अच्छी तरह समझी जा सकती है, उसी प्रकार दूसरी ओर मिशनरियो द्वारा अनूदित हिन्दू धर्मशास्त्रो का अपूर्व विवरण पढकर उनका लिखित इतिहास भी कहाँ तक सत्य है, इसे समझने मे कुछ अवशिष्ट नही रहता। यह सव देख-सुनकर मानव जाति के सत्यानुराग एव इतिहास मे लिपिवद्ध घटनाओं के ऊपर श्रद्धा प्राय विल्कुल उड सी जाती है।

गीता, वाइविल, कुरान, पुराण प्रभृति प्राचीन ग्रन्थो मे निवद्ध घटनाओ की वास्तविक ऐतिहासिकता के सम्वन्ध मे इसीलिए पहले मुझे तनिक भी विश्वास नही होता था। एक दिन स्वामी जी से मैंने पूछा कि कुरुक्षेत्र मे युद्ध से थोडी देर पहले अर्जुन के प्रति भगवान् श्री कृष्ण का जो धर्मोपदेश भगवद्गीता मे लिपिवद्ध है, वह यथार्थ ऐतिहासिक घटना है या नही? उत्तर मे उन्होने जो कहा, वह वडा ही सुन्दर है। वे वोले, "गीता एक अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ है। प्राचीन काल मे इतिहास लिखने अथवा पुस्तक आदि छापने की आजकल के समान इतनी धूम-धाम नही थी, इसलिए तुम्हारे सदृश लोगो के सामने भगवद्गीता की ऐतिहासिकता प्रमाणित करना कठिन है। किन्तु गीता मे उक्त घटना घटी थी

है। इस जन्म में ही इसी मुहूर्त से सुखी होना होगा। जिस धर्म के द्वारा यह सम्पन्न होगा, वही मनुष्य के लिए उपयुक्त धर्म है। इन्द्रिय-भोगजनित सुख क्षणिक है और उसके साथ अवश्यम्भावी दुःख भी अनिवार्य है। शिशु, अज्ञानी और पाशविक स्वभाववाले मनुष्य ही इस क्षणस्थायी दुःखमिश्रित सुख को वास्तविक सुख समझते हैं। यदि इस सुख को भी कोई जीवन का एकमेव उद्देश्य बनाकर चिरकाल तक सम्पूर्ण रूप से निश्चिन्त और सुखी रह सके, तो वह भी कुछ बुरा नहीं है। किन्तु आज तक तो इस प्रकार का मनुष्य देखा नहीं गया। साधारणतः देखा यही जाता है कि जो इन्द्रिय चरितार्थता को ही सुख समझते हैं, वे धनवान एवं विलासी लोगों को अपने से अधिक सुखी समझकर उनसे द्वेष करने लगते हैं और बहुत व्यय से प्राप्त होनेवाले उनके उच्च श्रेणी के इन्द्रिय-भोग्य पदार्थों को देखकर उन्हें पाने के लिए लालायित होकर दुःखी हो जाते हैं। सम्राट् सिकन्दर समस्त पृथ्वी को जीतकर यही सोचकर दुःखी हुए थे कि अब पृथ्वी में जीतने को और कोई देश नहीं रह गया। इसीलिए बुद्धिमान मनीषियों ने बहुत देख-सुनकर, सोच-विचारकर अन्त में सिद्धान्त स्थिर किया है कि किसी एक धर्म में यदि पूर्ण विश्वास हो, तभी मनुष्य निश्चिन्त और यथार्थ सुखी हो सकता है।

"विद्या, बुद्धि आदि सभी विषयों में प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव पृथक् पृथक् देखा जाता है। इसी कारण उनके उपयुक्त धर्म का भी भिन्न भिन्न होना आवश्यक है, अन्यथा वह किसी भी तरह उनके लिए सन्तोषप्रद न होगा, वे किसी भी तरह उसका अनुष्ठान करके यथार्थ सुखी नहीं हो सकेंगे। अपने अपने स्वभाव के अनुकूल धर्म-मत को स्वयं ही देख-भालकर, सोच-विचारकर चुन लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं। धर्मग्रन्थ का पाठ, गुरु का उपदेश, साधु-दर्शन, सत्पुरुषों का संग आदि उस इस मार्ग में केवल सहायता मात्र देते हैं।

कर्म के सम्बन्ध में भी यह जान लेना आवश्यक है कि किसी न किसी प्रकार का कर्म किये बिना कोई भी रह नहीं सकता और जगत् में केवल अच्छा या केवल बुरा, इस प्रकार का कोई कर्म नहीं है। सत्कर्म करने में कुछ न कुछ बुरा कर्म भी करना ही पड़ता है। और इसीलिए उस कर्म के द्वारा जैसे सुख होगा वैसे ही साथ ही साथ कुछ न कुछ दुःख एवं अभाव का बोध भी होगा—यह अवश्यम्भावी है। अतएव यदि उस थोड़े से दुःख को भी ग्रहण करने की इच्छा न हो तो फिर विषय-भोगजनित काल्पनिक सुख की आशा भी छोड़ देनी होगी, अर्थात् स्वार्थ-सुख का अन्वेषण करना छोड़कर कर्तव्य-बुद्धि से सभी कार्य करने होंगे। इसीका नाम है निष्काम कर्म। भगवान् गीता में अर्जुन को इसीका उपदेश देते

हुए कहते हैं—'काम करो, किन्तु फल मुझे अर्पण करो, अर्थात् मेरे लिए ही काम करो।'"

किसी विषय का इतिहास कहाँ तक ठीक ठीक लिखा जा सकता है, इस विषय मे लेखक को बहुत सन्देह है। उसके अनेक कारण है। गवर्नर जनरल साहब के किसी शहर मे पदार्पण से लेकर उस शहर मे जाने तक की घटना अपनी आँखो से देखने और बाद मे उसीका विवरण प्रसिद्ध प्रसिद्ध सवाद-पत्रो मे पढने की सुविधा हमारे सदृश लोगो को अधिकतर होती है। आदि से अन्त तक हम लोगो की देखी हुई घटनाओ के साथ इन सभी विवरणो की इतनी विभिन्नता देखी जाती है कि विस्मित हो जाना पडता है। चार दिन पहले जो घटना हुई है, उसीको लिपिबद्ध करना जब इतना कठिन है, तो चार सौ, चार हजार अथवा चार लाख वर्ष पहले जो घटना हुई है, उसका इतिहास कहाँ तक ठीक ठीक लिपिबद्ध हुआ है, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

और एक बात है, ईसाई मिशनरियो मे से बहुत से कहा करते हैं—'उनकी बाइबिल की प्रत्येक घटना जिस वर्ष, जिस महीने, जिस दिन, जिस घंटे और जिस मिनट घटित हुई है, वह बिल्कुल सामने घडी रखकर लिपिबद्ध की गयी है।' किंतु एक ओर conflict between religion and science ( धर्म और विज्ञान मे द्वन्द्व) आदि पुस्तको मे बाइबिल की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे उनके ही देश के आधुनिक पण्डितो का विचार पढकर बाइबिल की ऐतिहासिकता जिस प्रकार अच्छी तरह समझी जा सकती है, उसी प्रकार दूसरी ओर मिशन-रियो द्वारा अनूदित हिन्दू धर्मशास्त्रो का अपूर्व विवरण पढकर उनका लिखित इतिहास भी कहाँ तक सत्य है, इसे समझने मे कुछ अवशिष्ट नही रहता। यह सब देख-सुनकर मानव जाति के सत्यानुराग एव इतिहास मे लिपिबद्ध घटनाओ के ऊपर श्रद्धा प्राय बिल्कुल उड सी जाती है।

गीता, बाइबिल, कुरान, पुराण प्रभृति प्राचीन ग्रन्थो मे निबद्ध घटनाओ की वास्तविक ऐतिहासिकता के सम्बन्ध मे इसीलिए पहले मुझे तनिक भी विश्वास नही होता था। एक दिन स्वामी जी से मैंने पूछा कि कुरुक्षेत्र मे युद्ध से थोडी देर पहले अर्जुन के प्रति भगवान् श्री कृष्ण का जो धर्मोपदेश भगवद्गीता मे लिपि-बद्ध है, वह यथार्थ ऐतिहासिक घटना है या नही? उत्तर मे उन्होंने जो कहा, वह बडा ही सुन्दर है। वे बोले, "गीता एक अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ है। प्राचीन काल मे इतिहास लिखने अथवा पुस्तक आदि छापने की आजकल के समान इतनी धूम-धाम नही थी, इसलिए तुम्हारे सदृश लोगो के सामने भगवद्गीता की ऐतिहासिकता प्रमाणित करना कठिन है। किन्तु गीता मे उक्त घटना घटी थी

या नहीं, इसके लिए तुम लोग क्यों माथापच्ची करते हो, इसका कोई कारण मुझे नहीं दिखता। यदि कोई अकाट्य प्रमाण से तुम्हें यह समझा सके कि भगवान् श्री कृष्ण ने सारथी होकर अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था, क्या केवल तभी तुम लोग गीता में वर्णित बातों पर विश्वास करोगे? जब अपने सामने साक्षात् भगवान् के मूर्तिमान होकर आने पर भी तुम लोग उनकी परीक्षा करने के लिए दौड़ते हो और उनका ईश्वरत्व प्रमाणित करने के लिए कहते हो, तब गीता ऐतिहासिक है या नहीं, इस व्यर्थ की समस्या को लेकर क्यों परेशान होते हो? यदि हो सके, तो गीता के उपदेशों को जितना बने ग्रहण करो, और उसे जीवन में परिणत कर कृतार्थ हो जाओ। श्री रामकृष्ण देव कहते थे—'आम खाओ, पेड़ के पत्ते गिनने से क्या होगा!' मेरी राय में धर्मशास्त्र में लिपिबद्ध घटना के ऊपर विश्वास या अविश्वास करना वैयक्तिक अनुभव-मेल का विषय है—अर्थात् मनुष्य किसी एक विशेष अवस्था में पड़कर, उससे उद्धार पाने की इच्छा से रास्ता ढूँढ़ता, और धर्मशास्त्र में लिपिबद्ध किसी घटना के साथ उसकी अवस्था का ठीक ठीक मेल होने पर वह उस घटना को ऐतिहासिक कहकर उस पर निश्चित विश्वास करता है तथा धर्मशास्त्रोक्त उस अवस्था के उपयोगी उपायों को भी साग्रह ग्रहण करता है।

स्वामी जी ने एक दिन शारीरिक एवं मानसिक शक्ति को अभीष्ट कार्य के लिए सुरक्षित रखना प्रत्येक के लिए कहाँ तक कर्तव्य है, इसे बड़े सुन्दर भाव से समझाते हुए कहा था—"अनधिकार चर्चा अथवा वृथा कार्य में जो शक्ति व्यय करता है, वह अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिए पर्याप्त शक्ति कहाँ से प्राप्त करेगा? The sum total of the energy which can be exhibited by an ego is a constant quantity—अर्थात् 'प्रत्येक जीवात्मा के भीतर विविध भाव प्रकाशित करने की जो शक्ति रहती है, वह एक नियत मात्रा में होती है', अतएव उस शक्ति का अधिकांश एक भाव में प्रकाशित होने पर उतना अंश और किसी दूसरे भाव में प्रकाशित नहीं हो सकता। धर्म के गम्भीर सत्य को प्रत्यक्ष करने के लिए बहुत शक्ति की आवश्यकता होती है, इसीलिए धर्म-पथ के पथिकों के प्रति विषय-भोग आदि में शक्ति क्षय न कर ब्रह्मचर्य के द्वारा शक्ति संरक्षण का उपदेश सभी जातियों के धर्मग्रन्थों में पाया जाता है।

स्वामी जी बंगाल के ग्रामों तथा वहाँ के लोगों के अनेक व्यवहारों से सन्तुष्ट नहीं थे। ग्राम के एक ही तालाब में स्नान, शौच आदि करना एवं उसीका पानी पीना, यह प्रथा उन्हें बिल्कुल पसन्द न थी। वे प्राय: कहा करते थे, "जिनका मस्तिष्क भूसा-भूसा से भरा है, उन लोगों से आशा-भरोसा कहाँ! और यह भी

ग्रामीण लोगो का अनधिकार चर्चा करना है, वह तो बडी खराब चीज है। शहर के लोग अनधिकार चर्चा न करते हो, ऐसी बात नही, परन्तु उन्हे समय कम मिलता है, क्योकि शहर का खर्च अधिक है, इसलिए उन्हे काम भी बहुत करना पडता है। इतना परिश्रम करने के बाद, खाली बैठकर हुक्का पीने और परनिन्दा करने का समय नही मिलता। अन्यथा ये शहरी भूत इस विषय मे तो ग्रामीण भूतो की गर्दन पर चढकर नाचते।"

स्वामी जी की प्रत्येक दिन की कथा-वार्ता यदि सगृहीत होती, तो प्रत्येक दिन की बातें एक एक मोटी पुस्तक होती। एक ही प्रश्न का बार बार एक ही भाव से उत्तर देना एव एक ही दृष्टान्त की सहायता से उसे समझाना उनकी रीति नही थी। एक ही प्रश्न का उत्तर जितनी बार देते, उतनी बार नये भाव और नये दृष्टान्त के द्वारा इस प्रकार देते कि वह सुननेवालो को एकदम नया मालूम होता था, और उनकी वाणी सुनते सुनते थकावट आना तो दूर की बात रही, बल्कि और अधिक सुनने का अनुराग उत्तरोत्तर बढता जाता था। व्याख्यान देने की भी उनकी यही शैली थी। पहले से सोचकर व्याख्यान की रूपरेखा को लिखकर वे कभी भी व्याख्यान नही देते थे। व्याख्यान-प्रारम्भ से कुछ देर पहले तक वे हँसी-मज़ाक, साधारण भाव से बातचीत एव व्याख्यान से बिलकुल सम्बन्ध न रखनेवाले विषयो को लेकर भी चर्चा करते रहते थे। व्याख्यान मे क्या कहेगे, यह उन्हे स्वय नही मालूम रहता था। हम लोग जो कुछ दिन उनके ससर्ग मे रहकर धन्य हुए हैं, उन्ही कुछ दिनो की कथा-वार्ता का विवरण जहाँ तक और भी सम्भव है, क्रमश लिपिबद्ध कर रहा हूँ।

२

पहले ही कह चुका हूँ कि पाश्चात्य विज्ञान की सहायता से हिन्दू धर्म को समझाने एव विज्ञान और धर्म का सामजस्य प्रदर्शित करने मे स्वामी जी के समान मैंने और कोई नही देखा। आज उसी प्रसग मे दो-चार बातें लिखने की इच्छा है। किन्तु यह जान लेना होगा, मुझे जहाँ तक स्मरण है, उतना ही लिख रहा हूँ। अतएव इसमे यदि कोई भूल रहे, तो वह मेरे समझने की भूल है, स्वामी जी की व्याख्या की नही।

स्वामी जी कहते थे—"चेतन-अचेतन, स्थूल-सूक्ष्म—सभी एकत्व की ओर दम साधकर दौड रहे हैं। पहले मनुष्य ने जिन भिन्न भिन्न पदार्थों को देखा, उनमे से प्रत्येक को भिन्न भिन्न समझकर उनको भिन्न भिन्न नाम दिये। बाद मे

विचार करके मैं समस्त पदार्थ ६३ मूल द्रव्यों से उत्पन्न हुए हैं, ऐसा निश्चित किया।

'इन मूल द्रव्यों में अनेक मिश्रद्रव्य हैं ऐसा इस समय बहुतों को सन्देह हो रहा है। और जब रसायनशास्त्र अन्तिम मीमांसा पर पहुँचेगा उस समय सभी पदार्थ एक ही पदार्थ के अवस्था-भेद मात्र समझे जायँगे। पहले ताप आलोक और विद्युत् को सभी विभिन्न समझते थे। अब प्रमाणित हो गया है ये सब एक हैं, एक ही शक्ति के अवस्थान्तर मात्र हैं। लोगों ने पहले समस्त पदार्थों को चेतन अचेतन और उद्भिद इन तीन श्रेणियों में विभक्त किया था। उसके बाद देखा कि उद्भिद में भी दूसरे सभी चेतन प्राणियों के समान प्राण है, केवल गमन-शक्ति नहीं है, इतना ही। तब बाकी रही दो श्रेणियाँ—चेतन और अचेतन। फिर कुछ दिनों बाद देखा जायगा हम लोग जिन्हें अचेतन कहते हैं उनमें भी थोड़ा-बहुत चैतन्य है।'[1]

"पृथ्वी में जो ऊँची-नीची जमीन देखी जाती है वह भी समतल होकर एक रूप में परिणत होने की सतत चेष्टा कर रही है। वर्षा के जल से पर्वत आदि ऊँची जमीन धुल जाने पर उस मिट्टी से गड्ढे भर रहे हैं। एक उष्ण पदार्थ को किसी स्थान में रखने पर वह चारों ओर के द्रव्यों के साथ समान उष्ण भाव धारण करने की चेष्टा करता है। उष्णता-शक्ति इस प्रकार संचालन संवाहन विकिरण आदि उपायों से सर्वदा समभाव या एकत्व की ओर ही अग्रसर हो रही है।

'वृक्ष के फल फूल पत्ते और उसकी जड़ हम लोगों द्वारा भिन्न भिन्न देखे जाने पर भी वे सब वस्तुतः एक ही हैं विज्ञान इसे प्रमाणित कर चुका है। त्रिकोण काँच के भीतर से देखने पर सफ़ेद रंग इन्द्रधनुष के सात रंग के समान पृथक् पृथक् विभक्त दिखायी पड़ता है। खाली आँखों से देखने पर एक ही रंग और लाल या नीले चश्मे से देखने पर सभी कुछ लाल या नीला दिखायी देता है।

'इसी प्रकार, जो सत्य है, वह तो एक ही है। माया के द्वारा हम लोग उसे पृथक् पृथक् देखते हैं बस इतना ही। यद्यपि देश और काल से अतीत जो अखण्ड अद्वैत सत्य है उसीके कारण मनुष्य को सब प्रकार के भिन्न भिन्न पदार्थों का ज्ञान होता है फिर भी वह उस सत्य को नहीं पकड़ पाता उसे नहीं देख सकता।

---

१ स्वामी जी ने जिस समय पूर्वोक्त विषयों का प्रतिपादन किया था उस समय विश्वस्त वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु द्वारा प्रचारित तड़ित्प्रवाह से धातु पदार्थों का चेतनस्वरूप अपूर्व तत्त्व प्रकाशित नहीं हुआ था। स

इन सब बातो को सुनकर मैंने कहा, "स्वामी जी, हम लोग आँखो से जो कुछ देखते हैं, वही क्या सब समय सत्य है? दो समानान्तर रेल की पटरियो को देखने पर प्रतीत होता है, मानो वे अन्त मे एक जगह मिल गयी हैं। उसीका नाम है, 'लुप्त विन्दु'। मृगतृष्णा, रज्जु मे सर्प-भ्रम आदि (optical illusion) (दृष्टि-विभ्रम) सर्वदा ही होता रहता है। Calcspar नामक पत्थर के नीचे एक रेखा double refraction (द्वि-आवर्तन) से दो दिखायी देती है। एक पेन्सिल को आधे गिलास पानी मे डुबाकर रखने पर पेन्सिल का जलमग्न भाग ऊपरी भाग की अपेक्षा मोटा दिखायी देता है। फिर सभी प्राणियो के नेत्र भिन्न भिन्न क्षमतायुक्त एक एक लेन्स मात्र हैं। हम लोग किसी वस्तु को जितनी बडी देखते हैं, घोडा आदि अनेक प्राणी उसको तदपेक्षा अधिक बडी देखते हैं, क्योकि उनके नेत्रो का लेन्स भिन्न शक्तिवाला है। अतएव हम जिसे अपनी आँखो से देखते है, वही सत्य है, इसका भी तो कोई प्रमाण नही। जॉन स्टुअर्ट मिल ने कहा है—मनुष्य सत्य सत्य करके ही पागल है, किन्तु निरपेक्ष सत्य (absolute truth) को समझने की क्षमता उसमे नही है, क्योकि, घटना-क्रम से प्रकृत सत्य के आँखो के सामने आने पर भी यही वास्तविक सत्य है, यह मनुष्य कैसे समझेगा? हम लोगो का समस्त ज्ञान सापेक्ष है, निरपेक्ष को समझने की क्षमता हममे नही है। अतएव निरपेक्ष (निर्गुण) भगवान् या जगत्कारण को मनुष्य कभी भी नही समझ सकता।"

स्वामी जी ने कहा, "हो सकता है, तुम्हे या और सब लोगो को निरपेक्ष ज्ञान न हो, पर इसीलिए किसीको भी वह ज्ञान नही है, यह कैसे कह सकते हो? ज्ञान और अज्ञान अथवा मिथ्या ज्ञान नामक दो प्रकार के भाव या अवस्थाएँ है। इस समय तुम जिसे ज्ञान कहते हो, वह तो वस्तुत मिथ्या ज्ञान है। सत्य ज्ञान के उदित होने पर वह अन्तर्हित हो जाता है, उस समय सब एक दिखायी देता है। द्वैतज्ञान अज्ञानजनित है।"

मैंने कहा, "स्वामी जी, यह तो बडी भयानक बात है! यदि ज्ञान और अज्ञान, ये दो ही वस्तुएँ है, तो ऐसा होने पर आप जिसे सत्य ज्ञान समझते हैं, वह भी तो मिथ्या ज्ञान हो सकता है, और हम लोगो के जिस द्वैत ज्ञान को आप मिथ्या ज्ञान कहते हैं, वह भी तो सत्य ज्ञान हो सकता है?"

उन्होंने कहा, "ठीक कहते हो, इसीलिए तो वेद मे विश्वास करना चाहिए। हमारे पूर्वकालीन ऋषि-मुनिगण समस्त द्वैत ज्ञान को पारकर, इस अद्वैत सत्य का अनुभव कर जो कह गये हैं, उसीको वेद कहते हैं। स्वप्न और जाग्रत अवस्थाओ मे से कौन सी सत्य है और कौन सी असत्य, इसे विचारने की क्षमता हम लोगो

में नहीं है। जब तक हम लोग इन दोनों अवस्थाओं को पारकर इनकी परीक्षा नहीं कर सकेंगे तब तक कैसे कह सकते हैं कि यह सत्य है और यह असत्य ? केवल दो विभिन्न अवस्थाओं का अनुभव होता है इतना ही कहा जा सकता है। जब तुम एक अवस्था में रहते हो तो दूसरी अवस्था तुम्हें भूल मालूम पड़ती है। स्वप्न में हो सकता है कलकत्ते में तुमने क्रय-विक्रय किया पर दूसरे ही क्षण अपने को बिछौने पर लेटे हुए पाते हो। जब सत्य ज्ञान का उदय होगा तब एक से भिन्न और कुछ नहीं देखोगे उस समय यह समझ सकोगे कि पहले का द्वैत ज्ञान मिथ्या था। किन्तु यह सब बहुत दूर की बात है। हाथ में खड़िया लेकर अक्षरारम्भ करते ही यदि कोई रामायण महाभारत पढ़ने की इच्छा करे, तो यह कैसे होगा ? धर्म अनुभव की विषय है बुद्धि के द्वारा समझने का नहीं। अनुभव के लिए प्रयत्न करना ही होगा तब उसका सत्यासत्य समझा जा सकेगा। यह बात तुम लोगों के पाश्चात्य विज्ञान रसायनशास्त्र भौतिकशास्त्र भूगर्भशास्त्र आदि से भी अनुमोदित है। दो अंश Hydrogen (उद्जन) और एक अंश Oxygen (ओषजन) लेकर 'पानी कहाँ' कहने से क्या कहीं पानी होगा ? नहीं उनको एक बन्द स्थान में रखकर उनके भीतर electric current (विद्युत्प्रवाह) चलाकर उनका combination (संयोग मिश्रण नहीं) करने पर ही पानी दिखायी देगा और ज्ञात होगा कि उद्जन और ओषजन नामक गैस से पानी उत्पन्न हुआ है। अद्वैत ज्ञान की उपलब्धि के लिए भी ठीक उसी तरह धर्म में विश्वास चाहिए, आग्रह चाहिए, अध्यवसाय चाहिए और चाहिए प्राणपण से यत्न। तब कहीं अद्वैत ज्ञान होता है। एक महीने की आदत छोड़ना कितना कठिन होता है फिर दस साल की आदत की तो बात ही क्या ! प्रत्येक व्यक्ति के सैकड़ों जन्मों का कर्मफल पीठ पर बँधा हुआ है। एक मुहूर्त भर श्मशान वैराग्य हुआ नहीं कि बस कहने लगे कहाँ मुझे तो सब एक दिखायी नहीं पड़ता ?

मैंने कहा 'स्वामी जी आपकी यह बात सत्य होने पर तो Fatalism (अदृष्टवाद) आ जाता है। यदि बहुत जन्मों का कर्मफल एक जन्म में जाने का नहीं तो उसके लिए फिर प्रयत्न ही क्यों ! जब सभी को मुक्ति मिलेगी तो मुझे भी मिलेगी।

वे बोले वैसा नहीं है। कर्म का फल तो अवश्य भोगना होगा किन्तु अनेक उपायों द्वारा ये सब कर्मफल बहुत थोड़े समय के भीतर समाप्त हो सकते हैं। मैजिक लैन्टर्न की पचास तस्वीरें दस मिनट के भीतर भी दिखायी जा सकती हैं और दिखाते दिखाते समस्त रात भी काटी जा सकती है। यह तो अपने आग्रह के ऊपर निर्भर है।

सृष्टि-रहस्य के सम्बन्ध मे भी स्वामी जी की व्याख्या अति सुन्दर है,—"सृष्ट वस्तु मात्र ही चेतन और अचेतन (सुविधा के लिए) इन दो भागो मे विभक्त है। मनुष्य सृष्ट वस्तु के चेतन-भाग का श्रेष्ठ प्राणीविशेष है। किसी किसी धर्म के मतानुसार ईश्वर ने अपने ही समान रूपवाली सर्वश्रेष्ठ मानव जाति का निर्माण किया है, कोई कहते हैं—मनुष्य पुच्छरहित वानरविशेष है, कोई कहते है—केवल मनुष्य मे ही विवेचना-शक्ति है, उसका कारण यह है कि मनुष्य के मस्तिष्क मे जल का अश अधिक है। जो भी हो, मनुष्य प्राणीविशेष है और सब प्राणी सृष्ट पदार्थ के अश मात्र है, इस विषय मे मतभेद नही है। अब एक ओर पाश्चात्य विद्वान् 'सृष्ट पदार्थ क्या है,' यह समझने के लिए सश्लेषण-विश्लेषणात्मक उपायो का अवलम्बन कर 'यह क्या,' 'वह क्या,' इस प्रकार अनुसन्धान करने लगे, और दूसरी ओर हमारे पूर्वज लोग भारत की गर्म हवा और उर्वरा भूमि मे, शरीर-रक्षा के लिए बिल्कुल थोडा समय देकर, कौपीन धारण कर, टिमटिमाते दिये के प्रकाश मे बैठकर, कमर बाँधकर विचार करने लगे—**कस्मिन् विज्ञाते सर्वमिद विज्ञात भवति**, अर्थात् 'ऐसा कौन सा पदार्थ है, जिसके जान लेने पर सब कुछ जाना जा सकता है?' उन लोगो मे अनेक प्रकार के लोग थे। इसीलिए चार्वाक के, 'जो कुछ दिखता है, वही सत्य है', इस मत (ultra-materialistic theory) से लेकर शकराचार्य के अद्वैत मत तक सभी हमारे धर्म मे पाये जाते हैं। ये दोनो ही दल धीरे धीरे एक स्थान मे पहुँच रहे है और अब दोनो ने एक ही बात कहनी आरम्भ कर दी है। दोनो ही कहते है—इस ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थ एक अनिवर्चनीय, अनादि, अनन्त वस्तु के प्रकाश मात्र हैं। देश एव काल भी वही हैं। काल अर्थात् युग, कल्प, वर्ष, मास, दिन और मुहूर्त आदि समयसूचक काल, जिसके अनुभव मे सूर्य की गति ही हमारी प्रधान सहायक है। जरा सोचकर तो देखो, वह काल क्या मालूम होता है? सूर्य अनादि नही है, ऐसा समय अवश्य था, जब सूर्य की सृष्टि नही हुई थी। और ऐसा समय भी आयेगा, जब यह सूर्य नही रहेगा, यह निश्चित है। अत अखण्ड समय एक अनिर्वचनीय भाव या वस्तु विशेष के अतिरिक्त भला और क्या है? देश या आकाश कहने पर हम लोग पृथ्वी अथवा सौर जगत् सम्बन्धी सीमाबद्ध स्थानविशेष समझते हैं, किन्तु वह तो समग्र सृष्टि का अश मात्र छोड और कुछ भी नही है। ऐसा भी स्थान हो सकता है, जहाँ पर कोई सृष्ट वस्तु नही है। अतएव अनन्त देश भी काल के समान एक अनिर्वचनीय भाव या वस्तुविशेष है। अब, सौर जगत् और सृष्ट पदार्थ कहाँ से और किस तरह आये? साधारणत हम लोग कर्ता के अभाव मे क्रिया नही देख पाते। अतएव समझते हैं कि इस सृष्टि का अवश्य कोई कर्ता है, किन्तु ऐसा

होने पर तो सृष्टिकर्ता का भी कोई सृष्टिकर्ता आवश्यक है। किन्तु वैसा हो नहीं सकता। अतएव आदि कारण सृष्टिकर्ता या ईश्वर भी अनादि अनिर्वचनीय अनन्त भाव या वस्तुविशेष है। पर अनन्त की अनेकता तो सम्भव नहीं है अतएव ये सब अनन्त वस्तुएँ एक ही हैं एवं एक ही विविध रूपों में प्रकाशित है।

एक समय मैंने पूछा था "स्वामी जी मन्त्र आदि में जो साधारणतया विश्वास प्रचलित है यह क्या सत्य है?

उन्होंने उत्तर दिया 'सत्य न होने का कोई कारण तो दिखता नहीं। तुमसे कोई यदि करुण स्वर एवं मधुर भाषा में कोई बात पूछे तो तुम सन्तुष्ट होते हो पर कठोर स्वर एवं तीखी भाषा में पूछे तो तुम्हें क्रोध आ जाता है। तब फिर भला प्रत्येक भूत के अधिष्ठाता देवता सुललित उत्तम श्लोकों द्वारा क्यों न सन्तुष्ट होंगे?

इन सब बातों को सुनकर मैंने कहा 'स्वामी जी मेरी विद्या-बुद्धि की दौड़ को तो आप अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस समय मेरा क्या कर्तव्य है, यह आप बतलाने की कृपा करें।

स्वामी जी ने कहा 'जिस प्रकार भी हो पहले मन को वश में लाने की चेष्टा करो बाद में सब आप ही हो जायगा। ध्यान रखो अद्वैत ज्ञान अत्यन्त कठिन है वही मानव-जीवन का चरम उद्देश्य या लक्ष्य है, किन्तु उस लक्ष्य तक पहुँचने के पहले अनेक चेष्टा और आयोजन की आवश्यकता होती है। साधु-संग और यथार्थ वैराग्य को छोड़ उसके अनुभव का और कोई साधन नहीं।

# स्वामी जी की अस्फुट स्मृति[1]

## १

आज से सोलह वर्ष पहले की बात है। सन् १८९७ ईस्वी, फरवरी मास। स्वामी विवेकानन्द ने पाश्चात्य देशो को जीतकर अभी अभी भारत मे पदार्पण किया है। जिस क्षण से स्वामी जी ने शिकागो धर्म-महासभा मे हिन्दू धर्म की विजय-पताका फहरायी है, तब से उनके सम्बन्ध मे जो भी बात सवाद-पत्रो मे प्रकाशित होती है, बडे चाव से पढता हूँ। कॉलेज छोडे अभी दो-तीन वर्ष हुए हैं, किसी प्रकार का अर्थोपार्जन आदि नही कर रहा हूँ। इसलिए कभी मित्रो के घर जाकर, अथवा कभी घर के समीपवर्ती धर्मतला मुहल्ले मे 'इण्डियन मिरर' आफिस के बाहरी भाग मे बोर्ड पर चिपकी हुई 'इण्डियन मिरर' पत्रिका मे स्वामी जी से सम्बन्धित जो कोई सवाद या उनका व्याख्यान प्रकाशित होता है, उसे बडी उत्सुकता से पढा करता हूँ। इस प्रकार, स्वामी जी के भारत मे पदार्पण करने के समय से सिहल या मद्रास मे जो कुछ उन्होंने कहा है, प्राय सभी पढ चुका हूँ। इसके सिवाय आलमबाजार मठ मे जाकर उनके गुरुभाइयो के पास एव मठ मे आने-जानेवाले मित्रो के पास उनके विषय मे बहुत सी बातें सुन चुका हूँ और सुनता हूं, तथा विभिन्न सम्प्रदायो के मुखपत्र, जैसे—बगवासी, अमृतबाजार, होप, थियोसॉफिस्ट प्रभृति, अपनी अपनी समझ के अनुसार—कोई व्यग से, कोई उपदेश देने के बहाने, तो कोई बडप्पन के ढग से—उनके बारे मे जो कुछ लिखता है, वह भी लगभग सब पढ चुका हूँ।

आज वे ही स्वामी विवेकानन्द सियालदह स्टेशन पर अपनी जन्मभूमि कलकत्ता नगरी में पदार्पण करेंगे। अब आज उनकी श्री मूर्ति के दर्शन से आँख-कान का विवाद समाप्त हो जायगा, इस हेतु बडे तडके ही उठकर सियालदह स्टेशन पर जा उपस्थित हुआ। इतने सवेरे से ही स्वामी जी की अभ्यर्थना के लिए बहुत से लोग एकत्र हो गये हैं। अनेक परिचित व्यक्तियो से भेंट हुई। स्वामी जी

---

१ बगला सन् १३२० के आषाढ मास के बगला मासिक-पत्र 'उद्बोधन' मे स्वामी शुद्धानन्द का यह लेख प्रकाशित हुआ था। स०

होने पर तो सृष्टिकर्ता का भी कोई सृष्टिकर्ता आवश्यक है। किन्तु वैसा हो नहीं सकता। अतएव आदि कारण सृष्टिकर्ता या ईश्वर भी अनादि, अनिर्वचनीय अनन्त भाव या वस्तुविशेष है। पर अनन्त की अनेकता तो सम्भव नहीं है अतएव ये सब अनन्त वस्तुएँ एक ही हैं एवं एक ही विविध रूपों में प्रकाशित है।

एक समय मैंने पूछा था 'स्वामी जी मन्त्र आदि में जो साधारणतया विश्वास प्रचलित है वह क्या सत्य है?

उन्होंने उत्तर दिया 'सत्य न होने का कोई कारण तो दिखता नहीं। तुमसे कोई यदि करुण स्वर एवं मधुर भाषा में कोई बात पूछे तो तुम सन्तुष्ट होते हो पर कठोर स्वर एवं तीखी भाषा में पूछे तो तुम्हें क्रोध आ जाता है। तब फिर भला प्रत्येक भूत के अधिष्ठाता देवता सुललित उत्तम श्लोकों द्वारा क्यों न सन्तुष्ट होंगे?

इन सब बातों को सुनकर मैंने कहा 'स्वामी जी मेरी विद्या-बुद्धि की दौड़ को तो आप अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस समय मेरा क्या कर्तव्य है यह आप बतलाने की कृपा करें।

स्वामी जी ने कहा "जिस प्रकार भी हो पहले मन को वश में लाने की चेष्टा करो बाद में सब आप ही हो जायगा। ध्यान रखो अद्वैत ज्ञान अत्यन्त कठिन है वही मानव-जीवन का चरम उद्देश्य या लक्ष्य है, किन्तु उस लक्ष्य तक पहुँचने के पहले अनेक चेष्टा और आयोजन की आवश्यकता होती है। साधु-संग और यथार्थ वैराग्य को छोड़ उसके अनुभव का और कोई साधन नहीं।

के इशारे से जनता को नियन्त्रित कर रहे हैं, और दूसरी गाडी मे गुडविन, हैरिसन (सिंहल से स्वामी जी के साथ आये हुए बौद्ध धर्मावलम्बी एक साहब), जी० जी०, किडी और आलासिगा नामक तीन मद्रासी शिष्य एव स्वामी त्रिगुणातीतानन्द जी बैठे हुए हैं।

थोडी देर गाडी रुकने के बाद, बहुतो के अनुरोधवश स्वामी जी रिपन कॉलेज मे प्रवेश कर दो-तीन मिनट अग्रेजी मे थोडा बोले और लौटकर गाडी मे आकर बैठ गये। यहाँ से जुलूस आगे नही गया। गाडी बागबाज़ार मे पशुपति बाबू के घर की ओर चली। मैं भी मन ही मन स्वामी जी को प्रणाम कर अपने घर की ओर लौटा।

२

भोजन करने के बाद मध्याह्न काल मे चाँपातला मुहल्ले मे खगेन (स्वामी विमलानन्द) के घर गया। वहाँ से खगेन और मैं उसके टाँगे मे बैठकर पशुपति बोस के घर की ओर चले। स्वामी जी ऊपर के कमरे मे विश्राम कर रहे थे, अधिक लोगो को नही जाने दिया जा रहा था। सौभाग्यवश हमारे परिचित, स्वामी जी के अनेक गुरुभाइयो से भेंट हो गयी। स्वामी शिवानन्द जी हम लोगो को स्वामी जी के पास ले गये और हम लोगो का परिचय देते हुए कहा, "ये सब आपके खूब admirers (प्रेमी) हैं।"

स्वामी जी और स्वामी योगानन्द पशुपति बाबू के घर की दूसरी मञ्जिल पर एक सुसज्जित बैठकखाने मे पास पास दो कुर्सियो पर बैठे थे। अन्य साधुगण उज्ज्वल गैरिक वस्त्र धारण किये हुए इधर-उधर घूम रहे थे। फर्श पर दरी बिछी हुई थी। हम लोग प्रणाम करके दरी पर बैठे। स्वामी जी उस समय स्वामी योगानन्द से बातचीत कर रहे थे। अमेरिका और यूरोप मे स्वामी जी ने क्या देखा, यह प्रसग चल रहा था। स्वामी जी कह रहे थे—

"देख योगेन, क्या देखा, बताऊँ? समस्त पृथ्वी मे एक महाशक्ति ही क्रीडा कर रही है। हमारे पूर्वजो ने उसको religion (धर्म) की ओर manifest (प्रकाशित) किया था, और आधुनिक पाश्चात्य देशीय लोग उसीको महा रजोगुणात्मक क्रिया के रूप मे manifest (प्रकाशित) कर रहे हैं। वस्तुत समग्र जगत् मे वही एक महाशक्ति भिन्न भिन्न रूप मे क्रीडा कर रही है।"

खगेन की ओर देखकर स्वामी जी ने कहा, "इस लडके को बहुत sickly (कमजोर) देखता हूँ।"

के सम्बन्ध में बातचीत होने लगी। देखा अंग्रेजी में मुद्रित दो पर्चे वितरित किये जा रहे हैं। पढ़कर मालूम हुआ कि इंग्लैण्ड और अमेरिकावासी उनके छात्रवृन्द ने उनके प्रस्थान के अवसर पर उनके गुणों का वर्णन करते हुए, उनके प्रति कृतज्ञता-सूचक जो दो अभिनन्दन-पत्र अर्पित किये थे ये ही वे हैं। धीरे धीरे स्वामी जी के दर्शनार्थी लोग झुण्ड के झुण्ड आने लगे। प्लेटफ़ार्म लोगों से भर गया। सभी आपस में एक दूसरे से उत्कण्ठा के साथ पूछते हैं 'स्वामी जी के आने में और कितना विलम्ब है?' सुना गया वे एक 'स्पेशल ट्रेन' से आयेंगे आने में अब और देरी नहीं है। अरे, यह तो है,—गाड़ी का शब्द सुनायी दे रहा है! क्रमशः आवाज के साथ गाड़ी ने प्लेटफ़ार्म के भीतर प्रवेश किया।

स्वामी जी जिस डिब्बे में थे वह जिस जगह आकर रुका सौभाग्य से मैं ठीक उसीके सामने खड़ा था। गाड़ी रुकते ही देखा स्वामी जी खड़े हाथ जोड़कर सबको नमस्कार कर रहे हैं। इस एक ही नमस्कार से स्वामी जी ने मेरे हृदय को आकृष्ट कर लिया। उस समय गाड़ी में बैठे हुए स्वामी जी की मूर्ति को मैंने साधारणतः देख लिया। उसके बाद स्वागत-समिति के श्रीयुत नरेन्द्रनाथ सेन आदि व्यक्तियों ने आकर स्वामी जी को गाड़ी से उतारा और कुछ दूर खड़ी एक गाड़ी में बिठाया। बहुत से लोग स्वामी जी को प्रणाम करने और उनकी चरण रेणु लेने के लिए अग्रसर हुए। उस जगह बड़ी भीड़ जमा हो गयी। इधर दर्शकों के हृदय से आप ही 'जय स्वामी विवेकानन्द जी की जय' 'जय श्री रामकृष्ण देव की जय' की आनन्द-ध्वनि निकलने लगी। मैं भी हृदय से उस आनन्द-ध्वनि में सहयोग देकर जनता के साथ अग्रसर होने लगा। क्रमशः जब स्टेशन के बाहर निकले तो देखा बहुत से युवक स्वामी जी की गाड़ी के घोड़े खोलकर स्वयं ही गाड़ी खींचने के लिए अग्रसर हो रहे हैं। मैंने भी उन लोगों को सहयोग देना चाहा परन्तु भीड़ के कारण वैसा न कर सका। इसलिए उस चेष्टा को छोड़कर कुछ दूर से स्वामी जी की गाड़ी के साथ चलने लगा। स्टेशन पर स्वामी जी के स्वागतार्थ आये हुए एक हरिनाम-संकीर्तन-दल को देखा था। रास्ते में एक बैण्ड बजानेवाले दल को बैण्ड बजाते हुए स्वामी जी के साथ चलते देखा। रिपन कॉलेज तक का मार्ग अनेक प्रकार की पताकाओं एवं लता पत्र और पुष्पों से सुसज्जित था। गाड़ी आकर रिपन कॉलेज के सामने खड़ी हुई। इस बार स्वामी जी को देखने का अच्छा सुयोग मिला। देखा वे किसी परिचित व्यक्ति से कुछ कह रहे हैं। मुख उज्ज्वलकाञ्चनवर्ण है मानो ज्योति फूटकर बाहर निकल रही है। मार्गजनित श्रम के कारण कुछ पसीना आ रहा है। दो गाड़ियाँ हैं—एक में स्वामी जी एवं श्रीमान और श्रीमती सेवियर बैठे हैं जिसमें खड़े होकर माननीय चारुचन्द्र मित्र हाथ

के इशारे से जनता को नियन्त्रित कर रहे है, और दूसरी गाडी मे गुडविन, हैरिसन (सिहल से स्वामी जी के साथ आये हुए बौद्ध धर्मावलम्वी एक साहव), जी० जी०, किडी और आलासिगा नामक तीन मद्रासी शिष्य एव स्वामी त्रिगुणातीतानन्द जी बैठे हुए हैं।

थोडी देर गाडी रुकने के बाद, वहुतो के अनुरोधवश स्वामी जी रिपन कॉलेज मे प्रवेश कर दो-तीन मिनट अग्रेजी मे थोडा बोले और लौटकर गाडी मे आकर बैठ गये। यहाँ से जुलूस आगे नही गया। गाडी वागवाज़ार मे पशुपति वाबू के घर की ओर चली। मैं भी मन ही मन स्वामी जी को प्रणाम कर अपने घर की ओर लौटा।

२

भोजन करने के बाद मध्याह्न काल मे चाँपातला मुहल्ले में खगेन (स्वामी विमलानन्द) के घर गया। वहाँ से खगेन और मैं उसके टाँगे मे बैठकर पशुपति बोस के घर की ओर चले। स्वामी जी ऊपर के कमरे मे विश्राम कर रहे थे, अधिक लोगो को नही जाने दिया जा रहा था। सौभाग्यवश हमारे परिचित, स्वामी जी के अनेक गुरुभाइयो से भेंट हो गयी। स्वामी शिवानन्द जी हम लोगो को स्वामी जी के पास ले गये और हम लोगो का परिचय देते हुए कहा, "ये सब आपके खूब admirers (प्रेमी) हैं।"

स्वामी जी और स्वामी योगानन्द पशुपति बाबू के घर की दूसरी मज़िल पर एक सुसज्जित बैठकखाने मे पास पास दो कुर्सियो पर बैठे थे। अन्य साधुगण उज्ज्वल गैरिक वस्त्र धारण किये हुए इधर-उधर घूम रहे थे। फर्श पर दरी बिछी हुई थी। हम लोग प्रणाम करके दरी पर बैठे। स्वामी जी उस समय स्वामी योगानन्द से वातचीत कर रहे थे। अमेरिका और यूरोप मे स्वामी जी ने क्या देखा, यह प्रसग चल रहा था। स्वामी जी कह रहे थे—

"देख योगेन, क्या देखा, वताऊँ? समस्त पृथ्वी मे एक महाशक्ति ही क्रीडा कर रही है। हमारे पूर्वजो ने उसको religion (धर्म) की ओर manifest (प्रकाशित) किया था, और आधुनिक पाश्चात्य देशीय लोग उसीको महा रजो-गुणात्मक क्रिया के रूप मे manifest (प्रकाशित) कर रहे हैं। वस्तुत समग्र जगत् मे वही एक महाशक्ति भिन्न भिन्न रूप मे क्रीडा कर रही है।"

खगेन की ओर देखकर स्वामी जी ने कहा, "इस लडके को वहुत sickly (कमज़ोर) देखता हूँ।"

स्वामी निरंजनानन्द जी ने उत्तर दिया, "यह बहुत दिनों से chronic dyspepsia (पुराना अजीर्ण रोग) से पीड़ित है।"

स्वामी जी ने कहा, "हमारा बंगाल देश बड़ा sentimental (भावुक) है न, इसीलिए यहाँ इतना dyspepsia होता है।"

कुछ देर बाद हम लोग प्रणाम करके अपने अपने घर लौट आये।

२

स्वामी जी और उनके शिष्य श्रीमान् और श्रीमती सेवियर काशीपुर में स्व० गोपाललाल शील के बगीचे में निवास कर रहे हैं। स्वामी जी के श्रीमुख से कथा-वार्ता सुनने के लिए अपने बहुत से मित्रों के साथ मैं इस स्थान पर कई बार गया था। वहाँ का प्रसंग जो कुछ स्मरण है, वह इस प्रकार है:

स्वामी जी के साथ मुझे वार्तालाप का सौभाग्य सर्वप्रथम उसी बगीचे के एक कमरे में हुआ। स्वामी जी आकर बैठे हैं, मैं भी जाकर प्रणाम करके बैठा हूँ, उस समय वहाँ और कोई नहीं है। न जाने क्यों, स्वामी जी ने एकाएक मुझसे पूछा, "क्या तू तम्बाकू पीता है?"

मैंने कहा, "जी नहीं।"

इस पर स्वामी जी बोले, "हाँ, बहुत से लोग कहते हैं—तम्बाकू पीना अच्छा नहीं।"

एक दूसरे दिन स्वामी जी के पास एक वैष्णव आये हुए हैं। स्वामी जी उनके साथ वार्तालाप कर रहे हैं। मैं कुछ दूर पर बैठा हूँ, और कोई नहीं है। स्वामी जी कह रहे हैं, "बाबा जी, अमेरिका में मैंने श्री कृष्ण के सम्बन्ध में एक बार व्याख्यान दिया। उसको सुनकर एक परम सुन्दरी, अगाध ऐश्वर्य की अधिकारिणी युवती सर्वस्व त्यागकर एक निर्जन द्वीप में जाकर श्री कृष्ण के ध्यान में उन्मत्त हो गयी।" उसके बाद स्वामी जी त्याग के सम्बन्ध में कहने लगे, "जिन सम्प्रदायों में त्याग-भाव का प्रचार उतने उज्ज्वल रूप में नहीं है, उनके भीतर शीघ्र ही अवनति आ जाती है, जैसे—वल्लभाचार्य का सम्प्रदाय।"

और एक दिन स्वामी जी के पास गया। देखता हूँ, बहुत से लोग बैठे हैं और स्वामी जी एक युवक को लक्ष्य कर वार्तालाप कर रहे हैं। युवक बंगाल थियोसॉफिकल सोसायटी के भवन में रहता है। वह कह रहा है, "मैं अनेक सम्प्रदायों में जाता हूँ, किन्तु सत्य क्या है, यह निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ।"

स्वामी जी अत्यन्त स्नेहपूर्ण स्वर मे कह रहे हैं, "देखो बच्चा, मेरी भी एक दिन तुम्हारी जैसी अवस्था थी। फिर भय क्या ? अच्छा, भिन्न भिन्न लोगो ने तुमसे क्या क्या कहा था, और तुमने क्या क्या किया, बताओ तो सही ?"

युवक कहने लगा, "महाराज, हमारी सोसाइटी मे भवानीशकर नामक एक विद्वान् प्रचारक हैं। मूर्तिपूजा के द्वारा आध्यात्मिक उन्नति मे जो विशेष सहायता मिलती है, उसे उन्होंने मुझे बहुत सुन्दर ढग से समझा दिया। मैंने भी तदनुसार कुछ दिनो तक खूब पूजा-अर्चना की, किन्तु उससे शान्ति नही मिली। उसी समय एक महाशय ने मुझे उपदेश दिया—'देखो, मन को बिल्कुल शून्य करने की कोशिश करो, उससे तुम्हे परम शान्ति मिलेगी।' मैं बहुत दिनो तक उसी कोशिश मे लगा रहा किन्तु उससे भी मेरा मन शान्त न हुआ। महाराज, मैं अब भी एक कोठरी मे, दरवाजा बन्द कर, जब तक बन पडता है, बैठा रहता हूँ, किन्तु शान्ति तो किसी भी तरह नही मिल रही है। क्या आप दया कर यह बता सकेंगे, शान्ति किससे मिलेगी ?"

स्वामी जी स्नेहभरे स्वर मे कहने लगे, "बच्चा, यदि तुम मेरी बात सुनो, तो तुम्हे अब पहले अपनी कोठरी का दरवाजा खुला रखना होगा। तुम्हारे घर के पास, बस्ती के पास कितने अभावग्रस्त लोग रहते हैं, उनकी तुम्हे यथासाध्य सेवा करनी होगी। जो पीडित है, उसके लिए औषधि और पथ्य का प्रबन्ध करो और शरीर के द्वारा उसकी सेवा-शुश्रूषा करो। जो भूखा है, उसके लिए खाने का प्रबन्ध करो। तुमने तो इतना पढा-लिखा है, अत जो अज्ञानी है, उसे वाणी द्वारा जहाँ तक हो सके, समझाओ। यदि तुम मेरा परामर्श मानो, तो इस प्रकार लोगो की यथासाध्य सेवा करो। यदि तुम इस प्रकार कर सकोगे, तो तुम्हारे मन को अवश्य शान्ति मिलेगी।"

युवक बोला, "अच्छा, महाराज, मान लीजिए, मैं एक रोगी की सेवा करने के लिए गया, किन्तु उसके लिए रात भर जगने से, समय पर भोजन आदि न करने तथा अधिक परिश्रम से यदि मैं स्वय ही रोगग्रस्त हो जाऊं तो ?"

स्वामी जी अब तक उस युवक के साथ स्नेहपूर्ण स्वर मे सहानुभूति के साथ बातें कर रहे थे। इस अन्तिम वाक्य से ऐसा जान पडा कि वे कुछ विरक्त से हो गये। वे कुछ व्यग-भाव से कह उठे, "देखो जी, रोगी की सेवा करने के लिए जाने पर तुम अपने रोग की आशका कर रहे हो, किन्तु तुम्हारी बातचीत सुनने पर और तुम्हारा मनोभाव देखने पर मुझे तो मालूम पडता है—और जो यहाँ उपस्थित हैं, वे भी खूब अच्छी तरह समझ सकते हैं—कि तुम ऐसे रोगी की सेवा कभी भी नही करोगे, जिससे तुम्हें खुद को ही रोग हो जाय।"

युवक के साथ और कोई विशेष बातचीत नहीं हुई। हम लोग समझ गये यह व्यक्ति 'कैंची' श्रेणी का है, अर्थात् जैसे कैंची को कुछ भी मिले, उसीको काट देती है, उसी प्रकार एक वर्ग के मनुष्य हैं, जो कोई सदुपदेश सुनने से ही उसमें त्रुटि निकालते हैं, जिनकी निगाह उन उपदिष्ट विषयों में दोष देखने के लिए बड़ी पैनी रहती है। ऐसे लोगों से चाहे कितनी ही अच्छी बात क्यों न कहिए, सभी की बात वे तर्क द्वारा काट देते हैं।

एक दूसरे दिन मास्टर महाशय (श्री रामकृष्ण वचनामृत के प्रणेता श्री 'म') के साथ वार्तालाप हो रहा है। मास्टर महाशय कह रहे हैं, "देखो, तुम जो दया, परोपकार और जीव-सेवा आदि की बातें करते हो, वे तो माया के राज्य की बातें हैं। जब वेदान्त-मत में मानव का चरम लक्ष्य मुक्ति-लाभ और माया-बन्धन का विच्छेद है, तो फिर उन सब माया-व्यापारों में लिप्त होकर लोगों को दया, परोपकार आदि विषयों का उपदेश देने में क्या लाभ?"

स्वामी जी ने तत्क्षण उत्तर दिया, "मुक्ति भी क्या माया के अन्तर्गत नहीं है? आत्मा तो नित्य मुक्त है, फिर उसकी मुक्ति के लिए चेष्टा क्यों?"

मास्टर महाशय चुप हो गये।

मैं समझ गया, मास्टर महाशय दया, सेवा, परोपकार आदि सब छोड़कर सभी प्रकार के अधिकारियों के लिए केवल जप-तप, ध्यान-धारणा या भक्ति का ही एकमात्र साधन के रूप में समर्थन कर रहे थे, किन्तु स्वामी जी के मतानुसार एक प्रकार के अधिकारियों के लिए इन सबका अनुष्ठान जिस तरह मुक्ति-लाभ के लिए आवश्यक है, उसी प्रकार ऐसे भी बहुत से अधिकारी हैं जिनके लिए परोपकार, दान, सेवा आदि आवश्यक है। एक को उड़ा देने से दूसरे को भी उड़ा देना होगा, एक को स्वीकार करने पर दूसरे को भी स्वीकार करना पड़ेगा। स्वामी जी के इस प्रत्युत्तर से यह बात अच्छी तरह समझ में आ गयी कि मास्टर महाशय दया, सेवा आदि को 'माया' शब्द से उड़ाकर और जप-ध्यान आदि को ही मुख्य रखकर संकीर्ण भाव का परिपोषण कर रहे थे। परन्तु स्वामी जी का उदार हृदय और छुरे की धार के समान उनकी तीक्ष्ण बुद्धि उसे सहन न कर सकी। अपनी अद्भुत युक्ति से उन्होंने मुक्ति-लाभ की चेष्टा को भी माया के अन्तर्गत ही निर्धारित किया एवं दया, सेवा आदि के साथ उसको एक श्रेणी में लाकर उन्होंने कर्मयोग के पथिक को भी आश्रय दिया।

टॉमस-ए-केम्पिस के 'ईसा-अनुसरण' (Imitation of Christ) का प्रसंग उठा। बहुत से लोग जानते होंगे कि स्वामी जी संसार-त्याग करने से कुछ पहले इस ग्रन्थ की विशेष रूप से चर्चा किया करते थे और वराहनगर मठ में रहते

समय उनके सभी गुरुभाई उन्हीके समान इस ग्रन्थ को साधक-जीवन मे विशेष सहायक समझकर सर्वदा इस पर विचार किया करते थे। स्वामी जी इस ग्रन्थ के इतने अनुरागी थे कि उस समय के 'साहित्य-कल्पद्रुम' नामक मासिक पत्र मे उसकी एक प्रस्तावना लिखकर उन्होने 'ईसा-अनुसरण' नाम से उसका सुन्दर अनुवाद करना भी आरम्भ कर दिया था। प्रस्तावना पढने से ही यह मालूम हो जाता है कि स्वामी जी इस ग्रन्थ तथा ग्रन्थकार को कितनी गम्भीर श्रद्धा से देखते थे। वास्तव मे, उसमे विवेक, वैराग्य, दीनता, दास्य, भक्ति आदि के ऐसे सैकडो ज्वलन्त उपदेश है कि जो उसे पढेगे, उनके हृदय मे वे भाव कुछ न कुछ अवश्य उद्दीपित होगे। उपस्थित व्यक्तियो मे से एक सज्जन यह जानने के लिए कि स्वामी जी का इस समय उस ग्रन्थ के प्रति कैसा भाव है, उस ग्रन्थ मे वर्णित दीनता के उपदेश का प्रसग उठाते हुए बोले, "अपने को इस प्रकार अत्यन्त हीन समझे बिना आध्यात्मिक उन्नति कैसे हो सकती है?" स्वामी जी यह सुनकर कहने लगे, "हम लोग हीन कैसे? हम लोगो के लिए अन्धकार कहाँ? हम लोग तो ज्योति के राज्य मे वास करते हैं, हम लोग तो ज्योति के तनय है।"

उनका इस प्रकार प्रत्युत्तर सुनकर मैं समझ गया कि स्वामी जी उक्त ग्रन्थ-निर्दिष्ट इन प्राथमिक साधन-सोपानो को पारकर साधना-राज्य की कितनी उच्च भूमि मे पहुँच गये हैं।

हम लोग यह विशेष रूप से देखते थे कि ससार की अत्यन्त सामान्य घटनाएँ भी उनकी तीक्ष्ण दृष्टि को धोखा नही दे सकती थी। वे उन घटनाओ की सहायता से भी उच्च धर्मभाव का प्रचार करने की चेष्टा करते थे।

श्री रामकृष्ण देव के भतीजे श्रीयुत रामलाल चट्टोपाध्याय (मठ के पुराने साधुगण, जिन्हे रामलाल दादा कहकर पुकारते हैं) दक्षिणेश्वर से एक दिन स्वामी जी से मिलने आये। स्वामी जी ने एक कुर्सी मँगवाकर उनसे बैठने के लिए अनुरोध किया और स्वय टहलने लगे। श्रद्धाविनम्र दादा इससे कुछ सकुचित होकर कहने लगे, "आप बैठें, आप बैठें।" पर स्वामी जी उन्हे किसी तरह छोडनेवाले नही थे। बहुत कह-सुनकर दादा को कुर्सी पर बिठाया और स्वय टहलते टहलते कहने लगे, "गुरुवत् गुरुपुत्रेषु।" (गुरु के पुत्र एव सम्बन्धियो के साथ गुरु जैसा ही व्यवहार करना चाहिए।) मैंने देखा, इतना ऐश्वर्य, इतना मान पाकर भी हमारे स्वामी जी को थोडा सा भी अभिमान नही हुआ है। यह भी समझा, गुरुभक्ति इसी तरह की जाती है।

बहुत से छात्र आये हुए हैं। स्वामी जी एक कुर्सी पर बैठे हुए हैं। सभी उनके पास बैठकर उनकी दो-चार बातें सुनने के लिए उत्सुक हैं। वहाँ पर और

स्वामी जी के कथन का सम्पूर्ण मर्म न समझ सकने के कारण वे जब विश्राम-घर में प्रवेश कर रहे थे तब आगे बढ़कर उनके पास जाकर यही बात बोले "सुन्दर लड़कों की आप क्या बात कर रहे थे ?"

स्वामी जी ने कहा "जिनकी मुखाकृति सुन्दर हो ऐसे लड़के मैं नहीं चाहता—मैं तो चाहता हूँ खूब स्वस्थ शरीर, कर्मठ एवं सत्प्रकृतियुक्त कुछ लड़के। उन्हें train करना (शिक्षा देना) चाहता हूँ जिससे वे अपनी मुक्ति के लिए और जगत् के कल्याण के लिए प्रस्तुत हो सकें।

और एक दिन जाकर देखा स्वामी जी टहल रहे हैं श्रीयुत शरच्चन्द्र चक्रवर्ती ('स्वामी-शिष्य-संवाद' नामक पुस्तक के रचयिता) स्वामी जी के साथ खूब घनिष्ठ भाव से बातें कर रहे हैं। स्वामी जी से एक प्रश्न पूछने की हमें अत्यधिक उत्कण्ठा हुई। प्रश्न यह था—अवतार और मुक्त या सिद्ध पुरुष में क्या अन्तर है ? हमने शरत् बाबू से स्वामी जी के सम्मुख इस प्रश्न को उठाने के लिए विशेष अनुरोध किया। अतः उन्होंने स्वामी जी से यह प्रश्न पूछा। हम लोग शरत् बाबू के पीछे पीछे यह सुनने के लिए गये कि देखें स्वामी जी इस प्रश्न का क्या उत्तर देते हैं। स्वामी जी उस प्रश्न के सम्बन्ध में बिना कोई प्रकट उत्तर दिये कहने लगे 'विदेह-मुक्त ही सर्वोच्च अवस्था है—यही मेरा सिद्धान्त है। जब मैं साधनावस्था में भारत के अनेक स्थानों में भ्रमण कर रहा था उस समय कितनी निर्जन गुफाओं मे अकेले बैठकर कितना समय बिताया है मुक्ति प्राप्त नहीं हुई, यह सोचकर कितनी बार प्रायोपवेशन द्वारा देह त्याग देने का भी संकल्प किया है कितना ध्यान कितना साधन-भजन किया है! किन्तु अब मुक्ति-लाभ के लिए वह 'विजातीय' आग्रह नहीं रहा। इस समय तो मन में केवल यही होता है कि जब तक पृथ्वी पर एक भी मनुष्य अमुक्त है तब तक मुझे अपनी मुक्ति की कोई आवश्यकता नहीं।

मैं तो स्वामी जी की उक्त वाणी सुनकर उनके हृदय की अपार करुणा की बात सोचकर विस्मित हो गया और सोचने लगा इन्होंने क्या अपना दृष्टान्त देकर अवतार पुरुषों का लक्षण समझाया है ? क्या ये भी एक अवतार हैं ? सोचा स्वामी जी अब मुक्त हो गये हैं इसीलिए मालूम होता है, उन्हें अपनी मुक्ति के लिए अब आग्रह नहीं है।

और एक दिन सन्ध्या के बाद मैं और खगेन (स्वामी विमलानन्द) स्वामी जी के पास गये। हरमोहन बाबू (श्री रामकृष्ण देव के भक्त) हम लोगों को स्वामी जी के साथ विशेष रूप से परिचित कराने के लिए बोले "स्वामी जी ये दोनों आपके खूब admirers (प्रशंसक) हैं और वेदान्त का अध्ययन भी

धर्म-साधन के लिए अत्यन्त प्रयोजनीय है, तथापि वे पूर्ण रूप से उसका अनुष्ठान नही कर पाते थे। वे सर्वदा लडको को लेकर अध्यापन-कार्य मे ही लगे रहते थे, इसलिए धर्म-साधन और सत्-शिक्षा के अभाव एव कुसगति के कारण अत्यन्त अल्प अवस्था मे ही उन लोगो का ब्रह्मचर्य किस तरह नष्ट हो जाता है, इसे वे अच्छी तरह जानते थे, और किस उपाय से उसे रोका जाय, इसकी शिक्षा उन बच्चो को देने के लिए वे सर्वदा प्रयत्नशील रहते थे। किन्तु **स्वयमसिद्ध. कथ परान् साधयेत्**—अर्थात् 'स्वय असिद्ध होकर दूसरो को कैसे सिद्ध किया जा सकता है।' अतएव किसी भी तरह अपने या दूसरे के भीतर ब्रह्मचर्य-भाव को प्रविष्ट करने मे असमर्थ हो समय समय पर वे अत्यन्त दु खित हो जाते थे। इस समय परम ब्रह्मचारी स्वामी जी की ज्वलन्त उपदेशावली और ओजस्विनी वाणी सुनकर अकस्मात् उनके हृदय मे यह भाव उदित हुआ कि ये महापुरुष एक बार इच्छा करने पर मेरे तथा बालकों के भीतर उस प्राचीन ब्रह्मचर्य भाव को निश्चित ही उद्दीप्त कर सकते हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि ये एक भावुक व्यक्ति थे। वे एकाएक पूर्वोक्त रूप से उत्तेजित हो अग्रेजी मे चिल्लाकर बोल उठे, "Oh Great Teacher ! tear up the veil of hypocrisy and teach the world the one thing needful—how to conquer lust" अर्थात् "हे आचार्यवर, जिस कपटता के आवरण से अपने यथार्थ स्वभाव को छिपाकर हम लोग दूसरो के निकट अपने को शिष्ट, शान्त या सभ्य वतलाने की चेष्टा करते हैं, उसे आप अपनी दिव्य शक्ति के बल से छिन्न करके दूर कर दें एव लोगो के भीतर जो घोर काम-प्रवृत्ति विद्यमान है, उसका जिससे समूल विनाश हो, वैसी शिक्षा दें।"

स्वामी जी ने चडी वावू को शान्त और आश्वस्त किया।

वाद मे एडवर्ड कारपेन्टर का प्रसग उपस्थित हुआ। स्वामी जी ने कहा, "लन्दन मे ये वहुधा मेरे पास आते रहते थे। और भी वहुत से समाजवादी, प्रजातन्त्रवादी आदि आया करते थे। वे सव वेदान्तोक्त धर्म मे अपने अपने मत की पोपकता पाकर उसके प्रति विशेष आकृष्ट होते थे।"

स्वामी जी उक्त कारपेन्टर साहव की 'एडम्स पीक टु एलिफेन्टा' नामक पुस्तक पढ चुके थे। इसी समय उक्त पुस्तक मे दी हुई चडी वावू की तस्वीर उन्हे याद आयी, वे वोले, "आपका चेहरा तो पुस्तक मे पहले ही देख चुका हूँ।" और भी कुछ देर वातचीत करने के वाद सन्ध्या हो जाने के कारण स्वामी जी विश्राम के लिए उठे। उठने के समय चडी वावू को सम्बोधित करके वोले, "चडी वावू, आप तो वहुत से लडको के ससर्ग मे आते हैं। क्या आप मुझे कुछ सुन्दर सुन्दर लडके दे सकते हैं?" शायद चडी वावू कुछ अन्यमनस्क थे।

कोई आसन नहीं है, जिस पर स्वामी जी लड़कों से बैठने को कह सकें, इसलिए उन लोगों को भूमि पर बैठना पड़ा। ऐसा ज्ञात हुआ कि स्वामी जी मन में सोच रहे हैं, यदि इनके बैठने के लिए कोई आसन होता तो अच्छा है। किन्तु ऐसा लगा कि दूसरे ही क्षण उनके हृदय में दूसरा भाव उत्पन्न हो गया। वे बोल उठे, "सो ठीक है, तुम लोग ठीक बैठे हो, थोड़ी थोड़ी तपस्या करना भी ठीक है।

एक दिन अपने मुहल्ले के चंडीचरण वर्धन को साथ लेकर मैं स्वामी जी के पास गया। चंडी बाबू 'हिन्दू ब्वायेज स्कूल' नामक एक संस्था के मालिक थे। वहाँ अंग्रेजी स्कूल की तृतीय श्रेणी तक पढ़ाया जाता था। वे पहले से ही खूब ईश्वरानुरागी थे, बाद में स्वामी जी की वक्तृता आदि पढ़कर उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धालु हो गये। पहले कभी कभी धर्म-साधना के लिए व्याकुल हो संसार परित्याग करने की भी उन्होंने चेष्टा की थी, किन्तु उसमें सफल नहीं हो सके। कुछ दिन शौक के लिए थियेटर में अभिनय आदि एवं एकाध नाटक की रचना भी की थी। वे भावुक व्यक्ति थे। विख्यात प्रजातन्त्रवादी एडवर्ड कारपेन्टर जब भारत भ्रमण कर रहे थे, उस समय उनके साथ चंडी बाबू का परिचय और बातचीत हुई थी। उन्होंने 'एडम्स पीक टु एलिफैन्टा' नामक अपने ग्रन्थ में चंडी बाबू के साथ हुए वार्तालाप का संक्षिप्त विवरण और उनका एक चित्र भी दिया था।

चंडी बाबू आकर भक्ति-भाव से स्वामी जी को प्रणाम कर पूछने लगे, "स्वामी जी, किस प्रकार के व्यक्ति को गुरु बनाना चाहिए ?

स्वामी जी—"जो तुम्हें तुम्हारा भूत-भविष्य बतला सकें, वही तुम्हारा गुरु है। देखो न, मेरे गुरु ने मेरा भूत-भविष्य सब बतला दिया था।

चंडी बाबू ने पूछा, "अच्छा स्वामी जी, कौपीन पहनने से क्या काम-दमन में कुछ विशेष सहायता मिलती है।

स्वामी जी—"थोड़ी-बहुत सहायता मिल सकती है। किन्तु इस वृत्ति के प्रबल हो उठने पर कौपीन भी भला क्या करेगा ? जब तक मन भगवान् में तन्मय नहीं हो जाता, तब तक किसी भी बाह्य उपाय से काम पूर्णतया रोका नहीं जा सकता। फिर भी बात क्या है जानते हो ? जब तक मनुष्य उस अवस्था को पूर्णतया लाभ नहीं कर लेता, तब तक अनेक प्रकार के बाह्य उपायों के अवलम्बन की चेष्टा स्वभावतः ही किया करता है।

ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में चंडी बाबू स्वामी जी से बहुत से प्रश्न पूछने लगे। स्वामी जी भी बड़े सरल ढंग से सभी प्रश्नों का उत्तर देने लगे। चंडी बाबू धर्म साधना के लिए आन्तरिक भाव से प्रयत्न करते थे, किन्तु गृहस्थ होने के कारण इच्छानुसार नहीं कर पाते थे। यद्यपि उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि ब्रह्मचर्य

खूब करते हैं।" हरमोहन बाबू के वाक्य का प्रथम अश सम्पूर्ण सत्य होने पर भी, द्वितीयाश कुछ अतिरंजित था, क्योकि हम लोगो ने उस समय केवल गीता का ही अध्ययन किया था। हम लोगों ने वेदान्त के छोटे छोटे कुछ ग्रन्थ और दो-एक उपनिषदो का अनुवाद एकाध बार देखा था, परन्तु इन सब शास्त्रो की हम लोगो ने विद्यार्थी के समान उत्तम रूप से आलोचना नही की थी और न मूल सस्कृत ग्रन्थो को भाष्य आदि की सहायता से पढा था। जो हो, स्वामी जी वेदान्त की बात सुनकर बोल उठे, "उपनिषद् कुछ पढा है?"

मैंने कहा, "जी हाँ, थोडा-बहुत देखा है।"

स्वामी जी ने पूछा, "कौन सा उपनिषद् पढा है?"

मैंने मन के भीतर टटोलकर और कुछ न पाकर कह डाला, "कठोपनिषद् पढा है।"

स्वामी जी ने कहा, "अच्छा, कठ ही सुनाओ, कठोपनिषद् खूब grand (सुन्दर) है—कवित्व से भरा है।"

क्या मुसीबत! स्वामी जी ने शायद समझा कि मुझे कठोपनिषद् कण्ठस्थ है, इसीलिए मुझसे सुनाने के लिए कहा। मैंने उसके सस्कृत मत्रो को यद्यपि एकाध बार देखा था, किन्तु कभी भी अर्थानुसन्धानपूर्वक पढने और मुखाग्र करने की चेष्टा नही की थी। सो बडी मुश्किल मे पड गया। क्या करूँ? इसी समय एक बात स्मरण आयी। इसके कुछ वर्ष पहले से ही प्रत्यह नियमपूर्वक थोडा थोडा गीता का पाठ किया करता था। इस कारण गीता के अधिकाश श्लोक मुझे कण्ठस्थ थे। सोचा, जैसे भी हो, कुछ शास्त्रीय श्लोको की आवृत्ति यदि न करूँ, तो फिर स्वामी जी को मुँह दिखाते न बनेगा। अतएव बोल उठा, "कठ तो कण्ठस्थ नही है—गीता से कुछ सुनाता हूँ।"

स्वामी जी बोले, "अच्छा, वही सही।"

तब गीता के ग्यारहवें अध्याय के अन्तिम भाग से **स्थाने हृषीकेश! तव प्रकीर्त्या** से आरम्भ करके अर्जुनकृत सपूर्ण स्तव स्वामी जी को सुना दिया। स्वामी जी उत्साह देते हुए "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा" कहने लगे।

इसके दूसरे दिन मैं अपने मित्र राजेन्द्र घोष के पास गया। उससे मैंने कहा, "भाई, कल उपनिषद् के कारण स्वामी जी के सम्मुख बडा लज्जित हुआ। तुम्हारे पास यदि कोई उपनिषद् हो, तो जेब मे लेते चलो। यदि कल की तरह उपनिषद् की बात निकालेंगे, तो पढने से ही हो जायगा।" राजेन्द्र के पास प्रसन्नकुमार शास्त्रीकृत ईश-केन-कठ आदि उपनिषद् और उनके बगानुवाद का एक गुटका सस्करण था। उसे जेब मे रखकर हम लोग स्वामी जी के दर्शनार्थ चले। आज

स्वामी जी के कथन का सम्पूर्ण मर्म न समझ सकने के कारण वे जब विश्राम घर में प्रवेश कर रहे थे तब आगे बढ़कर उनके पास आकर यही बात बोले "सुन्दर लड़कों की आप क्या बात कर रहे थे ?"

स्वामी जी ने कहा, "जिनकी मुखाकृति सुन्दर हो ऐसे लड़के मैं नहीं चाहता—मैं तो चाहता हूँ खूब स्वस्थ शरीर, कर्मठ एवं सत्प्रकृतियुक्त कुछ लड़के। उन्हें train करना (शिक्षा देना) चाहता हूँ जिससे वे अपनी मुक्ति के लिए और जगत् के कल्याण के लिए प्रस्तुत हो सकें।"

और एक दिन जाकर देखा स्वामी जी टहल रहे हैं, श्रीयुत शरच्चन्द्र चक्रवर्ती ('स्वामी-शिष्य-संवाद' नामक पुस्तक के रचयिता) स्वामी जी के साथ खूब घनिष्ठ भाव से बातें कर रहे हैं। स्वामी जी से एक प्रश्न पूछने की हमें अत्यधिक उत्कण्ठा हुई। प्रश्न यह था—अवतार और मुक्त या सिद्ध पुरुष में क्या अन्तर है ? हमने शरत् बाबू से स्वामी जी के सम्मुख इस प्रश्न को उठाने के लिए विशेष अनुरोध किया। अतः उन्होंने स्वामी जी से यह प्रश्न पूछा। हम लोग शरत् बाबू के पीछे पीछे यह सुनने के लिए गये कि देखें स्वामी जी इस प्रश्न का क्या उत्तर देते हैं। स्वामी जी उस प्रश्न के सम्बन्ध में बिना कोई प्रकट उत्तर दिये कहने लगे, "विदेह-मुक्ति ही सर्वोच्च अवस्था है—यही मेरा सिद्धान्त है। जब मैं साधनावस्था में भारत के अनेक स्थानों में भ्रमण कर रहा था, उस समय कितनी निर्जन गुफाओं में अकेले बैठकर कितना समय बिताया है, मुक्ति प्राप्त नहीं हुई, यह सोचकर कितनी बार प्रायोपवेशन द्वारा देह त्याग देने का भी संकल्प किया है, कितना ध्यान, कितना साधन-भजन किया है ! किन्तु अब मुक्ति लाभ के लिए वह 'विजातीय' आग्रह नहीं रहा। इस समय तो मन में केवल यही होता है कि जब तक पृथ्वी पर एक भी मनुष्य अमुक्त है, तब तक मुझे अपनी मुक्ति की कोई आवश्यकता नहीं।"

मैं तो स्वामी जी की उक्त वाणी सुनकर उनके हृदय की अपार करुणा की बात सोचकर विस्मित हो गया और सोचने लगा, इन्होंने क्या अपना दृष्टान्त देकर अवतार पुरुषों का लक्षण समझाया है ? क्या ये भी एक अवतार हैं ? सोचा स्वामी जी अब मुक्त हो गये हैं, इसीलिए मालूम होता है, उन्हें अपनी मुक्ति के लिए अब आग्रह नहीं है।

और एक दिन सन्ध्या के बाद मैं और खगेन (स्वामी विमलानन्द) स्वामी जी के पास गये। हरमोहन बाबू (श्री रामकृष्ण देव के भक्त) हम लोगों को स्वामी जी के साथ विशेष रूप से परिचित कराने के लिए बोले, 'स्वामी जी, ये दोनों आपके खूब admirers (प्रशंसक) हैं और वेदान्त का अध्ययन भी

खूब करते है।" हरमोहन बाबू के वाक्य का प्रथम अंश सम्पूर्ण सत्य होने पर भी, द्वितीयांश कुछ अतिरंजित था, क्योंकि हम लोगों ने उस समय केवल गीता का ही अध्ययन किया था। हम लोगों ने वेदान्त के छोटे छोटे कुछ ग्रन्थ और दो-एक उपनिषदों का अनुवाद एकाध बार देखा था, परन्तु इन सब शास्त्रों की हम लोगों ने विद्यार्थी के समान उत्तम रूप से आलोचना नही की थी और न मूल संस्कृत ग्रन्थों को भाष्य आदि की सहायता से पढ़ा था। जो हो, स्वामी जी वेदान्त की बात सुनकर बोल उठे, "उपनिषद् कुछ पढ़ा है?"

मैंने कहा, "जी हाँ, थोड़ा-बहुत देखा है।"

स्वामी जी ने पूछा, "कौन सा उपनिषद् पढ़ा है?"

मैंने मन के भीतर टटोलकर और कुछ न पाकर कह डाला, "कठोपनिषद् पढ़ा है।"

स्वामी जी ने कहा, "अच्छा, कठ ही सुनाओ, कठोपनिषद् खूब grand (सुन्दर) है—कवित्व से भरा है।"

क्या मुसीबत! स्वामी जी ने शायद समझा कि मुझे कठोपनिषद् कण्ठस्थ है, इसीलिए मुझसे सुनाने के लिए कहा। मैंने उसके संस्कृत मन्त्रों को यद्यपि एकाध बार देखा था, किन्तु कभी भी अर्थानुसन्धानपूर्वक पढ़ने और मुखाग्र करने की चेष्टा नही की थी। सो बड़ी मुश्किल मे पड़ गया। क्या करूँ? इसी समय एक बात स्मरण आयी। इसके कुछ वर्ष पहले से ही प्रत्यह नियमपूर्वक थोड़ा थोड़ा गीता का पाठ किया करता था। इस कारण गीता के अधिकांश श्लोक मुझे कण्ठस्थ थे। सोचा, जैसे भी हो, कुछ शास्त्रीय श्लोकों की आवृत्ति यदि न करूँ, तो फिर स्वामी जी को मुँह दिखाते न बनेगा। अतएव बोल उठा, "कठ तो कण्ठस्थ नही है—गीता से कुछ सुनाता हूँ।"

स्वामी जी बोले, "अच्छा, वही सही।"

तब गीता के ग्यारहवें अध्याय के अन्तिम भाग से **स्थाने हृषीकेश! तव प्रकीर्त्या** से आरम्भ करके अर्जुनकृत सपूर्ण स्तव स्वामी जी को सुना दिया। स्वामी जी उत्साह देते हुए "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा" कहने लगे।

इसके दूसरे दिन मैं अपने मित्र राजेन्द्र घोष के पास गया। उससे मैंने कहा, "भाई, कल उपनिषद् के कारण स्वामी जी के सम्मुख बड़ा लज्जित हुआ। तुम्हारे पास यदि कोई उपनिषद् हो, तो जेब मे लेते चलो। यदि कल की तरह उपनिषद् की बात निकालेंगे, तो पढ़ने से ही हो जायगा।" राजेन्द्र के पास प्रसन्नकुमार शास्त्रीकृत ईश-केन-कठ आदि उपनिषद् और उनके बंगानुवाद का एक गुटका संस्करण था। उसे जेब मे रखकर हम लोग स्वामी जी के दर्शनार्थ चले। आज

अपराह्न में स्वामी जी का कमरा लोगों से भरा हुआ था। जो सोचा था वही हुआ। आज भी यह तो ठीक स्मरण नहीं कि कैसे पर कठोपनिषद् का ही प्रसंग उठा। मैंने झट जेब से उपनिषद् निकाला और उसे शुरू से पढ़ना आरम्भ किया। पाठ के बीच में स्वामी जी नचिकेता की श्रद्धा की कथा—जिस श्रद्धा के बल से वे निर्भीक चित्त से यम-सदन जाने के लिए भी साहसी हुए थे—कहने लगे। जब नचिकेता के द्वितीय वर स्वर्ग प्राप्ति की कथा का पाठ आरम्भ हुआ तब स्वामी जी ने उस स्थल को अधिक न पढ़कर कुछ कुछ छोड़कर तृतीय वर का प्रसंग पढ़ने के लिए कहा।

नचिकेता के प्रश्न—मृत्यु के बाद लोगों का सन्देह—शरीर छूट जाने पर कुछ रहता है या नहीं—उसके बाद यम का नचिकेता को प्रलोभन दिखाना और नचिकेता का दृढ़ भाव से उन सभी का प्रत्याख्यान—इन सब स्थलों का पाठ हो जाने के बाद स्वामी जी ने अपनी स्वभाव-सुलभ ओजस्विनी भाषा में क्या क्या कहा—क्षीण स्मृति सोलह वर्षों में उसका कुछ भी चिह्न न रख सकी।

किन्तु इन दो दिनों के उपनिषद्-प्रसंग में स्वामी जी की उपनिषद् के प्रति श्रद्धा और अनुराग का कुछ अंश मेरे अन्तःकरण में भी संचरित हो गया क्योंकि उसके दूसरे ही दिन से जब कभी सुयोग पाता परम श्रद्धा के साथ उपनिषद् पढ़ने की चेष्टा करता था। और यह कार्य आज भी कर रहा हूँ। विभिन्न समय में उनके श्रीमुख से उच्चरित अपूर्व स्वर, लय और तेजस्विता के साथ पठित उपनिषद् के एक एक मन्त्र मानो आज भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं। जब परचर्चा में मग्न हो आत्म-चर्चा भूल जाता हूँ तो सुन पाता हूँ—उनके उस सुपरिचित किन्नरकण्ठ से उच्चरित उपनिषद्-वाणी की दिव्य गंभीर घोषणा—

*तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः*[1]—'एकमात्र उस आत्मा को ही पहचानो अन्य सब बातें छोड़ दो—वही अमृत का सेतु है।'

जब आकाश में घोर घटाएँ छा जाती हैं और दामिनी दमकने लगती है उस समय मानो सुन पाता हूँ—स्वामी जी उस आकाशस्थ सौदामिनी की ओर इंगित करते हुए कह रहे हैं—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्।
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं।
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥[2]

---

१ मुण्डकोपनिषद् ॥२।२।५॥ २ कठोपनिषद् ॥२।२।१५॥

—'वहाँ सूर्य भी प्रकाशित नहीं होता—चन्द्रमा और तारे भी नहीं, ये सब विद्युत् भी वहाँ प्रकाशित नहीं होती—फिर इस सामान्य अग्नि की भला बात ही क्या ? उनके प्रकाशित होने से फिर सभी प्रकाशित होते है, उनका प्रकाश इन सबको प्रकाशित करता है।'

पुन , जब तत्त्वज्ञान को असाध्य जान हृदय हताश हो जाता है, तब जैसे सुन पाता हूँ—स्वामी जी आनन्दोत्फुल्ल हो उपनिषद् की आश्वासन देनेवाली इस वाणी की आवृत्ति कर रहे है—

श्रृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थु ॥
वेदाहमेत पुरुष महान्तम्
आदित्यवर्ण तमस परस्तात् ॥
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति
नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय ॥[1]

—'हे अमृत के पुत्रो, हे दिव्यधामनिवासियो, तुम लोग सुनो। मैंने उस महान् पुरुष को जान लिया है, जो आदित्य के समान ज्योतिर्मय और अज्ञानान्धकार से अतीत है। उसको जानने से ही लोग मृत्यु का अतिक्रमण करते हैं—मुक्ति का और दूसरा कोई मार्ग नही।'

अस्तु, और एक दिन की घटना का विषय यहाँ पर सक्षेप मे कहूँगा। इस दिन की घटना का शरत् बाबू ने 'विवेकानन्द जी के सग मे' नामक अपने ग्रन्थ मे विस्तृत रूप से वर्णन किया है।

मैं उस दिन दोपहर मे ही जा उपस्थित हुआ था। देखा, कमरे मे बहुत से गुजराती पण्डित बैठे हैं, स्वामी जी उनके पास बैठकर धाराप्रवाह रूप से सस्कृत भाषा मे धर्मविषयक विचार कर रहे हैं। भक्ति-ज्ञान आदि अनेक विषयो की चर्चा हो रही थी। इसी बीच हल्ला हो उठा। ध्यान देने पर समझा कि स्वामी जी सस्कृत भाषा मे बोलते बोलते कोई एक व्याकरण की भूल कर गये। इस पर पण्डित-गण ज्ञान-भक्ति-विवेक-वैराग्य आदि विषय की चर्चा छोडकर इस व्याकरण की त्रुटि को लेकर, 'हमने स्वामी जी को हरा दिया' यह कहते हुए खूब शोर-गुल मचा रहे हैं और प्रसन्न हो रहे हैं। उस समय श्री रामकृष्ण देव की वह बात याद आ गयी—'गिद्ध उडता तो खूब ऊपर है, किन्तु उसकी दृष्टि रहती है मरे पशुओ पर।'

---

१ श्वेताश्वतरोपनिषद् ॥२।५, ३।८॥

थो हैं। स्वामी जी किंचित् भी विचलित नहीं हुए और कहा, पण्डितानां शतोऽस्मि सत्यमेतत्सकलम्। थोड़ी देर के बाद स्वामी जी उठ गये और पण्डितगण गंगा जी में हाथ-मुँह धोने के लिए गये। मैं भी बगीचे में घूमते घूमते गंगा जी के तट पर गया। वहाँ पण्डितगण स्वामी जी के सम्बन्ध में आलोचना कर रहे थे। सुना वे कह रहे थे—"स्वामी जी उस प्रकार के पण्डित नहीं हैं, परन्तु उनकी आँखों में एक मोहिनी शक्ति है। उसी शक्ति के बल से उन्होंने अनेक स्थानों में दिग्विजय की है।

सोचा पण्डितों ने तो ठीक ही समझा है। आँखों में यदि मोहिनी शक्ति न होती तो क्या यों ही इतने विद्वान्, धनी, मानी प्राच्य-पाश्चात्य देश के विभिन्न प्रकृति के स्त्री-पुरुष इनके पीछे पीछे दास के समान दौड़ते! यह तो विद्या के कारण नहीं, रूप के कारण नहीं, ऐश्वर्य के भी कारण नहीं—यह सब उनकी आँखों की उस मोहिनी शक्ति के ही कारण है।

*पाठकगण! आँखों में यह मोहिनी शक्ति स्वामी जी को कहाँ से मिली यह जानने का यदि कौतूहल हो तो अपने श्री गुरु के साथ उनके दिव्य सम्बन्ध एवं उनके अपूर्व साधन-वृत्तान्त पर श्रद्धा के साथ एक बार मनन करो—इसका रहस्य ज्ञात हो जायगा।*

सन् १८९७ अप्रैल मास का अन्तिम भाग। आलमबाजार मठ। अभी चार पाँच दिन ही हुए हैं, घर छोड़कर मठ में रह रहा हूँ। पुराने संन्यासियों में केवल स्वामी प्रेमानन्द, स्वामी निर्मलानन्द और स्वामी सुबोधानन्द हैं। स्वामी जी दार्जिलिंग से आये—साथ में स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी योगानन्द, स्वामी जी के मद्रासी शिष्य आलासिंगा पेरुमल, गिरी और जी. जी. आदि हैं।

स्वामी नित्यानन्द कुछ दिन हुए, स्वामी जी द्वारा संन्यासाश्रम में दीक्षित हुए हैं। इन्होंने स्वामी जी से कहा, "इस समय बहुत से नये नये लड़के संसार छोड़कर संन्यासी हुए हैं, उनके लिए एक निर्दिष्ट नियम से शिक्षा-दान की व्यवस्था करना अच्छा होगा।

*स्वामी जी उनके अभिप्राय का अनुमोदन करते हुए बोले, "हाँ हाँ, नियम बनाना तो अच्छा ही है। बुलाओ सभी को।" सब आकर बड़े कमरे में एकत्र हुए। तब स्वामी जी ने कहा, "कोई एक व्यक्ति लिखना शुरू करो, मैं बोलता जाता हूँ।" उस समय सब एक दूसरे को ठेलकर आगे करने लगे—कोई अग्रसर नहीं होना चाहता था, अन्त में मुझे ठेलकर आगे कर दिया। उस समय मठ में लिखाई-पढ़ाई के प्रति साधारणतया एक प्रकार की उपेक्षा थी। सभी की धारणा यह थी कि साधन भजन करके भगवान् का साक्षात्कार करना ही एकमात्र सार है, लिखने-पढ़ने से तो मान और यश की इच्छा होती है। जो भगवान् के द्वारा*

आदिष्ट होकर प्रचार-कार्य आदि करेंगे, उनके लिए भले वह आवश्यक हो, पर साधको के लिए तो उसका कोई प्रयोजन नही है, उलटे वह हानिकारक ही है। जो हो, मैं पहले ही कह चुका हूँ कि स्वभाव से मैं जरा forward (अग्रिम) और लापरवाह हूँ—मैं अग्रसर हो गया। स्वामी जी ने एक बार आकाश की ओर देखकर पूछा, "यह क्या रहेगा ?" (अर्थात् क्या मैं ब्रह्मचारी होकर वहाँ रहूँगा, अथवा दो-एक दिन मठ मे घूमने के लिए ही आया हूँ और बाद मे चला जाऊँगा।) सन्यासियो मे से एक ने कहा, "हाँ।" तब मैंने कागज-कलम आदि ठीक से लेकर गणेश का आसन ग्रहण किया। नियम लिखाने से पहले स्वामी जी कहने लगे, "देखो, हम ये सब नियम बना तो रहे हैं, किन्तु पहले हमे समझ लेना होगा कि इन नियमो के पालन का मूल लक्ष्य क्या है। हम लोगो का मूल उद्देश्य है—सभी नियमो से परे होना। तो भी, नियम बनाने का अर्थ यही है कि हममे स्वभावत बहुत से कुनियम हैं—सुनियमो के द्वारा उन कुनियमो को दूर कर देने के बाद हमे सभी नियमो से परे जाने की चेष्टा करनी होगी। जैसे काँटे से काँटा निकालकर अन्त मे दोनो ही काँटो को फेंक दिया जाता है।"

उसके बाद स्वामी जी ने नियम लिखाने प्रारम्भ किये। प्रातकाल और सायकाल जप-ध्यान, मध्याह्न विश्राम के बाद स्वस्थ होकर शास्त्र-ग्रन्थो का अध्ययन और अपराह्न सबको मिलकर एक अध्यापक के निकट किसी निर्दिष्ट शास्त्र-ग्रन्थ का श्रवण करना होगा—यह व्यवस्था हुई। प्रत्येक दिन प्रात और साय थोडा थोडा 'डेल्सर्ट' व्यायाम करना होगा, यह भी निश्चित हुआ। अन्त में लिखाना समाप्त कर स्वामी जी ने कहा, "देख, इन नियमो को जरा देख-भालकर अच्छी तरह प्रतिलिपि करके रख ले—देखना, यदि कोई नियम negative (निषेधवाचक) भाव से लिखा गया हो, तो उसे positive (विधिवाचक) कर देना।"

इस अन्तिम आदेश का पालन करते समय हमे जरा कठिनाई मालूम हुई। स्वामी जी का उपदेश था कि किसीको खराब कहना, उसके विरुद्ध आलोचना करना, उसके दोष दिखाना, उससे 'तुम ऐसा मत करो, वैसा मत करो' कहकर negative (निषेधात्मक) उपदेश देना—इस सबसे उसकी उन्नति मे विशेष सहायता नही होती, किन्तु उसको यदि एक आदर्श दिखा दिया जाय, तो फिर उसकी उन्नति सरलता से हो सकती है, उसके दोष अपने आप चले जाते हैं। यही स्वामी जी का अभिप्राय था।

४

आज अपराह्न मे बडा कमरा लोगो से भरा हुआ है। स्वामी जी उनके बीच

अपूर्व शोभा धारण कर बैठे हुए हैं। अनेक प्रसंग चल रहे हैं। वहाँ हम लोगों के मित्र विजयकृष्ण बसु (आजकल अलीपुर अदालत के विख्यात वकील) महाशय भी उपस्थित हैं। उस समय विजय बाबू समय समय पर अनेक सभाओं में और कभी कभी कांग्रेस में खड़े होकर अंग्रेजी में व्याख्यान दिया करते थे। उनकी इस व्याख्यान-शक्ति का उल्लेख किसीने स्वामी जी के समक्ष किया। इस पर स्वामी जी ने कहा, "सो बहुत अच्छा है। अच्छा, यहाँ पर बहुत से लोग एकत्र हैं—जरा खड़े होकर एक व्याख्यान दो तो। soul (आत्मा) के सम्बन्ध में तुम्हारी जो idea (धारणा) है, उसी पर कुछ कहो।" विजय बाबू अनेक प्रकार के बहाने बनाने लगे। स्वामी जी एवं और भी बहुत से लोग उनसे खूब आग्रह करने लगे। १५ मिनट तक अनुरोध करने पर भी जब कोई उनके संकोच को दूर करने में सफल नहीं हुआ, तब अन्ततोगत्वा हार मानकर उन लोगों की दृष्टि विजय बाबू से हटकर मेरे ऊपर पड़ी। मैं मठ में सहयोग देने से पूर्व कभी कभी धर्म के सम्बन्ध में बंगला भाषा में व्याख्यान देता था, और हम लोगों का एक 'डिबेटिंग क्लब' (वाद-विवाद समिति) भी था—उसमें अंग्रेजी बोलने का अभ्यास करता था। मेरे सम्बन्ध में इन सब बातों का किसीने उल्लेख किया ही था कि बस मेरे ऊपर बाजी पलटी। पहले ही कह चुका हूँ मैं बहुत कुछ लापरवाह सा था। Fools rush in where angels fear to tread. (जहाँ देवता भी जाने में भयभीत होते हैं, वहाँ मूर्ख घुस पड़ते हैं।) मुझसे उन्हें अधिक कहना नहीं पड़ा। मैं एकदम खड़ा हो गया और बृहदारण्यक उपनिषद् के याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद के अन्तर्गत आत्म तत्त्व को लेकर आत्मा के सम्बन्ध में लगभग आध घंटे तक जो मुँह में आया, बोलता गया। भाषा या व्याकरण की भूल हो रही है अथवा भाव का असामंजस्य हो रहा है, इस सबका मैंने विचार ही नहीं किया। दया के सागर स्वामी जी मेरी इस धृष्टता पर थोड़ा भी विरक्त न हो मुझे उत्साहित करने लगे। मेरे बाद स्वामी जी द्वारा अभी अभी संन्यासाश्रम में दीक्षित स्वामी प्रकाशानन्द[1] लगभग दस मिनट तक आत्मतत्त्व के सम्बन्ध में बोले। वे स्वामी जी की व्याख्यान-शैली का अनुकरण कर बड़े गम्भीर स्वर में अपना वक्तव्य देने लगे। उनके व्याख्यान की भी स्वामी जी ने खूब प्रशंसा की।

---

१. ये सैन फ्रांसिस्को (यु. एस. ए.) की वेदान्त-समिति के अध्यक्ष थे। अमेरिका में इनका कार्य-काल १९०६ ई. से १९२७ ई. तक था। ८ जुलाई, सन् १८७४ को कलकत्ते में इनका जन्म हुआ था एवं १३ फ़रवरी, १९२७ ई. को सैन फ्रांसिस्को की वेदान्त-समिति में इनका देहान्त हुआ। स.

अहा! स्वामी जी सचमुच ही किसीका दोष नही देखते थे। वे, जिसमे जो भी कुछ गुण या शक्ति देखते, उसीके अनुसार उसे उत्साह देकर, जिससे उसके भीतर की अव्यक्त शक्तियाँ प्रकाशित हो जायँ, इसीकी चेष्टा करते थे। किन्तु, पाठक, आप लोग इससे ऐसा न समझ बैठे कि वे सबको सभी कार्यों मे प्रश्रय देते थे। क्योकि अनेक बार देख चुका हूँ, लोगो के, विशेषत अपने अनुगामी गुरु-भ्राता और शिष्यो के, दोष दिखलाने मे समय समय पर वे कठोर रूप भी धारण करते थे। किन्तु वह हम लोगो के दोषो को हटाने के लिए—हम लोगो को सावधान करने के लिए ही होता था, हमे निरुत्साह करने या हम लोगो के समान केवल परछिद्रान्वेषण वृत्ति को सार्थक करने के लिए नही। ऐसा उत्साह और भरोसा देनेवाला हम अब और कहाँ पायेंगे? कहाँ पायेंगे ऐसा व्यक्ति, जो शिष्यवर्ग को लिख सके, "I want each one of my children to be a hundred times greater than I could ever be Everyone of you must be a giant—*must*, that is my word"—'मैं चाहता हूँ कि तुम लोगो मे से प्रत्येक, मैं जितना हो सकू, तदपेक्षा सौगुना बडा होवे। तुम लोगो मे से प्रत्येक को आध्यात्मिक दिग्गज होना पडेगा—होना ही होगा, न होने से नही बनेगा।'

५

इसी समय स्वामी जी द्वारा इग्लैण्ड मे दिये गये ज्ञानयोग सम्बन्धी व्याख्यानो को लन्दन से ई० टी० स्टर्डी साहब छोटी छोटी पुस्तिकाओ के आकार मे प्रकाशित करने लगे। मठ मे भी उनकी एक एक दो दो प्रतियाँ आने लगी। स्वामी जी उस समय दार्जिलिंग से नही लौटे थे। हम लोग विशेष आग्रह के साथ अद्वैत तत्त्व के अपूर्व व्याख्यारूप, उद्दीपना से भरे उन व्याख्यानो को पढने लगे। वृद्ध स्वामी अद्वैतानन्द अग्रेजी अच्छी तरह नही जानते थे, किन्तु उनकी यह विशेष इच्छा थी कि नरेन्द्र ने वेदान्त के सम्बन्ध मे विलायत मे क्या कहकर लोगो को मुग्ध किया है, यह सुनें। अत उनके अनुरोध से हम लोग उन्हे उन पुस्तिकाओ को पढकर, उनका अनुवाद करके सुनाने लगे। एक दिन स्वामी प्रेमानन्द नये सन्यासियो और ब्रह्मचारियो से बोले, "तुम लोग स्वामी जी के इन व्याख्यानो का बगला अनुवाद करो न।" तब हममे से कई लोगो ने अपनी अपनी इच्छानुसार उन पुस्तिकाओ मे से एक एक को चुन लिया और उनका अनुवाद करना आरम्भ कर दिया। इसी बीच स्वामी जी लौट आये। एक दिन स्वामी प्रेमानन्द जी स्वामी जी से बोले, "इन लडको ने आपके व्याख्यानो का अनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया है।" बाद मे हम लोगो को लक्ष्य करके कहा, "तुम लोगो मे से कौन क्या अनुवाद कर रहा है, यह स्वामी जी

को सुनाओ।" तब हम लोगों ने अपना अपना अनुवाद लाकर स्वामी जी को थोड़ा थोड़ा सुनाया। स्वामी जी ने भी अनुवाद के बारे में अपने कुछ विचार प्रकट किये और अमुक शब्द का अमुक अनुवाद ठीक रहेगा इस प्रकार दो-एक बातें भी बतायीं। एक दिन स्वामी जी के पास केवल मैं ही बैठा था उन्होंने अचानक मुझसे कहा "राजयोग का अनुवाद कर न।" मेरे समान अनुपयुक्त व्यक्ति को स्वामी जी ने इस प्रकार आदेश कैसे दिया? मैं उसके बहुत दिन पहले से ही राजयोग का अभ्यास करने की चेष्टा किया करता था। इस योग के ऊपर कुछ दिन मेरा इतना अनुराग हुआ था कि भक्ति ज्ञान और कर्मयोग को मानो एक प्रकार से अवज्ञा से ही देखने लगा था। सोचता था मठ के साधु लोग योग-याग कुछ भी नहीं जानते इसीलिए वे योग-साधना में उत्साह नहीं देते। पर जब मैंने स्वामी जी का 'राजयोग' ग्रन्थ पढ़ा तो मालूम हुआ कि स्वामी जी केवल राजयोग में ही पटु नहीं वरन् भक्ति ज्ञान प्रभृति अन्यान्य योगों के साथ उसका सम्बन्ध भी उन्होंने अत्यन्त सुन्दर ढंग से दिखलाया है। राजयोग के सम्बन्ध में मेरी जो धारणा थी उसका उत्तम स्पष्टीकरण भी मुझे उनके उस 'राजयोग' ग्रन्थ में मिला। स्वामी जी के प्रति मेरी विशेष श्रद्धा का यह भी एक कारण हुआ। तो क्या इस उद्देश्य से कि राजयोग का अनुवाद करने से उस ग्रन्थ की चर्चा उत्तम रूप से होगी और उससे मेरी भी आध्यात्मिक उन्नति में सहायता पहुँचेगी उन्होंने मुझे इस कार्य में प्रवृत्त किया? अथवा बंग देश में यथार्थ राजयोग की चर्चा का अभाव देखकर, सर्वसाधारण के भीतर इस योग के यथार्थ मर्म का प्रचार करने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया? उन्होंने स्व. प्रमदादास मित्र को एक पत्र में लिखा था 'बंगाल में राजयोग की चर्चा का बिल्कुल अभाव है। जो कुछ है वह भी नाक दबाना इत्यादि छोड़ और कुछ नहीं।'

जो भी हो स्वामी जी की आज्ञा या अपनी अनुपयुक्तता आदि की बात मन में न सोचकर उसका अनुवाद करने में उसी समय लग गया।

६

एक दिन अपराह्न काल में बहुत से लोग बैठे हुए थे। स्वामी जी के मन में आया कि गीता-पाठ होना चाहिए। गीता लायी गयी। सभी दत्तचित्त होकर सुनने लगे कि देखें स्वामी जी गीता के सम्बन्ध में क्या कहते हैं। गीता के सम्बन्ध में उस दिन उन्होंने जो कुछ भी कहा था वह सब दो-चार दिन के बाद ही स्वामी प्रेमानन्द जी की आज्ञा से मैंने स्मरण करके यथासाध्य लिपिबद्ध कर लिया। वह पहले 'गीता-तत्त्व' के नाम से 'उद्बोधन' के द्वितीय वर्ष में प्रकाशित हुआ और

वाद मे 'भारत मे विवेकानन्द' पुस्तक मे अन्तर्भूत कर दिया गया। अतएव उन बातों की पुनरावृत्ति कर प्रस्तुत लेख का कलेवर बढाने की इच्छा नही है, किन्तु उस दिन गीता की व्याख्या के सिलसिले मे स्वामी जी ने जो एक नयी ही भावधारा बहायी थी, उसीको यहाँ लिपिबद्ध करने की इच्छा है। हम लोग महापुरुषो की वचनावली को अनेक बार यथासम्भव लिपिबद्ध तो करते हैं, किन्तु जिन भावो से अनुप्राणित होकर वे वाक्य उनके श्रीमुख से निकलते हैं, वे प्राय लिपिबद्ध नही रहते। फिर एसे महापुरुषो के साक्षात् सस्पर्श मे आये बिना हजार वर्णन करने पर भी लोग उनकी बातो के भीतर का गूढ मर्म नही समझ सकते। तो भी, जिन्हे उन लोगो के साथ साक्षात् सम्पर्क मे आने का सौभाग्य नही मिला है, उनके लिए उन महापुरुषो के सम्वन्ध मे लिपिबद्ध थोडी सी भी बातें बहुत आदर की वस्तु होती हैं, और उनकी आलोचना एव ध्यान से उनका कल्याण होता है। पाठक-वर्ग! उन महापुरुष की जिस आकृति को मैं मानो आज भी अपनी आँखो के सामने देख रहा हूँ, वह मेरे इस क्षुद्र प्रयास से आपके मनश्चक्षु के सामने भी उद्भासित हो। उनकी कथा का स्मरण कर मेरे मनश्चक्षु के सामने आज उन्ही महापण्डित, महातेजस्वी, महाप्रेमी की तस्वीर आ खडी हुई है। आप लोग भी एक बार देश-काल के व्यवधान का उल्लघन कर मेरे साथ हमारे स्वामी जी के दर्शन करने की चेष्टा करें।

हाँ, तो जब उन्होंने व्याख्या आरम्भ की, उस समय वे एक कठोर समालोचक मालूम पडे। कृष्ण, अर्जुन, व्यास, कुरुक्षेत्र की लडाई आदि की ऐतिहासिकता के बारे मे सन्देह की कारण-परम्परा का विवरण जब वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव से करने लगे, तब बीच बीच मे ऐसा बोध होने लगा कि इस व्यक्ति के सामने तो कठोर समालोचक भी हार मान जाय। यद्यपि स्वामी जी ने ऐतिहासिक तत्त्व का इस प्रकार तीव्र विश्लेषण किया, किन्तु इस विषय मे वे अपना मत विशेष रूप से प्रकाशित किये बिना ही आगे समझाने लगे कि धर्म के साथ इस ऐतिहासिक गवेषणा का कोई सम्पर्क नही है। ऐतिहासिक गवेषणा मे शास्त्रोल्लिखित व्यक्ति यदि काल्पनिक भी ठहरे, तो भी उससे सनातन धर्म को कोई ठेस नही पहुँचती। अच्छा, यदि धर्म-साधना के साथ ऐतिहासिक गवेषणा का कोई सम्पर्क न हो, तो ऐतिहासिक गवेषणा का क्या फिर कोई मूल्य नही है?—इसका उत्तर देते हुए स्वामी जी ने समझाया कि निर्भीक भाव से इन सब ऐतिहासिक सत्यानु-सन्धानो का भी एक विशेष प्रयोजन है। उद्देश्य महान् होने पर भी उसके लिए मिथ्या इतिहास की रचना करने का कोई प्रयोजन नही! प्रत्युत यदि मनुष्य सभी विषयो मे सत्य का सम्पूर्ण रूप से आश्रय लेने के लिए प्राणपण से यत्न करे,

तो वह एक दिन सत्यस्वरूप भगवान् का भी साक्षात्कार कर सकता है। उसके बाद उन्होंने गीता के मूल तत्त्व 'सर्वधर्मसमन्वय और निष्काम कर्म' की संक्षेप में व्याख्या करके श्लोक पढ़ना आरम्भ किया। द्वितीय अध्याय के 'क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ' इत्यादि में युद्ध के लिए अर्जुन के प्रति श्री कृष्ण के जो उत्तेजनात्मक वचन हैं उन्हें पढ़कर वे स्वयं सर्वसाधारण को जिस भाव से उपदेश देते थे वह उन्हें स्मरण हो आया—'नैतत्त्वय्युपपद्यते'—यह तो तुम्हें शोभा नहीं देता'—तुम सर्वशक्तिमान हो, तुम ब्रह्म हो, तुममें जो अनेक प्रकार के विपरीत भाव देख रहा हूँ वह सब तो तुम्हें शोभा नहीं देता। मसीहा के समान ओजस्विनी भाषा में इन सब तत्त्वों को समझाते समझाते उनके भीतर से मानो तेज निकलने लगा। स्वामी जी कहने लगे, 'जब सबको ब्रह्म-दृष्टि से देखना है, तो महापापी को भी घृणा-दृष्टि से देखना उचित न होगा। 'महापापी से घृणा मत करो'" यह कहते कहते स्वामी जी के मुख पर जो भावान्तर हुआ, वह छवि आज भी मेरे मानसपटल पर अंकित है—मानो उनके श्रीमुख से प्रेम शतधारा बन बह निकला। श्रीमुख मानो प्रेम से दीप्त हो उठा—उसमें कठोरता का लेशमात्र भी नहीं।

इस एक श्लोक में ही सम्पूर्ण गीता का सार निहित देखकर स्वामी जी ने अन्त में यह कहते हुए उपसंहार किया, 'इस एक श्लोक को पढ़ने से ही समग्र गीता के पाठ का फल होता है।'

७

एक दिन स्वामी जी ने ब्रह्मसूत्र लाने के लिए कहा। कहने लगे, 'ब्रह्मसूत्र के भाष्य को बिना पढ़े इस समय स्वतन्त्र रूप से तुम सब लोग सूत्रों का अर्थ समझने की चेष्टा करो।' प्रथम अध्याय के प्रथम पाद के सूत्रों का पढ़ना प्रारम्भ हुआ। स्वामी जी शुद्ध रूप से संस्कृत उच्चारण करने की शिक्षा देने लगे, कहने लगे, 'संस्कृत भाषा का उच्चारण हम लोग ठीक ठीक नहीं करते। इसका उच्चारण तो इतना सरल है कि थोड़ी चेष्टा करने से ही सब लोग संस्कृत का शुद्ध उच्चारण कर सकते हैं। हम लोग बचपन से ही दूसरे प्रकार का उच्चारण करने के आदी हो गये हैं, इसीलिए इस प्रकार का उच्चारण अभी हम लोगों को इतना नया और कठिन मालूम होता है। हम लोग 'आत्मा' शब्द का उच्चारण 'आत्‌मा' न करके 'आत्ताँ' क्यों करते हैं? महर्षि पतंजलि अपने महाभाष्य में कहते हैं—'अपशब्द उच्चारण करनेवाला म्लेच्छ है।' अतः उनके मत से हम सब तो म्लेच्छ ही हुए।' तब नवीन ब्रह्मचारी और सन्यासीगण एक एक करके जहाँ तक बन सका ठीक ठीक उच्चारण करके ब्रह्मसूत्र पढ़ने लगे। बाद में स्वामी जी यह उपाय बतलाने

लगे, जिससे सूत्र का प्रत्येक शब्द लेकर उसका अक्षरार्थ किया जा सके। उन्होंने कहा, "कौन कहता है कि ये सूत्र केवल अद्वैत मत के परिपोषक हैं ? शकर अद्वैत-वादी थे, इसलिए उन्होने सभी सूत्रो की केवल अद्वैत मतपरक व्याख्या करने की चेष्टा की है, किन्तु तुम लोग सूत्र का अक्षरार्थ करने की चेष्टा करना—व्यास का यथार्थ अभिप्राय क्या है, यह समझने की चेष्टा करना। उदाहरण के रूप मे देखो—**अस्मिन्नस्य च तद्योग शास्ति**[1]—मेरे मतानुसार इस सूत्र की ठीक ठीक व्याख्या यह है कि यहाँ अद्वैत और विशिष्टाद्वैत, दोनो ही वाद भगवान् वेदव्यास द्वारा इगित हुए हैं।

स्वामी जी एक ओर जैसे गम्भीर प्रकृतिवाले थे, उसी तरह दूसरी ओर रसिक भी थे। पढते पढते **कामाच्च नानुमानापेक्षा**[2] सूत्र आया। स्वामी जी इस सूत्र को लेकर स्वामी प्रेमानन्द के निकट इसका विकृत अर्थ करके हँसने लगे। सूत्र का सच्चा अर्थ यह है—जब उपनिषद् मे, जगत्कारण के प्रसग मे 'सोऽकामयत' (उन्होने अर्थात् उन्ही जगत्कारण ने कामना की) इस तरह का वचन है, तब 'अनुमानगम्य' (अचेतन) प्रधान या प्रकृति को जगत्कारण रूप मे स्वीकार करने की कोई आव-श्यकता नही। जिन्होने शास्त्र-ग्रन्थो का अपनी अपनी अद्भुत रुचि के अनुसार कुत्सित अर्थ करके ऐसे पवित्र सनातन धर्म को घोर विकृत कर डाला है और ग्रन्थकार का जो अर्थ किसी भी काल मे अभिप्रेत नही था, ग्रन्थकार ने जिसे स्वप्न मे भी नही सोचा था, ऐसे सभी विषयो को जिन्होने ग्रन्थ-प्रतिपाद्य बातें सिद्ध करते हुए धर्म को शिष्ट जनो से 'दूरात्परिहर्तव्य' कर डाला है, क्या स्वामी जी उन्ही लोगो का तो उपहास नही कर रहे थे ? अथवा, वे जैसे कभी कभी कहा करते थे, कठिन शुष्क ग्रन्थ की धारणा कराने के लिए वे बीच बीच मे साधारण मन के उपयुक्त रसिकता लाकर दूसरो को अनायास ही उस ग्रन्थ की धारणा करा देते थे, तो सम्भवत कही वही चेष्टा तो नही कर रहे थे ?

जो भी हो, पाठ चलने लगा। बाद मे **शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत्**[3] सूत्र आया। इस सूत्र की व्याख्या करके स्वामी जी स्वामी प्रेमानन्द की ओर देख-कर कहने लगे, "देखो, तुम्हारे ठाकुर[4] जो अपने को भगवान् कहते थे, सो ईसी भाव से कहते थे।" पर यह कहकर ही स्वामी जी दूसरी ओर मुँह फेरकर कहने

---

१ ब्रह्मसूत्र ॥१।१।१९॥
२ वही, १८
३ वही, ३०
४ भगवान् श्री रामकृष्ण देव।

लगे "किन्तु उन्होंने मुझसे अपने अन्तिम समय में कहा था—'जो राम जो कृष्ण वही अब रामकृष्ण तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं।' " यह कहकर दूसरा सूत्र पढ़ने के लिए कहा।

यहाँ पर इस सूत्र के सम्बन्ध में कुछ व्याख्या करनी आवश्यक है। कौषीतकी उपनिषद् में इन्द्र प्रतर्दन संवाद नामक एक आख्यायिका है। उसमें लिखा है, प्रतर्दन नामक एक राजा ने देवराज इन्द्र को सन्तुष्ट किया। इन्द्र ने उसे वर देना चाहा। इस पर प्रतर्दन ने उनसे यह वर माँगा कि आप मानव के लिए जो सबसे अधिक कल्याणकारी समझते हैं वही वर मुझे दें। इस पर इन्द्र ने उसे उपदेश दिया—*मां विजानीहि*—'मुझे जानो'। यहाँ पर सूत्रकार ने यह प्रश्न उठाया है कि 'मुझे' के अर्थ में इन्द्र ने किसको लक्ष्य किया है। सम्पूर्ण आख्यायिका का अध्ययन करने पर पहले अनेक सन्देह होते हैं—'मुझे' कहने से स्थान स्थान पर ऐसा भाव होता है कि उसका आशय 'देवता' से है, कहीं कहीं पर ऐसा मालूम होता है कि उसका आशय 'प्राण' से है कहीं पर 'जीव' से तो कहीं पर 'ब्रह्म' से। यहाँ पर अनेक प्रकार के विचार द्वारा सूत्रकार सिद्धान्त करते हैं कि इस स्थल में 'मुझे' पद का आशय है 'ब्रह्म' से। 'शास्त्रदृष्ट्या' इत्यादि सूत्र के द्वारा सूत्रकार ऐसा एक उदाहरण दिखलाते हैं जिससे इन्द्र का उपदेश इसी अर्थ में संगत होता है। उपनिषद् के एक स्थल में है कि वामदेव ऋषि ब्रह्मज्ञान लाभ कर बोले थे —मैं मनु हुआ हूँ मैं सूर्य हुआ हूँ। इन्द्र ने भी इसी प्रकार शास्त्र प्रतिपाद्य ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त कर कहा था—*मां विजानीहि (मुझे जानो)*। *यहाँ पर 'मैं' और* 'ब्रह्म' एक ही बात है।

स्वामी जी श्री स्वामी प्रेमानन्द से कहने लगे 'श्री रामकृष्ण देव जो कभी कभी अपने को भगवान् कहकर निर्देश करते थे सो वह इस ब्रह्मज्ञान की अवस्था प्राप्त होने के कारण ही करते थे। वास्तव में वे तो सिद्ध पुरुष मात्र थे अवतार नहीं।' पर यह बात कहकर ही उन्होंने धीरे से एक दूसरे व्यक्ति से कहा "श्री रामकृष्ण स्वयं अपने सम्बन्ध में कहते थे मैं केवल महान पुरुष ही नहीं हूँ मैं अवतार हूँ। अतः जैसा कि हमारे एक मित्र कहा करते थे श्री रामकृष्ण को एक साधु या सिद्ध पुरुष मात्र नहीं कहा जा सकता यदि उनकी बातों पर विश्वास करना है तो उन्हें अवतार कहकर मानना होगा नहीं तो ढोंगी कहना होगा।

यों ही स्वामी जी की बात से मेरा एक विशेष उपकार हुआ। सामान्य [illegible] किन्तु सन्देह करना तो अच्छी तरह सीखा था। मेरी यह धारणा थी कि महापुरुषों के शिष्यगण अपने गुरु की बड़ाई कर उन्हें अनेक प्रकार की कल्पना और अतिरंजना का विषय बना

देते हैं। परन्तु स्वामी जी की अद्‌भुत अकपटता और सत्यनिष्ठा को देखकर, वे भी किसी प्रकार की अतिरजना कर सकते हैं, यह धारणा एकदम दूर हो गयी। स्वामी जी के वचन ध्रुव सत्य है, यही धारणा हुई। इसलिए उनके वाक्य मे श्री रामकृष्ण देव के सम्बन्ध मे एक नवीन प्रकाश पाया। जो राम, जो कृष्ण, वही अब रामकृष्ण—यह बात उन्होंने स्वय कही है, अभी यही बात हम समझने की चेष्टा कर रहे हैं। स्वामी जी मे अपार दया थी, वे हम लोगो से सन्देह छोड देने को नही कहते थे, चट से किसीकी बात मे विश्वास कर लेने के लिए उन्होने कभी नही कहा। वे तो कहते थे, "इस अद्‌भुत रामकृष्ण-चरित्र की तुम लोग अपनी विद्या-बुद्धि के द्वारा जहाँ तक हो सके, आलोचना करो, इसका अध्ययन करो—मैं तो इसका एक लक्षाश भी समझ न पाया। उनको समझने की जितनी चेष्टा करोगे, उतना ही सुख पाओगे, उतना ही उनमे डूब जाओगे।"

८

स्वामी जी एक दिन हम सबको पूजा-गृह मे ले जाकर साधन-भजन सिखलाने लगे। उन्होंने कहा, "पहले सब लोग आसन लगाकर बैठो, चिन्तन करो—मेरा आसन दृढ हो, यह आसन अचल-अटल हो, इसीकी सहायता से मैं ससार-समुद्र के पार होऊँगा।" सभी ने बैठकर कई मिनट तक इस प्रकार चिन्तन किया। उसके बाद स्वामी जी फिर कहने लगे, "चिन्तन करो—मेरा शरीर नीरोग और स्वस्थ है, वज्र के समान दृढ है, इसी देह की सहायता से मैं ससार को पार करूँगा।" इस प्रकार कुछ देर तक चिन्तन करने के बाद स्वामी जी फिर कहने लगे, "अब इस प्रकार चिन्तन करो कि मेरे निकट से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारो दिशाओ मे प्रेम का प्रवाह बह रहा है—हृदय के भीतर से सम्पूर्ण जगत् के लिए शुभकामना हो रही है—सभी का कल्याण हो, सभी स्वस्थ और नीरोग हो। इस प्रकार चिन्तन करने के बाद कुछ देर प्राणायाम करना, अधिक नही, तीन प्राणायाम करने से ही काफी है। इसके बाद हृदय मे अपने अपने इष्टदेव की मूर्ति का चिन्तन और मन्त्र-जप लगभग आध घटे तक करना।" सब लोग स्वामी जी के उपदेशानुसार चिन्तन आदि की चेष्टा करने लगे।

इस प्रकार सामूहिक साधनानुष्ठान मठ मे दीर्घ काल तक होता रहा है, एव स्वामी जी की आज्ञा से स्वामी तुरीयानन्द नवीन सन्यासियो और ब्रह्मचारियो को लेकर बहुत समय तक, 'इस बार इस प्रकार चिन्तन करो, उसके बाद ऐसा करो,' इस तरह बतला बतलाकर और स्वय अनुष्ठान कर स्वामी जी द्वारा बतलायी गयी साधना-प्रणाली का अभ्यास कराते थे।

९

एक दिन सवेरे ९ बजे मैं एक कमरे में बैठकर कुछ कर रहा था उसी समय सहसा तुलसी महाराज (स्वामी निर्मलानन्द) आकर बोले, 'स्वामी जी से दीक्षा लोगे?" मैंने कहा, 'जी हाँ।' इसके पहले मैंने कुलगुरु या और किसीके पास किसी प्रकार मन्त्र-दीक्षा नहीं ली थी। एक योगी के पास प्राणायाम आदि कुछ योग-क्रियाओं का मैंने तीन वर्ष तक साधन किया था और उससे बहुत कुछ शारीरिक उन्नति और मन की स्थिरता भी मुझे प्राप्त हुई थी, किन्तु वे गृहस्थाश्रम का अवलम्बन करना अत्यावश्यक बतलाते थे और प्राणायाम आदि योग-क्रिया को छोड़कर ज्ञान, भक्ति आदि अन्यान्य मार्गों को बिल्कुल व्यर्थ कहते थे। इस प्रकार की कट्टरता मुझे बिल्कुल अच्छी नहीं लगती थी। दूसरी ओर, मठ के कोई कोई संन्यासी और उनके भक्तगण योग का नाम सुनते ही बात को हँसी में उड़ा देते थे। 'उससे विशेष कुछ नहीं होता, श्री रामकृष्ण देव उसके उतने पक्षपाती नहीं थे' इत्यादि बातें मैं उन लोगों से सुना करता था। पर जब मैंने स्वामी जी का राजयोग पढ़ा तो समझा कि इस ग्रन्थ के प्रणेता जैसे योगमार्ग के समर्थक हैं वैसे ही अन्यान्य मार्गों के प्रति भी श्रद्धालु हैं, अतएव कट्टर तो हैं ही नहीं, अपितु इस प्रकार के उदार भावसम्पन्न आचार्य मुझे कभी दृष्टिगोचर नहीं हुए, तिस पर वे संन्यासी भी हैं—अतएव उनके प्रति यदि मेरे हृदय में विशेष श्रद्धा हो तो उसमें आश्चर्य ही क्या? बाद में मैंने विशेष रूप से जाना कि श्री रामकृष्ण देव साधारणतया प्राणायाम आदि योग-क्रिया का उपदेश नहीं दिया करते थे। वे जप और ध्यान पर ही विशेष रूप से जोर देते थे। वे कहा करते थे, 'ध्यानावस्था के प्रगाढ़ होने पर अथवा भक्ति की प्रबलता आने पर प्राणायाम स्वयमेव हो जाता है, इन सब दैहिक क्रियाओं का अनुष्ठान करने से अनेक बार मन देह की ओर आकृष्ट हो जाता है।' किन्तु अन्तरंग शिष्यों से वे योग के उच्च अंगों की साधना कराते थे, उन्हें स्पर्श करके अपनी आध्यात्मिक शक्ति के बल से उन लोगों की कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर देते थे, एवं षट्चक्र के विभिन्न चक्रों में मन की स्थिरता की सुविधा के लिए समय समय पर शरीर के किसी विशिष्ट अंग में सुई चुभाकर वहाँ मन को स्थिर करने के लिए कहते थे। स्वामी जी ने अपने पाश्चात्य शिष्यों में से बहुतों को प्राणायाम आदि क्रियाओं का जो उपदेश दिया था, वह मैं समझता हूँ उनका अपना 'कपोलकल्पित' नहीं था, वरन् उनके गुरु द्वारा उपदिष्ट मार्ग था। स्वामी जी एक बात कहा करते थे कि यदि किसीको सचमुच सन्मार्ग में प्रवृत्त करना हो, तो उसीकी भाषा में उसे उपदेश देना होगा। इसी भाव का अनुसरण करके वे ईसाई, मुसलमान अथवा अविश्वासियों को भिन्न भिन्न साधना

प्रणाली की शिक्षा देते थे और इस तरह सभी प्रकार की प्रकृतिवाले मनुष्यो को थोडी-बहुत आध्यात्मिक सहायता देने मे सफल होते थे।

जो हो, मैं इतने दिनो से उनका उपदेश सुन रहा हूँ, किन्तु उनके पास से मुझे अभी तक किसी प्रकार की प्रत्यक्ष आध्यात्मिक सहायता नही मिली, और उसके लिए मैंने चेष्टा भी नहीं की। चेष्टा न करने का कारण यह था कि मुझे करने का साहस नही होता था, और शायद मन के भीतर यह भी भाव था कि जब मैं इनके आश्रित हुआ हूँ, तो जो जो मेरे लिए आवश्यक है, सभी पाऊँगा। किस प्रकार वे मेरी आध्यात्मिक सहायता करेंगे, यह मैं नही जानता था। इस समय स्वामी निर्मलानन्द के ऐसे बिनमाँगे आह्वान से मन मे और किसी प्रकार की दुविधा नही रही। 'लूँगा' ऐसा कहकर उनके साथ पूजा-गृह की ओर बढ़ा। मैं नही जानता था कि उस दिन श्रीयुत शरच्चन्द्र चक्रवर्ती भी दीक्षा ले रहे हैं। उस समय दीक्षा-दान समाप्त नही हुआ था, इसलिए, स्मरण है, पूजा-गृह के बाहर कुछ देर तक मुझे प्रतीक्षा करनी पडी थी। बाद मे शरत् बाबू बाहर आये, तो उसी समय तुलसी महाराज मुझे ले जाकर स्वामी जी से बोले, "यह दीक्षा लेगा।" स्वामी जी ने मुझसे बैठने के लिए कहा। पहले ही उन्होंने पूछा, "तुझे साकार अच्छा लगता है या निराकार?"

मैंने कहा, "कभी साकार अच्छा लगता है, कभी निराकार।"

इसके उत्तर मे वे बोले, "वैसा नही, गुरु समझ सकते हैं, किसका क्या मार्ग है, हाथ देखूं।" ऐसा कहकर मेरा दाहिना हाथ कुछ देर तक लेकर थोडी देर जैसे ध्यान करने लगे। उसके बाद हाथ छोडकर बोले, "तूने कभी घट-स्थापना करके पूजा की है?" घर छोडने के कुछ पहले घट-स्थापना करके मैंने बहुत देर तक कोई पूजा की थी। वह बात मैंने उनसे बतायी। तब एक देवता का मन्त्र बताकर उन्होने उसे अच्छी तरह मुझे समझा दिया और कहा, "इस मन्त्र से तेरा कल्याण होगा। और घट-स्थापना करके पूजा करने से तेरा कल्याण होगा।" उसके बाद मेरे सम्बन्ध मे एक भविष्यवाणी करके, उन्होने सामने पडे हुए कुछ फलो को गुरु-दक्षिणा के रूप मे देने के लिए मुझसे कहा।

मैंने देखा, यदि मुझे भगवान् के शक्तिस्वरूप किन्ही देवता की उपासना करनी हो, तो मुझे स्वामी जी ने जिन देवता के मन्त्र का उपदेश दिया है, वे ही देवता मेरी प्रकृति के साथ पूर्णरूपेण मेल खाते हैं। सुना था—सच्चे गुरु शिष्य की प्रकृति को समझकर मन्त्र देते हैं। स्वामी जी मे आज उसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिला।

दीक्षा-दान के कुछ देर बाद स्वामी जी का भोजन हुआ। स्वामी जी की थाली मे से मैंने और शरच्चन्द्र बाबू ने प्रसाद ग्रहण किया।

उस समय श्रीयुत नरेन्द्रनाथ सेन द्वारा सम्पादित 'इण्डियन मिरर' नामक अंग्रेजी दैनिक मठ में बिना मूल्य दिया जाता था किन्तु मठ के संन्यासियों की ऐसी स्थिति नहीं थी कि उसका डाक-खर्च भी दे सकते। यह पत्र एक पत्रवाहक द्वारा बराहनगर तक वितरित होता था। बराहनगर में 'देवालय' के प्रतिष्ठाता देशभक्त श्री शशिपद बन्द्योपाध्याय द्वारा प्रतिष्ठित एक विधवाश्रम था। वहाँ पर इस आश्रम के लिए उक्त पत्र की एक प्रति आती थी। 'इण्डियन मिरर' का पत्रवाहक मठ नहीं तक आता था इसलिए मठ का समाचारपत्र भी वहीं दे जाता था। वहाँ से प्रतिदिन पत्र को मठ में लाना पड़ता था। उक्त विधवाश्रम के ऊपर स्वामी जी की यथेष्ट सहानुभूति थी। अमेरिका-प्रवास में इस आश्रम की सहायता के लिए स्वामी जी ने अपनी इच्छा से एक व्याख्यान दिया था और उस व्याख्यान के टिकट बेचकर जो कुछ आय हुई, उसे इस आश्रम में दे दिया था। अस्तु, उस समय मठ के लिए बाजार करना पूजा का आयोजन करना आदि सभी कार्य कन्हाई महाराज (स्वामी निर्भयानन्द) को करना पड़ता था। इस 'इण्डियन मिरर' पत्र को लाने का भार भी उन्हीं के ऊपर था। उस समय मठ में हम लोग बहुत से नवदीक्षित संन्यासी ब्रह्मचारी आ जुटे थे किन्तु तब भी मठ के सब कार्यों का भार सब पर नहीं बाँटा गया था। इसलिए स्वामी निर्भयानन्द को यथेष्ट कार्य करना पड़ता था। अतएव उनके भी मन में आता था कि अपने कार्यों में से थोड़ा थोड़ा कार्य यदि नवीन साधुओं को दे सकें तो कुछ अवकाश मिले। इस उद्देश्य से उन्होंने मुझसे कहा 'देखो जिस जगह 'इण्डियन मिरर' आता है उस स्थान को तुम्हें दिखला दूँगा —तुम वहाँ से प्रतिदिन समाचारपत्र ले आना।" मैंने उसे अत्यन्त सरल कार्य समझकर एवं इससे एक व्यक्ति का कार्य-भार कुछ हलका होगा ऐसा सोचकर, सहज में ही स्वीकार कर लिया। एक दिन दोपहर के भोजन के बाद कुछ देर विश्राम कर लेने पर निर्भयानन्द जी ने मुझसे कहा चलो वह विधवाश्रम तुम्हें दिखला दूँ। मैं उनके साथ जाने के लिए तैयार हुआ। इसी बीच स्वामी जी ने मुझे देखकर वेदान्त पढ़ने के लिए बुलाया। मैंने कहा कि मैं अमुक कार्य से जा रहा हूँ। इस पर स्वामी जी कुछ नहीं बोले। मैं कन्हाई महाराज के साथ बाहर जाकर उस स्थान को देख आया। लौटकर जब मठ में आया तो अपने एक ब्रह्मचारी मित्र से सुना कि मेरे चले जाने के कुछ देर बाद स्वामी जी किसीसे कह रहे थे "यह लड़का कहाँ गया है? क्या स्त्रियों को तो देखने नहीं गया?" इस बात को सुनकर मैंने कन्हाई महाराज से कहा 'भाई, मैं स्थान देख तो आया पर समाचारपत्र लाने के लिए अब वहाँ न जा सकूँगा।

शिष्यों के, विशेषत नवीन ब्रह्मचारियों के चरित्र की जिनसे रक्षा हो, उस विषय मे स्वामी जी विशेष सावधान थे। कलकत्ते मे विशेष प्रयोजन के बिना कोई साधु-ब्रह्मचारी रहे या रात बिताये—यह उन्हे बिल्कुल पसन्द न था, और विशेषत वह स्थान, जहाँ स्त्रियो के ससर्ग मे आना होता था। इसके सैकडो उदाहरण देख चुका हूँ।

स्वामी जी जिस दिन मठ से रवाना होकर अलमोडा जाने के लिए कलकत्ता गये, उस दिन सीढी के बगल के बरामदे मे खडे होकर अत्यन्त आग्रह के साथ नवीन ब्रह्मचारियो को सम्बोधन करके ब्रह्मचर्य के बारे मे उन्होंने जो बाते कही थी, वे मानो अभी भी मेरे कानो मे गूंज रही है। उन्होंने कहा—

"देखो बच्चो, ब्रह्मचर्य के बिना कुछ भी न होगा। धर्म-जीवन का लाभ करना हो, तो उसमे ब्रह्मचर्य ही एकमात्र सहायक है। तुम लोग स्त्रियो के ससर्ग मे बिल्कुल न आना। मैं तुम लोगो को स्त्रियो से घृणा करने के लिए नही कहता, वे तो साक्षात् भगवतीस्वरूपा हैं, किन्तु अपने को बचाने के लिए तुम लोगो को उनसे दूर रहने के लिए कहता हूँ। मैंने अपने व्याख्यानो मे बहुत जगह जो कहा है कि ससार मे रहकर भी धर्म होता है, सो वह पढकर मन मे ऐसा न समझ लेना कि मेरे मत मे ब्रह्मचर्य या सन्यास धर्म-जीवन के लिए अत्यावश्यक नही है। क्या करता, उन सब भाषणो के सुननेवाले सभी ससारी थे, सभी गृही थे—उनके सामने पूर्ण ब्रह्मचर्य की बात यदि एकदम कहने लगता, तो दूसरे दिन से कोई भी मेरा व्याख्यान सुनने न आता। ऐसे लोगो के लिए छूट-ढिलाई दिये जाने पर, वे क्रमश पूर्ण ब्रह्मचर्य की ओर आकृष्ट होते हैं, इसीलिए मैंने उस प्रकार के भाषण दिये थे। किन्तु अपने मन की बात तुम लोगो से कहता हूँ—ब्रह्मचर्य के बिना तनिक भी धर्मलाभ न होगा। काया, मन और वाणी से तुम लोग ब्रह्मचर्य का पालन करना।"

## १०

एक दिन विलायत से कोई पत्र आया। उसे पढकर स्वामी जी उसी प्रसग मे, धर्म-प्रचारक में कौन कौन से गुण रहने पर वह सफल हो सकेगा, यह बताने लगे। अपने शरीर के भिन्न भिन्न अवयवो की ओर लक्ष्य करके कहने लगे कि धर्म-प्रचारक का अमुक अग खुला रहना आवश्यक है और अमुक अग बन्द। अर्थात् उसका सिर, हृदय और मुख खुला रहना चाहिए, यानी उसे प्रबल मेधावी, सहृदय और वाग्मी होना चाहिए। और उसके अधोदेश के अगो का कार्य बन्द होगा, अर्थात् वह पूर्ण ब्रह्मचारी होगा। एक प्रचारक को लक्ष्य करके कहने लगे,

"उसमें सभी गुण हैं केवल एक हृदय का अभाव है—ठीक है क्रमशः हृदय भी खुल जायगा।

उस पत्र में यह संवाद था कि भगिनी निवेदिता (उस समय कुमारी नोबल) इंग्लैण्ड से भारत के लिए शीघ्र ही रवाना होंगी। निवेदिता की प्रशंसा करने में स्वामी जी शतमुख हो गये। कहने लगे 'इंग्लैण्ड में इस प्रकार की पवित्र चरित्र महानुभाव नारियाँ बहुत कम हैं। मैं यदि कल मर जाऊँ, तो वह मेरे काम को चालू रखेगी।' स्वामी जी की यह भविष्यवाणी सफल हुई थी।

## ११

स्वामी जी के पास पत्र आया है कि वेदान्त के श्रीभाष्य के अंग्रेजी अनुवादक तथा स्वामी जी की सहायता द्वारा मद्रास से प्रकाशित होनेवाले विख्यात 'ब्रह्मवादिन्' पत्र के प्रधान लेखक एवं मद्रास के प्रतिष्ठित अध्यापक श्रीयुत रंगाचार्य तीर्थ भ्रमण के सिलसिले में शीघ्र ही कलकत्ता आयेंगे। स्वामी जी अपराह्न समय मुझसे बोले 'पत्र लिखने के लिए कागज और कलम लाकर जरा लिख तो' और देख थोड़ा पीने के लिए पानी भी लेता आ।' मैंने एक गिलास पानी लाकर स्वामी जी को दिया और डरते हुए धीरे धीरे बोला 'मेरे हाथ की लिखावट उतनी अच्छी नहीं है।' मैंने सोचा था शायद विलायत या अमेरिका के लिए कोई पत्र लिखना होगा। स्वामी जी इस पर बोले 'कोई हर्ज नहीं या लिख foreign letter (विलायती पत्र) नहीं है।' तब मैं कागज-कलम लेकर पत्र लिखने के लिए बैठा। स्वामी जी अंग्रेजी में बोलने लगे। उन्होंने अध्यापक रंगाचार्य को एक पत्र लिखाया और एक पत्र किसी दूसरे को लिखे—यह ठीक स्मरण नहीं है। मुझे याद है—रंगाचार्य को बहुत सी दूसरी बातों में एक यह भी बात लिखायी थी 'बंगाल में वेदान्त की वैसी चर्चा नहीं है अतएव जब आप कलकत्ता आ रहे हैं तो कलकत्तावासियों को जरा हिलाकर जायें।' कलकत्ते में जिससे वेदान्त की चर्चा बढ़े कलकत्तावासी जिससे थोड़ा सचेत हों उसके लिए स्वामी जी कितने सचेष्ट थे! स्वामी जी ने अस्वस्थ होने के कारण चिकित्सकों के साग्रह अनुरोध से कलकत्ते में केवल दो व्याख्यान देकर फिर व्याख्यान देना बन्द कर दिया था किन्तु तो भी जब कभी सुविधा पाते कलकत्तावासियों की धर्म भावना को जाग्रत करने की चेष्टा करते रहते थे। स्वामी जी के इस पत्र के फलस्वरूप इसके कुछ दिन बाद कलकत्तावासियों ने स्टार रंगमंच पर उक्त पण्डित प्रवर का दि प्रीस्ट ऐण्ड दि प्रॉफ़ेट (पुरोहित और ऋषि) नामक सारगर्भित व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त किया था।

## १२

इसी समय, एक बगाली युवक मठ मे आया और उसने वहाँ साधु होकर रहने की इच्छा प्रकट की। स्वामी जी तथा वहाँ के अन्यान्य साधु उसके चरित्र से पहले ही से विशेषतया परिचित थे। उसको आश्रमवासी होने मे अनुपयुक्त समझकर कोई भी उसे मठ मे रखने के पक्ष मे नही था। पर उसके पुन पुन प्रार्थना करने पर स्वामी जी ने उससे कहा, "मठ के साधुओ का यदि मत हो, तो तुम्हें रख सकता हूँ।" यह कहकर पुराने साधुओ को बुलाकर उन्होने पूछा, "इसको मठ मे रखने के बारे मे तुम लोगो का क्या मत है?" उस पर सभी साधुओ ने उसे मठ मे रखने मे अनिच्छा प्रदर्शित की। अत उस युवक को मठ मे नही रखा गया। इसके कुछ दिनो बाद सुना कि वह व्यक्ति किसी तरह विलायत गया, और पास मे पैसा-कौडी न रहने के कारण उसे 'वर्क-हाउस' मे रहना पडा।

## १३

एक दिन अपराह्न काल मे स्वामी जी मठ के बरामदे मे हम लोगो को लेकर वेदान्त पढाने बैठे। सन्ध्या होने ही वाली थी। स्वामी रामकृष्णानन्द को इससे कुछ दिन पहले स्वामी जी ने प्रचार-कार्य के लिए मद्रास भेजा था। इसीलिए उस समय मठ मे पूजा-आरती आदि उनके एक दूसरे गुरुभ्राता सँभालते थे। आरती आदि मे जो लोग उनकी सहायता करते थे, उन्हे भी लेकर स्वामी जी वेदान्त पढाने बैठे थे। उसी समय उक्त गुरुभ्राता आकर नवीन सन्यासी-ब्रह्मचारियो से कहने लगे, "चलो जी, चलो, आरती करनी होगी, चलो।" उस समय एक ओर स्वामी जी के आदेश से सभी वेदान्त पढने मे लगे हुए थे, और दूसरी ओर इनके आदेश से ठाकुर जी की आरती मे सहयोग देना चाहिए। अतएव नवीन साधु लोग कुछ समय असमजस मे पड गये। तब स्वामी जी अपने गुरुभ्राता को सम्बोधित करके उत्तेजित होकर कहने लगे, "यह जो वेदान्त पढा जा रहा था, यह क्या ठाकुर की पूजा नही है? केवल एक चित्र के सामने जलती हुई वत्ती घुमाना और झांझ पीटना—मालूम होता है, इसीको तुम भगवान् की आराधना समझते हो! तुम्हारी बुद्धि वडी ओछी है।" इस तरह कहते कहते, जरा और भी अधिक उत्तेजित हो इस प्रकार वेदान्त-पाठ मे बाधा उपस्थित करने के कारण कुछ और भी अधिक कडे वाक्य कहने लगे। फल यह हुआ कि वेदान्त-पाठ बन्द हो गया। कुछ देर बाद आरती भी समाप्त हो गयी। किन्तु आरती के बाद उक्त गुरुभ्राता चुपके से कहीं चले गये। तब तो स्वामी जी भी अत्यन्त व्याकुल होकर बारम्बार "वह कहाँ गया, क्या वह मेरी गाली खाकर गगा मे तो नहीं

घूम गया। इस तरह कहने लगे और सभी लोगों को उन्हें ढूँढ़ने के लिए चारों ओर भेजा। बहुत देर बाद मठ की छत पर विस्मित भाव से उन्हें बैठे हुए देखकर एक व्यक्ति उन्हें स्वामी जी के पास ले आये। उस समय स्वामी जी का भाव एकदम परिवर्तित हो गया। उन्होंने उनका कितना दुलार किया और कितनी मधुर वाणी में उनसे बातें करने लगे। हम लोग स्वामी जी का गुरुभाई के प्रति अपूर्व प्रेम देखकर मुग्ध हो गये। तब हम लोगों को मालूम हुआ कि गुरुभाइयों के ऊपर स्वामी जी का अगाध विश्वास और प्रेम है। उनकी आन्तरिक चेष्टा यही रहती थी कि वे लोग अपनी निष्ठा को सुरक्षित रखकर अधिकाधिक उन्नत एवं उदार बन सकें। बाद में स्वामी जी के श्रीमुख से अनेक बार सुना है कि स्वामी जी जिनकी अधिक भर्त्सना करते थे वे ही उनके विशेष प्रीति-पात्र थे।

## १४

एक दिन बरामदे में टहलते-टहलते उन्होंने मुझसे कहा, देख, मठ की एक डायरी रखना और प्रत्येक सप्ताह मठ की एक रिपोर्ट भेजना। स्वामी जी के इस आदेश का मैंने और बाद में अन्य व्यक्तियों ने भी पालन किया था। अभी भी मठ की वह दाखिक (छोटी) डायरी मठ में सुरक्षित है। उससे अभी भी मठ के क्रम-विकास और स्वामी जी के सम्बन्ध में बहुत से तथ्य संग्रह किये जा सकते हैं।

# प्रश्नोत्तर

# प्रश्नोत्तर

## १

### (बेलूड मठ की डायरी से)

प्रश्न—गुरु किसे कह सकते हैं?

उत्तर—जो तुम्हारे भूत-भविष्य को बता सकें, वे ही तुम्हारे गुरु हैं।

प्रश्न—भक्ति-लाभ किस प्रकार होता है?

उत्तर—भक्ति तो तुम्हारे भीतर ही है—केवल उसके ऊपर काम-कांचन का एक आवरण सा पडा हुआ है। उसको हटाते ही भीतर की वह भक्ति स्वयमेव प्रकट हो जायगी।

प्रश्न—हमे आत्मनिर्भर होना चाहिए—इस कथन का सच्चा अर्थ क्या है?

उत्तर—यहाँ 'आत्म' का अर्थ है, चिरंतन नित्य आत्मा। फिर भी, इस 'अनित्य अहं' पर निर्भरता का अभ्यास भी हमे धीरे धीरे सच्चे लक्ष्य पर पहुँचा देगा, क्योकि जीवात्मा भी तो वस्तुत नित्यात्मा की मायिक अभिव्यक्ति ही तो है।

प्रश्न—यदि सचमुच एक ही वस्तु सत्य हो, तो फिर यह द्वैत-बोध, जो सदा-सर्वदा सबको हो रहा है, कहाँ से आया?

उत्तर—किसी विषय के प्रत्यक्ष मे कभी द्वैत-बोध नही होता। प्रत्यक्ष के पुन उपस्थित होने मे ही द्वैत का बोध होता है। यदि विषय-प्रत्यक्ष के समय द्वैत-बोध रहता, तो ज्ञेय ज्ञाता से सम्पूर्ण स्वतन्त्र रूप मे तथा ज्ञाता भी ज्ञेय से स्वतन्त्र रूप मे रह सकता।

प्रश्न—चरित्र का सामंजस्यपूर्ण विकास करने का सर्वोत्तम उपाय कौन सा है?

उत्तर—जिनका चरित्र उस रूप से गठित हुआ हो, उनका संग करना ही इसका सर्वोत्कृष्ट उपाय है।

प्रश्न—वेद के विषय मे हमारा दृष्टिकोण किस प्रकार का होना चाहिए?

उत्तर—वेदो के केवल उन्ही अंशो को प्रमाण मानना चाहिए, जो युक्ति-विरोधी नही हैं। पुराणादि अन्यान्य शास्त्र वही तक ग्राह्य है, जहाँ तक वे वेद से अविरोधी हैं। वेद के पश्चात् इस संसार मे जहाँ कही जो भी धर्म-भाव आविर्भूत हुआ है, उसे वेद से ही गृहीत समझना चाहिए।

प्रश्न—यह चार युगों का काल-विभाजन क्या ज्योतिषशास्त्र की गणना के अनुसार सिद्ध है अथवा केवल कल्पित ही है?

उत्तर—वेदों में तो कहीं ऐसे विभाजन का उल्लेख नहीं है। यह पौराणिक युग की निराधार कल्पना मात्र है।

प्रश्न—शब्द और भाव के बीच क्या सचमुच कोई नित्य सम्बन्ध है? अथवा मात्र संयोगज और कल्पित?

उत्तर—इस विषय में अनेक तर्क किये जा सकते हैं, किसी स्थिर सिद्धान्त पर पहुँचना बड़ा कठिन है। मालूम होता है कि शब्द और अर्थ के बीच नित्य सम्बन्ध है पर पूर्णतया नहीं जैसा भाषाओं की विविधता से सिद्ध होता है। हाँ कोई सूक्ष्म सम्बन्ध हो सकता है जिसे हम अभी नहीं पकड़ पा रहे हैं।

प्रश्न—भारत में कार्य-प्रणाली कैसी होनी चाहिए?

उत्तर—पहले तो व्यावहारिक और शरीर से सबल होने की शिक्षा देनी चाहिए। ऐसे केवल बारह नर-केसरी संसार पर विजय प्राप्त कर सकते हैं परन्तु लाख-लाख भेड़ों द्वारा यह नहीं होने का। और दूसरे, किसी व्यक्तिगत आदर्श के अनुकरण की शिक्षा नहीं देनी चाहिए, चाहे वह आदर्श कितना ही बड़ा क्यों न हो।

इसके पश्चात् स्वामी जी ने कुछ हिन्दू प्रतीकों की अवनति का वर्णन किया। उन्होंने ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग का भेद समझाया। वास्तव में ज्ञानमार्ग आर्यों का था और इसलिए उसमें अधिकारी-विचार के इतने कड़े नियम थे। भक्ति मार्ग की उत्पत्ति दाक्षिणात्य से—आर्येतर जाति से हुई है इसलिए उसमें अधिकारी-विचार नहीं है।

प्रश्न—भारत के इस पुनरुत्थान में रामकृष्ण मिशन क्या कार्य करेगा?

उत्तर—इस मठ से चरित्रवान व्यक्ति निकलकर सारे संसार को आध्यात्मिकता की बाढ़ से प्लावित कर देंगे। इसके साथ साथ दूसरे क्षेत्रों में भी पुनरुत्थान होगा। इस तरह ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य जाति का अभ्युदय होगा। शूद्र जाति का अस्तित्व समाप्त हो जायगा—वे लोग आज जो काम कर रहे हैं वे सब यंत्रों की सहायता से किये जायँगे। भारत की वर्तमान आवश्यकता है—*क्षत्रिय-शक्ति।*

प्रश्न—क्या मनुष्य के उपरान्त अधोगामी पुनर्जन्म संभव है?

उत्तर—हाँ पुनर्जन्म कर्म पर निर्भर रहता है। यदि मनुष्य पशु के समान आचरण करे, तो वह पशु-योनि में खिंच जाता है।

एक समय (सन् १८९८ ई०) मे इस प्रकार के प्रश्नोत्तर-काल मे स्वामी जी ने मूर्ति-पूजा की उत्पत्ति बौद्ध युग मे मानी थी। उन्होने कहा था—पहले बौद्ध चैत्य, फिर स्तूप, और तत्पश्चात् बुद्ध का मन्दिर निर्मित हुआ। उसके साथ ही हिन्दू देवताओ के मन्दिर खडे हुए।

प्रश्न—क्या कुण्डलिनी नाम की कोई वास्तविक वस्तु इस स्थूल शरीर के भीतर है?

उत्तर—श्री रामकृष्ण देव कहते थे, 'योगी जिन्हे पद्म कहते हैं, वास्तव मे वे मनुष्य के शरीर मे नही हैं। योगाभ्यास से उनकी उत्पत्ति होती है।'

प्रश्न—क्या मूर्ति-पूजा के द्वारा मुक्ति-लाभ हो सकता है?

उत्तर—मूर्ति-पूजा से साक्षात् मुक्ति की प्राप्ति नही हो सकती, फिर भी वह मुक्ति-प्राप्ति मे गौण कारणस्वरूप है—सहायक है। मूर्ति-पूजा की निन्दा करना उचित नही, क्योकि बहुतो के लिए मूर्ति-पूजा ही अद्वैत ज्ञान की उपलब्धि के लिए मन को तैयार कर देती है—और केवल इस अद्वैत-ज्ञान की प्राप्ति से ही मनुष्य मुक्त हो सकता है।

प्रश्न—हमारे चरित्र का सर्वोच्च आदर्श क्या होना चाहिए?

उत्तर—त्याग।

प्रश्न—बौद्ध धर्म ने अपने दाय के रूप मे भ्रष्टाचार कैसे छोडा?

उत्तर—बौद्धो ने प्रत्येक भारतवासी को भिक्षु या भिक्षुणी बनाने का प्रयत्न किया था। परन्तु सब लोग तो वैसा नही हो सकते। इस तरह किसी भी व्यक्ति के साधु बन जाने से भिक्षु-भिक्षुणियो में क्रमश शिथिलता आती गयी। और भी एक कारण था—धर्म के नाम पर तिब्बत तथा अन्यान्य देशों के बर्बर आचारो का अनुकरण करना। वे इन स्थानो मे धर्म-प्रचार के हेतु गये और इस प्रकार उनके भीतर उन लोगो के दूषित आचार प्रवेश कर गये। अन्त मे उन्होंने भारत मे इन सब आचारो को प्रचलित कर दिया।

प्रश्न—माया क्या अनादि और अनन्त है?

उत्तर—समष्टि रूप से अनादि-अनन्त अवश्य है, पर व्यष्टि रूप से सान्त है।

प्रश्न—ब्रह्म और माया का बोध युगपत् नही होता। अत उनमे से किसी-की भी पारमार्थिक सत्ता एक दूसरे से अद्भुत कैसे सिद्ध की जा सकती है?

उत्तर—उसको केवल साक्षात्कार द्वारा ही सिद्ध किया जा सकता है। जब व्यक्ति को ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है, तो उसके लिए माया की सत्ता नही रह जाती, जैसे रस्सी की वास्तविकता जान लेने पर सर्प का भ्रम फिर उत्पन्न नहीं होता।

प्रश्न—माया क्या है?

उत्तर—वास्तव में वस्तु केवल एक ही है—चाहे उसको चैतन्य कहो या जड़। पर उनमें से एक को दूसरे से नितांत स्वतंत्र मानना केवल कठिन ही नहीं असम्भव है। इसीको माया या अज्ञान कहते हैं।

प्रश्न—मुक्ति क्या है?

उत्तर—मुक्ति का अर्थ है पूर्ण स्वाधीनता—शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाना। लोहे की शृंखला भी शृंखला ही है और सोने की शृंखला भी शृंखला है। श्री रामकृष्ण देव कहते थे 'पैर में काँटा चुभने पर उसे निकालने के लिए एक दूसरे काँटे की आवश्यकता होती है। काँटा निकल जाने पर दोनों काँटे फेंक दिये जाते हैं। इसी तरह सत्प्रवृत्ति के द्वारा असत् प्रवृत्तियों का दमन करना पड़ता है, परन्तु बाद में सत्प्रवृत्तियों पर भी विजय प्राप्त करनी पड़ती है।'

प्रश्न—भगवत्कृपा बिना क्या मुक्ति-लाभ हो सकता है?

उत्तर—मुक्ति के साथ ईश्वर का कोई सम्बन्ध नहीं है। मुक्ति तो पहले से ही वर्तमान है।

प्रश्न—हमारे भीतर जिसे 'मैं' या 'अहं' कहा जाता है वह देह आदि से उत्पन्न नहीं है, इसका क्या प्रमाण है?

उत्तर—अनात्मा की भाँति 'मैं' या 'अहं' भी देह-मन आदि से ही उत्पन्न होता है। वास्तविक 'मैं' के अस्तित्व का एकमात्र प्रमाण है साक्षात्कार।

प्रश्न—सच्चा ज्ञानी और सच्चा भक्त किसे कह सकते हैं?

उत्तर—जिसके हृदय में अथाह प्रेम है और जो सभी अवस्थाओं में अद्वैत तत्त्व का साक्षात्कार करता है, वही सच्चा ज्ञानी है। और सच्चा भक्त वह है जो परमात्मा के साथ जीवात्मा को अभिन्न रूप से उपलब्धि कर यथार्थ ज्ञानसम्पन्न हो गया है, जो सबसे प्रेम करता है और जिसका हृदय सबके लिए रुदन करता है। ज्ञान और भक्ति में से किसी एक का पक्ष लेकर जो दूसरे की निन्दा करता है वह न तो ज्ञानी है, न भक्त—वह तो ढोंगी और धूर्त है।

प्रश्न—ईश्वर की सेवा करने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर—यदि तुम एक बार ईश्वर के अस्तित्व को मान लेते हो तो उनकी सेवा करने के यथेष्ट कारण पाओगे। सभी शास्त्रों के मतानुसार भगवत्सेवा का अर्थ है 'स्मरण'। यदि तुम ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते हो, तो तुम्हारे जीवन में पग पग पर उनको स्मरण करने का हेतु सामने आयेगा।

प्रश्न—क्या मायावाद अद्वैतवाद से भिन्न है?

उत्तर—नही, दोनो एक ही हैं। मायावाद को छोड अद्वैतवाद की और कोई भी व्याख्या सम्भव नही।

प्रश्न—ईश्वर तो अनन्त हैं, वे फिर मनुष्य रूप धारण कर इतने छोटे किस प्रकार हो सकते हैं?

उत्तर—यह सत्य है कि ईश्वर अनन्त है। परन्तु तुम लोग अनन्त का जो अर्थ सोचते हो, अनन्त का वह अर्थ नही है। अनन्त कहने से तुम एक विराट् जड सत्ता समझ बैठते हो। इसी समझ के कारण तुम भ्रम मे पड गये हो। जब तुम यह कहते हो कि भगवान् मनुष्य रूप धारण नहीं कर सकते, तो इसका अर्थ तुम ऐसा समझते हो कि एक विराट् जड पदार्थ को इतना छोटा नहीं किया जा सकता। परन्तु ईश्वर इस अर्थ मे अनन्त नही है। उनका अनन्तत्व चैतन्य का अनन्तत्व है। इसलिए मानव के आकार मे अपने को अभिव्यक्त करने पर भी उनके स्वरूप को कुछ भी क्षति नही पहुँचती।

प्रश्न—कोई कोई कहते हैं कि पहले सिद्ध बन जाओ, फिर तुम्हे कर्म करने का ठीक ठीक अधिकार होगा, परन्तु कोई कहते हैं कि शुरू से ही कर्म करना, दूसरो की सेवा करना उचित है। इन दो विभिन्न मतो का सामजस्य किस प्रकार हो सकता है?

उत्तर—तुम तो दो अलग अलग बातों को एक मे मिलाये दे रहे हो, इसलिए भ्रम मे पड गये हो। कर्म का अर्थ है मानव जाति की सेवा अथवा धर्म-प्रचार-कार्य। यथार्थ प्रचार-कार्य मे अवश्य ही सिद्ध पुरुष के अतिरिक्त और किसीका अधिकार नही है, परन्तु सेवा मे तो सभी का अधिकार है, इतना ही नही, जब तक हम दूसरो से सेवा ले रहे हैं, तब तक हम दूसरो की सेवा करने को बाध्य भी हैं।

## २

### (ब्रुकलिन नैतिक सभा, ब्रुकलिन, अमेरिका)

प्रश्न—आप कहते हैं कि सब कुछ मगल के लिए ही है, परन्तु देखने मे आता है कि ससार सब ओर अमगल और दुख-कष्ट से घिरा है। तो फिर आपके मत के साथ इस प्रत्यक्ष दीखनेवाले व्यापार का सामजस्य किस प्रकार हो सकता है?

उत्तर—आप यदि पहले अमगल के अस्तित्व को प्रमाणित कर सकें, तभी मैं इस प्रश्न का उत्तर दे सकूँगा। परन्तु वैदान्तिक धर्म तो अमगल का अस्तित्व ही स्वीकार नही करता। सुख से रहित अनन्त दुख कही हो, तो उसे अवश्य प्रकृत अमगल कहा जा सकता है। पर यदि सामयिक दुख-कष्ट हृदय की कोमलता

और महत्ता में वृद्धि कर मनुष्य को अनन्त सुख की ओर अग्रसर कर दे, तो फिर उसे अमंगल नहीं कहा जा सकता, बल्कि उसे तो परम मंगल कहा जा सकता है। जब तक हम यह अनुसन्धान नहीं कर लेते कि किसी वस्तु का अनन्त के राज्य में क्या परिणाम होता है, तब तक हम उसे बुरा नहीं कह सकते।

शैतान की उपासना हिन्दू धर्म का अंग नहीं है। मानव जाति क्रमोन्नति के मार्ग पर चल रही है, परन्तु सब लोग एक ही प्रकार की स्थिति में नहीं पहुँच सके हैं। इसीलिए पार्थिव जीवन में कोई कोई लोग अन्यान्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक महान् और पवित्र देखे जाते हैं। प्रत्येक मनुष्य के लिए उसके अपने वर्तमान उन्नति-क्षेत्र के भीतर स्वयं को उन्नत बनाने के लिए अवसर विद्यमान है। हम अपना नाश नहीं कर सकते, हम अपने भीतर की जीवनी शक्ति को नष्ट या दुर्बल नहीं कर सकते, परन्तु उस शक्ति को विभिन्न दिशा में परिचालित करने के लिए हम स्वतन्त्र हैं।

प्रश्न—पार्थिव जड़ वस्तु की सत्यता क्या हमारे मन की केवल कल्पना नहीं है?

उत्तर—मेरे मत में बाह्य जगत् की अवश्य एक सत्ता है—हमारे मन के विचार के बाहर भी उसका एक अस्तित्व है। चैतन्य के क्रमविकास-रूप महान् विधान का अनुवर्ती होकर यह समग्र विश्व उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। चैतन्य का यह क्रमविकास जड़ के क्रमविकास से पृथक् है। जड़ का क्रमविकास चैतन्य की विकास-प्रणाली का सूचक या प्रतीकस्वरूप है, किन्तु उसके द्वारा इस प्रणाली की व्याख्या नहीं हो सकती। वर्तमान पार्थिव परिस्थिति में बद्ध रहने के कारण हम अभी तक व्यक्तित्व नहीं प्राप्त कर सके हैं। जब तक हम उस उच्चतर भूमि में नहीं पहुँच जाते, जहाँ हम अपनी अन्तरात्मा के परम लक्षणों को प्रकट करने के उपयुक्त यन्त्र बन जाते हैं, तब तक हम प्रकृत व्यक्तित्व की प्राप्ति नहीं कर सकते।

प्रश्न—ईसा मसीह के पास एक जन्मान्ध शिशु को ले जाकर उनसे पूछा गया था कि शिशु स्वयं किये हुए पाप के फल से अन्धा हुआ है, अथवा अपने माता पिता के पाप के फल से—इस समस्या की मीमांसा आप किस प्रकार करेंगे?

उत्तर—इस समस्या में पाप की बात को ले आने का कोई भी प्रयोजन नहीं दीख पड़ता। तो भी मेरा दृढ़ विश्वास है कि शिशु की यह अन्धता उसके पूर्व जन्म कृत किसी कर्म का ही फल होगी। मेरे मत में पूर्व जन्म को स्वीकार करने पर ही ऐसी समस्याओं की मीमांसा हो सकती है।

प्रश्न—मृत्यु के पश्चात् हमारी आत्मा क्या आनन्द की अवस्था को प्राप्त करती है?

उत्तर—मृत्यु तो केवल अवस्था का परिवर्तन मात्र है। देश-काल आपके ही भीतर वर्तमान है, आप देश-काल के अन्तर्गत नही है। बस इतना जानने से ही यथेष्ट होगा कि हम, इहलोक मे या परलोक मे, अपने जीवन को जितना पवित्र और महान् बनायेंगे, उतना ही हम उन भगवान् के निकट होते जायेंगे, जो सारे आध्यात्मिक सौन्दर्य और अनन्त आनन्द के केन्द्रस्वरूप है।

## २

### (ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी क्लब, बोस्टन, अमेरिका)

प्रश्न—क्या वेदान्त का प्रभाव इसलाम धर्म पर कुछ पडा है?

उत्तर—वेदान्त मत की आध्यात्मिक उदारता ने इसलाम धर्म पर अपना विशेष प्रभाव डाला था। भारत का इसलाम धर्म ससार के अन्यान्य देशो के इसलाम धर्म की अपेक्षा पूर्ण रूप से भिन्न है। जब दूसरे देशो के मुसलमान यहाँ आकर भारतीय मुसलमानो को फुसलाते है कि तुम विधर्मियो के साथ मिल-जुलकर कैसे रहते हो, तभी अशिक्षित कट्टर मुसलमान उत्तेजित होकर दगा-फसाद मचाते हैं।

प्रश्न—क्या वेदान्त जाति-भेद मानता है?

उत्तर—जाति-भेद वेदान्त धर्म का विरोधी है। जाति-भेद एक सामाजिक प्रथा मात्र है और हमारे बडे बडे आचार्यों ने उसे तोडने के प्रयत्न किये है। बौद्ध धर्म से लेकर सभी सम्प्रदायो ने जाति-भेद के विरुद्ध प्रचार किया है, परन्तु ऐसा प्रचार जितना ही बढता गया, जाति-भेद की शृखला उतनी ही दृढ होती गयी। जाति-भेद की उत्पत्ति भारत की राजनीतिक सस्थाओ से हुई है। वह तो वश-परम्परागत व्यवसायो का समवाय (trade guild) मात्र है। किसी प्रकार के उपदेश की अपेक्षा यूरोप के साथ व्यापार-वाणिज्य की प्रतियोगिता ने जाति-भेद को अधिक मात्रा मे तोडा है।

प्रश्न—वेदो की विशेषता किस बात मे है?

उत्तर—वेदो की एक विशेषता यह है कि सारे शास्त्र-ग्रन्थो मे एकमात्र वेद ही बारम्बार कहते हैं कि वेदो के भी अतीत हो जाना चाहिए। वेद कहते है कि वे केवल बाल-बुद्धि व्यक्तियो के लिए लिखे गये हैं। इसलिए विकास कर चुकने पर वेदो के परे जाना पडेगा।

प्रश्न—आपके मत मे प्रत्येक जीवात्मा क्या नित्य सत्य है?

उत्तर—जीवात्मा मनुष्य की वृत्तियो की समष्टिस्वरूप है, और इन वृत्तियो का प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। इसलिए यह जीवात्मा अनन्त काल के

लिए कभी सत्य नहीं हो सकती। इस मायिक जगत्-प्रपंच के भीतर ही उसकी सत्यता है। जीवात्मा तो विचार और स्मृति की समष्टि है—वह नित्य सत्य कैसे हो सकती है?

प्रश्न—भारत में बौद्ध धर्म का पतन क्यों हुआ?

उत्तर—वास्तव में भारत में बौद्ध धर्म का लोप नहीं हुआ। वह एक विराट् सामाजिक आन्दोलन मात्र था। बुद्ध के पहले यज्ञ के नाम से तथा अन्य विभिन्न कार्यों से बहुत प्राणिहिंसा होती थी और लोग बहुत मद्यपान एवं आमिष-आहार करते थे। बुद्ध के उपदेश के फल से मद्यपान और जीव-हत्या का भारत से प्राय: लोप सा हो गया है।

४

(अमेरिका के हार्टफ़ोर्ड में 'आत्मा, ईश्वर और धर्म'[1] विषय पर स्वामी जी का एक भाषण समाप्त होने पर वहाँ के श्रोताओं ने कुछ प्रश्न पूछे थे। वे प्रश्न तथा उनके उत्तर नीचे दिये गये हैं।)

दर्शकों में से एक ने कहा—अगर पुरोहित लोग नरक की ज्वाला के बारे में बातें करना छोड़ दें तो लोगों पर से उनका प्रभाव ही उठ जाय।

उत्तर—उठ जाय तो अच्छा ही हो। अगर आतंक से कोई किसी धर्म को मानता है, तो वस्तुत: उसका कोई भी धर्म नहीं। इससे तो मनुष्य को उसकी पाशविक प्रकृति के बजाय उसकी दैवी प्रकृति के बारे में उपदेश देना कहीं अच्छा है।

प्रश्न—जब प्रभु (ईसा) ने यह कहा कि स्वर्ग का राज्य इस संसार में नहीं है तो इससे उनका क्या तात्पर्य था?

उत्तर—यह कि स्वर्ग का राज्य हमारे अन्दर है। यहूदी लोगों का विश्वास था कि स्वर्ग का राज्य इसी पृथ्वी पर है। पर ईसा मसीह ऐसा नहीं मानते थे।

प्रश्न—क्या आप मानते हैं कि मनुष्य का विकास पशु से हुआ है?

उत्तर—मैं मानता हूँ कि विकास के नियम के अनुसार ऊँचे स्तर के प्राणी अपेक्षाकृत निम्न स्तर से विकसित हुए हैं।

प्रश्न—क्या आप किसी ऐसे व्यक्ति को मानते हैं, जो अपने पूर्व जन्म की बातें जानता हो?

उत्तर—हाँ कुछ ऐसे लोगों से मेरी भेंट हुई है, जो कहते हैं कि उन्हें अपने पिछले जीवन की बातें याद हैं। वे इतना ऊपर उठ चुके हैं कि अपने पूर्व जन्म की बातें याद कर सकते हैं।

---

१ यह भाषण 'विवेकानन्द साहित्य' द्वितीय खंड में प्रकाशित हुआ है। स

प्रश्न—ईसा मसीह के क्रूस पर चढने की बात मे क्या आपको विश्वास है ?

उत्तर—ईसा मसीह ईश्वर के अवतार थे। कोई उन्हे मार नही सकता था। देह, जिसको क्रूस पर चढाया गया, एक छाया मात्र थी, एक मृगतृष्णा थी।

प्रश्न—अगर वे ऐसे छाया-शरीर का निर्माण कर सके, तो क्या यह सबसे बडा चमत्कारपूर्ण कार्य नही है ?

उत्तर—चमत्कारपूर्ण कार्यों को मैं आध्यात्मिक मार्ग का सबसे बडा रोडा मानता हूँ। एक बार बुद्ध के शिष्यो ने उनसे एक ऐसे व्यक्ति की चर्चा की, जो तथाकथित चमत्कार दिखाता था—वह एक कटोरे को बिना छुए ही काफ़ी ऊँचाई पर रोके रखता था। उन लोगो ने बुद्ध को वह कटोरा दिखाया, तो उन्होंने उसे अपने पैरो से कुचल दिया और कहा—कभी तुम इन चमत्कारो पर अपनी आस्था मत आधारित करो, बल्कि शाश्वत सिद्धान्तो मे सत्य की खोज करो। बुद्ध ने उन्हे सच्चे आन्तरिक प्रकाश की शिक्षा दी—वह प्रकाश, जो आत्मा की देन है और जो एकमात्र ऐसा विश्वसनीय प्रकाश है, जिसके सहारे चला जा सकता है। चमत्कार तो केवल मार्ग के रोडे हैं। उन्हे हमे रास्ते से अलग हटा देना चाहिए।

प्रश्न—क्या आप मानते हैं कि 'शैलोपदेश' सचमुच ईसा मसीह के हैं ?

उत्तर—हाँ, मैं ऐसा मानता हूँ। और इस सम्बन्ध मे मैं अन्य विचारको की तरह पुस्तको पर ही भरोसा करता हूँ, यद्यपि मैं यह भी समझता हूँ कि पुस्तको को प्रमाण बनाना बहुत ठोस आधार नही है। पर इन सारी बातो के बावजूद हम सभी 'शैलोपदेश' को नि सकोच अपना पथप्रदर्शक मान सकते हैं। जो हमारी अन्तरात्मा को जँचे, उसे हमे स्वीकार करना है। ईसा के पाँच सौ साल पहले बुद्ध ने उपदेश दिया था और सदा उनके उपदेश आशीषो से भरे रहते थे। कभी उन्होंने अपने जीवन मे अपने कार्यों अथवा अपने शब्दो से किसीकी हानि नही की, और न ज़रथुष्ट्र अथवा कन्फ्यूशस ने ही।

## ५

**(निम्नलिखित प्रश्नोत्तर अमेरिका मे दिये हुए विभिन्न भाषणों के अन्त में हुए थे। वहीं से इनका सग्रह किया गया है। इनमे से यह अमेरिका के एक सवाद-पत्र से सगृहीत है।)**

प्रश्न—आत्मा के आवागमन का हिंदू सिद्धान्त क्या है ?

उत्तर—वैज्ञानिको का ऊर्जा या जड-सधारण (conservation of energy or matter) का सिद्धान्त, जिस भित्ति पर प्रतिष्ठित है, आवागमन का सिद्धान्त भी उसी भित्ति पर स्थापित है। इस सिद्धान्त (conservation of energy or

matter) का प्रयोग सर्वप्रथम हमारे देश के एक दार्शनिक ने ही किया था। प्राचीन ऋषि 'सृष्टि' पर विश्वास नहीं करते थे। 'सृष्टि' शब्द से तात्पर्य निकलता है—कुछ नहीं से कुछ का होना, अर्थात् 'अभाव' से 'भाव' की उत्पत्ति। यह असम्भव है। जिस प्रकार काल का आदि नहीं है, उसी प्रकार सृष्टि का भी आदि नहीं है। ईश्वर और सृष्टि मानो दो समानान्तर रेखाओं के समान हैं—उनका न आदि है, न अन्त—वे नित्य पृथक् हैं। सृष्टि के बारे में हमारा मत यह है—'वह थी, है और रहेगी।' पाश्चात्य देशवासियों को भारत से एक बात सीखनी है—वह है परधर्म-सहिष्णुता। कोई भी धर्म बुरा नहीं है, क्योंकि सब धर्मों का सार एक ही है।

प्रश्न—भारत की स्त्रियाँ उतनी उन्नत क्यों नहीं हैं?

उत्तर—विभिन्न समयों में अनेक असभ्य जातियों ने भारत पर आक्रमण किया था, प्रधानतः उसीके कारण भारतीय महिलाएँ इतनी अनुन्नत हैं। किन्तु इसमें कुछ दोष तो भारतवासियों के निजी भी हैं।

किसी समय अमेरिका में स्वामी जी से कहा गया था कि हिन्दू धर्म ने कभी किसी अन्य धर्मावलम्बी को अपने धर्म में नहीं मिलाया है। इसके उत्तर में उन्होंने कहा, "जैसे पूर्व के लिए बुद्धदेव के पास एक विशेष सन्देश था, उसी प्रकार पश्चिम के लिए मेरे पास भी एक सन्देश है।"

प्रश्न—आप क्या यहाँ (अमेरिका में) हिन्दू धर्म के क्रियाकलाप, अनुष्ठान आदि को चलाना चाहते हैं?

उत्तर—मैं तो केवल दार्शनिक तत्त्वों का ही प्रचार कर रहा हूँ।

प्रश्न—क्या आपको ऐसा नहीं मालूम होता कि यदि भावी नरक का डर मनुष्य के सामने से हटा दिया जाय तो किसी भी रूप से उसे काबू में रखना असम्भव हो जायगा?

उत्तर—नहीं, बल्कि मैं तो यह समझता हूँ कि भय की अपेक्षा हृदय में प्रेम और आशा का संचार होने से वह अधिक अच्छा हो सकेगा।

२

(स्वामी जी ने २५ मार्च, सन् १८९६ ई० को संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय की 'ग्रेजुएट दार्शनिक सभा' में वेदान्त दर्शन के बारे में एक व्याख्यान दिया था। व्याख्यान समाप्त होने पर श्रोताओं के साथ निम्नलिखित प्रश्नोत्तर हुए।)

प्रश्न—मैं यह जानना चाहता हूँ कि भारत में दार्शनिक चिन्तन की वर्तमान अवस्था कैसी है? इन सब बातों की वहाँ आजकल कहाँ तक आलोचना होती है?

उत्तर—मैंने पहले ही कहा है कि भारत मे अधिकाश लोग द्वैतवादी है। अद्वैतवादियो की सख्या बहुत अल्प है। उस देश मे (भारत मे) आलोचना का प्रधान विषय है मायावाद और जीव-तत्त्व। मैंने इस देश मे आकर देखा कि यहाँ के श्रमिक ससार की वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति से भली भाँति परिचित है, परन्तु जब मैंने उनसे पूछा, 'धर्म कहने से तुम क्या समझते हो, अमुक अमुक सम्प्रदाय का धर्म-मत किस प्रकार का है', तो उन्होंने कहा, 'ये सब बातें हम नही जानते—हम तो बस चर्च मे जाते भर हैं।' परन्तु भारत मे किसी किसान के पास जाकर यदि मैं पूछूँ कि तुम्हारा शासनकर्ता कौन है, तो वह उत्तर देगा, 'यह बात मै नही जानता, मैं तो केवल टैक्स (कर) दे देता हूँ।' पर यदि मैं उससे धर्म के विषय मे पूछूँ, तो वह तत्काल बता देगा कि वह द्वैतवादी है, और माया तथा जीव-तत्त्व के सम्बन्ध मे वह अपनी धारणा को विस्तृत रूप से कहने के लिए भी तैयार हो जायगा। वे लिखना-पढना नही जानते, परन्तु इन बातो को उन्होने साधु-सन्यासियो से सीखा है, और इन विषयो पर विचार करना उन्हे बहुत अच्छा लगता है। दिन भर काम करने के पश्चात् पेड के नीचे बैठकर किसान लोग इन सब तत्त्वो पर विचार किया करते है।

प्रश्न—कट्टर या असल हिन्दू किसे कह सकते हैं? हिन्दू धर्म मे कट्टरता (orthodoxy) का क्या अर्थ है?

उत्तर—वर्तमान काल मे तो खान-पान अथवा विवाह के विषय मे जातिगत विधि-निषेध का पालन करने से ही कट्टर या असल हिन्दू हो जाता है। फिर वह चाहे जिस किसी धर्म-मत मे विश्वास क्यो न करे, कुछ बनता-बिगडता नही। भारत मे कभी भी कोई नियमित धर्मसघ या चर्च नही था, इसलिए कट्टर या असल हिन्दूपन गठित तथा नियमित करने के लिए सघबद्ध रूप से कभी चेष्टा नही हुई। सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि जो वेदो मे विश्वास रखते हैं, वे ही असल या कट्टर हिन्दू हैं। पर वास्तव मे, देखने मे यह आता है कि द्वैतवादी सम्प्रदायो मे से अनेक केवल वेद-विश्वासी न होकर पुराणो मे ही अधिक विश्वास रखते हैं।

प्रश्न—आपके हिन्दू दर्शन ने यूनानियो के स्टोइक दर्शन[1] पर किस प्रकार प्रभाव डाला था?

---

१ सम्भवत ईसा से ३०८ वर्ष पूर्व ग्रीस के दार्शनिक जीनो (Zeno) ने इस दर्शन का प्रचार किया था। इनके मत से, सुख-दु ख, भला-बुरा, सब विषयों मे समभावसम्पन्न रहना और अविचलित रहकर सबको सहना ही मनुष्य जीवन का परम पुरुषार्थ है। स०

उत्तर—बहुत सम्भव है कि उसने सिकन्दरिया निवासियों द्वारा उस पर कुछ प्रभाव डाला था। ऐसा सन्देह किया जाता है कि पाइथागोरस के उपदेशों में सांख्य दर्शन का प्रभाव विद्यमान है। जो हो। हमारी यह धारणा है कि सांख्य दर्शन ही वेदों में निहित दार्शनिक तत्त्वों का युक्ति-विचार द्वारा समन्वय करने का सबसे प्रथम प्रयत्न है। हम वेदों तक में कपिल के नाम का उल्लेख पाते हैं—'ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे।'[1]

—जिन्होंने उस कपिल ऋषि को पहले प्रसव किया था।

प्रश्न—पाश्चात्य विज्ञान के साथ इस मत का विरोध कहाँ पर है?

उत्तर—विरोध कुछ भी नहीं है। बल्कि हमारे इस मत के साथ पाश्चात्य विज्ञान का सादृश्य ही है। हमारा परिणामवाद तथा आकाश और प्राण तत्त्व ठीक आपके आधुनिक दर्शनों के सिद्धान्त के समान है। आपका परिणामवाद या क्रमविकास हमारे योग और सांख्य दर्शन में पाया जाता है। दृष्टान्तस्वरूप देखिए—पतंजलि ने बतलाया है कि प्रकृति के आपूरण के द्वारा एक जाति अन्य जाति में परिणत होती है—'जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात्'। केवल इसकी व्याख्या के विषय में पतंजलि के साथ पाश्चात्य विज्ञान का मतभेद है। पतंजलि की परिणाम की व्याख्या आध्यात्मिक है। वे कहते हैं—जब एक किसान अपने खेत में पानी देने के लिए पास के ही जलाशय से पानी लेना चाहता है तो वह उस पानी को रोक रखनेवाले द्वार को खोल भर देता है—'निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्'। उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य पहले से ही अनन्त है केवल इन सब विभिन्न अवस्था-सम्बन्धी द्वारों या प्रतिबन्धों ने उसे बद्ध कर रखा है। इन प्रतिबन्धों को हटाने मात्र से ही उसकी वह अनन्त शक्ति बड़े वेग के साथ अभिव्यक्त होने लगती है। तिर्यक् योनि में मनुष्यत्व गूढ़ भाव से निहित है अनुकूल परिस्थिति उपस्थित होने पर वह तत्क्षण ही मानव रूप में अभिव्यक्त हो जाता है। उसी प्रकार उपयुक्त सुयोग तथा अवसर उपस्थित होने पर मनुष्य के भीतर जो ईश्वरत्व विद्यमान है वह अपने को अभिव्यक्त कर देता है। इसलिए आधुनिक नूतन मतवादवालों के साथ विवाद करने को विशेष कुछ नहीं है। जैसा इन्द्रियों विषय-प्रत्यक्ष के सिद्धान्त के सम्बन्ध में सांख्य मत के साथ आधुनिक शरीर विज्ञान (Physiology) का बहुत ही थोड़ा मतभेद है।

प्रश्न—परन्तु आप लोगों की पद्धति भिन्न है।

---

१ श्वेताश्वतरोपनिषद् ॥५।२॥

उत्तर—हाँ, हमारे मतानुसार मन की समस्त शक्तियो को एकमुखी करना ही ज्ञान-लाभ का एकमात्र उपाय है। वहिर्विज्ञान मे वाह्य विषयो पर मन को एकाग्र करना होता है और अन्तर्विज्ञान मे मन की गति को आत्माभिमुखी करना पडता है। मन की इस एकाग्रता को ही हम योग कहते हैं।

प्रश्न—एकाग्रता की दशा मे क्या इन सब तत्त्वो का यथार्थ ज्ञान आप ही आप प्रकट होता है?

उत्तर—योगी कहते है कि इस एकाग्रता शक्ति का फल अत्यन्त महान् है। उनका कहना है कि मन की एकाग्रता के वल से ससार के सारे सत्य—वाह्य और अन्तर दोनो जगत् के सत्य—करामलकवत् प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

प्रश्न—अद्वैतवादी सृष्टि-तत्त्व के विषय मे क्या कहते हैं?

उत्तर—अद्वैतवादी कहते है कि यह सारा सृष्टि-तत्त्व तथा इस ससार मे जो कुछ भी है, सव माया के, इस आपातप्रतीयमान प्रपच के अन्तर्गत है। वास्तव मे इस सवका कोई अस्तित्व नही है। परन्तु जव तक हम वद्ध हैं, तव तक हमे यह दृश्य जगत् देखना पडेगा। इस दृश्य जगत् मे घटनाएँ कुछ निर्दिष्ट क्रम के अनुसार घटती रहती हैं। परन्तु उसके परे न कोई नियम है, न क्रम। वहाँ सम्पूर्ण मुक्ति—सम्पूर्ण स्वाधीनता है।

प्रश्न—अद्वैतवाद क्या द्वैतवाद का विरोधी है?

उत्तर—उपनिषद् प्रणालीबद्ध रूप से लिखित न होने के कारण जव कभी दार्शनिको ने किसी प्रणालीबद्ध दर्शनशास्त्र की रचना करनी चाही, तव उन्होंने इन उपनिषदो मे से अपने अभिप्राय के अनुकूल प्रामाणिक वाक्यो को चुन लिया है। इसी कारण सभी दर्शनकारो ने उपनिषदो को प्रमाण रूप से ग्रहण किया है,—अन्यथा उनके दर्शन को किसी प्रकार का आधार ही नही रह जाता। तो भी हम देखते हैं कि उपनिषदो मे सव प्रकार की विभिन्न चिन्तन-प्रणालियाँ विद्यमान हैं। हमारा यह सिद्धान्त है कि अद्वैतवाद द्वैतवाद का विरोधी नही है। हम तो कहते हैं कि चरम ज्ञान मे पहुँचने के लिए जो तीन सोपान हैं, उनमे से द्वैतवाद एक है। धर्म मे सर्वदा तीन सोपान देखने मे आते हैं। प्रथम—द्वैतवाद। उसके वाद मनुष्य अपेक्षाकृत उच्चतर अवस्था मे उपस्थित होता है—वह है विशिष्टाद्वैतवाद। और अन्त मे उसे यह अनुभव होता है कि वह समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड के साथ अभिन्न है। यही चरम दशा अद्वैतवाद है। इसलिए इन तीनो मे परस्पर विरोध नही है, वल्कि वे आपस मे एक दूसरे के सहायक या पूरक हैं।

प्रश्न—माया या अज्ञान के अस्तित्व का क्या कारण है?

उत्तर—कार्य-कारण संघात की सीमा के बाहर 'क्यों' का प्रश्न नहीं पूछा जा सकता। माया-राज्य के भीतर ही 'क्यों' का प्रश्न पूछा जा सकता है। हम कहते हैं कि यदि न्यायशास्त्र के अनुसार यह प्रश्न पूछ सका जाय तभी हम उसका उत्तर देंगे। उसके पहले उसका उत्तर देने का हमें अधिकार नहीं है।

प्रश्न—सगुण ईश्वर क्या माया के अन्तर्गत है?

उत्तर—हाँ पर यह सगुण ईश्वर मायारूपी आवरण के भीतर से परिदृश्यमान उस निर्गुण ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। माया या प्रकृति के अधीन होने पर वही निर्गुण ब्रह्म जीवात्मा कहलाता है और मायाधीश या प्रकृति के नियन्ता के रूप में वही ईश्वर या सगुण ब्रह्म कहलाता है। यदि कोई व्यक्ति सूर्य को देखने के लिए यहाँ से ऊपर की ओर यात्रा करे, तो जब तक वह असल सूर्य के निकट नहीं पहुँचता तब तक वह सूर्य को क्रमशः अधिकाधिक बड़ा ही देखता जायगा। वह जितना ही आगे बढ़ेगा उसे ऐसा मालूम होगा कि वह भिन्न भिन्न सूर्यों को देख रहा है परन्तु वास्तव में वह उसी एक सूर्य को देख रहा है इसमें सन्देह नहीं। इसी प्रकार, हम जो कुछ देख रहे हैं सभी उसी निर्गुण ब्रह्मसत्ता के विभिन्न रूप मात्र हैं इसलिए उस दृष्टि से ये सब सत्य हैं। इनमें से कोई भी मिथ्या नहीं है परन्तु यह कहा जा सकता है कि ये निम्नतर सोपान मात्र हैं।

प्रश्न—उस पूर्ण निरपेक्ष सत्ता को जानने की विशेष प्रणाली कौन सी है?

उत्तर—हमारे मत में दो प्रणालियाँ हैं। उनमें से एक तो अस्तिभावद्योतक या प्रवृत्ति मार्ग है और दूसरी नास्तिभावद्योतक या निवृत्ति मार्ग है। प्रथमोक्त मार्ग से सारा विश्व चलता है—इसी पथ से हम प्रेम के द्वारा उस पूर्ण वस्तु को प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। यदि प्रेम की परिधि अनन्त गुनी बढ़ा दी जाय तो हम उसी विश्व-प्रेम में पहुँच जायँगे। दूसरे पथ में 'नेति' 'नेति' अर्थात् 'यह नहीं' 'यह नहीं' इस प्रकार की साधना करनी पड़ती है। इस साधना में चित्त की जो कोई तरंग मन को बहिर्मुखी बनाने की चेष्टा करती है उसका निवारण करना पड़ता है। अन्त में मन ही मानो मर जाता है तब सत्य स्वयं प्रकाशित हो जाता है। हम इसीको समाधि या ज्ञानातीत अवस्था या पूर्ण ज्ञानावस्था कहते हैं।

प्रश्न—तब तो यह विषयी (ज्ञाता या द्रष्टा) को विषय (ज्ञेय या दृश्य) में डुबा देने की अवस्था हुई?

उत्तर—विषयी को विषय में नहीं वरन् विषय को विषयी में डुबा देने की। वास्तव में यह जगत् विलीन हो जाता है केवल 'मैं' रह जाता है—एकमात्र 'मैं' ही वर्तमान रहता है।

प्रश्न—हमारे कुछ जर्मन दार्शनिको का मत है कि भारतीय भक्तिवाद सम्भवत पाश्चात्य प्रभाव का ही फल है।

उत्तर—इस विषय मे मैं उनसे सहमत नही हूँ। इस प्रकार का अनुमान एक क्षण के लिए भी नही टिक सकता। भारतीय भक्ति पाश्चात्य देशो की भक्ति के समान नही है। भक्ति के सम्बन्ध मे हमारी मुख्य धारणा यह है कि उसमे भय का भाव बिल्कुल ही नही रहता—रहता है केवल भगवान् के प्रति प्रेम। दूसरी बात यह है कि ऐसा अनुमान बिल्कुल अनावश्यक है। भक्ति की बातें हमारी प्राचीनतम उपनिषदो तक मे विद्यमान हैं और ये उपनिषद् ईसाइयो की बाइबिल से बहुत प्राचीन हैं। सहिता मे भी भक्ति का बीज देखने मे आता है। फिर 'भक्ति' शब्द भी कोई पाश्चात्य शब्द नही है। वेद-मन्त्र मे 'श्रद्धा' शब्द का जो उल्लेख है, उसीसे क्रमश भक्तिवाद का उद्भव हुआ था।

प्रश्न—ईसाई धर्म के सम्बन्ध मे भारतवासियो की क्या धारणा है?

उत्तर—बडी अच्छी धारणा है। वेदान्त सभी को ग्रहण करता है। दूसरे देशो की तुलना मे भारत मे हमारी धर्म-शिक्षा का एक विशेषत्व है। मान लीजिए, मेरे एक लडका है। मैं उसे किसी धर्ममत की शिक्षा नही दूंगा, मैं उसे प्राणायाम सिखाऊँगा, मन को एकाग्र करना सिखाऊँगा और थोडी-बहुत सामान्य प्रार्थना की शिक्षा दूंगा, परन्तु वैसी प्रार्थना नही, जैसी आप समझते हैं, वरन् इस प्रकार की कुछ प्रार्थना—'जिन्होंने इस विश्व-ब्रह्माण्ड की सृष्टि की है, मैं उनका ध्यान करता हूँ—वे मेरे मन को ज्ञानालोक से आलोकित करें।'[1] इस प्रकार उसकी धर्म-शिक्षा चलती रहेगी। इसके बाद वह विभिन्न मतावलम्बी दार्शनिको एव आचार्यों के मत सुनता रहेगा। उनमे से जिनका मत वह अपने लिए सबसे अधिक उपयुक्त समझेगा, उन्हीको वह गुरु रूप से ग्रहण करेगा और वह स्वय उनका शिष्य बन जायगा। वह उनसे प्रार्थना करेगा, 'आप जिस दर्शन का प्रचार कर रहे हैं, वही सर्वोत्कृष्ट है, अतएव आप कृपा करके मुझे उसकी शिक्षा दीजिए।'

हमारी मूल बात यह है कि आपका मत मेरे लिए तथा मेरा मत आपके लिए उपयोगी नही हो सकता। प्रत्येक का साधन-पथ भिन्न भिन्न होता है। यह भी हो सकता है कि मेरी लडकी का साधन-मार्ग एक प्रकार का हो, मेरे लडके का दूसरे प्रकार का, और मेरा इन दोनो से बिल्कुल भिन्न प्रकार का। अत प्रत्येक व्यक्ति का इष्ट या निर्वाचित पथ भिन्न भिन्न हो सकता है,—और सब लोग अपने अपने साधन-मार्ग की बातें गुप्त रखते हैं। अपने साधन-पथ के विषय मे केवल

---

१ ॐ तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न प्रचोदयात्।

मैं जानता हूँ और मेरे गुरु—किसी तीसरे व्यक्ति को यह नहीं बताया जाता क्योंकि हम दूसरों से वृथा विवाद करना नहीं चाहते। फिर, इसे दूसरों के पास प्रकट करने से उनका कोई काम नहीं होता क्योंकि प्रत्येक को ही अपना अपना मार्ग चुन लेना पड़ता है। इसीलिए सर्वसाधारण को केवल सर्वसाधारणोपयोगी दर्शन और साधना प्रणाली का ही उपदेश दिया जा सकता है। एक दृष्टान्त लीजिए—अवश्य उसे सुनकर आप हँसेंगे। मान लीजिए, एक पैर पर खड़े रहने से शायद मेरी उन्नति में कुछ सहायता होती हो परन्तु इसी कारण यदि मैं सभी को एक पैर पर खड़े होने का उपदेश देने लगूँ तो क्या यह हँसी की बात न होगी? हो सकता है कि मैं द्वैतवादी होऊँ और मेरी स्त्री अद्वैतवादी। मेरा कोई लड़का इच्छा करे तो ईसा बुद्ध या मुहम्मद का उपासक बन सकता है वे उसके इष्ट हैं। हाँ यह अवश्य है कि उसे अपने जातिगत सामाजिक नियमों का पालन करना पड़ेगा।

प्रश्न—क्या सब हिन्दुओं का जाति-विभाग में विश्वास है?

उत्तर—उन्हें बाध्य होकर जातिगत नियम मानने पड़ते हैं। उनका भले ही उनमें विश्वास न हो पर तो भी वे सामाजिक नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकते।

प्रश्न—इस प्राणायाम और एकाग्रता का अभ्यास क्या सब लोग करते हैं?

उत्तर—हाँ पर कोई कोई लोग बहुत थोड़ा करते हैं—धर्मशास्त्र के आदेश का उल्लंघन न करने के लिए जितना करना पड़ता है, बस उतना ही करते हैं। भारत के मन्दिर यहाँ के गिरजाघरों के समान नहीं हैं। चाहे तो कल ही सारे मन्दिर गायब हो जायें तो भी लोगों को उनका अभाव महसूस नहीं होगा। स्वर्ग की इच्छा से पुत्र की इच्छा से अथवा इसी प्रकार की और किसी कामना से लोग मन्दिर बनवाते हैं। हो सकता है किसीने एक बड़े भारी मन्दिर की प्रतिष्ठा कर उसमें पूजा के लिए दो-चार पुरोहितों को भी नियुक्त कर दिया पर मुझे वहाँ जाने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि मेरा जो कुछ पूजा-पाठ है वह मेरे घर में ही होता है। प्रत्येक घर में एक अलग कमरा होता है, जिसे 'ठाकुर-घर' या 'पूजा-गृह' कहते हैं। दीक्षा-ग्रहण के बाद प्रत्येक बालक या बालिका का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह पहले स्नान करे, फिर पूजा सन्ध्या वन्दनादि। उसकी इस पूजा या उपासना का अर्थ है—प्राणायाम ध्यान तथा किसी मन्त्र विशेष का जप। और एक बात की ओर विशेष ध्यान देना पड़ता है वह है—साधना के समय शरीर को हमेशा सीधा रखना। हमारा विश्वास है कि मन के बल से शरीर को स्वस्थ और सबल रखा जा सकता है। एक व्यक्ति इस प्रकार पूजा

आदि करके चला जाता है, फिर दूसरा आकर वहाँ बैठकर अपना पूजा-पाठ आदि करने लगता है। सभी निम्तव्ध भाव से अपनी अपनी पूजा करके चले जाते है। कभी कभी एक ही कमरे मे तीन-चार व्यक्ति बैठकर उपासना करते है, परन्तु उनमे से हर एक की उपासना-प्रणाली भिन्न भिन्न हो सकती है। इस प्रकार की पूजा प्रतिदिन कम से कम दो बार करनी पडती है।

प्रश्न—आपने जिस अद्वैत-अवस्था के बारे मे कहा है, वह क्या केवल एक आदर्श है, अथवा उसे लोग प्राप्त भी करते है?

उत्तर—हम कहते हैं कि वह यथार्थ है—हम कहते है कि वह अवस्था उपलब्ध होती है। यदि वह केवल थोथी बात हो, तब तो उसका कुछ भी मूल्य नही। उस तत्त्व की उपलब्धि करने के लिए वेदो मे तीन उपाय बतलाये गये है—श्रवण, मनन और निदिध्यासन। इस आत्म-तत्त्व के विषय मे पहले श्रवण करना होगा। श्रवण करने के बाद इस विषय पर विचार करना होगा—आँखें मूंदकर विश्वास न कर, अच्छी तरह विचार करके समझ-बूझकर उस पर विश्वास करना होगा। इस प्रकार अपने सत्यस्वरूप पर विचार करके उसके निरन्तर ध्यान मे नियुक्त होना होगा, तब उसका साक्षात्कार होगा। यह प्रत्यक्षानुभूति ही यथार्थ धर्म है। केवल किसी मतवाद को स्वीकार कर लेना धर्म का अग नही है। हम तो कहते हैं कि यह समाधि या ज्ञानातीत अवस्था ही धर्म है।

प्रश्न—यदि आप कभी इस समाधि अवस्था को प्राप्त कर लें, तो क्या आप उसका वर्णन भी कर सकेंगे?

उत्तर—नही, परन्तु समाधि अवस्था या पूर्ण ज्ञान की अवस्था प्राप्त हुई है या नही, इस बात को हम जीवन के ऊपर उसके फलाफल को देखकर जान सकते है। एक मूर्ख व्यक्ति जब सोकर उठता है, तो वह पहले जैसा मूर्ख था, अब भी वैसा ही मूर्ख रहता है, शायद पहले से और भी खराब हो सकता है। परन्तु जब कोई व्यक्ति समाधि मे स्थित होता है, तो वहाँ से व्युत्थान के बाद वह एक तत्त्वज्ञ, साधु, महापुरुष हो जाता है। इसीसे स्पष्ट है कि ये दोनो अवस्थाएँ कितनी भिन्न भिन्न है।

प्रश्न—मै प्राध्यापक—के प्रश्न का सूत्र पकडते हुए यह पूछना चाहता हूँ कि क्या आप ऐसे लोगो के विषय में जानते हैं, जिन्होंने आत्म-सम्मोहन विद्या (self-hypnotism) का कुछ अध्ययन किया है? अवश्य ही प्राचीन भारत मे इस विद्या की बहुत चर्चा होती थी—पर अब उतनी दिखायी नही देती। मैं जानना चाहता हूँ कि जो लोग आजकल उसकी चर्चा और साधना करते हैं, उनका इस विद्या के विषय मे क्या कहना है, और वे इसका अभ्यास या साधना किस तरह करते हैं।

उत्तर—आप पाश्चात्य देश में जिसे सम्मोहन-विद्या कहते हैं, वह तो असली व्यापार का एक सामान्य अंग मात्र है। हिन्दू लोग उसे आत्मापसम्मोहन (self de-hypnotisation) कहते हैं। वे कहते हैं आप तो पहले से ही सम्मोहित (hypnotised) हैं—इस सम्मोहित-भाव को दूर करना होगा अपसम्मोहित (de-hypnotised) होना होगा—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥[1]

—'वहाँ सूर्य प्रकाशित नहीं होता चन्द्र तारक विद्युत् भी नहीं—तो फिर इस सामान्य अग्नि की बात ही क्या! उन्हीं के प्रकाश से समस्त प्रकाशित हो रहा है।'

यह तो सम्मोहन (hypnotism) नहीं है—यह तो अपसम्मोहन (de-hypnotisation) है। हम कहते हैं कि वह प्रत्येक धर्म जो इस प्रपंच की सत्यता की शिक्षा देता है एक प्रकार से सम्मोहन का प्रयोग कर रहा है। केवल अद्वैतवादी ही ऐसे हैं जो सम्मोहित होना नहीं चाहते। एकमात्र अद्वैतवादी ही समझते हैं कि सभी प्रकार के द्वैतवाद से सम्मोहन या मोह उत्पन्न होता है। इसीलिए अद्वैतवादी कहते हैं वेदों को भी अपरा विद्या समझकर उनके अतीत हो जाओ सगुण ईश्वर के भी परे चले जाओ सारे विश्वब्रह्माण्ड को भी दूर फेंक दो इतना ही नहीं अपने शरीर-मन आदि को भी पार कर जाओ—कुछ भी शेष न रहने पाय तभी तुम सम्पूर्ण रूप से मोह से मुक्त होओगे।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन॥[2]

—मन के सहित वाणी जिसे न पाकर जहाँ से लौट आती है उस ब्रह्म के आनन्द को जानने पर फिर किसी प्रकार का भय नहीं रह जाता।' यही अपसम्मोहन है।

---

१ कठोपनिषद् ॥२।२।१५॥
२ तैत्तिरीयोपनिषद् ॥२।४।१॥

न पुण्य न पाप न सौख्य न दु खम्
न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञा ।
अह भोजन नैव भोज्य न भोक्ता
चिदानन्दरूप शिवोऽह शिवोऽहम् ॥

—'मेरे न कोई पुण्य है, न पाप, न सुख है, न दु ख, मेरे लिए मन्त्र, तीर्थ वेद या यज्ञ कुछ भी नही है। मैं भोजन, भोज्य या भोक्ता कुछ भी नही हूँ—मैं तो चिदानन्दरूप शिव हूँ, मैं ही शिव (मगलस्वरूप) हूँ।'[1]

हम लोग सम्मोहन-विद्या के सारे तत्त्व जानते है। हमारी जो मनस्तत्त्व-विद्या है, उसके विषय मे पाश्चात्य देशवालो ने हाल ही मे थोडा थोडा जानना प्रारम्भ किया है, परन्तु दु ख की बात है कि अभी तक वे उसे पूर्ण रूप से नही जान सके हैं।

प्रश्न—आप लोग 'ऐस्ट्रल बॉडी' (astral body) किसे कहते हैं ?

उत्तर—हम उसे लिंग-शरीर कहते है। जब इस देह का नाश होता है, तब दूसरे शरीर का ग्रहण किस प्रकार होता है ? जड-भूत को छोडकर शक्ति नही रह सकती। इसलिए सिद्धान्त यह है कि देहत्याग होने के पश्चात् भी सूक्ष्म-भूत का कुछ अश हमारे साथ रह जाता है। भीतर की इन्द्रियाँ इस सूक्ष्म-भूत की सहायता से और एक नूतन देह तैयार कर लेती है, क्योकि प्रत्येक ही अपनी अपनी देह बना रहा है—मन ही शरीर को तैयार करता है। यदि मैं साधु बनूं, तो मेरा मस्तिष्क साधु के मस्तिष्क मे परिणत हो जायगा। योगी कहते है कि वे इसी जीवन मे अपने शरीर को देव-शरीर मे परिणत कर सकते हैं।

योगी अनेक चमत्कार दिखाते हैं। कोरे मतवादो की राशि की अपेक्षा अल्प अभ्यास का मूल्य अधिक है। अतएव मुझे यह कहने का अधिकार नही है कि अमुक अमुक बातें घटती मैंने नही देखी, इसलिए वे मिथ्या हैं। योगियो के ग्रन्थो मे लिखा है कि अभ्यास के द्वारा सब प्रकार के अति अद्भुत फलो की प्राप्ति हो सकती है। नियमित रूप से अभ्यास करने पर अल्प काल मे ही थोडे-बहुत फल की प्राप्ति हो जाती है, जिससे यह जाना जा सकता है कि इसमे कुछ कपट या धोखेबाजी नही है। और इन सब शास्त्रो मे जिन अलौकिक बातो का उल्लेख है, योगी वैज्ञानिक रीति से उनकी व्याख्या करते हैं। अब प्रश्न यह है कि ससार की सभी जातियो मे इस प्रकार के अलौकिक कार्यों का विवरण कैसे लिपिबद्ध किया गया ? जो व्यक्ति कहता है कि ये सब मिथ्या हैं, अत इनकी व्याख्या करने

१ निर्वाणषट्कम् ॥४॥

की कोई आवश्यकता नहीं उसे युक्तिवादी विचारक नहीं कहा जा सकता। जब तक आप उन बातों को भ्रमात्मक प्रमाणित नहीं कर सकते तब तक उन्हें अस्वीकार करने का अधिकार आपको नहीं है। आपको यह प्रमाणित करना होगा कि इन सबका कोई आधार नहीं है, तभी उनको अस्वीकार करने का अधिकार आपको होगा। परन्तु आप लोगों ने तो ऐसा किया नहीं। दूसरी ओर, योगी कहते हैं कि ये सब व्यापार वास्तव में अद्भुत नहीं हैं और वे इस बात का दावा करते हैं कि ऐसी क्रियाएँ वे अभी भी कर सकते हैं। भारत में आज भी अनेक अद्भुत घटनाएँ होती रहती हैं परन्तु उनमें से कोई भी किसी चमत्कार द्वारा नहीं घटती। इस विषय पर अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं। जो हो यदि वैज्ञानिक रूप से मनस्तत्त्व की आलोचना करने के प्रयत्न को छोड़कर इस दिशा में अधिक और कुछ न हुआ हो तो भी इसका सारा श्रेय योगियों को ही देना चाहिए।

प्रश्न—योगी क्या क्या चमत्कार दिखा सकते हैं इसके उदाहरण क्या आप दे सकते हैं?

उत्तर—योगियों का कथन है कि अन्य किसी विज्ञान की चर्चा करने के लिए जितने विश्वास की आवश्यकता होती है, योग विद्या के निमित्त उससे अधिक विश्वास की जरूरत नहीं। किसी विषय को स्वीकार करने के बाद एक भद्र व्यक्ति उसकी सत्यता की परीक्षा के लिए जितना विश्वास करता है उससे अधिक विश्वास करने को योगी लोग नहीं कहते। योगी का आदर्श अतिशय उच्च है। मन की शक्ति से जो सब कार्य हो सकते हैं उनमें से निम्नतर कुछ कार्यों को मैंने प्रत्यक्ष देखा है अतः मैं इस पर अविश्वास नहीं कर सकता कि उच्चतर कार्य भी मन की शक्ति द्वारा हो सकते हैं। योगी का आदर्श है—सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता की प्राप्ति कर उनकी सहायता से शाश्वत शान्ति और प्रेम का अधिकारी हो जाना। मैं एक योगी को जानता हूँ जिन्हें एक बड़े विषैले सर्प ने काट लिया था। सर्पदंश होते ही वे बेहोश हो जमीन पर गिर पड़े। सन्ध्या के समय वे होश में आये। उनसे जब पूछा गया कि क्या हुआ था तो वे बोले 'मेरे प्रियतम के पास से एक दूत आया था।' इन महात्मा की सारी घृणा क्रोध और हिंसा का भाव पूर्ण रूप से दग्ध हो चुका है। कोई भी चीज उन्हें बदला लेने के लिए प्रवृत्त नहीं कर सकती। वे सर्वदा अनन्त प्रेमस्वरूप हैं और प्रेम की शक्ति से सर्वशक्तिमान हो गये हैं। बस ऐसा व्यक्ति ही यथार्थ योगी है, और यह सब शक्तियों का विकास—अनेक प्रकार के चमत्कार दिखलाना—गौण मात्र है। यह सब प्राप्त कर लेना योगी का लक्ष्य नहीं है। योगी कहते हैं कि योगी के अतिरिक्त अन्य सब मानो गुलाम हैं—खाने-पीने के गुलाम अपनी स्त्री के गुलाम अपने लड़के-बच्चों के गुलाम रुपया-पैसे के

गुलाम, स्वदेशवासियो के गुलाम, नाम-यश के गुलाम, जलवायु के गुलाम, इस ससार के हज़ारो विषयो के गुलाम। जो मनुष्य इन बन्धनो मे से किसीमे भी नही फँसे, वे ही यथार्थ मनुष्य हैं—यथार्थ योगी है।

**इहैव तैर्जित सर्गो येषा साम्ये स्थित मन'।**
**निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥[1]**

—'जिनका मन साम्यभाव मे अवस्थित है, उन्होने यही ससार पर जय प्राप्त कर ली है। ब्रह्म निर्दोष और समभावापन्न है, इसलिए वे ब्रह्म मे अवस्थित हैं।'

प्रश्न—क्या योगी जाति-भेद को विशेष आवश्यक समझते हैं?

उत्तर—नही, जाति-विभाग तो उन लोगो को, जिनका मन अभी अपरिपक्व है, शिक्षा प्रदान करने का एक विद्यालय मात्र है।

प्रश्न—इस समाधि-तत्त्व के साथ भारत की गर्म जलवायु का तो कुछ सम्बन्ध नही है?

उत्तर—मैं तो ऐसा नही समझता। कारण, समुद्र-धरातल से पन्द्रह हज़ार फीट की ऊँचाई पर, सुमेरु के समान जलवायुवाले हिमालय मे ही तो योगविद्या का उद्भव हुआ था।

प्रश्न—ठण्डी जलवायु मे क्या योग मे सिद्धि प्राप्त हो सकती है?

उत्तर—हाँ, अवश्य हो सकती है। और ससार मे इसकी प्राप्ति जितनी सम्भव है, उतनी सम्भव और कुछ भी नही है। हम कहते है, आप लोग—आपमें से प्रत्येक, जन्म से ही वेदान्ती है। आप अपने जीवन के प्रत्येक मुहूर्त मे ससार की प्रत्येक वस्तु के साथ अपने एकत्व की घोषणा कर रहे हैं। जब कभी आपका हृदय ससार के कल्याण के लिए उन्मुख होता है, तभी आप अनजान मे सच्चे वेदान्तवादी हो जाते हैं। आप नीतिपरायण हैं, पर यह नही जानते कि आप क्यो नीतिपरायण हो रहे हैं। एकमात्र वेदान्त दर्शन ही नीति-तत्त्व का विश्लेषण कर मनुष्य को ज्ञानपूर्वक नीतिपरायण होने की शिक्षा देता है। वह सब धर्मों का सारस्वरूप है।

प्रश्न—आपके मत मे क्या हम पाश्चात्यो मे ऐसा कुछ असामाजिक भाव है, जिसके कारण हम इस तरह बहुवादी और भेदपरायण बन रहे हैं, और जिसके अभाव के कारण प्राच्य देश के लोग हमसे अधिक सहानुभूतिसम्पन्न हैं?

---

१. गीता ॥५।१९॥

उत्तर—मेरे मत में पाश्चात्य जाति अधिक निर्दय स्वभाव की है और प्राच्य देश के लोग सब भूतों के प्रति अधिक दयासम्पन्न हैं। परन्तु इसका कारण यही है कि आपकी सभ्यता बहुत ही आधुनिक है। किसीके स्वभाव को दयालु बनाने के लिए समय की आवश्यकता होती है। आपमें शक्ति काफ़ी है परन्तु जिस मात्रा में शक्ति का संचय हो रहा है, उस मात्रा में हृदय का विकास नहीं हो पा रहा है। विशेषकर मन संयम का अभ्यास बहुत ही अल्प परिमाण में हुआ है। आपको साधु और शान्त प्रकृति बनने में बहुत समय लगेगा। पर भारत वासियों के प्रत्येक रक्त-बिन्दु में यह भाव प्रवाहित हो रहा है। यदि मैं भारत के किसी गाँव में जाकर वहाँ के लोगों को राजनीति की शिक्षा देनी चाहूँ तो वे उसे नहीं समझेंगे। परन्तु यदि मैं उन्हें वेदान्त का उपदेश दूँ तो वे कहेंगे 'हाँ स्वामी जी अब हम आपकी बात समझ रहे हैं—आप ठीक ही कह रहे हैं। आज भी भारत में सर्वत्र यह वैराग्य या अनासक्ति का भाव देखने में आता है। आज हमारा बहुत पतन हो गया है परन्तु अभी भी वैराग्य का प्रभाव इतना अधिक है कि राजा भी अपने राज्य को त्यागकर, साथ में कुछ भी न लेता हुआ देश में सर्वत्र पर्यटन करेगा।

कहीं कहीं पर गाँव की एक साधारण लड़की भी अपने चरखे से सूत कातते समय कहती है—मुझे द्वैतवाद का उपदेश मत सुनाओ मेरा चरखा तक 'सोऽहं' 'सोऽहं' कह रहा है। इन लोगों के पास जाकर उनसे वार्तालाप कीजिए और उनसे पूछिए कि जब तुम इस प्रकार 'सोऽहं' कहते हो तो फिर उस पत्थर को प्रणाम क्यों करते हो? इसके उत्तर में वे कहेंगे आपकी दृष्टि में तो धर्म एक मतवाद मात्र है पर हम तो धर्म का अर्थ प्रत्यक्षानुभूति ही समझते हैं। उनमें से कोई शायद कहेगा 'मैं तो तभी यथार्थ वेदान्तवादी होऊँगा जब सारा संसार मेरे सामने से अन्तर्हित हो जायगा जब मैं सत्य के दर्शन कर लूँगा। जब तक मैं उस स्थिति में नहीं पहुँचता तब तक मुझमें और एक साधारण अज्ञ व्यक्ति में कोई अन्तर नहीं है। यही कारण है कि मैं पत्थर-मूर्ति की उपासना कर रहा हूँ मन्दिर में जाता हूँ जिससे मुझे प्रत्यक्षानुभूति हो जाय। मैंने वेदान्त का श्रवण किया तो है, पर मैं अब उस वेदान्त प्रतिपाद्य आत्म-तत्त्व को देखना चाहता हूँ—उसका प्रत्यक्ष अनुभव कर लेना चाहता हूँ।

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये॥[1]

---

१ विवेकचूडामणि ॥५८॥

—'धाराप्रवाह रूप से मनोरम सद्वाक्यो की योजना, शास्त्रो की व्याख्या करने के नाना प्रकार के कौशल—ये केवल पण्डितो के आमोद के लिए ही हैं, इनके द्वारा मुक्ति-लाभ की कोई सम्भावना नही है।' ब्रह्म के साक्षात्कार से ही हमे उस मुक्ति की प्राप्ति होती है।

प्रश्न—आध्यात्मिक विषय मे जब सर्वसाधारण के लिए इस प्रकार की स्वाधीनता है, तो क्या इस स्वाधीनता के साथ जाति-भेद का मानना मेल खाता है?

उत्तर—कदापि नही। लोग कहते हैं कि जाति-भेद नही रहना चाहिए, इतना ही नही, बल्कि जो लोग भिन्न भिन्न जातियो के अन्तर्गत हैं, वे भी कहते हैं कि जाति-विभाग कोई बहुत उच्च स्तर की चीज नही है। पर साथ ही वे यह भी कहते हैं कि यदि तुम इससे अच्छी कोई अन्य वस्तु हमे दो, तो हम इसे छोड देंगे। वे पूछते हैं कि तुम इसके बदले हमे क्या दोगे? जाति-भेद कहाँ नही है, बोलो? आप भी तो अपने देश मे इसी प्रकार के एक जाति-विभाग की सृष्टि करने का प्रयत्न सर्वदा कर रहे हैं। जब कोई व्यक्ति कुछ अर्थ सग्रह कर लेता है, तो वह कहने लगता है कि 'मैं भी तुम्हारे चार सौ धनिको मे से एक हूँ।' केवल हमी लोग एक स्थायी जाति-विभाग का निर्माण करने मे सफल हुए हैं। अन्य देशवाले इस प्रकार के स्थायी जाति-विभाग की स्थापना के लिए प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु वे सफल नही हो पा रहे है। यह सच है कि हमारे समाज मे काफी कुसस्कार और बुरी बाते है, पर क्या आपके देश के कुसस्कारो तथा बुरी बातो को हमारे देश मे प्रचलित कर देने से ही सब ठीक हो जायगा? जाति-भेद के कारण ही तो आज भी हमारे देश के तीस करोड लोगो को खाने के लिए रोटी का एक टुकडा मिल रहा है। हाँ, यह सच है कि रीति-नीति की दृष्टि से इसमे अपूर्णता है। पर यदि यह जाति-विभाग न होता, तो आज आपको एक भी सस्कृत ग्रन्थ पढ़ने के लिए न मिलता। इसी जाति-विभाग के द्वारा ऐसी मजबूत दीवालो की सृष्टि हुई थी, जो शत शत बाहरी चढाइयो के बावजूद भी नही गिरी। आज भी वह प्रयोजन मिटा नही है, इसीलिए अभी तक जाति-विभाग बना हुआ है। सात सौ वर्ष पहले जाति-विभाग जैसा था, आज वह वैसा नही है। उस पर जितने ही आघात होते गये, वह उतना ही दृढ होता गया। क्या आप यह नही जानते कि केवल भारत ही एक ऐसा राष्ट्र है, जो दूसरे राष्ट्रो पर विजय प्राप्त करने अपनी सीमा से बाहर कभी नही गया? महान् सम्राट् अशोक यह विशेष रूप से कह गये थे कि उनके कोई भी उत्तराधिकारी परराष्ट्र विजय के लिए प्रयत्न न करें। यदि कोई अन्य जाति हमारे यहाँ प्रचारक भेजना चाहती है, तो भेजे, पर वह हमारी वास्तविक सहायता ही करे, जातीय सम्पत्ति-

स्वरूप हमारा जो धर्म-भाव है, उसे क्षति न पहुँचावे। ये सब विभिन्न जातियाँ हिन्दू जाति पर विजय प्राप्त करने के लिए क्यों आयी? क्या हिन्दुओं ने अन्य जातियों का कुछ अनिष्ट किया था? बल्कि जहाँ तक सम्भव था, उन्होंने संसार का उपकार ही किया था। उन्होंने संसार को विज्ञान, दर्शन और धर्म की शिक्षा दी, तथा संसार की अनेक असभ्य जातियों को सभ्य बनाया। परन्तु उसके बदले में उनको क्या मिला?—रक्तपात! अत्याचार!! और दुष्ट 'काफ़िर' यह घृण नाम!!! वर्तमान काल में भी पाश्चात्य व्यक्तियों द्वारा लिखित भारत सम्बन्धी ग्रन्थों को पढ़कर देखिए तथा यहाँ (भारत में) भ्रमण करने के लिए जो लोग गये थे, उनके द्वारा लिखित आख्यायिकाओं को पढ़िए। आप देखेंगे, उन्होंने भी हिन्दुओं को 'हिदन' कहकर गालियाँ दी हैं। मैं पूछता हूँ, भारतवासियों ने ऐसा कौन सा अनिष्ट किया है, जिसके प्रतिशोध में उनके प्रति इस प्रकार की लांछनपूर्ण बातें कही जाती हैं?

प्रश्न—सभ्यता के विषय में वेदान्त की क्या धारणा है?

उत्तर—आप दार्शनिक लोग हैं—आप यह नहीं मानते कि रुपये की थैली पास रहने से ही मनुष्य मनुष्य में कुछ भेद उत्पन्न हो जाता है। इन सब कल-कारखानों और जड़-विज्ञानों का मूल्य क्या है? उनका तो बस एक ही फल देखने में आता है—वे सर्वत्र नाश का विस्तार करते हैं। आप अभाव अथवा दारिद्र्य की समस्या को हल नहीं कर सके, बल्कि आपने तो अभाव की मात्रा और भी बढ़ा दी है। यन्त्रों की सहायता से 'दारिद्र्य-समस्या' का कभी समाधान नहीं हो सकता। उनके द्वारा जीवन-संग्राम और भी तीव्र हो जाता है, प्रतियोगिता और भी बढ़ जाती है। जड़-प्रकृति का क्या कोई स्वतन्त्र मूल्य है? कोई व्यक्ति यदि तार के माध्यम से बिजली का प्रवाह भेज सकता है, तो आप उसी समय उसका स्मारक बनाने के लिए उद्यत हो जाते हैं। क्यों! क्या प्रकृति स्वयं यह कार्य लाखों बार नित्य नहीं करती? प्रकृति में सब कुछ क्या पहले से ही विद्यमान नहीं है? आपको उसकी प्राप्ति हुई भी, तो उससे क्या काम? वह तो पहले से ही वहाँ वर्तमान है। उसका एकमात्र मूल्य यही है कि वह हमें भीतर से उन्नत बनाता है। यह जगत् मानो एक व्यायामशाला के सदृश है—इसमें जीवात्माएँ अपने अपने कर्म के द्वारा अपनी अपनी उन्नति कर रही हैं और इसी उन्नति के फलस्वरूप हम देवस्वरूप या ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं। अतः किस विषय में ईश्वर की कितनी अभिव्यक्ति है, यह जानकर ही उस विषय का मूल्य या सार निर्धारित करना चाहिए। सभ्यता का अर्थ है, मनुष्य में इसी ईश्वरत्व की अभिव्यक्ति।

प्रश्न—क्या बौद्धो मे भी किसी प्रकार का जाति-विभाग है?

उत्तर—बौद्धो मे कभी कोई विशेष जाति-विभाग नही था, और भारत मे बौद्धो की सख्या भी बहुत थोडी है। बुद्ध एक समाज-सुधारक थे। फिर भी मैंने बौद्ध देशो मे देखा है, वहाँ जाति-विभाग की सृष्टि करने के बहुत प्रयत्न होते रहे हैं, पर उसमे सफलता नही मिली। बौद्धो का जाति-विभाग वास्तव मे नही जैसा ही है, परन्तु मन ही मन वे स्वय को उच्च जाति मानकर गर्व करते हैं।

बुद्ध एक वेदान्तवादी सन्यासी थे। उन्होंने एक नये सम्प्रदाय की स्थापना की थी, जैसे कि आजकल नये नये सम्प्रदाय स्थापित होते हैं। जो सब भाव आजकल बौद्ध धर्म के नाम से प्रचलित हैं, वे वास्तव मे बुद्ध के अपने नहीं थे। वे तो उनसे भी बहुत प्राचीन थे। बुद्ध एक महापुरुष थे—उन्होने इन भावो मे शक्ति का सचार कर दिया था। बौद्ध धर्म का सामाजिक भाव ही उसकी नवीनता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय ही सदा से हमारे आचार्य रहे है। उपनिषदो मे से अधिकाश तो क्षत्रियो द्वारा रचे गये हैं, और वेदो का कर्मकाण्ड भाग ब्राह्मणो द्वारा। समग्र भारत मे हमारे जो बडे बडे आचार्य हो गये हैं, उनमे से अधिकाश क्षत्रिय थे, और उनके उपदेश भी बडे उदार और सार्वजनीन हैं, परन्तु केवल दो ब्राह्मण आचार्यों को छोडकर शेष सब ब्राह्मण आचार्य अनुदार भावसम्पन्न थे। भगवान् के अवतार के रूप मे पूजे जानेवाले राम, कृष्ण, बुद्ध—ये सभी क्षत्रिय थे।

प्रश्न—सम्प्रदाय, अनुष्ठान, शास्त्र—ये सब क्या तत्त्व की उपलब्धि में सहायक हैं?

उत्तर—तत्त्व-साक्षात्कार हो जाने पर मनुष्य सब कुछ छोड देता है। विभिन्न सम्प्रदाय, अनुष्ठान, शास्त्र आदि की वही तक उपयोगिता है, जहाँ तक वे उस पूर्णत्व की अवस्था मे पहुँचने के लिए सहायक हैं। परन्तु जब उनसे कोई सहायता नही मिल पाती, तब अवश्य उनमे परिवर्तन करना चाहिए।

सक्ता. कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वास्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसग्रहम् ॥
न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञाना कर्मसगिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान् युक्त समाचरन् ॥[1]

—अर्थात् 'ज्ञानी व्यक्ति को कभी भी अज्ञानी की अवस्था के प्रति घृणा प्रदर्शित नहीं करनी चाहिए और न उनकी अपनी अपनी साधन-प्रणाली मे उनके विश्वास

१ गीता ॥३।२५–६॥

को नष्ट ही करना चाहिए, बल्कि ज्ञानी व्यक्ति को चाहिए कि वह उनको ठीक ठीक मार्ग प्रदर्शित करे, जिससे वे उस अवस्था में पहुँच जायँ जहाँ वह स्वयं पहुँचा हुआ है।

प्रश्न—वेदान्त 'व्यक्तित्व'[1] (individuality) और नीतिशास्त्र की व्याख्या किस प्रकार करता है?

उत्तर—वह पूर्ण ब्रह्म यथार्थ अविभाज्य व्यक्तित्व ही है—*माया द्वारा उसने* पृथक पृथक् व्यक्ति के आकार धारण किये हैं। केवल ऊपर से ही इस प्रकार का बोध हो रहा है, पर वास्तव में वह सर्वदा वही पूर्ण ब्रह्मस्वरूप है। वास्तव में सत्ता एक है, पर माया के कारण वह विभिन्न रूपों में प्रतीत हो रही है। यह समस्त भेद-बोध माया में है। पर इस माया के भीतर भी सर्वदा उसी एक की ओर लौट जाने की प्रवृत्ति बनी हुई है। प्रत्येक राष्ट्र के समस्त नीतिशास्त्र और समस्त आचरणशास्त्र में यही प्रवृत्ति अभिव्यक्त हुई है, क्योंकि यह तो जीवात्मा का स्वभावगत प्रयोजन है। यह उसी एकत्व की प्राप्ति के लिए प्रयत्न कर रही है—और एकत्व लाभ के इस संघर्ष को हम नीतिशास्त्र और आचरण-शास्त्र कहते हैं। इसीलिए हमें सर्वदा उन्हें अभ्यास करना चाहिए।

प्रश्न—नीतिशास्त्र का अधिकांश भाग क्या विभिन्न व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध को ही लेकर नहीं है?

उत्तर—नीतिशास्त्र एकदम यही है। पूर्ण ब्रह्म कभी माया की सीमा के भीतर नहीं आ सकता।

प्रश्न—आपने कहा कि 'मैं' ही वह पूर्ण ब्रह्म है—मैं आपसे पूछनेवाला था कि इस 'मैं' या 'अहं' का कोई ज्ञान रहता है या नहीं?

उत्तर—यह 'अहं' या 'मैं' उसी पूर्ण ब्रह्म की *अभिव्यक्ति* है, और इस अभिव्यक्त दशा में उसमें जो प्रकाश-शक्ति कार्य कर रही है, उसीको हम 'ज्ञान' कहते हैं। इसलिए उस पूर्ण ब्रह्म के ज्ञानस्वरूप में 'ज्ञान' शब्द का प्रयोग ठीक नहीं है, क्योंकि वह पूर्णावस्था तो इस सापेक्ष ज्ञान के परे है।

प्रश्न—यह सापेक्ष ज्ञान क्या पूर्ण ज्ञान के अन्तर्गत है?

---

१ अंग्रेजी के individual शब्द में 'अ-विभाज्य' और 'व्यष्टि' दोनों भाव निहित हैं। स्वामी जी जब उत्तर में कहते हैं कि 'ब्रह्म ही यथार्थ individual है', तब प्रथमोक्त भाव को अर्थात् उपचय-अपचय-हीन अविभाज्यता को वे व्यक्त करते हैं। फिर वे कहते हैं कि उस सत्ता ने माया के कारण पृथक पृथक व्यक्ति के आकार धारण किये हैं। स

उत्तर—सुकृत द्वारा। सुकृत दो प्रकार के हैं सकारात्मक और नकारात्मक। 'चोरी मत करो'—यह नकारात्मक निर्देश है, 'परोपकार करो'—यह सकारात्मक है।

प्रश्न—परोपकार उच्च अवस्था मे क्यो न किया जाय, क्योंकि निम्न अवस्था मे वैसा करने से साधक भवबन्धन मे पड सकता है?

उत्तर—प्रथम अवस्था मे ही इसे करना चाहिए। आरम्भ मे जिसे कोई कामना रहती है, वह भ्रान्त होता है और बन्धन मे पडता है, अन्य लोग नही। धीरे धीरे यह बिल्कुल स्वाभाविक बन जायगा।

प्रश्न—स्वामी जी! कल रात आपने कहा था, 'तुममे सब कुछ है।' तब यदि मैं विष्णु जैसा बनना चाहूँ, तो क्या मुझे केवल इस मनोरथ का ही चिन्तन करना चाहिए अथवा विष्णु रूप का ध्यान करना चाहिए?

उत्तर—सामर्थ्य के अनुसार इनमे से किसी मार्ग का अनुसरण किया जा सकता है।

प्रश्न—आत्मानुभूति का साधन क्या है?

उत्तर—गुरु ही आत्मानुभूति का साधन है। 'गुरु बिनु होइ कि ज्ञान।'

प्रश्न—कुछ लोगो का कहना है कि ध्यान लगाने के लिए किसी पूजा-गृह मे बैठने की आवश्यकता नही है। यह कहाँ तक ठीक है?

उत्तर—जिन्होंने प्रभु की विद्यमानता का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उनके लिए इसकी आवश्यकता नहीं है, लेकिन औरो के लिए है। किन्तु साधक को सगुण ब्रह्म की उपासना से ऊपर उठकर निर्गुण ब्रह्म की उपासना की ओर अग्रसर होना चाहिए, क्योंकि सगुण या साकार उपासना से मोक्ष नही मिल सकता। साकार के दर्शन से आपको सासारिक समृद्धि प्राप्त हो सकती है। जो माता की भक्ति करता है, वह इस दुनिया मे सफल होता है, जो पिता की पूजा करता है, वह स्वर्ग जाता है, किन्तु जो साधु की पूजा करता है, वह ज्ञान तथा भक्ति लाभ करता है।

प्रश्न—इसका क्या अर्थ है **क्षणमिह सज्जन सगतिरेका** आदि—'सत्सग का एक क्षण भी मनुष्य को इस भवलोक के परे ले जाता है'?

उत्तर—सच्चे साधु के सम्पर्क मे आने पर सत्पात्र मुक्तावस्था प्राप्त कर लेता है। सच्चे साधु विरले होते है, किन्तु उनका प्रभाव इतना होता है कि एक महान् लेखक ने लिखा है, 'पाखड वह कर है, जो दुष्टता सज्जनता को देती है।' दुष्ट जन सज्जन होने का ढोग करते है। किन्तु अवतार कपाल-मोचन होते हैं, अर्थात् वे लोगो का दुर्भाग्य पलट सकते हैं। वे सारे विश्व को हिला सकते

प्रश्न—क्या गीता में श्री कृष्ण के विश्व रूप में जिस दिव्य ऐश्वर्य का दर्शन कराया गया है, वह श्री कृष्ण के रूप में निहित अन्य सगुण उपाधियों के बिना गोपियों से उनके सम्बन्ध में व्यक्त प्रेम भाव के प्रकाश से श्रेष्ठतर है?

उत्तर—दिव्य ऐश्वर्य के प्रकाश की अपेक्षा निश्चय ही वह प्रेम हीनतर है जो प्रिय के प्रति भगवद्भावना से रहित हो। यदि ऐसा न होता, तो हाड़-मांस के शरीर से प्रेम करनेवाले सभी लोग मोक्ष प्राप्त कर लेते।

८

(गुरु, अवतार, योग, जप, सेवा)

प्रश्न—वेदान्त के लक्ष्य तक कैसे पहुँचा जा सकता है?

उत्तर—श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा। किसी सद्गुरु से ही श्रवण करना चाहिए। चाहे कोई नियमित रूप से शिष्य न हुआ हो, पर अगर जिज्ञासु सुपात्र है और वह सद्गुरु के शब्दों का श्रवण करता है, तो उसकी मुक्ति हो जाती है।

प्रश्न—सद्गुरु कौन है?

उत्तर—सद्गुरु वह है, जिसे गुरु-परम्परा से आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त हुई है। आध्यात्मिक गुरु का कार्य बड़ा कठिन है। दूसरों के पापों को स्वयं अपने ऊपर लेना पड़ता है। कम समुन्नत व्यक्तियों के पतन की पूरी आशंका रहती है। यदि शारीरिक पीड़ा मात्र हो, तो उसे अपने को भाग्यवान समझना चाहिए।

प्रश्न—क्या आध्यात्मिक गुरु जिज्ञासु को सुपात्र नहीं बना सकता?

उत्तर—कोई अवतार बना सकता है। साधारण गुरु नहीं।

प्रश्न—क्या मोक्ष का कोई सरल मार्ग नहीं है?

उत्तर—'प्रेम को पथ कृपाण की धारा'—केवल उन लोगों के लिए आसान है, जिन्हें किसी अवतार के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। परमहंस देव कहा करते थे, 'जिसका यह आखिरी जन्म है, वह किसी न किसी प्रकार से मेरा दर्शन कर लेगा।'

प्रश्न—क्या उसके लिए योग सुगम मार्ग नहीं है?

उत्तर—(मजाक में) आपने खूब कहा समझा!—योग सुगम मार्ग! यदि आपका मन निर्मल न होगा और आप योगमार्ग पर आरूढ़ होंगे, तो आपको कुछ अलौकिक सिद्धियाँ मिल जायँगी, परन्तु वे रुकावटें होंगी। इसलिए मन की निर्मलता प्रथम आवश्यकता है।

प्रश्न—इसका उपाय क्या है?

प्रश्न—क्या जीव-सेवा मात्र से मुक्ति मिल सकती है?

उत्तर—जीव-सेवा प्रत्यक्ष रूप से तो नही, परोक्ष रूप से आत्मशुद्धि द्वारा मुक्ति प्रदान कर सकती है। किन्तु यदि आप समुचित रूप से किसी कार्य के करने की इच्छा रखते हैं, तो सम्प्रति उसे ही पूर्ण पर्याप्त समझिए। किसी भी पथ मे खतरा है मुमुक्षा के अभाव का। निष्ठा का होना आवश्यक है, अन्यथा विकास न होगा। इस समय कर्म पर जोर देना आवश्यक हो गया है।

प्रश्न—कर्म मे हमारी भावना क्या होनी चाहिए—परोपकारमूलक करुणा या अन्य कोई भावना?

उत्तर—करुणाजन्य परोपकार उत्तम है, परन्तु शिव ज्ञान से सर्व जीव की सेवा उससे श्रेष्ठ है।

प्रश्न—प्रार्थना की उपादेयता क्या है?

उत्तर—सोयी हुई शक्ति प्रार्थना से आसानी से जाग उठती है और यदि सच्चे दिल से की जाय, तो सभी इच्छाएँ पूरी हो सकती है, किन्तु अगर सच्चे दिल से न की जाय, तो दस मे से एक की पूर्ति होती है। परन्तु इस तरह की प्रार्थना स्वार्थपूर्ण होती है, अत वह त्याज्य है।

प्रश्न—नर-रूपधारी अवतार की पहचान क्या है?

उत्तर—जो मनुष्यो के विनाश के दुर्भाग्य को बदल सके, वह भगवान् है। कोई भी साधु, चाहे वह कितना भी पहुँचा हुआ क्यो न हो, इस अनुपम पद के लिए दावा नही कर सकता। मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नही दिखायी पडता, जो रामकृष्ण को भगवान् समझता हो। हमे कभी कभी इसकी धुंधली प्रतीति मात्र हो जाती है, बस। उन्हे भगवान् के रूप मे जान लेने और साथ ही ससार से आसक्ति रखने मे सगति नही है।

## ९

## (भगिनी निवेदिता के कुछ प्रश्नो के उत्तर[1])

प्रश्न—पृथ्वीराज एव चद जिस समय कन्नौज मे स्वयवर के लिए जाने को प्रस्तुत हुए, उस समय उन्होंने किनका छद्मवेश धारण किया था—मुझे याद नही आ रहा है?

उत्तर—दोनो ही भाट का वेष धारण कर गये थे।

---

१ ये उत्तर स्वामी जी ने सैन फ्रासिस्को से मई २४, १९०० ई० को एक पत्र मे लिखे थे। स०

है। सबसे कम खतरनाक और पूजा का सर्वोत्तम तरीका किसी मनुष्य की पूजा करना है जिसने मानव में ब्रह्म के होने का विचार प्रतिष्ठित कर लिया उसने विश्व व्यापी ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया। विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार संन्यस्त जीवन तथा गृहस्थ जीवन दोनों ही श्रेयस्कर हैं। केवल ज्ञान आवश्यक वस्तु है।

प्रश्न—ध्यान कहाँ लगाना चाहिए—शरीर के भीतर या बाहर? मन को भीतर समेटना चाहिए अथवा बाह्य प्रदेश में स्थापित करना चाहिए?

उत्तर—हमें भीतर ध्यान लगाने का यत्न करना चाहिए। जहाँ तक मन के इधर-उधर भागने का सवाल है मनोमय कोष में पहुँचने में लम्बा समय लगेगा। अभी तो हमारा संघर्ष शरीर से है। जब आसन सिद्ध हो जाता है तभी मन से संघर्ष आरम्भ होता है। आसन सिद्ध हो जाने पर अंग-प्रत्यंग निश्चल हो जाता है—और साधक चाहे जितने समय तक बैठा रह सकता है।

प्रश्न—कभी कभी जप से थकान मालूम होने लगती है। तब क्या उसकी जगह स्वाध्याय करना चाहिए, या उसी पर आरूढ़ रहना चाहिए?

उत्तर—दो कारणों से जप में थकान मालूम होती है। कभी कभी मस्तिष्क थक जाता है और कभी कभी आलस्य के परिणामस्वरूप ऐसा होता है। यदि प्रथम कारण है तो उस समय कुछ क्षण तक जप छोड़ देना चाहिए, क्योंकि हठपूर्वक जप में लगे रहने से विभ्रम या विक्षिप्तावस्था आदि आ जाती है। परन्तु यदि द्वितीय कारण है तो मन को बलात् जप में लगाना चाहिए।

प्रश्न—कभी कभी जप करते समय पहले आनन्द की अनुभूति होती है लेकिन तब आनन्द के कारण जप में मन नहीं लगता। ऐसी स्थिति में क्या जप जारी रखना चाहिए?

उत्तर—हाँ वह आनन्द आध्यात्मिक साधना में बाधक है। उसे रसास्वादन कहते हैं। उससे ऊपर उठना चाहिए।

प्रश्न—यदि मन इधर-उधर भागता रहे तब भी क्या देर तक जप करते रहना ठीक है?

उत्तर—हाँ उसी प्रकार जैसे अगर किसी बदमाश घोड़े की पीठ पर कोई अपना आसन जमाये रखे तो वह उसे वश में कर लेता है।

प्रश्न—आपने अपने 'भक्तियोग' में लिखा है कि यदि कोई कमजोर आदमी योगाभ्यास का यत्न करता है तो घोर प्रतिक्रिया होती है। तब क्या किया जाय?

उत्तर—यदि आत्मज्ञान के प्रयास में मर जाना पड़े तो भय किस बात का! ज्ञानार्जन तथा अन्य बहुत सी वस्तुओं के लिए मरने में मनुष्य को भय नहीं होता और धर्म के लिए मरने में आप भयभीत क्यों हों?

प्रश्न—क्या जीव-सेवा मात्र से मुक्ति मिल सकती है ?

उत्तर—जीव-सेवा प्रत्यक्ष रूप से तो नही, परोक्ष रूप से आत्मशुद्धि द्वारा मुक्ति प्रदान कर सकती है। किन्तु यदि आप समुचित रूप से किसी कार्य के करने की इच्छा रखते हैं, तो सम्प्रति उसे ही पूर्ण पर्याप्त समझिए। किसी भी पथ मे खतरा है मुमुक्षा के अभाव का। निष्ठा का होना आवश्यक है, अन्यथा विकास न होगा। इस समय कर्म पर जोर देना आवश्यक हो गया है।

प्रश्न—कर्म मे हमारी भावना क्या होनी चाहिए—परोपकारमूलक करुणा या अन्य कोई भावना ?

उत्तर—करुणाजन्य परोपकार उत्तम है, परन्तु शिव ज्ञान से सर्व जीव की सेवा उससे श्रेष्ठ है।

प्रश्न—प्रार्थना की उपादेयता क्या है ?

उत्तर—सोयी हुई शक्ति प्रार्थना से आसानी से जाग उठती है और यदि सच्चे दिल से की जाय, तो सभी इच्छाएँ पूरी हो सकती हैं, किन्तु अगर सच्चे दिल से न की जाय, तो दस मे से एक की पूर्ति होती है। परन्तु इस तरह की प्रार्थना स्वार्थपूर्ण होती है, अत वह त्याज्य है।

प्रश्न—नर-रूपधारी अवतार की पहचान क्या है ?

उत्तर—जो मनुष्यो के विनाश के दुर्भाग्य को बदल सके, वह भगवान् है। कोई भी साधु, चाहे वह कितना भी पहुँचा हुआ क्यो न हो, इस अनुपम पद के लिए दावा नही कर सकता। मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नही दिखायी पडता, जो रामकृष्ण को भगवान् समझता हो। हमे कभी कभी इसकी धुँधली प्रतीति मात्र हो जाती है, बस। उन्हे भगवान् के रूप मे जान लेने और साथ ही ससार से आसक्ति रखने मे सगति नही है।

## ९

### (भगिनी निवेदिता के कुछ प्रश्नो के उत्तर[1])

प्रश्न—पृथ्वीराज एव चद जिस समय कन्नौज मे स्वयवर के लिए जाने को प्रस्तुत हुए, उस समय उन्होंने किनका छद्मवेश धारण किया था—मुझे याद नही आ रहा है ?

उत्तर—दोनो ही भाट का वेष धारण कर गये थे।

---

१ ये उत्तर स्वामी जी ने सैन फ्रांसिस्को से मई २४, १९०० ई० को एक पत्र मे लिखे थे। स०

प्रश्न—क्या पृथ्वीराज ने संयुक्ता के साथ इसलिए विवाह करना चाहा था कि वह अलौकिक रूपवती थी तथा उसके प्रतिद्वन्द्वी की पुत्री थी? संयुक्ता की परिचारिका होने के लिए क्या उन्होंने अपनी एक दासी को सिखा-पढ़ाकर वहाँ भेजा था? और क्या इसी बूढ़ी दासी ने राजकुमारी के हृदय में पृथ्वीराज के प्रति प्रेम का बीज अंकुरित किया था?

उत्तर—दोनों ही परस्पर के रूप-गुणों का वर्णन सुनकर तथा चित्र अवलोकन कर एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हुए थे। चित्र-दर्शन के द्वारा नायक-नायिका के हृदय में प्रेम का संचार भारत की एक प्राचीन रीति है।

प्रश्न—गोप बालकों के बीच में कृष्ण का प्रतिपालन कैसे हुआ?

उत्तर—ऐसी भविष्यवाणी हुई थी कि कृष्ण कंस को सिंहासन से च्युत करेंगे। इस भय से कि जन्म लेने के बाद कृष्ण कहीं गुप्त रूप से प्रतिपालित हों दुराचारी कंस ने कृष्ण के माता-पिता को (यद्यपि वे कंस की बहन और बहनोई थे) कैद में डाल रखा था तथा इस प्रकार का आदेश दिया कि उस वर्ष से राज्य में जितने बालक पैदा होंगे उन सबकी हत्या की जायगी। अत्याचारी कंस के हाथ से रक्षा करने के लिए ही कृष्ण के पिता ने उन्हें गुप्त रूप से यमुना पार पहुँचाया था।

प्रश्न—उनके जीवन के इस अध्याय की परिसमाप्ति किस प्रकार हुई थी?

उत्तर—अत्याचारी कंस के द्वारा आमन्त्रित होकर वे अपने भाई बलदेव तथा अपने पालक पिता नन्द के साथ राजसभा में पधारे। (अत्याचारी ने उनकी हत्या करने का षड्यन्त्र रचा था।) उन्होंने अत्याचारी का वध किया। किन्तु स्वयं राजा न बनकर कंस के निकटतम उत्तराधिकारी को उन्होंने राजसिंहासन पर बैठाया। उन्होंने कभी कर्म के फल को स्वयं नहीं भोगा।

प्रश्न—इस समय की किसी नाटकीय घटना का उल्लेख क्या आप कर सकते हैं?

उत्तर—इस समय का जीवन अलौकिक घटनाओं से परिपूर्ण था। बाल्यावस्था में वे अत्यन्त ही चंचल थे। चंचलता के कारण उनकी गोपिका माता ने एक दिन उन्हें दधिमन्थन की रस्सी से बाँधना चाहा था। किन्तु अनेक रस्सियों को जोड़कर भी वे उन्हें बाँधने में समर्थ न हुईं। तब उनकी दृष्टि खुली और उन्होंने देखा कि जिनको वे बाँधने जा रही हैं उनके शरीर में समग्र ब्रह्माण्ड अवस्थित है। डरकर काँपती हुई वे उनकी स्तुति करने लगीं। तब भगवान् ने उन्हें पुनः माया से आवृत किया और एकमात्र वही बालक उन्हें दृष्टिगोचर हुआ।

देवश्रेष्ठ ब्रह्मा को यह विश्वास न हुआ कि परब्रह्म ने ही गोप वालक का रूप धारण किया है। इसलिए परीक्षा के निमित्त एक दिन उन्होंने समस्त गायो को तथा गोप वालको को चुराकर एक गुफा मे निद्रित कर रखा। किन्तु वहाँ से लौटकर उन्होंने देखा कि वे ही गायें तथा गोप वालक कृष्ण के चारो ओर विद्यमान हैं। वे फिर उनको भी चुरा कर ले गये एव उन्हे भी छिपाकर रखा। किन्तु लौटने पर फिर उन्हे वे ही ज्यो के त्यो दिखायी देने लगे। तव उनके ज्ञान-नेत्र खुले, उन्होने देखा कि अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड तथा सहस्र सहस्र ब्रह्मा कृष्ण की देह मे विराजमान हैं।

कालिय नाग ने यमुना के जल को विषाक्त कर डाला था, इसलिए उन्होने उसके फन पर नृत्य किया था। उनके ारा इन्द्र की पूजा वन्द किये जाने के फलस्वरूप कुपित होकर इन्द्र ने जव इस प्रकार प्रवल वेग से जल वरसाना प्रारम्भ किया कि समस्त व्रजवासी मानो उसमे डूबकर मर जायँगे, तव कृष्ण ने गोवर्धनधारण किया। कृष्ण ने एक अगुली से छत्र की तरह गोवर्धन पर्वत को ऊपर उठाकर धारण किया, और उसके नीचे सभी ने आश्रय लिया।

वाल्यकाल से ही वे नाग-पूजा तथा इन्द्र-पूजा के विरोधी थे। इन्द्र-पूजा एक वैदिक अनुष्ठान है। गीता मे सर्वत्र यह स्पष्ट है कि वे वैदिक अनुष्ठानो के पक्षपाती नही थे।

अपने जीवन मे इसी समय उन्होने गोपियो के साथ लीला की थी। उस समय उनकी आयु ग्यारह वर्ष की थी।

# अनुक्रमणिका


अंकन-पद्धति २८४
अंग्रेज १५-५ उनका भोजन ८१
उनका सुदृढ़ सिंहासन ५९ उनकी मूल विशेषता ५९ उनकी व्यवसाय बुद्धि ५९ और अमेरिकन ८८ ९ ९१ और फ्रांसीसी ९ जाति ७६, १५५ तथा मुसलमान २८९ पुरुष ९७ सज्जन ११ स्त्रियाँ ११
अंग्रेजी अनुवाद १९९ अखबार ११४
दैनिक ११४ पढ़नेवाले १५५ बोलनेवाली जाति २७१ भाषा ९ (पा टि ) १४६, २९१ मित्र ११ राज्यकाल १२४ वाक्य २७४ शासन १२५ शिक्षा १२१ सभ्यता का निर्माण २८९ सरकारी कर्मचारी ४८
अंध आत्म-विनाश २८६
अंधविश्वास ६, २४२, २५४ २८७ २९५ और जड़ विधि-विधान २४२ बौद्धिक २९३ विश्वव्यापी देश २५१ (देखिए कुसंस्कार)
अकबर ९१
'अकाल एकालोप' १२१
अक्षर ब्रह्म २१५
अग्नि ४ २११ १५१ कुण्ड १ नारकीय २९ परीक्षा २५७ पुराण ५१
अचला स्मृति ७२
'अच्छा' ५१ (देखिए धूम)
अज्ञान ४१ १७४ उसका कारण ४१ उसका तिरोभाव २१८
अज्ञानी १४१
अज्ञेयवाद १७ २७४
अटलांटिक २७ महासागर २८५
अतिचेतन भाव २१५
अतीत और भविष्य २९५
अतीन्द्रिय अवस्था ४१ शक्ति ११९
अथर्ववेद संहिता ११२
अदृष्टवाद ११९
अद्वैत १८१ आश्रम ९ (पा टि ), उसकी उपलब्धि २१८ और द्वैत १४ और विशिष्टाद्वैत २५९ ज्ञान ११६, ११८ १०१ तत्त्व ११७ १७४ मत ११७ १५९ मूल सारतत्त्व में १४ सत्य ११४ १५
अद्वैतवाद १७४-७५, १५ द्वैतवाद का विरोधी नहीं १८१
अद्वैतवादी १ २५१ २८१ २८६ १८१ और उनका कथन २८२ कट्टर १ ८
अद्वैतानन्द स्वामी १५५
अध्यात्म और भविभूत जगत् १ मूल १९८ तत्त्वविद् १५१ दर्शन १२ वादी ११ २५९ विद्या ११५, १४२ विषय ११५
अध्यापन-कार्य १२६, १४७
अनन्त १२४ स्तम्भ ११२
अनाचार १२९
अनात्मा १७४
अनासक्ति ११२
'अनुमानगम्य' १५९
'अनेक' १८४
अन्नमाण १५९
अन्ध भावना २२ -विश्वास १६, १२ १५१ १८६, २१७

अन्नदान ६१
अपरा १५९, एव परा विद्या मे भेद १५९, विद्या ३८८
अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य २८३
अपसम्मोहन ३८८
'अपील एवलाश' २७, ३५, २४८
अपोलो क्लब २३६
अफगानिस्तान ६३, १२३
अफ्रीका ४९, ६७, ९१, १११
अफ्रीदी ६५
'अभाव' से 'भाव' की उत्पत्ति ३८०
अभिव्यक्ति ३९६
अभीष्ट लक्ष्य, मानवीय बघुता ३८
अमगल ३७५-७६
अमरावती ९३
अमरीकी जनता २२७, प्रेस २४१ (पा० टि०)
अमृत का सेतु ३५०
अमृत पुत्र ३५१
अमृतबाजार ३३९
अमेरिकन २७, ७५, ८१, ८९, २७८, और पैसा २७०, कन्याएँ ९०, जाति २४६, ढग २२९, परिवार ९०, पुरुष २६५, भक्त २२०, मित्र १९३ (पा० टि०), लडकी २६३, शिष्य २०३ (पा० टि०), सवाददाता २२९ (पा० टि०), समाचारपत्र २७ (पा० टि०), स्वातन्त्र्य घोषणा-दिवस २०३ (पा० टि०)
अमेरिका ६, १४, ४९, ६३, ६९, ७८-९, ८१, ८५-६, ९१, २२२, २३८, २४८, २६०, २६५, २७०, २८०, २८५, २८९, ३२५, ३४१-४२, ३५४, ३६६, ३७५, ३७८-८०, उसका अहकार २१७, उसके आदिवासी २४१, और भारत २१७, महाद्वीप १०१, वहाँ स्त्री-पूजा का दावा २६५, वाले ९५, २३८, वासी २४९, ३४०, विरोधी २७५, सयुक्त राज्य २२७ (पा० टि०)
अमेरिकी, उनकी नारी के प्रति सम्मान-भावना २७७, जाति २७७, वैज्ञानिकी २८३, व्याख्यान-मच २७६, स्त्रियाँ १९
अम्बापाली १५४
अरब ९२, १०७, १३४, २८५, जाति ९१, निवासी २७, मरु-भूमि १०५-६, वाले २८५
अरबी १०७, खलीफा १०७
अर्जुन ५०, ५४, १४३, ३३०-३२, ३४९, ३५७-५८
अलीपुर ३५४
अलौकिक ज्ञान-प्राप्ति १३९, तथा लौकिक १६०, सिद्धियाँ ३९८
अल्मोडा १८९ (पा० टि०), १९३ (पा० टि०), ३६५
अवतार ३४८, उसकी पहचान ४०१, पुरुष ३४८
अवतारत्व १६०
अवस्था-भेद ३१७
अवस्था, सात्त्विक ५४
'अविद्या' १३५, अज्ञान १००
अशुभ, अहिर्मन २८१, उसका इलाज २९२, उसका कारण २९२-९३, उसका फल १७३ (देखिए असत्)
अशोक, धर्मसम्राट् ८६, महान् सम्राट् ३९३, महाराज ६४, सम्राट् ७४, २८४
अश्वमेघ १३५
अष्टाग योग १५८
असत् १९६-९७, २४२, ३७४, उससे सत् का आविर्भाव नही ११६, प्रवृत्ति ३७४ (देखिए अशुभ)
असीरियन जाति ३००
असुर कन्या १०७, जाति १०६, वश १०७, विजयी १०४, सेना १०६
'अह' २५८-५९, ३७४, ३९६, क्षुद्र २६०

अहंकार १४ २२ १२८
अहिंसा ५१
'अहिंसा परमो धर्म' २८२

आकाश और प्राण-तत्त्व १८२
आगरा २२४
आचरणशास्त्र ११७ १९१
आचार ५८ और पाश्चात्य शासन शक्ति १३७ और रीति १४९ नैतिक २७५ विचार ६ व्यवहार १२९ शास्त्र २८१-८४ संहिता २७४ स्त्री सम्बन्धी और विभिन्न देश ९१
'आचार ही पहला धर्म' ७२
आत्म उसका अर्थ १७१ -चर्चा १५ -चिन्तन २८ -त्यागी १०१ ज्ञान ११९ ४ -तत्त्व २१५ १५४ १८७ १९२ त्याग २१४ निर्भर १७१ रक्षा और धर्म रक्षा १ ९ रक्षा और राज्य की पुष्टि १ ३ विद् १ ९ -शुद्धि ४ १ -संयम २३१ -सम्मान की भावना २२१ -सम्मोहन विद्या १८७ -साक्षात्कार ११९ स्वरूप २११
आत्मा १६ २५ ६ १२, १९ ४ ६१ ९८, १२१ १२८ २९ १४४ १७१ १७९ १९९ २ २ २ ६, २२ २४ २४७ २५१ २५८, २६६, २६९ २७८ २९२, १५ १५८ अनन्त ११ अपरिवर्तित ११ अमृत का सेतु १५ अवि नश्वर १२ अविभाज्य २५८ इन्द्रियातीत ४ ईश्वर का शरीर २२ उसका अन्तर्निहित दिव्यत्व २४२ उसका एक से दूसरे शरीर में प्रवेश २७ उसका देहान्तर गमन २७२ उसका प्रकाश ४ २२२ उसका प्रमाण २५८ उसकी उपलब्धि १ उसकी कथा १७ उसकी देन १७९ उसकी देहान्तर प्राप्ति २९८ उसकी प्रकृति १५७ उसकी मुक्ति २९८ उसकी व्यक्तिगत सत्ता २९८ उसके अस्तित्व २९६ उसके आवागमन का सिद्धान्त २८ १७९-८ उसके जन्मान्तर में विश्वास २९ एक मुक्त सत्ता २५७ एकात्मक तत्त्व २४ और जड़ में अन्तर ११ और मन ४ कार्य-कारण से परे ११ क्रियाहीन ११ चिरन्तन नित्य १७१ द्वारा प्रकृति-परि चालन ११ द्वारा मन का प्रयोग २९७ धर्म का मूलभूत आधार २९७ न मन है, न शरीर २१ नित्यमुक्त १७४ १४४ निष्क्रिय २५७ परम अस्तित्व ११ पूर्ण २४२ प्रतिबिंब की भाँति अरूप २५७ मन तथा जड़ से परे २९७ मनुष्य का वास्तविक स्वरूप २९७ महिमामयी १९१ मानवीय २१ विमुक्त १४४ शुद्ध ११ समरस ११ सर्वगत १७४ स्वतन्त्र तत्त्व २९९
आत्माओं की आत्मा २ ७
'आत्मा के पुनर्जन्म' २७ २४९
आत्मानुभूति उसका साधन १९९
'आत्मापसम्मोहन' १८८
आदम १५७
आदर्श उसकी अभिव्यक्ति ४९ राष्ट्रीय ९ वाद १८ वादी २४५ व्यक्तिगत १७२
आदिम अवस्था में स्त्रियों की स्थिति १ २ निवासी ९१ मनुष्य उनका रहन-सहन १ १
आदिवासी १६ और परमेश्वर की कल्पना १५
आधुनिक पण्डित ९३ ४ २४ बंगाली १११ विज्ञान १५
आध्यात्मिक असमानता १२५ उन्नति २४१ १५६ उपदेशक १२

खोज २५३, चक्र १३६, जीवन २१, ज्ञान १६०, तरग १३४, दिग्गज ६, ११, ३५५, पहलू २९४, प्रतिभा २३०, प्रभाव ४१, प्रभुता १२०, प्रयोजन १५७, बाढ ३७२, भूमिका १७, मार्ग ३७९, मृत्यु २९०, यथार्थ ४३, लहर ४०, विषय ३९३, व्यक्ति ३०, शक्ति २१९, ३९८, समता ११९, समानता १२३, सहायता १६, ३६३, साक्षात्कार १२३, साधना १२४, ४००, सौन्दर्य ३७७, स्वाधीनता ५९

आनुवशिक पुरोहित वर्ग १२१

'आप भले तो जग भला' ३२०

आपद्त्राता—क्षत्रिय ११०

'आपेरा हाउस' २४१

आप्त वेद ग्रन्थ ११८

आभ्यान्तरिक शुद्धि ६८

आयरिश ११४

आरती ३६७

आर० बी० स्नोडेन, कर्नल २४५

आर्ट पैलेस २३२

आर्थर स्मिथ, श्रीमती २७८

आर्य १०९-१०, ११८, २५०, उनका उद्देश्य ११२, उनका गठन और वर्ण ६४, उनका पारिवारिक जीवन ११७, उनका योगदान ११६, उनकी काव्य-कल्पना ११७, उनकी दयालुता १११, उनकी विद्या का बीज १६४, उनकी विशेषता २६४, उनके वस्त्र ८६, उनके सबध मे भ्रमपूर्ण इतिहास ११०, ऋषि ११६, एव म्लेच्छ १४०, और अमेरिका २४२, और जगली जाति १११, और यूनानी १३४, और वर्णाश्रम की सृष्टि ११२, चारित्रिक विशेषता ११७, जाति ६३-४, ११६, १३९, ३००, ३०२, जाति का इतिहास ३६, ज्योति २६४, द्वारा आविष्कृत वेद १४०, धर्म १२२, नाटक और ग्रीक नाटक १६५, परिवार का सगठन १२२, प्रवास ३६४, महान् जाति २४६, लोग ८२, वर्ग ११८, वेदिका १९५, शान्तिप्रिय १०९, शिल्पकला १६५, सन्तान १४०, सभ्यता १११-१२, १२२, समाज १४१, १४९ (पा० टि०)

आर्यसमाजी और खाद्य सबधी वाद-विवाद ७५

आर्येतर जाति १२२

आलमबाजार मठ ३३९, ३५२

आलासिंगा ३४१, पेरुमल ३५२

आलोचना, उसके अभाव से हानि १५९

आल्प्स २५८, २६०

आवागमन १७३, उसका सिद्धान्त ३७९

आश्रम २३३,-विभाग १५३

आश्रय-दोष ७३

आसन ३६१

आसुरी शक्ति ३६

आस्ट्रिया ९९, वहाँ का बादशाह ९८

आस्ट्रेलिया ४९, ६७, १११, ११३, निवासी १५९

आहार ३१४, उसकी शुद्धता से मन शुद्ध ७२, उसके अभाव से शक्ति-ह्रास ७२, और आत्मा का सबध ७२, और उसकी तुलना ७६, और जाति ८४, और जातिगत स्वभाव ३२७, और मुसलमान ८३, और यहूदी ८३, जन्म-कर्म के भेद से भिन्नता ७५, प्राच्य मे ८२, रामानुजाचार्य के अनुसार ७२, शकराचार्य के अनुसार ७२, शब्द का अर्थ ७२, सम्बन्धी विधि-निषेध ८३, सम्बन्धी विचार ७८

आह्निक कृत्य ३१२

इंग्लैण्ड ६ १४ १६ ८६ ८६, ९४ १ ८, १२४ १११ १४९-५० १५१ २१५, २५१ ३११ और अमेरिका ८९
इच्छा-संघातक १९९
इटली ६९, ८१ ९१ १ ९ १ ८ २२४ निवासी ९१ यहाँ के पोप १ ९
इट्रस्कन १ ९
'इण्डियन मिरर' ३१९ ३१४
'इण्डिया हाउस' १४९
इतिहास उसका अर्थ ११२
'इतो नष्टस्ततो भ्रष्ट' ११७
इन्द्र ४ १ देवराज ११ पुत्री ९२ पूजा ४ १ मर्दन ११
इन्द्रधनुष ११४
'इन्द्रियजन्य ज्ञान' ७२
इन्द्रिय २ ७ पाँच २९८ भोग जनित सुख ११ स्वाद की २१८
इमामबाड़ा १४५
इलाहाबाद ८४
इवनिंग न्यूज २५४
इस्टरेन ५९, ३११
इस्लाम उसकी समीक्षा २८१ धर्म १७७ मत २१८
इस्कीमो जाति ९२, ८२
इस्लाम धर्म १ ७ ११३-१४ १२१
इस्लामी सभ्यता १४५
'इहलोक' और 'परलोक' २१७

ई टी स्टर्डी ३५५
ईरान ८७ १५९
ईरानी ११४ १ उनके कपड़े ८७
ईस-केन-कठ (उपनिषद्) ३४९
ईश-निष्ठा २२ प्रेम २९१ ९२
ईश्वर २२ २८ ११ १८ ४१ २, १२७ १५८ १७६ २१४ १६ २१ २१६ २४४ २५१ २५८, २९१, २१४ २७१-८ १७४-७५, १७९
अनादि अनिर्वचनीय अनन्त भाव ३१८ आत्मा की आत्मा २२ आनन्द २२ उनका सार्वभौम पिता-भाव १८ उनके केन्द्रीय गुण २४७ उपासना के लिए उपासना २९९ उसका अस्तित्व (सत्) २२ उसका ज्ञाता ब्राह्मण १ ४ उसका ज्ञान (चित्) २२ उसका प्रेम ४८ २१२ उसका वास्तविक मंदिर २९७ उसका सच्चा प्रेमी २९२ उसकी कल्पना २१ उसकी प्रथम अभिव्यक्ति १ २ उसकी सत्ता २८२ उसके कर्म के लिए कर्म २९९ उसके तीन रूप २९१ उसके प्रतीक २४८ उसके प्रेम के लिए प्रेम २९९ उससे भिन्न व्यक्तित्व नहीं ४२ और निकृष्ट कीट १९१ और परलोक १८ और मनुष्य का उपादान ४ और मुक्ति २४ और विश्व-योजना ३१ और सृष्टि १८ कृपा ११ जगत् का रचयिता २७१ तत्त्व २२ तथा काल २७१ नित्य सिद्ध २२ निर्गुण १ २ परम २२ परिभाषा २११ पवित्र २५१ पालक और संहारक २७२ पावनता और उपासना २९९ पूजा २१ पूर्ण २४१ प्रत्येक वस्तु का सर्वनिष्ठ कारण २४ प्रेम ३१४ प्रेम प्रेम के लिए २१६ २९७ विद्यार्थी का ज्ञाता २४७ वैयक्तिक ४ २९९ सगुण २१ २६८, २९६, १ २, १ ६ १८४ १८८ सगुण और निर्गुण २९७ सगुण रूप में नारी १ २ सर्व-शक्तिमान २४१ -साक्षात्कार २८२ स्रष्टा २९९
'ईश्वर का पितृत्व और मनुष्य का भ्रातृत्व' २७८
ईश्वरत्व उसका ज्ञान २१९ उसकी अभिव्यक्ति १९४

ईश्वरीय शक्ति १५२
ईर्ष्या-द्वेष, जातिसुलभ १४२, प्रतिद्वन्द्विता १६८
ईसप की कहानियाँ २८५
'ईसा-अनुसरण' ३४४-४५
ईसाई, अमेरिका के २४८, आदर्श ३०२, उनका अत्याचार २८०, उनका ईश्वर २५८, उनकी आलोचना २७४, उनकी क्रियाशीलता ९, उनके अवगुण २७३, उनके नैतिक स्खलन २७५, और उनका धर्म २७३, और मुसलमान की लड़ाई १०७, और मुसलमान धर्म ११२, और हिन्दू २९८, कैथोलिक २७१, जगत् १६१, डाइन २६५, देश २३५, २५२, २५४, देहात्मवादी १५०, धर्म ९२, १०६, ११२-१४, १६१, २३५-३६, २४२, २४९, २५२, २५९, २६१, २७४, २७७, २८३-८४, २८६, ३०९-१०, ३८५, धर्म और इस्लाम ११३, धर्म और भारतवासी की धारणा २८५, धर्म और वर्तमान यूरोप ११३, धर्म की त्रुटि ११३, धर्म की नीव २८४, धर्मग्रथ ११३, धर्म-प्रचारक २७२, धर्म, बुद्ध धर्म से प्रभावित २८४, पादरी ३७, ८८, १५१, ३०२, पुरातनवादी २४९, प्रेम मे स्वार्थी २६२, बनने के लिए धर्मों का अगीकार २४३, मत २१८, २५९, २७३, २८४, मिशनरी ३०९, ३१३, ३३१, मिशनरी, उनके अतिरजित विवरण २५६, राष्ट्र २७३, शिक्षक २४८, शिक्षा २९५, सघ २७, २६५, सच्चा, एक सच्चा हिन्दू २१९
ईसा मसीह ४९, २८१, ३७६, ३७८-७९
ईस्ट इण्डिया १४८
'ईस्ट चर्च' २३०
उक्ति-सग्रह १५५
उडवर्ड एवेन्यू २६१
उडिया ८२
उडीसा ८०
उत्तराखण्ड ८६
उत्तरी ध्रुव १३२
उत्तरोत्तर सत्य से सत्य पर २९७
उद्जन ३३६, और ओषजन ३३६
'उद्धार' २५७
उद्धारवाद २७२
'उद्बोधन' (पत्र) १३२, १३७, १६१ (पा० टि०), १६७ (पा० टि०), ३३९, ३५६, उसका उद्देश्य १३६
उन्नति, मानसिक १०९
उपनिषद् १२०, १२३, १५७, ३८३, ३९५, कठ २४९, ३५० (पा० टि०), ३८८ (पा० टि०), कौषीतकी ३६०, तैत्तिरीय ३८८ (पा० टि०), प्रसग ३५०, प्राचीनतम ३८५, बृहदारण्यक ३५४, मुण्डक २२२, ३५०, वाणी ३५०, श्वेताश्वतर ३५१ (पा० टि०), ३८२ (पा० टि०)
उपयोगितावादी ३१५
उपासक, उनका वर्गीकरण २१५
उपासना, उसका अर्थ ३८६, प्रणाली ३८७, साकार ३९९

ऊर्जा या जड-सधारण का सिद्धान्त ३७९

ऋग्वेद १९६ (पा० टि०), -प्रकाशन १४८, -सहिता १४८
ऋतुपर्ण, राजा ८६
ऋषि ६, १२०, १५०, १८६, १९७, २२२, २८२, उनकी परिभाषा १३९, ज्ञानदीप्त १९९, प्राचीन ३८०, मुनि १०९, १२६, मुनि, पूर्वकालीन ३३५, वामदेव ३६०; -हृदय १४१
ऋषित्व १६०, और वेद-दृष्टि १३९

एकत्व, उसका ज्ञान १९७, उसकी ओर १११-१४, उसकी प्राप्ति १९९
एकाग्रता, उसका महत्त्व १८१, और योग १८१
'एडम्स पीक टु एलिफेन्टा' १४६, ४७
एडवर्ड कारपेन्टर १४६, ४७
एडा रेकार्ड २६७
एकेश्वरवाद ११
एथिकल एसोसियेशन १ १ १
एगिस्वाम २११
एनी बिसेन्ट, कुमारी २७९
एनेसबेक २४५
एपिस्कोपल चर्च २३१
एशियाटिक क्वार्टर्ली रिव्यू १४९
एशिया १७, ९९, १, १०८, ११२, २९; मध्य ९४, १२१; माइनर १ ५, १ ७-८, १०२; वाले २१५
एसोटेरिक बौद्ध मत १५१
'एसोसियेशन हाल' २७९, २८१

ऐंग्लो इण्डियन कर्मचारी १४९, समाज १४९
ऐंग्लो सैक्सन जाति १ १
ऐतिहासिक गवेषणा १५७, सत्यानुसंधान १५७
'ऐल्ड्रेक हरेवेर' १८९

ओकलैण्ड २१
'ओकलैण्ड ट्रिब्यून' (पत्रिका) २१
ओपर्ट (जर्मन पण्डित) १६२
ॐकार, उसका महत्त्व ५२
ॐ तत् सत् ११६, २ ७
ओम् तत्सत् ओम् १७१-७५
ओरायन ११३
ओल्ड्रिपो वक २१५

औद्योगिक कार्य २१, वर्ग २२९, शिक्षा २२८, २३०-३१
औपनिवेशिक साम्राज्य-स्थापना ९४
औरंगज़ेब ५९

कंस अत्याचारी ४ २
कट्टर अद्वैतवादी १ ८
कठोपनिषद् १४९-५ (पा० टि०) १८८ (पा० टि०)
कथा, करुणा की १४५, बालक गोपाल की १२६, भेड़ और शेर की २५७, राजा और मनुष्य-स्वभाव की १२७-२८, सर्प और संन्यासी की १२४
कनाडा ११
कन्नौज ४ १
कन्फ्यूशस ८८, १७९
कन्याकुमारी १२
कन्हाई महाराज ११४
कपिल महर्षि १८२
कबीर १२१
कमजोरी और शक्ति २२
करुणा और प्रेम १९१
कर्म ५
कर्म, आत्मा का नहीं २९९, उसका अर्थ १७५, उसका फल अवश्यंभावी ११६, उसके नियम १७, उसमें भावना ४ १, उसे करने का अधिकार ११८, काम्य १२१, १९५, काम्य प्राचीन १२, काम्य विचार ११८, गति १७४, निष्काम ११, १५८, प्रकृति में ११, फल ५१, मार्ग ९९, योग १५१, वेद का भाग १४, संचित १७५
कलकत्ता ११, १९, ७८-८, ८१, ८९, ११४, १४९, १९८, १८५, २२४, २६९-७, २६९, २२८, ११६, ११९, १११, ११, वासी ११६
कला और प्रकृति ४१, और वस्तु ४१, नाटक, कठिनतम ४१, भारतीय यूनानी में अन्तर ४१, धार्मिक और यथार्थ आध्यात्मिक ४१, सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ४१

कलियुग ९१
कल्पना, अन्धविश्वासभरी ३६, एव परिकल्पना २८, मुक्ति की २५, स्वतत्रता की २५
कवि ककण ४२
काग्रेस ऑफ ओरियेण्टलिस्ट १६१
कास्टाटिनोपुल १०७, शहर १०६
कास्टेंटाइन ११२
'कांग्रे दे लिस्तोयार दि रिलिजिओ' १६१
'कांग्रेगेशनल चर्च' २३९, २४१
कॉक (Cock) ११३
कादम्बरी ४२
कानन्द २७, २४३, २४८-४९, २५४, २६२-६७, २७०, २७४-७५ (देखिए विवेकानन्द, स्वामी)
'काफिर' ३९४
काबुल १०७
काम, उसका मापदण्ड २१३, और मोक्ष २०८, -काचन ३७१, -क्रोध १३२, -दमन ३४६, -प्रवृत्ति ३४७, -यश-लिप्सा १७३
कामिनी-काचन २१७
कारण, उसका अस्तित्व २८, -धारा २०८, -कार्य-विधान १७३
कारपेन्टर, एडवर्ड ३४६-४७, साहब ३४७
कार्लाइल ३२०
कार्ल वॉन बरगेन, डॉ० २३९
कार्य, अभीष्ट ३२१, व्यापार १९१, व्यावहारिक २९०
कार्य-कारण २६, १८०, २१३, ३८४, उसका नियम २५, परम्परा २३-४, सिद्धान्त २८, वाद ११६
काल और देश १९६
कालिदास १६४-६५
कालिय नाग ४०३
कालीघाट ९१
कालीमाई ४९
काव्य, उसकी भाषा २२२, सिन्धु १३२
काव्यात्मक भाव ११७
काशी ९१, ९७, १६३
काशीपुर ३४२
काश्मीर ६३, ८४
काश्य १२०
किडी ३५२
कीर्तन ३९
कीर्ति २१७
कुण्डलिनी ३७३, शक्ति ३६२
कुतुबुद्दीन १०७
कुमाऊँ ८४
कुमारिल ५६, १२२
कुमारी एनी विल्सन २७९, एम० बी० एच० १८१, नोबल ३६६, सारा हम्बर्ट २७९
कुम्भकर्ण २१८
कुरान २१, २०४, २०७, २८१, ३३१, शरीफ ११३
कुरुक्षेत्र ३३१, ३५७, रोग-शोक का ४७
कुलगुरु ३६२
कुसस्कार १८, ४७, ७३, ३९३ (देखिए अन्धविश्वास)
'कूरियर हेरल्ड' २७५
कृति और सघर्ष १८९
कृषिजीवी देवता तथा मृगयाजीवी असुर १०३
कृष्ण ३९, ११९, १२३, १२६-२७, १६३, १६५, २६८, ३३१-३२, ३४२, ३५७-५८, ३६०-६१, ३९५, ३९८, ४०२-३, उनकी शिक्षा २४८, और बुद्ध २४८
कृष्णव्याल भट्टाचार्य १४६-४७
केन्द्रगामी (centripetal) ३१३
केन्द्रापसारी (centrifugal) ३१३
केशवचन्द्र सेन, आचार्य १४९, १५३
केट, डॉ० २९४
कैथोलिक चर्च, उसकी सेवा-पद्धति २८४, जगत् १६१
'कैम्पस एलिसिस' ९७
कैलास ४९
क्रोध और हिंसा ३९०

एकत्व उसका ज्ञान १९७ उसकी ओर ११३ १४ उसकी प्राप्ति १९१
एकाग्रता उसका महत्त्व १८३ और योग १८३
'एक्स्स पीक टु एक्विफ्रेन्टा' १४१ ४७
एडवर्ड कारपेन्टर १४१ ४७
एडा रेकार्ड २१७
एकेश्वरवाद ११
एथिकल एसोसियेशन १ १ १
एनिस्क्वाम २११
एनी बिस्सन कुमारी २०९
एनेसक्वेल २४५
एपिस्कोपल चर्च २११
एशियाटिक क्वार्टर्ली रिव्यू १४९
एशिया ६७ ९१ १ १०८, ११२ २१ मध्य ९४ १२१ माइनर १ ६ १ ७-८ १०२ वासे २१५
एसोटेरिक बौद्ध मत १५१
'एसोसियेशन हाल' २७६, २८१

ऐंग्लो इण्डियन कर्मचारी १४९ समाज १४९
ऐंग्लो सैक्सन जाति १ २
ऐतिहासिक गवेषणा १५७ सत्यानुसंधान १५७
'ऐस्ट्रल बॉडी' १८९

ओकलैंड २१
'ओकलैंड ट्रिब्यून' (पत्रिका) २१
ओपर्ट (जर्मन पण्डित) ११९
ओंकार, उसका महत्त्व ५२
ॐ तत् सत् ११६, २ ७
ओम् तत्सत् ओम् १७१-७५
ओल्मन ११३
ओहियो नद २१५

औद्योगिक कार्य २१ धन्धा २२१ शिक्षा २२८, २१०-११
औपनिवेशिक साम्राज्य-स्थापना ९४

औरंगज़ेब ५९

कंस अत्याचारी ४ २
कटुटर अद्वैतवादी १ ८
कठोपनिषद् १४९-५ (पा टि ) १८८ (पा टि )
कथा करबला की १४५ बालक गोपाल की १२१ मेंढक और शेर की २५७ राजा और मनुष्य-स्वभाव की १२५-२८ सर्प और सन्यासी की १२४
कनाडा ११
कन्नौज ४ १
कन्फ्यूशस ८८, १७१
कन्याकुमारी १२
कन्हाई महाराज ११४
कपिल ऋषि १८२
कबीर १२१
कमजोरी और शक्ति २९
करुणा और प्रेम १९१
कर्म ५
कर्म आत्मा का नहीं २१९ उसका अर्थ १७५ उसका फल अवश्यंभावी १११ उसके नियम १७ उसमें भावना ४ १ उसे करने का अधिकार ११८ काम्य १२१ १९९ काम्य प्राचीन १२ काम्य विषय ११८ गति १७४ निष्काम ३१ १५८ प्रकृति मे ११ फल ५१ मार्ग ५१ योग १५१ वेद का भाग १४ शक्ति १७५
कलकत्ता ११ १६ ७८-८ ८३ ८६ ११४ १४६ ११८, १८६ २२४ २११-७ २१६ १२६ ११६ ११६ ११५ ११ वासी ११९
कला और प्रकृति ४१ और वस्तु ४१ नाटक कठिनतम ४१ भारतीय यूनानी में अन्तर ४१ प्राकृत और यथार्थ आध्यात्मिक ४१ सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ४१

घृणा ४०, ३९०, दृष्टि ३५८

चडीचरण ३४६, बाबू ३४६, ३४८, उनका चरित्र ३४७
चद ४०१
चक्रवर्ती, शरच्चन्द्र ३४८, ३६३
चट्टोपाध्याय, रामलाल ३४५
चन्द्र २०९, ३८८
चन्द्रमा ३२१, ३५१
चरित्र, उसका सर्वोच्च आदर्श ३७३, उसके विकास का उपाय ३७१
चाडाल ३०५
चाँपातला (महल्ला) ३४१
चारण १०७
चारुचन्द्र मित्र ३४०
चार्वाक, उनका मत ३३७
चाल-चलन ६०, प्राच्य, पाश्चात्य मे अन्तर ८८
चिकित्सा विज्ञान, आधुनिक २८४
चिटगाँव १६८
चित्तौड-विजय ३०१
चित्रकार ११५
चित्र-दर्शन ४०२
चिरन्तन सत्य १५९
चिर ब्रह्मचारिणी १५४
चीन ४९, ६३, ८८, १५९, २७३, ३२७, जाति ६३, जापान ४९, निवासी ६३, ६९, ८८, साम्राज्य १०७
चीनी, उनका भोजन ८२, भाषा ८८, भोग-विलास के आदिगुरु ८७
चेतन-अचेतन ३३३-३४, ३३७, ३९७, उसकी परिभाषा २९८
चेतना, उसके लिए आधार की कल्पना २७९
'चैंट' (chant) २८४
चैतन्य १२३, १६७, बुद्धि ७५
चैतन्यदेव ७३
'चैरिटी फड' ३२१

छठी इन्द्रिय २५३
छाया-शरीर ३७९
छुआछूत ७३, ८३, १३५

जगली जाति १११, वर्बर १०६
जगत् एक व्यायामशाला ३९४, कल्पना १६५, दृश्य ३७, बाह्य ३७६, बौद्धिक ३०४, भाव ४८, भौतिक और सीमित चेतना का परिणाम ३३, मानसिक २१४, मायाविकृत १४०
जगदम्बा ५४, १५६
जगदीशचन्द्र वसु, ३३४ (पा० टि०)
जगन्नाक २५६ (देखिए जगन्नाथ)
जगन्नाथ ११५, २५६, २८६, २८८, उसकी किवदन्ती २५६,-रथ २२८, २३०
जड तत्त्व २६९, द्रव्य ३१, ३३, पदार्थ २४०, २७१, ३०३ ३१३, ३७५, बुद्धि ७५, वस्तु और विचार २१३, वादी ४८, ३०३, विज्ञान और कारखाना ३९४
जनक १४८, राजा १०९
जनता और धर्म २२८, और सन्यासी २६६
जन-धर्म १२१,-समाज, उसका विश्वास २६८
जन्म, पूर्व के प्रभाव का सिद्धान्त ३०२, -मरण १७५, १७७,-मृत्यु १७३
जप, उसमे थकान का कारण ४००, और ध्यान ३६२, -तप ३४४, हरिनाम का ५२
जफर्सन एवेन्यू २६१
जम्बूद्वीप १०५-६, १६२
जयपुर ११५
जयस्तभ, विजय-तोरण ९८
ज़रथुष्ट्र ३७९
जर्मन और अंग्रेज ९४, और रूसी ९०, दार्शनिक २८४-८५, पण्डित १६२, लोग ८८-९, वहाँ के महानतम

क्रमविकास १८२ और चैतन्य १७६
क्रिटिक २१७
क्रिया-कर्म ८६
क्रिश्चियन मर्मिनी १९२ (पा टि )
क्लिफ्टन एवेन्यू २८७
क्लिफ्टन स्ट्रीट २८१
क्षत्रिय ६१ १६ १ ४ ब्राह्मणों का
११ और वैश्य १७२ जाति २५१
रक्षक १ ४ शक्ति १७२
क्षुद्र भाई २६

खगेन १४१ १४८ (देखिए विमलानन्द
स्वामी)
खेतड़ी १८८ १२१
खेती-बारी सभ्यता की आदि भित्ति १ ५
खस ६१ जाति १४

गंगा ७८, १ ६ २ ५ २ ९, १५२
११७ जल ७९ -तट १८२
'गत्यात्मक धर्म' २१०-११ २११
गयाशीर्ष पर्वत ५१ (पा टि )
गयासुर ५१ और बुद्धदेव ५१ (पा टि )
गड़बड़ाना १ ३
'गर्म तर्क' २२१
गाजीपुर ३१७
गान्धारी १ ७
गार्गी १४८
गार्डनर एफ ए डॉ २२८ २९
गीता ५३ ६ ९७ ९७ (पा टि )
११६, १२१ १२७ (पा टि )
१२८ (पा टि ) १९९ १६ २२१
२१७ १२ ११०-१२, १४९
१५९ १९५ (पा टि ) १९८
४ ३ उसका उपदेश ५६ ११२
उसका पहला संस्कार २२ एवं महा
भारत की भाषा १९५ और महा
भारत १९६ धर्मसमन्वय ग्रन्थ १९५
'गीता-तत्त्व' १५६
गुजरात ८२
गुजराती पण्डित १५१
गुणविज्ञान १४१ जे जे १९५ (पा टि )
गुण तम ११६, १२९ रज ५४ ११५
१६ २१८ १९ सत्त्व ५४ ११५-
२६ सत्त्व का अस्तित्व ११६
गुरु, उसका उपदेश ११ उसका महत्त्व
१९ उसका विशेष प्रयोजन १५९
उसकी कृपा २१८ उसकी परिभाषा
१७१ और शिष्य-संबंध ८ गुरुत्व
११९ दक्षिणा ११९ -परम्परा
११८ परम्परागत ज्ञान १९९
भाई ११८ वाद, धार्मिक २११
सम्मा ११९
गुरु गोविन्दसिंह पैगम्बर १२४
गुरुदेव ११ २ ४२, २१४ १३०
(देखिए रामकृष्ण)
'गुरु बिन ज्ञान नहीं' १५७
'गुरु बिन होइ कि ज्ञान' १९९
'गुरुमत् गुरुमुखेषु' १३५
गूढ़ धर्म १११
गृहस्थ गुरु ११९
गृहस्थाश्रम ११२
गैलर टामस एफ २३५
गोप १२८ बालक ४ ९-१
गोपाल १११ उसका भय १२९ उसकी
समस्या ११ और कृष्ण से भेंट
१२९ १ ब्राह्मण बालक १२८
२९ कुलदारण्य १२७-२८
गोपालदास घोष (स्व ) १३२
गोमेध ११५
गोवर्द्धनी १५
गोवर्धन-धारण ४ १
गौतम बुद्ध ७
गौल (Gaulob) जाति ९२
ग्रीक ८५, १ ५ ६ १११ उनका जाने का
तरीका ८२ कोरस १९५ ज्योतिष
११४ नाटक १९५ प्राचीन ८९
भाषा १९५ ९६ यवनिका १९५
ग्रीस १५९ १८१ और रोम ५६
प्राचीन ११४
'ग्रेजुएट दार्शनिक सभा' १८

जीवात्मा २१८-१९, २६९, २९६-९८, ३०३-४, ३३२, ३७१, ३७४, ३७७, ३९४, ३९६, अनन्त काल के लिए सत्य नहीं ३७८, उसका स्वभावगत प्रयोजन ३९३, मनुष्य-वृत्ति की समष्टिस्वरूप ३७७, विचार और स्मृति की समष्टि ३७८
'जुपिटर' २५०
जुलू १५९
ज़ेंद-अवेस्ता २८१
जे० एच० राइट, प्रो० २०४ (पा० टि०)
जे० जे० गुडविन १९५ (पा० टि०)
जे० पी० न्यूमैन बिशप २३५
जेम्स, डॉ० ३००, ३०३, श्रीमती २८६
जेरुसलम १०७-८, २४७, और रोमन २५४
जेसुइट २३८, तत्त्व २३८
जेकब ग्रीन २३२
'जैण्टिलमैन' ८५
जैन ५१, ५४, ५९, ७४, ११९, २५३, धर्मावलम्बी और नैतिक विधान २८२, नास्तिक ३०३
जैमिनी सूत्र ५२
जोसेफिन, रानी ९९
ज्ञान ३५, ४०, अतिचेतन २१५, अधिभौतिक १५९, अलौकिक १३४, आत्म ४००, आत्मा की प्रकृति १५७, आध्यात्मिक १५९, आवश्यक वस्तु ४००, उपासना २५१, उसका अर्थ १००, उसका आदि स्रोत १५७, उसका दावा १५९, उसका लोप १५९, उसकी उत्पत्ति ३९७, उसकी स्फूर्ति, देश-काल पात्रानुसार १५८, उसके लाभ का उपाय १५९, उससे प्रेम २९६, एकत्व का ३९७, और अज्ञान ३३५, और धर्म ३१८, और भक्ति ३७४, और भाव २२२, और सुधार १८, काण्ड १४०, गुरु-परपरा-गत १५९, चर्चा १५८, तथा भक्ति-लाभ ३९९, द्वैत ३३५-३६, निरपेक्ष ३३५, -नेत्र ४०३, पुस्तकीय १८, २१८, -प्राप्ति १३९, -भक्ति १५५, ३५१, भक्ति, योग और कर्म २१८, मनुष्य की स्वभावसिद्ध सम्पत्ति १५७, -मार्ग और भक्तिमार्ग ३७२, -मार्गी और भक्तिमार्गी का लक्ष्य २६१, मिथ्या ३३५, योग ३५५, -लाभ ३८३, विहीन वर्ग और ईश्वर २३९, सबधी सिद्धान्त १५९, -सस्था २२१, सत्य ३३५, सम्यक् ३९७, सापेक्ष ३९७, स्वत-सिद्ध १५८
ज्ञानातीत अवस्था ३८४, ३८७
ज्ञानी, उसकी निरकुशता ६
ज्यामिति २१४, २८४, शास्त्र का विकास ११६
ज्यूलिस वर्न ३२०
ज्योतिष २८४, आर्य १६४, उसकी उत्पत्ति ११६, ग्रीक १६४, शास्त्र ३२३, ३७२

झँगलूराम ५७

'टाइम्स' (समाचारपत्र) ३१३
टाइलर स्ट्रीट डे नर्सरी २७९
टॉनी महोदय १४९
टामस एफ० गेलर २४५
टिटस २४७
टिन्डल ३०९
टेनेसी क्लब २४५
ट्रिब्यून २५९, २६३, उसके सवाददाता २५२

'ठाकुर-घर' ३८६
ठाकुर जी १४३-४५, ३५९, ३६७
ठाकुर साहब १४५-४६

डॉ० एफ० ए० गार्डनर २२८-२९, कार्ल वॉन बरगेन २३९, कैंट २९४, जार्ज

कवि २८५ सागर २१ स्त्री ६७
जर्मनी ८५ १८९ जाके ६६, ८१ ८९
जहाँगीर ५९, ९१
जाट ६५
जाति अंग्रेज ७९ अमेरिकन २४६ अरब १ अमीरियम १ अमुर १ १ आर्य ११ ६१४ २११ २४६ १ आयवर १२२, १७२ इस्कीमो ११ ८२ उसका एक अपना उद्देश्य ५८ उसका रहस्य (भारतीय) १ १ उसकी अपूर्णता १९१ उसकी उत्पत्ति १७७ उसकी उन्नति का लक्षण और उपाय ११८ उसकी कौटिल्य सामाजिकपरिस्थिति का पता २२२ उसकी विशेषता २८ उसके चार प्रकार २५१ उसके विभिन्न उद्देश्य ४८ एक सामाजिक प्रथा २११ १७७ एक स्थिति १ ४ ऐंग्लो सैक्सन १ २ और दया ५७ और व्यक्ति ५१ और शास्त्र ५७ और स्वधर्म ५६ क्षत्रिय २५१ खस ६४ गुण और धर्म के आधार पर २८ गुणगत ५७ गौल ९२ चीन ६१ जंगली १११ जन्मगत ५७ तुर्क १ ७ दयानुसार २८५ दरद ६१ दोष ७१ धर्म ५७ नारी २७९ निरामिषभोजी ७५ -पाँति १२१ पारसी ९२ प्रत्येक का एक जीवनोद्देश्य १ प्रथा १२ २४१ फ्रांक ९२ १ फ्रांसीसी ९९ बंगाली १५१ बर्बर १२ १ ६ १५८ २५१ भेद ११९ १७७ १९१ भेद उसका कारण २८९ १९१ भेद उसकी उपयोगिता १९१ भेद और स्वाधीनता १९१ भेद गुणानुसार ११५ भेद का कारण २८९, १९१ मांसभोजी ७५ मुगल १४ मुसलमान १ ८ यहूदी १ ९ यूनानी ९४ रोमन ९२ लेप्जिग २०१ वनमानुष ७१ वर्णसंकरी की सृष्टि १ ७ विभाग १८९ व्यक्ति की समष्टि ४९ व्यवस्था २२७ व्यवस्था और पुरोहित वर्ग १ ५ व्यवस्था के दोष २८८, १ ४ व्यवस्था सच्ची १ ४ सबसे गरीब सबसे अमीर २८ समस्या का सूत्रपात ११९ हिन्दू ११७-१८ २४६ ११४ हूण ६१
जातिगत विधि-निषेध १८१
जातित्व और व्यक्तित्व १
'जाति-धर्म' और 'स्वधर्म' ५७ मुक्ति का सोपान ५७ सामाजिक उन्नति का कारण ५७
जातीय चरित्र ९२ चरित्र का मेरुदंड ५८ चरित्र हिन्दू का ९ जीवन और माया ११९ जीवन की मूल भित्ति ५८ भाव आवश्यकता ४८१ मृत्यु ५८ विश्व संगीत ११९
जॉन स्टुअर्ट मिल १ २
जापान ४९, ९१ २७१
जापानी उनका खान-पान ७५ खाने का तरीका ८२ पश्चिम ११२
जार्ज पैन्थर्सन डॉ २७५
जिहोवा ४९, ९ देव १५७
जीनो दार्शनिक १८१
जीव १४२ २११ ११ शक्ति प्रकाश का केन्द्र ५३ -सेवा द्वारा मुक्ति ४ १ -हत्या ७४
जीवन आत्मा का २२ इन्द्रिय का २२ उसमें मोक्ष २२४ और मृत्यु का सम्बन्ध २५ और मृत्यु के नियम २१ गृहस्थ ४ चरम लक्ष्य २ ९ -तृष्णा १७१-७४ -बन्धन १७१ -मरण २१ व्यावहारिक ९ -संग्राम ११४ संन्यस्त ४ सामर १८७

दादू १२३
दान-प्रणाली ११३
दानशीलता १७
दामोदर (नदी) ८०
दाराशिकोह ५९
'दारिद्र्य-समस्या' ३९४
दार्जिलिंग ३५२, ३५५
दार्शनिक चिन्तन, उसका सूत्रपात ११८, तत्त्व ३८०
दाह-सस्कार २५१
दि प्रीस्ट ऐण्ड दि प्रॉफेट' ३६६
दिल्ली ९८, साम्राज्य १२४
दीक्षा-ग्रहण ३८६, -दान ३६३
दु ख और सुख ५३, २२२
दु ख भी शुभ १८७
दुर्गा ११५, पूजा ७८, १४७
दुर्भिक्ष-पीडित ६०-१
दुर्योधन ५०
'दूरात्परिहर्तव्य' ३५९
देव और असुर ६८, १०७, -कन्या १०७, गृहद्वार १७४, दर्शन १४३, मडल ११८, -शरीर ३८९, श्रेष्ठ ब्रह्मा ४०३, स्वरूप ३९४
देवता ३६०, आस्तिक ६८
देवराज ३६०
देवालय ८५, ३६४
देवेन्द्रनाथ ठाकुर १४९, १५३
देश, उसकी अवनति और भाषा १६८-६९, और काल १९६, ३३४, ३३७, और धर्म के प्रतिनिधि २४३
देश-काल २५, और नीति, सौन्दर्य-ज्ञान ३२६, और पात्र तथा मानसिक भाव ३२६, -पात्र-भेद १४०, व्यक्ति के भीतर ३७७
देश-भेद, उसके कारण अनिवार्य कार्य ७०, उससे समाज-सृष्टि १०३, भक्ष्याभक्ष्य-विचार १३५
'देशीय परिवार-रहस्य' १४९
देह-मन ३७४
देहात्मवादी ४८, ईसाई १५०
दैहिक क्रिया ३६२
दोष, आश्रय, जाति, निमित्त ७३
द्रविड ११८
द्रव्य ३३४
द्वि-आवर्तन ३३५
द्वेषभाव ६२
द्वैत ५९, ज्ञान ३३५, प्रकृति मे ३४, प्रत्यक्ष मे ३७१, -बोध ३७१, वाद २१, ३८३, ३९२, वादी ३४, ३८१, ३८६, वादी के अनुसार जीव तथा ब्रह्म २८२
धन और ईसाई २८०, विश्वयुद्ध का कारण २८०
धनुषीय यत्र ११७
धर्म ४, ६-७, १६, ६१, ११०, १२४, २०८, २४९, २५३-५४, ३१०, अनुभव का विषय ३३६, -अनुभूति १३९, आधुनिक फैशन रूप मे २६२, इतिहास १६१, इसलाम ३७७, ईश्वर की प्राप्ति २२१, ईसाई १६१, २३५-३६, २४२, २५२, २५९, २६१, २७१-७२, २७४, २७७, २८३, २८६, ३०९, ३८५, उन्चतर वस्तु की वृद्धि और विकास २९८, उपदेश २८३, ३३१, उपदेशक २४९, २७४-७५, २८४, उसका अर्थ ३९२, उसका गभीर सत्य और शक्ति ३३२, उसका मूल उद्देश्य ३२९, उसका मूलभूत आधार २६७, उसका मूल विश्वास ३१४, उसका लोप और भारत-अवनति ५०, उसका समन्वय २७२, २७५, उसकी महिमा २१३, उसके प्रति सहिष्णु-भाव २९७, एक की दूसरे धर्म मे सम्पूर्ति २४३, और अनुयायियो मे दोष २७५, और आतक ३७८, और ऐतिहासिक गवेपणा ३५७, और घडे का प्रतीक २४७, और देश ३०२, और धर्मान्ध २६०, और योग ३२९, और विज्ञान मे द्वन्द्व ३३१, और

पैटर्सन २४५ जेम्स १ १ १
सी टी म्यूकर्क २७१
डारविन १११
डार्विन १ ९
'डालर-उपासक जाति' २७७
डालर-पूजा और पुरोहित २७२
डिट्रॉएट २१२ ११ २७ २७४
डिट्रॉएट इवनिंग न्यूज २११
डिट्रॉएट जर्नल २१२
डिट्रॉएट ट्रिब्यून' २५ २५२-५१
२५९, २११
डिट्रॉएट फ्री प्रेस २५५, २११ (पा
टि ) २११
डिवेस्टिंग सत्य १५४
डेमस्थेनीज २१५
डेली ईगल २८१ मवट २११ सैरा-
टोगियन २१२
'डेस्सर्ट' व्यायाम १५१
डेविड हेमर २८९
डेस मोइन्स न्यूज २०१
ड्यूक वर्जिनियाँ १४
ड्यूनक मारवा ट्राइम्स २१४
ढाका ८
तड़ित्प्रवाह ११४ (पा टि )
तत्त्वज्ञान १४ १५१ दर्शन २१७
साक्षात्कार ११५
'तत्त्वमसि' १७४-७५
तपस्या विविध ११७
तमोगुण ५४ ५७ ११६ १५९ २१९
और रज तथा सत्त्व ५४
तर्कशास्त्र २८
ताज २२४
तातार ११८ उनका प्रमुत्व १ ७
मातृ १ ७
तातारी १ ७ रक्त १ ७
तान्त्रिक ९
तामसिक कौम ५४
तारा १२१
तिब्बत ४९ १४ १९ और तातार
१ ५ वहाँ की स्त्रियाँ १२१
तिब्बती ११-४ परिवार १२१
तीर्थ २ ८ स्थान ९१ ११३ १२४
तुकाराम १२१
तुरीयानन्द स्वामी ११९
तुर्क १ ७ जाति १ ७
तुलसी १२ कृत १२८ महाराज ११९
(देखिए निर्मलानन्द स्वामी)
तेलुगी ८२
त्याग ११४ उसका महत्त्व ११५
उसकी शक्ति २१ और वैराग्य
१४ -भाव १४२
त्रिगुणातीतानन्द स्वामी १४१
त्रिदेव और ईश्वर २८४
त्रिभुजात्मक संग्राम ११९
थर्ड स्ट्रीट २७
थॉमस-ए-कैम्पिस १४४
थाउजेंड आइलेंड पार्क १७१ (पा टि )
थियोसॉफिस्ट २१४
थियोसॉफी सम्प्रदाय १४९
'दक्षिणा' १४७
दक्षिणी ब्राह्मण ८१
दक्षिणेश्वर १४५
दण्ड ईश्वर द्वारा २७१ प्रतिक्रिया मात्र
२७१ मानसिक २७९
दत्त माइकेल मधुसूदन ४२
दया और न्याय ११३ और प्रेम १ १
दयानन्द सरस्वती १४९ १५१
दरद ११
दर्शन और तत्त्व ज्ञान २५१ तथा अद्वैत
११९ शास्त्र १६, १ ८ ११२
१८१ शास्त्र और भारत का धर्म
१५ शास्त्र और विधि ९५१
दस लॉक सम्यता की आधारशिला २८४
दस्यु और वेश्या की उत्पत्ति १ ४-५
दहेज २६४
दाक्षिणात्य भाई ७

विचारक २४५, विचारधारा २८१, विश्वास २६९, २८२, विषय २७५, व्यक्ति २५८, व्यक्ति का लक्षण ५२, व्यक्ति की प्रार्थना-मुद्रा २६०, शिक्षा २२८-२९, सस्था २८८, सच्चा २८२, समन्वय २७२, सिद्धान्त २९०, सिद्धान्त, प्राचीनतम २७
'धुनो' का युग २४९
ध्यान ३१७, उसकी आवश्यक बातें ४००
ध्रुपद और ख्याल ३९
ध्रुवप्रदेश, उत्तरी ६३

नचिकेता ३५०
नन्द ४०२
नन्दन वन ४७
नरक १०, १२, २९, ५२, १८०, २६६, ३०१, ३०३, ३७८, कुण्ड ७०
नरभक्षी २६४,-रगक्षेत्र १३७
नरेन्द्र ३५५ (देखिए विवेकानन्द)
नरेन्द्रनाथ सेन ३४०, ३६४
नर्मदा १६३
नर्मदेश्वर १६३
नव व्यवस्थान ३६, ११३, २८१
'नाइण्टीन्थ सेन्चुरी' १४९, १५१-५२
'नाइन्टीन्थ सेन्चुरी क्लब' २४६
नागपुर १५५ (पा० टि०)
नागादल १०८
नाटक, आर्य १६५, कठिनतम कला ४३, ग्रीक १६५,-रचना-प्रणाली १६५
नानक १२३
नाम-कीर्तन १३६,-जप १२६,-यश ३१६, ३९१,-रूप १७४, १७७
नायक १४३
नारकीय अग्नि २६०
नारद १४३
नारायण १२६
नारी, उस पर दोषारोपण ३०१, उसकी कल्पना का उदय ३०२, उसके प्रति हिन्दू भावना २७७, उसके प्रति अनौचित्य २०, ऋषि ३०२, और पुरुष १९, २०४, नारीत्व, उसका आदर्श ३००
नार्थम्प्टन डेली हेरल्ड २७६
नार्थ स्ट्रीट २२८
नार्वे ८१
नासदीय सूक्त १९६
नित्यानन्द, स्वामी ३५२
निमित्त दोष ७३
नियम, उसकी परिभाषा ३१, और कीर्ति ६२, और जगत् के विषय ३२६, और प्रकृति ३१, और रुपया ६२, जातिगत ३८६, तथा मनुष्य ६२, सामाजिक ३८६
निरपेक्ष ज्ञान ३३५, सत्ता ३८४, सत्य ३३५
निरामिषभोजी ६५, जाति ७५
निरीश्वरवादी, पश्चिम २८९
निर्गुण ब्रह्म १४६, सत्ता ३८४
निर्भयानन्द, स्वामी ३६४
निर्मलानन्द, स्वामी ३५२, ३६२-६३ (देखिए तुलसी महाराज)
निर्वाण, उसका अधिकारी ३०१
निर्वाणषट्कम् २०७, ३८९ (पा० टि०)
निवृत्ति मार्ग ३८४
निवेदिता, भगिनी १९५ (पा० टि०), ३६६, ४०१
निष्काम कर्म १४०, १५८, ३३०, ३५८, ज्ञान १४०, भक्ति १४०, योग १४०
नीग्रो लोग २७५
नीति-तत्त्व ३९१,-शास्त्र २४८, ३९६, -शास्त्र और व्यक्ति का पारस्परिक सम्बन्ध ३९६,-सहिता २८१
नीति, दण्ड, दाम, साम ५२
नीलकठ १६२
'नूह' (Noah) १५७
'नेटिव' ४८
'नेटिव स्लेव' ४८
'नेति' ३८४

विज्ञान में समानता १२१ कर्म
११२ कल्पना की चीज नहीं २१८
कार्य २८ क्रियात्मक २७७ क्षुधा
१५२ ग्रन्थ १२७ ११२, ११९
४ २१५, २२१ २८१ २९६,
२९८ ११ ग्रन्थ चीन २७४
जीवन ११५ जीवित के लिए विभिन्न
धर्म की आवश्यकता २७१ तथा
अन्धविश्वास २७४ तर्क १५
तीन मिशनरी २७१ दीक्षा २५२
धार्मिक और सामाजिक सुधार प्रयत्न
की सम्पूर्ति १ ४ नकारात्मक नहीं
२९८ नवयुग १४२ पथ ११२
पंथ तथा पुण्य और पाप २२१
परायण २८२ परिवर्तन २९
२७१-७५, २९५ परोपकार ही
२२२ पवित्रता की अन्तःप्रेरणा
के प्रतीक २४७ पाश्चात्य २१८
पिपासा १५२ पैतृक २४५ प्रकृत
२४१ प्रचलित १२९ प्रचार २१७
२४१ १७१ प्रचार-कार्य १७५
प्रचारक १११ २४१ २१४ १५,
२७५, १९७ प्रचारक-सम्बन्धी
१११ प्रत्यक्ष अनुभव का विषय
१२४ २१८ प्रत्येक की निजी निधि
यथा २१४ प्रथम मिशनरी बौद्ध
२७१ प्रवर्तक १५४ १ ५ बुद्ध
२९१ बौद्ध ११२ ११ २५२, २७२
१ १ १७८ १९५ ब्राह्म १४९
१५१ ब्राह्मण २४२ भारतीय
२११ भारतीय मत २६७ भाव
१७१ १९४ भावना १११ मत
१२९ १ १८१ १८५ महात्मा
२१९, ११९, १११ मिशनरी १५२
२९४ रक्षक २२२ राज्य १११
१५ १ ९ लाभ १२४ ११५
वाद-विवाद में नहीं १२४ वास्तविक
और मनुष्य १२१ विभिन्न उसकी
उत्पत्ति क्रम १११ विश्वास २४७
१११ और ९१ वैराग्योत्पन्न १४७
वैज्ञानिक १७५ वैदिक १९२
-व्यवस्था २७४ -शाखा २२४
शास्त्र २११ २७२ १११ १२,
१८१ शिक्षा १४१ १८५ -संस्थाएँ
२८१ संसार का प्राचीनतम १५२
सकारात्मक २९८ सच्चे २१८
सभा १११ समन्वय में दो शक्तियाँ
२१ सम्बन्धी कथा-वार्ता १२९
-सम्मेलन २४१ ४४ २७८ साधन
१४७ साधन और सद्-चिन्ता १४७
साधना १४९ सिद्धान्त २१६, २१९
हिन्दू १४१ ४१ २४५, २५४
२९९, २७७ २११ ९१९ १७६,
१८ हिन्दू, उसका सर्वव्यापी
विचार तथा प्रमुख सिद्धान्त २४२
हिन्दू उसकी शिक्षा २१८
'धर्म और 'पंथ' २४४
धर्मपाल २१५
'धर्म-सम्मेलन' २१२
धर्मसम्राट् अशोक ८९
धर्मान्ध और नास्तिक २१
धर्मान्धता उसकी अभिव्यक्ति २१
धर्मार्थ चिकित्सालय १११
धातुधर्म १९१ (देखिए बौद्ध स्तूप)
धारणा और अभ्यास १४२ और ध्यान
१४४
धार्मिक ५९ अभिव्यक्ति २५८ आन्दो-
लन १२४ २१८ आश्रम २११
उत्सव-पूजन २१४ -एकता-सम्मेलन
१८ और पैगम्बरों की पूजा २१८
और मशाल १२४ रूप ७ ११
क्षेत्र १२५ खाना-पीना हिन्दू का ४
ग्रन्थ १११ चाल-ढाल हिन्दू की ४
जीवन ७१ २११ २७१ दमन
१५ दोष ९१२ दृष्टिकोण १२४
प्रचार ९११ प्रतिनिधित्व २८९
मत २७४ मनुष्य ९२१ मनोभाव
९७८ महत्वाकांक्षा १२४ मामला
२८१ रीति २७१ वाङ्मय २७४
विकास-क्रम ९८१ विचार २९२

पाण्डित्य, उसका प्रदर्शन १६७
पातिव्रत्य, उसका सम्मान २६३
पाप ४१, ५१-२, २०८, २१३, २१७-१८, २६९, ३१३, और अन्धविश्वास १५१, और पुण्य ४०, कमजोरी, और कायरता २२२, घृणा २२२, परपीड़न २२२, पराधीनता २२२, -पुण्य २२३, ३१७, सदेह २२२
पापी और महात्मा १९३
पारमार्थिक सत्ता २७३
पारसी १०७, २५४, उनका विश्वास २८१, जाति ९२, सभ्यता ९२
पार्थिव जड वस्तु और मन ३७६
पाली और अरबी १६१, भाषा ४२
पाश्चात्य अर्थ २१५, असुर ४८, आहार ८९, उनका स्वास्थ्य ६५, उनकी दृष्टि मे प्राच्य ४७, उनमे धर्म की प्रधानता ५०, उनसे सीखने का उपाय ६२, उसमे असामाजिक भाव ३९१, जगत् १४९, जगत् और भारत १३६, जाति ३९२, जाति द्वारा कृष्ण-उपदेश-अनुसरण ५५, देश ५०, ६८, ८०, ८७-८, ९६, ३२२, ३८५, ३८८, देश और उनके वस्त्र ८५, देश और खाद्य सबधी वाद-विवाद ७५, देश का आहार ८०-१, देश मे राजनीति ६१, देश मे सत्त्वगुण का अभाव १३६, देशवाले ३८९, देशवासी ६५, ८०, ३८०, देशवासी असुर की सतान ६८, देशीय पोशाक ६६, धर्म ९०, २६८, प्रभाव ३८५, मत से समाज का विकास १०१, विज्ञान ३३६, ३८२, विज्ञान, आधुनिक ३२३, विद्या ३०९-१०, ३३६-३७, शासन-शक्ति १३७, शिष्य ३६२, शिष्या १९ (पा० टि०), सस्कृतज्ञ विद्वान् १४८, सभ्यता ९१, सभ्यता का आदि केन्द्र ९२
पास्टयूर ११३
'पिक्विक् पेपर्स' ३१६
'पिता' ८
पियरेपोट २८३
पुण्य २०८, और पाप २५३, प्रेम करना २२२, शक्ति और पौरुष २२२, स्वतन्त्रता २२२
पुनर्जन्म ७९, २३९, उसका सिद्धान्त २४, २८, २३९, २४७, २९५, कर्म पर निर्भर ३७२, वाद १५, २९४, वादी २७९, सिद्धान्त और नैतिक प्रेरणा २९, सिद्धान्त के बीजाणु २४०
पुराण, अग्नि ५१, एव तन्त्र १४६, और वेदान्त १४०, और शास्त्र ५७, कथा २४७, विष्णु १६३
पुरी जी १४४ (देखिए भोलापुरी)
पुरुष, ब्रह्मज्ञ ३६, शक्तिमान ६२, शक्तिमान ही समाज का परिचालक ६१, सिद्ध ३६०
पुरोहित ३७, ३०४, ३७८, और ऋषि ३६६, और सन्यासी २५३, पन्थ १२०, प्रपच १८, ११९, वर्ग ३००, वर्ग, आनुवशिक १२१
पुरोहिती, पैतृक व्यवसाय ७
पुर्तगाल ८१
पुस्तक, अनश्वर ३७, और सत्य ३७, मानचित्र मात्र २९९
पुस्तकीय ज्ञान २१८
पूजन एव अर्घ्य दान ११६
पूजा-अर्चना ३४३, -आरती ३६७, गृह ३६१, ३६३, ३८६, -गृह और ध्यान ३९९, पद्धति और मनुष्य २२१, -पाठ ११४, ३१७, ३८६-८७
पूर्णता और जन्म २१५
पूर्णाग ११७
पूना १२४
पूर्वज, उनका ऐश्वर्य-स्मरण १६०, और पूर्वज की गौरव-गाथा १६०,

'नेति-नेति' २२, २ ८
नेपाल ८४ १३५ और तिब्बत १११
   वहाँ बौद्ध प्रभाव १११
नेपोलियन तृतीय ९८, ९७ ९९ बाद
   शाह ९९ बोनापार्ट ९९ महावीर
   ९८ ९
नैतिकता और आध्यात्मिकता २१६
   २११
नैतिक साधन २५३
नोबल कुमारी ११६
'न्याय-दिवस' २७९
न्यूकमें सी टी डॉ २६९
   २७१
'न्यूज' २५४
न्यूजीलैण्ड १११
न्यूयार्क ८९, ९५ १७३ (पा टि )
   १७६(पा टि ) १९७(पा टि )
   २ १ २१६ २२१ २५६, २७
   वहाँ का स्त्री-समाज २१६
'न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून' २७८
'न्यूयार्क वर्ल्ड' २१७

पंचकोश २ ७
पंचवायु २ ७
पंचेन्द्रिय २५५
पंजाब ८ ८२ १३५
पश्चिम ५९
पतंजलि उनका महाभाष्य ४२, ११८
   महर्षि १५८
पर-निन्दा १११
परब्रह्म ४ १
परम अस्तित्व १६, २११ आनन्दस्व-
   रूप २ ७-८ चित् २ ७-८ नामी
   २ २ -तत्त्व का ज्ञान २१५ धर्म
   १८ ध्यानावस्था ५४ प्रभु १९४
   मंगल १७९ मानवतावादी और
   पतन २२२ भेद नैतिकता नहीं
   २१६ मनु १७ २ ७-८
परमहंस ११६ १२६ देव ११८
   रामकृष्ण २१४ (देखिए रामकृष्ण)
परमात्मा ७ ११, १७ ५६ २१२
   २१७-१९ २२२ २११ २७४
   परमपिता २७८ सगुण १८ हमारा
   व्यक्तित्व ४२ हर एक में २२
परमानन्द १९६ २ ५
'परमानन्द के द्वीप' २४०
परमेश्वर ११-४ १६-७ २ २, २२
   अनन्त १२७ और नादिवासी १५
   निर्गुण १२७ वैयक्तिक १२७
परलोक-विद्या २२१
परहित ११
परा विद्या ११६, १५९
परिकल्पना ११
परिणामवाद ११ १ १८२
परिणामवादी १ १
परिपचन (assimilation) ११६
परिव्राजक २८१
परोपकार ११९ करुणाजन्य ४ १
   मूलक करुणा ४ १
पर्दे की कठोर प्रथा २६५
पल्ली-पुरोहित २११
पवहारी बाबा १५३ ११७
पवित्र आत्मा २२ चरित्र २१६, १११
पशुपति बाबू १४१ बोस १४१
पशु-बलि १२०-२१
पश्चिम और भारत में स्त्री संबंधी
   भावना १ २ देश २१७
पश्चिमी देश २६५ शिष्टाचार और
   रीति-रिवाज २६५
पैसाडेना १
पहलव ११
पहलवी भाषा १४
पहाड़ी ८१
पाँच इन्द्रिय २४
पांचाल १२
पाइथागोरस ९८२
पाउल मैस्री २८७ २९६
पाखंड और नास्तिकता २८
पाटलिपुत्र १२ साम्राज्य १२१
पाणिग्रहण (संस्कार ) १५४

ाण्डित्य, उसका प्रदर्शन १६७
ातिव्रत्य, उसका सम्मान २६३
ाप ४१, ५१-२, २०८, २१३, २१७-१८, २६९, ३१३, और अन्धविश्वास १५१, और पुण्य ४०, कमजोरी, और कायरता २२२, घृणा २२२, परपीड़न २२२, पराधीनता २२२, -पुण्य २२३, ३१७, सदेह २२२
पापी और महात्मा १९३
पारमार्थिक सत्ता २७३
पारसी १०७, २५४, उनका विश्वास २८१, जाति ९२, सभ्यता ९२
पार्थिव जड वस्तु और मन ३७६
पाली और अरबी १६१, भाषा ४२
पाश्चात्य अर्थ २१५, असुर ४८, आहार ८९, उनका स्वास्थ्य ६५, उनकी दृष्टि मे प्राच्य ४७, उनमे धर्म की प्रधानता ५०, उनसे सीखने का उपाय ६२, उसमे असामाजिक भाव ३९१, जगत् १४९, जगत् और भारत १३६, जाति ३९२, जाति द्वारा कृष्ण-उपदेश-अनुसरण ५५, देश ५०, ६८, ८०, ८७-८, ९६, ३२२, ३८५, ३८८, देश और उनके वस्त्र ८५, देश और खाद्य सबधी वाद-विवाद ७५, देश का आहार ८०-१, देश मे राजनीति ६१, देश मे सत्त्वगुण का अभाव १३६, देशवाले ३८९, देशवासी ६५, ८०, ३८०, देशवासी असुर की सतान ६८, देशीय पोशाक ६६, धर्म ९०, २६८, प्रभाव ३८५, मत से समाज का विकास १०१, विज्ञान ३३६, ३८२, विज्ञान, आधुनिक ३२३, विद्या ३०९-१०, ३३६-३७, शासन-शक्ति १३७, शिष्य ३६२, शिष्या १९ (पा० टि०), सस्कृतज्ञ विद्वान् १८८, सभ्यता ९१, सभ्यता का आदि केन्द्र ९२
पास्टयूर ११३
'पिक्विक् पेपर्स' ३१६
'पिता' ८
पियरेपोट २८३
पुण्य २०८, और पाप २५३, प्रेम करना २२२, शक्ति और पौरुष २२२, स्वतन्त्रता २२२
पुनर्जन्म ७९, २३९, उसका सिद्धान्त २४, २८, २३९, २४७, २९५, कर्म पर निर्भर ३७२, वाद १५, २९४, वादी २७९, सिद्धान्त और नैतिक प्रेरणा २९, सिद्धान्त के बीजाणु २४०
पुराण, अग्नि ५१, एव तन्त्र १४६, और वेदान्त १४०, और शास्त्र ५७, कथा २४७, विष्णु १६३
पुरी जी १४४ (देखिए भोलापुरी)
पुरुष, ब्रह्मज्ञ ३६, शक्तिमान ६२, शक्तिमान ही समाज का परिचालक ६१, सिद्ध ३६०
पुरोहित ३७, ३०४, ३७८, और ऋषि ३६६, और सन्यासी २५३, पन्थ १२०, प्रपच १८, ११९, वर्ग ३००, वर्ग, आनुवशिक १२१
पुरोहिती, पैतृक व्यवसाय ७
पुर्तगाल ८१
पुस्तक, अनश्वर ३७, और सत्य ३७, मानचित्र मात्र २९९
पुस्तकीय ज्ञान २१८
पूजन एव अर्घ्य दान ११६
पूजा-अर्चना ३४३, -आरती ३६७, गृह ३६१, ३६३, ३८६, -गृह और ध्यान ३९९, पद्धति और मनुष्य २२१, -पाठ ११४, ३१७, ३८६-८७
पूर्णता और जन्म २१५
पूर्णांग ११७
पूना १२४
पूर्वज, उनका ऐश्वर्य-स्मरण १६०, और पूर्वज की गौरव-गाथा १६०,

और भक्तिपूर्ण हृदय ११ तथा भक्तिहीन मंथित हृदय ११
पूर्वजन्म १७१
पूर्वीय विचार २९५
'पुकर-हाउस' ३२१
'पेरिपैटेटिक्स' २४२
पेरिस ९६, ७७ ८५, ९१ ९६ ९८ ११ ११२ (पा टि ) उसकी विलासप्रियता ९५ उसकी श्रेष्ठता ९१ और लन्दन ८६ दर्शन विज्ञान और शिल्प की खान ९४ धर्मेतिहास-सभा १६२ नगरी ९१ २ ९४-५ पृथ्वी का केन्द्र ९४ प्रदर्शनी १९१ प्राचीन ९७ यूरोपीय सभ्यता की गंगोत्री ९१ वहाँ की नर्तकी ९६ विद्या शिल्प का केन्द्र ९९ विश्व विद्यालय ९४
'पेरिस-मेल' ८५
पेक १ १
पैम्पियार्क १ ९
पैतृक धर्म २४५
पोप १ ७
पोशाक उसमें अन्तर ९६-८ उसका फ़ैशन ९७ उसकी सृष्टि एक कला ९६ तथा व्यवसाय ९७ पाश्चात्य देशीय ९६ सामाजिक ९६
'पोस्ट' २९४
पौधा तथा बच्चा २१४
पौराणिक अवतार १५७ युग १७२
पौरुष और नि स्वार्थ २२१
प्यार पूजा २ १ २
प्यूरिटन धर्म २ ४
प्रकाश १८८, १ २ १९८ ईश्वर १८६ उसका पुत्र १८७ उसकी आत्मा १ ३ शिल्प १८६ १९७
प्रकाशमा उसका अर्थ २५३ स्फूर्ति गम्य २५३
प्रकाशानन्द स्वामी २९४
प्रकृत तत्त्ववित् १५१ ब्रह्मवित् १५१ भक्त १५१ योगी १५१
'प्रकृत महात्मा' १५१ १५१
प्रकृति २५ २७ १ ४२ १ १८ २२१ २५८-५९ ३५९, ३८४ अन्त बाह्य २११ उसका अस्तित्व २८ उसका नियम २७४ उसकी अभिव्यक्ति २९१ उसके मध्य सत्य आत्मा ११ उसमें प्रत्येक वस्तु की प्रवृत्ति २९१ और जीवात्मा २१ और परमेश्वर ११ और मुक्ति २१ दैवी १७८ नियम संबंधी ११ नैतिक २५१ पर समता और स्वतन्त्रता का नियम २९८ परमेश्वर की शक्ति ११ बंधनमुक्त २९ भौतिक २९१ यथार्थ और आदर्श का नियम २९८
प्रजातन्त्र ९९ १ वादी १४१ ४०
प्रजावैस्की ९४
प्रतापचन्द्र मजूमदार १४९ १५२
प्रतिमा-पूजा १२
प्रत्यक्ष बोध २८ वादी १५८
प्रत्यक्षानुभूति १९२
प्रत्ययवादी उनका दावा २९८
प्रथा १ ४
'प्रबुद्ध भारत' १९ १४९, १८९
प्रभु ११ ११ १७ ४ ५२ १२७-२९ १३८ १४२ १४७ २ ४ २ ७ १७८ १९७ १९९ अन्त र्यामी १४१ उसका भय धर्म का प्रारम्भ २४८ ठेयस्वरूप ११८ परम १ ४ भावस्वरूप ११८ मुक्त १२८
प्रमदादास मित्र १५१
प्रवृत्ति मार्ग १८४
प्रशान्त महासागर १११ २० २८५
प्राचीन विद्यालय २२८ २९
प्रसन्नकुमार १४१
प्राकार २ ७

प्राचीन, कर्मकाण्ड १२०, मिस्र १०५, रोमन के खाने का तरीका ८२
प्राचीन व्यवस्थान ३६, २८१
प्राच्य, उसका उद्देश्य और पाश्चात्य धर्म ५०, और पाश्चात्य ४७-८, ५५, ११४, ३५२, और पाश्चात्य आचार की तुलना ७१, और पाश्चात्य का अर्थ ६८, और पाश्चात्य का धर्म ५०, और पाश्चात्य सभ्यता की भित्तियाँ १०५, जाति और ईसा-उपदेश ५५, -पाश्चात्य की साधारण भिन्नता ६५, -पाश्चात्य मे अन्तर ६६, ७०, -पाश्चात्य मे स्वभावगत भेद ३९२
'प्राण' ३६०
प्राणायाम ३६१-६२, और एकाग्रता ३८६
प्रायोपवेशन ३४८
प्रार्थना, उसकी उपादेयता ४०१, उसके विभिन्न प्रकार २९१
प्रेम ३५, ४०, १५४, ईश्वर का २६२, उसका बन्धन १९, उसकी परिभाषा २६२, उसकी महिमा १२८, उसकी व्याख्या २६१, और अगाध विश्वास ३६८, और आशा ३८०, और निष्काम कर्म १८३, और भाव २६१, और विज्ञान ३७, और श्रद्धा २६२, -पात्र २६२, -भाव ३९८, शाश्वत १८३, १९२, सच्चा २२०
'प्रेम को पथ कृपाण की धारा' ३९८
प्रेमानन्द स्वामी ३५२, ३५५, ३५९-६०
प्रेरणा, उच्च १४
प्रेसबिटेरियन २८, २२२, चर्च का धर्मोत्साह और असहिष्णुता २७२
प्रो० राइट २३१
प्लाकी ९२
प्लास द लॉ कॉन्कार्ड ९७

फर्स्ट यूनिटेरियन चर्च २४२-४३
फादर पोप १८१, रिबिंगटन ३१०
फारस १०७
फिलिन्ग ९२
फैमिन इन्श्योरेन्स फन्ड ३२३
फैरिसी (यहूदी कर्मकाण्डी) २७
फ्राक, जाति ९२-३
फ्रास ६७, ६९, ८५, ८९, ९१, ९३, ९८, १०८, उसका इतिहास ९९, उसका राष्ट्रीय गीत ९९, उसकी क्राति ९८, उसकी विजय ९९, औपनिवेशिक साम्राज्य-स्थापना की शिक्षा ९४, कैथोलिक प्रधान देश १६१, जातियो की सघर्ष-भूमि ९२, देश ६८, ३१३, निवासी ९४, पाश्चात्य महानता तथा गौरव का केन्द्र ९१, यूरोप का कर्मक्षेत्र ९२, स्वाधीनता का उद्गम-स्थान ९४
फ्रासीसी, अग्रेज और हिन्दू ५८, उनका रीति-रिवाज ८१, उनकी विशेषता ९५, और अग्रेज ६०, १२४, कन्या ९०, क्रातिकारी दार्शनिक ३०२, चरित्र ५८, ९४, जल सबधी विचार ८९, जाति ९९, दार्शनिक और उपन्यासकार २५८ (देखिए बालज़क), पद्धति ८१, परिवार ९५, पोशाक ८५, प्रजा ५८, ९९, रसोइया ८१, विप्लव ९४, सब विषय मे आगे ८५, सभ्य ९५
फिरगी ९२
'फ्री प्रेस' २५२
फ्रेंच भाषा १६६
फ्रेज़र हाउस २७०
फ्लामारीयन ११३
फ्लोरेन्स नगरी ९३

वग देश १३५, १६८, ३५६
वगला देश ३४२, पाक्षिक पत्र १३२, भाषा ४२, १६७-६९, ३५४,

मासिक पत्र ११९ (पा टि )
समालोचना १४८
बंगवासी (मुखपत्र) ११९
बंगाल ५१ (पा टि ) ८ ८६, ११४ १६८ ११२, १५६, ११९ और पंजाब ८१ और यूरोप १ २ थियोसॉफिकल सोसायटी १४२ देश ७९ ७९ पश्चिम ७९ पूर्व का भोजन ७९
बंगाली आधुनिक ११३ कवि प्राचीन ७७ जाति १५३ टोला ९७ भोजन का तरीका ८२ युवक ११७
बंद्योपाध्याय पासिपद ११४
बंसीधारी ४९ (देखिए कृष्ण)
'बड़प्पन' ८२
बद्रिकाश्रम ७८
बनारस १२
बन्धन ६, ८ १९, ११ १७४ २८८ १२ १२२, १७४ ११९ और मोह १ भौतिक १८५ मुक्त १७५
बरमी उनके खाने का तरीका ८२
बराहनगर मठ १४४
बर्बर जाति ९२, १९८
बर्लिन ९५
बलरेन ४ २
'बलवान की जय' ७९
बल्लभाचार्य १४२
बसु, जगदीशचन्द्र ११४ (पा टि ) पशुपति १४१ शिवचन्द्र ११४
बहुजन हिताय बहुजन सुखाय ११७ १५५
बहुपति की प्रथा १२९
बहुवादी और मिदरायण १११
बाइबिल २ ४ २ ७ २५१ २९२ २९८, २८६, २९९, २९८ ११ १११ १८९
बाबराबाजार १४१
बालकृष्ण १२७
बाकपाक २५८
बाजी राजा १११
बाल्टीमोर १९१ अमेरिकन २९० २९१
बास्तिक क्रिया ९८
बाह्याचार और अत्याचार ७ और अनाचार ७
'बिमेटालिज्म' २१२
बिशप जे पी न्यूमैन २९५
'बी थ्री' (Three B S) २८९
बीजगणित २८४
बीन स्टाक्स २८५
बुकानर १११
'बुद्धरत्न के धर्म-परिवर्तन' ११
बुद्ध २१ १६, १६, ५१ ५५ ६, ११८ १५७ १६२ ११ १९६ १९७ २११ २१८ ११ २४८ २१२ २७८-७९ २९२, १८१ अवतार रूप में स्वीकार १ १ उनका आविर्भाव २९१ उनका धर्म २८१ २९१ २९३-९४ १ ४ उनका मन्दिर १७१ उनका सिद्धान्त १ ४ उनकी महानता १ ५ उनकी शिक्षा २९४ १ ५ उनकी शिक्षा और महत्त्व २९४ १ ४ उनकी सीख २७५ उनके आगमन से पूर्व १ ४ उनके युग १ ९ उनके सदाचार का नियम २७४ उनके प्रति हिन्दू १ १ एक महापुरुष १९५ एक समाज-सुधारक १९५ और ईसा ४१ २८१ और बौद्ध धर्म १९५ और सच्ची जाति व्यवस्था १ ८ दार्शनिक दृष्टि से २१ द्वारा आन्तरिक प्रकाश की शिक्षा १७९ द्वारा भारत के धर्म की स्थापना २९२ पहला मिशनरी धर्म २९४ मत २ ६, १ १ १ ९ महान् गुरु १ १ वाद २५१ वेदान्तवादी सन्यासी १९५

बुद्धदेव ५०, १६३, ३८०, भगवान् १५४ (देखिए बुद्ध)
बुद्धि, जड़ चैतन्य ७५, सत्य की ज्ञाता २२२
बृहदारण्यक उपनिषद् ३५४
'बेनीडिक्शन' २८४
बेबिलोन १०१, १५९
बेबिलोनिया ३००, निवासी ६४
बेलगाँव ३११, ३२५
बेलूड़ मठ १९२ (पा० टि०)
बे सिटी टाइम्स प्रेस २६९
बे सिटी डेली ट्रिब्यून २७०
'बोओगे पाओगे' १७३
बोर्नियो ४९, ६३
बोस्टन इवनिंग ट्रांस्क्रिप्ट २३२
बोस्टन २७०, वहाँ की स्त्रियाँ २१७, हेरल्ड २७९, २८१
बौद्ध ३७, ५४, ५९, ७४, ११९, २३७, २६८, २७५, २७९, आधुनिक २९८, उनका विश्वास १५७, उनकी जीवदया ९, उनके दुर्गुण ५६, उनमें जाति-विभाग ३९५, और ईश्वर ३६, और वैष्णव ११९, और वैदिक धर्म का उद्देश्य ५६, काल १३५, कालीन मूर्तियाँ ८६, ग्रन्थ २७४, चैत्य ३७३, तंत्र १६३, दर्शन २३५, देश ३९५, धर्म ३६, ५६, १०७, १२०-२२, १६१-६३, २५२, २५४, २७२-७३, ३७८, ३९५, धर्म का कथन ३०१, धर्म का सामाजिक भाव ३९५, धर्म की जनप्रियता १२०, धर्म के सुधार १२०, धर्मावलम्वी ३४१, प्रचारक १२१, प्रथम मिशनरी धर्म २५२, भारत मे उनकी सख्या २३९, भिक्षु १६३, भिक्षु धर्मपाल २३६, मत १५१, २७५, मतावलम्वी ८८, मिश्र ५६, राज्य ५१, विद्वान् २३५, सगठन १२१, सम्प्रदाय १६३, साम्राज्य, पतनोन्मुख १२१, स्तूप १६३
बौद्धिक पाण्डित्य ८, विकास १०९, २४१, शिक्षा १४
ब्रजवासी ४०३
ब्रह्म १००, २२३, ३५८, ३६०, ३८८, ४००, अखण्ड १८३, अविनश्वर १८३, ईश्वर तथा मनुष्य का उपादान ४०, उसका धर्म २४२, २४७, उसका साक्षात्कार ३७३, ३९३, ज्ञान ३६०, ज्ञानरूपी मुद्रिका ३१९, तथा जगत् २८२, तथा जीव २८२, दृष्टि ३५८, निर्गुण १४६, ३९९, निर्दोष और समभावापन्न ३९१, पूर्ण, यथार्थ ३९६, -वध ५२, वाद १२०, शाश्वत १८३, सगुण २८२, ३८४, ३९९, सत्ता, निर्गुण ३८४, सत्य १८३-८४, सूत्र ३५, ३५९ (पा० टि०), स्वरूप ३९४
ब्रह्मचर्य ९७, ३३२, ३४६, ३६५; -भाव ३४७
ब्रह्मचारी १५४, ३५३, और सन्यासी ३५८, नवीन ३६५, मित्र ३६४, विद्यार्थी ९७
ब्रह्मज्ञ पुरुष ३६०
ब्रह्मत्व, उसकी महिमा १६२, -ज्ञान १४४
ब्रह्मपुत्र १२
ब्रह्मराक्षसी १६९
'ब्रह्मवादिन्' पत्र ३६६
ब्रह्मा १४६, १५७, देवश्रेष्ठ ४०३; सृष्टिकर्ता २४८
ब्रह्माण्ड १३, १५९, २८२, ३०२, ३०४, ३३७, ३८३, ४०२-३, अनन्त कोटि ४०३
ब्रह्मानन्द, स्वामी ३५२
ब्रह्मास्त्र १०३
ब्राह्मण ६३, ६५, १४७, २५१, २६१, ३७२, ईश्वर का ज्ञाता ३०४,

मासिक पत्र ११९ (पा० टि०)
समालोचना १४८
बंगवासी (मुखपत्र) ११९
बंगाल ५१ (पा टि ) ८ ८१
११४ ११८ ११२, ३५६, १११
और पंजाब ८१ और यूरोप
१ २ थियोसॉफ़िकल सोसायटी
३४२ देश ७९ ७९ पश्चिम
७९ पूर्व का मौसम ७९
बंगाली आधुनिक १११ कवि प्राचीन
७७ जाति १५१ टोला ७७
मौसम का तरीका ८२ युवक
२६७
बंद्योपाध्याय शशिपद ११४
बंशीवाले ४९ (देखिए कृष्ण)
'बचपन' ८२
बद्रिकाश्रम ७८
बनारस १२
बन्धन १ ८ १९ ११ १७४ २८८,
१२ १२२, ३७४ ११९ और
मोह १ मौखिक १८५ मुक्त
१७५
बरमी उनके खाने का तरीका ८२
बराहनगर मठ ३४४
बर्बर जाति १२, ११८
बर्लिन ९५
बलदेव ४ २
'बलराम की जय' ७९
वल्लभाचार्य ३४२
बसु, जगदीशचन्द्र २१४ (पा टि )
पशुपति ३४१ विजयकृष्ण १५४
बहमन हिसाम बहमन सुलाम ११७
१५५
बहुपति की प्रथा १२९
बहुवादी और सेवपरायण १११
बाइबिल २ ४ २ ७ २५१ २१२,
२९८ २८६, २१६, २९८ ११
१११ १८५
बाजबाजार ३४१
बालकृष्ण १२७
बालजाक २५८
बाली राजा १११
बाल्टीमोर १९१ अमेरिकन २९
२९१
बास्तिल किला ९८
बाह्याचार और आत्माचार ७ और
अनाचार ७०
'बिमेटालिज्म' २१९
बिशप जे पी न्यूमैन २११
'बी बी' (Three B'S) १८९
बीजगणित २८४
बीन स्टाक्स २८५
बुखार ११३
'बुतपरस्त के धर्म-परिवर्तन' ११
बुद्ध २१ १६ ११ ५१ ९५ ६ ११६
१५७, ११२-११ १९६ ११७
२११ २१८ १९ २४८ २५७
२७८-७९, २९२ १८१ अवतार
रूप में स्वीकार १ १ उनका
आविर्भाव २९१ उनका धर्म १८१
२११ २९१-९४ १ ४ उनका
मन्दिर ३७१ उनका सिद्धान्त
१ ४ उनकी महानता १ ५ उनकी
शिक्षा २९४ १ ५ उनकी शिक्षा
और महत्त्व २९४ १ ४ उनकी
सीख २७५ उनके आगमन से पूर्व
१ ४ उनके गुण १ ५ उनके
सदाचार का नियम २७४ उनके
प्रति हिन्दू १ १ एक महापुरुष
१९५ एक समाज-सुधारक ३९५
और ईसा ४१ २८१ और वैदिक
धर्म १९५ और उनकी जाति-
व्यवस्था १ ४ दार्शनिक दृष्टि
से २१ द्वारा आन्तरिक प्रकाश
की शिक्षा ३७९ द्वारा भारत
के धर्म की स्थापना २९२ पहला
मिशनरी धर्म २९४ मत २९२
१ १ १ ५ महान् गुरु १ १
बाद २५१ वेदान्तवादी संन्यासी
१९५

२२७, २७०, उसकी जलवायु १३४, उसकी जातीय सम्पत्ति ३९३, उसकी दक्षिणी भाषा १०५, उसकी भावी सन्तान १९५, उसकी मुक्ति २१९, उसकी राष्ट्रीय आत्मा १८, उसकी लघु रूपरेखा ३, उसकी वर्तमान आवश्यकता ३७२, उसकी विशेषता १११, उसकी सजीवता ५, उसके अन्य धार्मिक सम्प्रदाय २९७, उसके उपकारकर्ता २८९, उसके जातीय जीवन ६०-१, उसके भगवान् १४१, उसके राष्ट्र का सगीत ५, उसके रीति-रिवाज २९, २४८, २८१, उसके सम्प्रदाय और मत-मतान्तर २८२, उसमे कर्मकाण्ड ११९, उसमे दार्शनिक चिन्तन ३८०, उसमे नियमित धर्म-सघ नही ३८१, उसमे वल एव सार ४९, उसमे बौद्ध धर्म का पतन ३७८, उसमे मुसलमान-जनसख्या २८१, उसमे मोक्ष-मार्ग ५०, उसमे रजोगुण का अभाव १३६, उसमे 'व्यावहारिकता' २२७, उस पर मुसलमान-विजय १०६, उससे सीखने का पाठ २७२, और अधविश्वास ५, और अन्य जाति २८५, और अफगानिस्तान ६३, और अमेरिका २१७, और आत्मा सबधी देहान्तर-प्राप्ति २७१, और आहार सम्वन्धी पवित्रता ७३, और ईश्वर ४, और कला २८३, और धर्म ७, १४२, और पाश्चात्य देश ३८१, और प्राचीन ग्रीक १०६, और यवन १३५, और राजनीति ३९२, और सामाजिक नियम ११२, और सामाजिक भेद ११९, २९३, और सिद्धान्त की वोरियाँ २९१, किसान १४, तत्कालीन ३०३, तथा आर्य जाति २७२, तथा विदेश ५, तीर्थ भूमि १३२, दक्षिण ६४, दासता मे बँधी जाति ३, द्वारा खेल का आविष्कार २८५, नव जाग्रत १२२, पवित्र १३२, प्राचीन ७, १२०, ३८७, भूमि १४१, मूर्तिपूजक २४८, ललित कला मे प्रधान गुरु २२४, वर्तमान ४७, वहाँ का भोजन ८०, वहाँ की जाति-प्रथा २७२, वहाँ की नारी २२८, २३०, २६३, ३८०, वहाँ की विधवा २५९, वहाँ की स्थिति २२७, वहाँ के आदिवासी २६४, वहाँ के चिन्तनशील मनीषी १००, वहाँ के गरीब १५, २३८, वहाँ के पुजारी २९३, वहाँ के विभिन्न धर्म २७१, वहाँ के शिक्षित २८०, वहाँ जाति-व्यवस्था २६९, वहाँ धर्म सबधी स्वतत्रता २७१, वहाँ बौद्ध धर्म २९३, वहाँ सन्यासी का महत्त्व १८, वहाँ सम्प्रदाय की मूल भित्ति १००, विषयक योजना १४, सीमा १३२ (देखिए भारतवर्ष)

'भारत और हिन्दुत्व' २७८

भारतवर्ष ९३, १०७, १४७, २४३

'भारतवर्ष मे ४१ वर्ष' (पुस्तक) ५९

भारतवासी ४९, ६६, १५१, ३७३, ३८५, ३९२, आधुनिक १३४, उसकी औसत आय ४, उसकी दृष्टि ४८, प्राचीन और प्रकृति १३२, वर्तमान १३३

'भारताधिवास' (पुस्तक) १४९

भारतीय अध्यात्म विद्या और यूनानी १३४, अनुक्रम १२३, आचार-विचार २७९, इतिहास १२४, १६६, उत्पादन २८५, उद्देश्य, मोक्ष ९७, और अग्रेज़ २९५, और यूनानी कला ४३, कहावत २८९, चिन्तन १३३, जनता १२४-२५, जलवायु ११८, जाति, आदिम ११०, १३३, ज्योतिप शास्त्र

उसका जन्म ईश्वरोपासना हेतु २८ और अन्तिम १९५ -कुमार १५५ पश्चिमी ८१ देवता ७१ धर्म १२१ २४२ बालक गोपाल १२९ वकील ११२ भाव २३४ २७८ संन्यासी २५३ २७९ २८१ २९१ सन्ध्या १२१ ३ ४ साधु २४२
ब्राह्मणत्व १४२
ब्राह्म धर्म १४९, १५३ मन्दिर ११ समाज १४९, १५३ २९
विकले हू क १५, २४५
बुकलिन २८६, १७५
बुकलिन एथिकल एसोसियेशन १८१ १८९ १९१ एथिकल सोसायटी २८० टाइम्स २९६ डेली ईगल २९७ नैतिक सभा १७५ स्टैण्डर्ड यूनियन २८१ २८७ १ १ १
भक्त उसका लक्ष्य २११ मिशनरी ११
भक्ति १२७-२८, १४४ १ ९, ११२ ११८, १४४ आन्तरिक १२५ आत्मामयी २७७ उसके संबंध में मुख्य धारणा १८५ और ज्ञान १४ १५१ और पाश्चात्य १८५ ज्ञान और कर्मयोग १५६ निष्ठा एवं प्रेम १२७ मनुष्य के भीतर ही १७१ मार्ग १७२ मार्गी २९१ -काम १७१ भाव १८५ वैराग्य १५१
'भक्तियोग' ४
भगवतीस्वरूपा १६५
भगवत्त्वपा १७४
भगवत्-सेवा १९४ १७४
भगवद्गीता ११९ १११
भगवान् ७ ५१-५, १ १ ४ ११६ १४१ १४६, १६६ २१८, २७१ १९२, ११ ११६, १४६, १५२ १६१ १७६, १७७ १९५ उनके प्रति प्रेम १८५ कृष्ण १११ १२ निरपेक्ष ११५ बुद्धदेव १५४ रामकृष्ण ४१ १४१ (दे रामकृष्ण देव) सत्स्वरूप १५८ स्वर्गस्थ २८
भगिनी क्रिश्चियन १९२ (पा टि ) निवेदिता १९५ (पा टि ) ३११ ४ १
भट्टाचार्य कृष्ण प्रसाद १४६ ४०
भय ४
भरत १४१
भवबंध १७४-७५
भवानी शंकर १४१
भाग्यवादी २५९
भारत १ ६ ९ १४ ११-७ १६ २१ २८ ३६, ४८ ६ ५६, ६०-१ ६१ ७१ ७५, ८४-६ ८९, ९२ १ १ ७ ११ १२ १२१ ११६, ११५ ११ १४०-४८ १५ १५४-५५, १५७ १९२ १४ २१९ १७ २११ १२ २४१ २४९-५१, २५१-५७ २६ ६१ २६६ ६७ २७ २७४ २८ २८४ २८९ ८८ २९ २९१ २९६, ३१७ ३४६, ३७२, ३७७ ३८६, ३९०-९१ ४ २ आधुनिक १४९ उच्चतम आदर्श १ ९ उत्पीड़ित का रक्षकशाला २४० उत्तर १२१ १२३-२४ २७१ उत्तरी २९ उसका अतीत गौरव ११२ उसका अवतार ११९ उसका आविष्कार और देन २८४-८६, २९४ उसका इतिहास ११२, २२४ उसका ऐतिहासिक क्रम-विकास ११९ उसका धर्म १६, २२७ २९२, २९४ उसका ध्येय ४ उसका नाम ६ उसका रहन-सहन २७९ उसका राष्ट्रीय धर्म १९२ उसका श्रेष्ठत्व ४ उसका हरिश २८९। उनकी कथा १६१ १६६ उसकी जनसंख्या

२२७, २७०, उसकी जलवायु १३४, उसकी जातीय सम्पत्ति ३९३, उसकी दक्षिणी भाषा १०५, उसकी भावी सन्तान १९५, उसकी मुक्ति २१९, उसकी राष्ट्रीय आत्मा १८, उसकी लघु रूपरेखा ३, उसकी वर्तमान आवश्यकता ३७२, उसकी विशेषता १११, उसकी सजीवता ५, उसके अन्य धार्मिक सम्प्रदाय २९७, उसके उपकारकर्ता २८९, उसके जातीय जीवन ६०-१, उसके भगवान् १४१, उसके राष्ट्र का सगीत ५, उसके रीति-रिवाज २९, २४८, २८१, उसके सम्प्रदाय और मत-मतान्तर २८२, उसमे कर्मकाण्ड ११९, उसमे दार्शनिक चिन्तन ३८०, उसमे नियमित धर्म-सघ नही ३८१, उसमे वल एव सार ४९, उसमे बौद्ध धर्म का पतन ३७८, उसमे मुसलमान-जनसख्या २८१, उसमे मोक्ष-मार्ग ५०, उसमे रजोगुण का अभाव १३६, उसमे 'व्यावहारिकता' २२७, उस पर मुसलमान-विजय १०६, उससे सीखने का पाठ २७२, और अघविश्वास ५, और अन्य जाति २८५, और अफगानिस्तान ६३, और अमेरिका २१७, और आत्मा सवधी देहान्तर-प्राप्ति २७१, और आहार सम्वन्धी पवित्रता ७३, और ईश्वर ४, और कला २८३, और धर्म ७, १४२, और पाश्चात्य देश ३८१, और प्राचीन ग्रीक १०६, और यवन १३५, और राजनीति ३९२, और सामाजिक नियम ११२, और सामाजिक भेद ११९, २९३, और सिद्धान्त की वोरियाँ २९१, किसान १४, तत्कालीन ३०३, तथा आर्य जाति २७२, तथा विदेश ५, तीर्थ भूमि १३२, दक्षिण ६४, दासता मे बँधी जाति ३, द्वारा खेल का आविष्कार २८५, नव जाग्रत १२२, पवित्र १३२, प्राचीन ७, १२०, ३८७, भमि १४१, मूर्तिपूजक २४८, ललित कला मे प्रधान गुरु २२४, वर्तमान ४७, वहाँ का भोजन ८०, वहाँ की जाति-प्रथा २७२, वहाँ की नारी २२८, २३०, २६३, ३८०, वहाँ की विधवा २५९, वहाँ की स्थिति २२७, वहाँ के आदिवासी २६४, वहाँ के चिन्तनशील मनीषी १००, वहाँ के गरीब १५, २३८, वहाँ के पुजारी २९३, वहाँ के विभिन्न धर्म २७१, वहाँ के शिक्षित २८०, वहाँ जाति-व्यवस्था २६९, वहाँ धर्म सबधी स्वतत्रता २७१, वहाँ बौद्ध धर्म २९३, वहाँ सन्यासी का महत्त्व १८, वहाँ सम्प्रदाय की मूल भित्ति १००, विषयक योजना १४, सीमा १३२ (देखिए भारतवर्ष)

'भारत और हिन्दुत्व' २७८

भारतवर्ष ९३, १०७, १४७, २४३

'भारतवर्ष मे ४१ वर्ष' (पुस्तक) ५९

भारतवासी ४९, ६६, १५१, ३७३, ३८५, ३९२, आधुनिक १३४, उसकी औसत आय ४, उसकी दृष्टि ४८, प्राचीन और प्रकृति १३२, वर्तमान १३३

'भारताधिवास' (पुस्तक) १४९

भारतीय अध्यात्म विद्या और यूनानी १३४, अनुक्रम १२३, आचार-विचार २७९, इतिहास १२४, १६६, उत्पादन २८५, उद्देश्य, मोक्ष ९७, और अग्रेज़ २९५, और यूनानी कला ४३, कहावत २८९, चिन्तन १३३, जनता १२४-२५, जलवायु ११८, जाति, आदिम ११०, १३३, ज्योतिष शास्त्र

१६४ थियोसॉफी १५१ वशिष्ठ
२०३ धर्म १२३ १६३ २३१
२४२ २४६ ४७ २६१ २६९
धर्म दर्शन साहित्य १५१ नारी
२१२ ६२ प्रदेश ४९ प्रकृति
४३ बम्बा २२८ २३१ बौद्ध
धर्म उसका लोप १२१ भक्ति
१८५ भक्ति और पाश्चात्य देश
२८५ भाग्य स्त्री पर निर्भर
२६७ महिला १८ मुसलमान
१७७ राष्ट्र ५ रीति-नीति
१४८ रीति-रिवाज २५ २८६
लड़की २६ विद्या १६४ विद्यार्थी
१५८ विद्वान् ११ शरीर ४८
समाज ११८ २८ सम्राट् अशोक
२८४ साहित्य १६५ स्त्री १६,
८६ २६१
भाव और भाषा १६८ दो प्रकार के
११५
भाषा ४२ अंग्रेजी १४९ २६१ आदर्श
४२ तात्कालिक २४५ उसका
रहस्य ४२ और जातीय जीवन
१६१ और देश-अवनति १६९
और प्रकृति ११८ और भाव
१६८ और मनोभाव १६७ और
केवली १६७ और यथार्थ १६२
कलकत्ते की १६८ कादम्बरी की
४२ ग्रीक १६५ ६६ चीनी
८८ पहल्वी ६४ पाली ४२
फ्रेंच १६६ बंगला १६७ १५४
बोलचाल की १६७ मृत उसके
लक्षण १६८ म्लेच्छ ११२
यूरोपीय ११३ २८४ विचारों
की वाहक १६८ विज्ञान २८४
संस्कृत ११३ ११४ २५३ २८४
१५१ १५८ हितोपदेश की
४२
भिक्षावृत्ति और प्रमत्तशीलता २४१
भीष्म ५
भूगर्भशास्त्र १ ९, १२१
भूमध्यसागर १११
भूमिपति और श्रमिक २५१
भोग १३४ उसके द्वारा योग २२१
और पीड़ा २१ तथा त्याग ५१
-विलास ८
भोजन अखाद्य और खाद्य ७० अर्ध
शाकाहारी ७९ और भाव विकार ७१
और सर्वसम्मत सिद्धान्त ७१
निरामिष ७६ निरामिष-सामिष
७१ पूर्व बंगाल का ७९ मांस ७४
भोज्य द्रव्य ७२
भोलानाथ १४३ उनका चरित्र १४४
भोलापुरी उनका चरित्र १४४
भौतिकतावाद उन्नतर २१४
भौतिकवाद २८ पाश्चात्य १०९, २२१
११६

मगध साम्राज्य १२१
मजूमदार २३४ प्रतापचन्द्र १४९,१५१
मठ-व्यवस्था उसके विकास का अर्थ
१ २
मथुरा ७७
मद्रास ८ ११५, १८९ २१२, २२६
२३३ ६७ ३३९
मद्रासी शिष्य १५२
मध्य एशिया १४
मन अपने ढंग की प्रक्रिया १२ असंख्य
दर्पण ४ उसकी एकाग्रता और
जीत १८१ १९० उसकी क्रिया
का अर्थ १२ उसकी निर्मलता
११८ ९९ उसके अनुपम अपस्
१२ उसके वश की चेष्टा
११८ और आत्मा २४ ७२
और आसन ४ और कर्म-नियम
२५ और बहिर्विज्ञान १८३ और
बाह्य प्रकृति २५ और शरीर १२७
१८९ जन्म और मृत्यु का भाव
४ तथा प्राण २६७ प्रकृति और
नियम ११ मग्नशील २६७
मन संयम १६२

मनस्तत्त्व विद्या ३८९
मनु ८४, उनका शासन १३५, और वेद ५४, स्मृति ५२
मनु० ५२ (पा० टि०), ७२
मनुष्य ५४, अजन्मा २१५, अमरणशील २१५, आदिम ३६, १०१, आरम्भ मे शिकारी १०१, उसका कर्तव्य ३२९, उसका क्रमविकास १०१, उसका गुरु २१४, उसका यथार्थ सुख ३३०, उसका विकास २४७, ३७८, उसका सगठन ६३, उसका स्वभाव ३२८, उसकी आत्मा और ज्ञान २९६, उसकी आध्यात्मिक समता ११९, उसकी ईश्वर-प्राप्ति २४७, उसकी उन्नति के अवसर ३७६, उसकी पूर्णावस्था २६९, उसकी प्रकृति २६७, उसकी मुक्ति, अद्वैत ज्ञान से ३७६, उसकी स्वतत्र सत्ता का भ्रम २९८, उसके पास तीन चीजें ४०, उसके मार्ग मे सहायक ३३०, उसके लिए उपयुक्त धर्म ३३०, एक आत्मा २४, २९७, एक पूर्ण सत्ता २९८, और असत्य, सत्य की परीक्षा ३३६, और आत्मा तथा भलाई २९२, और ईश्वर २१४, और ईश्वरत्व का अभिव्यक्तीकरण ३८२, और ईसा मे अन्तर ४०, और उसकी सहायता २९२, और कीर्ति ६२, और गुण ५४, और जड पदार्थ २३५, और धर्म २४२, और परीक्षा ३३६, और पागल मे भेद ३२८, और प्रकृति ५०, १०२, २१३, और बन्धन ३९१, और भौतिक वस्तु २१४, और शक्तिमान व्यक्ति ३६, कर्मठ, उसकी सेवा २२१, चेतन भाग का श्रेष्ठ प्राणी ३३७, जगली और सभ्य १०८, द्वारा प्रथा-सृष्टि १०४, धार्मिक और नास्तिक २२१, निम्नतम भी ईश्वर २१३, पशुता, मनुष्यता और देवत्व का मिश्रण २२१, पुच्छरहित वानरविशेष ३३७, पूजा का सर्वोत्तम तरीका ४००, प्राणीविशेष ३३७, बुद्धिवादी और दार्शनिक पूजा २२१, भावुक २२१, मस्तिष्क मे जल का अश ३३७, यथार्थ ३९१, समाज की सृष्टि १०५, साधारणतया चार प्रकार २२१, स्वार्थ का पुज २६
'मनुष्य का दिव्यत्व' २५५ (पा० टि०), २६७
'मनुष्य' बनो ६२
मनोमय कोष ४००
मन्त्र-जप ३६१
मन्त्र-तन्त्र १५१, -दीक्षा ३१८, ३६२
'ममी' २४
मरण और जीवन १९६
मरसिया १४५
मराठा १२४
मलाबार ८०, ८७
मलेरिया ४७, ७२
महाकाव्य तथा कविता २८५
'महात्मा' १५३
महादेव १६२
महापुरुष, प्राचीन, उनके ज्ञान का उद्धार १६०
महाभारत १६५-६६, ३३६, आदि पर्व ७४ (पा० टि०), महाकाव्य १२०
महामना स्पितामा १५७
महामाया १०६, उसका अप्रतिहत नियम १५६
महामारी ४७, ७२
महारजोगुणात्मक क्रिया ३४१
महारजोगुणी ५५
महाराष्ट्र ८२
महालामा १०७
महावीर प्रथम नेपोलियन ९८
मासभोजी ६५, जाति ७५

मांसाहारी ७५
'माँ' ९०-१ १७७ क्षमामयी १७८
माइकेल मधुसूदन दत्त ४२
माकाल १४१
माता षष्ठी ८५
मातृत्व उसका आदर्श २७७-७८
उसका सिद्धान्त और हिन्दू २११
मातृ धर्म १ १ भूमि २९
मादक पेय १५
मानव उसका परम लक्ष्य १४४
प्रकृति की दो ज्योति ४१ -शरीर
१२८ (देखिए मनुष्य)
मानसिक जगत् २१४
'मामूली धृष्टता' ११२
माया २१ १ ०-१ १७४ १७८
२२१ ११६ ११४ १४४ १८१
११७ ४ २ उसका द्वार १७५
उसकी सत्ता १७१ उसके अस्तित्व
का कारण १८१-८४ और जीव
तत्त्व १८१ पाश १७५ -ममता
११६ -राज्य १८४ वाद १७४
७५ समस्त भेद-बोध २११
समष्टि और व्यष्टि रूप १७१
मायाधिकृत जगत् १४
मायिक जगत प्रपंच १७८
मारमामोंबा १२५
मार्ग निवृत्ति १८४ प्रवृत्ति १८४
मार्टिन हेरल्ड २९१
मार्क्स-दरबार १२२ साम्राज्य १२१
माल्वा १२४
'मास (mass) २८४
मास्टर महाशय १४४
मित्र चारचन्द्र १४ प्रमदादास
(स्व ) १५९ हरिपद १ ९
मिथिला १२९
मिनियापोलिस नगर २८ स्टार २४२
मिल १, ९, जॉन स्टुअर्ट १, २,
स्टुअर्ट ११५
मिशनरी उनका कर्तव्य २११ उनकी
हलचल १५१ उसका भारतीय धर्म
के प्रति रुख २१९ धर्म २५२
प्रभु ११ लोग और हिन्दू देवी-
देवता १५२ स्कूल १ १
मिश्रपंचित २८४ १२१
मिसिसिपी २९
मिस्र २४ ९१ १५९ निवासी १४
१ १ प्राचीन १ ९
मीमांसक ५ उनका मत ५२
मीमांसा-दर्शन १२१ भाष्य ११८
मुक्ति ८ २१ २४ १ ५ ९८
११४ ११९ २ १ १५१ ४ १
उसका अर्थ १७४ उसकी चेष्टा
५ उसकी प्राप्ति २५७
उसकी सच्ची कल्पना २५ उसके
चार मार्ग २१८ उसके साथ ईश्वर
का संबंध नहीं १७४ और धर्म ५
और व्यक्ति २५८ ज्योति २ १
-पूत मृत्यु ११९ लाभ ९ २४४
१४८ १७४ १८१ ११९
मुगल जाति १४ दरबार १२४
बादशाह १ ७ राज्य ५१ सम्राट्
९१ २११ साम्राज्य १२४
मुनि १ ९ १२९ पूर्वकालीन ११५
मुमुक्षु और धर्मोन्मत्त ५१
मुसलमान ११-७ ५१ ८१ १ ८ ९
११२, १४५, १९१ २६७ २९७
उनका शक्ति-प्रयोग २७१ उनकी
भारत पर विजय १ १ उनके खाने
का तरीका ८२ और ईसाई २१४
कट्टर १७७ जाति १ ८ धर्म
९२ नारी १ २ भारतीय १७७
विजेता १ ७
मुसलमानी अभ्युदय १ ७ काल में
आन्दोलन की प्रकृति १२१ धर्म
१ १ प्रभाव २१४
मुस्लिम उसका बन्धुत्व ९ सरकार
१५,
मुहम्मद १७ २१ ११ ४१ १५७
११८ १८१
मुहर्रम १४५

'मूर' ९१, जाति २४२
मूर्तिपूजक देश २४९, देश और ईसाई धर्म २५२, भारत २४८
मूर्तिपूजा २२८, २३०, २३८, २४३, उसकी उत्पत्ति ३७३, मुक्ति-प्राप्ति मे सहायक ३७३
मूर्तिविग्रह १२७
मूसा ३०
मृत्यु ६२, ३७६-७७
मेक्सिको १०१, २३६
मेथाडिस्ट २२२
मेमफिस २४५, २४९
मेम्फिस २७, ३५
मेरी ४९, ९१, १८४, हेल १८३
'मैं' ३७४, ३८४
मैक्स मूलर, प्रोफेसर ९, १६४, आदरणीय गृहस्थ १५०, उनका ज्ञान १४९, उनका भारत-प्रेम १५०, उनकी सचेतनता १४८, प्रोफेसर महोदय १५३-५४, भारत-हितैषी १५०
मैजिक लैन्टर्न ३३६
मैत्रेयी १४८
मैथिल एव मागधी १२०
मैनिकीयन अपधर्म २८४
मैसूर ८२
मोक्ष १२, ५२, २३९, ३९८, उसका अभिलाषी १३४, धर्म ५१, परायण योगी ४७, प्राप्ति ५०, मार्ग ५०, ५५-६
'मोहमुद्गर' ५५
मौत और ज़िन्दगी २०४
मौर्य राजा १२०, वशी नरेश १२०, सम्राट् और बौद्ध धर्म १२१
'मौलिक पाप' २४७
मौलिकता, उसके अभाव मे अवनति ६८
म्लेच्छ ४८, अपशब्द, उच्चारणकर्ता ३५८, भाषा ३१२
यग मैन्स हिब्रू एसोसिएशन ३५
यक्ष्मा ६६
यज्ञ, उसका धुआँ १०९, उसकी अग्नि १६२, -काष्ठ १६२, -वेदी ११६
यथार्थ और आदर्श २९८
यम ४७, ५५, ३५०, उसका घर ७६, -सदन ३५०, स्वरूप ४७
यमराज ८५
यमुना ४०२-३
यवन ६३, १०५, १३३, उस पर वाद-विवाद ६४, गुरु १३३
'यवनिका' १६४
यहूदी १८, ३६, उनका विश्वास ३७८, और अरब २७३, और ईसाई धर्म-सघ २७, और पैगम्बर १८, कट्टर और आहार ८३, जाति १०६, पडित २५५, सघ ३५
यागटिसीक्याग १०५
याज्ञवल्क्य १४८, -मैत्रेयी सवाद ३५४
यादृशी भावना यस्य १५४
युग-कल्प-मन्वन्तर १९५
युगधर्म और भारत १४२
युजेनी (Eugenie) सम्राज्ञी ६८
युधिष्ठिर ५०
युफ्रेटीज १०५,
यूनान १३३, ३००, उसकी प्रेरणा ४, देश १६४, पाश्चात्य सभ्यता का आदि केन्द्र ९२, वाले १३३
यूनानी १०१, २८५, आधिपत्य १६४, कला का रहस्य ४३, चित्रकार ४३, जाति ६४, नरेश २८४, प्राचीन ९३, विद्याकाक्षी २६७, व्युत्पत्ति १६४ (देखिए ग्रीक)
यूनिटी क्लब २५०
यूनिटेरियन २२२, २६२-६३, चर्च २५३, २५५, २५९, फर्स्ट २६१
'यूपस्तम्भ' १६२
यूरोप ६८, ७१, ८५, ९२-४, ९८-९, १०२, १०५, ११३, १३३, १५१-

५२ ११२ २१६ २७ २८० २८४-८६, १४१ १७७ उत्तर ११२ उसकी महान् सेना-रूप में परिणति १ ८ उसकी सभ्यता की भित्ति १ ५ उसमें सभ्यता का आगमन १ ८ तथा १ ५ १ तथा अमेरिका ११४ निवासी ४८ वर्तमान और ईसाई धर्म १११ वासी ४९ ५६ ९८
यूरोपियन ४८-९ ५६ ९२ उनके उपनिवेश ९७ लोग ७
यूरोपीय ९४-५ अति बर्बर जाति की उत्पत्ति १ ६ अवगुण १११ ईसाई १११ उत्तराधिकारी २५८ उनके उपनिवेश ९७ जाति १ ९ तथा हिन्दू जाति २४१ देश ९१ २५१ पण्डित ११ १११ पर्यटक ४० पुरुष ९१ बहिर्विज्ञान १ भाषा १११ २८४ मनीषी १५१ राजा १ ८ विश्वव्यापार (कारलेमो) ११५ विद्वान् ९४ वैज्ञानिक २८१ सभ्यता ९१ १ ९ ११७ ११४ सभ्यता का साधन ११२ सभ्यता की मनीषी ९१ सभ्यतारूपी वस्त्र के उपादान १ ९ साहित्य १११
योषित उसकी मूरत १४५ भाषा १४९
योहोवा २१
योग १५१ और शरीर की स्वस्थता १०७ और सांख्य दर्शन १८२ कर्म १५६ क्रिया १९२ क्रिया उससे लाभ १९२ ज्ञान १५५ मार्ग ११२ ११८ राज १५१ -विद्या १९०-९१ शक्ति १६
योगानन्द, स्वामी १४१ १५२
योगाभ्यास १७१ ४
योगी ९ १७१ उनका धन्य और अभ्यास १८९ उनका दावा १९ उनका आदर्श १९ उसका सर्वोत्तम आहार १९७ और सिद्ध २९५ मोक्षपरायण ४७ यथार्थ १९०-९१
'योनिया' (Ionia) ९४

रंगाचार्य १९६
रजोगुण ५४ १३५ ११६ २१८ १९ उसका धर्म २११ उसका भारत में अभाव ११६ उसकी अस्थिरता ११६ उसकी प्राप्ति दीर्घजीवी नहीं ११६ उसकी प्राप्ति कल्याणप्रद ११६ और सत्त्वगुण ११६ प्रधान ५७
रन्तिदेव ११५
रवि १७८-७९
रविवर्मा ११५
रसायनशास्त्र ११७ १ ९ १२१ ११४ ११६
राइट जे एच प्रो २ ४ (पा टि ) २११
'राई' ८१
राम-कोप १२४
राजतरंगिणी ९१
राजनीतिक स्वाधीनता ५८, ९
राजन्यवर्ग और पुरोहित ११९
राजपूत ८४ भाट १४५ और १२२
राजपूताना ८ ८२, १ ७-८ और हिमालय ८७
राजयोग १५१ ११२
राज-सामंत ८१
राजसी प्रेम और पीड़ा २२४
राजा और प्रजा १२१ मधुपर्क ८१
रिचर्ड १ ८
राजेन्द्र घोष १४९
राजेन्द्रलाल डॉक्टर ५१ (पा टि )
रानी जोसेफिन ९९
राधास्वामी सम्प्रदाय १५१
रानडोल्फ विलियम २४१
रामकृष्ण १४८ १५२-५१ १६७ २१८ ४ १ उनका धर्म १५९

उनका शक्ति-सम्प्रसारण १५२, उनकी उक्तियाँ १४८, उनकी जीवनी १५०, उनके धर्म की विशेषता १५२, एकता के अवतार २१८, और युगधर्म १४२, चरित १५१, -जीवनी १५३, -धर्मावलम्बी १५२, नरदेव १५१, परमहंस २३४, भगवान् १४१, १५१, ३६० (देखिए रामकृष्ण देव)
'रामकृष्णचरित' १४९, ३६१
रामकृष्ण देव ४३, १४९, १५१, १५५, ३२२, ३३२, ३४०, ३४५, ३५१, ३५९ (पा० टि०), ३६१-६२, ३७३-७४, उनमे कला-शक्ति का विकास ४३, यथार्थ आध्यात्मिक ४३
रामकृष्ण मठ १६७ (पा० टि०), मिशन १३२ (पा० टि०), मिशन का कार्य ३७२
रामकृष्ण वचनामृत ३४४
'रामकृष्ण हिज लाइफ एण्ड सेंइग्स' ९, १४८ (पा० टि०), १५१ (पा० टि०)
'रामकेष्ट' ३२२
रामचरण, उनका चरित्र १४४-४५
रामदास १२३
रामनाड २१८
राम २९, ७६, ३६०-६१, ३९५, और कृष्ण ७४, सुसभ्य आर्य १११
रामप्रसाद ५३
रामलाल चट्टोपाध्याय ३४५, दादा ३४५
रामानन्द १२३
रामानुज ५६, १२२, उनका व्यावहारिक दर्शन १२३
रामानुजाचार्य ७२, और खाद्य संबंधी विचार ७३
रामाबाई सरस्वती २८६
रामायण ११, ८३, ३३६, अयोध्या ८८ (पा० टि०), आर्य जाति द्वारा अनार्य-विजय उपाख्यान नहीं ११०, उत्तर ७४ (पा० टि०), और महाभारत ७४
रामेश्वर ३२५
राबर्ट्स, लार्ड ५९
राय शालिग्राम साहब बहादुर १५३
रायल सोसायटी ९४
रावण ४९, २१८
राष्ट्र, उसका धर्म २५८, उसका मूल्यांकन ३००, उसकी मुक्ति का मार्ग २८९,
राष्ट्रीय आदर्श ६०, उसके दो-तिहाई लोग २७५, चरित्र ११७, जीवन १२०, दुर्गुण २७७, सभ्यता १६
रिचर्ड, राजा १०८
रिजले मॅनर १९७ (पा० टि०)
रिपन कॉलेज ३४०
रीति-नीति ४९, ५७, ९६, १४९, ३९३, -रिवाज १६, ११८, १३७, २३१
'रेड इन्डियन्स' २५६
रेनेसाँ (नवजन्म) ९३
रेल तथा यातायात १६८
रेवरेण्ड २४५, एच० ओ० व्रीड २४३, एम० एफ० नॉक्स २२८-२९, जोसेफ कुक २३५, लेट्वार्ड ३१०
रेव० वाल्टर ब्रूमन २९१
रेव० हिरम ब्रूमन २९१
रूढि और नियम २१९
रूस ८१, ९९, २८९, वाले ६९
रूसी और तिव्वती ८८, और फ्रांसीसी पर्यटक का मत ६४
रोग-शोक का कुरुक्षेत्र ४७
रोम ४, ९२-३, १०६, १५९, २७१, उसका ध्येय ४, प्राचीन ३००
रोमन १०६, १३४, कैथोलिक १६१, २७२, कैथोलिक चर्च २८४, जाति ९२, प्राचीन ८२, वाले २८५, साम्राज्य १०६
रोलैण्ड बोनोर २६२, २९५

लंका २१८ २११ २७१ द्वीप २१८ धर्मरक्षी २१९
लक्ष्मी और सरस्वती ११४
लक्ष्य उसकी प्राप्ति १५९
लखनऊ १४१ शहर १४५ शिया लोगों की राजधानी १४५
लन्दन ९ (पा टि ) ९६-७ ८५ ६ ९१ ९५ १४७ नगरी ११२
'लन्दन-मेल' ८५
ललित कला और भारत २२४
लॉग आइलैण्ड हिस्टोरिकल सोसायटी २८३
लॉ मर्साई ९९
लामा २९६
लार्ड रावदर्स ५९
ला सलेट एकेडमी २४८
'लॉ सैलेट अकादमी' २७ २९
लाहौर १२४
लिसियम थियेटर २९ ९१ २९१
'लक्कड़े पत्थर पर काई कहाँ?' ९
लुसी मोनरो २१७ २१९
'लेटर द क्याये' ९८
लेटिन जाति २९१
लोकसेवा १९७
लोकाचार ७१ १४९
लोभ और वासना २१९
लौकिक विद्या ११
ल्योन १८२

वंशानुगत गुण और अधिकार १५८
वनमानुष जाति ७९
वनस्पतिशास्त्र १ ९
वराहनगर ११४
'वर्क-हाउस' १२१ ११७
'वर्चू' (virtue) ९१
वर्ण धर्म १८ भेद का कारण ९१ विभाग और आर्य ११२ -व्यवस्था उससे लाभ २८ संकरता ९१ संकरी जाति १ ७
वर्णाश्रम और आर्य ११२
वर्णाश्रमाचार १११
वशिष्ठ १४८
वस्तु, अस्तित्वहीन २९८ उनमें परिवर्तन २२१ केवल एक २७४
वातावरण और शिक्षा २६
वाद अज्ञेय २७४ अदृष्ट १११ अद्वैत १५ आदर्श १८ एकेश्वर ११ जड़ ११९ द्वैत २१ पुनर्जन्म १५ बहुदेवता १६ भौतिक २८ भौतिकता २१४ वितंडा ७४
वामदेव ऋषि ११
वामाचार शक्ति-पूजा ९
वामाचारी ९
वायमेंठ १९४
वाराणसी ५१ (पा टि ) २८
'वार्ड सिक्सटीन डे नर्सरी' २८१
वाल्डोर्फ २७८
वाल्टेयर १११
वाशिंगटन पोस्ट २९४
विकास और आत्मा २९८ सर्वत्र क्रमिक २१९
विक्टर ह्यूगो १११
विक्रमपुर ८
विचार और आदर्श १२ और जगह १२१ और शब्द १२ मन की गति १७ शक्ति १५९, १९८
'विचार और कार्य-क्षमा' २२७ २२९
विजयकृष्ण वसु १५४ बाबू १५४
विजयनगर १२४
विज्ञान १ ११९ आधुनिक १९ उसका अटल नियम २५८ और धर्म १ २ १११ और साहित्य २८१ सामाजिक २१२
वितण्डावाद ७४
विदेशी मिशन २१७ मिशनरी २९५
विदेह-मुक्त १४८
विद्या अपरा १८८ उसकी संज्ञा १९४ और धर्म १ ८ -चर्चा ११ -बुद्धि ११९ ११८, १११

भारतीय १६४, मनस्तत्त्व ३८९, यूनानी १६४, लौकिक १६०, सम्मोहन ३८९
विद्यार्थी और कामजित् ९७
विद्वत्ता और बुद्धि २२२
विधवा आश्रम ३६४
विधि-विधान ११८
विभीषण २१८
विमलानन्द, स्वामी ३४१, ३४८
वियना ९५
'विरक्त' ७ (देखिए सन्यासी)
विलायत ६९, ८७, ११४, ३५५, ३६५-६७
विलायती पत्र ३६६, भोजन-पद्धति ७१, रसोइया ७१
विव कानन्द स्वामी २७, २९, २०३ (पा० टि०), २१६, २२७, २३२, २४२, २४४-४६, २४८-५०, २५२, २५४, २५६-५७, २५९, २६१, २६३, २६९-७१, २७६, २७८, उनका अविश्वास २७१, उनका काव्यालकार प्रयोग २५६, उनका रोचक व्याख्यान २६९, उनका सृष्टि के बारे मे सिद्धान्त २७१, उनके तार्किक निष्कर्ष २५६, द्वारा अपने धर्म का समर्थन २७२, पूर्वीय बन्धु २५५, ब्राह्मण सन्यासी २५३, महान् पूर्वीय २५३, मृदुभाषी हिन्दू सन्यासी २७६, रहस्यमय सज्जन २५६, सज्जन भारतीय २६९, हिन्दू दार्शनिक २५५, हिन्दू सत २५८, हिन्दू सन्यासी २४८, २५२, २६७, २७०, २७२, २७८ (देखिए विवेकानन्द)
विव कानोन्द २२८ (देखिए विवेकानन्द)
विव क्योनन्द २२७ (देखिए विवेकानन्द)
विवा कानन्द २३०-३१ (देखिए विवेकानन्द)
विवाह, उसका आदि तत्त्व १०३, तथा खान-पान २८८, निम्न सस्कारहीन अवस्था २८०, -पद्धति का सूत्रपात १०२, प्रणाली मे परिवर्तन और कारण ३०१, बाल्य २५१, ३२२, सस्कार २५१
विवि रानान्ड, २२९ (देखिए विवेकानन्द)
विवी रानान्ड, स्वामी २३१ (देखिए विवेकानन्द)
विवेकचूडामणि ३९२ (पा० टि०)
विवेकानन्द, स्वामी २३, २७ (पा०-टि०), ३५-६, ३८, १५३, १६२, १८१, १८३, २३३-३५, २७०, २७८, २८८, २९३-९४, २९६, ३००, ३०३, ३०५, ३०९, अग्रेजी व्यवहारपूर्ण २४६, अत्यधिक आनन्ददायक २४५, अन्यतम विद्यार्थी २४५, अप्रतिम वक्ता २४४, आकर्षक व्यक्तित्व २३८, आहार सबधी विचार ७८-९०, उच्चतर ब्राह्मणवाद की देन २३४, उच्च शिक्षा-प्राप्त २७०, उनका आश्चर्यजनक भाषण २४५, उनका उच्चारण २४६, उनका धर्म विश्व की तरह व्यापक २४२, उनका बाह्य व्यक्तित्व २४६, २७४, २९१, उनका भाषण २९१, २९६, उनका शब्दचयन २९१, उनका सामान्य व्यवहार १४५, उनका व्यक्तित्व २३२-३३, २३८, उनका स्वदेश के प्रति अनुराग ३२२, ३२८, उनकी अग्रेजी और भाषण-शैली २९०, ३३३, उनकी निरपेक्ष दृष्टि ३५, उनकी वाग्मिता २३८, उनकी विशेषता ३१८, उनकी सगीतमयी वाणी २७७, उनकी सस्कृति २३८, उनकी सत्यवादिता ३२५, उनके ईसाई सबधी विचार २६६, उनके जल सबधी विचार ७९, कुशल वक्तृता २३९, गभीर, अन्तर्दृष्टि २४४, गभीर,

सच्चे और सुसंस्कृत व्यवहार २७९ चरित्र-गुण १४५ चुम्बकीय व्यक्तित्व २३९ तर्क-कुशलता २४४ दैवी अधिकार द्वारा सिद्ध वक्ता २३७ निःस्पृह संन्यासी १११ पूज्य ब्राह्मण संन्यासी २९१ पूतात्मा २३४ प्रतिभाशाली विद्वान् २४३ प्रसिद्ध संन्यासी २५ बंगाली संन्यासी १११ ब्राह्मण संन्यासी २१२ २७९ ब्राह्मणों में ब्राह्मण २३८ भद्र पुरुष २३१ भारतीय सन्यासी २९ भाव और आकृति २३४ २४५ मंच पर नाटककार २४५ महान् शिष्टा २४४ मोहिनी शक्ति १५२ युवा संन्यासी १११ विचार में कलाकार २४५ विश्वास में आदर्शवादी २४५ संगीतमय स्वर २३८ संन्यासी २८९ सर्वश्रेष्ठ वक्ता २४४ सुंदर वक्ता २३१ ३२ सुविख्यात हिन्दू २४१ सुसंस्कृत सज्जन २७
'विवेकानन्द जी के संग में' (पुस्तक) १४८ (पा टि ) १५१
'विवेकानन्द साहित्य' २५१ (पा टि ) २६१ (पा टि ) ३७८
विशिष्टाद्वैत १५९ और अद्वैत ५९ वाद १८३ वादी २८१
विशेष उत्तराधिकार १ ४
विशेषाधिकार ११९, २२३
विश्व-धर्म ११६ -प्रेम २२१ १८४ -ब्रह्माण्ड १४६ १८८ भ्रम १८४ -मेला २४४ -मेला सम्मेलन २४५ -योजना और ईश्वर ११ -स्वप्न १८३-८४
विश्वबंधुता सच्ची २१४
विश्वामित्र १४८
विषयी और विषय १८४
विषुवत रेखा ९३
विष्णु १४६ १९९ पादमदर्शी २४८
पुराण १६३
विस्कोन्सिन स्टेट जर्नल २४१
वीणापाणि १९९
'वीरत्व' ९९
वीरभोग्या वसुन्धरा ५२
वीर सन्यासी १७३ १७५
वुड्स श्रीमती २२८
वृन्दावन-कुंज १२८
वेद ७ ५२, १२३ १२७ १३९ १४६, १५२ २ ४ २ ७ २२२, २२७ ३ ०-४ ३१२ ३७१-७२, ३८७ ३८९ अपना मुख्य ११ आप्त वाक्य २९७ उनका कर्मकाण्ड ३९५ उसका व्यापक प्रभाव ३३९ उसका शासन ३१९ उसकी घोषणा २१९ उसके विभाग १४ उसमें आर्यविद्या के बीज ३९४ उसमें विभिन्न धर्म का बीज ३९३ ऋक् १९९ ग्रन्थ के दो खण्ड १ ३-४ -ज्ञानधारी १३९ परम तत्त्व का ज्ञान २१५ परिभाषा ११९ प्रकृत धर्म ११४ प्रचारक ३९९ मंत्र १ ९ ३८९ -मूर्ति 'भगवान्' १४१ वाणी ११७ विश्वासी ३८१ संबंधी मनु का विचार २१५ सार्वजनीन धर्म की व्याख्या करनेवाला ११९ हिन्दू का प्रामाणिक धर्मग्रन्थ २८१
वेदव्यास भगवान् ३५१
वेदान्त १४१ ३ ५, १४८ ४९ ३५६, ३९ ३१४ ३९१ ९७ ३९२ उसका प्रभाव ३७७ उसकी धारणा सम्यता के विषय में ३९४ उसके कदम तक पहुँचने का उपाय ३९८ जाति भेद का विरोधी ३७७ दर्शन १ १८ ३९१ द्वारा व्यक्तित्व ३९९ -नाट ३६७ नाम १४ समिति ३५४ (पा टि )
वेदान्तवादी यथार्थ ३९१ ९२
वेदान्तिक धर्म ३४७

वेस्ली चर्च २२९, प्रार्थनागृह २२७
वैदिक अनुष्ठान ४०३, आचार ५७, उपाय उचित ५६, और बौद्ध धर्म का एक उद्देश्य ५६, देव १२०, धर्म ५६, धर्म का पुनरुभ्युदय १२१, धर्म की उत्पत्ति १६२, धर्म तथा बौद्ध धर्म १२०-२२, धर्म तथा समाज की भित्ति ५६, पक्ष १२१, यज्ञधूम १३५, स्तर २२२, हठकारिता १६६
वेदान्तिक धर्म ३७५
वैद्यनाथ १६८
वैयक्तिक अनुभव ३३२, ईश्वर २९९, पवित्रता ३०१, सम्पत्ति ३०२
वैराग्य, उसका प्रथम सोपान ३९७, उसका भाव ३९२, और आनन्द-लाभ ३९७, और त्याग १३६, यथार्थ ३३८
वैवाहिक जीवन, उसमे नारी का समानाधिकार ३००, और तलाक २५०
वैश्य ६३, ६५, १०३, और वाणिज्य ३०४
वैष्णव ७४, आधुनिक ७४
वैष्णवास्त्र १०३
व्यंजनाशक्ति ११७
व्यक्ति अज्ञ ३९२, अपना निर्माता २९९, उसका अनुसोचन ३२६, उसका निर्माण २२४, उसकी शक्ति २१९, उसके उत्थान से देश का उत्थान २१९, उसके सन्यासी बनने की प्रतिज्ञा २८३, और ईश्वरत्व का ज्ञान २१९, और क्रियाशील विशेषता २२४, और गुरु की जानकारी ३०, और नियम ३१, और मुक्ति की साधना २१९, और विचार का दमन ३१, और व्यक्तित्व २७४, कम शिक्षित २८१, चरित्रवान ३७२, ज्ञानी ३९५, देश-काल के भीतर नही ३७७, धर्म के लिए २१५, धार्मिक का लक्षण ५२, पूजा ३६, वास्तविक ४२, शिक्षित आचार्य २८०
व्यक्तिगत विशेषता २३७
व्यक्तित्व और उच्चतर भूमि ३७६, प्रकृत ३७६
'व्यष्टि' ३९६ (पा० टि०)
व्यापारी और कारीगर २५१
व्यायामशाला २१४
व्यावहारिक कार्य २९०, जीवन ९, दर्शन और रामानुज १२३
व्यास ५०, २३७, ३५७, ३५९
ब्रूमन बन्धु २९०-९१, २९३, रेव० वाल्टर २९१, रेव० हिरम २९१

शंकर ५६, १२२, १६२, अद्वैतवादी ३५९, उनका आन्दोलन १२३, उनका महाभाष्य १६८ (देखिए शंकराचार्य)
शंकराचार्य ५५ (पा० टि०), १२२, १६२, २०७ (पा० टि०), और आहार ७२
शक्ति १४६, आसुरी ३६, उद्भावना १५९, उसकी अभिव्यक्ति २१४, उसकी पूजा २६१, उसके अवस्थान्तर ३३४, और अभीष्ट कार्य ३३२, पूजा, उसका आविर्भाव ९१,-पूजा और यूरोप ९१,-पूजा, कामवासनामय नही ९१,-पूजा, कुमारी सधवा ९१, विचार १५९, शारीरिक एवं मानसिक ३३२
शक्ति 'शिव-त्ता' २१५
शबरस्वामी १६८
शब्द और भाव ३७२, और रूप ३२
शरच्चन्द्र चक्रवर्ती ३४८, ३६३, बाबू ३४८, ३५१, ३६३
शरीर ८, १३, ४०, ५५, ६६, ७०, १०३, १३६, १३८, १४१, १४३, १६९, २०७, २१३, २१५, २१७-

१८, २२१ २५७ २८२–८१ ३६१ ३९८ आत्मा का आच्छादन २२ उसकी गति २९८ उसकी शिक्षा १७२ और मन २११ १८८ भौतिक ३७ मन और आत्मा ९१ मन द्वारा निर्मित १८९ मन द्वारा शासित २९८ मरणशील २१५ योग द्वारा स्वस्थ १९७ रक्षा ११७ विज्ञान १८२ -शुद्धि तथा पाश्चात्य और प्राच्य १८९ -सम्बन्ध १५४
शाक्यमुनि ११९
शापेनहॉवर जर्मन दार्शनिक २८४
शालग्राम १६२ शिला १६२ ६१
शालग्राम साहब बहादुर, राय १५१
शान्ति १८१ १८८ और प्रेम १९
शास्त्र और धर्म १४२ ज्योतिष १२१ भूधर्म १ ९, १२१ भौतिक १ ९ १२३ ३११ सम्य से तात्पर्य ११९ मत ५२ रसायन ११७ १ ९ १२१ ११४ ११६ वनस्पति ३ ९
शाहजहाँ ५६, ९१
शिकागो २११ १२ २१५, २१७-१६, २५ २७ २७९, ११९ धर्म महासभा १६१ ११९ महासभा १६१ वहाँ का विश्व-मेला २४१
'शिकागो सडे हेराल्ड' १८
शिक्षा औद्योगिक २२८ और अधिकार ११२ ज्ञान १५२ भौतिक १४ व्यवहार ५१
शिया मुसलमान १४५
शिल्पकला ११९
शिल्पकार ११५
शिव ४९-५ १२१ १६१ २ ७-८ चिदानन्दस्वरूप १८९ नाम ८ १ शिनामवर्णा २४८ तर्गीत २ ९
शिवलिंग १६३ पूजा १६२
शिवानन्द स्वामी १४१ ८२
शिवोऽहं २ ७-८
शुक ५
शुक्रनीति ५२ (पा टि )
'शुकर' ७८
शुद्धानन्द स्वामी ११९ (पा टि )
शुभ ११४ अशुभत्व २८१ और अशुभ २५, १८५, २ २ १७४ धर्म २८१ प्रत्येक धर्म की नींव में २१४ बन्धन २८१ संकल्प २८१ सर्वोत्तम ११
शुभाशुभ १७१ २
शून्यवादी ३ ५ उनका उद्गम १ ४
शेक्सपियर १६५ स्मरण १
सेवार्ड एस आर श्रीमती २४५
शैतान १२ १७१
शैलबाला उमा ११
'शैलोपदेश' १७९
शैवात्म १ १
शमधान-वैराग्य ११६
श्रद्धा १८५ अभीष्ट की आवश्यकता २५ एवं भक्ति १४१ ११९ और बलिदान २ १
श्रमिक और सेवक २५१
श्रवण मनन और निदिध्यासन १८७ १९८
श्री कृष्ण ४६, ५५
श्रीभाष्य १६६
श्री राम २१८ १९
'श्री रामकृष्ण वचनामृत' १५५ (पा टि )
श्रुति ११९ -वाक्य १४४
श्रेय एवं सुख दुःख १४८
श्वेताश्वतरोपनिषद् १५१ (पा टि ) १८२ (पा टि )

षट्चक्र १६२
षष्ठी (देवी) १४६

संगीत १९ कला १४१ आध्यात्मिक २१७ २१ ७ २७१ निष्पत्ति १ मण्डा ११

'सगीत मे औरगज़ेब' ३२३
सग्रहणी ८०
सथाल १५९, उनके वशज १५८
सन्यास ५५, १२०, १३५, २१७, २४१, आश्रम २६६ ३२२, ३५४, ग्रहण १५४, धर्म, जीवन के लिए आवश्यक नही ३६५, व्रत १५४, ३५२
सन्यासिनी २४९
सन्यासी ७, ११, १४, १७, १५३, १७३-७४, २३०, २४९, २६३, ३१४, ३१६, ३१८-१९, ३५३, ३६१-६२, ३६४, उनका मूल उद्देश्य ३५३, उसका अर्थ ७, और गृहस्थ १८, और ब्रह्मचारी ३५५, ३६७, और शिक्षा-रीति १९, गैरिक वस्त्रधारी १८, जातिगत बधन मुक्त २६६, ढोगी ३२४, ३२६, तथा धर्म और नियम ३२२, धर्म २८३, नवदीक्षित ब्रह्मचारी ३६४, निम्नजातीय २६६, बगाली ३११, ब्राह्मण २३४, भाई १८५, यथार्थ ३२६, विद्वान् २३०, विवाह का अनधिकारी २८३, शिष्य ३९७, सपत्तिविहीन ८, सम्प्रदाय १८, सुधार और ज्ञान के केन्द्र १८
सयुक्त राज्य २६७, राष्ट्र २३५
सयुक्ता ४०२
सवेग, पशु कोटि की चीज़ २२०
सस्कृत कुल २९४, पुरातत्त्व १६६, पुस्तक २८५, भाषा १३३, २८४, ३५८, मत्र ३१२, ३४९, शब्द ४२, साहित्य १४८
सस्था, उसकी अपूर्णता तथा कल्याण २१९
सहिता, अथर्ववेद १६२, उनमे भक्ति का बीज ३८५, ऋग्वेद १४८, -नीति २८१
सतीत्व ९७, ३०३
सत् १९६-९७, २४२, वास्तविक ३६
सत्य ८, अद्वैत ३३५, उच्चतर ३७, उसका अन्वेषण २१४, उसका प्रकाश २३६, उसकी खोज २३६, २५५, उसके कहने का ढग २१४, उसके दो भेद १३९, उससे सत्य की ओर २५४, और त्याग २१४, और मिथ्या २२१, और राष्ट्र ३७, चिरन्तन १५९, ज्ञान ३३५-३६, निरपेक्ष ३३१, ३३५, परम १७, रूपी जल २४७, वादी ५०, वास्तविक ३१५, सापेक्ष ३१३, सारभूत २७३
सत्त्वगुण ५४, १३५-३६, उसका अस्तित्व १३६, उसकी जाति चिरजीवी १३६, उसकी विद्या १३५, और तमोगुण १३६, प्रधान ब्राह्मण ५४
सत्सग, उसकी महिमा ३९९, एव वार्तालाप ३०९
सद्गुरु ३९८
सनक ५०
सनातन धर्म ३५९, उसका महत्त्व १४१, शास्त्र और धर्म १४२
सन्त कवि ५३ (पा० टि०)
सन्मार्ग और भाषा ३६२
सप्तधातु २०७
सभ्यता, अग्रेज़ी का निर्माण २८९, आधुनिक यूरोपीय १३४, आध्यात्मिक या सासारिक ११३, इस्लामी १४५, उसका अर्थ ३९४, उसकी आदि भित्ति १०५, उसके भय से अनाचार ७०, एव सस्कृति १५९, पारसी ९२, राष्ट्रीय १६
समभाव ३३४
समाज, उसके अनुसार विभिन्न मत ३२७, और गुरु का उदय १६०, और सिद्धान्त ३१, देश और काल ३२७, वादी ३४७

समाधि २१५, १८४ अवस्था १८७
   -तत्त्व १९१
समानता और भ्रातृभाव २८८
सम्पत्ति और वैभव १८७
सम्प्रदाय आधुनिक संस्करण १९१
   थियोसॉफी १४९ द्वैतवादी १८१
   बौद्ध १९१ रोमन कैथोलिक
   २७२ वैष्णव १९१
सम्मोहन-विद्या १८८-८९
सर विलियम हंटर २८४
सरस्वती ११४
सर्जनात्मक सिद्धान्त १८
सर्प भ्रम ११५
सर्वधर्मसमन्वय १५८
'सर्वेश्वरवाद का युग' ११
'सहधर्मचारी चरित्र' २८५
सहिष्णुता २१७ उसके लिए युक्ति
   २४९ और प्रेम २४१
सांख्य दर्शन १८२ मत १८२
साइबेरिया ४९
सात्त्विक अवस्था ५४
साधन-पथ १८५ प्रणाली १९५
   भजन १४८ १५२, १९१
   -मार्ग १८५ -सोपान १४५
साधना प्रणाली १९१ १८१ अनुष्ठान
   १९१ राज्य १४५
साधु-दर्शन ११ -संग ११८ -सन्यासी
   १५ ११६, १२१ १२१ १८१
सानेट १८१
सापेक्ष ज्ञान १९१ ९७
सामरीया नारी और ईसा १५४
'सामाजिक प्रगति' २२१
'सामाजिक विज्ञान संघ' २११
सामाजिक विभाजन २२७ स्वाधीनता
   ५८
सामिष और निरामिष भोजन ७१
साम्यवाद १९१
साम्राज्यवादी ४
सारा हम्बर्ट २७९
'सार्टोर रिसार्टस' १२
सालेम इवनिंग न्यूज २२७ २१
'सालोमन के गीत' २९२
'साहित्य-कल्पद्रुम' १४५
सिकुल ११९, १४१
सिंहली गीत २१५
सिकन्दर ८७ सम्राट् ११
सिकन्दरशाह ११४
सिकन्दरियानिवासी १८२
सिक्ख साम्राज्य १२४
सिदियन (scythian) १२१
सिद्ध १७५ 'सिद्धों' १५७
सिद्धि-काम १५२
सिम्फुका २८५
सिन्धु १२, १ ५ देश १ ७
सियामदह ११९
सीता २१८ १९ देवी ७४ राम १८१
सुख अनन्त १७१ और श्रेयस् २८
   -दुःख ११ १७७ २०२ २ ९
   -भोग ५
सुधार-आन्दोलन २९२ और युक्ति
   का आधार २४७ वादी १२४
सुबोधानन्द स्वामी १५२
सुमात्रा ४९
सूर्य १४१ १४९ १८ २ १४
   २ ९, २५७ २६६, ११७ १५१
   १८४ १८८
सृष्टि २ ८ १८ अनादि और
   अनन्त २९७ उसका अर्थ २९८
   उसका आदि नहीं १८ और
   मनुष्य ११ -नाश १९९ मनुष्य
   समाज की १ ५ रचना २७१
   रचनावाद का सिद्धान्त ११-४
   रहस्य ११७ व्यक्त १९७ समाज
   की वेश-भेद से १ १
सेन केशवचन्द्र १४९, १५१ नरेन्द्रनाथ
   १४ ११४
सेनेटर पामर २७
सेन्ट हेलेना ९९
सेन्ट्रल चर्च २४१ बैप्टिस्ट चर्च
   २२८ २९

सेमेटिक ३००
'सेल मूल तातार' १०६
सेलिविस ४९
सेलेवीज ६३
सेवर हाल २८२
सेवा, निष्काम १९२
सेवियर ३४२, श्रीमती ३४०, ३४२
सैगिना २७०-७१, इवनिंग न्यूज २७२, कूरियर हेरल्ड २७४
सैन फ्रासिस्को ३५४ (पा० टि०), ४०१ (पा० टि०)
सैरागोटा २३१
सोमलता १६२
'सोऽहं' २९२
सौरजगत् ३३७
स्कम्भ १६२-६३
स्कॉटलैण्ड ९४
स्टर्डी, ई० टी० ३५५
स्टार-रगमच ३६६
स्टुअर्ट खानदान ९४, मिल ३३५
स्टैंडर्ड यूनियन २८६
स्टैसबर्ग जिला ९७
स्टोइक दर्शन ३८१
'स्ट्रियेटर डेली फ्री प्रेस' २४०
स्त्री और पुरुष २५७, और बौद्धिकता २१६,-पूजा ९०, सवधी आचार और विभिन्न देश ९६,
स्थिरा माता २०३ (पा० टि०)
स्नान और दाक्षिणात्य ७०, और पाश्चात्य, प्राच्य मे अतर ६९-७०
स्नोडेन, आर० वी० कर्नल २४५
स्पेन ४, ६९, ८१, ९१, २३५, उसकी समृद्धि २३६, देश १०८, ११३, वाले १०१, २७३
स्पेनी लोग २७३
स्पेन्सर ३०९
स्मिथ कॉलेज २७८, पत्रिका २७८
'स्रष्टा एव सर्वाधिनायक' १२०
'स्लेटन लिमेयम व्यूरो' २५०
स्वतत्रता, उच्चतम २१, सच्ची २२२
स्वधर्म, उसका अनुसरण ५२, उसकी रक्षा ५६
स्वयवर ४०१, उसकी प्रथा १०२,
स्वर्ग १२, २३, ६९, १३४, १७४, १८०, २१४, २५८, २६५, २८५, ३७८, ३८६, उसकी कल्पना २५, और देवदूत २५, और सुख की कल्पना २५
स्वर्णिम नियम २५८-५९
स्वाधीनता ९९, आध्यात्मिक ५९, राजनीतिक ५८, ६०, समानता और बधुत्व ९४, सामाजिक ५८-९
स्वेडन ८१, २३९
स्वेडनबर्ग २५८

हटर, सर विलियम २८४, २८६
हक और अधिकार २२४
हक्सले ३०९, ३१२
हज़रत ईसा १५४, मूसा १५७
हटेन्टॉट १५९
हठधर्मी और जडता २९४
हदीस ११३
हनुमान १४३, २१९
हब्शी १५९
हरमोहन वाबू ३४८-४९
हरिद्वार ७८
हरिनाम ५४, उसका जप ५२, -सकीर्तन-दल ३४०
हरिपद मित्र ३०९ (पा० टि०)
हसन-हुसैन १४५
हार्टफोर्ड २३२
हार्डफोर्ड ३७८
हार्वर्ड क्रिमसन २८२, विश्वविद्यालय ३८०
'हार्वर्ड रिलिजस यूनियन' २८२
'हॉल ऑफ कोलम्बस' २३२
हॉलैण्ड ८५
'हिदन' ३९४
हिन्दुस्तान २३२, और देशवासी ब्राह्मण २५०

विश्वामित्र २ ४ २९१
विश्वेश्वर १५१
विषय और विषयी २३ भोग १३४
विष्णुस्वामी १६६ (पा टि )
वीणापाणि १२७
वृन्दावन ३६३
वेंकूट हाल १५
वेण राजा २१७
वेद २५, ४१ ६१४ ११३ ११७
११२ २ १ (पा टि ) २२५,
२४१ २८४ २८९ ३६ ३६४
३९९ ३७२ ३७९ अध्वर्यु ३७
अनादि अनन्त १५१ ३६९
अथर्व ३६१ (पा टि ) आध्या
त्मिक जीवन के नियम ३६९
ईश्वर का प्रामाणिक वचन १६
उसका धर्म ८९ उसका प्रताप
१६ उसकी मान्यता ४३ ऋक
११४ २२१ ३६१(पा टि ) और
आत्मा संबंधी विचार १४९ और
कट्टर वैदिक मार्गी १६ और
कर्मकाण्ड का आधार २८९ और
बंगवासी ३६५ और भारत ९२
और मत्र २८९ और हिन्दू धर्म
१४९ दो भाग में विभक्त
६३ -पाठी ९ प्राचीनतम ग्रन्थ
१६ मंत्र ३६१ महान् ग्रन्थ ९
माध्यम से सत्य का उपभोग १५१
यजुर् ६१ ३६१(पा टि ) ३६९
वेदान्त ३६३ (पा टि ) शाखाएँ
१६ हिन्दू का आदि धर्मग्रन्थ ६१
वेद का अन्त ६३
वेदान्त ६४ ७२ ८१ ८९, ९१ २
१ ४-५, ११७ १५९, २५४
अभिमत ८ आशावादी ७१
उदय का इतिहास १५ -५१
उद्देश्य १७ उसका अस्वामित्व
८ उसका ईश्वर ८७ १८८
उसका गुण ७६ उसका दावा
११९ उसका ध्येय ८ उसका
निर्भीक सिद्धान्त ९९ उसका
प्रतिपादन ११८ उसका प्रतिपाद्य
८१ उसका रूप ७८-८० उसका
विचार ८१ उसका समाधान
१९८ उसकी अपेक्षा १५ उसकी
ईश्वर-कल्पना ९७ (पा टि )
उसकी मनुष्य पर मनास्था ७९
ऐतिहासिक व्यावहारिक परिणाम
११७-२१ और नास्तिक दर्शन
१४-५ और उसका प्रचार ७१
४ और धर्म ७९ और धर्म संबंधी
विचार ७९ और बन्धन ९७
और भारत ८ और मुक्ति-धारणा
११६ और व्यक्ति-विशेष की
धारणा ७९ और समस्त धर्म २५
और सांख्य ९७ (पा टि )
और सामाजिक आकांक्षा ३ १
कठिनाई ८ कथन १९८ केसरी
३८ जाति-भेद-हीन ८९ दर्शन
६१ ७१ ७७ ११४ ११७-१८
१५ १७ ३६४ (पा टि )
३६७ ३७२ दर्शन और निराशा
वाद ७२ दर्शन और यथार्थ आशा
वाद ७२ द्वारा आधुनिक संसार
पर १५ दृष्टि १ द्वारा
उठाया प्रश्न ८५ द्वारा अनर्थ
भीरु ईश्वर का उपदेश ७९ द्वारा
पाप पापी की स्थापना ८१
धर्म ३९५ धारणा ८ निराशा
वादी ७१ प्रतिपादित ईश्वर ८९
प्राचीनतम दर्शन ९१ १२ मत
९५, ७१ १ ३ महत्ता ११८
राष्ट्र का धर्म ८ लक्ष्य ८४
विख्यात सूत्र ११९ विशिष्ट
सिद्धान्त ११९ विशेषता ८९,
११७ १५२ व्यावहारिक पक्ष
१ २ व्याख्याकार का उदय
१५१ शाब्दिक अर्थ ६१ शिक्षा
७४ ८२ ९१ संघर्ष के लिए
स्थान १९५ सम्प्रदायरहित ८९

सागर ७६, सिद्धान्त ९७, २९६, ३६७, सिद्धि ९२, सूत्र का भाष्य ३७० (पा० टि०), हिन्दू का धर्म-ग्रथ ६४

'वेदान्त एण्ड दि वेस्ट १३७ (पा० टि०)

वेदान्ती, अद्वैत ६७, आधुनिक १७१, उत्साही २५४, उनका उपदेश ९७, उनका कथन १०८, उनका मत ६७, ७१, उनकी सहिष्णुता २९५, और आध्यात्मिक विशेषाधिकार १००, और उनकी नीति १२७, और सन्यासी २८७, और साख्य मत ६६-७, नैतिकता १०१-२, मस्तिष्क १०९, विचार ६८, सच्चा ७५, सत् ६८

वेनिस, अर्वाचीन २०८

वैज्ञानिक शिक्षा ३५८

वैतरणी २४१ (पा० टि०) (देखिए लेथी नदी)

वैदिक ऋषि ३७१, कर्मकाण्ड ६३ (पा० टि०), ३६४, काल २०५-६, क्रियाकाण्ड ३६२ (पा० टि०), ज्यामिति का उद्भव १३०, धर्म १६०, २७२, ३७२, नाम २८६, पशुवलि ३५४, पुरोहित २०१, भाषा १६०, मन्त्र २०१ (पा० टि०), मार्गी १६०, यज्ञ १८९, यज्ञ-वेदी १३०, विचार ६४, विद्या ३६०, सत्य ८९, साहित्य ६३ (पा० टि०), ३५५, साहित्यरूपी अरण्य २५६

वैधी भक्ति ३६

वैभव-विलास २९८

वैरागी २६३, ३६७ (पा० टि०)

वैशेषिक ३६२ (पा० टि०), दर्शन ६५

वैश्य २०२, २०९-१०, ३६४, उनका उत्थान २१८, उनका प्रभुत्व-काल २१८, उसका सूदरूपी कोडा २१८, उसकी विशेषता २१८, और इग्लैण्ड २०९, और प्रजा २२२, और ब्राह्मण शक्ति २०९; और राजशक्ति २१८, कुल २२१, शक्ति २०९, २१७

वैष्णव साधक ३६७ (पा० टि०)

व्यक्ति, अज्ञ ३७०, -उपासना ४६, उसका मूल्याकन १८५, उसका सत्य और उद्देश्य ३५१, उसकी असफलता १९५, उसकी असहायता १२३, उसकी प्रतीक्षा ३००, और अनासक्ति १९३, और आप्त विपय ३६९, और उच्च सदेश ३००, और जीवन सबधी दृष्टि १८४, और प्रतिक्रिया १६८, और भाव १८५, कल्पना और शून्य ३११, विकास-प्रक्रिया १६१, व्यवहारकुशल १८४

व्यक्तित्व, अपरिणामी, अपरिवर्तनीय ७६, (देखिए परमात्मा), उसका अर्थ ७५, १४१, उसका पुनर्विकास १९३, -वारी १४१, भाव ८३, यथार्थ ७६, -वाद ८४, सुरक्षा के लिए सघर्ष १४१

व्याकुलता और प्रेम २१

व्याख्या, उसके चार प्रकार ६४ (पा० टि०)

व्यापारी, जीवन, धर्म, प्यार, शील के १७८

व्यायामशाला, ससाररूपी १८७

व्यावहारिक जीवन, उसका महत्त्व २६२, उसकी विशेषता २६१, उसमे आदर्श का अस्तित्व २६१, और आदर्श का फल २६१, और आदर्श की शक्ति २६१, और मतवाद २६२

व्यावहारिक ज्ञान क्षेत्र ३७९, योग २६५

व्यास ६४-५, धीवर २२१, सूत्र ६४, ३६२-६३, ३७० (देखिए व्यास देव)

व्यास देव ३६४ (पा० टि०)

फिर भी मैं आने की भरसक चेष्टा कर रहा हूँ, हालाँकि तुम तो जानती हो कि एक महीना जाने में और एक महीना वापस आने में ही लग जाते हैं और वह भी केवल चंद दिनों के आवास के लिए। और चिन्ता न करो, मैं पूरी कोशिश कर रहा हूँ। मेरे अत्यधिक गिरे हुए स्वास्थ्य और कुछ कानूनी मामलों आदि के कारण थोड़ी देर अवश्य हो सकती है।

चिरस्नेहाबद्ध
विवेकानन्द

(कुमारी जोसेफिन मैक्लिऑड को लिखित)

मठ, बेलूड़, हावड़ा
बंगाल, भारत

प्रिय 'जो',

तुम्हारे जिस महान् ऋण से मैं ऋणी हूँ, उसे चुकाने की कल्पना तक मैं नहीं कर सकता। तुम कहीं भी क्यों न रहो, मेरी मंगलकामना करना तुम कभी भी नहीं भूलती हो। और तुम्हीं एकमात्र ऐसी हो, जो इन तमाम झमेलाओं से ऊँची उठकर मेरा समस्त बोझ अपने ऊपर लेती हो तथा मेरे सब प्रकार के अनुचित आचरणों को सहन करती हो।

तुम्हारे जापानी मित्र ने बहुत ही दयालुतापूर्ण व्यवहार किया है, किन्तु मेरा स्वास्थ्य इतना खराब है कि मुझे यह डर है कि जापान जाने का समय मैं नहीं निकाल सकूँगा। कम से कम केवल अपने गुणग्राही मित्रों के समाचार जानने के लिए मुझे एक बार बम्बई प्रेसीडेन्सी होकर गुजरना पड़ेगा।

इसके अलावा जापान यातायात में भी दो महीने बीत जायेंगे, केवल एक महीना वहाँ पर रह सकूँगा, कार्य करने के लिए इतना सीमित समय पर्याप्त नहीं है — तुम्हारा क्या मत है? अतः तुम्हारे जापानी मित्र ने मेरे मार्गव्यय के लिए जो धन भेजा है, उसे तुम वापस कर देना, नवम्बर में जब तुम भारत लौटोगी उस समय मैं उसे चुका दूँगा।

आसाम में मुझ पर पुनः मेरे रोग का भयानक आक्रमण हुआ था, क्रमशः मैं स्वस्थ हो रहा हूँ। बम्बई के लोग मेरी प्रतीक्षा कर हैरान हो चुके हैं, अब की बार उनसे मिलने जाना है।

इन सब कारणों के होते हुए भी यदि तुम्हारा यह अभिप्राय हो कि मेरे लिए जाना उचित है, तो तुम्हारा पत्र मिलते ही मैं रवाना हो जाऊँगा।

लन्दन से श्रीमती लेगेट ने एक पत्र लिखकर यह जानना चाहा है कि उनके भेजे हुए ३०० पौण्ड मुझे प्राप्त हुए है अथवा नही। उनका भेजा हुआ धन यथा-समय मुझे प्राप्त हुआ है तथा पूर्व निर्देश के अनुसार एक सप्ताह अथवा उससे भी पहले 'मोनरो एण्ड कम्पनी, पेरिस'—इस पते पर मैंने उनको सूचित कर दिया है।

उनका जो अन्तिम पत्र मुझे प्राप्त हुआ है, उस लिफाफे को न जाने किसने अत्यन्त भद्दे तरीके से फाड दिया है। भारतीय डाक विभाग मेरे पत्रो को थोडी शिष्टता के साथ खोलने का प्रयास भी नही करता!

तुम्हारा चिरस्नेहशील,
विवेकानन्द

(कुमारी मेरी हेल को लिखित)

मठ,
५ जुलाई, १९०१

प्रिय मेरी,

मैं तुम्हारे लम्बे प्यारे पत्र के लिए अत्यत कृतज्ञ हूँ, क्योकि इस समय मुझे किसी ऐसे ही पत्र की जरूरत थी, जो मेरे मन को थोडा प्रोत्साहन दे सके। मेरा स्वास्थ्य बहुत खराब रहा है और अभी है भी। मैं केवल कुछ दिनो के लिए सँभल जाता हूँ, इसके बाद फिर ढह पडना जैसे अनिवार्य हो जाता है। खैर, इस रोग की प्रकृति ही ऐसी है।

काफी पहले मैं पूर्वी बगाल और आसाम मे भ्रमण करता रहा हूँ। आसाम काश्मीर के बाद भारत का सबसे सुन्दर प्रदेश है, लेकिन साथ ही बहुत अस्वास्थ्यकर भी है। पर्वतो और गिरि शृखलाओ मे चक्कर काटती हुई विशाल ब्रह्मपुत्र—जिसके बीच बीच मे अनेक द्वीप हैं, बस देखने ही लायक है।

तुम तो जानती ही हो कि मेरा देश नद-नदियो का देश है। किन्तु इसके पूर्व इसका वास्तविक अर्थ मैं नही जानता था। पूर्वी बगाल की नदियाँ नदियाँ नही, मीठे पानी के घुमडते हुए सागर हैं, और वे इतनी लम्बी हैं कि स्टीमर उनमे हफ्तो तक लगातार चलते रहते हैं। कुमारी मैक्लिऑड जापान मे हैं। वे उस देश पर मुग्ध हैं और मुझसे वहाँ आने को कहा है, लेकिन मेरा स्वास्थ्य इतनी लम्बी समुद्र-यात्रा गवारा नही कर सकता, अत मैंने इकार कर दिया है। इसके पहले मैं जापान देख भी चुका हूँ।

तो तुम वेनिस का आनन्द ले रही हो! यह वृद्ध पुरुष (नगर) अवश्य ही मजेदार होगा—क्योंकि शाइलॉक केवल वेनिस में ही हो सकता था है न?

मुझे अत्यंत खुशी है कि सैम इस वर्ष तुम्हारे साथ ही है। उत्तर के अपने नीरस अनुभव के बाद यूरोप में उसे आनन्द आ रहा होगा। इधर मैंने कोई रोचक मित्र नहीं बनाया और जिन पुराने मित्रों को तुम जानती हो वे प्राय: सबके सब मर चुके हैं—खेतड़ी के राजा भी। उनकी मृत्यु सिकन्दरा में सम्राट् अकबर की समाधि के एक ऊँचे मीनार से गिर पड़ने से हुई। वे अपने खर्चे से आगरे में इस महान् प्राचीन वास्तु-शिल्प के नमूने की मरम्मत करवा रहे थे कि एक दिन उसका निरीक्षण करते समय उनका पैर फिसला और वे सैकड़ों फुट नीचे गिर गये। इस प्रकार तुम देखती हो न कि प्राचीन के प्रति हमारा उत्साह ही कभी कभी हमारे दुःख का कारण बनता है। इसलिए मेरी ध्यान रहे कहीं तुम अपनी भारतीय प्राचीन वस्तुओं के प्रति अत्यधिक उत्साहशील न हो जाना!

मिशन के प्रतीक-चिह्न में सर्प रहस्यवाद (योग) का प्रतीक है सूर्य ज्ञान का उद्वेलित सागर कर्म का कमल भक्ति का और हंस परमात्मा का जो इन सबके मध्य में स्थित है।

सैम और माँ को प्यार कहना।

सस्नेह,
विवेकानन्द

पुनश्च—हर समय शरीर से अस्वस्थ रहने के कारण ही यह छोटा पत्र लिखना पड़ रहा है।

(भगिनी क्रिश्चिन को लिखित)

प्रिय क्रिश्चिन

बेलूड़ मठ,
१ जुलाई, १९ १

कभी कभी किसी कार्य के आवेश से मैं विवश हो उठता हूँ। आज मैं लिखने के नशे में मस्त हूँ। इसलिए मैं सबसे पहले तुमको कुछ पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। मेरे स्नायु दुर्बल हैं—ऐसी मेरी बदनामी है। अत्यन्त सामान्य कारण से ही मैं व्याकुल हो उठता हूँ। किन्तु प्रिय क्रिश्चिन मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषय में तुम भी मुझसे कम नहीं हो। हमारे यहाँ के एक कवि ने लिखा है हो सकता है कि पर्वत भी उड़ने लगे अग्नि में भी शीतलता उत्पन्न हो जाय किन्तु महान् व्यक्ति के हृदय में स्थित महान् भाव कभी दूर नहीं होता। मैं सामान्य

व्यक्ति हूँ, अत्यन्त ही सामान्य, किन्तु मैं यह जानता हूँ कि तुम महान् हो, तुम्हारी महत्ता पर सदा मेरा विश्वास है। अन्यान्य विषयों में भले ही मुझे चिन्तित होना पड़े, किन्तु तुम्हारे बारे में मुझे तनिक भी दुश्चिन्ता नहीं है।

जगज्जननी के चरणों में मैं तुम्हें सौंप चुका हूँ। वे ही तुम्हारी सदा रक्षा करेंगी एवं मार्ग दिखाती रहेंगी। मैं यह निश्चित रूप से जानता हूँ कि कोई भी अनिष्ट तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकता—किसी प्रकार की विघ्न-बाधाएँ क्षण भर के लिए भी तुम्हें दबा नहीं सकतीं। इति।

भगवदाश्रित,
विवेकानन्द

(कुमारी जोसेफिन मैक्लिऑड को लिखित)

१४ जुलाई, १९०१

प्रिय 'जो',

यह जानकर कि बोया कलकत्ता आ रहे हैं, मैं सतत प्रसन्न हूँ। उन्हें शीघ्र मठ भेज दो। मैं यहाँ रहूँगा। यदि सम्भव हुआ, तो मैं उन्हें यहाँ कुछ दिन रखूँगा और तब उन्हें फिर नेपाल जाने दूँगा।

आपका,
विवेकानन्द

(कुमारी मेरी हेल को लिखित)

बेलूड़ मठ,
हावड़ा, बंगाल,
२७ अगस्त, १९०१

प्रिय मेरी,

मैं मनाता हूँ कि मेरा स्वास्थ्य तुम्हारी आशा के अनुरूप हो जाय, कम से कम इतना अच्छा कि तुम्हें एक लम्बा पत्र ही लिख सकूँ। पर यथार्थ यह है कि वह दिन-प्रतिदिन गिरता ही जा रहा है, इसके अतिरिक्त भी अनेक परेशानियाँ और उलझनें साथ लगी हैं। मैंने तो अब उन पर ध्यान देना ही छोड़ दिया है।

स्विट्ज़रलैण्ड के अपने सुन्दर काष्ठगृह में सुख-स्वास्थ्य से परिपूर्ण रहो, यही मेरी कामना है। यदाकदा स्विट्ज़रलैण्ड अथवा अन्य स्थानों की प्राचीन वस्तुओं का हल्का अध्ययन—निरीक्षण करते रहने से चीजों का आनन्द थोड़ा और भी बढ़ जायगा। मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि तुम पहाड़ों की मुक्त-वायु में साँस

रह रही हो। लेकिन दुःख है कि सैम पूर्णतः स्वस्थ नहीं है। खैर, इसमें कोई चिन्ता की बात नहीं उसकी काठी वैसे ही बड़ी अच्छी है।

स्त्रियों का चरित्र और पुरुषों का भाग्य इन्हें स्वयं ईश्वर भी नहीं जानता मनुष्य की तो बात ही क्या। चाहे यह मेरा स्त्रियोचित स्वभाव ही मान लिया जाय पर इस क्षण तो मेरे मन में यही आता है कि काश तुम्हारे भीतर पुरुषत्व का थोड़ा अंश होता। ओह मेरी! तुम्हारी बुद्धि स्वास्थ्य सुन्दरता सब उस एक आवश्यक तत्त्व के बिना व्यर्थ जा रहे हैं और वह है—व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा! तुम्हारा दर्प तुम्हारी तेजी सब बकवास है केवल मजाक। अधिक से अधिक तुम एक बोर्डिंग-स्कूल की छोकरी हो—रीढ़हीन! बिल्कुल ही रीढ़हीन!

आह! यह जीवनपर्यन्त दूसरों को रास्ता सुझाते रहने का व्यापार! यह अत्यन्त कठोर है अत्यन्त क्रूर! पर मैं असहाय हूँ इसके आगे। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ मेरी ईमानदारी से सच्चाई से मैं तुम्हें प्रिय लगनेवाली बातों से छल नहीं सकता। न ही यह मेरे वश का रोग है।

फिर मैं एक मरणोन्मुख व्यक्ति हूँ मेरे पास छल करने के लिए समय नहीं। अतः ऐ लड़की जाग! अब मैं तुमसे ऐसे पत्रों की आशा करता हूँ जिनमें खरी धार जैसी तेजी हो उसकी तेजी बनाये रखो मुझे पर्याप्त रूप से जागृति की आवश्यकता है।

मुझे मैकवीग परिवार के विषय में अब तक कहीं से कोई समाचार नहीं मिला। श्रीमती बुल या निवेदिता से कोई सीधा पत्र-व्यवहार न होने पर भी श्रीमती सेवियर से मुझे बराबर उनके विषय में सूचना मिलती रही है और अब सुनता हूँ कि वे सब नार्वे में श्रीमती बुल के अतिथि हैं।

मुझे नहीं मालूम कि निवेदिता भारत कब वापस आयेगी या कभी आयेगी भी या नहीं।

एक तरह से मैं एक अवकाशप्राप्त व्यक्ति हूँ आन्दोलन कैसा चल रहा है इसकी कोई बहुत जानकारी मैं नहीं रखता। दूसरे आन्दोलन का स्वरूप भी बड़ा होता जा रहा है और एक आदमी के लिए उसके विषय में सूक्ष्मतम जानकारी रखना असंभव है।

खाने-पीने सोने और शेष समय में शरीर की शुश्रूषा करने के सिवा मैं और कुछ नहीं करता। विदा मेरी। आशा है इस जीवन में कहीं न कहीं हम तुम अवश्य मिलेंगे। और न भी मिलें तो भी तुम्हारे इस भाई का प्यार तो सदा तुम पर रहेगा ही।

विवेकानन्द

(श्री एम० एन० वनर्जी को लिखित)

मठ, वेलूड, हावडा,
२९ अगस्त, १९०१

स्नेहाशी,

मेरा शरीर क्रमश स्वस्थ होता जा रहा है, यद्यपि अभी तक मैं अत्यन्त ही दुर्वल हूँ। 'शुगर' अथवा 'अलवुमिन' की कोई शिकायत नही है, यह देखकर सब कोई चकित हैं। वर्तमान गडवडी का एकमात्र कारण स्नायु सम्वन्धी दुर्वलता है। अस्तु, धीरे धीरे मैं ठीक होता जा रहा हूँ।

पूजनीया माता जी ने कृपापूर्वक जो प्रस्ताव किया है, उससे मैं विशेष कृतार्थ हूँ। किन्तु मठ के लोगो का कहना है कि नीलाम्वर वावू के मकान, यहाँ तक कि समूचे वेलूड गाँव मे भी अभी तथा आगामी महीने मे 'मलेरिया' छा जाता है। इसके अलावा किराया भी अत्यधिक है। अत पूजनीया माता जी यदि आना चाहे, तो मेरी राय यही है कि कलकत्ते मे एक छोटे से मकान की व्यवस्था की जाय। यदि हो सका, तो मैं भी कलकत्ते मे जाकर ही रहूँगा, क्योकि वर्तमान शारीरिक दुर्वलता मे पुन मलेरिया का आक्रमण होना कतई वाछनीय नही है। मैंने अभी इस बारे मे सारदानन्द या ब्रह्मानन्द की राय नही ली है। वे दोनो ही कलकत्ते मे हैं। ये दो मास कलकत्ता अपेक्षाकृत स्वास्थ्यप्रद है और कम खर्चीला भी है।

मूल बात यह है कि प्रभु उन्हे जैसे चलाये, वैसे ही चलना उचित है। हमलोग केवल सलाह दे सकते हैं और वह सलाह भी एकदम निरर्थक ही है। यदि रहने के लिए उन्हें नीलाम्बर बावू का मकान ही पसन्द हो, तो किराया आदि पहले से ही ठीक कर रखना। माता जी की इच्छा पूर्ण हो—मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ।

मेरा हार्दिक स्नेह तथा शुभकामना जानना।

सदा प्रभुचरणाश्रित,
विवेकानन्द

(श्री एम० एन० वनर्जी को लिखित)

मठ, वेलूड, हावडा,
७ सितम्वर, १९०१

स्नेहाशी,

ब्रह्मानन्द तथा अन्यान्य सभी की राय जानना आवश्यक प्रतीक होने के कारण एव उन लोगो के कलकत्ते मे रहने के कारण तुम्हारे अन्तिम पत्र के जवाव देने मे देरी हुई।

पूरे एक वर्ष के लिए मकान लेने का विषय सोच-समझकर निश्चित करना होगा। इधर जैसे इस महीने बेलूड़ में 'मलेरिया' होने का डर है, उसी प्रकार कलकत्ते में भी 'प्लेग' का भय है। फिर भी यदि कोई गाँव के भीतरी भाग में न जाने के प्रति सचेत रहे तो वह 'मलेरिया' से बच सकता है, क्योंकि नदी के किनारे पर 'मलेरिया' बिल्कुल नहीं है। अभी तक नदी के किनारे पर 'प्लेग' नहीं फैला है, और 'प्लेग' के आक्रमण के समय इस गाँव में उपलब्ध सभी स्थान मारवाड़ियों से भर जाते हैं।

इसके अतिरिक्त अधिक से अधिक तुम कितना किराया दे सकते हो, उसका उल्लेख करना आवश्यक है, तब कहीं हम तदनुसार मकान की तलाश कर सकते हैं। और दूसरा उपाय यह है कि कलकत्ते का मकान ले लिया जाय।

मैं स्वयं ही मानो कलकत्ते में विदेशी बन चुका हूँ। किन्तु और लोग तुम्हारी पसन्द के अनुसार मकान की तलाश कर देंगे। जितना शीघ्र हो सके निम्नलिखित दोनों विषयों में तुम्हारा विचार ज्ञात होते ही हम लोग तुम्हारे लिए मकान तलाश कर देंगे। (१) पूजनीया माता जी बेलूड़ रहना चाहती हैं अथवा कलकत्ते में? (२) यदि कलकत्ता रहना पसन्द हो तो कहाँ तक किराया देना अभीष्ट है एवं किस मुहल्ले में रहना उनके लिए उपयुक्त होगा? तुम्हारा जवाब मिलते ही शीघ्र यह कार्य सम्पन्न हो जायगा।

मेरा हार्दिक स्नेह तथा शुभकामना जानना।

भवदीय<br>
विवेकानन्द

पुनश्च—हम लोग यहाँ पर कुशलपूर्वक हैं। मोती एक सप्ताह तक कलकत्ते में रहकर वापस आ चुका है। गत तीन दिनों से यहाँ पर दिन रात वर्षा हो रही है। हमारी दो गायों के बछड़े हुए हैं।

वि

(भगिनी निवेदिता को लिखित)

मठ, बेलूड़<br>
७ सितम्बर, १९०१

प्रिय निवेदिता,

हम सभी तात्कालिक आवेश में मग्न रहते हैं—खासकर इस कार्य में हम उसी रूप से संलग्न हैं। मैं कार्य के आवेश को दबाये रखना चाहता हूँ, किन्तु कोई ऐसी घटना घट जाती है, जिसके फलस्वरूप वह स्वयं ही उभड़ उठता है, और

इसीलिए तुम यह देख रही हो कि चिन्तन, स्मरण, लेखन—और भी न जाने कितना सब किया जा रहा है।

वर्षा के बारे मे कहना पडेगा कि अब पूरे जोर से आक्रमण शुरू हो गया है, दिन-रात प्रबल वेग से जल बरस रहा है, जहाँ देखो वहाँ वर्षा ही वर्षा है। नदियाँ बढकर अपने दोनो तटो को प्लावित कर रही है, तालाब, सरोवर सभी जल से परिपूर्ण हो उठे है।

वर्षा होने पर मठ के अन्दर जो जल रुक जाता है, उसे निकालने के लिए एक गहरी नाली खोदी जा रही है। इस कार्य मे कुछ हाथ बँटाकर अभी अभी मैं लौट रहा हूँ। किसी किसी स्थल पर कई फुट तक जल भर जाता है। मेरा विशालकाय सारस तथा हस-हसिनी सभी पूर्ण आनन्द मे विभोर हैं। मेरा पाला हुआ 'कृष्ण-सार' मृग मठ से भाग गया था और उसे ढूंढ निकालने मे कई दिन तक हम लोगो को बहुत ही परेशानी उठानी पडी थी। एक हसी दुर्भाग्यवश कल मर गयी। प्राय एक सप्ताह से उसे श्वास लेने मे कष्ट का अनुभव हो रहा था। इन स्थितियो को देखकर हमारे एक वृद्ध रसिक साधु कह रहे थे, महाशय जी, इस कलिकाल मे जब सर्दी तथा वर्षा से हस को जुकाम हो जाता है, और मेढक को भी छीक आने लगती है, तो फिर इस युग मे जीवित रहना निरर्थक ही है।

एक राजहसी के पख झड रहे थे। उसका कोई प्रतिकार मालूम न होने के कारण एक पात्र मे कुछ जल के साथ थोडा सा 'कार्बोलिक एसिड' मिलाकर उसमे कुछ मिनट के लिए उसे इसलिए छोड दिया गया था कि या तो वह पूर्णरूप से स्वस्थ हो उठेगी अथवा समाप्त हो जायगी, परन्तु वह अब ठीक है।

त्वदीय,
विवेकानन्द

बेलूड,
८ अक्तूबर, १९०१

प्रिय—

जीवन-प्रवाह मे उत्थान-पतन के अन्दर होकर मैं अग्रसर हो रहा हूँ। आज मानो मैं कुछ नीचे की ओर हूँ।

भवदीय,
विवेकानन्द

(कुमारी जोसेफिन मैक्लिऑड को लिखित)

मठ, पोस्ट-बेलूड़ हावड़ा
८ नवम्बर, १९ १

प्रिय 'जो'

Abatement (कमी) शब्द की व्याख्या के साथ जो पत्र भेजा जा चुका है वह निश्चय ही अब तक तुम्हें मिल गया होगा। मैंने न तो स्वयं वह पत्र ही लिखा है और न 'तार' ही भेजा है। मैं उस समय इतना अधिक अस्वस्थ था कि उन दोनों में से किसी भी कार्य को करना मेरे लिए सम्भव नहीं था। पूर्वी बंगाल का भ्रमण करके लौटने के बाद से ही मैं निरन्तर बीमार बैठा हूँ। इसके अलावा दृष्टि घट जाने के कारण मेरी हालत पहले से भी खराब है। इन बातों को मैं लिखना नहीं चाहता किन्तु मैं यह देख रहा हूँ कि कुछ लोग पूरा विवरण जानना चाहते हैं।

अस्तु, तुम अपने जापानी मित्रों को लेकर आ रही हो—इस समाचार से मुझे खुशी हुई। मैं अपने सामर्थ्यानुसार उन लोगों का आदर-आतिथ्य करूँगा। उस समय मद्रास में रहने की मेरी विशेष सम्भावना है। आगामी सप्ताह मैं कलकत्ता छोड़ देने का मेरा विचार है एवं क्रमशः दक्षिण की ओर अग्रसर होना चाहता हूँ।

तुम्हारे जापानी मित्रों के साथ उड़ीसा के मंदिरों को देखना मेरे लिए सम्भव होगा या नहीं यह मैं नहीं जानता हूँ। मैंने म्लेच्छों का भोजन किया है अतः वे लोग मुझे मन्दिर में जाने देंगे अथवा नहीं—यह मैं नहीं जानता। लॉर्ड कर्जन को मन्दिर में प्रवेश नहीं करने दिया गया था।

अस्तु, फिर भी तुम्हारे मित्रों के लिए जहाँ तक मुझसे सहायता हो सकती है मैं करने को सदैव प्रस्तुत हूँ। कुमारी मूलर कलकत्ते में हैं यद्यपि वे हम लोगों से नहीं मिली हैं।

सदैव स्नेहशील त्वदीय
विवेकानन्द

(स्वामी स्वरूपानन्द को लिखित)

गोपाल लाल विला,
वाराणसी छावनी,
९ फरवरी, १९०२

प्रिय स्वरूप,

चारु के पत्र के उत्तर मे उससे कहना कि ब्रह्मसूत्र का वह स्वय अध्ययन करे। उसका यह कहने से क्या अभिप्राय है कि ब्रह्मसूत्रो मे बौद्ध मत का सकेत है? निश्चय ही उसका मतलब भाष्य से होगा—होना चाहिए, और शकराचार्य केवल अन्तिम भाष्यकार थे, हाँ, बौद्ध साहित्य मे भी वेदान्त का कही कही उल्लेख है और बौद्धो का महायान मत अद्वैतवादी भी है। अमरसिह नाम के एक बौद्ध ने बुद्ध के नामो मे अद्वयवादी का नाम क्यो दिया था? चारु लिखता है कि ब्रह्म शब्द उपनिषद् मे नही आता है! वाह!!

बौद्ध धर्म के दोनो मतो मे मैं महायान को अधिक प्राचीन मानता हूँ। माया का सिद्धान्त ऋक् सहिता के समान प्राचीन है। श्वेताश्वतर उपनिषद् मे 'माया' शब्द का प्रयोग है, जो प्रकृति से विकसित हुआ है। इस उपनिषद् को कम से कम मैं बौद्ध धर्म से प्राचीन मानता हूँ।

बौद्ध धर्म के विषय मे मुझे कुछ दिनो से बहुत सा ज्ञान हुआ है। मैं इसका प्रमाण देने को तैयार हूँ कि—

(१) शिव-उपासना अनेक रूपो मे बौद्धमत से पहले स्थापित थी, और बौद्धो ने शैवो के तीर्थस्थानो को लेने का प्रयत्न किया, परन्तु असफल होने पर उन्होने उन्हीके निकट नये स्थान बनाये, जैसे कि बोधगया और सारनाथ मे पाये जाते हैं।

(२) अग्निपुराण मे गयासुर की कथा का बुद्ध से सम्बन्ध नही है—जैसा कि डा० राजेन्द्रलाल मानते है—परन्तु उसका सम्बन्ध केवल पहले से ही वर्तमान एक कथा से है।

(३) बुद्ध देव गयाशीर्ष पर्वत पर रहने गये, इससे यह प्रमाण मिलता है कि वह स्थान पहले से ही था।

(४) गया पहले से ही पूर्वजो की उपासना का स्थान बन चुका था, और बौद्धो ने अपनी चरण-चिह्न उपासना मे हिन्दुओ का अनुकरण किया है।

(५) प्राचीन से प्राचीन पुस्तकें भी यह प्रमाणित करती हैं कि वाराणसी शिव-पूजा का बडा स्थान था, आदि आदि।

बोधगया से और बौद्ध साहित्य मे मैंने बहुत सी नयी बातें जानी है। चारु से कहना कि वह स्वय पढे तथा मूर्खतापूर्ण मतो से प्रभावित न हो।

मैं यहाँ वाराणसी में अच्छा हूँ और यदि मेरा इसी प्रकार स्वास्थ्य सुधरता जायगा, तो मुझे बड़ा लाभ होगा।

बौद्ध धर्म और नव-हिन्दू धर्म के सम्बन्ध के विषय में मेरे विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। उन विचारों को निश्चित रूप देने के लिए कदाचित् मैं जीवित न रहूँ, परन्तु उसकी कार्यप्रणाली का संकेत मैं छोड़ जाऊँगा और तुम्हें तथा तुम्हारे भ्रातृगणों को उस पर काम करना होगा।

आशीर्वाद और प्रेमपूर्वक तुम्हारा,
विवेकानन्द

(श्रीमती ओलि बुल को लिखित)

गोपाल लाल विला,
वाराणसी छावनी,
१० फ़रवरी, १९०२

प्रिय श्रीमती बुल,

आपका और पुत्री का एक बार पुनः भारतभूमि पर स्वागत है। मद्रास जर्नल की एक प्रति जो मुझे 'जो' की कृपा से प्राप्त हुई, उससे मैं अत्यन्त हर्षित हूँ। जो स्वागत निवेदिता का मद्रास में हुआ, वह निवेदिता और मद्रास दोनों ही के लिए हितकर था। उसका भाषण निश्चय ही बड़ा सुन्दर रहा।

मैं आशा करता हूँ कि आप और निवेदिता भी इतनी लम्बी यात्रा के पश्चात् पूरी तरह विश्राम कर रही होंगी। मेरी बड़ी इच्छा है कि आप कुछ घंटों के लिए पश्चिमी कलकत्ता के कुछ गाँवों में जायँ और वहाँ लकड़ी, बाँस, बेंत, अभ्रक तथा घास-फूस आदि से निर्मित पुराने किस्म के बंगाली मकानों को देखें। वास्तव में वे ही 'बंगला' कहलाने के अधिकारी हैं, जो अत्यंत कलापूर्ण होते हैं। किन्तु आह! आजकल तो वह नाम 'बंगला' हर किसी भद्दे-सड़े दूषित मकान को देकर उस नाम का मखौल बना दिया गया है। पुराने जमाने में जो कोई भी महल बनवाता तो अतिथि-सत्कार के लिए इस प्रकार का एक 'बंगला' अवश्य बनवाता था। इसकी निर्माण-कला अब विनष्ट होती जा रही है। काश मैं निवेदिता की सारी पाठशाला ही इस शैली में बनवा सकता! फिर भी इस तरह के जो दो-एक नमूने शेष बचे हैं, उन्हें देखकर सुख होता है।

ब्रह्मानन्द सब प्रबन्ध कर देगा, आपको केवल कुछ घंटों की यात्रा भर करनी पड़ेगी।

श्री ओकाकुरा अपने अल्पकालीन दौरे पर निकल पडे हैं। वे आगरा, ग्वालियर, अजन्ता, एलोरा, चित्तौड, उदयपुर, जयपुर और दिल्ली आदि जगहे जाना चाहते हैं।

बनारस का एक अत्यत सुशिक्षित धनाढ्य युवक, जिसके पिता से हमारी पुरानी मित्रता थी, कल इस नगर मे वापस आ गये हैं। उनकी कला मे विशेष रुचि है और नष्टप्राय भारतीय कला के पुनरुत्थान के सदुद्देश्य से बहुत सा धन व्यय कर रहे हैं। वे श्री ओकाकुरा के जाने के पश्चात् ही मुझसे मिलने आये। भारत की कला जो कुछ भी शेष रह गयी है, उसका श्री ओकाकुरा को दर्शन कराने के लिए ये ही उपयुक्त व्यक्ति हैं, और मुझे विश्वास है, इनके सुझावो से श्री ओकाकुरा लाभान्वित होंगे। अभी ही श्री ओकाकुरा ने टेराकोटा की एक सुराही यहाँ से प्राप्त की है, जिसे नौकर इस्तेमाल कर रहे थे। उसकी गठन और उसकी मुद्राकित डिज़ाइन पर वे मुग्ध रह गये। किन्तु चूँकि वह सुराही मिट्टी की थी और यात्रा मे उसके टूट जाने का भय था, अत उन्होने मुझसे उसे पीतल मे ढलवा लेने को कहा। मैं तो किकर्तव्यविमूढ सा था कि क्या करूँ! कुछ घटे बाद तभी यह युवक आये और न केवल उन्होने इस कार्य के करने का ज़िम्मा ले लिया, वरन् मुझे ऐसे सैकडों मुद्राकित टेराकोटा भी दिखाये, जो श्री ओकाकुरावाले से असख्यगुना श्रेष्ठ हैं।

उन्होने उस अद्भुत प्राचीन शैली के पुराने चित्रो को सिखाने का भी प्रस्ताव रखा। वाराणसी मे केवल एक परिवार ऐसा बचा है, जो अब भी उस प्राचीन शैली मे चित्र बना सकता है। उनमे से एक ने तो मटर के एक दाने पर आखेट का सपूर्ण दृश्य ही चित्रित कर डाला है, जो बारीकी और क्रियाकन मे पूर्णत निर्दोष है। मुझे आशा है कि लौटते समय ओकाकुरा इस नगर मे आयेंगे और इन भद्रपुरुष के अतिथि बनकर भारत के कलावशेषो का दर्शन करेंगे।

निरजन भी श्री ओकाकुरा के साथ गया है और एक जापानी होने से किसी मदिर मे आने-जाने से उसे कोई मना नही करता। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे तिब्बती और दूसरे उत्तर प्रान्तीय बौद्ध शिव की उपासना के लिए यहाँ बराबर आते रहे हैं। यहाँ वालो ने उसे शिवलिंग का स्पर्श करने तथा पूजा आदि करने की अनुमति दे दी थी। श्रीमती एनी बेसेंट ने भी ऐसी ही चेष्टा एक बार की थी, पर बेचारी! उन्हे मदिर के प्रागण तक मे प्रवेश नही करने दिया गया, यद्यपि उन्होंने जूते उतार दिये थे और साडी पहनकर पुरोहितो के चरणो की धूलि भी माथे लगा चुकी थी। बौद्ध हमारे यहाँ के किसी भी बडे मदिर मे अहिन्दू नही समझे जाते।

मेरा कार्यक्रम कोई निश्चित नहीं है; मैं बहुत शीघ्र ही यह स्थान बदल सकता हूँ।

निश्चयानन्द और लड़के आप सबको अपना स्नेह-आदर प्रेषित करते हैं।

चिरस्नेहाबद्ध
विवेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

गोपाल लाल विला
वाराणसी छावनी
१२ फरवरी, १९०२

कल्याणीय,

तुम्हारे पत्र से सविशेष समाचार जानकर सुखी हुआ। निवेदिता के स्कूल के बारे में मुझे जो कुछ कहना था, मैंने उनको लिख दिया है। इतना ही कहना है कि उनकी दृष्टि में जो अच्छा प्रतीत हो, तदनुसार वे कार्य करें।

और किसी विषय में मेरी राय न पूछना। उससे मेरा दिमाग खराब हो जाता है। तुम मेरे लिए केवल यह कार्य कर देना—बस इतना ही। रुपये भेज देना, क्योंकि इस समय मेरे समीप दो-चार रुपये ही शेष हैं।

कन्हाई मधुकरी के सहारे जीवित है, घाट पर जप-तप करता रहता है तथा रात में यहाँ आकर सोता है। नेदा गरीब आदमियों का कार्य करता है, रात में आकर सोता है। चाचा[1] (Okakura) तथा निरंजन आ गये हैं, आज उनका पत्र मिलने की सम्भावना है।

प्रभु के निर्देशानुसार कार्य करते रहना। दूसरों के अभिमत जानने के लिए भटकने की क्या आवश्यकता है? सबसे मेरा स्नेह कहना तथा बच्चों से भी। इति।

सस्नेह आशीष
विवेकानन्द

(भगिनी निवेदिता को लिखित)

वाराणसी
१२ फरवरी, १९०२

प्रिय निवेदिता,

सब प्रकार की शक्तियाँ तुममें उद्बुद्ध हों, महामाया स्वयं तुम्हारे हृदय तथा

---

१ ओकाकुरा (Okakura) को प्रेमपूर्वक ऐसा सम्बोधित किया गया है। 'कुरा' शब्द का उच्चारण बंगला 'खुड़ा' (अर्थात् चाचा) के निकट है, इसीलिए स्वामी जी मजाक में उनको चाचा कहते थे। स०

भुजाओं मे अविच्छिन्न हो। अप्रतिहत महाशक्ति तुम्हारे अन्दर जाग्रत हो तथा यदि सम्भव हो, तो उसके साथ ही साथ तुम शान्ति भी प्राप्त करो—यही मेरी प्रार्थना है।

यदि श्री रामकृष्ण देव सत्य हो, तो उन्होंने जिस प्रकार मेरे जीवन मे मार्ग प्रदर्शन किया है, ठीक उसी प्रकार अथवा उससे भी हजार गुना स्पष्ट रूप से तुम्हे भी वे मार्ग दिखाकर अग्रसर करते रहे।

विवेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

गोपाल लाल विला,
वाराणसी छावनी,
१८ फरवरी, १९०२

अभिन्नहृदय,

रुपये प्राप्ति के समाचार के साथ कल मैंने जो तुमको पत्र लिखा है, अब तक वह निश्चय ही तुमको मिल गया होगा। आज यह पत्र लिखने का मुख्य कारण है कि इस पत्र के देखते ही तुम उनसे मिल आना। तदनन्तर क्या बीमारी है, कफ आदि किस प्रकार का है, यह देखना है, किसी अत्यन्त सुयोग्य चिकित्सक के द्वारा रोग का अच्छी तरह से निदान करा लेना। राम बाबू की बडी लडकी विष्णुमोहिनी कहाँ है?—वह हाल ही मे विधवा हुई है।

रोग से चिन्ता कही अधिक है। दस-बीस रुपये जो कुछ आवश्यक हो दे देना। यदि इस ससाररूपी नरककुण्ड मे एक दिन के लिए भी किसी व्यक्ति के चित्त मे थोडा सा आनन्द एव शान्ति प्रदान की जा सके, तो उतना ही सत्य है, आजन्म मैं तो यही देख रहा हूँ—बाकी सब कुछ व्यर्थ की कल्पनाएँ हैं।

अत्यन्त शीघ्र इस पत्र का जवाब देना। चाचा (Okakura या अक्रूर चाचा) तथा निरजन ने ग्वालियर से पत्र लिखा है। अब यहाँ पर दिनो दिन गर्मी बढ रही है। बोधगया से यहाँ पर ठण्ड अधिक थी। निवेदिता के श्री सरस्वती पूजन सम्बन्धी धूम धाम के समाचार से बहुत ही खुशी हुई। शीघ्र ही वह स्कूल खोलने की व्यवस्था करे। जिससे सब कोई पाठ, पूजन तथा अध्ययन कर सकें, इसका प्रयास करना। तुम लोग मेरा स्नेह ग्रहण करना।

सस्नेह,
विवेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

गोपाल लाल विला
वाराणसी छावनी
२१ फ़रवरी १९०२

प्रिय राखाल,

अभी अभी मुझे तुम्हारा एक पत्र मिला। अगर माँ और दादी यहाँ आने को इच्छुक हैं, तो उन्हें भेज दो। अब कलकत्ते में ताऊन फैला हुआ है, तो वहाँ से दूर रहना ही अच्छा है। इलाहाबाद में भी व्यापक रूप से ताऊन का प्रकोप है; नहीं जानता कि इस बार वाराणसी में भी फैलेगा या नहीं।

मेरी ओर से श्रीमती बुल से कहो कि एलोरा तथा अन्य स्थानों का भ्रमण करने के लिए एक कठिन यात्रा करनी होगी, जब कि इस समय मौसम बहुत गर्म हो गया है। उनका शरीर इतना क्लान्त है कि इस समय यात्रा करना उनके लिए उचित नहीं। कई दिन हुए मुझे 'खोका' का एक पत्र मिला था। उनकी अंतिम सूचना के अनुसार वे अजमेर गये हुए थे। महन्त ने भी उत्तर नहीं दिया; शायद वे राजा प्यारीमोहन को पत्रोत्तर देते समय मुझे लिखेंगे।

नेपाल के मंत्री के मामले के बारे में मुझे विस्तार से लिखो। श्रीमती बुल, कुमारी मैक्लिऑड तथा अन्य लोगों से मेरा विशेष प्यार तथा आशीर्वाद कहना। तुम्हें, बाबूराम और अन्य लोगों को मेरा प्यार तथा आशीर्वाद। क्या गोपाल दादा को पत्र मिल गया? कृपया उनकी बकरी की थोड़ी देखभाल करते रहना।

सस्नेह,
विवेकानन्द

पुनश्च—यहाँ के सब लड़के तुम्हें अभिवादन करते हैं।

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

गोपाल लाल विला
वाराणसी छावनी
२४ फ़रवरी १९०२

प्रिय राखाल,

आज प्रातःकाल तुम्हारा भेजा अमेरिका से आया हुआ एक छोटा सा पार्सल मिला। पर मुझे न कोई पत्र मिला, न तो वह रजिस्ट्री ही, जिसकी तुमने चर्चा की है; और न ही कोई दूसरी। मैं नेपाली सज्जन आये थे अथवा नहीं या क्या कुछ घटित

हुआ, यह मैं बिल्कुल भी नही जान सका हूँ। एक मामूली सी चिट्ठी लिखने मे इतना कष्ट और विलम्ब ! अब मुझे यदि हिसाब-किताव भी मिल जाय, तो मैं चैन की साँस लूंगा। पर कौन जानता है, उसके मिलने मे भी कितने महीने लगते हैं !

सस्नेह,
विवेकानन्द

(कुमारी जोसेफिन मैक्लिऑड को लिखित)

मठ,
२१ अप्रैल, १९०२

प्रिय 'जो',

ऐसा लगता है जैसे मेरे जापान जाने की योजना निष्फल हो गयी है। श्रीमती बुल जा चुकी हैं, और तुम जा रही हो। मैं जापानी सज्जन से पर्याप्त रूप से परिचित नही हूँ।

सारदानद जापानी सज्जन और कन्हाई के साथ नेपाल गया है। क्रिश्चिन शीघ्र नही जा सकी, क्योकि मार्गट इस महीने के अन्त से पूर्व नही जा सकती थी।

मैं भली भाँति हूँ—ऐसा ही लोग कहते हैं, पर अभी बहुत दुर्बल हूँ और पानी पीने की मनाही है। खैर रासायनिक विश्लेषण के अनुसार तो काफी सुधार परिलक्षित हुआ है। पैरों की सूजन और अन्य शिकायतें सब दूर हो गयी हैं।

श्रीमती बेटी तथा श्री लेगेट, अल्बर्टा और हॉली को मेरा अनन्त प्यार कहना—शिशु हॉली को तो जन्म-पूर्व से ही मेरा आशीर्वाद प्राप्त है और वह सदा मिलता भी रहेगा।

तुम्हें मायावती कैसा लगी ? उसके बारे मे मुझे लिखना।

चिर स्नेहाबद्ध,
विवेकानन्द

(कुमारी जोसेफिन मैक्लिऑड को लिखित)

मठ,
बेलूड़, हावड़ा,
१५ मई, १९०२

प्रिय जो,

सामान्य चाय के साथ लिखित पत्र मैं तुम्हें भेज रहा हूँ।

मैं काफी कुछ स्वस्थ हूँ, किन्तु जितनी मुझे आशा थी, उस दृष्टि से कुछ नहीं के बराबर है। एकाएक मेरे मन में शान्ति की मेरी प्रबल भावना उत्पन्न हो गयी है—मैं एक साल के लिए विश्राम लेना चाहता हूँ, मेरे लिए और कोई कार्य शेष न रहेगा। यदि सम्भव हो सका तो मैं अपनी पुरानी भिक्षावृत्ति को पुनः प्रारम्भ कर दूँगा।

जो, तुम्हारा सर्वांगीण मंगल हो—तुम देवदूत की तरह मेरी देखभाल कर रही हो।

चिर स्नेहाबद्ध,
विवेकानन्द

(श्रीमती ओलि बुल को लिखित)

बेलूड़ मठ,
१४ जून, १९०२

प्रिय धीरा माता,

मेरे विचार से पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श को प्राप्त करने के लिए किसी भी जाति को मातृत्व के प्रति परम आदर की धारणा दृढ़ करनी चाहिए, और वह विवाह को अच्छेद्य एवं पवित्र धर्म-संस्कार मानने से हो सकती है। रोमन कैथलिक ईसाई और हिन्दू विवाह को अच्छेद्य और पवित्र धर्मसंस्कार मानते हैं, इसलिए दोनों जातियों ने परमशक्तिमान महान् ब्रह्मचारी पुरुषों और स्त्रियों को उत्पन्न किया है। अरबों के लिए विवाह एक इकरारनामा है या बल से ग्रहण की हुई सम्पत्ति, जिसका अपनी इच्छा से अन्त किया जा सकता है, इसलिए उनमें ब्रह्मचर्य भाव का विकास नहीं हुआ है। जिन जातियों में अभी तक विवाह का विकास नहीं हुआ था, उनमें आधुनिक बौद्ध धर्म का प्रचार होने के कारण उन्होंने संन्यास को एक उपहास बना डाला है। इसलिए जापान में जब तक विवाह के पवित्र और महान् आदर्श का निर्माण न होगा (परस्पर प्रेम और आकर्षण को छोड़कर) तब तक

मेरी समझ मे नही आता कि वहाँ बडे बडे सन्यासी और सन्यासिनियाँ कैसे हो सकते हैं। जैसा कि आप अब समझने लगी हैं कि जीवन का गौरव ब्रह्मचर्य है, उसी तरह जनता के लिए इस बडे धर्म-सस्कार की आवश्यकता—जिससे कुछ शक्तिसम्पन्न आजीवन ब्रह्मचारियो की उत्पत्ति हो—मेरी भी समझ मे आने लगी है।

मैं बहुत कुछ लिखना चाहता हूँ, परन्तु शरीर दुर्बल है 'जो मेरी जिस मनोकामना से पूजा करता है, मैं उसको उसी रूप मे मिलता हूँ।'[1]

विवेकानन्द

---

१ ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्या पार्थ सर्वश ॥ गीता ॥४।११॥

# अनुक्रमणिका


अंग्रेज २५, १३२, १३९, १५४, १६४, १६८, १७६, १७८-८० १८९-९२, १९४, २०५, २०७-८, २२८, २३०, २४४, २८६, २८८, और भारतीय २५४, पुरातत्त्वविद् १९३, मित्र १६६, यात्री १६४, राज १६२, राजा १६२, सरकार १६१-६२, २६९, २८९

अंग्रेजी अनुवाद १९३, ३६० (पा० टि०), कम्पनी १६८, ढग १६४, भाषा २०४, २३१, राज्य १६७

अंधविश्वास १४, ६३, २५३, ३४३, और जनता १३२, और सत्य १०३

अकबर, सम्राट् ३८०

अक्रूर चाचा ३९१ (देखिए ओकाकुरा)

अग्नि २०-३, उपासना ३५६, और सत्यकाम २१, पुराण ३८७, वैदिक १३९, होम २०

'अग्नि देवता' ३५६

'अग्नि-यज्ञ' ३५६

अघोर चक्रवर्ती २४८

'अचू' ३२०

अजंता ३८९, ३९२

अज्ञेयवाद (दार्शनिक) २९४, वादी (आधुनिक) ४०, ५८-९, २९२

अटलांतिक १६३, १८९

अतुल बाबू २५७-५८

अद्वैत ५०, १७०, उसका सार धर्म ११४, और आत्मा संबंधी विचार १४१, और ईश्वर ६८, और ज्ञान २७२, और वेदान्त ५२, ६०, नीतिशास्त्र का आधार ८२, भाव २७३, मत ४४, मार्गी २७३

अद्वैतवाद ४०, ४६-७, ५०-३, ५५, ७५, ८१, १७५, २०३, ३४०, ३८७, उसकी प्रार्थना ६३, उसके विचार ५२, १४१, और उसका कथन ४२

अद्वैतवादी ४१, ५१ ६३, ३४३, ३५५, ३८७, उनका चरम सिद्धान्त ७५, और आत्मा ७०

अद्वैताश्रम ३४७

अध्यात्मवाद १२२

अनादि पुरुष ८८

'अनुभूति' २९२

अनुराधा १७३

अनुराधापुरम् १७४

अन्तर्जातीय विवाह २७१

अन्तर्विवाह २७५

अन्दमान १९४

अन्दमानी भील १९४

अन्धकूप (Black Hole) १५४

अपनेल, श्रीमती ३२२

अपरिणामी सत्ता ५०

अपेरा गायिका २०१

अफगान २१६

अफगानी १८९

अफ्रीकी १०४, १५८, १८०, १८२, १८९, १९१, १९४, २१०, उत्तर १८०, दक्षिणी-पश्चिमी १३४ (पा० टि०)

अबीसीनियावासी २८९

अभेद बुद्धि ५८

अभेदानन्द ३२७-२८, ३४६ (देखिए काली)

अमरनाथ ३७३

अमरसिंह १८७
अमरावती १५
अमरू मुसलमान सेनापति ११
अमेरिकन १७७ २ १ २ ६ २ ७
२२१ और उनका डाक्टर २११
कालेज २१९ थियोसॉफ़िस्ट
सोसायटी २९२ प्रभु १९२ मित्र
१२६
अमेरिका ५७ (पा टि ) १ ६
१५९ १९२ ११ २ १ २ ६
२ ७ २४७ २५ २५२-५४
२८१ २९८ १५५ २११ १२
२७१ १९२ महाद्वीप १८९
यात्रा २१७ वाले २४२ संयुक्त
राज्य १५९
अरब ५८ १५७ १७९ १८१-८२
१९४ ९५ जाति १८२ मालिक
१७९ मियाँ १८५ वासी २५
अरब की मरुभूमि ८२ १८ और
१८१ २१७
अराकान १९८
अरुणाचलम् १७६
अर्जुन ४ ८ २१८
अर्जुन-कृष्ण संवाद २३७
अलबामियन २२
अलामेडा ११०-११ ११४
अल्बर्टा १५७ १५९ ११६ ११९
(देखिए स्टारगीज अल्बर्टा)
अल्बर्टा स्टारगीज कुमारी १५७ १५९
अल्मोड़ा १२८ १९५
अल्लाह १९७
'अल्लाह २ ९ १ १ १९७
अल्लाहो अकबर दीन दीन' १७
अवधाराबाद ९२
अवलोकितेश्वर १७६
अशुभ १२ उसका कारण ११
अशोक महाराज १७४ १९१ सम्राट्
१८१
अष्ट सिद्धि ११४
'असिरिम १९१
'असीम' ११४
असीरिया प्राचीन १९४
असीरी १९५
असुर युग १ ५
अस्तित्व' ८१
असूर्मिनी १८१
अहं ११९ ११६ २४१
अहं ब्रह्मास्मि ८१
अहं सारूप्य' ४९-५ उसका अर्थ
४८
अहिं (धर्म का कारण) १९७
अहिंसा परमो धर्मः १७४
अहिर्मन (अशिव) १ ४
अहुर्मज्द (शिव) १ ४
आंट मेरी १११
आइफ़ेल-मीनार २११
'आइवरी पेस्ट' ११४
आइसिस १८१
आकाश प्राणरूप १८
आक्रोपोलिस होटल २२१
आगरा ८९ १९८ १८
आत्म त्याग और संयम २४४ वर्धन
१११ बलिदान १२९ रक्षा
१२९ विकास ५३ विश्वास का
आदर्श १२ संगीत १४ सिद्धि
और साक्षात्कार २४१ स्वरूप
५१ १२
आत्मा १-७ १०-१ १३-६ २२ ११
१४ ४ ४७ ४९-५ ५१ ५८
६ ७१ ८१ २ ८५ ६ ८९ ९२
९५ ७ १ ६ १२१ १२७
१११ १९८ २१४ २१९ २१६
२८१ २८६ २९१ २९५ अद्वैत
१ ५ अनन्त ७ अनन्त अनादि
८९ अनन्त ब्रह्मस्वरूप ९८
अनुभूति ५१ अपरिणामी ५
असीम पदार्थ १७ अविनाशी १७
उसका महत्त्व १९-८ उसका मुक्त
स्वभाव ९७ उसका रूप ९७

उसका विकास ५९, उसका श्रेष्ठत्व ३१७, उसका समाधान १००, उसका स्वरूप ९६, १००, उसकी अभिव्यक्ति का सिद्धान्त ९८, उसकी असीमता का प्रश्न ९९, उसकी परिभाषा ११८, उसकी पूर्णता की स्थिति ९८, उसकी प्राचीनतम कल्पना १०६, उसकी यथार्थ स्वाधीनता ७५, उसकी सर्वज्ञता २७, उसकी सर्वोपरिता ७२, और अद्वैतवादी ७०, और ईश्वर ७९, ११६, और जीवन १२४, और प्रकृति ९७, और भारतीय धारणा १०७, और मन ९८, और विश्व ८०, और साख्य मत ६७, देश से परे ११६, नाम-रूपात्मक १०७, निराकार, अत अनाम १०८, निराकार चेतन वस्तु ९६, बधनरहित ११३, मगलमय ९९, मन का साक्षी (साख्य मतानुसार) ९५, मनुष्य-मन का आधार ९१, विषयक आदर्श १०६, विषयक धारणा ९३, शरीर के माध्यम से स्थित ९०, शाश्वत ८८, सबधी विचार ९५, सबधी विभिन्न मत ९६, सगुणीकृत निर्गुण ११८, सर्वव्यापी ६७, ससीम और पूर्ण ५४, स्वय सत्य १०१, स्वय स्वरूप १००, स्वरूप ६३

आत्मिक देह ९४

आदम ७३ (पा० टि०)

आदर्श अवस्था १०, प्रत्यात्मक १२८, व्यावहारिक ९

'आदान-प्रदान' की नीति २५०

आदि मानव और ईश्वर १०२

'आदुनिम' १९७ (देखिए आदुनोई)

'आदुनोई' १८९, १९७

आधुनिक अज्ञेयवादी ४०, प्रत्यक्षवादी ४९, बौद्ध धर्म ३९४, विज्ञान ८७, वैज्ञानिक उनका कथन ६२

आध्यात्मिक जीवन २९१, दशा २९०, पक्ष २९०, प्रगति २४९, भाव ७९, विकास १११, व्यक्तिवाद १३४, साधना २७४

आपेनी राज्य २२२

आफीदी १६०

आरती-स्तुति १०५

आरियन् १९५

'आरिया' १६६

आरुणि ३७

आर्क-डचेस २०८, ड्यूक २०८

'आर्केइक' ग्रीक कला २२२

आर्टिक २२३, सम्प्रदाय और उसकी दो भावधारा २२३

आर्टिका २२२, विजयकाल २२३

आर्य १३५, १६१-६२, १६७, १७०, २१३, २१६, २३६, उनकी प्रकृति १०५, कुल १०४, जाति ९४, १९६, विचारधारा ९३

आलासिंगा ३६५

आलेकजेन्ड्रिया नगर १८१

आशावाद ३१६, ३४१, वादी ९४

आसक्ति और अनासक्ति ३१५

आसाम ३७४-७६, ३७८-७९

आसीर १९१

आस्ट्रियन जाति २०९, राजकुमारी २१०, राजवश २०९

आस्ट्रिया २०८, २१०-१२, सम्राट् २१३, साम्राज्य २१५, २१८, लॉयड १६१

आस्ट्रेलिया १६३, १८४, १९४

इग्लैण्ड १३२, १६४, २०१, २०५, २०९-१०, २१४, २३४, २६९, २८२, ३०३, ३०६, ३१४-१५, ३२१, ३३४, ३४७-४८, ३५५, ३५८, ३६५-६७, ३७०, ३७२

इग्लैण्ड का इतिहास ( Green's History of England ) २६६-६७

इन्द्रिय उत्पत्ति का कारण १२१ प्रवृत्ति ७८ १११
इटली ११९ १०९-८ २१ १७४
इटैलियन वेनिस १८९
इण्डो-यूरोपियन २१५
'इन्दस' १८९
'इन्दु' १८९
इन्द्र ३३
इन्द्रदेव १४८
इन्द्रिय-निग्रह ११३ मन-देह ७९
इफेम १९८
'इब्राहीम' १९८
इजिप्ट १५ (पा टि )
इसलाम ४३ १९२
'इसिस' (मीमांसा के रूप में) १९९
इस्तम्बोल २ ५
'इस्लोमार बासिएन मोरी मोवाक' १९३
इसाइक १९८

ई टी स्टर्डी १६७
ईजिप्ट २
ईजन ७३ (पा टि )
ईर ७३ (पा टि )
ईरान १ ३ १८२, १८९९ तूरान १९५
ईरानी १ ४ १५१ १९१ १९८ वेष १८९ पोशाक १८२ बाद शाही १८१ भाषा १ ४ विचार धारा १ ५
ईव २९०
ईश्वर ८१ १९-७ १०-१ १४-५, ४१ २, ४५ ६, ५६, ५७ ६१ ६९-७ ७१ ७७ ८१ ८३ ८९-८, ९०-१ १ १ १ १-५, ११ ११९, १२७ १३० १३६, १८ २४०-४१, २७४ २८ २८९, २८७-८८, २९१ ९४ अनुभूति १११ उपादान कारण ९८ उपासना २१ उसका गुणगान २८१ उसका नाम-महत्त्व ११५ उसकी अनुकम्पा का आकार १ ९ उसकी कल्पना १०३ एक गुण ११८ और आत्मा ७९ और आदि मानव १ २ और जीव ११ और प्रभु ८३ और भिन्न भिन्न अनुभव-परिणाम ११९ और वेदान्त का सिद्धान्त ९८ और मूर्ख ११९ कृपा ११ चिन्तन २४९ दर्शन २९ देहधारी २८ धारणा २८, ७१ निर्गुण सोपाधि २८ निर्गुण-सगुण ११ ११८ प्रकृति का कारण-स्वरूप ९८ प्राप्ति २४२ प्रेम २७२ मन की उपज ११५ भाव २८ भावी (स्वप्न) धर्म १९ विश्व सृष्टि स्थिति प्रलय का कारण ८९ व्यष्टि की समष्टि ८१ शुभ-अशुभ में भी २७१ संबंधी उपलब्धि १ ४ संबंधी धारणा ४४ ११९ सगुण १८, ४१ ४५ ९ ५७ सगुण सभी आत्माओं का योग ११२ सर्वशुभ ८३ साक्षात्कार १११ स्वप्न की परछाईं १११
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर २१३
ईश्वरत्व की धारणा ९२
ईसा ४१ १ ४ १२८ १९८ ९९
'ईसा अनुसरण' १७
ईसाई २५, ४२, ५९, २५२ चिकित्सक १२३ धर्म ५८ १३७ १८१ २५१ २८७ २८९ ९ मत ८८, २९४
'ईसाई बीमारी' ३
'ईसाई-विज्ञान' २९४
ईसामेक १७४
ईसा मसीह ५८, ९९, १९८ २८२
'ईस्तार' १९७

उज्जयिनी १८२
उड़ीसा १५५-५६, २८ १८६
उत्तरकाशी १४९
उत्तरायण ९४

उदयपुर ३८९
'उद्बोधन' (पत्रिका) १४७ (पा० टि०), १५३, १७७, २८५
उपकोशल २१-२
उपनिषद् ४, १६, २७, ३७, २३३, उसका उपदेश २२, उसकी शिक्षा १३२, कठ ११२ (पा० टि०), काल २३, केन ७६ (पा० टि०); छान्दोग्य १९, ३७, ७२ (पा० टि०), बृहदारण्यक ६९, ७२ (पा० टि०), मुण्डक ६८ (पा० टि०), ११२-१३, श्वेताश्वतर ३४२ (पा० टि०), ३८७
उपयोगितावाद और कला २३५
उपह्रद (Lagoons) १९०
उपासना विधि २९२

ऋषि १३५, २५५, २८८-८९, प्राचीन २६, प्राचीन भारतीय २८२

'एग्लिसाइज्ड' ३४०
एकत्व का आदर्श १७
एकमेवाद्वितीयम् ३१७
एकेश्वरवाद ४०, वादी ३९
एगलँ (गरुड शावक) २११
एजेलाँदस २२१
एडम्स, श्रीमती ३११, ३३७, ३४१
एडविन अर्नाल्ड २९४
एडेन १४९, १७८-७९
एथेन्स २०५, २२१-२२, छोटा ३६४
एन० एन० घोष २५३
एनिसक्वाम २८६
एर्ना वेमेण्ट, श्रीमती २९२, ३८९
एफ० एच० लेगेट ३११-१२, ३३१
एम० एन० बनर्जी ३८३
एम० सी० एडम्स, श्रीमती ३३८
एमा एमस, मादाम २०२
एल्नक्विनन ३७६
एलोरा ३८९, ३९२
एल्युमिनियम-यात्रा २२१

एशिया १३६, १७९, १९१, २०५, २१४-१५, २२१-२२, २२७, २३५, खण्ड १९५, मध्य २०९, २१५-१६, माइनर १९१, १९७, २१३, २१७
एशियायी कला २२२
एस० पानेल, श्रीमती ३४८
एस्तर स्ट्रीट ३३१

ऐम्पीनल, श्रीमती ३५५

ओआइस ३५९
ओकलैंड ३०३, ३०५, ३१२, ३२१
ओकाकुरा, श्री ३७७, ३८९, ३९० (पा० टि०) (देखिए अक्रूर चाचा)
ॐ तत् सत् ११४, ३३३
ॐ नमो नारायणाय १४७
'ॐ ह्री क्ली' १७६
ओरियेण्ट एक्सप्रेस ट्रेन २१३
'ओरी आँताल एक्सप्रेस ट्रेन' २०५
ओलम्पियन खेल २२१, जूपिटर २२१
ओलि बुल, श्रीमती ३०३, ३०५, ३१०, ३२२, ३२७, ३५५, ३६३, ३६७-६८, ३७० ७१, ३८८, ३९४
ओलिया ३२४
ओसमान (मुसलमान नेता) १९२

कज्जाक २२०
'कट्टमारण' १५६
कठोपनिषद ११२ (पा० टि०)
कथा, नाई की १३८, प्राचीन फारसी ३५, मिश्र देवता १९७, मुसलमान और लोमडी ७७, मेढक २९६, शिवू देवता, नुई देवी १९६, श्वेतकेतु २२-३, सत्यकाम १९, २३१, सेव, साँप और नारी ७२
कनिष्क (तुरुष्क सम्राट) २१६
कन्फसी मत २०५
कन्हाई ३६५, ३९३
कबीर १६९
कराल की उपासना १३२

कर्जन लार्ड २२९ ३
कर्नाक ग्रॉकफर्ट २९२
कर्म अमत् ५४ और प्रवृत्ति २७४
और समाधि २५ काण्ड २१,
९५ चाक ११ जीवन ७९
निष्काम योग २१९ फल २४
५४ ७८, ३ ४ योग २१९
योगी ३१ २१९ विधान ५४
शुभाशुभ २४ सकाम २५
साधना ११ ११४
कर्मयोग ११९
कलकत्ता १४ (पा टि ) १४८
४९, १५४-५५, ११३, ११६, ११८
१७३-७४ २१२, २१७ २४७
२५०-५१ २९ २७१ २८२,
३२४ ३२७-२८, ३४७ ३५४
३७०-७१ ३७४ ३८१ ३८१-८४
३८९ ३९२
कला और उपयोगिता २२७ शास्त्र
२२२
कम्पाली २९
कामीण १२
कांट उसका विचार ४९ और हर्बर्ट
स्पेन्सर ४९
काकेशस पर्वत २१७
कान्स्टाण्टिनोपल १९२, २ २ ३
२ ५, २ ८ २११ २१५ १७
२१९ २२१ १५८ ११ ११४
कान्स्टान्सिउस (रोमन बादशाह)
१७९
काण्डी (पार्सन्य शहर) १७५ उसका
दत मंदिर १७६
'कान्टिकम्प्सम' (अनिवार्य भरती)
२१४ २२
कार्ट अमर १९१
काडरी १८२
कॉफेला २११
काफी १९४
काबा १८२
काबुल २११
कामदेवी १९७
कामिनी काचन २७९
कायस्थ-कुल १११
कार्तिक (ओंकार का अवतार) १७७
कार्नेलिया सोराब जी कुमारी १७१
कार्य-कारण नियम ८१ भाव ४५
विधान ११ सूत्र ८१ सम्बन्ध
५१ १११ १२२ सम्बन्ध और
उसका अर्थ ५१
कार्य-कारणभाव २९
कालिदास महाकवि १५२ (पा टि )
२३३
कालमे मादामोआजेल २ १ २
काली ३४७-४८ ३५ ३५४ ३५८
(देखिए अभेदानन्द)
काली माँ ११ ११२ ११९ ११७
पूजा ११९ ४ माता ३७
काशी १४८ उत्तर १४९
काशीपुर २५ ५७
काश्मीर १४८, १५१ १५२ (पा
टि ) २१६ १७ १७९ जम्बू
१५२ देश १५२ भ्रमण १५२
काहिरा ११४
किपलिंग रुडयर्ड २१७-१९
किरगीज १९५
किशनगढ़ १५८
कीकी १७१
कीर्तन उसका अर्थ २८१ और सुपद
२४१
कुमारस्वामी १७६-७७
कुमारी अल्बर्टा स्टारगीज ३५७ ३५९
कार्नेलिया सोराब जी ३७१ केट
३११ मर्सेमी ३ ३ ३२१ नोबल
३११ ३१७ मूक ३४५, ३५५
मूलर ३१ ३४४ ३८९ मेरी
हेल ३ ८ ३११ ३१९ ३३१
१७ ३३९, ३४२ ३४४ ३७१
३७९, ३८१ मैक्लिआड ३११
३२३ १९८ ११ (देखिए
जोसेफिन मैक्लिआड) वाल्डो

३१८-१९, ३४५, ३५४, वेक्हम ३५५, वेल ३५५, सूटर ३१०, ३१५, स्पेन्सर ३११, ३३७
कुरान ४३, ५८
कुरुक्षेत्र ८, २३७
कुर्द पाशा और आरमेनियन हत्या २२०
कुलगुरु की दशा २४९
कूना १९४
कृष्ण १३३, २३८, २६२, और बुद्ध १३६, गीता के मूर्त स्वरूप २३८, गीतागायक २३७, २३९
'कृष्णसार मृग' ३८५
केट, कुमारी ३११, ३३७
केनोपनिषद् ७६ (पा० टि०)
केम्ब्रिज ३०५, ३१०
कैथोलिक २०४, क्रिश्चियन १६५, ग्रीक पादरी २०३, बादशाह २१०, मत २९४, रोमन ४३, सघ २१०, सन्त १२७, समाज २०३, सम्प्रदाय २०३, २०९
'कैलिओपी' (ब्रिटिश जहाज़) ५७ (पा० टि०)
कैलिफोर्निया २९२, ३०६, ३२०, ३३०-३१, ३३४, ३३६, ३४८, ३६४
कैस्पियन ह्रद २१३, २१७
कोकण ब्राह्मण १६९
कोन्नगर १५७
कोरियन १७६
कोल ब्रुक, कप्तान १५४
कोलम्बस (क्रिस्टोफोर कोलम्बस) १८९
कोलम्बो १५६, १६५, १७३, १७५, १७८, ३७१
कौण्टी ऑफ स्टारलिंग, जहाज़ १५५
कौन्टेस १७६
'क्रम-विकास' ४६
क्रिमिया की लडाई ३२९
क्रिश्चिन १७५, ३९३, भगिनी ३६०, ३८०
क्रिस्तान धर्म १९२-९४, धर्मग्रथ १९२, पादरी २०५, २२०, राजा २०८, रियाया १८२
क्रीट द्वीप २८३
क्लावे, मादाम ३६०
'क्लासिक' ग्रीक कला २२२-२३, उसके सम्प्रदाय २२३
क्लेरोद ३५९
'क्वोरनटीन' २२१
क्षत्रिय २४८, रुधिर ३३९
क्षात्रभाव २४४, २४९

खगेन ३४७
खगोल विद्या ८७
खिलजी २१६
खुरासान १४८
खेतडी ३७४, ३८०, महाराज ३६८
खेदिब इस्माइल १९०
ख्याल (गाना) २६०

गगा १०४, १५२-५५, १६८, १८७, २५०-५१, २९८, और गीता १४९, का किनारा १५१, जल ७९, १४९, २३३, ३०६, ३४८, तीर ७९, पार १६९, महिमा १४९, सागर १५७, १६८, १७१, सागरी डोगी १५७, सुरतरगिनी १५०, स्नान २७१
गगाधर ३५०
गगोत्री १४९
गणेश जी १४९
गया ३८७
गयाशीर्ष पर्वत ३८७
गयासुर ३८७
'गाधाडा' १८४
गावार २१६
गावारी २१६
गिरीशचन्द्र घोष २४५ (देखिए गिरीश बाबू)
गिरीश बाबू २४५, २५७
गीता ४, १०६ (पा० टि०), १०९,

१२९, १५२ २ ८ (पा० टि ) १५१ १९५ (पा० टि ) उसका मूल तत्त्व २१९ और भगा बल १४९ और वेदान्त २४ कर्म का अर्थ २१७-२८ तथा वेदान्त १४४
गुजरात १४८ १६४ १७५
गुजराती ब्राह्मण १६९, २२
गुण तम २४८ २५५ रज १५ २४८, २५६ सत्त्व २४८
गुप्त महेन्द्रनाथ २७१ सुरेन्द्रनाथ २८१
गुमीथी १४९
गुरुदेव ७९, २६२, १ १ ११२ १५ महाराज १५ (देखिए रामकृष्ण)
गुरु गृह-वास २२९
गुरु नानक और रामकृष्ण १२९
गुसाईं जी १४८ (देखिए तुलसीदास)
गेज श्री १६२
गे २ २
गेडिस अध्यापक ११५
'गो' ४४
'गोचालेज' १६८
गोपाल दादा १९२
गोपाल लाल विला १८७-८८ १९०-९२
गोलकुण्डा जहाज १६१-६४
गोविन्ददास १४९
'गोसाईं' १७१
गोस्वामी तुलसीदास १४८ (पा टि )
गौतम २२ बुद्ध ५७
ग्रीक कला २२१ और उसका इतिहास २२२-२१ और उसकी तीन अवस्थाएँ २२२ और विकास २२१ क्लासिक २२२ २१ जाति १९१ धर्म २२१ भाषा २२ पेड्रायाक २२ प्राचीन १९९ माया १९२, १९६ मापी २१२ विद्या २१२ सम्राट् २११
ग्रीमेकर १४२ ४४
ग्रीस १८९ १ ९ १ ५ विजय २२१
ग्वालियर १८९ ९१
घोष एन एम २५१
चक्रवर्ती शरद २४८
चटग्रामी मौसी १५७
चट्टोपाध्याय हरिदास २९ २१२ ११ २६७
चन्दन नगर १५४
चन्द्र २०-२, १४ १७ ७ मण्डल १४१ लोक २४
चन्द्रगिरि १६८
चन्द्रगुप्त १९२, १९५
चन्द्रदेव १९७ १५६-५७
चन्द्रनाथ १७२
चन्द्रमा २१ १ ४ ११२, १४१ २ ७
चन्द्र-सूर्य २९
चांडाल २७९
चामर्स २१५ तुर्क २१७
चार १८७
चार्वाक का देश २५४
चित्त शुद्धि २४१
चित्तौड़ १८९
चित्र-कला १४ २४१ द्वार २ १ गुह २१२ लिपि १९१ शाला १६७
चिदाकाश (विशुद्ध बुद्धि) २१
चिन्तापद्दम् १६८
चिल्लियां साधु डैयर बाहर १५ (पा टि )
चीन १६१ १७४ १७७ २ ८९ भक्त २ ९
चीनी १६१ १७९ १ ४-९६, २ ६ २८७-८८ चीनी जहाज १८१
चुम्बकीय रोग-निवारक (magnetic healer) १ ६, १२१
चूँचड़ा १५४
'चेहूँ' १७२
चैतन्य देव १६१ १७५
चैतन्य महाप्रभु २०६, २८१

चैतन्यवान पुरुष ६८
चैतन्य सम्प्रदाय १६९, २७९
चोरबागान २६६-६७

'छठवीं इन्द्रिय' २९२
छान्दोग्य उपनिषद् १९, ३७, ७२ (पा० टि०)
छुआछूत १७१, १८३, १८५

जगज्जननी ३८१
जगदम्बा १९९, ३०८
जगदीशचन्द्र वसु (डॉ०) २०५ (देखिए जगदीश बसु)
जगदीश बसु २०६
जगन्नाथ का मंदिर ३००, घाट १६८
जगन्नाथपुरी १५५
जगन्माता ३१२, ३२६, ३३५, ३४३, ३४५, ३६१, ३७०, आदि शक्ति २४२
जड पदार्थ और मन १२१, और मन का प्रश्न १२२
जड विज्ञान २५७
जनक १४३
जनरल असेम्बली २६३, कॉलेज २५८
जनरल स्ट्राग (अंग्रेज मित्र) १६६
जप-ध्यान २५८
जबाला १९
जयपुर ३८९
जरुसलेम १९८, २००, २०५
जर्मन, आस्टेन्ड कम्पनी १५४, कम्पनी १६३, डॉक्टर ३२३, पंडित बर्गस १९४, भाषी २१२, मनुष्या २०८-९, लॉयड १६१, सभ्यता २०७, सेनापति २०८
जर्मनी १६३-६४, २०७-८, २१०
जलनोया, मोशियो ३६०
जलांगी नदी १५४
जहाज १६०-६१
जहाजी गोले १६०
जाजीबार १४९
जाति, आसुरी और दैवी संपदावाली १०६, आस्ट्रिय २०९, और देश १९५, तमिल १७५, तुरस्क २१६, तुर्क २१६, दोरियन २२२, बालिब १९७, यहूदी १९७, विद्या १९४, हिन्दू २१७
जॉन फाक्स ३४८
जान्स्टन, श्री ३६६, श्रीमती ३३५, ३६८
जापान १७४, २२७, २३४, २३६, २४७, ३७२-७३, ३७५-७६, ३७९, ३९३, ९४
जापानी १७६, १९४, चित्रकला २३४, मित्र ३७८, ३८६, ललित कला ३७५, सज्जन ३९३
जाफना १७५
जार्ज, श्री ३५५
जावा १४९, १६८
जिनेवा १८९-९०
जिहोवा की उत्पत्ति ३४९
जीव और ईश्वर ८३, ११०
जीवन और मन का नियमन १२१
जीवन्मुक्त और उसका अर्थ ७१
जीवाणु-कोष ४७
जीवाणु विज्ञान शास्त्री २९६
जीवात्मा ५२, ५४-५, ९१, १००, १०६, ११०, ११३, और शरीर का संबंध ११०, कोष ४७, निर्गुण, सगुण ४१
'जीवित ईश्वर' २९
जीविसार (protoplasm) ८०
जीसस ३१७
जुल बोआ २०१-२, २१९, ३६६, ३७६ (देखिए बोया)
जूडास इस्केरियट ३१७
जे० एच० राइट २८६
जेम्स और मेरी (चोर बालू) १४९, १५५
जेम्स, डॉ० ३५५-५६
जेहोवा १०३

जैन धर्म १३१
जो १ ५ ११२ ११६ ११८ १२०-
  २१ १२८ २९ ११२ १४ १४६
  १५५-५७ ११२ ११५ ११ ११८
  १७ ७२, १७५-७८, १८१ १८९
  १९१ ९४ (देखिए जोसेफ़िन मैक्लि-
  ऑड)
जोन्स स्ट्रीट १ १ १ ५
जोसिफस १९८ ९९
जोसेफिन मैक्लिऑड १ ५, ११८
  १२८ १११ ११४ १४५ ४९
  १५६, ११२ ११ ११५, १७०-
  ७१ १७६ १७७-७८ १८१
  १८९ १९१-९४
जोसेफ़िन रानी २१
ज्ञान ७१ ७५ ९६, ११६, १४१
  इन्द्रिय जनित १११ उसकी
  निष्पत्ति ८४ उसके मूल सूत्र
  १८ और भक्ति २७२ और
  सत्य दर्शन २७४ कारण २१
  पुस्तकीय ११२ प्राप्ति २७४
  मनुष्य के भीतर ४० योग ११४
  २७२ योगी ७८ वृक्ष ७१
'ज्ञाता' ८५

झाँसी की रानी २७७

टप्पा २४१ ४० २१
टर्क स्ट्रीट १ ८ ११ १११ १६
  ११८ २२ १२२, १२६, १२०-
  २८
टॉलेमी बादशाह १८१
टाटा जी १७१
टॉमस-आ केम्पिस १७
'टारपिडो' १५९ ९
'टाइम्स आफ़' १५१
ट्रंक १७८
टेरा कोटा १८९
टेहरी १४९
'ट्यूटानिक' जहाज ११५

ट्राईन श्री ११
ट्राम्बवास १२
ट्विम ११७

ठाकुर २५६ २५८ (देखिए राम
  कृष्ण) देवता १७०

डच १७६ १९४ चित्रकार २१२
  सम्प्रदाय २१२
डॉ० जेम्स १५५-५९ नोस ११७
  लोमन १५५ हीलर १११ १२
  १२२ २१
डायमण्ड हारबर १४६ १५१
डायानिसियस २२१
डार्विन २९०
डिट्रायट १२७ १४४
'डिट्रायट ट्रिब्यून' २१७
'डिट्रायट फ़्री प्रेस' २११
'डेलचर' १२८
डेविल (शैतान) १ ४
'डोल' १११

ढप २९
ढाका २७१-७२
ढोंग और आत्म प्रवंचना २४१

'तंत्र' २५९ ९
तत्त्वज्ञान १ ५ वर्षी १ ९ बाद
  १ ९
'तत्त्वमसि' १ ४९ ७८ १ १
तमिल १९९ ब्राह्मण १७ पुरुष
  १७५ जाति १७५ देश ११९
  भाषा १७५
तमोगुण २४८ २५५-५९
तर्कशास्त्र ७१ ४
तान्त्रिक पद्धति २४१ पूजाप्रणाली २४१
  वाद २१७ साधना २४२
ताजमहल २९
तातार-कुल २११ वंशी २१२
तातारी १९५

तारादेवी १७६
तिब्बती १७६, २१३
तीर्थयात्रा ३६९
तु-भाई साहब १४८, १५०, १५३, १७२, १७७ (देखिए तुरीयानन्द स्वामी)
'तुम' ६८-९
तुरस्क २०८, सम्राट् २१६
तुरीयानन्द, स्वामी २७१, ३०४, ३१२, ३१८-१९, ३२५, ३४४, ३४६, ३४८-४९, ३५३, ३५८
तुर्क १८९, १९५, २१३, २१९, २२१, और मुग़ल २१६, जाति २१५-१६, वंश २१५
तुर्किस्तान २१५, २८३
तुर्किस्तानी १५१
तुर्की १७९, २००, २०८-९, २१२-१४, जाति २१६, सुलतान १९०
तूरान १९५
तूरानी १९५
तेलुगु (बोली) १६९
तोड़ादार 'जजल' १६०
त्रिगुणातीत, स्वामी १४७ (पा० टि०)
त्रिवेणी १५३, घाट १५३
'त्रेंजासिएन्न, त्रेसविलिजे' २०१
'त्व' ११३

थर्सबी, कुमारी ३०३, ३२१
थियोसॉफी ३२३
थेरापिउट १८१
थेरापुत्तस २८२

दक्षिण देश १७०, मुल्क १६९
दक्षिणी ब्राह्मण १६९
दक्षिणेश्वर २३२, २६२, ३३०
दत्तम ९४
'दमृजी' १९७
दरियाई जंग १६०
दर्शनशास्त्र २०२, २७५, २८३
दाँत (बुद्ध भगवान का) १७६
दादू १६९
दामोदर नद १५५
दामोदर-रूपनारायण (नद) १५५
दार्जिलिंग ३२०, ३७२, ३७५
दार्शनिक सिद्धान्त ४४
दाशरथि, सान्याल २६०-६१, ३६७
दाह पद्धति, उसके कारण ९४
दिनेमार १८९-९०
दिल्ली २१५, ३८९
'दी अपील-अभालास' २८९
दीनू ३४७
दुर्गा प्रसन्न ३०९
'देव' १०४
देव-दूत ३९४, पूजा १३९
देवयान ४, २४
देव वर्ग १३०
देश, काल ९६, ११९, और निमित्त ६९, ७४-६, २७५
देशी सिपाही १६६
'देवी सारा' २०१
द्वैत ९०, १७०, २७३, और ईश्वर ६८, की भावना २४१, की भाषा ११३, भाव ५१, ५८, २४१, २७२, ३१७, भावात्मक धारणा ५२, मत ५३, वाद ३१, ५३-४, ५८, ६०, ८९-९०, वादी ४८, ५२-५५, वादी और उनके विभिन्न मत ५६

धर्म ३, १४, २१, ४०, ४२-३, ८९-९०, १०८, १६१-६२, १७६, १८०, १९१, १९६, १९९, २०५, २१३, २३०, २५२, २९०, २९४-९५, ३३९, आधुनिक बौद्ध ३९४, ईसाई ५८, १३७, १८१, २५३, २८७, २८९-९०, उसका अंग २९३, उसका निम्नतम रूप १०३, उसका प्रयोग २९१, उसका लक्ष्य २९१, उसका व्यावहारिक रूप २३, उसकी हानिकारक प्रवृत्ति ५३,

और आदर्श १ और उपयोगिता का प्रश्न १२ और वैज्ञानिक पद्धति १८ और संप्रदाय २९१ और सान्त्वना ४५ कथाएँ १७ क्रिस्तान १९२ ९४ १९८ गुरु २४९ २५१ २७७ ग्रंथ १०७ २४१ ४४ ग्रीक २२१ जीवन २५५ जैन १११ दीक्षा १ नव हिन्दू १८८ पिपासा २५४ पुस्तक १०१ पौराणिक २५१ प्रचार १७४-७५, १८१ २९४ प्रचारक २९४ १ प्रोटेस्टन्ट १७८ बौद्ध ४ ११ २१६, २४१ १८७-८८ बौद्ध और हिन्दू में भेद ११८ भारतीय १३१ मार्ग ११ मुसलमान १७९, २११ मुसलमानी १८९ २१८ यहूदी १९८ विधि १३९ विषयक सम्मत (व्यावहारिक) १ ५ वैदान्त ५८ वैष्णव १३ १७ व्यावहारिक विज्ञान २६ शास्त्र २२१ शिक्षा २२१ संबंधी विचार ४३ संस्कार ११४ ९५ सगुण ईश्वरवादी १९ सनातन २५४ सनातनी हिन्दू १२७ साधन २४९ साधना २४१ हिन्दू ११३ ११६, २११ ११ २९४ हिन्दू बौद्ध संबंधी विचार ११
धर्मोपदेष्टा २५५
ध्यानयोग २४२
ध्रुपद २१
ध्रुवपद २४७

नजफराव खाँ १७१
नवग्रह १ ४
नबी (Prophet) १ ८ सम्प्रदाय १९८
'नमो नारायणाय १५
'नमो बद्धर्मे' १५
नरक २१-८ ५१ १११ १७४ १४३ कुण्ड ११
नरसिंहाचार्य १७१
नरेन २६ २६७ (देखिए नरेन्द्र)
नरेन्द्र २५८ ६२ ६६-६८ ६५ (देखिए नरेन्द्रनाथ)
नरेन्द्रनाथ २५८ २६५, २६७ (देखिए विवेकानन्द, स्वामी)
नवद्वीप १५४ (पा टि )
नवनिधि ११४
नव व्यवस्थान (New Testament) १ ६ १११ १९८ ९९
नाग-पूजा २१८
'नाद-ब्रह्म' ३५८
नानक १६९
नाम-कीर्तन २७९ रूप २६ १२१ रूप माया १४२
नारद देवर्षि १७
'नारदीय सूक्त' ११७
नारायण उसका रूपेपार्थ १५५
नारी शिक्षा का रूप २७७-७८
नार्वे १७६
'नियम' १८
नियार्कस (सेनापति) १८९
निरंजन १८९ १९१
निराशावादी ९४
निर्गुण पुरुष ४२ भाव २८ मत ११ वाद २९ ४५
निर्वाण २९६
निर्वाणषट्क ७२ (पा टि )
निर्विकल्प समाधि २६१
निवेदिता १ १४ ३१ ११४ ३१६, १९४ ११ ११८ ११ १४२ ४४ १५ १५२, १५५, १५८ ११४ १८४ १८८ ११ ९१
निष्काम कर्मयोग २१२
नीग्रो १९४
नीतिकार २ ९
नीतिशास्त्र १२ १६, १८ ४१ ९ ८९

'नील' नद १९६
नीलाम्वर वावू २४५, ३८३
नुई देवी १९६
नृत्य-कीर्तन १७५
नेग्रिटो (छोटा नीग्रो) १९४
'नेटिव' १६१-६२, १८९
नेटिवी पैरपोशी १६६
नेपल्स १८३, १९९
नेपाल ३७०, ३७६, ३८१, ३९२
नेपाली १७६, १९४, सज्जन ३९२
नेपोलियन २१०-१२
नेप्चून का मदिर २२१
नैंदा ३९०
नैनीताल ३७३
नोबल, कुमारी ३१३, ३३७
न्यायशास्त्र ७४
न्यास-सलेख ३४९, ३५४
न्यूयार्क १५०, ३०५-७, ३१८-१९, ३२१, ३२७-२९, ३३४-३६, ३३८, ३४२-४३, ३४५-४८, ३५४, ३६६

पचवटी ३३२
पजाव १९५ (पा० टि०)
पजाबी जाट १७५
पद्म-पत्र ७१
पद्मा १५३
'पन्ट' १९६
परम तत्व ११३
परम सिद्धावस्था २७३
परमात्मा १०६, ११०, ११३, १५१, २४१, शाश्वत १०८
परमानद १४२
परमेश्वर ११२, २४१, २७२-७३, 'प्रेममय' २७२
परशुराम २४९
पराभक्ति २७३
परिणामशील ४९
परिणामी जगत् ५०
'पवित्र गऊ' ३४५
पाचाल ३
पाचाल राज २२
पाइरिउसटि वन्दर २२१
पाइलट फिश १८५-८६
पार्डन स्ट्रीट ३१२
पाचियाप्पा कॉलेज २२१
पाटलिपुत्र १८२
पाप १८, ३१, ६१, १०४, १०९, १७३, २३२, २६९, २७३-७४, ३०४, और उसका रूप या अर्थ ११, और पुण्य १०, और भ्रम ७, और वेदान्त ११
पारथेनन २२१
पारमार्थिक सत्ता ४१, ४६, ५०
पारसी ९४, दूकानदार १७९, मत १९७, बादशाह १९७
पार्वती १७५
पाल-जहाज़ १५८
पॉलीक्लेट २२३
पॉलीक्लेटस २२१
पाश्चात्य आदर्श ७९, २३६, और प्राच्य सगीत २४५, और भारतीय कला (स्थिति और अतर) २३५, केन्द्र १८९, जनस्रोत १५०, जाति २३७-३८, ज्ञान २५४, दर्शन २७५, देश ७९, १४७, (पा० टि०) २०१, २२८, २३५-३६, २३८, २४९, २५२, २५८, पद्धति २७५, प्रणाली २३९, बुध मण्डली १९९, लोग ११०, विजेता २३९, विज्ञान २२७, २३०, वेदान्तयुक्त विज्ञान २२९, शिक्षा २३५, सगीत २४६-४७, सभ्यता २२९, ३५४
पितृयान ४
पिरामिड ९३-४, १८१
पिलोपनेश २२२
पिलोपेनेसियन २२३
पी० एण्ड ओ० कम्पनी १६१, १६५
पुराण-सग्रह १७०
पुरी १७३

पुरोहित-सम्प्रदाय ४१
पुस्ट बेस १८
पूजा-गृह ११९
पूजा-पाठ १ २
पूना २७१ १७५
पेयर हियासान्थे २ १४ २१९ २
पेरा २१९
पेरिस १५ २ २ ९-५, २ ७ २१३ ३ ५, २१६ २२१ १२१ २५, १३४ १४८-५ १५२-५५, १५९ ६२, १६४ १६६ ६८, १७९ नगरी २११ प्रदर्शनी २ ६, २१७ वासे २ ६
पेरोस गहरी १५९
'पोस्ट' २१९
पोप २१
पोर्ट टिवफ़िक २१२
पोर्ट सईद बन्दरगाह ११२
पोर्तुगाल १८९ ९
पोर्तुगीज १५४ १७५ डाकू ११८ सेनापति १७९
पोस्ट ऑफ़िस दे फ़रेस्ट १५३
पौराणिक कथा २१८
प्यारी मोहन १९२
प्रकृति १४ ८ ९ ९२ ११३ १२ १४४ अनादि अनन्त ८९ आत्मा के लिए १२७ आन्तरिक और बाह्य १२०-२१ उसका आश्रय १२१ उसका उपयोगी अंश १ ७ उसका विकास का सिद्धान्त ९८ और व्यक्ति का सम्बन्ध १२१ घटनाओं की समष्टि १२१ दासी १२४ पुस्तक ९८ विवेकयुक्त १२
प्रतिरूप देह ११४
'प्रतीक' रामकृष्ण मिशन का १४६
प्रतीकवाद ११५
प्रत्यक्ष अनुभूति ७१ ११५ बोध ११५ साक्षी २९ ४१ ४९
'प्रत्यगात्मा' ८१
प्रत्ययात्मक आदर्श १२८
प्रपन्नगीता १११ (पा टि )
'प्रबुद्ध भारत' ११८ १९, १२४
प्रभु १२८, २३९ २४५ अन्तर्यामी २४ आनन्दमय १४ ७ सर्वेश्वर ११
प्रमदादास मित्र ३५ (पा टि )
प्रयाग १५२
प्रफुल्ल कौशिक राजा ३
प्रशान्त महासागर ५७ ११
प्रशिया २ ९
प्लेटो उनका सिद्धान्त १२८
प्लेस द एताज़ युनि १४७-५ १५३, १५५, १५७ १५८ ९
प्रागैतिहासिक युग १ २
प्राचीन ऋषि २९ पैगम्बर ५७ फ़ारसी १५, १११ बौद्ध उनका मत ५
प्राचीन व्यवस्थान (Old Testament) २ ७९ (पा टि ) १ ९
'प्राण' ८५
प्राण जीवन का मूल तत्त्व १७
प्राणायाम २५७-५८
प्रिन्स ऑफ़ वेल्स २ १
प्रियनाथ मुखोपाध्याय २५७ सिन्हा २२७
प्रेम १७ ९ १११ २७९-८ २८८ अद्भुत १२९ अपार्थिव स्वर्गीय २१८ असीम और ससीम ९ आनन्द की अभिव्यक्ति १४ उसकी महत्ता व्यापकता १५ परिपालक शक्ति ९ पशु प्राणी से ११ प्रतियोगिता का मूल ९ मार्ग २८ मूल ९ सूक्ष्म रूप २७४ स्वर्गीय २१८
प्रेमानन्द स्वामी २७१ १५१
'प्रेस पैप' १५९
प्रेसिडेन्ट २२१
प्रो विलियम जेम्स १५५ (देखिए जेम्स)
प्रोटेस्टेन्ट धर्म १७८

'प्रोटेस्टेन्ट-प्रबल' २१०

फक, श्रीमती ३६१
फरात १०४
फान माल्तके २०९
फारस १९४, २१३, २१५, २१६-१७, जाति २१६
फारसी २१७, प्राचीन ३५, ११६
फार्डिनेण्डलेसेप्स १८८
फिडियस (कलाकार) २२१, २२३
फिनीशियन १९१
फिलिस्तीन १९१
'फिलो' १९८
फेटिश, उसका अर्थ १३४ (पा० टि०), पूजा १३४-३५
फेरिस-चक्र २९१
फेरो (मिस्र का बादशाह) १८०, १९०
फेगो-वश १८१
फ्रास १६४, १८०, २०१, २०७, २१०-११, २२०, २४७, ३०३, ३२०, ३२६, ३४४, ३४९, ३५७, ३५९, और जर्मनी मे अतर २०७
फ्रासिस लेगेट ३५५
फ्रासीसी १५४, १७९, १९०-९१, २००-१, २०४-५, २०९, २१४, पुरुष २०१, भाषा १९४, विद्वान् २२२-२३
फ्रिस्को ३०८, ३१३, ३२१
फ्रेच चाल २०९, जहाज ३४६, जाति २१२, डिक्शनरी ३१६, भाषा २००, २०३, २१९, ३२५, ३५३-५५, लेखक ३६०, सभ्यता २०७, स्त्री-पुरुष २११
फ्लोरेंस ३७४

वग देश १५३, १६५, १६८, १७१, १७५, पूर्व १६५, भापा २०२, भूमि २०५, २७०-७१, भूमि और उसका रूप १५१, सागर १५७
वगला १६६, १७६, १७८, भाषा १९७, १९९
वगाल १६८, १७६, २०१, २४३, २७५-७६, २८०, २९०, ३६३, ३६८-७०, ३७२, ३७८, ३८१, आधुनिक १३६, देश १७६, पूर्व १५६, पूर्वी ३७३-७५, ३७९, प्रदेश १८२, मे कुल गुरु प्रथा २४७
वगाली १४८, १६८, नौकर १६५, भाषा १७६ (पा० टि०), मकान ३८८, राजा विजय सिंह १७६, लडकी २०२, साहित्य २८०
वगोपसागर १६८
बकासुर १५७
बगदाद १९०
बडौदा ३७१, ३७३
'बदफरिंगम' ३००
बनर्जी, एम० एन० ३८३, श्रीमती ३१८, ३७२
बनारस ३८९
बन्धन ३०, ४७, ७८, ११०, १२४, १४०, ३३२, ३४२-४३
बम्बई १६३, १६५, ३७१, ३७५-७६, प्रेसीडेन्सी ३७८
बरखज्राई १६०, २१६
बरमी १७६, १९४
बर्गस (जर्मन पडित) १९४
बर्गेन शहर १६३
बर्दमान नगर १४९
बर्लिन १५०
'बल का आदर्श' १३२
बलगेरिया २१३-१४, २१८
बलराम बसु २४७
बलराम बाबू २३७, २६९, २७१ (देखिए बसु, बलराम)
बलिराज १४८
बसु, जगदीश चन्द्र (डॉ०) २०५, बलराम २४७, रामतनु २५८
'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' ५८
बहु विवाह १६१

बाँकीपुर १५४
बाइबिल २, २१, ३४, ४२, ७३ (पा टि ) १७, १११, १९१, १९७-९८
बाजबाजार २३७, २४८, २५७
बान्ताम शहर (वाणिज्य केन्द्र) ११८
बाबरिन १९१
बाबिल १९, १९१, २२२ जाति १९७ प्राचीन १९५ साहसी १९१
बाबिली १९७
बाबिलोनिया १९५
बाबीली प्राचीन १९४
बाबूराम १५, ३९२ (देखिए स्वामी प्रेमानन्द)
बार्नहार्ड २०२, २११, १२
'बाल' १९७
बाल गंगाधर तिलक १९१
बाल ब्रह्मचारी १५, विवाह २७५-७६
बाल्य विवाह १११
बिलीमिरी १७१
बिस्मार्क २०९
बी बाई एण्ड एन कम्पनी १११
बुक कुमारी १४४, १५५ श्रीमती १४७
बुकफाल्स १७
बुडापेस्ट २१४
बुद्ध १८, १२७, १४१, २९४ और अहिंसा ११२ और उनका वैराग्य १४२ और उनका महाप्रयाण २९१ और कृष्ण ११६ और चार चाहा ११७ भगवान् १७६ (देखिए बुद्धदेव)
बुद्धदेव ३१
बुद्धि ४१, ८४ उसका अनुसरण ४४ और भावना १७ और हृदय १८
बुर्बो वंश २११
बुल्गेरिया २१४
बुल श्रीमती ३०६, ११५, ११८, १२८, १३१, ३६, ३५, १५६, १५८, १६६, १७६, १८२, १८८, १९२, ९३
बुलेवार हैस्मन दुमन १४८
बृस्मार २१५
बृहदारण्यकोपनिषद् १९, ७२ (पा टि )
बेंजमिन मिल्स १०१
बेट्स श्रीमती ११४
बेटी श्रीमती १९१
बेडालि मरब १८२
बेथलेहम १८९
बेबीलोनियन उनकी धारणा ९३
बेलूड़ गाँव १८१ मठ २२७, २३७, २४५, २६१, २६६, २६८-७१, २७३-७५, २७७-७८, २८०-८१, २८३-८४, ३९४
बेसनार्ड मादाम ३५९
बोआ मत्स्य २०९ (देखिए बुल बोआ)
बोधगया १७७-७८, १८
बोधगया १८७
बोनापार्ट २१, वंश २११ सम्राट् २११
बोमा श्री १५९, १६६, १७, १८१ (देखिए बुल बोमा)
बोस डॉ ११७
बोस परिवार १४
बोस्टन १५६
बौद्ध ४, ९२, अनुशासन ११८ उत्तर प्रान्तीय १८९ उनका मत ५ और हिन्दू १७५ और हिन्दू धर्म में भेद ११८ कट्टर १७४ त्यागी २१७ धर्म ४ २४१ प्रचारक १७४ प्राचीन ४८ भिक्षु १७४ मठ ५, ५६, ११८, १८७ युग २१८ लड़की १७६ साहित्य १८० चीनी १७१
ब्रह्म १, २, २२, ६०, ४५, ६, ७० ८३, १०५, १११, ११, २१६, १८७ अनुभव २५ अनुभूति २४ चिन्तन २१९ ज्ञान २१, २११ तत्त्व ८१ देश १७६ निर्गुण २६ ११८ पुरुष ४१ पूर्ण २११ फल

१४८, लोक २४, १४१, विद्या ४, सर्वव्यापी २३, साक्षात्कार २१, सूत्र ३८७
ब्रह्मचर्य ३६६, अखण्ड २५०, २५५, और उसकी महत्ता २५६, जीवन का गौरव ३९५, पालन २३२, भाव ३९४, व्रत २४२
ब्रह्मचारिणी और उसकी आवश्यकता २७८
ब्रह्मचारी २०, २७२, २९०, ३४७, ३६५, और उसकी आवश्यकता २७८, पुरुष ३९४, शिष्य १९
ब्रह्मपुत्र ३७९, नदी ३७२
ब्रह्मभावापन्न २२
'ब्रह्मवादिन्' १७२
ब्रह्मा ७६, ३४२
ब्रह्माण्ड ६, २३, २६, ३०-१, ३३, ६८, ७०-१, ७६, ७९, २८४, ३१८, जगत् ६९, ७३, स्वरूप ७३
ब्रह्मानन्द, स्वामी २५७, ३०३, ३०६, ३०९, ३५१, ३६४, ३८३, ३८८, ३९२
ब्राउनिंग १३७
ब्राह्मण १९, उड़िया १६९, कुल २४८, कोंकण १६९, गुजराती १६९, २२०, २४८, दक्षिणी १६९
ब्रिटिश कौन्सिल ऑफिस ३५०
ब्रिटिश जहाज़ ५७, म्यूज़ियम १९३
ब्रीटानी ३५९
ब्रेस कम्पेन ३५९
ब्लाजेट, श्रीमती ३१२, ३३७
ब्लावट्स्की, मैडम २९२

भक्ति, और त्याग १४२, और द्वैत २७२, और श्रद्धा २३२, के पाँच प्रकार २७२, ज्ञान मिश्रित २८१, परा २७३, मार्गी २७३, योग २७१-७२
भगवत्प्राप्ति २८०
भगवद्गीता ४ (देखिए गीता)
भगवान् २२, ५९, ७१, २३०, २४१, २४४, २४९, २७२, ३३६, और उच्चतर भाव ३५, हृदय-स्थित ६२
भगिनी क्रिश्चिन ३६०, ३८०, निवेदिता ३०४, ३१४, ३२४, ३८-३९, ३४२-४४, ३५०, ३५५, ३६४, ३८४, ३९०
भागीरथ १८७
भागीरथी १५४
भारत २९, ४०, ४९, ९७, १०४-५, ११६, १४०, १४४, १६४, १६७-६८, १७३, १७५, १७७, १७९, १८२-८३, १८८-८९, १९१-९६, २०१, २१५-१६, २२९-३०, २३२, २३४, २४२, २४६, २४८, २५४, २५७, २७५, २८५-८७, २९२, २९५, २९७, २९९, ३०५, ३२०, ३२४, ३३१, ३३३, ३३९, ३४१-४२, ३४४, ३४७, ३५०-५१, ३५५, ३६१, ३६३, ३६६, ३७३-७४, ३७८-७९, आधुनिक १५३, उत्तरी १६९, उसका उच्च भाव २५४, उसका सदेश १२७, उसका हित २३३, उसके निवासी १०६, उसके श्रमजीवी १९०, और आत्मा विषयक धारणा ९५, और उच्च वर्णवाले १६७, और उसकी सहिष्णुता १६७, और कृष्ण १३३, और जन समाज २५४, और जीवन शक्ति १६७, और दुर्भिक्षो की समस्या २५०, और पश्चिमी देश मे अन्तर १२७-२८, और प्राचीनतम दर्शन-पद्धति १२१, और 'महान् त्याग' १३७, और वैष्णव धर्म १३०, और सामाजिक साम्यवाद १३४, की लक्ष्मी १८९, धारणा ९५, पश्चिमी २४३, प्राचीन १९, १०८, भक्त २०५, भूमि ३८८, श्रमण २०२, महासागर १७२, १७९, माता ३४५,

में स्त्री-शिक्षा १३९ सांतिप्रिय २९६ श्रद्धा भक्ति का ह्रास २६९
भारतीय उसकी आत्मा विषयक धारणा १७ उसकी विशेषता १२१ कला १८९ जाति १४ डाक-विभाग २७९ तत्त्वचिंतक (प्राचीन) और शरीर संबंधी धारणा ११ धर्म और उसका बोध १३१ नारी २७७-७८ प्रयोग ११४ मन १२१ महिला २७८ वाणिज्य १८९ विचारधारा १२१ विद्रोह २९८ वेश-भूषा २११ समाज २९८ साधु ३५६ स्त्री २९८
भावना उसकी महत्ता और व्यापकता १८
भाववादी ४९
भाषा अंग्रेजी २ १ २ ४ २११ ईरानी १ ४ ग्रीक १९२ १९९ तमिल १७५ फ्रांसीसी १९४ फ्रेंच ७ २११ २५३-५५, ३२५ बंग २ २ बंगला १९७ १९९ मराठी १९८ संस्कृत १ ४ १ ६ १९३
भाष्यकार २२
भिक्षु-संन्यासी ३११
भुवन मोहन सरकार
भूटानी १७६
भूटिया १९४
भूमध्य सागर १८३ १८८, १९१ १९९ २ ३ २ ६ २८२
'मेका' १९९
भैरव-सँपताल २९६
भैरवी-एकताला २११ झँपताल २९७
भौतिक तत्त्व ८९ वाद १२२ २९२ वादी २९ विज्ञान १४ शास्त्र २३
मंगोल १९५ जाति १९५
मंगोलाइड (चौरे मंगोल) १९५
मंत्र-दीक्षा २४९
मखो-चखो १ ४
मर्सीगियन २२२ कला २२२
मठ, बेलूड़ ३६३ ३६६, ३६९-७१ ३७१-७५, ३७७-७८ ३८०-८१ ३८३-८९ ३९४
मठ्याव ३३८
'मदर' १ ८ ३१७
मद्रास १५ १६८ १७१ १७७ २२१ २६६, ३६१ ३७५ और तमिल जाति १७ वर्णन ३८८
मद्रासपट्टम् ३३८
मद्रासी १६९, १७०-७१ समाचार १७ तिलक १६९ मित्र १७१
मधुर भाव २७९-८१
मध्य देश १५६
मध्व मुनि १६९ सम्प्रदाय १६९
मन १८ (पा टि )
मनुष्य ४४ २७ उसका प्रकृत स्वरूप १२
मनोमय कोश १४१
मनोविज्ञान १४ २५४ २५७
मलाबार १७ १९६
मलायलम (मलाबार) १५१
मलायी १९४
मसीहा १४
महाकाली पाठशाला १४
महा निर्वाण मूर्ति १७४
महा प्रयाण और बुद्ध २९६
महाभारत २११
महामाया २४२, ३६६
महायान १७१ २११ मत १८७
महाराष्ट्र १९४
महाविषवत् रेखा १५७
महावीर १४०-४८, १७५
महिम १४८
महिम्नोदारी १९५ (पा टि )
महेन्द्रनाथ गुप्त २७१
माँ ११ १६ १ ७ १ ६,१२१ १२ १ ३११ ३१ १५९
माँ मुन्नुमुन्नकिमी २११

मागधी भाषा १७६
माता जी (महाकाली पाठशाला की संस्थापिका) १४०
मातृभूमि २७८
मादमोआज़ेल २०१, ३६३, उसका अर्थ २०१
मधुकरी ३९०
मानचू १९५
मानव-आत्मा २९
मानवतावादी १४०
मानसिक विद्या २९२
मानिकी १८१
माया ३१, ७५, ७६, ९२, १०९, ११३, १३६, १३८, १६७, २७१, २७३-७४, ३८७; अमरावती २०६, उसका अर्थ १२३, उसकी परिभाषा १४२, उसकी व्यापकता २७५, जाल ७५, नामरूप १४२, पाश २७३, मोह ७०-१
मायातीत अवस्था ७५
मायामय ६८
मायावती ३४७, ३६६-६८, ३९३
मायावरण २७
मारमोरा २२१
मारवाड १८२
मारवाडी २३०
मार्गट ३१४, ३२४, ३३५-३७, ३४३, ३४५, ३५५-५६, ३६९-७०, ३७२, ३९३ (देखिए निवेदिता, भगिनी)
मार्गरेट ३०५
मार्टिन लूथर २०३
मार्साइ १८३, १९९
मालद्वीप १५७, १८४
मालाबार १८०
'मालिम' १६५
माल्टा १४९
मासपेरो १९३-९४
मास्टर महाशय २७१-७२ (देखिए महेन्द्रनाथ गुप्त)
माहिन्दो १७४
मि० श्यामीएर १७१
मित्र, प्रमदादास ३५०
मिल २७५, २९०
मिल्टन १३७, श्रीमती ३२२, ३२७, ३३५
मिल्वार्ड एडम्स, श्रीमती ३३७
मिस्र १८०-८१, १९१, १९८, २०२, २०५, २२१, ३६०, जाति २२२, देश १०६ १९३, देशवासी १०३, पुरातत्त्व १९३, प्राचीन १९०, १९५-९६
मिस्री ९३-४, आदमी १८३, उसका प्राचीन मत १८१, सभ्यता १७०
मुकुन्दमाला १११ (पा० टि०)
मुक्ति ३४, ५५, ६७, ७५-६, ९७, १२३-२४, २७२, ३१७, ३४१-४२, अमरता से अविच्छिन्न संबंध ११७, उसका अर्थ ११६, उसका सरलार्थ ११०, उसका सिद्धान्त ११०, में अनुकम्पा की आवश्यकता ११२, सन्यास १३३
मुखोपाध्याय, प्रियनाथ २५७
मुगल १६८, प्रतिनिधि १६८, बादशाह २१६
मुण्डकोपनिषद् ६८ (पा० टि०), ११२-१३
मुराद, सुल्तान २२०
मुर्शीदाबाद १५४
'मुल्लक' १९७
मुसलमान २५, २९, ४३, ५९, ७७, १६५, २००, २०३, २०८, २१३, २४७, २५२, धर्म २१६, नेता ओसमान १९२, नौकर १६५, हिन्दी भाषी २२०
मुसलमानी धर्म १८९, २१८, बगदाद १८९
मुहम्मद १४३, १८२
'मूमिया' १८१
मूर्ति-पूजन १६१
मूर्ति-पूजा १९८, २९२, उसका उद्गम २३७

मूकर, कुमारी १२ १४४ १८६
मूसा यहूदी नेता १८
मृत्यु का निरन्तर चिन्तन २८४
मेक्सिकोड मिस २ १ २१९ (देखिए जासेफिन मैक्लिऑड)
मेघदूत २३३
मेटारलिंक २११ १२
मेथाडिस्ट १४३
'मेनुस' १९६
मेनेलिक (हब्शी बादशाह) १८
मेमफ्रिस प्रवास २८९
मेरॉन २२१
मेरी १ ८ २११ १२५, १३६ ३७ १३९, १४२, १७३-७४ १७८, १८१-८२ (देखिए मेरी हेल कुमारी)
मेरी लर्ड (आस्ट्रियन राजकुमारी) २१ ११
मेरी हेल कुमारी १ ८ ११३-१४ ११६ ३७ ११९ १४२ १४४ १७३ १७९ १८१
मेलकावि मारमोजावेक २२१
मेल्बा मादाम २ २
मिल्टन श्रीमती १११ १२ ११९, १२५, १५५-५६
मेसावरी मारिओम (फ्रांसीसी) १६१
'मैं' १०-१ ४९ ५८ ९, १२, ८४-५, १२३ उसकी पहचान १२
मैकक्विडसी परिवार ११६ वहाँ ११७
मैक्लिऑड कुमारी ११३, १२३ १२८, १७३ २७९ (देखिए मैक्लिऑड जोसेफिन)
मैक्लिऑड जोसेफिन १ ५, ११८ १२८ १३१ १३४ १४५ ४६, १५५ १६२ ६३ १६६, १७ ७१ १७५, १७७-७८, १८१ १८९ १९१ ९४
मैकबीय परिवार १८२
मैक्स मेजिक ११५
मैक्सिम २ ४-५ तोप २ ५
'मैक्सिम गन' २०४
मैक्सिम श्रीमती १७६
मैडामास्कर १४९
मैसूर १७२, १७८, १७५
मैसूरी रामानुजा 'रसम्' १७२
मोक्ष १११ ११४ १४ और व्यक्तित्व मुक्ति १२८ निर्वाण १२४ सिद्धि ११
मोदी १८४
मोनरो एण्ड कम्पनी २७४
'मोक्ष' १९७-९८
म्लेच्छ ११५

यमराज १५१
यवन १९२ १९६ प्राचीन १९१ लोग १८१
यस श्रीमती ११७
यहूदी १ ४ १ ६ १९१ १९१ ९७ २९९ उनकी शैतान की कल्पना १ ४ जाति १९७ देवता १ १ धर्म १९८ भाषा १९८
यारकन्दी १५१
'याबे' देवता १८ १९८
युक्रेटिस १७ १९७ नदी १९१
युस्क (तुरुस्क-सम्राट्) २१६
यूथीय या क़बीली देवता १ ३
यूनान १८२, २१८, १६
यूनानी देवता ११५ हकीमी १८१
यूरोप ४१ ४८, १११ १४ १४७ १९१ १९५, १७८-७९, १८३, १८८, १९१ १९५, २ ०-१ २ ३ २ ७ २ ९ १ २११ १४ २१८, २२१ २२, २२७ २४७ २७४ २७६, २८७ १८ पश्च २१२ पूर्वी १९२ मध्यकालीन ४ यात्रा १४५ वासी २१४ १५, २१४ २१६
यूरोपियन १६५, १७५ पोशाक १९२ राजस्थापन २११ वेश १८२ साहित्य १९७ सभ्यता १९२, १९६, १९९

यूरोपीय कमीज़ २३६, कोट-कमीज़ २३६, विद्या ३५४, वेशभूषा २२८, सभ्यता १७७
यूसफजाई २१६
यूसुफ १९८
योग, उसका अर्थ २४२, ज्ञान २७१-७२, ध्यान २४२, भक्ति २७१-७२, माया १०९
योगानन्द, स्वामी २५७
योगीन माँ ३६९
यौगिक सिद्धि और सीमा के प्रश्न १४१

रंगून १४९
रघुवंश १४७ (पा० टि०), १५२ (पा० टि०)
रजोगुण १५०, २४८, २५६
रजोगुणी २५३
रब्बी (उपदेशक) १९९
रमते योगी १४३
राइट, श्रीमती २८६
राक्सी चाची ३३७ (देखिए ब्लाजेट, श्रीमती)
राखाल ३५०, ३९२ (देखिए ब्रह्मानन्द, स्वामी)
राजकुमार (एक वृद्ध क्लर्क) २६३-६६
राजकुमारी डेमी डॉफ ३५७
राजदरबार, उसका महत्त्व २४३, सभ्यता और संस्कृति का केन्द्र २४३
राजपूताना १७८, १८२
'राजयोग' (पुस्तक) २५७-५८
राजस्थान २३८, २४३
राजेन्द्रलाल, डॉ० ३८७
राधाकान्त देव, राजा २५०
राधा प्रेम २८०
राम १४७
रामकृष्ण देव २६०, २६२, २७१-७२, ३०५, ३१५-१६, ३२६, ३५१, ३९१ (देखिए रामकृष्ण परमहंस)
रामकृष्ण परमहंस १२७, १२९-३०, १३२, १३६, २२७, २३२, २३४, २४१, २४४-४५, २५१, २५४, २६०-६२, २७३, ३०७, ३३२, उनका श्रेष्ठत्व २५२, और विवेकानन्द १४१, जन्मोत्सव ३०९, भगवान् रूप २४२
रामकृष्ण मठ ३४६, मठ एवं मिशन २८५ (पा० टि०), मिशन ३४६, ३५१
रामकृष्णानन्द, स्वामी ३६५, ३६९, ३७४ (देखिए शशि)
रामगढ ३२०
रामतनु बसु २५८
राम बाबू ३९१
रामलाल २६०
रामसनेही १६९
रामानन्दी तिलक १६९
रामानुज १६९
रामानुजी तिलक १६९
रामायण २३३
रामेश्वर १४९
रामेश्वरम् ३६९
रावण-कुम्भकर्ण १७३
रावण, राजा १७३
राष्ट्र, उसके इतिहास का महत्त्व २२८
रुडयर्ड किपलिंग २९७-९८
रुबाटिनो कम्पनी (इटैलियन) १६१
रूपनारायण (नद) १५५
रूमानिया २१८
'रूल ब्रिटानिया, रूल दी वेव्स' १५३
रूस १६४, १८०, २०८, ३६५, युद्ध २१४
रूसी भावना ३६५
रूस्काइव ३७४
रेड-वुड वृक्ष ३३६
रेज़ाँ २११
'रोज़ेट्टा स्टोन' १९६
रोम १५०, १८९-९०, १९२, १९९, २०९, उसके बादशाह १९३, राज २१२, राज्य २१०, २१७,

साम्राज्य १८९
रोमन १३७ १८१-८२, १९६, १९९
कैथोलिक ४१ २१८, ३९४ धर्म २ १ निवासी उनकी बर्बरता ११७ बादशाह (कान्स्टान्सियस) १७९ मार्के २ २
लंका १४७ १७१-७५
'लखिन्दर के बाप' (बंगाली कहानी में एक पात्र) १५९
लन्दन १, १९, १७ ४८, १५ १९९ १ ६ १ ७ ११ २११ १२, ११४ १७ १७९
'लाइट ऑफ़ एशिया' २९४
लाइट विमेह का आक्रमण' १२९
लाइफबिक २११
लागन ओं ३५५
लायकल मत्स्य २ १
लॉर्ड कर्जन १८९
ला मार्टिन २ २
लालचेम १५
लालमामर १७१-८१, १८१ १८९
लाहुन २९७ २९९
लॉन एंजिलिस १ ५ ६, ११२, १२०-२१ ११४ ११७ ११९, १४८, १५५
'लॉ मेपल' १४१
लाहौर १७१
लिम्बडी १७१
लिसिच २९७
लिमिप्स २२१
लिट्रेचर १७९
लीलासन ७८
लग्ग परिवार १२१ १४५ मिस्टर २ १
लेगेट, श्री ११२, १२४ १२९, १११ १३ ११४ १५ १४७ ११२, ३११ श्रीमती ११ ११५, ११९, १२१ १२१ १२५, १२७-२८, १११ ११४ १५, १७९
लेग्गे प्रोफेसर २२१
लेण्डा १९४
लोहित सागर १८८
वट-वृक्ष ४७ ३१
वनियमधारी १३५
वराह १९७
वरुण ३१ १५१
'वर्तमान भारत' १५२
वसीयतनामा १ ७ १९४ ११५
वस्तु ११५ उपादान नाम-रूप का योग १२१
वाईकाफ़, श्रीमती १४७
वाटरलू २११
वायु-पोत १११
वारनेल्ला १५४
वाराणसी ३८९ छावनी १८७-८८, १९०-९२ वाली १५ (पा टि )
वाल्डम श्रीमती १५४
वाल्डो कुमारी ११८ १९, १४५ ४६, १५४
वाल्मीकि १४८
वाष्प पोत १११ १४ १११
वास्तु शिल्प १८
वास्फ़ोर २१९ २
'विकास' ८७
विकासवाद ३९, ५२ १ वादी ८९, २९९
विक्टर ह्यूगो २ २ महाकवि २ १
विजय सिंह १७१
विजया का मंदिर २२१
विज्ञान आधुनिक १९ वादी (Idealist) ४१ ४८
विद्यानगर १७
विद्यारण्य मुनि १७
विद्यासागर ईश्वरचन्द्र २११
विधवा-विवाह २७१
वियना २ ६ २११ ११२ नगरी २ ८ द्वार २ ९, २१२
विरहेम गाथा २

विलायत १५८, १६३, १६५-६६, १७१, २५२, २५४-५५
विवाह २७५, अन्तर्जातीय २७१, और भावात्मक शिक्षा २७७, विधवा २७१
विवेकचूडामणि ७३ (पा० टि०)
विवेकानन्द, स्वामी ८३, १२७, २५०, २५५, २५८, २८६, २९०, २९२-९३, २९८-९९, ३००, ३०४-५, ३०८-१२, ३१४-२०, ३२४-२५, ३२८-३१, ३३३-३९, ३४१-४९, ३५२-५३, ३५७-६०, ३६२-६५, ३६७-७४, ३७७, ३७९-८२, ३८४-८६, ३९०-९३, ३९५, उनकी निश्चिन्तता २६६-६८, उनके विवाह सबंधी विचार २७६, और अद्वैत १४१, और उनकी सहृदयता २६२-६६, और चित्रकला २३८, और चैतन्य २७९, और धर्म तथा सम्प्रदाय २९३, और निर्वाण ३३२, और बुद्ध १४२, और यौगिक सिद्धियाँ १४१, और रामकृष्ण परमहस १४१, और व्यक्तित्व का प्रश्न १४३, और शकराचार्य १४३, और सगीत कला २४६, और सत्य दर्शन २७४, और हिन्दू धर्म २९४
विशिष्टाद्वैत और ईश्वर ६८
'विशिष्टाद्वैतवाद' ९०
विश्व-ब्रह्माड १४
विश्वामित्र २४९
विष्णु, उनकी उपासना १३३, प्रतिमा २३२
विष्णु मोहिनी ३९१
वीर रस २४७, २८०
वीर-वैष्णव सम्प्रदाय १७०
वीर-शैव १७०, शैववाद १७५
वील माट, श्रीमती ३५८
वुड्न पागा २१९-२०
वृष और सत्यकाम २०
वेक्हम, कुमारी ३५५
वेद २८, ३०, ४४, ४८, ८८, १०५ ११२, १३२, १३५, १३९, १८९, १९६, २४२, उसका सहिता भाग २५, उसकी आवश्यकता २४२, उसके भाग २३, पाठ ३६५, भाष्यकार सायण १७० (पा० टि०), वाक्य २७४
वेदान्त ७, १६, २९, ३२, ५३-४, ५६, ६०, १३२, १४४, १७०, २२७ २४१, ३३४, उसका आदर्श ३४, उसका उपदेश ३३, उसका मत ३३, उसका मूलतत्त्व २५, उसका मूल सिद्धान्त (एकत्व भाव) ८, उसका वैशिष्ट्य २२, उसका व्यावहारिक पक्ष २१, उसका श्रेष्ठत्व ११२, उसका सरलीकरण १२, उसका सिद्धान्त २२९, उसकी साधना ३५, और अद्वैत ५२, और अद्वैतवाद ४०, और ईश्वर ६८, और उसका कथन ६१, और उसकी उपयोगिता ३, और गीता २४०, और धर्म ३, और प्रणेता ३, और सभव आदर्श ६, और सिद्धान्त ३, दर्शन ४, ८४, दर्शन मे ईश्वर का स्थान ८३, धर्म ५८, भाव २०२, मत २७, ३१७, युक्त पाश्चात्य विज्ञान २२९, वादी ६७, समिति ३२४, सोसायटी ३१२, ३२९, ३३५, ३४२
वेदान्ती, प्राचीन ४८
वेनिस १९०, ३६०, ३८०
वेल, कुमारी ३५५
वैटिकन २१०
वैदिक अग्नि १३९, धर्म त्यागी २१७, यज्ञ २३९, यज्ञानुष्ठान २४१, वेदी १३९
वैष्णव १७०, २४१, २८१, धर्म १३०, १३३ १७०, सम्प्रदाय ३००
वैद्य २४८-४९

४१ ४३ ४५६, ४८ ४९ ४११ १५
विवेकचूडामणि ९१ ३४१ (पा० टि० )
'विशिष्ट' उसका अर्थ ६७
विशिष्टाद्वैतमार्ग ३९
विशिष्टाद्वैतवाद ४६-७ ६७ वादी ९२
विश्वविद्यालय १ २
विष्णु १४ १७-८ ४७ ५७ १७५, १७६, ३५७ उपासना और नाम १७४ प्रभु १७१ रूप १७५
विष्णुपुराण १७६ (पा टि ) ३१५
वीणा १२७
'वीर' ९२
वुड साइड्स ३७१
वृन्दावन १९९
वेद ११ ४२४ ४६-७ ५१ ५७ ६२, ६४ ७१ ८१ २ ४-५, २ ८ २६४ २६६ २८३-८५, २८९, २९२ ९३ ३१५ और शिक्षा २९८ ऋग् २८१
वेदव्यास ३१४
वेदान्त ४७ ५२ ६१२ ७४ ८८, १११ १४ २८६, ३१४ अद्वैत ६८ और माया ११७ दर्शन ६५, ४७ १८७ २८ धर्म ५५ सूत्र ५६-७ ३१५
'वेदान्त-केसरी' ४१
वेदाध्ययन ४७
वेदोक्त तत्त्व ६२
वेल्स ३७१
वैकुण्ठ १७४
वैदिक भाषा २८४ युग ३ साहित्य २८४
वैदेही १४२ (देखिए सीता)
वैयाकरण ३५७ ३६१ ३६५
वैराग्य ७८
वैश्य ४०
वैष्णव सम्प्रदाय १७
व्यक्तिवाद ३५७
व्यास ४२, ४६-७ ११५, ११८ ३१४ सूत्र ४६, ५१
व्यूह-रचना १६२
शंकर ४२, ४६, ५०-१ ५६, ६२, ६४ ८ ७१ ११२ (देखिए शंकराचार्य)
शंकराचार्य ६८, ११४ १५, ३४२, ४ ४
शंख १७३ १७५
शकुनि १५१
शकुन्तला १४८
'शक्ति' ३६
शतपथ ब्राह्मण २१६
शनिग्रह ७७
'शब्द' ७ २९ और ब्रह्म ७
शरत् १७५, ३९१
शरीर ९ १२, २६, २८ ३२, ३३ ९ ६४ ६६, ७४ ७७ ८७ ८९ ९७ १ ५ १ ७ १ ९१ ११४ १२१ २२, १४७ १५८ १७१ २ ९ २२९ २३४ २३८ २५१ २५६ २६५ ६६ २९३ ३ ५, ३ ७ ३ ९ १ ३२२, ३२९
शांकर-भाष्य ४२, ५९
शाक्त ३५
शापेनहावर ६२
शालिग्राम-शिला ३४
शास्ता २१२ २९३
शास्त्र २८ १ ५ उसका कार्य ६५
शिकागो ८९ ३६६ ३७७ ३८३ ३९३ ४ २-३ ४११ ४१५
शिक्षा और सहानुभूति ११९ दान २४३ लौकिक २४४
शिव ३२ ३४ ३७ ४७ ५ ५७ १९१ पशु ३३६
शिवाजी का भूत ३३६ ३७
शिवमहिम्न स्तोत्रम् २११ (पा टि )
शिवस्वरूप ४२
शुक्ल यजुर्वेद २ ५ (पा टि

'शुभ' ८
शुभ-अशुभ १३०
शून्यवाद ५३, वादी ५४, ३७१
शूर्पणखा १३७
'शेक्सपियर क्लब' १३२, १७७
'शेक्सपियर सभा' १४८
शैव ३७
श्याम २००
श्यामा माँ ११२
श्रवण १२६
श्राद्ध-संस्कार २४३
श्री ऊली ३६७, बूली ३७६, लेगेट ३९३, ३९६, ४००
श्री कृष्ण २१, २७, ३१, १५२-५३, १६८, १८६-९०, २२९, २३५, २४०, ३०१, ३०६, ३१९
श्री चैतन्यचरितामृत ३९
श्री चैतन्यदेव ३९ (पा० टि०)
श्रीनगर ३५३-५४
श्री भाष्य ३१५
श्रीमद्भागवत् १३ (पा० टि०)
श्री रामकृष्ण २४, २९, ३२-४, ३६, ७०, १००, २४१, २५६, और उनके विचार २६९-७०, परमहस २६७, २६९, २७१, राष्ट्र के आदर्श २७१
श्री रामकृष्ण देव ३१, ४०५ (देखिए श्रीरामकृष्ण)
श्रुतिशास्त्र २०८
श्वेतकेतु ७८
श्वेताश्वतर उप० २१ (पा० टि०)

सजय ३१८, ३१९
सगीत ४१
सदेहवादी २५९
सन्यास-मार्ग २५३
सन्यासिनी २२
'सन्यासी' ३९०, धर्म ३९०
सस्कृत, प्राचीन २८३, भाषा १३२, २८४
सत् ८, ७०
सत्यकाम ९३
सत्यवान १५५-५८
सत्त्व (गुण) १९-२०, २२
सत्त्वगुण ५७, ६८, ९६, ३१९
सनक २५ (पा० टि०)
सनत्कुमार २५ (पा० टि०)
सनन्दन २५ (पा० टि०)
सनातन २५ (पा० टि०)
सनातन तत्त्व ७४
सनातनी दर्शन ४६
सन्त पॉल ३३, ७८, जॉन ७
सन्त-समागम १५५
सन्देहवादी २१८ (पा० टि०)
समत्वभाव ४१, १०१
समाजवाद ३५७
समाधि ५२, अवस्था ७०, ७२, और अर्थ ४१, धर्ममेघ ७९, निर्विकल्प १०३, सविकल्प १०३
'समारिया' वासियो २२८
सर एडविन आर्नल्ड २०५ (पा० टि०)
सरयू १४४
सरला घोषाल, श्रीमती ३६८
सविकल्प (समाधि) १०३,
सहदेव १५९, १६१, १६६
सहस्रद्वीपोद्यान, १२२
साख्य १६५, दर्शन ६८, ३०१
साख्यवादी ६८
साउटर, कुमारी ३७३
साकार उपासना १८२
साधन पथ १४६, भजन ७५
साम्यवाद ३४
साम्यावस्था ३२६
सादृश्यमूलक ज्ञान ४०
सारदा ३७४
सारदानन्द ३५४-५५, ३७१, ३८०, ३९७, ४००, ४०३-५, ४०७
सावित्री १५४-५८
'साहित्यकल्पद्रुम' ३३८
सिकन्दर २००
सिण्डरेला नृत्य ३७७

हम लोग इस मर्त्यलोक के साधारण मनुष्य की स्थिति में रहेंगे तब तक हमें मनुष्यों में ही भगवान् को देखना पड़ेगा। इसीलिए हमारी भगवान् विषयक धारणा एवं उपासना स्वभावतः मानुषी है। सचमुच ही 'यह शरीर भगवान् का सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है।' इसीसे हम देखते हैं कि युगों से मनुष्य मनुष्य की ही उपासना करता आ रहा है। लोगों का इस मनुष्योपासना के विषय में जब कभी स्वाभाविक रूप से किंचित् अतिशयाचार देखने में आता है तो उनकी निन्दा या आलोचना भी होती है। फिर भी हमें यह दिखायी देता है कि इसकी नींव काफी मजबूत है। ऊपर की शाखा-प्रशाखाएँ भले ही कड़ी आलोचना के योग्य हों पर उनकी जड़ बहुत ही गहराई तक पहुँची हुई और सुदृढ़ है। ऊपरी आडम्बरों के होने पर भी उसमें एक सार-तत्त्व है। मैं तुमसे यह कहना नहीं चाहता कि तुम बिना समझे-बूझे किन्हीं पुरानी कथाओं अथवा अवैज्ञानिक अनर्गल सिद्धान्तों को जबरदस्ती गले के नीचे उतार जाओ। दुर्भाग्यवश कई पुराणों में वामाचारी व्याख्याएँ प्रवेश पा गयी हैं। मैं यह नहीं चाहता कि तुम उन सब पर विश्वास करो। मैं ऐसा करने को नहीं कह सकता बल्कि मेरा मतलब यह है कि इन पुराणों के अस्तित्व की रक्षा का कारण एक सार-तत्त्व है जिसे लुप्त नहीं होने देना चाहिए। और वह सार-तत्त्व है उनमें निहित भक्ति सम्बन्धी उपदेश, धर्म को मनुष्य के दैनिक जीवन में परिणत करना, दर्शनों के उच्चाकाश में विचरण करनेवाले धर्म को साधारण मनुष्यों के लिए दैनिक जीवनोपयोगी एवं व्यावहारिक बनाना।

## 'ट्रिब्यून' में प्रकाशित रिपोर्ट

इस भाषण की जो रिपोर्ट 'ट्रिब्यून' में प्रकाशित हुई उसका विवरण निम्न लिखित है :

वक्ता महोदय ने भक्ति की साधना में प्रतीक-प्रतिमाओं की उपयोगिता का समर्थन किया और उन्होंने कहा कि मनुष्य इस समय जिस अवस्था में है, ईश्वरेच्छा से यदि ऐसी अवस्था न होती तो बड़ा अच्छा होता। परन्तु विद्यमान तथ्य का प्रतिकार व्यर्थ है। मनुष्य चैतन्य और आध्यात्मिकता आदि विषयों पर चाहे जितनी बातें क्यों न बनाये पर वास्तव में वह अभी जड़भावापन्न ही है। ऐसे जड़ मनुष्य को हाथ पकड़कर धीरे धीरे उठाना होगा—तब तक उठाना होगा जब तक वह चैतन्यमय तथा पूर्ण आध्यात्मिक भावापन्न न हो जाय। आजकल के जमाने में ९९ फी सदी ऐसे आदमी हैं, जिनके लिए आध्यात्मिकता को समझना कठिन है। जो प्रेरक शक्तियाँ हम को ढकेलकर आगे बढ़ा रही हैं, तथा हम जो फल प्राप्त करना चाहते हैं, वे सभी जड़ हैं। हर्बर्ट स्पेन्सर के शब्दों में मेरा कहना है कि हम

केवल उसी रास्ते से आगे बढ़ सकते हैं, जो अल्पतम प्रतिरोध का हो। और पुराण-प्रणेताओ को यह बात भली भाँति मालूम थी, तभी वे हमारे लिए ऐसी पद्धति बता गये है। इस प्रकार के कार्य मे पुराणो को विस्मयजनक और बेजोड सफलता मिली है। भक्ति का आदर्श अवश्य ही आध्यात्मिक है, पर उसका रास्ता जड वस्तु के भीतर से होकर है और इस रास्ते के सिवा दूसरा रास्ता भी नही है। अत, जड जगत् मे जो कुछ ऐसा है, जो आध्यात्मिकता प्राप्त करने मे हमारी सहायता कर सकता है, उसे ग्रहण करना होगा, और उसे इस तरह काम मे लाना होगा कि मानव क्रमश आगे बढता हुआ पूर्ण आध्यात्मिक स्थिति मे विकसित हो सके। शास्त्र आरम्भ से ही लिंग, जाति या धर्म का भेदभाव छोडकर सबको वेद-पाठ करने का अधिकार प्रदान करते हैं। हमे भी इसी तरह उदार होना चाहिए। यदि मनुष्य जड मन्दिर बनाकर भगवान् मे प्रीति कर सके तो अच्छा ही है। यदि भगवान् की मूर्ति बनाकर इस प्रेम के आदर्श पर पहुँचने मे मनुष्य को कुछ भी सहायता मिलती है तो उसे एक की जगह बीस मूर्तियाँ पूजने दो। चाहे कोई भी काम क्यो न हो, यदि उसके द्वारा धर्म के उस उच्चतम आदर्श पर पहुँचने मे सहायता मिलती हो तो उसे वह अबाध गति से करने दो, पर हाँ, वह काम नैतिकता के विरुद्ध न हो। 'नैतिकता के विरुद्ध न हो', ऐसा इसलिए कहा गया कि नैतिकता विरोधी काम हमारे धर्म-मार्ग के सहायक नही होते, बल्कि विघ्न ही उपस्थित किया करते हैं।

स्वामी जी ने मूर्ति-पूजा के विरोध की समीक्षा करते हुए कहा कि भारतवर्ष मे सर्वप्रथम कबीर ने ही ईश्वरोपासना के लिए मूर्ति का व्यवहार करने के विरुद्ध आवाज उठायी थी। परन्तु भारत मे ऐसे कितने ही बडे बडे दार्शनिक और धर्म-सस्थापक हुए हैं, जिन्होने भगवान् का सगुण रूप अस्वीकार कर निर्भीकता के साथ अपने निर्गुण मत का प्रचार करने पर भी मूर्ति-पूजा की निन्दा नही की। हाँ, उन्होने मूर्ति-पूजा को उच्च कोटि की उपासना नही माना है, और न किसी पुराण मे ही मूर्ति-पूजन को ऊँचे दर्जे की उपासना ठहराया गया है।

यहूदियो के मूर्ति-पूजन के इतिहास का जिक्र करते हुए स्वामी जी ने कहा कि जिहोवा एक सन्दूक के भीतर रहते हैं, ऐसा विश्वास करनेवाले यहूदी लोग भी मूर्तिपूजक ही थे। इस ऐतिहासिक दृष्टान्त के उपस्थित रहते हमे मूर्ति-पूजा की इसलिए निन्दा नही करनी चाहिए कि और लोग उसे दोषपूर्ण बताते हैं। मूर्ति या किसी और भी जड वस्तु के प्रतीक को, जो मनुष्य को धर्म की प्राप्ति मे सहायता करे, बिना सकोच ग्रहण करना चाहिए। पर हमारा कोई भी धर्मग्रन्थ ऐसा नही है, जो स्पष्ट शब्दो मे यह नही कहता कि जड वस्तु की सहायता से अनुष्ठित होनेवाली उपासना निकृष्ट श्रेणी की है। सारे भारतवर्ष के सब लोगो को बलपूर्वक

मूर्तिपूजक बनाने की चेष्टा की गयी थी और इसकी जितनी निन्दा की जाय वह कम है। प्रत्येक व्यक्ति को कैसी उपासना करनी चाहिए, अथवा किस चीज की सहायता से उपासना करनी चाहिए—यह बात जोर से या हुक्म से कहाने की क्या आवश्यकता पड़ी थी? यह बात अन्य कोई कैसे जान सकता है कि कौन आदमी किस वस्तु के सहारे उन्नति कर सकता है? कोई प्रतिमा-पूजा द्वारा कोई अग्नि-पूजा द्वारा यहाँ तक कि कोई केवल एक खम्भे के सहारे उपासना की सिद्धि प्राप्त कर सकता है, यह किसी और को कैसे मालूम हो सकता है? इन बातों का निर्णय अपने अपने गुरुओं के द्वारा ही होना चाहिए। भक्ति विषयक ग्रन्थों में इष्टदेव सम्बन्धी जो नियम हैं उन्हींमें इस बात की व्याख्या देखने में आती है—अर्थात् व्यक्तिविशेष को अपनी विशिष्ट उपासना पद्धति से अपने इष्ट देव के पास पहुँचने के लिए आगे बढ़ना पड़ेगा और वह जिस निर्वाचित रास्ते से आगे बढ़ेगा वही उसका इष्ट है। मनुष्य को चलना तो चाहिए अपनी ही उपासना पद्धति के मार्ग से पर साथ ही अन्य मार्गों की ओर भी सहानुभूति की दृष्टि से देखना चाहिए। और इस मार्ग का अवलम्बन उसको तब तक करना पड़ेगा जब तक वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर नहीं पहुँच जाता—जब तक वह उस केन्द्रस्थल पर नहीं पहुँच जाता जहाँ वस्तु की सहायता की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

इसी प्रसंग में भारतवर्ष के बहुतेरे स्थानों में प्रचलित कुलगुरु-प्रथा के विषय में जो एक प्रकार से वंशगत गुरुवाई की तरह हो गयी है, सावधान कर देना आवश्यक है। हम शास्त्रों में पढ़ते हैं—'जो वेदों का सार-तत्त्व समझते हैं जो निष्पाप हैं जो धन के लोभ से और किसी प्रकार के स्वार्थ से लोगों को शिक्षा नहीं देते जिनकी कृपा हेतुविशेष से नहीं प्राप्त होती बसन्त ऋतु जिस प्रकार पेड़-पौधों और लता-गुल्मों से बदले में कुछ न चाहते हुए सभी पेड़-पौधों में नया जीवन डालकर उन्हें हरा-भरा कर देती है, उनमें नयी नयी कोपलें निकल आती हैं, उसी प्रकार जिनका स्वभाव ही लोगों का कल्याण करनेवाला है जिनका सारा जीवन ही दूसरों के हित के लिए है जो इसके बदले लोगों से कुछ भी नहीं चाहते ऐसे महान् व्यक्ति ही गुरु कहलाने योग्य हैं दूसरे नहीं। असद्गुरु के पास ज्ञान-लाभ की आशा ही नहीं है, उल्टे उनकी शिक्षा से विपरीत की ही सम्भावना रहती है क्योंकि गुरु केवल शिक्षक या उपदेशक ही नहीं है, शिक्षा देना तो उनके कर्तव्य का एक बहुत ही मामूली अंश है। हिन्दुओं का विश्वास है कि गुरु ही शिष्य में शक्ति का संचार करते हैं। इस बात को समझाने के लिए जड़ जगत् का ही एक दृष्टान्त ले लो। मानो किसी ने रोग-निवारक टीका नहीं लिया ऐसी अवस्था में उसके शरीर के अन्दर रोग के दूषित कीटाणुओं के प्रवेश कर जाने की बहुत आशंका है।

उसी प्रकार असद्गुरु से शिक्षा लेने मे भी बुराइयो के सीख लेने की बहुत कुछ आशका है। इसलिए भारत से इस कुलगुरु-प्रथा को एकदम उठा देना अत्यन्त आवश्यक हो रहा है। गुरु का काम व्यवसाय न हो जाय, इसे रोकने की चेष्टा करनी होगी, क्योकि यह एकदम शास्त्र-विरुद्ध है। किसी भी आदमी को अपने को गुरु नही बतलाना चाहिए और कुलगुरु-प्रथा के कारण जो वर्तमान परिस्थिति है, उसका समर्थन भी नही करना चाहिए।

खाद्याखाद्य-विचार के सम्बन्ध मे स्वामी जी ने कहा कि आजकल खान-पान के विषय मे जिन कठोर नियमो पर जोर दिया जाता है, वे अधिकाश छिछले है। जिस उद्देश्य से इन नियमो को आरम्भ मे चलाया गया था, उस उद्देश्य की सिद्धि नही हो पाती। खाद्य वस्तुओ को स्पर्श करने का अधिकार किसे है?—यह प्रश्न विशेष ध्यान देने योग्य है, क्योकि इसमे एक बडा भारी मनोवैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है। पर साधारण मनुष्यो के दैनिक जीवन मे उतनी सावधानी रखना अत्यन्त कठिन ही नही, असम्भव भी है। जिन लोगो ने केवल धर्म के लिए ही अपने जीवन को उत्सर्ग कर दिया है, ये नियम केवल उन्हीके लिए पालनीय हैं, पर इसकी जगह हर एक आदमी के लिए इन नियमो का पालन करना आवश्यक बताकर बडी भारी गलती की गयी है। क्योकि सर्वसाधारण मे अधिकतर ऐसे ही लोग हैं जो जड जगत् के सुखो से तृप्त नही हुए हैं, और ऐसे अतृप्त लोगो पर जबरदस्ती आध्यात्मिकता लादने की चेष्टा व्यर्थ है।

भक्तो के लिए जो उपासना पद्धतियाँ है, उनमे मनुष्य रूप की उपासना ही सबसे उत्तम है। वास्तव मे यदि किसी रूप की पूजा करनी है, तो अपनी हैसियत के अनुसार प्रतिदिन छ या बारह दरिद्रो को अपने घर लाकर, उन्हें नारायण समझकर उनकी सेवा करना अच्छा है। मैंने कितनी जगहो मे प्रचलित दान की प्रथाएँ देखी हैं, पर उनसे वैसा कोई सुफल होते नही देखा है। इसका कारण यही है कि वह दान की क्रिया यथोचित भाव से अनुष्ठित नही है। 'अरे! यह ले जा'—इस प्रकार के दान को दान या दया-धर्म का अनुष्ठान नही कह सकते। यह तो हृदय के अहकार का परिचायक है। इस प्रकार दान देनेवाले का उद्देश्य यही रहता है कि लोग जानें या समझे कि वह दया-धर्म का अनुष्ठान कर रहा है। हिन्दुओ को यह जानना चाहिए कि स्मृतियों के मत मे दान ग्रहण करनेवालो की अपेक्षा दान देनेवाला छोटा समझा जाता है। ग्रहण करनेवाला ग्रहण करते समय साक्षात् नारायण समझा जाता है। अत मेरे मत मे यदि इस प्रकार की नयी पूजा-पद्धति प्रचलित की जाय, तो बडा अच्छा हो—कुछ दरिद्रनारायण, अधनारायण या क्षुधार्त्तनारायण को प्रतिदिन प्रतिगृह मे लाना एव प्रतिमा की

जिस प्रकार पूजा की जाती है, उसी प्रकार उनकी भी भोजन-वस्त्रादि के द्वारा पूजा करना। मैं किसी प्रकार की उपासना या पूजा-पद्धति की न तो निन्दा करता हूँ और न किसी को बुरा बताता हूँ बल्कि मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि इस प्रकार की नारायण-पूजा सर्वापेक्षा श्रेष्ठ पूजा है, और भारत के लिए इसी पूजा की सबसे अधिक आवश्यकता है।

अन्त में स्वामी जी ने भक्ति की तुलना एक त्रिकोण के साथ की। उन्होंने कहा कि इस त्रिकोण का पहला कोण यह है कि भक्ति या प्रेम कोई प्रतिदान नहीं चाहता। प्रेम में भय नहीं है, यह उसका दूसरा कोण है। पुरस्कार या प्रतिदान पाने के उद्देश्य से प्रेम करना भिखारी का धर्म है व्यवसायी का धर्म है, धर्म के साथ उसका बहुत ही कम सम्बन्ध है। कोई भिक्षुक न बने क्योंकि वैसा होना नास्तिकता का चिह्न है। 'जो आदमी रहता तो है गंगा के तीर पर किन्तु पानी पीने के लिए कुआँ खोदता है वह मूर्ख नहीं तो और क्या है? —वह वस्तु की प्राप्ति के लिए भगवान् से प्रार्थना करना भी ठीक वैसा ही है। भक्त को भगवान् से सदा इस प्रकार कहने के लिए तैयार रहना चाहिए—'प्रभो मैं तुमसे कुछ भी नहीं चाहता मैं तुम्हारे लिए अपना सब कुछ अर्पित करने को तैयार हूँ। प्रेम में भय नहीं रहता। क्या तुमने नहीं देखा है कि राह चलती हुई कमजोर हृदय वाली स्त्री एक छोटे से कुत्ते के भौंकने से भाग खड़ी होती है घर में घुस जाती है? दूसरे दिन वही उसी रास्ते से जा रही है। आज उसकी गोद में एक छोटा सा बच्चा भी है एकाएक किसी सांड ने निकलकर उस पर चोट करना चाहा। ऐसी अवस्था में भी तुम उसे अपनी जान बचाने के लिए भागते या घर के अन्दर घुसते देखोगे? नहीं कदापि नहीं। आप अपने नन्हें बच्चे की रक्षा के लिए, यदि आवश्यकता पड़े तो वह शेर के मुँह में घुसने से भी बाज न आयेगी। अब इस त्रिकोण का तीसरा कोण यह है कि प्रेम ही प्रेम का लक्ष्य है। अन्त में भक्त इसी भाव पर आ पहुँचता है कि स्वयं प्रेम ही भगवान् है। और बाकी सब कुछ असत् है। भगवान् का अस्तित्व प्रमाणित करने के लिए मनुष्य को अब और कहाँ जाना होगा? इस प्रत्यक्ष संसार में जो कुछ भी पदार्थ है उनके अन्दर सर्वापेक्षा स्पष्ट दिखायी देनेवाला तो भगवान् ही है। वही वह शक्ति है जो सूर्य चन्द्र और तारों को घुमाती एवं चलाती है तथा स्त्री-पुरुषों में सभी जीवों में सभी वस्तुओं में प्रकाशित हो रही है। जड़ शक्ति के राज्य में माध्याकर्षण शक्ति के रूप में वही विद्यमान है प्रत्येक स्थान में प्रत्येक परमाणु में वही वर्तमान है—सर्वत्र उसकी ज्योति छिटकी हुई है। वही अनन्त प्रेमस्वरूप है संसार की एकमात्र संचालिनी शक्ति है और वही सर्वत्र प्रत्यक्ष दिखायी दे रहा है।

# वेदान्त

## (१२ नवम्बर, १८९७ को लाहौर में दिया गया व्याख्यान)

जगत् दो हैं जिनमे हम वसते है—एक वहिर्जगत् और दूसरा अन्तर्जगत्। अति प्राचीन काल से ही मनुष्य इन दोनो भूमियो मे समानान्तर रेखाओ की तरह वरावर उन्नति करते आये हैं। खोज पहले वहिर्जगत् मे ही शुरु हुई। मनुष्यो ने पहले पहल दुरूह समस्याओ के उत्तर वाह्य प्रकृति से पाने की चेष्टा की। प्रथमत मनुष्यो ने अपने चारो ओर की वस्तुओ से सुन्दर और उदात्त की तृष्णा निवृत्त करनी चाही। वे अपने को और अपने सभी भीतरी भावो को स्थूल भाषा मे प्रकाशित करने के लिए प्रवृत्त हुए, तथा उन्हे जो सव उत्तर मिले, ईश्वर-तत्त्व और उपासना-तत्त्व के जो सव अति अद्भुत सिद्धान्त उन्हें प्राप्त हुए, और उस शिव-सुन्दर का उन्होंने जो उच्छ्वासमय वर्णन किया, ये सभी वास्तव मे अति अपूर्व हैं। वहिर्जगत् से निस्सन्देह महान् भावो का आविर्भाव हुआ। परन्तु वाद मे मनुष्य जाति के लिए जो अन्य जगत् उन्मुक्त हुआ, वह और भी महान्, और भी सुन्दर तथा अनन्त गुना विस्तृत था। वेदो के कर्मकाड-भाग मे हम धर्म के बडे ही आश्चर्यमय तत्त्वो का वर्णन पाते हैं। हम ससार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेवाले विधाता के सम्वन्ध के वहाँ अत्यन्त अद्भुत तत्त्व-समूह देखते हैं, ये सब हमारे सामने मर्मस्पर्शी भाषा मे रखे गये हैं। तुममे से अनेक को ऋग्वेद सहिता का वह श्लोक, जो प्रलय के वर्णन मे आया है, याद होगा। भावो को उद्दीप्त करनेवाला ऐसा उदात्त वर्णन शायद कभी किसीने नही किया। इन सबके होते हुए भी हम देखते हैं कि इनमे केवल बहिर्जगत् की ही महत्ता का चित्रण किया गया है, वह वर्णन स्थूल का है, इसमे कुछ जडत्व फिर भी लगा हुआ है। तथापि हम देखते हैं, जड और ससीम भाषा मे यह असीम का ही वर्णन है। यह जड शरीर के अनन्त विस्तार का वर्णन है, किन्तु मन का नही, यह देश के अनन्तत्व का वर्णन है, किन्तु विचार का नही। इसलिए वेदो के दूसरे भाग मे, अर्थात् ज्ञानकाण्ड मे, हम देखते हैं, एक बिल्कुल ही भिन्न प्रणाली का अनुसरण किया गया है। पहली प्रणाली थी वाह्य प्रकृति मे विश्व-ब्रह्माण्ड के प्रकृत सत्य का अनुसन्धान, यह जड ससार से जीवन

की सभी गम्भीर समस्याओं की मीमांसा करने की चेष्टा की। यस्यैते हिमवन्तो महित्वा—'यह हिमालय पर्वत जिसकी महत्ता बतला रहा है।' यह बड़ा ऊँचा विचार है अवश्य, किन्तु फिर भी भारत के लिए यह पर्याप्त नहीं था। भारतीय मन को इस पथ का परित्याग करना पड़ा था। भारतीय गवेषणा पूर्णतया बहिर्जगत् को छोड़कर दूसरी ओर मुड़ी—खोज अन्तर्जगत् में शुरू हुई, क्रमशः वे जड़ से चेतन में आये। चारों ओर से यह प्रश्न उठने लगा 'मृत्यु के पश्चात् मनुष्य का क्या हाल होता है?' अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके (कठोपनिषद् १।१।२)—किसी किसी का कथन है कि मनुष्य की मृत्यु के बाद भी आत्मा का अस्तित्व रहता है और कोई कोई कहते हैं कि नहीं रहता; हे यमराज इनमें कौन सा सत्य है? यहाँ हम देखते हैं एक दूसरी ही प्रणाली का अनुसरण किया गया है। भारतीय मन को बहिर्जगत् से जो कुछ मिलना था, मिल चुका था, परन्तु उससे उसे तृप्ति नहीं हुई। अनुसंधान के लिए वह और आगे बढ़ा। समस्या के समाधान के लिए उसने अपने में ही खोजना आरम्भ किया, तब यथार्थ उत्तर मिला।

वेदों के इस भाग का नाम है उपनिषद् या वेदान्त या आरण्यक या रहस्य। यहाँ हम देखते हैं, धर्म बाहरी दिखावे से बिल्कुल अलग है, यहाँ हम देखते हैं आध्यात्मिक विषयों का वर्णन जड़ की भाषा से नहीं हुआ, आत्मा की भाषा से हुआ है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों के लिए तदनुरूप भाषा का व्यवहार किया गया है। यहाँ और कोई स्थूल भाव नहीं है, यहाँ जगत् के विषयों से कोई समझौता नहीं है। हमारी आज की धारणा के परे, उपनिषदों के वीर तथा साहसी महामना ऋषि निर्भय भाव से बिना समझौता किये ही मनुष्य जाति के लिए ऊँचे से ऊँचे तत्त्वों की घोषणा कर गये हैं, जो कभी भी प्रचारित नहीं हुए। ऐ हमारे देशवासियो, मैं उन्हींको तुम्हारे आगे रखना चाहता हूँ। वेदों का ज्ञानकाण्ड एक विशाल महासागर है, इसका थोड़ा ही अंश समझने के लिए अनेक जन्मों की आवश्यकता है। रामानुज ने उपनिषदों के सम्बन्ध में यथार्थ ही कहा है कि वेदान्त वेदों का मुकुट है और सचमुच ही यह वर्तमान भारत की बाइबिल है। वेदों के कर्मकाण्ड पर हिन्दुओं की बड़ी श्रद्धा है, परन्तु हम जानते हैं, युगों तक श्रुति के नाम से केवल उपनिषदों का ही अर्थ लिया जाता था। हम जानते हैं, हमारे बड़े बड़े सब दर्शनकारों ने—व्यास ही, चाहे पतंजलि या गौतम, यहाँ तक कि सभी दर्शनशास्त्रों के जनकस्वरूप महापुरुष कपिल ने भी—जब अपने मत के समर्थन में प्रमाणों का संग्रह करना चाहा तब उनमें से हर एक को उपनिषदों ही में प्रमाण मिले हैं और कहीं नहीं, क्योंकि शाश्वत सत्य केवल उपनिषदों ही में हैं।

कुछ सत्य ऐसे हैं जो किसी विशेष पथ से, विशेष विशेष अवस्थाओं और समयों

श्लोको का अर्थ लगाने मे हमे अपने ऐसे भाव रखने की चेष्टा नही करनी चाहिए जो उनमे अभिप्रेत न थे। जब तुम अविकार-भेद का अपूर्व रहस्य समझोगे, तब श्लोको का यथार्थ अर्थ सहज ही तुम्हारी समझ मे आ जायगा।

यह सच है कि सम्पूर्ण उपनिषदो का लक्ष्य एक है, **कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिद विज्ञातं भवति** (मुडकोपनिषद् १।३)—'वह कौन सी वस्तु है जिसे जान लेने पर सम्पूर्ण ज्ञान करतलगत हो जाता है?' आजकल की भाषा मे अगर कहा जाय तो यही कहना चाहिए कि उपनिषदो का उद्देश्य चरम एकत्व के आविष्कार की चेष्टा है, और भिन्नत्व मे एकत्व की खोज ही ज्ञान है। हर एक विज्ञान इसी नीव पर प्रतिष्ठित है। मनुष्यो का सम्पूर्ण ज्ञान भिन्नत्व मे एकत्व की खोज पर ही प्रतिष्ठित है। और, यदि दृश्य जगत् की थोडी सी घटनाओ मे ही एकत्व के अनुसन्धान की चेष्टा क्षुद्र मानवीय विज्ञान का कार्य हो तो इस अपूर्व विचित्रता-सकुल विश्व के भीतर, हम जिसके नाम और रूपो मे सहस्रधा वैभिन्न्य देख रहे हैं, जहाँ जड और चेतन मे भेद वर्तमान है, जहाँ सभी चित्तवृत्तियाँ एक दूसरी से भिन्न हैं, जहाँ कोई रूप किसी दूसरे से नही मिलता, जहाँ प्रत्येक वस्तु अपर वस्तु से पृथक् है, एकत्व का आविष्कार करने का हमारा उद्देश्य कितना कठिन है! परन्तु इन विभिन्न स्तरो और अनन्त लोको के भीतर एकत्व का आविष्कार करना ही उपनिषदो का लक्ष्य है। दूसरी ओर हमे अरुन्धती न्याय का भी सहारा लेना चाहिए। यदि किसी को अरुन्धती नक्षत्र दिखलाना है तो पहले पासवाला उससे कोई बडा और उज्ज्वलतर नक्षत्र दिखलाकर उस पर देखनेवाले की दृष्टि स्थिर करनी चाहिए, इसके बाद छोटे नक्षत्र अरुन्धती का दिखलाना आसान होगा। इसी तरह सूक्ष्मतम ब्रह्मतत्त्व समझाने के लिए, दूसरे कितने ही स्थूल भावो के उपदेश देकर ऋषियो ने उच्च तत्त्व को समझाया है। इस कथन को प्रमाणित करने के लिए मुझे ज्यादा कुछ नही करना, केवल उपनिषदो को तुम्हारे सामने रख देना है, फिर तुम स्वय समझ जाओगे। प्राय प्रत्येक अध्याय द्वैतवाद या उपासना के उपदेश से आरम्भ होता है। पहले शिक्षा दी गयी है कि ईश्वर ससार का सृष्टि-कर्ता है, सरक्षक है और अन्त मे प्रत्येक वस्तु उसीमे विलीन हो जाती है, वही हमारा उपास्य है, वही शासक है, वही बहिर्प्रकृति और अन्तर्प्रकृति का प्रेरक है, फिर भी वह मानो प्रकृति के बाहर है। एक कदम और बढकर हम देखते है, वे ही आचार्य बतलाते हैं कि ईश्वर प्रकृति के बाहर नही, बल्कि प्रकृति मे अन्तर्व्याप्त है। अन्त मे ये दोनो भाव छोड दिये गये हैं, और जो कुछ है सब वही है—कोई भेद नही। **तत्त्वमसि श्वेतकेतो**—'हे श्वेतकेतु, तुम वही (ब्रह्म) हो।' अन्त मे यही घोषणा की गयी कि जो समग्र जगत् के भीतर विद्यमान है वही मनुष्यो की

सम्प्रदाय की नींव डाली है, उसे इन तीनों प्रस्थानों को ग्रहण करना ही पड़ा और उन पर एक नये भाष्य की रचना करनी पड़ी। अतः वेदान्त को उपनिषदों के किसी एक ही भाव में द्वैतवाद विशिष्टाद्वैतवाद या अद्वैतवाद के रूप में आबद्ध कर देना ठीक नहीं। जब कि वेदान्त से ये सभी मत निकले हैं तो उसे इन मतों की समष्टि ही कहना चाहिए। एक अद्वैतवादी अपने को वेदान्ती कहकर परिचय देने का जितना अधिकारी है उतना ही रामानुज सम्प्रदाय के विशिष्टाद्वैतवादी को भी है। परन्तु मैं कुछ और बढ़कर कहना चाहता हूँ कि हिन्दू शब्द कहने से हम लोगों का वही अभिप्राय है जो वास्तव में वेदान्ती का है। मैं तुमसे कहता हूँ कि ये तीनों भारत में स्मरणातीत काल से प्रचलित हैं। तुम कदापि यह विश्वास न करो कि अद्वैतवाद के आविष्कारक शंकर थे। उनके जन्म के बहुत पहले ही से यह मत यहाँ था। वे केवल इसके अन्तिम प्रतिनिधियों में से एक थे। रामानुज के मत के लिए भी यही बात कहनी चाहिए। उनके भाष्य ही से यह सूचित हो जाता है कि उनके आविर्भाव के बहुत पहले से वह मत विद्यमान था। जो द्वैतवादी सम्प्रदाय अन्य सम्प्रदायों के साथ साथ भारत में वर्तमान हैं उन पर भी यही बात लागू होती है। और अपने थोड़े से ज्ञान के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ये सब मत एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं।

जिस तरह हमारे षड्दर्शन महान् तत्त्व के क्रमिक उद्घाटन मात्र हैं जो संगीत की तरह पिछले धीमे स्वरवाले परदों से उठते हैं और अन्त में समाप्त होते हैं अद्वैत की वज्रगम्भीर ध्वनि में उसी तरह हम देखते हैं कि पूर्वोक्त तीनों मतों में भी मनुष्य मन उच्च से उच्चतर आदर्श की ओर अग्रसर हुआ है और अन्त में सभी मत अद्वैतवाद के उच्चतम सोपान पर पहुँचकर एक अद्भुत एकत्व में परिसमाप्त हुए हैं। अतः ये तीनों परस्पर विरोधी नहीं हैं। दूसरी ओर, मुझे यह कहना पड़ता है कि बहुत लोग इस भ्रम में पड़े हैं कि ये तीनों मत परस्पर विरोधी हैं। हम देखते हैं अद्वैतवादी आचार्य जिन श्लोकों में अद्वैतवाद की ही शिक्षा दी गयी है, उन्हें तो ज्यों का त्यों रख देते हैं, परन्तु जिनमें द्वैत या विशिष्टाद्वैतवाद के उपदेश हैं उन्हें जबरदस्ती अद्वैतवाद की ओर घसीट लाते हैं, उनका भी अद्वैत अर्थ कर डालते हैं। उधर द्वैतवादी आचार्य अद्वैतात्मक श्लोकों का द्वैतवाद का अर्थ ग्रहण करने की चेष्टा करते हैं। वे हमारे पूज्य आचार्य हैं यह मैं मानता हूँ परन्तु 'गुरोरप्यवलिप्तस्य'—गुरोरपि भी एक प्रसिद्ध वाक्य है। मेरा मत है कि केवल इसी एक विषय में उन्हें भ्रम हुआ है। हमें शास्त्रों की विकृत व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। धार्मिक विषयों में हमें किसी प्रकार की बेईमानी का सहारा लेकर धर्म की व्याख्या करने की जरूरत नहीं है। व्याकरण के दाँव-पेंच दिखाने से क्या फायदा!

है—प्रक्षेपण। प्रलय होने पर जगत्-प्रपच सूक्ष्मातिसूक्ष्म होकर अपनी प्राथमिक अवस्था को प्राप्त होता है, कुछ काल उसी शान्त अवस्था मे रहकर फिर विकसित होता है। यही सृष्टि है। अच्छा, तो फिर इन प्राणरूपिणी शक्तियो का क्या होता है? वे आदि-प्राण से मिल जाती हैं। यह प्राण उस समय वहुत कुछ गतिहीन हो जाता है, परन्तु इसकी गति बिल्कुल ही बन्द नही हो जाती। वैदिक सूक्तो के **आनीदवातम**—'वह गतिहीन भाव से स्पन्दित हुआ था'—इस वाक्य से इसी तत्त्व का वर्णन किया गया है। वेदो के कितने ही पारिभाषिक शब्दो का अर्थ-निर्णय करना अत्यन्त कठिन काम है। उदाहरण के रूप मे हम यहाँ 'वात' शब्द को ही लेते हैं। कभी कभी तो इससे वायु का अर्थ निकलता है और कभी कभी गति सूचित होती है। इन दोनो अर्थों मे वहुधा लोगो को भ्रम हो जाता है। अतएव इस पर ध्यान रखना चाहिए। अच्छा, तो उस समय भूतो की क्या अवस्था होती है? शक्तियाँ सर्वभूतो मे ओतप्रोत हैं। वे उस समय आकाश मे लीन हो जाती हैं, इस आकाश मे फिर भूतसमूहो की सृष्टि होती है। यह आकाश ही आदि-भूत है। यही आकाश प्राण की शक्ति से स्पन्दित होता रहता है, और प्रत्येक नयी सृष्टि के साथ ज्यो ज्यो प्राण का स्पन्दन द्रुत होता जाता है, त्यो त्यो आकाश की तरगें क्षुब्ध होती हुई चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि के आकार धारण करती जाती हैं। हम पढते हैं, **यदिद किंच जगत् सर्वं प्राण एजति निःसृतम्।** (ऋग्वेद, १०।१२९।२)—'इस ससार मे जो कुछ है, प्राण के कम्पित होने से नि सृत होता है।' यहाँ 'एजति' शब्द पर ध्यान दो, क्योकि 'एज्' धातु का अर्थ है काँपना, 'नि सृतम्' का अर्थ है प्रक्षिप्त और 'यदिदम् किंच' का अर्थ है इस ससार मे जो भी कुछ।

जगत्-प्रपच की सृष्टि का यह थोडा सा आभास दिया गया। इसके विषय मे बहुत सी छोटी छोटी बातें कही जा सकती हैं। उदाहरणस्वरूप किस तरह सृष्टि होती है, किस तरह पहले आकाश की और आकाश से दूसरी वस्तुओं की सृष्टि होती है, आकाश मे कम्पन होने पर वायु की उत्पत्ति कैसे होती है, आदि कितनी ही बातें कहनी पडेंगी। परन्तु यहाँ एक बात पर ध्यान रखना चाहिए, वह यह कि सूक्ष्मतर तत्त्व से स्थूलतर तत्त्व की उत्पत्ति होती है, सबसे पीछे स्थूल भूत की सृष्टि होती है। यही बाह्यतम वस्तु है, और इसके पीछे सूक्ष्मतर भूत विद्यमान हैं। यहाँ तक विश्लेषण करने पर भी, हमने देखा कि सम्पूर्ण ससार केवल दो तत्त्वो मे पर्यवसित किया गया है, अभी तक चरम एकत्व पर हम नही पहुँचे। शक्ति-तत्त्व के एकत्व को प्राण, और जड-तत्त्व के एकत्व को आकाश कहा गया है। क्या इन दोनो मे भी कोई एकत्व पाया जा सकता है? ये भी क्या एक तत्त्व मे पर्यवसित किये जा सकते

आत्मा में भी विराजमान है। यहाँ किसी तरह की रियायत नहीं, यहाँ दूसरों के मतामत की परवाह नहीं की गयी। यहाँ सत्य निरावरण सत्य निर्भीक भाषा में प्रचारित किया गया है। आजकल उस महान् सत्य का उसी निर्भीक भाषा से प्रचार करने में हमें हिचकिचाना न चाहिए, और ईश्वर की कृपा से मैं स्वयं तो कम से कम उसी प्रकार का एक निर्भीक प्रचारक होने की आशा रखता हूँ।

अब मैं पूर्व प्रसंग का अनुसरण करते हुए दो बातों को समझाता हूँ। एक है मनस्तात्त्विक पक्ष जो सभी वेदान्तियों का सामान्य विषय है, और दूसरा है जगत् सृष्टि पक्ष। पहले मैं जगत्-सृष्टि पक्ष पर विचार करूँगा। हम देखते हैं आजकल आधुनिक विज्ञान के विभिन्न विचित्र आविष्कार हमें आकस्मिक रूप से चमत्कृत कर रहे हैं, और स्वप्न में भी अकल्पनीय अद्भुत चमत्कारों को हमारे सामने रखकर हमारी आँखों को चकाचौंध कर देते हैं। परन्तु वास्तव में इन आविष्कारों का अधिकांश बहुत पहले के आविष्कृत सत्यों का पुनराविष्कार मात्र है। अभी हाल की बात है, आधुनिक विज्ञान ने विभिन्न शक्तियों में एकत्व का आविष्कार किया है। उसने अभी अभी यह आविष्कृत किया कि ताप, विद्युत्, चुम्बक आदि भिन्न भिन्न नामों से परिचित जितनी शक्तियाँ हैं, वे एक ही शक्ति में परिवर्तित की जा सकती हैं, अतः दूसरे उन्हें चाहे जिन नामों से पुकारते रहें विज्ञान उनके लिए एक ही नाम व्यवहार में लाता है। यही बात संहिता में भी पायी जाती है। यद्यपि वह एक प्राचीन ग्रन्थ है, तथापि उसमें भी शक्ति विषयक ऐसा ही सिद्धान्त मिलता है जिसका मैंने उल्लेख किया है। जितनी शक्तियाँ हैं, चाहे तुम उन्हें गुरुत्वाकर्षण कहो, चाहे आकर्षण या विकर्षण कहो, अथवा ताप कहो, या विद्युत्, ये सब उसी शक्ति-तत्त्व के विभिन्न रूप हैं। चाहे मनुष्यों के बाह्य इन्द्रियों का व्यापार कहो या उनके अन्तःकरण की चिन्तन-शक्ति ही कहो, ये सब एक ही शक्ति से उद्भूत जिसे प्राण-शक्ति कहते हैं। अब यह प्रश्न उठ सकता है कि प्राण क्या है? प्राण स्पन्दन या कम्पन है। जब सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का विलय इसके चिरन्तन स्वरूप में हो जाता है, तब ये अनन्त शक्तियाँ कहाँ चली जाती हैं? क्या तुम सोचते हो कि इनका भी लोप हो जाता है? नहीं कदापि नहीं। यदि शक्तिराशि बिल्कुल नष्ट हो जाय तो फिर भविष्य में जगत रंग का उत्थान कैसे और किस आधार पर हो सकता है? क्योंकि गति तो तरंगाकार संचरण है जो उठती है गिरती है, फिर उठती है फिर गिरती है। इसी जगत्-प्रपंच के विकास को हमारे शास्त्रों में 'सृष्टि' कहा गया है। परन्तु, ध्यान रहे 'सृष्टि' अंग्रेजी का (creation) नहीं। अंग्रेजी में संस्कृत शब्दों का यथार्थ अनुवाद नहीं होता। बड़ी मुश्किल से मैं संस्कृत के भाव अंग्रेजी में व्यक्त करता हूँ। 'सृष्टि' शब्द का वास्तविक अर्थ

है—प्रक्षेपण। प्रलय होने पर जगत्-प्रपच सूक्ष्मातिसूक्ष्म होकर अपनी प्राथमिक अवस्था को प्राप्त होता है, कुछ काल उसी शान्त अवस्था मे रहकर फिर विकसित होता है। यही सृष्टि है। अच्छा, तो फिर इन प्राणरूपिणी शक्तियो का क्या होता है? वे आदि-प्राण से मिल जाती हैं। यह प्राण उस समय बहुत कुछ गतिहीन हो जाता है, परन्तु इसकी गति बिल्कुल ही बन्द नही हो जाती। वैदिक सूक्तो के **आनीदवातम**—'वह गतिहीन भाव से स्पन्दित हुआ था'—इस वाक्य से इसी तत्त्व का वर्णन किया गया है। वेदो के कितने ही पारिभाषिक शब्दो का अर्थ-निर्णय करना अत्यन्त कठिन काम है। उदाहरण के रूप मे हम यहाँ 'वात' शब्द को ही लेते हैं। कभी कभी तो इससे वायु का अर्थ निकलता है और कभी कभी गति सूचित होती है। इन दोनो अर्थों मे बहुधा लोगो को भ्रम हो जाता है। अतएव इस पर ध्यान रखना चाहिए। अच्छा, तो उस समय भूतो की क्या अवस्था होती है? शक्तियाँ सर्वभूतो मे ओतप्रोत हैं। वे उस समय आकाश मे लीन हो जाती हैं, इस आकाश से फिर भूतसमूहो की सृष्टि होती है। यह आकाश ही आदि-भूत है। यही आकाश प्राण की शक्ति से स्पन्दित होता रहता है, और प्रत्येक नयी सृष्टि के साथ ज्यो ज्यो प्राण का स्पन्दन द्रुत होता जाता है, त्यो त्यो आकाश की तरगें क्षुब्ध होती हुईं चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि के आकार धारण करती जाती हैं। हम पढते हैं, **यदिद किंच जगत् सर्वं प्राण एजति निःसृतम्।** (ऋग्वेद, १०।१२९।२)—'इस ससार मे जो कुछ है, प्राण के कम्पित होने से नि सृत होता है।' यहाँ 'एजति' शब्द पर ध्यान दो, क्योकि 'एज्' धातु का अर्थ है काँपना, 'नि सृतम्' का अर्थ है प्रक्षिप्त और 'यदिदम् किंच' का अर्थ है इस ससार मे जो भी कुछ।

जगत्-प्रपच की सृष्टि का यह थोडा सा आभास दिया गया। इसके विषय मे बहुत सी छोटी छोटी बातें कही जा सकती हैं। उदाहरणस्वरूप किस तरह सृष्टि होती है, किस तरह पहले आकाश की और आकाश से दूसरी वस्तुओ की सृष्टि होती है, आकाश मे कम्पन होने पर वायु की उत्पत्ति कैसे होती है, आदि कितनी ही बातें कहनी पडेंगी। परन्तु यहाँ एक बात पर ध्यान रखना चाहिए, वह यह कि सूक्ष्मतर तत्त्व से स्थूलतर तत्त्व की उत्पत्ति होती है, सबसे पीछे स्थूल भूत की सृष्टि होती है। यही बाह्यतम वस्तु है, और इसके पीछे सूक्ष्मतर भूत विद्यमान हैं। यहाँ तक विश्लेषण करने पर भी, हमने देखा कि सम्पूर्ण ससार केवल दो तत्त्वो मे पर्यवसित किया गया है, अभी तक चरम एकत्व पर हम नही पहुँचे। शक्ति-तत्त्व के एकत्व को प्राण, और जड-तत्त्व के एकत्व को आकाश कहा गया है। क्या इन दोनो मे भी कोई एकत्व पाया जा सकता है? ये भी क्या एक तत्त्व मे पर्यवसित किये जा सकते

है ? हमारा आधुनिक विज्ञान यहाँ मूक है, वह किसी तरह की मीमांसा नहीं कर सका। और यदि उसे इसकी मीमांसा करनी ही पड़े तो जैसे उसने प्राचीन पुरुषों की तरह आकाश और प्राणों का आविष्कार किया है, उसी तरह उनके मार्ग पर उसे आगे भी चलना होगा।

जिस एक तत्त्व से आकाश और प्राण की सृष्टि हुई है वह सर्वव्यापी निर्गुण तत्त्व है जो पुराणों में ब्रह्मा चतुरानन ब्रह्मा के नाम से परिचित है और मनस्तत्त्व के अनुसार जिसको 'महत्' भी कहा जाता है। यहीं उन दोनों तत्त्वों का मेल होता है। जिसे मन कहते हैं वह मस्तिष्क जाल में फँसा हुआ उसी महत् का एक छोटा सा अंश है और मस्तिष्क जाल में फँसे हुए संसार के सामूहिक मनों का नाम समष्टि महत् है। परन्तु विश्लेषण को आगे भी अग्रसर होना है वह अब भी पूर्ण नहीं है। हमम से हर एक मनुष्य मानो एक क्षुद्र ब्रह्माण्ड है और सम्पूर्ण जगत् विराट ब्रह्माण्ड है। जो कुछ व्यष्टि में हो रहा है वही समष्टि म भी होता है—यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे। यह बात सहज ही हमारी समझ में आ सकती है। यदि हम अपने मन का विश्लेषण कर सकते तो समष्टि मन में क्या होता है इसका भी बहुत कुछ निश्चित अनुमान कर सकते। अब प्रश्न यह है कि यह मन है क्या चीज ? इस समय पाश्चात्य देशों में भौतिक विज्ञान की जैसी द्रुत उन्नति हो रही है और शरीरविज्ञान जिस तरह धीरे धीरे प्राचीन धर्मों के एक के बाद दूसरे दुर्ग पर अपना अधिकार जमा रहा है उसे देखते हुए पाश्चात्यवासियों को कोई टिकाऊ आधार नहीं मिल रहा है क्योंकि आधुनिक शरीरविज्ञान में पग पग पर मन की मस्तिष्क के साथ अभिन्नता देखकर वे बड़ी उलझन में पड़ गये हैं परन्तु भारतवर्ष में हम लोग यह तत्त्व पहले ही से जानते हैं। हिन्दू बालक को पहले ही यह तत्त्व सीखना पड़ता है कि मन जड़ पदार्थ है परन्तु सूक्ष्मतर जड़ है। हमारा यह जो स्थूल शरीर है, इसके पश्चात् सूक्ष्म शरीर अथवा मन है। यह भी जड़ है केवल सूक्ष्मतर जड़ है परन्तु यह आत्मा नहीं।

मैं इस 'आत्मा' शब्द का अंग्रेजी मे अनुवाद नहीं कर सकता कारण यूरोप में 'आत्मा' शब्द का द्योतक कोई भाव ही नहीं अतएव इस शब्द का अनुवाद नहीं किया जा सकता। जर्मन दार्शनिक इस 'आत्मा' शब्द का सेल्फ (self) शब्द से अनुवाद करते हैं, परन्तु जब तक इस शब्द को सार्वभौम मान्यता प्राप्त न हो जाय तब तक इसे व्यवहार में लाना असम्भव है। अतएव उसे सेल्फ (self) कहो चाहे कुछ और कहो हमारी आत्मा के सिवा यह और कुछ नहीं है। यही आत्मा मनुष्य के भीतर यथार्थ मनुष्य है। यही आत्मा जड़ को अपने मन के रूप में अथवा मनोविज्ञान की भाषा में कहो तो अपने अन्तःकरण के रूप में चलाती फिरती है और मन अन्तरिन्द्रियों की सहायता से शरीर की दृश्यमान बाह्य इन्द्रियों पर काम करता

है। अस्तु, यह मन है क्या ? अभी हाल मे ही पाश्चात्य दार्शनिक यह जान सके है कि नेत्र वास्तव मे दर्शनेन्द्रिय नही है, किन्तु यथार्थ इन्द्रिय इनके पीछे वर्तमान है, और यदि यह नष्ट हो जाय तो सहस्रलोचन इन्द्र की तरह चाहे मनुष्य की हजार आँखे हो, पर वह कुछ देख नही सकता। तुम्हारा दर्शन यह स्वत सिद्ध सिद्धान्त लेकर आगे वढता है कि दृष्टि का तात्पर्य वास्तव मे वाह्य दृष्टि से नही, यथार्थ दृष्टि अन्तरिन्द्रिय की, भीतर रहनेवाले मस्तिष्क के केन्द्रसमूहो की है। तुम चाहे जिस नाम से पुकारो, परन्तु इन्द्रिय शब्द से हमारी नाक, कान आँखें नही सिद्ध होती। और इन इन्द्रियसमूहो की ही समष्टि, मन, वुद्धि, चित्त, अहकार के साथ मिलकर अग्रेजी मे माइण्ड (mind) नाम से पुकारी जाती है। और यदि आधुनिक शरीर-वैज्ञानिक तुमसे आकर कहें कि मस्तिष्क ही माइण्ड (mind) है, और वह मस्तिष्क ही विभिन्न सूक्ष्म अवयवो से गठित है तो तुम्हारे लिए डरने का कोई कारण नही। उनसे तुम तत्काल कह सकते हो कि हमारे दार्शनिक वरावर यह वात जानते हैं, यह हमारे धर्म के प्रथम मुख्य सिद्धान्तो मे से एक है।

खैर, इस समय तुम्हे समझना होगा कि मन, वुद्धि, चित्त, अहकार आदि शब्दो के क्या अर्थ हैं। सबसे पहले हम चित्त की मीमासा करें। चित्त वास्तव मे अन्त करण का मूल उपादान है, यह महत् का ही अश है। विभिन्न अवस्थाओ के साथ मन का ही एक साधारण नाम चित्त है। उदाहरणार्थ ग्रीष्मकाल की उस स्थिर और शान्त झील को लो जिस पर एक भी तरग नही है। सोचो, किसीने उस पर एक पत्थर फेंका। तो उससे क्या होगा ? पहले, पानी पर जो आघात किया गया उससे एक क्रिया हुई, इसके पश्चात् पानी उठकर पत्थर की ओर प्रतिक्रिया करने लगा और उसी प्रतिक्रिया ने तरग का आकार धारण किया। पहले पहल पानी जरा काँप उठता है, उसके वाद ही तरग के आकार मे प्रतिक्रिया होती है। इस चित्त को झील की तरह समझो, और वाहरी वस्तुएँ उस पर फेंके गये प्रस्तर खड हैं। जव कभी वह इन्द्रियो की सहायता से किसी वहिर्वस्तु के सस्पर्श मे आता है, वहिर्वस्तुओ को भीतर ले जाने के लिए इन इन्द्रियो की जरूरत होती है, तभी एक कम्पन उत्थित होता है। वह मन है—सकल्प-विकल्पात्मक। इसके वाद ही एक प्रतिक्रिया होती है, वह निश्चयात्मिका बुद्धि है, और इस बुद्धि के साथ साथ अहज्ञान और वाहरी वस्तु का वोध पैदा होता है। जैसे हमारे हाथ पर मच्छर ने बैठकर डक मारा, सवेदना हमारे चित्त तक पहुँची, चित्त जरा काँप उठा—हमारे मनोविज्ञान के मत से वही मन है। इसके वाद एक प्रतिक्रिया उठी और साथ ही साथ हमारे भीतर यह भाव पैदा हुआ कि हमारे हाथ मे मच्छर काट रहा है, इसे भगाना चाहिए। इसी प्रकार झील मे पत्थर फेंके जाते हैं। परन्तु इतना जरूर समझना होगा कि झील पर जितने

आघात होते हैं सब बाहर से आते हैं, परन्तु मन की झील में बाहर से भी आघात आ सकते हैं और भीतर से भी। चित्त और उसकी इन भिन्न भिन्न अवस्थाओं का नाम ही अन्तःकरण है।

पहले जो कुछ कहा गया उसके साथ एक और भी बात समझनी होगी। उससे अद्वैतवाद समझने में हम लोगों को विशेष सुविधा होगी। तुममें से हर एक ने मुक्ता अवश्य ही देखी होगी और तुममें से अनेक को मालूम भी होगा कि मुक्ता किस तरह बनती है। शुक्ति (सीप) के भीतर धूलि अथवा बालुका की कणिका पड़कर उसे उत्तेजित करती रहती है और शुक्ति की देह इस उत्तेजना की प्रतिक्रिया करते हुए उस छोटी सी बालू की रज को अपने शरीर से निकले हुए रस से ढकती रहती है। वही कणिका एक निर्दिष्ट आकार को प्राप्त कर मुक्ता के रूप में परिणत होती है। यह मुक्ता जिस तरह निर्मित होती है, हम सम्पूर्ण संसार को उसी तरह स्थापित करते हैं। बाहरी संसार से हम आघात मात्र पाते हैं। यहाँ तक कि उस आघात के प्रति चैतन्य होने में भी हमें अपने भीतर से ही प्रतिक्रिया करनी पड़ती है और जब हम प्रतिक्रियाशील होते हैं तब वास्तव में हम अपने मन के अंशविशेष को ही उस आघात के प्रति प्रक्षेपित करते हैं और जब हमें उसकी जानकारी होती है, तब वह और कुछ नहीं उस आघात से आकार प्राप्त हमारा अपना मन ही है। जो लोग बहिर्जगत् की यथार्थता पर विश्वास करना चाहते हैं, उन्हें यह बात माननी पड़ेगी और आजकल इस शरीरविज्ञान की उन्नति के दिनों में इस बात को बिना माने दूसरा उपाय ही नहीं है। यदि बहिर्जगत् को हम 'क' मान लें तो वास्तव में हम 'क + मन' को ही जानते हैं और इस जानकारी के भीतर मन का भाग इतना अधिक है कि उसने 'क' को सर्वांश ढक लिया है और उस 'क' का यथार्थ रूप वास्तव में सर्वदा अज्ञात और अज्ञेय है। अतएव यदि बहिर्जगत् के नाम से कोई वस्तु हो भी तो वह सर्वदा अज्ञात और अज्ञेय है। हमारे मन के द्वारा वह जिस साँचे में ढाल दी जाती है, वैसी स्थापित होती है, हम उसको उसी रूप में जानते हैं। अन्तर्जगत् के सम्बन्ध में भी यही बात है। हमारी आत्मा के सम्बन्ध में भी यह बात बिल्कुल सच उतरती है। हम आत्मा को जानना चाहें तो उसे भी अपने मन के भीतर से समझेंगे। अतः हम आत्मा के सम्बन्ध में जो कुछ जानते हैं वह 'आत्मा + मन' के सिवा और कुछ नहीं। अर्थात् मन ही के द्वारा आवृत, मन ही के द्वारा स्थापित आत्मा को हम जानते हैं। इस तत्त्व के सम्बन्ध में हम आगे चलकर कुछ और विवेचना करेंगे, यहाँ हमें इतना ही स्मरण रखना होगा।

इसके पश्चात् हमें जो विषय समझना है, वह यह है कि यह देह एक निरवच्छिन्न जड़ प्रवाह का नाम है। प्रतिक्षण हम इसमें नये नये पदार्थ जोड़ रहे हैं, फिर प्रति-

क्षण इससे कितने ही पदार्थ निकलते जा रहे हैं। जैसे एक निरन्तर बहती हुई नदी है, उसकी सलिलराशि सदा ही एक स्थान से दूसरे स्थान को जा रही है, फिर भी हम अपनी कल्पना के वल से उसके समस्त अशो को एक ही वस्तु मानकर उसे एक ही नदी कहते हैं। परन्तु वास्तव मे नदी है क्या ? प्रतिक्षण नया पानी आ रहा है, प्रतिक्षण उसकी तटभूमि परिवर्तित हो रही है, प्रतिक्षण सारा वातावरण परिवर्तित होता जा रहा है। तव नदी है क्या ? वह इसी परिवर्तन-समष्टि का नाम है। मन के सम्वन्ध मे भी यही वात है। वौद्धो ने इस सदा ही होनेवाले परिवर्तन को लक्ष्य करके महान् क्षणिक विज्ञानवाद की सृष्टि की थी। उसे ठीक ठीक समझना वडा कठिन काम है। परन्तु वौद्ध दर्शनो मे यह मत सुदृढ युक्तियो द्वारा समर्थित और प्रमाणित हुआ है। भारत मे यह वेदान्त के किसी किसी अश के विरोध मे उठ खडा हुआ था। इस मत को निरस्त करने की जरूरत आ पडी थी, और हम आगे देखेंगे, इस मत का खडन करने मे केवल अद्वैतवाद ही समर्थ हुआ था और कोई मत नही। आगे चलकर हम यह भी देखेंगे कि अद्वैतवाद के सम्वन्ध मे लोगो की अनेक विचित्र धारणाएँ होने पर भी और अद्वैतवाद से लोगो के भयभीत होने पर भी, वास्तव मे ससार का कल्याण इसीसे होता है, कारण इस अद्वैतवाद से ही सव प्रकार की समस्याओ का उत्तर मिलता है। द्वैतवाद और दूसरे जितने 'वाद' हैं उपासना आदि के लिए वहुत अच्छे हैं, उनसे मन को वडी तृप्ति होती है और हो सकता है कि उनसे मन के उच्च पथ पर वढने मे सहायता मिलती हो, परन्तु यदि कोई तर्कसगत एव धर्मपरायण होना चाहे तो उसके लिए एकमात्र गति द्वैतवाद ही है। अस्तु, मन को भी देह की तरह किसी नदी के सदृश समझना चाहिए। वह भी सदा एक ओर खाली और दूसरी ओर पूर्ण हो रहा है। परन्तु वह एकत्व कहाँ है, जिसे हम आत्मा कहते हैं ? हम देखते हैं कि हमारी देह और मन मे इस तरह सदा ही परिवर्तन होने पर भी हमारे भीतर कोई ऐसी वस्तु है, जो अपरिवर्तनीय है, जिसके कारण हमारी वस्तु विषयक धारणाएँ अपरिवर्तनीय हैं। जब विभिन्न दिशाओ से आलोक-रश्मियाँ किसी यवनिका या दीवार अथवा किसी दूसरी अचल वस्तु पर पडती हैं, केवल तभी उनके लिए एकता-स्थापन सभव होता है, केवल तभी वे एक अखड भाव की सृष्टि कर सकती हैं। मनुष्य के विभिन्न शारीरिक अवयवो मे वह एकत्व कहाँ है, जिस पर पहुँचकर विभिन्न भावराशियाँ एकत्व और पूर्ण अखडत्व को प्राप्त हो सकें ? इसमे कोई सन्देह नही कि वह वस्तु कभी मन नही हो सकती, क्योकि वह परिवर्तनशील है। इसलिए अवश्य वह ऐसी वस्तु है जो न देह है, न मन है, जिसमे कभी परिवर्तन नही होता, जिसमे आकर हमारे समस्त भाव, बाहर के समस्त विषय एक अखड भाव मे परिणत हो जाते हैं—यही वास्तव मे हमारी आत्मा है।

और जब कि हम देख रहे हैं कि सम्पूर्ण जड़ पदार्थ जिसे तुम सूक्ष्म जड़ अथवा मन चाहे जिस नाम से पुकारो परिवर्तनशील है और जब कि सम्पूर्ण स्थूल जड़ या बाह्य जगत् भी परिवर्तनशील है तो यह अपरिवर्तनीय वस्तु (आत्मा) कदापि जड़ पदार्थ नहीं हो सकती अतएव वह चेतन-स्वभाव अविनाशी और अपरिणामी है।

इसके बाद एक दूसरा प्रश्न उठता है। यह प्रश्न बहिर्जगत् सम्बन्धी पुराने सृष्टि रचनावादों (Design Theories) से भिन्न है। इस संसार को देख कर किसने इसकी सृष्टि की किसने जड़ पदार्थ बनाया आदि प्रश्नों से जिस सृष्टि-रचनावाद की उत्पत्ति होती है मैं उसकी बात नहीं कहता। मनुष्य की भीतरी प्रकृति से सत्य को जानना यही मुख्य बात है। आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में जिस तरह प्रश्न उठा था यहाँ भी ठीक उसी तरह प्रश्न उठ रहा है। यदि यह ध्रुव सत्य माना जाय कि हर एक मनुष्य में शरीर और मन से पृथक एक अपरिवर्तनीय आत्मा विद्यमान है तो यह भी मानना पड़ता है कि इन आत्माओं के भीतर धारणा भाव और सहानुभूति की एकता विद्यमान है। अन्यथा हमारी आत्मा तुम्हारी आत्मा पर कैसे प्रभाव डाल सकती है? परन्तु आत्माओं के बीच में रहनेवाली वह कौन सी वस्तु है जिसके भीतर से एक आत्मा दूसरी आत्मा पर कार्य कर सकती है? वह माध्यम कहाँ है जिसके द्वारा वह क्रियाशील होती है। मैं तुम्हारी आत्मा के बारे में किस प्रकार कुछ भी अनुभव कर सकता हूँ? वह कौन सी वस्तु है, जो हमारी और तुम्हारी आत्मा म सम्बन्ध है? अतः यहीं एक दूसरी आत्मा के मानने की दार्शनिक आवश्यकता प्रतीत होती है क्योंकि वह आत्मा सम्पूर्ण भिन्न भिन्न आत्माओं और जड़ वस्तुओं के भीतर से अपना कार्य करती है, वह संसार की असंख्य आत्माओं में ओतप्रोत भाव से विद्यमान रहती है उसीकी सहायता से दूसरी आत्माओं में जीवनी शक्ति का संचार होता है एक आत्मा दूसरी आत्मा को प्यार करती है एक दूसरे से सहानुभूति रखती है या एक दूसरे के लिए कार्य करती है। इसी सर्वव्यापी आत्मा को परमात्मा कहते हैं। वह सम्पूर्ण संसार का प्रभु है ईश्वर है। और जब कि आत्मा जड़ पदार्थ से नहीं बनी जब कि वह चेतन स्वरूप है तो वह जड़ के नियमों का अनुसरण नहीं कर सकती—उसका विचार जड़ के नियमानुसार नहीं किया जा सकता। अतएव वह अजेय अजन्मा अविनाशी तथा अपरिणामी है।

*नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।*
*न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥*
*नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥*
(गीता २।२३ २४)

—'इस आत्मा को न आग जला सकती है, न कोई शस्त्र इसे छेद सकता है, न वायु इसे सुखा सकती है, न पानी गीला कर सकता है, यह आत्मा नित्य, सर्वगत, कूटस्थ और सनातन है।' गीता और वेदान्त के अनुसार जीवात्मा विभु है, कपिल के मत मे यह सर्वव्यापी है। यह सच है कि भारत मे ऐसे अनेक सम्प्रदाय हैं जिनके मतानुसार यह जीवात्मा अणु है, किन्तु उनका यह भी मत है कि आत्मा का प्रकृत स्वरूप विभु है, केवल व्यक्त अवस्था मे ही वह अणु है।

इसके बाद एक दूसरे विषय की ओर ध्यान देना चाहिए। बहुत सम्भव है, यह तुम्हे आश्चर्यजनक प्रतीत हो, परन्तु यह तत्त्व भी विशेष रूप से भारतीय है और हमारे सभी सम्प्रदायो मे वह सामान्य रूप मे विद्यमान है। इसीलिए मैं तुमसे इस तत्त्व की ओर ध्यान देने और उसे याद रखने का अनुरोध करता हूँ, कारण, यह सभी भारतीय विषयो की बुनियाद है। पाश्चात्य देशो मे जर्मन और अंग्रेज पण्डितो द्वारा प्रचारित भौतिक विकासवाद तुम लोगो ने सुना होगा। उस मत के अनुसार वास्तव मे सभी प्राणियो के शरीर अभिन्न हैं, जो भेद हम देखते हैं वे एक ही शृंखला की भिन्न भिन्न अभिव्यक्ति मात्र है और क्षुद्रतम कीट से लेकर श्रेष्ठतम साधु तक सभी वास्तव मे एक हैं, एक ही दूसरे मे परिणत हो रहा है तथा इसी तरह चलते हुए क्रमश. उन्नत होकर जीव पूर्णत्व प्राप्त कर रहे हैं। यह सिद्धान्त परिणामवाद के नाम से हमारे शास्त्रो मे भी है। योगी पतजलि कहते हैं, **जात्यन्तरपरिणाम प्रकृत्यापूरात्।** (पातजल योगसूत्र, ४।२)—'एक जाति, एक श्रेणी दूसरी जाति, दूसरी श्रेणी मे परिणत होती है।' 'परिणाम' का अर्थ है एक वस्तु का दूसरी वस्तु मे परिवर्तित होना। परन्तु यहाँ यूरोपवालो से हमारा मतभेद कहाँ पर होता है? पतजलि कहते हैं, **प्रकृत्यापूरात्**—प्रकृति के आपूरण से। यूरोपीय कहते है कि प्रतिद्वन्द्विता, प्राकृतिक और यौन-निर्वाचन आदि ही एक प्राणी को दूसरे प्राणी का शरीर ग्रहण करने के लिए बाध्य करते हैं, परन्तु हमारे शास्त्रो मे इस **जात्यन्तर-परिणाम** का जो कारण बतलाया गया है, उसे देखते हुए यही कहना पडता है कि यहाँवालो ने यूरोपीयो से और भी अच्छा विश्लेषण किया है—इन्होंने वहाँवालो से और भी गहरे पहुँचने की कोशिश की है। ये कहते हैं, **प्रकृत्यापूरात्**—'प्रकृति के आपूरण से।' इसका क्या अर्थ है? हम यह मानते हैं कि जीवाणु क्रमश उन्नत होते हुए बुद्ध बन जाता है, किन्तु साथ ही हमारी यह भी दृढ धारणा है कि किसी यन्त्र मे यदि किसी न किसी तरह की शक्ति यथोचित मात्रा मे न भर दी जाय तो उस यन्त्र से तदनुरूप कार्य सम्भव नही हो सकता। उस शक्ति का विकास चाहे जिस किसी रूप मे हो, पर शक्तिसमष्टि की मात्रा सदा एक ही रहती है। यदि तुम्हे एक प्रान्त मे शक्ति का विकास देखना है तो दूसरे प्रान्त मे उसका प्रयोग करना होगा—वह

शक्ति किसी दूसरे आकार में प्रकाशित भले ही हो परन्तु उसका परिमाण एक होना ही चाहिए। अतएव बुद्ध यदि परिणाम का एक प्रान्त हो तो दूसरे प्रान्त का जीवाणु अवश्य ही बुद्ध के सदृश होगा। यदि बुद्ध क्रमविकसित परिणत जीवाणु हो तो वह जीवाणु भी क्रमसंकुचित (अव्यक्त) बुद्ध ही है। *यदि यह ब्रह्माण्ड अनन्त* शक्ति का व्यक्त रूप हो तो जब इस ब्रह्माण्ड में प्रलय की अवस्था होती है, तब भी दूसरे किसी आकार में उसी अनन्त शक्ति की विद्यमानता स्वीकार करनी पड़ेगी। इससे अन्यथा कुछ भी नहीं हो सकता। अतएव यह निश्चित है कि प्रत्येक आत्मा अनन्त है। हमारे पैरों तले रेंगते रहनेवाले क्षुद्र कीट से लेकर महत्तम और उच्चतम साधु तक सब में यह अनन्त शक्ति अनन्त पवित्रता और सभी गुण अनन्त परिमाण में मौजूद हैं। भेद केवल अभिव्यक्ति की न्यूनाधिक मात्रा में है। कीट में उस महाशक्ति का थोड़ा ही विकास पाया जाता है तुममें उससे भी अधिक और किसी दूसरे देवोपम पुरुष में तुमसे भी कुछ अधिक शक्ति का विकास हुआ है भेद बस इतना ही है, परन्तु है सभी में वही एक शक्ति। पतंजलि कहते हैं, ततः क्षेत्रिकवत् (पातंजल योगसूत्र ४।३)—'किसान जिस तरह अपने खेत में पानी भरता है। *किसी जलाशय से वह अपने खेत का एक कोना काटकर पानी भर रहा है,* और जल के वेग से खेत के बह जाने के भय से उसने नाली का मुँह बन्द कर रखा है। जब पानी की जरूरत पड़ती है, तब वह द्वार खोल देता है, पानी अपनी ही शक्ति से उसमें भर जाता है। पानी आने में वेग को बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि वह जलाशय के जल में पहले ही से विद्यमान है। इसी तरह हममें से हर एक के पीछे अनन्त शक्ति अनन्त पवित्रता अनन्त सत्ता अनन्त वीर्य अनन्त आनन्द का भाण्डार परिपूर्ण है, केवल यह द्वार—यही देहरूपी द्वार हमारे वास्तविक रूप के पूर्ण विकास में बाधा पहुँचाता है।

और इस देह का संगठन जितना ही उन्नत होता जाता है जितना ही तमोगुण रजोगुण में और रजोगुण सत्त्वगुण में परिणत होता है, यह शक्ति और शुद्धता उतनी ही प्रकाशित होती रहती है, और इसीलिए खान-पान के सम्बन्ध में हम इतना सावधान रहते हैं। यह सम्भव है कि हम लोग मूल तत्त्व भूल गये हों जैसे हम अपनी विवाह-प्रथा के सम्बन्ध में कह सकते हैं। यह विषय यद्यपि यहाँ अप्रासंगिक है, फिर भी हम दृष्टान्त के तौर पर यहाँ इसका जिक्र कर सकते हैं। यदि कोई दूसरा अवसर मिलेगा तो मैं इन विषयों पर विशेष रूप से कहूँगा परन्तु इस समय मैं तुमसे इतना ही कहता हूँ कि जिन मूल भावों से हमारी विवाह-प्रथा का प्रचलन हुआ है, उनके ग्रहण करने से ही यथार्थ सभ्यता का संचार हो सकता है, किसी दूसरे उपाय से कदापि नहीं। यदि हर एक स्त्री-पुरुष को जिस किसी पुरुष या स्त्री

को पति अथवा पत्नी के रूप से ग्रहण करने की स्वाधीनता दी जाय, यदि व्यक्तिगत सुख, पाशव प्रकृति की परितृप्ति, समाज मे बिना किसी बाधा के सचरित होती रहे, तो उसका फल अवश्य ही अशुभ होगा। उससे दुष्ट प्रकृति और आसुर स्वभाव की सन्तान उत्पन्न होगी। प्रत्येक देश मे एक ओर मनुष्य इस तरह की पशु प्रकृति की सन्तान उत्पन्न कर रहे हैं, दूसरी ओर इनके दमन के लिए पुलिस की सख्या बढा रहे हैं। इस तरह की सामाजिक व्याधि के प्रतिकार की चेष्टा मे कोई फल नही होता, बल्कि समाज मे इन दोषो की उत्पत्ति को कैसे रोका जाय, सन्तानो की सृष्टि किस उपाय से रोकी जाय, यह समस्या उठ खडी होती है। और जब तक तुम समाज मे हो, तब तक तुम्हारे विवाह का प्रभाव समाज के प्रत्येक मनुष्य पर अवश्य ही पडेगा, अतएव तुम्हे किस तरह विवाह करना चाहिए, किस तरह का नही, इस पर तुम्हे आदेश देने का अधिकार समाज को है। भारतीय विवाह-प्रथा के पीछे इसी तरह के ऊँचे भाव हैं। जन्मपत्रो मे वर-कन्या की जैसी जाति, गण आदि लिखे रहते हैं, अब भी उन्हीके अनुसार हिन्दू समाज मे विवाह होते हैं और प्रसग के अनुसार मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि मनु के मत से कामोद्भूत पुत्र आर्य नही है। गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त जिस सतान के सस्कार वैदिक विधि के अनुसार हो, वही वास्तव मे आर्य है। आजकल सभी देशो मे ऐसी आर्य सन्तान बहुत कम पैदा होती है, और इसीका फल है कि कलियुग नाम की दोषराशि की उत्पत्ति हो रही है। हम प्राचीन महान् आदर्शों को भूल गये हैं। यह सच है कि हम लोग इस समय इन भावो को पूर्ण रूप से कार्य मे परिणत नही कर सकते, यह भी सम्पूर्ण सत्य है कि हम लोगो ने इन सब महान् भावो मे से कुछ को हास्यास्पद बना दिया है। यह बिल्कुल सच है और शोक का विषय है कि आजकल प्राचीन काल के से पिता-माता नही हैं, समाज भी अब पहले सा शिक्षित नही है, और प्राचीन समाज मे जिस तरह समाज के सभी लोगो पर प्रीति रहती थी, अब वैसी नही रहती, किन्तु व्यावहारिक रूप मे दोषो के आ जाने पर भी वह मूल तत्त्व बडे ही महत्त्व का है, और यदि उसका कार्यान्वित होना सदोष है, यदि इसके लिए कोई खास तरीका नाकामयाब हुआ है, तो उसी मूल तत्त्व को लेकर ऐसी चेष्टा करनी चाहिए, जिससे वह अच्छी तरह काम मे आ सके। मूल तत्त्व के नष्ट करने की चेष्टा क्यो? भोजन सम्बन्धी समस्या के लिए भी यही बात है। वह तत्त्व भी जिस तरह काम मे लाया जा रहा है, वह निस्सन्देह बहुत ही खराब है, किन्तु इसमे उस तत्त्व का कोई दोष नहीं। वह सनातन है, वह सदा ही रहेगा, ऐसा पुन प्रयत्न करो जिससे वह तत्त्व ठीक ठीक भाव से काम मे लाया जा सके।

भारत मे हमारे सभी सम्प्रदायो को आत्मा सम्बन्धी इस तत्त्व पर विश्वास

करना पड़ता है। केवल द्वैतवादी कहते हैं जैसा हम आगे विचार करेंगे असत् कर्मों से वह संकुचित हो जाती है, उसकी सम्पूर्ण शक्ति और स्वभाव संकोच को प्राप्त हो जाते हैं फिर सत्कर्म करने से उस स्वभाव का विकास होता है। और अद्वैतवादी कहते हैं आत्मा का न कभी संकोच होता है, न विकास इस तरह होने की प्रतीति मात्र होती है। द्वैतवादी और अद्वैतवादियों में बस इतना ही भेद है परन्तु यह बात सभी मानते हैं कि हमारी आत्मा में पहले ही से सम्पूर्ण शक्ति विद्यमान है, ऐसा नहीं कि कुछ बाहर से आत्मा में आये या कोई चीज इसमें आसमान से टपक पड़े। ध्यान देने योग्य बात है कि तुम्हारे वेद प्रेरित (Inspired) नहीं हैं ऐसे नहीं कि वे बाहर से भीतर आ रहे हैं किन्तु अन्तःस्फुरित (expired) हैं अर्थात् भीतर से बाहर आ रहे हैं—वे सनातन नियम हैं जिनकी अवस्थिति प्रत्येक आत्मा में है। चींटी से लेकर देवता तक सबकी आत्मा में वेद अवस्थित हैं। चींटी को क्रमशः विकसित होकर ऋषि-शरीर प्राप्त करना है तभी उसके भीतर वेद अर्थात् सनातन तत्त्व प्रकाशित होगा। इस महान् भाव को समझने की आवश्यकता है कि हमारी शक्ति पहले ही से हमारे भीतर मौजूद है—मुक्ति पहले ही से हम में है। उसके लिए इतना कह सकते हो कि वह संकुचित हो गयी है, अथवा माया के आवरण से आवृत हो गयी है, परन्तु इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। पहले ही से वह वहाँ मौजूद है, यह तुम्हें समझ लेना होगा। इस पर तुम्हें विश्वास करना होगा—विश्वास करना होगा कि बुद्ध के भीतर जो शक्ति है, वह एक छोटे से छोटे मनुष्य में भी है। यही हिन्दुओं का आत्म-तत्त्व है।

परन्तु यहीं बौद्धों के साथ महा विरोध खड़ा हो जाता है। वे देह का विश्लेषण करके उसे एक जड़ स्रोत मात्र कहते हैं और उसी तरह मन का विश्लेषण करके उसे भी एक दूसरा जड़ प्रवाह बतलाते हैं। आत्मा के सम्बन्ध में वे कहते हैं, वह अनावश्यक है और उसके अस्तित्व की कल्पना करने की कोई आवश्यकता नहीं। किसी द्रव्य और उसमें संलग्न गुणराशि की कल्पना का क्या काम? हम लोग सिर्फ गुण ही मानते हैं। जहाँ सिर्फ एक कारण मान लेने पर सब विषयों की व्याख्या हो जाती है, वहाँ दो कारण मानना युक्तिसंगत नहीं है। इसी तरह बौद्धों के साथ विवाद छिड़ा और जो मत द्रव्य विशेष का अस्तित्व मानते थे उनका खंडन करके बौद्धों ने उनको धूल में मिला दिया। जो द्रव्य और गुण दोनों का अस्तित्व मानते हैं जो कहते हैं—तुममें एक अलग आत्मा है, हममें एक अलग हर एक के शरीर और मन से अलग एक एक आत्मा है, हर एक का एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व है'—उनकी तर्क-पद्धति में पहले ही से कुछ त्रुटि थी।

यहाँ तक तो विवाद का मत ठीक है, हम पहले ही देख चुके हैं कि यह शरीर

है, यह सूक्ष्म मन है, यह आत्मा है और सब आत्माओ मे है वह परमात्मा। यहाँ मुश्किल इतनी ही है कि आत्मा और परमात्मा दोनो ही द्रव्य बतलाये जा रहे हैं और देह-मन आदि तथाकथित द्रव्य उनसे गुणवत सलग्न है, ऐसा स्वीकार किया जा रहा है। अब बात यह है कि किसीने कभी जिस द्रव्य को नही देखा, उसके सम्बन्ध मे वह कभी विचार नही कर सकता। अत वे कहते हैं, ऐसी दशा मे इस तरह के द्रव्य के मानने की ज़रूरत क्या है? तो फिर क्षणिकविज्ञानवादी क्यो नही हो जाते और क्यो नही कहते कि मानसिक तरगो के सिवा और किसी भी वस्तु का अस्तित्व नही है?—उनमे से कोई एक दूसरी से मिली हुई नही, वे आपस मे मिलकर एक वस्तु नही हुईं, समुद्र की तरगो की तरह एक दूसरी के पीछे पीछे चली आ रही हैं, वे कभी भी सम्पूर्ण नही, वे कभी एक अखड इकाई नही बनाती। मनुष्य बस इसी तरह की तरग-परम्परा है—जब एक तरग चली जाती है, तब दूसरी तरग पैदा कर जाती है, ऐसा ही चलता रहता है और इन्ही तरगो की निवृत्ति को निर्वाण कहते हैं। तुम देखते हो, इसके सामने द्वैतवाद मूक है, यह असम्भव है कि वह इसके विरुद्ध कोई युक्ति दे सके, और द्वैतवाद का ईश्वर भी यहाँ नही टिक सकता। जो सर्वव्यापी है तथा व्यक्तिविशेष है, बिना हाथो के ससार की सृष्टि कर रहा है, बिना पैरो के जो चल सकता है—इसी प्रकार और भी, कुम्भकार जिस तरह घट का निर्माण करता है, उसी तरह जो विश्व की सृष्टि करता है—उसके लिए बौद्ध कहते हैं, इस तरह की कल्पना बच्चो की जैसी है और यदि ईश्वर इस तरह का है तो वे उस ईश्वर के साथ विरोध करने को तैयार हैं, उसकी उपासना करने के अभिलाषी नही। यह ससार दु ख से परिपूर्ण है, यदि यह ईश्वर का काम हो तो बौद्ध कहते हैं, हम इस तरह के ईश्वर के साथ लडने को तैयार हैं। और दूसरे, इस तरह के ईश्वर का अस्तित्व अयौक्तिक और असम्भव है। सृष्टि-रचनावाद (Design Theory) की त्रुटियो पर विचार करने की आवश्यकता नही है, क्योकि क्षणिकविज्ञानवादियो ने उनके सम्पूर्ण युक्तिजाल का खडन कर डाला है। अतएव वैयक्तिक ईश्वर नही टिक सकता।

सत्य, एकमात्र सत्य अद्वैतवादियो का लक्ष्य है। **सत्यमेव जयते नानृतम्। सत्येन पन्था विततो देवयान** —'सत्य ही की विजय होती है, मिथ्या को कभी विजय नही मिलती, सत्य से ही देवयान मार्ग की प्राप्ति होती है।' (मुण्डकोपनिषद्, ३।१।६) सत्य की पताका सभी उडाया करते हैं, किन्तु यह केवल दुर्बलो को पद-दलित करने के लिए। तुम अपने ईश्वर विषयक द्वैतवादात्मक विचार लेकर किसी बेचारे प्रतिमापूजक के साथ विवाद करने जा रहे हो, सोच रहे हो, तुम बडे युक्ति-वादी हो, उसे अनायास ही परास्त कर सकते हो, यदि वह उल्टे तुम्हारे ही वैयक्तिक

ईश्वर को पकड़ा है—उसे काल्पनिक कहें तो फिर तुम्हारी क्या दशा हो? तब तुम धर्म की दुहाई देने लगते हो, अपने प्रतिपक्षी को नास्तिक नाम से पुकार कर चिल्ल-पों मचाने लगते हो और यह तो दुर्बल मनुष्यों का सदा ही नारा रहा है—जो मुझे परास्त करेगा वह घोर नास्तिक है! यदि युक्तिवादी होना चाहते हो तो आदि से अन्त तक युक्तिवादी ही बने रहो और अगर न रह सको तो तुम अपने लिए जितनी स्वाधीनता चाहते हो, उतनी ही दूसरे को भी क्यों नहीं देते? तुम इस तरह के ईश्वर का अस्तित्व कैसे प्रमाणित करोगे? दूसरी ओर, यह प्रायः अप्रमाणित किया जा सकता है। ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में रंचमात्र प्रमाण नहीं बल्कि नास्तित्व के सम्बन्ध में कुछ अति प्रबल प्रमाण हैं भी। तुम्हारा ईश्वर, उसके गुण, द्रव्यस्वरूप असंख्य जीवात्मा, प्रत्येक जीवात्मा का एक व्यष्टि भाव, इन सबको लेकर तुम उसका अस्तित्व कैसे प्रमाणित कर सकते हो? तुम व्यक्ति हो किस विषय में? देह के सम्बन्ध में तुम व्यक्ति हो ही नहीं, क्योंकि इस समय प्राचीन बौद्धों की अपेक्षा तुम्हें और अच्छी तरह मालूम है कि जो जड़राशि कभी सूर्य में रही होगी वही तुममें आ गयी है, और वही तुम्हारे भीतर से निकलकर वनस्पतियों में चली जा सकती है। इस तरह तुम्हारा व्यक्तित्व कहाँ रह जाता है? तुम्हारे भीतर आज रात एक तरह का विचार है तो कल सुबह दूसरी तरह का। तुम उसी रीति से अब विचार नहीं करते जिस रीति से बचपन में करते थे। कोई व्यक्ति अपनी युवावस्था में जिस ढंग से विचार करता था वैसे वृद्धावस्था में नहीं करता। तो फिर तुम्हारा व्यक्तित्व कहाँ रह जाता है? यह मत कहो कि ज्ञान में ही तुम्हारा व्यक्तित्व है—ज्ञान अहंकार मात्र है और यह तुम्हारे प्रकृत अस्तित्व के एक बहुत छोटे अंश में व्याप्त है। जब मैं तुमसे बातचीत करता हूँ तब मेरी सभी इन्द्रियाँ काम करती रहती हैं, परन्तु उनके सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं जान सकता। यदि वस्तु की सत्ता का प्रमाण ज्ञान ही हो तो कहना पड़ेगा कि उनका (इन्द्रियों का) अस्तित्व नहीं है, क्योंकि मुझे उनके अस्तित्व का ज्ञान नहीं रहता। तो अब तुम अपने वैयक्तिक ईश्वर सम्बन्धी सिद्धान्तों को लेकर कहाँ रह जाते हो? इस तरह का ईश्वर तुम कैसे प्रमाणित कर सकते हो?

फिर और, बौद्ध खड़े होकर यह घोषणा करेंगे कि यह केवल अयौक्तिक ही नहीं वरन् अनैतिक भी है, क्योंकि यह मनुष्य को कापुरुष बन जाना और बाहर से सहायता लेने की प्रार्थना करना सिखलाता है— इस तरह कोई भी तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता। यह जो ब्रह्माण्ड है इसका निर्माण मनुष्य ने ही किया है। और फिर बाहर क्यों एक काल्पनिक व्यक्ति विशेष पर विश्वास करते हो जिसे न कभी देखा, न जिसका कभी अनुभव किया अथवा जिससे न कभी किसीको कोई सहायता

मिली? क्यो फिर अपने को कापुरुष वना रहे हो और अपनी सन्तानो को सिखलाते हो कि कुत्ते की तरह हो जाना मनुष्य की सर्वोच्च अवस्था है, और चूँकि हम कमज़ोर, अपवित्र और ससार मे अत्यन्त हेय और अधम हैं, इसलिए इस काल्पनिक सत्ता के सामने घुटने टेककर बैठ जाना चाहिए? दूसरी ओर, बौद्ध, तुमसे कहेगे, तुम अपने को इस तरह कहकर केवल झूठ ही नही कहते, किन्तु तुम अपनी सन्तानो के लिए घोर पाप का सचय कर रहे हो, क्योकि, स्मरण रहे, यह ससार एक प्रकार का सम्मोहन है, मनुष्य जैसा सोचते हैं, वैसे ही हो जाते हैं। अपने सम्बन्ध मे तुम जैसा कहोगे, वही बन जाओगे। भगवान् बुद्ध की पहली बात यह है —'तुमने अपने सम्बन्ध मे जो कुछ सोचा है, तुम वही हुए हो, भविष्य मे जो कुछ सोचोगे वैसे ही होगे।' यदि यह सत्य है तो कभी यह मत सोचना कि तुम कुछ नही हो, या जब तक तुम किसी दूसरे की, जो यहाँ नही रहता, स्वर्ग मे रहता है, सहायता नही पाते, तब तक कुछ नही कर सकते। इस तरह सोचने से उसका फल यह होगा कि तुम प्रतिदिन अधिकाधिक कमज़ोर होते जाओगे। 'हम महा अपवित्र हैं, हे प्रभो, हमे पवित्र करो'—इसका परिणाम होगा कि तुम अपने को हर प्रकार के पापो के लिए विवश कर दोगे। बौद्ध कहते हैं, प्रत्येक समाज मे जिन पापो को देखते हो, उसमे नब्बे फी सदी बुराइयाँ इसी वैयक्तिक ईश्वर की धारणा के कारण उत्पन्न हुई हैं, मनुष्य-जीवन का, अद्भुत मनुष्य-जीवन का, एकमात्र उद्देश्य एव लक्ष्य अपने को कुत्ते की तरह वना डालना—यह मनुष्य की एक भयानक धारणा है। वौद्ध वैष्णवो से कहते है, यदि तुम्हारा आदर्श, तुम्हारे जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य भगवान् के वैकुठ नामक स्थान मे जाकर अनन्त काल तक हाथ जोडकर उनके सामने खडा रहना ही है तो इससे आत्महत्या कर डालना अधिक अच्छा है। वौद्ध यहाँ तक कह सकते हैं, इस भाव से वचने के लिए निर्वाण या विनाश की चेष्टा वे कर रहे हैं। मैं तुम लोगो के सामने ठीक बौद्धो की ही तरह ये बातें कह रहा हूँ, क्योकि आजकल लोग कहा करते है कि अद्वैतवाद से लोगो मे अनैतिकता घुस जाती है। इसलिए दूसरे पक्ष के लोगो का जो कुछ कहना है, वही मैं तुमसे कहने की चेष्टा कर रहा हूँ। हमे दोनो पक्षो पर निर्भीक भाव से विचार करना है।

एक वैयक्तिक ईश्वर ने ससार की सृष्टि की—इसे प्रमाणित नही किया जा सकता। यह हमने सर्वप्रथम समझ लिया। क्या एक वालक भी आजकल इस वात पर विश्वास कर सकता है? चूँकि एक कुम्भकार ने घट का निर्माण किया, अतएव एक ईश्वर ने इस जगत् की सृष्टि की! यदि ऐसा ही हो तो ईश्वर भी तुम्हारा एक कुम्भकार ही हुआ! और यदि कोई तुमसे कहे कि सिर और हाथो के न रहने पर भी वह काम करता है, तो तुम उसे पागलखाने मे रखने की ठानोगे। तुम्हारे

ईश्वर न—इस संसार के सृष्टिकर्ता वैयक्तिक ईश्वर ने, जिसके पास तुम जीवन भर से चिल्ला रहे हो, क्या कभी तुम्हें कोई सहायता दी? आधुनिक विज्ञान तुम लोगों के सामने यह एक और प्रश्न पेश करके उसके उत्तर के लिए चुनौती दे रहा है। वे प्रमाणित कर देंगे कि इस तरह की जो सहायता तुम्हें मिली है, उसे तुम अपनी ही चेष्टा से प्राप्त कर सकते थे। इस तरह के रोदन से वृथा शक्तिक्षय करने की तुम्हारे लिए कोई आवश्यकता न थी, इस तरह न रोकर तुम अपना उद्देश्य अनायास ही प्राप्त कर सकते थे। और भी, हम लोग पहले देख चुके हैं कि इस तरह के वैयक्तिक ईश्वर की धारणा से ही अत्याचार और पुरोहित-प्रपंच का आविर्भाव हुआ। जहाँ यह धारणा विद्यमान थी, वहाँ अत्याचार और पुरोहित प्रपंच प्रचलित थे और बौद्धों का कथन है कि जब तक यह मिथ्या भाव जड़ समेत नष्ट नहीं होता, तब तक यह अत्याचार बन्द नहीं हो सकता। जब तक मनुष्य सोचता है कि किसी दूसरे अलौकिक पुरुष के सामने उसे विनीत भाव से रहना होगा, तब तक पुरोहित का अस्तित्व अवश्य रहेगा। वे विशेष अधिकार या दावे पेश करेंगे, ऐसी चेष्टा करेंगे जिससे मनुष्य उनके सामने सिर झुकाये और बेचारे असहाय व्यक्ति मध्यस्थता करने के लिए पुरोहितों के प्रार्थी बने रहेंगे। तुम लोग ब्राह्मणों को निर्मूल कर सकते हो, परन्तु इस बात पर ध्यान रखो कि जो लोग ऐसा करेंगे वे ही उनके स्थान पर अपना अधिकार जमायेंगे और वे फिर ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक अत्याचारी बन जायेंगे। क्योंकि ब्राह्मणों में फिर भी कुछ उदारता है, परन्तु ये स्वयंसिद्ध ब्राह्मण सदा से ही बड़े दुराचारी हुआ करते हैं। भिक्षुक को यदि कुछ धन मिल जाय तो वह सम्पूर्ण संसार को एक तिनके के बराबर समझता है। अतएव जब तक इस वैयक्तिक ईश्वर की धारणा बनी रहेगी, तब तक ये सब पुरोहित भी रहेंगे। और समाज में किसी तरह की उच्च नैतिकता की आशा भी हो नहीं सकेगी। पुरोहित-प्रपंच और अत्याचार सदा एक साथ रहेंगे। क्यों लोगों ने इस वैयक्तिक ईश्वर की कल्पना की? कारण इसका यह है कि प्राचीन समय में कुछ बलवान मनुष्यों ने साधारण मनुष्यों को अपने वश में लाकर उनसे कहा था, तुम्हें हमारा आदेश मानकर चलना होगा, नहीं तो हम तुम्हारा नाश कर डालेंगे। यही इसका मर्म और इति है। इसका कोई दूसरा कारण नहीं—महद्भयं वज्रमुद्यतम्—एक ऐसा पुरुष है, जो हाथ में सदा ही वज्र लिये रहता है, और जो उसकी आज्ञा का उल्लंघन करता है, उसका वह तत्काल विनाश कर डालता है।

इसके बाद बौद्ध कहते हैं, तुम्हारा यह कथन पूर्णतया युक्तिसम्मत है कि सब कुछ कर्मकाण्ड का फल है। तुम लोग असंख्य जीवात्माओं के अस्तित्व में विश्वास करते हो और तुम्हारे मत में इन जीवात्मा का न जन्म है, न मृत्यु। यहाँ तक तो तुम्हारी

के नाम से कुछ भी नही रह जाता, कारण व्यक्तित्व के नाम से ऐसा कुछ सूचित होता है, जो अपरिणामी है। परिवर्तनशील व्यक्तित्व हो ही नही सकता, यह स्वविरोधी वाक्य है। इसलिए हमारे इस क्षुद्र जगत् मे व्यक्तित्व के नाम से कुछ भी नही रह जाता। विचार, भाव, मन, शरीर, जीव-जन्तु और वनस्पति— इनका सदा ही परिवर्तन होता रहता है। अस्तु। अब सम्पूर्ण विश्व को एक समष्टि की इकाई के रूप मे ग्रहण करो। क्या यह परिवर्तित या गतिशील हो सकती है? कदापि नही। किसी अल्प गतिशील या सम्पूर्ण गतिहीन वस्तु से तुलना करने पर ही गति का निश्चय होता है। अत समष्टि के रूप मे विश्व गति और परिणाम से रहित है। यहाँ मालूम हो जाता है कि जब तुम अपने को सम्पूर्ण विश्व से अभिन्न समझोगे, जब 'मैं ही विश्वब्रह्माण्ड हूँ' यह अनुभव होगा, तभी—केवल तभी, तुम्हारे यथार्थ व्यक्तित्व का विकास होगा। यही कारण है कि अद्वैतवादी कहते है, जब तक द्वैत है, तब तक भय से छूटने का कोई उपाय नही है। जब कोई दूसरी वस्तु दिखलायी नही पडती, किसी भिन्न भाव का अनुभव नही होता, जब केवल एक ही सत्ता रह जाती है, तभी भय दूर होता है, तभी मनुष्य मृत्यु के पार जा सकता है। और तभी ससार-बोध लोप हो जाता है। अद्वैतवाद हमे यह शिक्षा देता है कि मनुष्य का यथार्थ व्यक्तित्व है समष्टि-ज्ञान मे, व्यष्टि-ज्ञान मे नही। जब तुम अपने को सम्पूर्ण समझोगे, तभी तुम अमर होगे। तभी तुम निर्भय और अमृतस्वरूप हो सकोगे, जब विश्व, ब्रह्माण्ड और तुम एक हो जाओगे, और तभी जिसे तुम परमात्मा कहते हो, जिसे सत्ता कहते हो और जिसे पूर्ण कहते हो, वह विश्व से एक हो जायगा। और हमारी तरह की मनोवृत्तिवाले लोग एक ही अखड सत्ता को विविधतापूर्ण विश्व के रूप मे देखते हैं। जो लोग कुछ और अच्छे कर्म करते हैं तथा उन्ही सत्कर्मों के बल से जिनकी मनोवृत्ति कुछ और उत्तम हो जाती है, वे मृत्यु के पश्चात् इसी ब्रह्माण्ड मे इन्द्रादि देवो का स्वर्गलोक देखते हैं। उनसे भी ऊँचे लोग इसमे ही ब्रह्म-लोक देखते हैं। और जो लोग पूर्ण सिद्ध हो गये है, वे पृथ्वी, स्वर्ग या कोई दूसरा लोक नही देखते, उनके लिए यह ब्रह्माण्ड अन्तर्हित हो जाता है, उसकी जगह एकमात्र ब्रह्म ही विराजमान रहता है।

क्या हम इस ब्रह्म को जान सकते हैं? मैंने तुमसे पहले ही सहिता मे अनन्त के वर्णन की कथा कही है। यहाँ हमको उसका ठीक विपरीत पक्ष मिलता है—यहाँ आन्तरिक अनन्त है। सहिता मे वहिर्जगत् के अनन्त का वर्णन है। यहाँ चिन्तन-जगत्, भाव-जगत् के अनन्त का वर्णन है। सहिता मे अस्तिभाव का वोध करानेवाली भाषा मे अनन्त के वर्णन की चेष्टा हुई थी, यहाँ उस भाषा से काम नही निकला, नास्तिभावात्मक या

दार्शनिकों के मस्तिष्क में एक दार्शनिक व्यापार मात्र है, क्योंकि द्रव्य और गुण के नामों से वास्तव में किसी पदार्थ का अस्तित्व नहीं है। यदि तुम एक साधारण मनुष्य हो तो तुम केवल गुणराशि देखोगे, और यदि तुम कोई बड़े योगी हो तो तुम द्रव्य का ही अस्तित्व देखोगे, परन्तु दोनों को एक ही समय में तुम कदापि नहीं देख सकते। अतएव हे बौद्ध, द्रव्य और गुण को लेकर तुम जो विवाद कर रहे हो, सच तो यह है कि वह बेबुनियाद है। परन्तु, यदि द्रव्य गुणरहित है तो केवल एक ही द्रव्य का अस्तित्व सिद्ध होता है। यदि तुम आत्मा से गुणराशि उठा लो और यह सिद्ध करो कि गुणराशि का अस्तित्व मन में ही है, आत्मा पर उसका आरोप मात्र किया गया है, तो दो आत्मा भी नहीं रह जातीं, क्योंकि एक आत्मा से दूसरी आत्मा की विशेषता गुणों ही की बदौलत सिद्ध होती है। तुम्हें कैसे मालूम होता है कि एक आत्मा दूसरी आत्मा से पृथक् है?—कुछ भेदात्मक चिह्नों, कुछ गुणों के कारण। और जहाँ गुणों की सत्ता नहीं है, वहाँ कैसे भेद रह सकता है? अतः आत्मा दो नहीं, आत्मा 'एक' ही है, और तुम्हारा परमात्मा अनावश्यक है, वह आत्मा ही है। इसी एक आत्मा को परमात्मा कहते हैं, इसे जीवात्मा और दूसरे नामों से भी पुकारते हैं। और हे सांख्य तथा अपर द्वैतवादियो, तुम लोग कहते रहते हो—आत्मा सर्वव्यापी विभु है, इस पर तुम लोग किस तरह अनेक आत्माओं का अस्तित्व स्वीकार करते हो? असीम क्या कभी दो हो सकते हैं? एक होना ही सम्भव है। एक ही असीम आत्मा है और सब उसी की अभिव्यक्तियाँ हैं। इसके उत्तर में बौद्ध मौन हैं, परन्तु अद्वैतवादी चुप नहीं रह जाते।

दुर्बल मतों की तरह केवल दूसरे मतों की समालोचना करके ही अद्वैत पक्ष निरस्त नहीं होता। अद्वैतवादी तभी उन सभी मतों की समालोचना करते हैं जब वे उसके बहुत निकट आ जाते हैं और उसके खंडन की चेष्टा करते हैं। वह सिर्फ इतना ही करता है कि दूसरे मतों का निराकरण कर अपने सिद्धान्त को स्थापित करता है। एकमात्र अद्वैतवादी ही ऐसा है, जो दूसरे मतों का खंडन तो करता है, परन्तु दूसरों की तरह उसके खंडन का आधार शास्त्रों की दुहाई देना नहीं है। अद्वैतवादियों की युक्ति इस प्रकार है, वे कहते हैं, तुम संसार को एक अविराम गति प्रवाह मात्र कहते हो, ठीक है, व्यष्टि में सब गतिशील है भी; तुममें भी गति है और मेज़ में भी गति है, गति सर्वत्र है। इसलिए इसका नाम 'संसार' है, इसलिए इसका नाम जगत् है—अविराम गति।[1] यदि यही है तो हमारे संसार में व्यक्तित्व

---

१ सृ धातु का अर्थ 'सरकना' या 'गति' होना है और जगत् में गम् धातु क्विप् प्रत्यय के साथ है।

यही वैराग्य का मूल मन्त्र है, यही सब तरह की नैतिकताओ और निःश्रेयस् का मूल मन्त्र है, क्योकि तुम्हे स्मरण रखना चाहिए कि त्याग-तपस्या से ही ससार की सृष्टि हुई है। और जितना ही पीछे की ओर तुम जाओगे उसी क्रम से तुम्हारे सामने भिन्न भिन्न रूप, भिन्न भिन्न देह अभिव्यक्त होते रहेगे और एक एक करके उनका त्याग होगा, अन्त मे तुम वास्तव मे जो कुछ हो, वही रह जाओगे, यही मोक्ष या मुक्ति है।

यह तत्त्व हमे समझ लेना चाहिए, **विज्ञातारमरे केन विजानीयात**— 'विज्ञाता को कैसे जानोगे?' ज्ञाता को कोई जान नही सकता, क्योकि यदि वह समझ मे आने योग्य होता, तो वह कभी ज्ञाता न रह जाता। और यदि तुम आइने मे अपनी आँखो का बिम्ब देखो, तो तुम उन्हे अपनी आँखें नही कह सकते, वे कुछ और ही हैं, वे बिम्बमात्र हैं। अब बात यह है कि यदि यह आत्मा—यह अनन्त सर्वव्यापी पुरुष साक्षी मात्र हो, तो इससे क्या हुआ? यह हमारी तरह न चल फिर सकता है, न जीता है, न ससार का सम्भोग ही कर सकता है। यह बात लोगो की समझ मे नही आती कि जो साक्षी स्वरूप है, वह किस तरह आनन्द का उपभोग कर सकता है। "हे हिन्दुओ, तुम सब साक्षी स्वरूप हो, इस मत से तुम लोग निष्क्रिय और अकर्मण्य हो गये हो"—यह बात लोग कहा करते हैं। उनकी इस बात का उत्तर यह है, 'जो साक्षीस्वरूप है, वही वास्तव मे आनन्दोपभोग कर सकता है।' अगर कही कुश्ती लडी जाती है तो अधिक आनन्द किन्हे मिलता है?—जो लोग कुश्ती लड रहे हैं उन्हे या जो दर्शक हैं उन्हे? इस जीवन मे जितना ही तुम किसी विषय मे साक्षी स्वरूप हो सकोगे उतना ही तुम्हे उससे अधिक आनन्द मिलता रहेगा। यथार्थ आनन्द यही है और इस युक्ति से तुम्हारे लिए अनन्त आनन्द की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब तुम इस विश्व ब्रह्माड के साक्षी स्वरूप हो सको। तभी मुक्त पुरुष हो सकोगे। जो साक्षी स्वरूप है, वही निष्काम भाव से स्वर्ग जाने की इच्छा न रख, निन्दा-स्तुति को समदृष्टि से देखता हुआ कार्य कर सकता है। जो साक्षी स्वरूप है, आनन्द वही पा सकता है, दूसरा नही। अद्वैतवाद के नैतिक भाग की विवेचना करते समय उसके दार्शनिक तथा नैतिक भाग के अन्तर्गत एक और विषय आ जाता है, वह मायावाद है। अद्वैतवाद के अन्तर्गत एक एक विषय के समझने मे ही वर्षो लग जाते हैं और व्याख्या करने मे महीनो लग जाते है, इसलिए इसका मैं उल्लेख मात्र ही करूँगा। इस मायावाद को समझना सभी युगो मे बडा कठिन रहा है। मैं तुमसे सक्षेप मे कहता हूँ, मायावाद वास्तव मे कोई वाद या मत विशेष नही है, वह देश, काल और निमित्त की समष्टि मात्र है—

'नेति-नेति' की भाषा में अनन्त के वर्णन का प्रयत्न किया गया। यह विश्व ब्रह्मांड है, माना कि यह ब्रह्म है। क्या हम इसे जान सकते हैं? नहीं—नहीं जान सकते। तुम्हें इस विषय को स्पष्ट रीति से फिर समझना होगा। तुम्हारे मन में बार बार इस सन्देह का आविर्भाव होगा कि यदि यह ब्रह्म है तो किस तरह हम इसे जान सकते हैं। विज्ञातारमरे केन विजानीयात्। (बृहदारण्यकोपनिषद् २।४।१४)—विज्ञाता को किस तरह जाना जाता है? विज्ञाता को कैसे जान सकते हैं? आँखें सब वस्तुओं को देखती हैं पर क्या वे अपने को भी देख सकती हैं? नहीं देख सकतीं। ज्ञान की क्रिया ही एक नीची अवस्था है। ऐ आर्य सन्तानो तुम्हें यह विषय अच्छी तरह याद रखना चाहिए, क्योंकि इस तत्त्व में महान् तथ्य निहित है। तुम्हारे निकट पश्चिम के जो सारे प्रलोभन आया करते हैं, उनकी दार्शनिक बुनियाद एक यही है कि इन्द्रिय-ज्ञान से बढ़कर दूसरा ज्ञान नहीं है पूर्व में हमारे वेदों में कहा गया है कि यह वस्तु-ज्ञान वस्तु की अपेक्षा नीचे दर्जे का है, क्योंकि ज्ञान के अर्थ से सदा ससीम भाव ही समझ में आता है। जब कभी तुम किसी वस्तु को जानना चाहते हो तभी वह तुम्हारे मन से सीमाबद्ध हो जाती है। पूर्व कथित दृष्टान्त में जिस तरह शुक्ति से मुक्ता बनती है उस पर विचार करो तभी समझोगे कि ज्ञान का अर्थ सीमाबद्ध करना कैसे हुआ। किसी वस्तु को चुनकर तुम उसे चेतना के घेरे में ले आते हो और उसको सम्पूर्ण भाव से जान नहीं पाते हो। यही बात समस्त ज्ञान के सम्बन्ध में ठीक है। यदि ज्ञान का अर्थ सीमाबद्ध करना ही हो तो क्या उस अनन्त के सम्बन्ध में भी तुम ऐसा कर सकते हो? जो सब ज्ञानों का उपादान (आधार) है जिसे छोड़कर तुम किसी तरह का ज्ञान अर्जित नहीं कर सकते जिसके कोई गुण नहीं है जो सम्पूर्ण संसार और हम लोगों की आत्मा का साक्षी स्वरूप है उसके सम्बन्ध में तुम ऐसा कैसे कर सकते हो—उसे तुम कैसे सीमा में ला सकते हो? उसे तुम कैसे जान सकते हो? किस उपाय से उसे बाँधोगे? हर एक वस्तु, यह सम्पूर्ण संसार प्रपंच उस अनन्त के जानने की वृथा चेष्टा मात्र है। मानो यह अनन्त आत्मा अपने मुखावलोकन की चेष्टा कर रही है और सर्वोच्च देवता से लेकर निम्नतम प्राणी तक सभी मानो उसके मुख का प्रतिबिम्ब ग्रहण करने के दर्पण हैं। एक एक करके एक एक दर्पण में अपने मुख का प्रतिबिम्ब देखने की चेष्टा करके उसे उपयुक्त न देख अन्त में मनुष्य देह में आत्मा समझ पाती है कि यह सब ससीम है, और अनन्त कभी सान्त के भीतर अपने को प्रकाशित नहीं कर सकता। उसी समय पीछे की ओर की यात्रा शुरू होती है और इसीको त्याग या वैराग्य कहते हैं। इन्द्रियों से पीछे हट आओ इन्द्रियों की ओर मत जाओ

गयी है। परन्तु इस पर ध्यान रहे कि यह ईश्वर केवल सम्पूर्ण कल्याणकारी गुणो का ही आधार नही है। ईश्वर और शैतान—दो देवता नही रह सकते, एक ही ईश्वर का अस्तित्व मानना पडेगा और हिम्मत बाँधकर भला और बुरा उसी ईश्वर को मानना पडेगा, और यह युक्तिसम्मत सिद्धान्त मान लेने पर जो कुछ ठहरता है, उसे भी लेना होगा। हम 'चडी' मे पढते है, 'जो देवी सभी प्राणियो मे शान्ति के रूप मे अवस्थित है, उसे हम नमस्कार करते हैं। जो देवी सभी प्राणियो मे शुद्धिरूपा होकर स्थित है, उसे हम नमस्कार करते है।"[1] उन्हे सर्वस्वरूप कहने से उसका फल चाहे जैसा हो, साथ ही उसे भी लेना होगा। हे गार्गि, सब कुछ आनन्द है, इस ससार मे जो कुछ आनन्द देख रही हो, सब उसी आध्यात्मिक तत्त्व का अश है।' इसकी सहायता से तुम हर एक काम कर सकते हो। मेरे सामने के इस प्रकाश मे चाहे तुम किसी गरीब को हजार रुपये गिन दो और चाहे कोई दूसरा इसी प्रकाश मे तुम्हारा जाली हस्ताक्षर करे, प्रकाश दोनो ही के लिए बराबर है। यह हुआ ईश्वर-ज्ञान का दूसरा सोपान। तीसरा सोपान यह है कि ईश्वर न तो प्रकृति के बाहर ही है और न भीतर ही, बल्कि ईश्वर प्रकृति, आत्मा, विश्व—ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। दो वस्तुएँ वास्तव मे हैं ही नही, कुछ दार्शनिक शब्दो ने ही तुम्हे धोखा दिया है। तुम सोच रहे हो, तुम शरीर भी हो और आत्मा भी हो, और एक साथ ही तुम शरीर और आत्मा बन गये हो। यह कैसे हो सकता है? मन ही मन इसकी जाँच करो। यदि तुम लोगो मे कोई योगी होगा तो वह अपने को चैतन्य स्वरूप जानता होगा, उसके लिए शरीर है ही नही। यदि तुम साधारण मनुष्य होगे तो तुम अपने को देह सोचोगे, उस समय चैतन्य के सम्पूर्ण ज्ञान का लोप हो जायगा। मनुष्य के देह है, आत्मा है, और भी बहुत सी चीजें हैं—इन सब दार्शनिक धाराओ के रहने के कारण तुम लोग सोचते होगे कि ये सब एक ही समय मे मौजूद हैं, परन्तु ऐसा नही है। एक समय मे एक वस्तु का अस्तित्व है। जब तुम जड वस्तु देख रहे हो, तब ईश्वर की चर्चा मत करो, क्योकि तुम केवल कार्य ही देख रहे हो, उसका कारण तुम्हे नहीं दिखायी पडता। और जिस समय तुम कारण

---

१ या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण सस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥
या देवी सर्वभूतेषु शुद्धिरूपेण सस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥
—चडी ५।४७-९, ५।७४-६॥

और इस देश काल निमित्त को मानो नाम-रूप में परिणत किया गया है। मान लो समुद्र में एक तरंग है। समुद्र से समुद्र की तरंगों का भेद सिर्फ नाम और रूप में है, और इस नाम और रूप की तरंग से पृथक कोई सत्ता भी नहीं है, नाम और रूप दोनों तरंग के साथ ही हैं, तरंगें विलीन हो जा सकती हैं और तरंग में जो नाम और रूप हैं, वे भी चाहे चिर काल के लिए विलीन हो जायँ पर पानी पहले की तरह सम मात्रा में ही बना रहेगा। इस प्रकार यह माया ही तुममें और हममें पशुओं में और मनुष्यों में देवताओं में और मनुष्यों में भेद भाव पैदा करती है। सच तो यह है कि यह माया ही है जिसने आत्मा को मानो लाखों प्राणियों में बाँध रखा है और उनकी परस्पर भिन्नता का बोध नाम और रूप से ही होता है। यदि उनका त्याग कर दिया जाय नाम और रूप दूर कर दिये जायें तो वह सदा के लिए अन्तर्हित हो जायगी तब तुम वास्तव में जो कुछ हो वही रह जाओगे। यही माया है। और फिर यह कोई सिद्धान्त भी नहीं है केवल तथ्यों का कथन मात्र है।

जब कोई यथार्थवादी कहता है कि इस मेज का अस्तित्व है तब उसके कहने का अभिप्राय रहता है कि उस मेज की अपनी एक खास निरपेक्ष सत्ता है, उसका अस्तित्व संसार की किसी भी दूसरी वस्तु पर अवलम्बित नहीं और यदि यह सम्पूर्ण विश्व नष्ट हो जाय तो भी वह ज्यों की त्यों ही बनी रहेगी। थोड़ा सा विचार करने पर ही तुम्हारी समझ में आ जायगा कि ऐसा कभी हो नहीं सकता। इस इन्द्रियग्राह्य संसार की सभी चीजें एक दूसरी पर अवलम्बित हैं वे एक दूसरी की अपेक्षा रखती हैं; वे सापेक्ष और परस्पर सम्बन्धित हैं—एक का अस्तित्व दूसरे पर निर्भर है। हमारे वस्तु-ज्ञान के तीन सोपान हैं। पहला यह है कि प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र है और एक दूसरी से अलग है दूसरा यह कि सभी वस्तुओं में पारस्परिक सम्बन्ध है और अन्तिम सोपान यह है कि वस्तु एक ही है जिसे हम लोग अनेक रूपों में देख रहे हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में अज्ञ मनुष्य की पहली धारणा यह होती है कि वह इस ब्रह्माण्ड के बाहर कहीं रहता है जिसका मतलब है कि उस समय का ईश्वर विषयक ज्ञान पूर्णतः मानवीय होता है अर्थात् जो कुछ मनुष्य करते हैं ईश्वर भी वही करता है, भेद केवल यही है कि ईश्वर के कार्य अधिक बड़े पैमाने पर तथा अधिक उच्च प्रकार के होते हैं। हम लोग पहले समझ चुके हैं कि ईश्वर सम्बन्धी ऐसी धारणा थोड़े ही शब्दों में कैसे अयौक्तिक और अपर्याप्त प्रमाणित की जा सकती है। ईश्वर के सम्बन्ध में दूसरी धारणा यह है कि वह एक शक्ति है और उसीकी सर्वत्र अभिव्यक्ति है। इसी धारणा से हम सगुण ईश्वर पर आते हैं 'चंडी' में इसी ईश्वर की बात कही

गयी है। परन्तु इस पर ध्यान रहे कि यह ईश्वर केवल सम्पूर्ण कल्याणकारी गुणो का ही आधार नही है। ईश्वर और शैतान—दो देवता नही रह सकते, एक ही ईश्वर का अस्तित्व मानना पडेगा और हिम्मत बाँधकर भला और बुरा उसी ईश्वर को मानना पडेगा, और यह युक्तिसम्मत सिद्धान्त मान लेने पर जो कुछ ठहरता है, उसे भी लेना होगा। हम 'चडी' मे पढते हैं, 'जो देवी सभी प्राणियो मे शान्ति के रूप मे अवस्थित है, उसे हम नमस्कार करते हैं। जो देवी सभी प्राणियो मे शुद्धिरूपा होकर स्थित है, उसे हम नमस्कार करते हैं।"[1] उन्हे सर्वस्वरूप कहने से उसका फल चाहे जैसा हो, साथ ही उसे भी लेना होगा। 'हे गार्गि, सब कुछ आनन्द है, इस ससार मे जो कुछ आनन्द देख रही हो, सब उसी आध्यात्मिक तत्त्व का अश है।' इसकी सहायता से तुम हर एक काम कर सकते हो। मेरे सामने के इस प्रकाश मे चाहे तुम किसी गरीब को हज़ार रुपये गिन दो और चाहे कोई दूसरा इसी प्रकाश मे तुम्हारा जाली हस्ताक्षर करे, प्रकाश दोनो ही के लिए बराबर है। यह हुआ ईश्वर-ज्ञान का दूसरा सोपान। तीसरा सोपान यह है कि ईश्वर न तो प्रकृति के बाहर ही है और न भीतर ही, बल्कि ईश्वर प्रकृति, आत्मा, विश्व—ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। दो वस्तुएँ वास्तव मे हैं ही नही, कुछ दार्शनिक शब्दो ने ही तुम्हे धोखा दिया है। तुम सोच रहे हो, तुम शरीर भी हो और आत्मा भी हो, और एक साथ ही तुम शरीर और आत्मा बन गये हो। यह कैसे हो सकता है? मन ही मन इसकी जाँच करो। यदि तुम लोगो मे कोई योगी होगा तो वह अपने को चैतन्य स्वरूप जानता होगा, उसके लिए शरीर है ही नही। यदि तुम साधारण मनुष्य होगे तो तुम अपने को देह सोचोगे, उस समय चैतन्य के सम्पूर्ण ज्ञान का लोप हो जायगा। मनुष्य के देह है, आत्मा है, और भी बहुत सी चीजें हैं—इन सब दार्शनिक धाराओ के रहने के कारण तुम लोग सोचते होगे कि ये सब एक ही समय मे मौजूद हैं, परन्तु ऐसा नही है। एक समय मे एक वस्तु का अस्तित्व है। जब तुम जड वस्तु देख रहे हो, तब ईश्वर की चर्चा मत करो, क्योकि तुम केवल कार्य ही देख रहे हो, उसका कारण तुम्हे नही दिखायी पडता। और जिस समय तुम कारण

---

१ या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण सस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥
या देवी सर्वभूतेषु शुद्धिरूपेण सस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥
—चडी ५।४७-९, ५।७४-६॥

वैसीमें उस समय कार्य का लोप हो जायगा। तब यह संसार न जाने कहाँ चला जाता है, न जाने कौन इसका ग्रास कर लेता है!

हे महात्मन्, हे तत्त्ववित्, समाधि अवस्था में ज्ञानी के हृदय में अनिर्वचनीय केवल आनन्दस्वरूप उपमारहित अपार, नित्यमुक्त निष्क्रिय असीम आकाशतुल्य अंशहीन भेदरहित पूर्णस्वरूप ऐसा ही ब्रह्म प्रकाशमान होता है।

हे महात्मन्, हे तत्त्ववित्, समाधि अवस्था में ज्ञानी के हृदय में ऐसा पूर्ण ब्रह्म प्रकाशमान होता है जो प्रकृति की विकृति से रहित है, अचिन्त्य स्वरूप है, समभाव होने पर भी जिसकी समता करनेवाला कोई नहीं है, जिसमें किसी तरह के परिमाण का सम्बन्ध नहीं है (जो अपरिमेय है) जो वेद-वाक्यों द्वारा सिद्ध है और जिसे हम अपनी सत्ता कहते हैं तथा जो उसका सार है।

हे महात्मन्, हे तत्त्ववित्, समाधि अवस्था में ज्ञानी के हृदय में ऐसा ब्रह्म प्रकाशमान होता है, जो जरा और मृत्यु से रहित है, जो पूर्ण अक्षय और अतुलनीय है और जो महाप्रलयकालीन जलप्लावन में निमग्न उस समस्त विश्व के सदृश है जिसके ऊपर, नीचे चारों तरफ जल ही जल है और जल की सतह पर तरंग की कौन कहे एक छोटी सी लहर भी नहीं है—निस्तब्धता और शान्ति है, समस्त दर्शन आदि का अन्त हो गया है, मूर्खों तथा सन्तों के सभी लड़ाई झगड़ों और युद्धों का सदा के लिए अन्त हो गया है।[1]

मनुष्य की ऐसी अवस्था भी होती है, और जब यह अवस्था आती है तब संसार विलीन हो जाता है।

अब हमने देखा कि सत्यस्वरूप ब्रह्म अज्ञात और अज्ञेय है, परन्तु अज्ञेयवादियों की दृष्टि से नहीं। हम 'उसे' जान गये यह कहना ही पापपूर्ण बात है क्योंकि पहले ही से तुम वही (ब्रह्म) हो। हमने यह भी देखा है कि एक तरीके से ब्रह्म यह मेज नहीं है, फिर दूसरे तरीके से यह मेज है भी। नाम और रूप उठा लो, फिर जो सत्य वस्तु बची रहती है वह वही है। वह हर एक वस्तु के भीतर सत्यस्वरूप है।

तुम्हीं स्त्री हो, पुरुष भी तुम्हीं हो, तुम कुमार, तुम्हीं कुमारी भी हो और तुम्हीं दण्ड का सहारा लिए हुए वृद्ध हो, विश्व में सर्वत्र तुम ही हो।[2]

---

१ द्र० विवेकचूडामणि ॥४०८–४११॥

२ त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥
—श्वेताश्वतरोपनिषद् ४।३॥

अद्वैतवाद का यही विषय है। इस सम्बन्ध मे कुछ बातें और हैं। इस अद्वैतवाद से सभी वस्तुओ के मूल तत्त्व की व्याख्या मिल जाती है। हमने देखा है, तर्कशास्त्र और विज्ञान के आक्रमणो के विरोध मे हम केवल इसी अद्वैतवाद को लेकर खडे हो सकते हैं। अन्त मे सारे तर्कों को यही ठहरने की एक दृढ भूमि मिलती है। भारतीय वेदान्ती अपने सिद्धान्त के पूर्ववर्ती सोपानो पर कभी दोषारोपण नहीं करते, बल्कि वे अपने सिद्धान्त पर ठहर कर, उन पर नज़र डालते हुए, उनका समर्थन करते हैं, वे जानते है, वे सत्य हैं, सिर्फ वे गलत ढग से उपलब्ध हुए हैं—भ्रम के आधार पर उनका वर्णन किया गया है। वे भी वही सत्य हैं, अन्तर इतना ही है कि वे माया के माध्यम से देखे गये हैं, कुछ विकृत होने पर भी वे सत्य—केवल सत्य ही है। एक ही ब्रह्म है, जिसे अज्ञ प्रकृति के बाहर किसी स्थान मे अवस्थित देखता है, जिसे अल्पज्ञ ससार का अन्तर्यामी देखता है, जिसका अनुभव ज्ञानी आत्मस्वरूप या सम्पूर्ण ससार के स्वरूप मे करता है। यह सब एक ही वस्तु है, एक ही वस्तु भिन्न भिन्न भावो से दृष्टिगोचर हो रही है, माया के विभिन्न शीशो के भीतर से दिखायी दे रही है, विभिन्न मन से दिखायी दे रही है, और पृथक् पृथक् मन से दिखायी देने के कारण ही यह सब विभिन्नता है। केवल इतना ही नही, उनमे से एक भाव दूसरे मे ले जाता है। विज्ञान और सामान्य ज्ञान मे क्या भेद है? रास्ते पर जब कभी कोई असाधारण घटना घट जाती है तो पथिको मे से किसी से उसका कारण पूछो। दस आदमियो मे से कम से कम नौ आदमी कहेगे, यह घटना भूतो की करामात है। वे बाहर सदा भूत-प्रेतो के पीछे दौडते हैं, क्योकि अज्ञान का स्वभाव ही है कार्य के बाहर कारण की खोज करना। एक पत्थर गिरने पर अज्ञ कहता है, भूत या शैतान का फेंका हुआ पत्थर है। परन्तु वैज्ञानिक कहता है वह प्रकृति का नियम या गुरुत्वाकर्षण है।

विज्ञान और धर्म मे सर्वत्र कौन सा विरोध है? प्रचलित धर्म जितने हैं, सभी बहिरागत व्याख्या द्वारा आच्छन्न हैं। सूर्य के अधिष्ठाता देवता, चन्द्र के अधिष्ठाता देवता—इस तरह के अनन्त देवता हैं, और जितनी घटनाएँ हो रही हैं, सब कोई न कोई देवता या भूत ही कर रहा है, इसका साराश यही है कि किसी विषय के कारण की खोज उसके बाहर की जाती है, और विज्ञान का अर्थ यह है कि किसी वस्तु के कारण की व्याख्या उसी प्रकृति से की जाती है। धीरे धीरे विज्ञान ज्यो ज्यो प्रगति कर रहा है, त्यो त्यो वह प्राकृतिक घटनाओ की व्याख्या भूत-प्रेतो और देवदूतो के हाथ से छीनता जा रहा है। और चूंकि आध्यात्मिक क्षेत्र मे अद्वैतवाद इसकी साधना कर चुका है, इसलिए यही सबसे अधिक विज्ञान-सम्मत धर्म है। इस जगत् को विश्व के बाहर के किसी ईश्वर ने नही बनाया,

संसार के बाहर की किसी प्रतिमा ने इसकी सृष्टि नहीं की। वह आप ही आप सृष्ट हो रहा है, आप ही आप उसकी अभिव्यक्ति हो रही है, आप ही आप उसका प्रलय हो रहा है—एक ही अनन्त सत्ता ब्रह्म है। तत्त्वमसि श्वेतकेतो 'हे श्वेतकेतो तुम वही हो।'

इस तरह तुम देख रहे हो यही एकमात्र यही वैज्ञानिक धर्म बन सकता है, कोई दूसरा नहीं। और इस अर्धशिक्षित वर्तमान भारत में आजकल प्रतिदिन विज्ञान की जो बकवास चल रही है, प्रतिदिन मैं जिस युक्तिवाद और विचारशीलता की दुहाई सुन रहा हूँ, उससे मुझे आशा है, तुम्हारे समस्त सम्प्रदाय अद्वैतवादी होंगे और बुद्ध के शब्दों में 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' संसार में इस अद्वैतवाद का प्रचार करने का साहस करोगे। यदि तुम ऐसा न कर सको, तो मैं तुम्हें डरपोक समझूँगा। यदि तुमने अपनी कायरता दूर नहीं की, यदि अपने भय को तुमने बहाना बना लिया, तो दूसरे को भी वैसी ही स्वाधीनता दो। बेचारे मूर्तिपूजक को बिल्कुल उड़ा देने की चेष्टा न करो, उसे शैतान मत कहो। जो तुम्हारे साथ पूर्णतया सहमत न हो, उसीके पास अपना मत प्रचार करने के लिए न जाओ। पहले यह समझो कि तुम स्वयं कायर हो और यदि तुम्हें समाज का भय है, यदि तुम्हें अपने ही प्राचीन कुसंस्कारों का इतना भय है, तो यह भी सोच लो कि जो लोग अज्ञ हैं, उन्हें अपने कुसंस्कारों का और कितना अधिक भय और बन्धन होगा। अद्वैतवादियों की यही बात है। दूसरों पर दया करो। परमात्मा करे कल ही सम्पूर्ण संसार केवल मत में ही नहीं, अनुभूति के सम्बन्ध में भी अद्वैतवादी हो जाय। परन्तु यदि वैसा नहीं हो सकता, तो हमको जो अच्छा करते बने, वही करना चाहिए। अज्ञ का हाथ पकड़कर उनकी शक्ति के अनुसार उन्हें धीरे धीरे आगे ले चलो, जितना वे आगे बढ़ सकते हैं। और समझो कि भारत में सभी धर्मों का विकास क्रमोन्नति के नियमानुसार धीरे धीरे हुआ है। बात ऐसी नहीं कि बुरे से भला हो रहा है, बल्कि भले से और भी भला हो रहा है।

अद्वैतवाद के नैतिक सम्बन्धों के विषय में कुछ और कहना आवश्यक है। हमारे लड़के आजकल प्रमुदित भाव से बातचीत करते हैं—किसीसे उन लोगों ने सुना होगा, परमात्मा जाने किससे सुना—कि अद्वैतवाद से लोग दुराचारी हो जाते हैं, क्योंकि अद्वैतवाद सिखलाता है कि हम सब एक हैं, सभी ईश्वर हैं, अतएव हमें अब सदाचार अपनाने की कोई आवश्यकता नहीं। इस बात के उत्तर में पहले तो यही कहना है कि यह युक्ति पशुप्रकृति मनुष्य के मुख में शोभा देती है, कशाघात के बिना जिसके दमन करने का कोई दूसरा उपाय नहीं है। यदि तुम ऐसे ही हो तो इस तरह कशाघात द्वारा शासित होने योग्य मनुष्य कहलाने की अपेक्षा आत्म

हत्या कर लेना कदाचित् तुम्हारे लिए श्रेयस्कर होगा। कशाघात वन्द होते ही तुम लोग असुर हो जाओगे! यदि ऐसा ही हो तो इसी समय तुम्हारा, अन्त कर देना उचित होगा। तुम्हारे लिए दूसरा उपाय और कोई नही। इस तरह तो सदा ही तुम्हे कोडे और डडे के भय से चलना होगा और तुम्हारे उद्धार तथा निस्तार का रास्ता अव नही रह गया।

दूसरे अद्वैतवाद, केवल अद्वैतवाद से ही नैतिकता की व्याख्या हो सकती है। हर एक धर्म यही प्रचार कर रहा है कि सव नैतिक तत्त्वो का सार दूसरो की हित-साधना ही है। क्यो हम दूसरो का हित करे? नि स्वार्थ होना चाहिए। क्यो हमे नि स्वार्थ होना चाहिए? कोई देवता ऐसा कह गये है? वे देवता मेरे लिए मान्य नही हैं। शास्त्रो ने ऐसा कहा है—शास्त्र कहते रहे, क्यो हम उसे मानें? शास्त्र यदि ऐसा कहते हैं तो मेरे लिए उनका क्या महत्त्व है? ससार के अधिकाश आदमियो की यही नीति है कि वे अपना ही भला ताकते है। हर एक व्यक्ति अपना अपना हित साधन करे, कोई न कोई सबसे पीछे रहेगा। किस कारण मैं नैतिक बनूं? जव तक गीता मे वर्णित इस सत्य को न जानोगे, तब तक तुम इसकी व्याख्या नही कर सकते। 'जो महात्मा अपनी आत्मा को सव भूतो मे स्थित देखता है और आत्मा मे सव भूतो को देखता है, वह इस तरह ईश्वर को सर्वत्र सम भाव से अवस्थित देखता हुआ आत्मा द्वारा आत्मा की हिंसा नही करता।'[1]

अद्वैतवाद की शिक्षा से तुम्हे यह ज्ञान होता है कि दूसरो की हिंसा करते हुए तुम अपनी ही हिंसा करने हो, क्योकि वे सव तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हे मालूम हो या न हो, सब हाथो से तुम्ही कार्य कर रहे हो, सव पैरो से तुम्ही चल रहे हो, राजा के रूप मे तुम्ही प्रासाद मे सुखो का भोग कर रहे हो, फिर तुम्ही रास्ते के भिखारी के रूप मे अपना दु खमय जीवन बिता रहे हो। अज्ञ मे भी तुम हो, विद्वान् मे भी तुम हो, दुर्वल मे भी तुम हो, सवल मे भी तुम हो। इस तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर तुम्हे सवके प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए। चूंकि दूसरे को कष्ट पहुँचाना अपने ही को कष्ट पहुँचाना है, इसलिए हमें कदापि दूसरो को कष्ट नही देना चाहिए। इसीलिए यदि मैं बिना भोजन के मर भी जाऊँ तो भी मुझे इसकी चिन्ता नही, क्योकि जिस समय मैं भूखा मर रहा हूँ उस समय मैं लाखो मुँह से भोजन भी कर रहा हूँ। अतएव यह 'मैं', 'मेरा' —इन सव विपयो पर

---

१. सर्वभूतस्थमात्मान सर्वभूतानि चात्मनि।।गीता ६।२९।।
सम पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मान ततो याति परा गतिम्।। गीता १३।२८।।

हमें ध्यान ही नहीं देना चाहिए, यह सम्पूर्ण संसार मेरा ही है, मैं ही एक दूसरी रीति से संसार के सम्पूर्ण आनन्द का भोग कर रहा हूँ। और, मेरा या इस संसार का विनाश भी कौन कर सकता है? इस तरह देखते हो अद्वैतवाद ही नैतिक तत्त्वों की एकमात्र व्याख्या है। अन्यान्य वाद तुम्हें नैतिकता की शिक्षा दे सकते हैं परन्तु हम क्यों नीतिपरायण हों इसका हेतुनिर्देश नहीं कर सकते। यह सब तो हुई व्याख्या की बात।

अद्वैतवाद की साधना में लाभ क्या है? उससे शक्ति प्राप्त होती है। तुमने जगत् पर सम्मोहन का जो पर्दा डाल रखा है उसे हटा दो। मनुष्य को दुर्बल न सोचो उसे दुर्बल न कहो। समझ लो कि एक दुर्बलता शब्द से ही सब पापों और सम्पूर्ण अशुभ कर्मों का निर्देश हो जाता है। सारे दोषपूर्ण कार्यों की मूल प्रेरक दुर्बलता ही है। दुर्बलता के कारण ही मनुष्य सभी स्वार्थों में प्रवृत्त होता है। दुर्बलता के कारण ही मनुष्य दूसरों को कष्ट पहुँचाता है दुर्बलता के कारण ही मनुष्य अपना सच्चा स्वरूप प्रकाशित नहीं कर सकता। सब लोग जानें कि वे क्या हैं? दिन-रात वे अपने स्वरूप—सोऽहम् का जप करें। माता के स्तन-पान के साथ 'सोऽहम्' (मैं वही हूँ)—इस ओजमयी वाणी का पान करें। श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः आदि का पहले श्रवण करें। तत्पश्चात् वे उसका चिन्तन करें, और उसी चिन्तन उसी मनन से ऐसे कार्य होंगे जिन्हें संसार ने कभी देखा ही नहीं था। किस तरह यह काम में लाया जाय? कोई कोई कहते हैं—यह अद्वैतवाद कार्य में परिणत नहीं किया जा सकता अर्थात् भौतिक धरातल पर उसकी शक्ति का प्रकाश नहीं हुआ। इस कथन में आंशिक सत्य अवश्य है। वेद की उस वाणी का स्मरण करो

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ओमित्येकाक्षरं परम्।
ओमित्येकाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥

—'ॐ' यही ब्रह्म है। ॐ यह परम सत्ता है। जो इस ओंकार का रहस्य जानते हैं, वे जो कुछ चाहते हैं वही उन्हें मिलता है।

अतएव पहले तुम इस ओंकार का रहस्य समझो। यह ओंकार तुम्हीं हो इसका ज्ञान प्राप्त करो। इस तत्त्वमसि महावाक्य का रहस्य समझो तभी केवल तभी तुम जो कुछ चाहोगे वह पाओगे। यदि भौतिक दृष्टि से बड़े होना चाहो तो विश्वास करो तुम बड़े हो। मैं एक छोटा सा बुलबुला हो सकता हूँ तुम पर्वताकार ऊँची तरंग हो सकते हो परन्तु यह समझ रखो कि हम दोनों के लिए पृष्ठभूमि अनन्त समुद्र ही है। अनन्त ब्रह्म हमारी सब शक्ति

और वीर्य का भडार है, और हम दोनो ही क्षुद्र हो या महान् उससे अपनी इच्छा भर शक्ति-सग्रह कर सकते हैं। अतएव अपने पर विश्वास करो। अद्वैतवाद का यह रहस्य है कि पहले अपने पर विश्वास करो, फिर अन्य सब पर। ससार के इतिहास मे देखोगे कि केवल वे ही राष्ट्र महान् एव प्रवल हो सके हैं, जो आत्म-विश्वास रखते हैं। हर एक राष्ट्र के इतिहास मे तुम देखोगे, जिन व्यक्तियो ने अपने पर विश्वास किया वे ही महान् तथा सवल हो सके। यहाँ, इस भारत मे एक अग्रेज आया था, वह एक साधारण क्लर्क था, रुपये-पैसे के अभाव से और दूसरे कारणो से भी उसने अपने सिर मे गोली मारकर दो वार आत्महत्या करने की चेष्टा की, और जव वह उसमे असफल हुआ तव उसे विश्वास हो गया कि वडे वडे काम करने के लिए वह पैदा हुआ है—वही लॉर्ड क्लाइव इस साम्राज्य का प्रतिष्ठाता वन गया! यदि वह पादरियो पर विश्वास करके घुटने टेककर 'हे प्रभु, मैं दुर्बल हूँ, दीन हूँ,' ऐसा किया करता तो जानते हो उसे कहाँ जगह मिलती ? निस्सन्देह उसे पागलखाने मे रहना पडता। इस प्रकार की कुशिक्षाओ ने तुम्हें पागल वना डाला है। मैंने सारे ससार मे देखा है, दीनता के उस उपदेश से, जो दौर्बल्य का पोषक है, बडे अशुभ परिणाम हुए हैं—मनुष्य जाति को उसने नष्ट कर डाला है। हमारी सन्तानो को जब ऐसी ही शिक्षा दी जाती है, तब इसमे क्या आश्चर्य यदि वे अन्त मे अर्धविक्षिप्त हो जाते हैं!

यह अद्वैतवाद के व्यावहारिक पक्ष की शिक्षा है। अतएव अपने पर विश्वास रखो, और यदि तुम्हें भौतिक ऐश्वर्य की आकाक्षा हो तो इसको कार्यान्वित करो, धन तुम्हारे पास आयेगा। यदि विद्वान् और बुद्धिमान होने की इच्छा हैं तो उसी ओर अद्वैतवाद का प्रयोग करो, तुम महामनीषी हो जाओगे। और यदि तुम मुक्ति लाभ करना चाहते हो तो तुम्हे आध्यात्मिक भूमि मे इस अद्वैतवाद का प्रयोग करना होगा, तभी तुम परमानन्द स्वरूप निर्वाण लाभ करोगे। इतनी ही भूल हुई थी कि आज तक उसका प्रयोग आध्यात्मिकता की ओर ही हुआ था—बस। अब व्यावहारिक जीवन मे उसके प्रयोग का समय आया है। अब उसे रहस्य मात्र या गोपनीय रखने से काम नही चलेगा, अब वह हिमालय की गुफाओ और जगलो मे साधु-सन्यासियो ही के पास बँधा नही रहेगा—अब लोगो के दैनिक जीवन के कार्यों मे उसका प्रयोग अवश्य होना चाहिए। राजप्रासाद मे, साधु-सन्यासियो की गुहा मे, गरीबो की कुटियो मे सर्वत्र, यहाँ तक कि रास्ते के भिखारी द्वारा भी वह कार्यान्वित होगा, कारण क्या गीता मे नही बतलाया गया ?—स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (गीता, २।४०)—'इस धर्म का अल्प मात्र उपयोग भी बडे वडे भय से हमारा उद्धार कर सकता है।'

अतएव चाहे तुम स्त्री हो चाहे शूद्र अथवा चाहे और ही कुछ हो तुम्हारे लिए भय का अल्प मात्र भी कारण नहीं कारण श्री कृष्ण कहते हैं यह धर्म इतना महान् है कि इसका अल्प मात्र अनुष्ठान करने से भी महाकल्याण की प्राप्ति होती है।

अतएव हे आर्यसन्तान आलसी होकर बैठे मत रहो—जागो उठो और जब तक इस चरम लक्ष्य तक न पहुँच जाओ तब तक मत रुको। अब अद्वैतवाद को व्यावहारिक क्षेत्र में प्रयोग करने का समय आया है। उसे अब स्वर्ग से मर्त्य में ले आना होगा। इस समय विधाता का विधान यही है। हमारे प्राचीन काल के पूर्वज की वाणी से हमें निर्देश मिल रहा है कि इस अद्वैतवाद को स्वर्ग से पृथ्वी पर ले आओ। तुम्हारे उस प्राचीन शास्त्र का उपदेश सम्पूर्ण संसार में इस प्रकार व्याप्त हो जाय कि समाज के प्रत्येक मनुष्य की वह साधारण सम्पत्ति हो जाय हमारी नस नस में रुधिर के प्रत्येक कण में उसका प्रवाह हो जाय।

तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा कि हम लोगों से कहीं बढ़कर अमेरिकनों ने वेदान्त को अपने व्यावहारिक जीवन में चरितार्थ कर लिया है। मैं न्यूयार्क के समुद्र तट पर खड़ा खड़ा देखा करता था—भिन्न भिन्न देशों से लोग बसने के लिए अमेरिका आ रहे हैं। उन्हें देखकर मुझे यह मालूम होता था मानो उनका हृदय कुचल गया है वे पैरों तले कुचले गये हैं उनकी आशा मुरझा गयी है किसीसे निगाह मिलाने की उनमें हिम्मत नहीं है कपड़ों की एक पोटली मात्र उनका सर्वस्व है और वे कपड़े भी फटे हुए हैं पुलिस का आदमी देखते ही भय से दूसरी ओर के फुटपाथ पर चलने का इरादा करते हैं। और फिर छः ही महीने में उन्हें देखो वे साफ़ कपड़े पहने हुए सिर उठाकर सीधे चल रहे हैं और डटकर लोगों की नजर से नजर मिलाते हैं। ऐसा विचित्र परिवर्तन किसने किया? सोचो वह आदमी आरमेनिया या किसी दूसरी जगह से आ रहा है, जहाँ कोई उसे कुछ समझते नहीं थे सभी पीस डालने की चेष्टा करते थे। जहाँ सभी उससे कहते थे—"तू गुलाम होकर पैदा हुआ है गुलाम ही रहेगा।" जहाँ उसके जरा भी हिलने डुलने की चेष्टा करने पर वह कुचल डाला जाता था। चारों ओर की सभी वस्तुएँ मानो उससे कहती थीं—"गुलाम तू गुलाम है—जो कुछ है तू वही बना रह निराशा के जिस अँधेरे में पैदा हुआ था उसीमें जीवन भर पड़ा रह। हवा भी मानो गूँजकर उससे कहती थी—"तेरे लिए कोई आशा नहीं—गुलाम होकर चिरकाल तू नैराश्य के अन्धकार में पड़ा रह। वहाँ बलवानों ने पीसकर उसकी जान निकाल ली थी। और ज्यों ही वह जहाज से उतरकर न्यूयार्क के रास्तों पर चलने लगा उसने देखा कि अच्छे कपड़े पहने हुए किसी भले आदमी ने उससे हाथ मिलाया। एक तो फटे कपड़े पहने हुए था और दूसरा अच्छे अच्छे

कपडो से सुसज्ज था। इससे कोई अन्तर नही पडा। और कुछ आगे वढकर भोजनालय मे जाकर उसने देखा—भद्रमडली मेज़ के चारो ओर वैठी भोजन कर रही थी, उसी मेज़ के एक ओर उससे भी वैठने के लिए कहा गया। वह चारो ओर घूमने लगा—देखा, यह एक नया जीवन है। उसने देखा, ऐसी जगह भी है, जहाँ और पाँच आदमियो मे वह भी एक आदमी गिना जा रहा है। कभी मौका मिला तो वाशिंगटन जाकर सयुक्तराज्य के राष्ट्रपति से हाथ मिला आया, वहाँ उसने देखा, दूर के गाँवो से मैले कपडे पहने हुए किसान आकर राष्ट्रपति से हाथ मिला रहे हैं। तव उससे माया का पर्दा दूर हो गया। वह ब्रह्म ही है—मायावश इस तरह दुर्वलता तथा दासता के सम्मोह मे पडा हुआ था। अव उसने फिर से जागकर देखा—मनुष्यो के ससार मे वह भी एक मनुष्य है। हमारे इस देश मे, इस वेदान्त की जन्मभूमि मे हमारा जन साधारण शत शत वर्षों से सम्मोहित वना कर इस तरह की हीन अवस्था मे डाल दिया गया है। उनके स्पर्श मे अपवित्रता समायी है, उनके साथ वैठने से छूत समा जाती है। उनसे कहा जा रहा है, निराशा के अन्धकार मे तुम्हारा जन्म हुआ है, सदा तुम इसी अँधेरे मे पडे रहो। और उसका परिणाम यह हुआ कि वे लगातार डूबते चले जा रहे हैं, गहरे अँधेरे से और गहरे अँधेरे मे डूबते चले जा रहे हैं। अन्त मे मनुष्य जितनी निकृष्ट अवस्था तक पहुँच सकता है, वहाँ तक वे पहुँच चुके हैं। क्योकि, ऐसा देश कहाँ है जहाँ मनुष्य को जानवरो के साथ एक ही जगह पर सोना पडता हो ? इसके लिए किसी दूसरे पर दोषारोपण न करो—अज्ञ मनुष्य जो भूल किया करते हैं, वही भूल तुम मत करो। कार्य-कारण दोनो यही विद्यमान है। दोष वास्तव मे हमारा ही है। हिम्मत बाँधकर खडे हो जाओ—अपने ही सिर सब दोष ले लो। दूसरे पर दोष न मढो। तुम जो कष्ट भोग रहे हो उसके एकमात्र कारण तुम्ही हो।

अत लाहौर के युवको, निश्चयपूर्वक समझो इस आनुवशिक तथा राष्ट्रीय महापाप के लिए हमी लोग उत्तरदायी हैं। बिना इसे दूर किये हमारे लिए कोई दूसरा उपाय नही है। तुम चाहे हज़ारो समितियाँ गढ लो, चाहे वीस हज़ार राजनीतिक सम्मेलन करो, चाहे पचास हजार सस्थाएँ स्थापित करो, इसका कोई फल न होगा, जब तक तुम्हारे भीतर वह सहानुभूति, वह प्रेम न आयेगा, जव तक तुम्हारे भीतर वह हृदय न आयेगा, जो सबके लिए सोचता है। जब तक फिर से भारत को बुद्ध का हृदय प्राप्त नही होता और भगवान् कृष्ण की वाणी व्यावहारिक जीवन मे परिणत नही की जाती, तब तक हमारे लिए कोई आशा नही। तुम लोग यूरोपियनो और उनकी सभा-समितियो का अनुकरण कर रहे हो, परन्तु उनके हृदय के भावो का तुमने क्या अनुकरण किया है?

मैं तुमसे एक आँखों देखा क़िस्सा कहूँगा। यहाँ के यूरोपियनों का एक दल कुछ बर्मी लोगों को लेकर लन्दन गया बाद में पता चला कि वे यूरेशियन थे। वहाँ उन्होंने उन लोगों की एक प्रदर्शनी खोलकर खूब धनोपार्जन किया। अन्त में सब धन आपस में बाँटकर उन्होंने उन लोगों को यूरोप के किसी दूसरे देश में ले जाकर छोड़ दिया। ये गरीब बेचारे यूरोप की किसी भाषा का एक शब्द भी नहीं जानते थे। लेकिन आस्ट्रिया के अंग्रेज़ वैदेशिक प्रतिनिधि ने इन्हें लन्दन भेज दिया। ये लोग लन्दन में भी किसीको नहीं जानते थे अतएव वहाँ आकर भी निरुपाय अवस्था में पड़ गये। परन्तु एक अंग्रेज़ महिला को इनकी सूचना मिली। वे इन बर्मी विदेशियों को अपने घर ले गयीं और अपने कपड़े अपने बिछौने तथा जो कुछ आवश्यक हुआ सब देकर उनकी सेवा करने लगीं और समाचार पत्रों में उन्होंने इनका हाल प्रकाशित कर दिया। देखो उसका फल कैसा हुआ! उसके दूसरे ही दिन मानो सारा राष्ट्र सचेत हो गया। चारों ओर से उनकी सहायता के लिए रुपये आने लगे। अन्त में वे बर्मी वापस भेज दिये गये। उनकी राजनीतिक और दूसरी जितनी सभा-समितियाँ हैं वे ऐसी ही सहानुभूति पर प्रतिष्ठित हैं, कम से कम अपने लिए उनकी दृढ़ नींव प्रेम पर आधारित है। वे सम्पूर्ण संसार को चाहे प्यार न कर सकें बर्मी चाहे उनके शत्रु भले ही हों परन्तु इतना तो निश्चय ही है कि अपनी जाति के लिए उनका प्रेम अगाध है और अपने द्वार पर आये हुए विदेशियों के साथ भी वे सत्य न्याय और दया का व्यवहार करते हैं। पश्चिमी देशों के सभी स्थानों में उन्होंने किस तरह मेरा आतिथ्य-सत्कार और खातिरदारी की थी इसका यदि मैं तुमसे उल्लेख न करूँ तो यह मेरी अकृतज्ञता होगी। यहाँ वह हृदय कहाँ है जिसकी बुनियाद पर इस जाति की दीवार उठायी जायगी? हम पाँच आदमी मिलकर एक छोटी सी सम्मिलित पूँजी की कम्पनी खोलते हैं। कुछ दिनों के अन्दर ही हम लोग आपस में एक दूसरे को पट्टी पढ़ाना शुरू कर देते हैं अन्त में सब कारोबार नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। तुम लोग अंग्रेज़ों के अनुकरण की बात कहते हो और उनकी तरह विशाल राष्ट्र का संगठन करना चाहते हो परन्तु तुम्हारी वह नींव कहाँ है? हमारी नींव बालू की है, इसीलिए उस पर जो घर उठाया जाता है वह थोड़े ही दिनों में टूटकर ध्वस्त हो जाता है।

अतः हे लाहौर के युवको फिर अद्वैत की वही प्रबल पताका फहराओ क्योंकि और किसी आधार पर तुम्हारे भीतर वैसा अपूर्व प्रेम नहीं पैदा हो सकता। जब तक तुम लोग उसी एक भगवान् को सर्वत्र एक ही भाव से अवस्थित नहीं देखते तब तक तुम्हारे भीतर वह प्रेम पैदा नहीं हो सकता—उसी प्रेम की पताका फहराओ।

उठो, जागो, जब तक लक्ष्य पर नहीं पहुँचते तब तक मत रुको। उठो, एक बार और उठो, क्योंकि त्याग के बिना कुछ हो नही सकता। दूसरे की यदि सहायता करना चाहते हो, तो तुम्हे अपने अहभाव को छोडना होगा। ईसाइयो की भाषा मे कहता हूँ—तुम ईश्वर और शैतान की सेवा एक साथ ही नहीं कर सकते। चाहिए वैराग्य। तुम्हारे पूर्व पुरुषो ने बडे बडे कार्य करने के लिए ससार का त्याग किया था। वर्तमान समय मे ऐसे अनेक मनुष्य हैं, जिन्होंने अपनी ही मुक्ति के लिए ससार का त्याग किया है। तुम सब कुछ दूर फेंको—यहाँ तक कि अपनी मुक्ति का विचार भी दूर रखो—जाओ, दूसरो की सहायता करो। तुम सदा बडी बडी साहसिक बातें करते हो, परन्तु अब तुम्हारे सामने यह व्यावहारिक वेदान्त रखा गया है। तुम अपने इस तुच्छ जीवन की बलि देने के लिए तैयार हो जाओ। यदि यह जाति बची रहे तो तुम्हारे और हमारे जैसे हज़ारो आदमियो के भूखो मरने से भी क्या हानि होगी? यह जाति डूब रही है। लाखो प्राणियो का शाप हमारे सिर पर है, सदा ही अजस्र जलधारवाली नदी के समीप रहने पर भी तृष्णा के समय पीने के लिए हमने जिन्हे नाबदान का पानी दिया, उन अगणित लाखो मनुष्यो का, जिनके सामने भोजन के भाण्डार रहते हुए भी जिन्हे हमने भूखो मार डाला, जिन्हे हमने अद्वैतवाद का तत्त्व सुनाया और जिनसे हमने तीव्र घृणा की, जिनके विरोध मे हमने लोकाचार का आविष्कार किया, जिनसे ज़बानी तो यह कहा कि सब बराबर है, सब वही एक ब्रह्म हैं, परन्तु इस उक्ति को काम मे लाने का तिल मात्र भी प्रयत्न नही किया। 'मन मे रखने ही से काम हो जायगा, परन्तु व्यावहारिक ससार मे अद्वैतवाद को घसीटना?—हरे! हरे!!' अपने चरित्र का यह दाग़ मिटा दो। उठो, जागो। यदि यह क्षुद्र जीवन चला भी जाय तो क्या हानि है? सभी मरेंगे—साधु या असाधु, धनी या दरिद्र—सभी मरेंगे। चिर काल तक किसी का शरीर नही रहेगा। अतएव उठो, जागो और सम्पूर्ण रूप से निष्कपट हो जाओ। भारत मे घोर कपट समा गया है। चाहिए चरित्र, चाहिए इस तरह की दृढता और चरित्र का बल जिससे मनुष्य आजीवन दृढव्रत बन सके। 'नीतिनिपुण मनुष्य चाहे निन्दा करे चाहे स्तुति, लक्ष्मी आये या चली जाय, मृत्यु आज ही हो चाहे शताब्दी के पश्चात्, जो धीर हैं वे न्यायमार्ग से एक पग भी नही हिलते।"[1] उठो, जागो, समय बीता जा रहा है और व्यर्थ के वितण्डावाद मे हमारी सम्पूर्ण शक्ति का क्षय होता जा रहा है। उठो, जागो, छोटे छोटे विषयो

---

१ निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात्पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा ॥

और मतमतान्तरों को लेकर व्यर्थ का विवाद मत करो। तुम्हारे सामने सबसे महान् कार्य पड़ा हुआ है—लाखों आदमी डूब रहे हैं उनका उद्धार करो। इस बात पर अच्छी तरह ध्यान दो कि मुसलमान जब भारत में पहले पहल आये थे तब भारत में कितने अधिक हिन्दू रहते थे। आज उनकी संख्या कितनी घट गयी है। इसका कोई प्रतिकार हुए बिना यह दिन दिन और घटती ही जायगी अन्ततः वे पूर्णतः विलुप्त हो जायँगे। हिन्दू जाति लुप्त हो जाय तो होने दो लेकिन साथ ही—उनके सैकड़ों दोष रहने पर भी संसार के सम्मुख उनके सैकड़ों विकृत चित्र उपस्थित करने पर भी—अब तक वे जिन जिन महान् भावों के प्रतिनिधि स्वरूप हैं, वे भी लुप्त हो जायँगे। और उनके लोप के साथ साथ सारे अध्यात्म ज्ञान का शिरोभूषण अपूर्व अद्वैत तत्त्व भी लुप्त हो जायगा। अतएव उठो जागो संसार की आध्यात्मिकता की रक्षा के लिए हाथ बढ़ाओ। और पहले अपने देश के कल्याण के लिए इस तत्त्व को काम में लाओ। हमें आध्यात्मिकता की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी इस भौतिक संसार में अद्वैतवाद को थोड़ा कार्य में परिणत करने की। पहले रोटी और तब धर्म चाहिए। गरीब बेचारे भूखों मर रहे हैं और हम उन्हें आवश्यकता से अधिक धर्मोपदेश दे रहे हैं। मतमतान्तरों से पेट नहीं भरता। हमारे दो दोष बड़े ही प्रबल हैं पहला दोष हमारी दुर्बलता है दूसरा है घृणा करना हृदयहीनता। लाखों मत-मतान्तरों की बात कह सकते हो करोड़ों सम्प्रदाय संगठित कर सकते हो परन्तु जब तक उनके दुःख का अपने हृदय में अनुभव नहीं करते वैदिक उपदेशों के अनुसार जब तक स्वयं नहीं समझते कि वे तुम्हारे ही शरीर के अंश हैं जब तक तुम और वे—धनी और दरिद्र साधु और असाधु सभी उसी एक अनन्त पूर्ण के जिसे तुम ब्रह्म कहते हो अंश नहीं हो जाते तब तक कुछ न होगा।

सज्जनो मैंने तुम्हारे सामने अद्वैतवाद के कुछ प्रधान भावों को प्रकाशित करने की चेष्टा की और अब इसे काम में लाने का समय आ गया है। केवल इसी देश में नहीं सब जगह। आधुनिक विज्ञान के लोहे के मुद्गरों की चोट खाकर द्वैतवादात्मक धर्मों की मजबूत दीवार चूर चूर हो रही है। ऐसा नहीं कि द्वैतवादी सम्प्रदाय केवल यहीं शास्त्रों का अर्थ खींच-खींच कर कुछ का कुछ कर रहे हैं। खींचातानी की हद हो गयी है—यहाँ तक खींचातानी हो—श्लोक रबर नहीं है। ऐसा नहीं कि केवल यहीं ये द्वैतवादी आत्मरक्षा के लिए अँधेरे के किसी कोने में छिपने की चेष्टा कर रहे हैं नहीं यूरोप और अमेरिका में तो यह प्रयत्न और भी ज्यादा है। और वहाँ भी भारत के इस अद्वैतवाद का कुछ अंश जाना चाहिए। यह वहाँ पहुँच भी गया है। वहाँ दिन दिन उसका प्रचार बढ़ाना चाहिए। पश्चिमी

सभ्यता की भी इससे रक्षा होगी। कारण, पश्चिमी देशो मे पहले का भाव उठ गया है और एक नया ढग—काचन की पूजा के रूप मे शैतान की पूजा प्रवर्तित हुई है। इस आधुनिक धर्म अर्थात् पारस्परिक प्रतियोगिता और काचन की पूजा की अपेक्षा तो पहले के अपरिमार्जित धर्म की राह अच्छी थी। कोई भी राष्ट्र हो, चाहे वह कितना ही प्रबल क्यो न हो, ऐसी बुनियाद पर कभी नही टिक सकता। और ससार का इतिहास हमसे कह रहा है, जिन किन्ही लोगो ने ऐसी बुनियाद पर अपने समाज की प्रतिष्ठा की, वे विनष्ट हो गये। भारत मे काचन-पूजा की यह तरग न आ सके, उसकी ओर पहले ही से नजर रखनी होगी। अतएव सबमे यह अद्वैतवाद प्रचारित करो, जिससे धर्म आधुनिक विज्ञान के प्रबल आघातो से भी अक्षत बना रहे। केवल इतना ही नही, तुम्हे दूसरो की भी सहायता करनी होगी—तुम्हारे विचार यूरोप और अमेरिका के सहायक होगे, परन्तु सबसे पहले तुम्हे याद दिलाता हूँ कि व्यावहारिक कार्य की आवश्यकता है, और उसका प्रथमाश यह है कि घोर से घोरतम दारिद्रय और अज्ञान-तिमिर मे डूबे हुए साधारण लाखो भारतीयो की उन्नति-साधना के लिए उनके समीप जाओ। और उनको अपने हाथ का सहारा दो और भगवान् कृष्ण की यह वाणी याद रखो

इहैव तैर्जित सर्गो येषा साम्ये स्थित मन ।
निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिता ॥
(गीता ५।१९)

—'जिनका मन इस साम्य भाव मे अवस्थित है, उन्होने इस जीवन मे ही ससार पर विजय प्राप्त कर ली है। चूंकि ब्रह्म निर्दोष और सबके लिए सम है, इसलिए वे ब्रह्म मे अवस्थित है।'

और मतमतान्तरों को लेकर व्यर्थ का विवाद मत करो। तुम्हारे सामने सबसे महान् कार्य पड़ा हुआ है—लाखों आदमी डूब रहे हैं, उनका उद्धार करो। इस बात पर अच्छी तरह ध्यान दो कि मुसलमान जब भारत में पहले पहल आये थे तब भारत में कितने अधिक हिन्दू रहते थे। आज उनकी संख्या कितनी घट गयी है। इसका कोई प्रतिकार हुए बिना यह दिन दिन और घटती ही जायगी, अन्ततः वे पूर्णतः विलुप्त हो जायेंगे। हिन्दू जाति लुप्त हो जाय तो होने दो, लेकिन साथ ही—उनके सैकड़ों दोष रहने पर भी, संसार के सम्मुख उनके सैकड़ों विकृत चित्र उपस्थित करने पर भी—अब तक वे जिन जिन महान् भावों के प्रतिनिधि स्वरूप हैं, वे भी लुप्त हो जायेंगे। और उनके लोप के साथ साथ सारे अध्यात्म ज्ञान का शिरोभूषण अपूर्व अद्वैत तत्त्व भी लुप्त हो जायगा। अतएव उठो, जागो, संसार की आध्यात्मिकता की रक्षा के लिए हाथ बढ़ाओ। और पहले अपने देश के कल्याण के लिए इस तत्त्व को काम में लाओ। हमें आध्यात्मिकता की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी इस भौतिक संसार में अद्वैतवाद को थोड़ा कार्य में परिणत करने की। पहले रोटी और तब धर्म चाहिए। गरीब बेचारे भूखों मर रहे हैं, और हम उन्हें आवश्यकता से अधिक धर्मोपदेश दे रहे हैं। मतमतान्तरों से पेट नहीं भरता। हमारे दो दोष बड़े ही प्रबल हैं, पहला दोष हमारी दुर्बलता है, दूसरा है घृणा करना, हृदयहीनता। लाखों मत-मतान्तरों की बात कह सकते हो, करोड़ों सम्प्रदाय संगठित कर सकते हो, परन्तु जब तक उनके दुःख का अपने हृदय में अनुभव नहीं करते, वैदिक उपदेशों के अनुसार जब तक स्वयं नहीं समझते कि वे तुम्हारे ही शरीर के अंश हैं, जब तक तुम और वे—धनी और दरिद्र, साधु और असाधु सभी उसी एक अनन्त पूर्ण के, जिसे तुम ब्रह्म कहते हो, अंश नहीं हो जाते, तब तक कुछ न होगा।

सज्जनो, मैंने तुम्हारे सामने अद्वैतवाद के कुछ प्रधान भावों को प्रकाशित करने की चेष्टा की और अब इसे काम में लाने का समय आ गया है। केवल इसी देश में नहीं, सब जगह। आधुनिक विज्ञान के लोहे के मुद्गरों की चोट खाकर द्वैतवादात्मक धर्मों की मजबूत दीवार चूर चूर हो रही है। ऐसा नहीं कि द्वैतवादी सम्प्रदाय केवल यहीं शास्त्रों का अर्थ खींच-खाँच कर कुछ का कुछ कर रहे हैं। खींचातानी की हद हो गयी है—जहाँ तक खींचातानी हो—क्योंकि रबर नहीं है। ऐसा नहीं कि केवल यहीं ये द्वैतवादी आत्मरक्षा के लिए अँधेरे के किसी कोने में छिपने की चेष्टा कर रहे हैं, *नहीं, यूरोप और अमेरिका में तो यह प्रयत्न और भी ज्यादा है।* और वहाँ भी भारत के इस अद्वैतवाद का कुछ अंश जाना चाहिए। वह वहाँ पहुँच भी गया है। वहाँ दिन दिन उसका प्रचार बढ़ाना चाहिए। पश्चिमी

इसके पश्चात् स्वामी जी ने यूरोप पर भारतीय विचारो के प्रभाव की विस्तृत समीक्षा करके दिखाया कि विभिन्न युगो मे स्पेन, जर्मनी एव अन्यान्य यूरोपीय देशो के ऊपर इन विचारो की कैसी छाप पडी थी। भारतीय राजकुमार दारा-शिकोह ने उपनिषद् का अनुवाद फारसी मे किया। शॉपेनहॉवर नामक जर्मन दार्शनिक उसका लेटिन अनुवाद देखकर उसकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। उसके दर्शन मे उपनिषदो का यथेष्ट प्रभाव देखा जाता है। इसके बाद ही काण्ट के दर्शन-ग्रन्थो मे भी उपनिषदो के भावो के चिह्न देखे जाते हैं। यूरोप मे साधारणतया तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की अभिरुचि के कारण ही विद्वान् लोग सस्कृत के अध्ययन की ओर आकृष्ट होते है। परन्तु अध्यापक डॉयसन जैसे व्यक्ति भी हैं जो केवल दार्शनिक ज्ञान के लिए ही दर्शनो का अध्ययन करते हैं। स्वामी जी ने आशा प्रकट की कि भविष्य मे यूरोप मे सस्कृत के पठन-पाठन मे और अधिक दिलचस्पी ली जायगी। इसके बाद स्वामी जी ने दिखलाया कि पूर्वकाल मे 'हिन्दू' शब्द सार्थक था और वह सिन्धु नदी के इस पार बसनेवालो के लिए प्रयुक्त होता था, किन्तु इस समय वह सर्वथा निरर्थक है, क्योकि इस समय सिन्धु नदी के इस पार नाना धर्मावलम्बी बहुत सी जातियाँ बसती हैं।

इसके बाद स्वामी जी ने वेदो के सम्बन्ध मे विस्तृत रूप से प्रकाश डाला। उन्होंने कहा, "वेद किसी व्यक्ति विशेष के वाक्य नही हैं। पहले कतिपय विचारो का शनै शनै विकास हुआ, अतत उन्हे ग्रथ का रूप दिया गया, और वह ग्रथ प्रमाण बन गया।" स्वामी जी ने कहा, "अनेक धर्म इसी भाँति ग्रन्थबद्ध हुए है। ग्रन्थो का प्रभाव भी असीम प्रतीत होता है। हिन्दुओ के ग्रन्थ वेद है जिन पर अभी हजारो वर्षों तक हिन्दुओ को निर्भर रहना होगा। लेकिन उन्हे वेदो के सम्बन्ध मे अपने विचार बदलने होगे और उन्हे नये सिरे से दृढ़ चट्टान की नीव पर स्थापित करना होगा। वेदो का वाङ्मय विशाल है, किन्तु वेदो का नब्बे प्रतिशत अश इस समय उपलब्ध नही है। विशेष विशेष परिवार मे एक एक वेदाश थे। उन परिवारो के लोप हो जाने से वे वेदाश भी लुप्त हो गये, किन्तु जो इस समय भी मिलते हैं, वे भी इस जैसे कमरे मे समा नही सकते। ये वेद अत्यन्त प्राचीन तथा अति सरल भाषा मे लिखे गये हैं। वेदो का व्याकरण भी इतना अस्पष्ट है कि बहुतो के विचार मे वेदो के कई अशो का कोई अर्थ ही नही निकलता।"

इसके बाद स्वामी जी ने वेद के दो भागो—कर्मकाड और ज्ञानकाड की विस्तृत समीक्षा की। कर्मकाड कहने से सहिता और ब्राह्मण का बोध होता है। ब्राह्मणो मे यज्ञ आदि का वर्णन है। सहिता अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती प्रभृति छदो में रचित गेय पद हैं। साधारणत उनमे इन्द्र, वरुण अथवा अन्य किसी देवता की

# वेदान्त

## (खेतड़ी में दिया हुआ भाषण)

२ दिसम्बर, १८९७ को स्वामी जी अपने शिष्यों के साथ महाराज के बँगले में ठहरे हुए थे। यहाँ उन्होंने वेदान्त के सम्बन्ध में करीब डेढ़ घंटे तक व्याख्यान दिया। स्थानीय बहुत से सज्जन एवं कई यूरोपीय महिलाएँ उपस्थित थीं। खेतड़ी के राजा साहब सभापति थे। उन्होंने ही उपस्थित श्रोताओं से स्वामी का परिचय कराया। स्वामी जी ने बड़ा सुन्दर व्याख्यान दिया, परन्तु खेद का विषय है कि उस समय कोई भी प्रतिलिपि का लेखक उपस्थित नहीं था। अतः समस्त व्याख्यान उपलब्ध नहीं है। स्वामी जी के दो शिष्यों ने जो नोट लिये थे उसीका अनुवाद नीचे दिया जाता है।

### स्वामी जी का भाषण

यूनानी और आर्य प्राचीन काल की ये दो जातियाँ भिन्न भिन्न वातावरणों और परिस्थितियों में पड़ीं। प्रकृति में जो कुछ सुन्दर था, जो कुछ मधुर था, जो कुछ लोभनीय था, उन्हींके मध्य स्थापित होकर स्फूर्तिप्रद जलवायु में विचरण कर यूनानी जाति ने एवं चारों ओर सब प्रकार महिमामय प्राकृतिक दृश्यों के मध्य अवस्थित होकर तथा अधिक शारीरिक परिश्रम के अनुकूल जलवायु न पाकर हिन्दू जाति ने दो प्रकार की विभिन्न तथा विशिष्ट सभ्यताओं के आदर्शों का विकास किया। यूनानी लोग बाह्य प्रकृति की अनन्त एवं आर्य लोग आभ्यन्तरिक प्रकृति की अनन्त सम्बन्धी खोज में तत्पर हुए। यूनानी लोग बृहत् ब्रह्माण्ड की खोज में व्यस्त हुए और आर्य लोग क्षुद्र ब्रह्माण्ड या सूक्ष्म जगत् के तत्त्वानुसन्धान में मग्न हुए। संसार की सभ्यता में दोनों को ही अपना अपना विशिष्ट अंश विशेष सम्पन्न करना पड़ा था। आवश्यक नहीं है कि इनमें से एक को दूसरे से कुछ उधार लेना है। लेकिन परस्पर तुलनात्मक अध्ययन से दोनों लाभान्वित होंगे। आर्यों की प्रकृति विश्लेषण-प्रिय थी। गणित और व्याकरण में आर्यों को अद्भुत उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं और मन के विश्लेषण में वे चरम सीमा को पहुँच गये थे। हमें पाइथागोरस, सुकरात, प्लेटो एवं मिस्र के नव्य प्लेटोवादियों के विचारों में भारतीय विचार की झलक दीख पड़ती है।

है कि ईश्वर के साक्षात्कार के पश्चात् ही मनुष्य का यथार्थ जीवन आरम्भ होता है।

अब यह प्रश्न उठा, ये देवता कौन थे ? इन्द्र समय समय पर मनुष्यो की सहायता करते हैं। कभी कभी वे अत्यधिक सोम का पान भी करते हैं, स्थान स्थान पर उनके लिए सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी प्रभृति विशेषणो का भी प्रयोग हुआ है। वरुण के सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार की नाना धारणाएँ हैं। देवो के चरित्र सम्बन्धी ये सब वर्णनात्मक मत्र कही कही बहुत ही अपूर्व हैं और भाषा भी अत्यन्त उदात्त है। इसके पश्चात् स्वामी जी ने प्रलय वर्णनात्मक विख्यात नासदीय सूक्त—जिसमे अन्धकार का अन्धकार से आवृत होना वर्णित है—सुनाया और कहा, जिन लोगो ने इन सब महान् भावो का इस प्रकार की कविता मे वर्णन किया है, यदि वे ही असभ्य और असस्कृत थे तो फिर हमे अपने को क्या कहना चाहिए ? इन ऋषियो की अथवा उनके देवता इन्द्र, वरुण आदि की किसी प्रकार की समालोचना करने या उनके बारे मे कोई निर्णय देने मे मैं अक्षम हूँ। मानो क्रमागत दृश्य पर दृश्य बदलता चला आ रहा है और सबके पीछे एक **सद्विप्रा बहुधा वदन्ति** की यवनिका है। इन देवताओ का वर्णन बडा ही रहस्यमय, अपूर्व और अति सुन्दर है। वह बिल्कुल अगम्य प्रतीत होता है—पर्दा इतना सूक्ष्म है कि मानो स्पर्श मात्र से ही फट जायगा और मृगमरीचिका की भाँति लुप्त हो जायगा।

आगे चलकर स्वामी जी ने कहा, "मुझे एक बात बहुत सम्भव और स्पष्ट मालूम होती है और वह यह है कि यूनानियो की भाँति आर्य लोग भी ससार की समस्या हल करने के लिए पहले बाह्य प्रकृति की ओर उन्मुख हुए—सुन्दर रमणीय बाह्य प्रकृति भी उन्हें प्रलोभित करके धीरे धीरे बाह्य जगत् मे ले गयी। किन्तु भारत की यही विशेषता है कि जिस वस्तु मे कुछ उदात्तता नही होती उसका यहाँ कुछ मूल्य ही नही होता। मृत्यु के पश्चात् क्या होता है, इसकी यथार्थ तात्त्विक विवेचना साधारणत यूनानियो के मन मे उठी ही नही। किन्तु भारत मे आरम्भ से ही यह प्रश्न बार बार पूछा जा रहा है—'मैं कौन हूँ ? मृत्यु के पश्चात् मेरी क्या अवस्था होगी ?' यूनानियो के मत मे मनुष्य मर कर स्वर्ग जाता है। स्वर्ग जाने का क्या अर्थ है ? सब कुछ के बाहर जाना, भीतर कुछ नही है। सब कुछ केवल बाहर है। उनका लक्ष्य केवल बाहर की ओर था, केवल इतना ही नही, मानो वे स्वय भी अपने आप से बाहर थे। और उन्होंने सोचा, जिस समय वे एक ऐसे स्थान मे जा पहुँचेंगे जो बहुत कुछ इसी ससार की भाँति है, किन्तु वहाँ इस ससार के दु ख-क्लेश का सर्वथा अभाव है, तभी उन्हें ईप्सित सभी वस्तुएँ प्राप्त हो जायँगी और वे तृप्त हो जायँगे। उनकी धर्म सम्बन्धी भावना इसके और ऊपर नही उठ सकी।

स्तुति है। इस पर प्रश्न यह उठा ये देवता कौन थे ? इनके सम्बन्ध में अनेक मत निर्धारित हुए, किन्तु अन्यान्य मतों द्वारा वे मत खंडित कर दिये गये। ऐसा बहुत दिनों तक चलता रहा।

इसके बाद स्वामी जी ने उपासना प्रणाली सम्बन्धी विभिन्न धारणाओं की चर्चा की। बैबिलोन के प्राचीन निवासियों की आत्मा के सम्बन्ध में यह धारणा थी कि वह केवल एक प्रतिरूप देह (double) मात्र है उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं होता और वह देह मूल देह से अपना सम्बन्ध कदापि विच्छिन्न नहीं कर सकती। इस 'प्रतिरूप' देह को भी मूल शरीर की भाँति क्षुधा तृषा मनोवृत्ति आदि के विकार होते हैं ऐसा उनका विश्वास था साथ ही यह भी विश्वास था कि मृत मूल शरीर पर किसी प्रकार का आघात करने से 'प्रतिरूप' देह भी आहत होगी। मूल शरीर के नष्ट होने पर 'प्रतिरूप' देह भी नष्ट हो जायगी। इसलिए मृत शरीर की रक्षा करने की प्रथा आरम्भ हुई। इसीसे ममी समाधि मन्दिर, कब्र आदि की उत्पत्ति हुई। मिस्र और बेबिलोन के निवासी एवं यहूदियों की विचार-धारा इससे अधिक अग्रसर न हो सकी वे आत्म-तत्त्व तक नहीं पहुँच सके।

प्रो मैक्समूलर का कहना है कि ऋग्वेद में पितर-पूजा का सामान्य चिह्न भी नहीं दिखायी पड़ता। ममी आँख फाड़े हुए हम लोगों की ओर देख रहे हैं। ऐसा बीभत्स और भयावह दृश्य भी वेदों में नहीं मिलता। देवता मनुष्यों के प्रति मित्रभाव रखते हैं। उपास्य और उपासक का सम्बन्ध सहज और सौम्य है। उसमें किसी प्रकार की म्लानता का भाव नहीं है उनमें सहज आनन्द और सरल हास्य का अभाव नहीं है। स्वामी जी ने कहा वेदों की चर्चा करते समय मानो मैं देवताओं की हास्य-ध्वनि स्पष्ट सुनता हूँ। वैदिक ऋषिगण अपने सम्पूर्ण भाव भाषा में भले ही न प्रकट कर सके हों किन्तु वे संस्कृति और सहृदयता के आधार थे। हम लोग उनकी तुलना में जंगली हैं।

इसके बाद स्वामी जी ने अपने कथन की पुष्टि में अनेक वैदिक मन्त्रों का उच्चारण किया। 'जिस स्थान पर पितृगण निवास करते हैं उनको उसी स्थान पर ले जाओ—जहाँ कोई दुःख शोक नहीं है।' इत्यादि। इसी भाँति इस देश में इस धारणा का आविर्भाव हुआ कि जितनी जल्दी शव जला दिया जायगा उतना ही अच्छा है। उनको क्रमशः ज्ञात हो गया कि स्थूल देह के अतिरिक्त एक सूक्ष्म देह है वह सूक्ष्म देह स्थूल देह के त्याग के पश्चात् एक ऐसे स्थान में पहुँच जाती है जिस स्थान में केवल आनन्द है दुःख का तो नामोनिशान भी नहीं है। सेमेटिक धर्म में भय और कष्ट के भाव प्रचुर हैं। उनकी यह धारणा थी कि यदि मनुष्य ने ईश्वर का दर्शन कर लिया तो वह मर जायगा। किन्तु ऋग्वेद का भाव यह

थे, उन्होने अपने मत की पुष्टि के लिए खीचतान कर उनका विकृत अर्थ किया। रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य ने भी शुद्ध अद्वैतभाव प्रतिपादक वेदाशो की द्वैत व्याख्या करके वैसी ही भूल की है। यह सर्वथा सत्य है कि उपनिषद् एक तत्त्व की शिक्षा देते हैं, किन्तु इस तत्त्व मे सोपानारोहण की भाँति शिक्षा दी गयी है। इसके बाद स्वामी जी ने कहा कि खेद की बात है कि वर्तमान भारत मे धर्म का मूल तत्त्व नही रह गया है, सिर्फ थोडे बाह्य अनुष्ठान मात्र शेष बचे हैं। भारतवासी इस समय न तो हिन्दू ही हैं और न वेदान्ती ही। वे केवल छुआछूत मत के पोषक हैं। रसोई-घर ही उनके मन्दिर हैं और रसोई की हँडिया और बर्तन ही उनके देवता हैं। इस स्थिति का अन्त होना ही चाहिए, और जितना शीघ्र इसका अन्त हो, उतना ही हमारे धर्म के लिए अच्छा है। उपनिषद् अपनी महिमा मे उद्भासित हो और साथ ही विभिन्न सम्प्रदायो मे विवाद की इति भी हो जाय।

शरीर स्वस्थ न होने से इतना ही बोल कर स्वामी जी थक गये। अत उन्होने आध घटे विश्राम किया। उनके व्याख्यान का शेषाश सुनने के लिए श्रोतागण इस बीच धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते रहे। स्वामी जी बाहर आये और उन्होंने फिर आध घटे भाषण किया। उन्होंने समझाया कि बहुत्व मे एकत्व की खोज को ही ज्ञान कहते है और किसी विज्ञान का चरम उत्कर्ष तब माना जाता है, जब सारे अनेकत्व मे एक एकत्व का अनुसधान पूरा हो जाता है। यह नियम भौतिक विज्ञान तथा आध्यात्मिक विज्ञान दोनो पर समान रूप से लागू होता है।

किन्तु हिन्दुओं का मन इतने से तृप्त नहीं हुआ। उनके विचार में स्वर्ग भी स्थूल जगत् के अन्तर्गत है। हिन्दुओं का मत है कि जो कुछ संयोगोत्पन्न है उसका विनाश अवश्यम्भावी है। उन्होंने बाह्य प्रकृति से पूछा, 'आत्मा क्या है, इसे क्या तुम जानती हो?' उत्तर मिला, 'नहीं।' प्रश्न हुआ, 'क्या कोई ईश्वर है?' प्रकृति ने उत्तर दिया, "मैं नहीं जानती।" तब वे प्रकृति से विमुख हो गये और वे समझने लगे कि बाह्य प्रकृति कितनी ही महान् और भव्य क्यों न हो, वह देश-काल की सीमा से आबद्ध है। तब एक अन्य वाणी सुनायी देती है, नये उदात्त भावों की धारणा उनके मन में उदित होती है। यह वाणी थी 'नेति नेति'—'यह नहीं, यह नहीं'—उस समय विभिन्न देवगण एक हो गये, सूर्य, चन्द्र, तारा, इतना ही क्यों, समस्त ब्रह्माण्ड एक हो गया—उस समय इस नूतन आदर्श पर उनके धर्म का आध्यात्मिक आधार प्रतिष्ठित हुआ।

> न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
> तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥
> (कठोपनिषद् २।२)

—'वहाँ सूर्य भी प्रकाशित नहीं होता, न चन्द्र, न तारा, न विद्युत्, फिर इस भौतिक अग्नि का तो कहना ही क्या! उसीके प्रकाशमान होने से ही सब कुछ प्रकाशित होता है, उसीके प्रकाश से ही सब चीजें प्रकाशित हैं।' उस सीमाबद्ध, अपरिपक्व व्यक्तिविशेष, सबके पाप-पुण्यों का विचार करनेवाले क्षुद्र ईश्वर की धारणा शेष नहीं रही, अब बाहर का अन्वेषण समाप्त हुआ, अपने भीतर अन्वेषण आरम्भ हुआ। इस भाँति उपनिषद् भारत के बाइबिल हो गये। इन उपनिषदों का यह विशाल साहित्य है। और भारत में जो विभिन्न मतवाद प्रचलित हैं, सभी उपनिषदों की भित्ति पर प्रतिष्ठित हुए।

एक बार स्वामी जी ने द्वैत, विशिष्टाद्वैत, अद्वैत मतों का वर्णन करके उनके सिद्धान्तों का निम्नलिखित ढंग से समन्वय किया। उन्होंने कहा, "इनमें प्रत्येक मानो एक एक सोपान है—एक सोपान पर चढ़ने के बाद परवर्ती सोपान पर चढ़ना होता है, सबके अन्त में अद्वैतवाद की स्वाभाविक परिणति है और अन्तिम सोपान है तत्त्वमसि।" उन्होंने बताया कि प्राचीन भाष्यकार शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य आदि भी उपनिषद् को ही एकमात्र प्रमाण मानते थे, तथापि सभी इस भ्रम में पड़े कि उपनिषद् एक ही मत की शिक्षा देते हैं। उन्होंने गलतियाँ की हैं। शंकराचार्य इस भ्रम में पड़े थे कि सब उपनिषदों में केवल अद्वैतवाद की शिक्षा है, दूसरा कुछ है ही नहीं। इसलिए जिस स्थान पर स्पष्ट द्वैत भावात्मक श्लोक मिलते

ऐंग्लो-सैंक्सन जाति ने मानवता तथा सामाजिक उन्नति की दिशा मे कार्य करने की, सभ्यता और प्रगति की महती क्षमता का विकास किया है। इतना ही नही, कुछ और आगे बढकर मैं यह भी कह सकता हूँ कि यदि उस ऐंग्लो-सैक्सन जाति की शक्ति का प्रभाव इतना विस्तारित नही हुआ होता तो हम शायद इस तरह इकट्ठे भी नही होते और आज यहाँ पर 'भारतीय आध्यात्मिक विचारो का प्रभाव' विषय पर चर्चा भी न कर पाते। फिर पाश्चात्य से प्राच्य को, अपने स्वदेश को, लौटकर देखता हूँ कि वही ऐंग्लो-सैक्सन शक्ति अपने समस्त दोषो के साथ भी अपने गुणो की निश्चित विशिष्टताओ की रक्षा करते हुए अपना कार्य यहाँ कर रही है और मेरा विश्वास है कि अन्तत महान् परिणाम सिद्ध होगा। ब्रिटिश जाति का विस्तार और उन्नति का भाव हमे बलपूर्वक उन्नति की ओर अग्रसर कर रहा है। साथ ही हमे यह भी याद रखना चाहिए कि पाश्चात्य सभ्यता का मूल स्रोत यूनानी सभ्यता है और यूनानी सभ्यता का प्रधान भाव है—अभिव्यक्ति। हम भारतवासी मननशील तो हैं, परन्तु कभी कभी दुर्भाग्यवश हम इतने मननशील हो जाते हैं कि हममे भाव व्यक्त करने की शक्ति बिल्कुल नही रह जाती। मतलब यह कि धीरे धीरे ससार के समक्ष भारतवासियो की भाव प्रकाशित करने की शक्ति अव्यक्त ही रह गयी और उसका फल क्या हुआ ? फल यही हुआ कि हमारे पास जो कुछ था, सबको हम गुप्त रखने की चेष्टा करने लगे। भाव गुप्त रखने का यह सिलसिला आरम्भ तो हुआ व्यक्ति विशेष की ओर से, पर क्रमश बढ़ता हुआ यह अन्त मे जातीय स्वभाव बन गया। और आज भाव को अभिव्यक्त करने की शक्ति का हममे इतना अभाव हो गया है कि हमारी जाति एक मरी हुई जाति समझी जाने लगी है। ऐसी अवस्था मे अभिव्यक्त किये बिना हमारी जाति के जीवित रहने की सम्भावना कहाँ है ? पाश्चात्य सभ्यता का मेरुदड है विस्तार और अभिव्यक्ति। भारतवर्ष मे ऐंग्लो-सैक्सन जाति के कामो मे से जिस कार्य की ओर मैंने तुम लोगो का ध्यान आकृष्ट करना चाहा है, वही हमारी जाति को जगाकर एक बार फिर हमे अपने को अभिव्यक्त करने के लिए तैयार करेगा। और आज भी यही शक्तिशाली ऐंग्लो-सैक्सन जाति अपने भाव-विनिमय के साधनो की सहायता से हमे ससार के आगे अपने गुप्त रत्नो को प्रकट करने के लिए उत्साहित कर रही है। ऐंग्लो-सैक्सन जाति ने भारतवर्ष की भावी उन्नति का रास्ता खोल दिया है और हमारे पूर्वपुरुषो के भाव जिस तरह धीरे धीरे बहुतेरे स्थानो मे फैलते जा रहे हैं, यह वास्तव मे विलक्षण है। लेकिन जब हमारे पूर्वपुरुषो ने अपना सत्य और मुक्ति का सदेश प्रचारित किया, तब उन्हे कितना सुभीता था। भगवान् बुद्ध ने किस तरह सार्वजनीन भ्रातृभाव के महान् तत्त्व का प्रचार किया था। उस समय भी

# इंग्लैंड में भारतीय आध्यात्मिक विचारों का प्रभाव

११वीं मार्च, सन् १८९८ ई. को स्वामी जी की शिष्या सिस्टर निवेदिता (कुमारी एम. ई. नोबल) ने कलकत्ते के स्टार थियेटर में 'इंग्लैण्ड में भारतीय आध्यात्मिक विचारों का प्रभाव' नामक विषय पर एक व्याख्यान दिया। सभापति का आसन स्वयं स्वामी विवेकानन्द ने ही ग्रहण किया था। स्वामी जी ने उठकर पहले श्रोताओं को उक्त महिला का परिचय देते हुए नीचे लिखी बातें कहीं :

## स्वामी जी का भाषण

देवियो और सज्जनो,

मैं जिस समय एशिया के पूर्वी हिस्से में भ्रमण कर रहा था, उस समय एक विषय की ओर मेरी दृष्टि विशेष रूप से आकृष्ट हुई थी। मैंने देखा कि उन स्थानों में भारतीय आध्यात्मिक विचार व्याप्त हैं। चीन और जापान के कितने ही मन्दिरों की दीवारों के ऊपर कई सुपरिचित संस्कृत मंत्रों को लिखा हुआ देखकर मैं कितना विस्मित हुआ था, यह तुम लोग आसानी से समझ सकते हो। और यह सुनकर शायद तुम्हें और भी आश्चर्य होगा और कुछ लोगों को सम्भवतः प्रसन्नता भी होगी कि ये सब मंत्र पुरानी बँगला लिपि में लिखे हुए हैं। हमारे बंगाल के पूर्वपुरुषों का धर्म प्रचार में कितना उत्साह और स्फूर्ति थी, मानो यही बताने के लिए आज भी ये मंत्र उन पर स्मारक के रूप में मौजूद हैं।

भारतीय आध्यात्मिक विचारों की पहुँच एशिया महाद्वीप के इन देशों तक ही हुई है, ऐसा नहीं, वरन् ये बहुत दूर तक फैले हुए हैं और उनके चिह्न सुस्पष्ट हैं। यहाँ तक कि पाश्चात्य देशों में भी कितने ही स्थानों के आचार-व्यवहार के मर्म में पैठकर मैंने उसके प्रभाव-चिह्न देखे। प्राचीन काल में भारत के आध्यात्मिक विचार भारत के पूर्व और पश्चिम दोनों ही ओर फैले। यह बात अब ऐतिहासिक सत्य के रूप में प्रमाणित हो चुकी है। सारा संसार भारत के अध्यात्म-तत्त्व के लिए कहाँ तक ऋणी है तथा यहाँ की आध्यात्मिक शक्ति ने मानव जाति को जीवन सुगठन के कार्य में प्राचीन अथवा अर्वाचीन समय में कितनी बड़ी सहायता पहुँचायी है, यह बात अब सब लोग जान गये हैं। ये सब तो पुरानी बातें हैं। मैं संसार में एक और अनोखी उल्लेखनीय बात देखता हूँ। वह यही है कि उस अद्भुतकर्मी

मैं अब केवल दो चार बातें और कहना चाहता हूँ। हमारी धारणा है कि हम भारतवासी भी कुछ काम कर सकते हैं। भारतवासियो मे हम वगाली लोग भले ही इस बात की हँसी उडा सकें, पर मैं वैसा नही करता। तुम लोगो के अन्दर एक अदम्य उत्साह, एक अदम्य चेष्टा जाग्रत कर देना ही मेरा जीवन-व्रत है। चाहे तुम अद्वैतवादी हो, चाहे विशिष्टाद्वैतवादी हो अथवा तुम द्वैतवादी ही क्यो न हो, इससे कुछ अतर नही पडता। परन्तु एक वात की ओर जिसे दुर्भाग्यवश हम लोग हमेशा भूल जाया करते हैं, इस समय मैं तुम्हारा ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। वह यह कि 'ऐ मानव, तू अपने आप पर विश्वास कर।' केवल इसी एक उपाय से हम ईश्वर के विश्वास-परायण बन सकते हैं। तुम चाहे अद्वैतवादी हो या द्वैतवादी, तुम्हारा विश्वास चाहे योगशास्त्र पर हो या शकराचार्य पर, चाहे तुम व्यास के अनुयायी हो या विश्वामित्र के, इससे कोई फर्क नही पडता। बात यह है कि पूर्वोक्त आत्मा सम्वन्धी विश्वास के विषय मे भारतवासियो के विचार ससार की अन्य सभी जातियो के विचारो से निराले हैं। एक पल के लिए इसे ध्यान मे रखो कि जब अन्यान्य सभी धर्मों और देशो मे आत्मा की शक्ति को लोग बिल्कुल स्वीकार नही करते—वे आत्मा को प्राय शक्तिहीन, दुर्बल और जड वस्तु की तरह समझते हैं, हम लोग भारतवर्ष मे आत्मा को अनन्त शक्ति-सम्पन्न समझते हैं और हमारी धारणा है कि आत्मा शाश्वत पूर्ण ही रहेगी। हमे सदा उपनिषदो मे दिये गये उपदेशो को स्मरण रखना चाहिए।

अपने जीवन के महान् व्रत को याद रखो। हम भारतवासी और विशेषत हम वगाली बहुत परिमाण मे विदेशी भावो से आक्रान्त हो गये हैं, जो हमारे जातीय धर्म की सम्पूर्ण जीवनी शक्ति को चूसे डालते हैं। हम आज इतने पिछडे हुए क्यो हैं ? क्यो हममे से निन्यानबे फी सदी आदमी सम्पूर्णत पाश्चात्य भावो और उपादानो से विनिर्मित हो रहे हैं ? अगर हम लोग राष्ट्रीय गौरव के उच्च शिखर पर आरोहण करना चाहते हैं तो हमे इस विदेशी भाव को दूर फेंक देना होगा, साथ ही यदि हम ऊपर चढना चाहते हैं तो हमे यह भी याद रखना होगा कि हमे पाश्चात्य देशो से वहुत कुछ सीखना वाकी है। पाश्चात्य देशो से हमे उनका शिल्प और विज्ञान सीखना होगा, उनके यहाँ के भौतिक विज्ञानो को सीखना होगा और उधर पाश्चात्य देशवासियो को हमारे पास आकर धर्म और अध्यात्म-विद्या की शिक्षा ग्रहण करनी होगी। हम हिन्दुओ को विश्वास करना होगा कि हम ससार के गुरु हैं। हम यहाँ पर राजनीतिक अधिकार तथा इसी प्रकार की अन्यान्य वातो के लिए चिल्ला रहे हैं। अच्छी वात है, परन्तु अधिकार और सुभीते केवल मित्रता के द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं और मित्रता की आशा वही की जाती है, जहाँ दोनो पक्ष समान होते हैं। यदि एक पक्ष-

यहाँ हमारे प्रिय भारतवर्ष में वास्तविक आनन्द प्राप्त करने के यथेष्ट सुभीते थे और हम बहुत ही सुगमता के साथ पृथ्वी की एक छोर से दूसरे छोर तक अपने भावों और विचारों को प्रचारित कर सकते थे परन्तु अब हम उससे और भी आगे बढ़कर ऐंग्लो-सैक्सन जाति तक अपने भावों का प्रचार करने में कृतकार्य हो रहे हैं।

इसी तरह क्रिया प्रतिक्रिया इस समय चल रही है और हम देख रहे हैं कि हमारे देश का संदेश वहाँवाले सुनते हैं और केवल सुनते ही नहीं हैं, बल्कि उन पर अनुकूल प्रभाव भी पड़ रहा है। इसी बीच इंग्लैंड ने अपने कई महान् मतिमान व्यक्तियों को हमारे काम में सहायता पहुँचाने के लिए भेज दिया है। तुम लोगों ने शायद मेरी मित्र मिस मूलर की बात सुनी है और सम्भव है तुम लोगों में से बहुतों का उनके साथ परिचय भी हो—वे इस समय इसी मंच पर उपस्थित हैं। उच्च कुल में उत्पन्न इस सुशिक्षित महिला ने भारत के प्रति अगाध प्रेम होने के कारण अपना समग्र जीवन भारत के कल्याण के लिए न्योछावर कर दिया है। उन्होंने भारत को अपना घर तथा भारतवासियों को ही अपना परिवार बना लिया है। तुम सभी उन सुप्रसिद्ध उदारहृदया अंग्रेज महिला के नाम से भी परिचित हो—उन्होंने भी अपना सारा जीवन भारत के कल्याण तथा पुनरुत्थान के लिए अर्पण कर दिया है। मेरा अभिप्राय श्रीमती बेसेन्ट से है। प्यारे भाइयो आज इस मंच पर दो अमेरिकन महिलाएँ उपस्थित हैं—ये भी अपने हृदय में वैसा ही उद्देश्य धारण किये हुए हैं और मैं आप लोगों से निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि ये भी हमारे इस गरीब देश के कल्याण के लिए अपने जीवन को उत्सर्ग करने को तैयार हैं। इस अवसर पर मैं तुम लोगों को एक स्वदेशवासी का नाम याद दिलाना चाहता हूँ। इन्होंने इंग्लैंड और अमेरिका आदि देशों को देखा है, उनके ऊपर मेरा बड़ा विश्वास और भरोसा है, इन्हें मैं विशेष सम्मान और प्रेम की दृष्टि से देखता हूँ आध्यात्मिक राज्य में ये बहुत आगे बढ़े हुए हैं, ये बड़ी दृढ़ता के साथ और चुपचाप हमारे देश के कल्याण के लिए कार्य कर रहे हैं आज यदि उन्हें किसी और जगह कोई विशेष काम न होता तो वे अवश्य ही इस सभा में उपस्थित होते—यहाँ पर मेरा मतलब श्री मोहिनीमोहन चट्टोपाध्याय से है। इन लोगों के अतिरिक्त अब इंग्लैंड ने कुमारी मारगरेट नोबल को उपहारस्वरूप भेजा है—इनसे हम बहुत कुछ आशा रखते हैं। बस और अधिक बातें न कर मैं तुम लोगों से कुमारी मारगरेट नोबल का परिचय कराता हूँ जो तुम्हारे समक्ष भाषण करेंगी।

जब सिस्टर निवेदिता ने अपना दिलचस्प व्याख्यान समाप्त कर दिया तब स्वामी जी फिर खड़े हुए और उन्होंने कहा

जल्दी या देरी से माया के बन्धन से मुक्त होगे। यही हमारा सबसे पहला कर्तव्य है। अनन्त आशा से ही अनन्त आकाक्षा और चेष्टा की उत्पत्ति होती है। यदि यह विश्वास हमारे अन्दर बैठ जाय तो वह हमारे जातीय जीवन मे व्यास और अर्जुन का समय—वह समय, जब कि हमारे यहाँ से समग्र मानव जाति के लिए कल्याणकर उदात्त मतवाद प्रचारित हुआ था—ले आयेगा। आज हम लोग आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि और आध्यात्मिक विचारो मे बहुत ही पिछड गये हैं—भारत मे यथेष्ठ परिमाण मे आध्यात्मिकता विद्यमान थी, इतने अधिक परिमाण मे थी कि उसकी आध्यात्मिक महानता ने ही भारतीयो को सारे ससार की जातियो का सिरमौर बना दिया था। और यदि परम्परा तथा लोगो की आशा पर विश्वास किया जाय तो हमारा वह दिन फिर लौट आयेगा, और वह तुम लोगो के ऊपर ही निर्भर करता है। ऐ बगाली नवयुवको, तुम लोग धनी-मानियो और बडे आदमियो का मुँह ताकना छोड दो। याद रखो, ससार मे जितने भी बडे बडे और महान् कार्य हुए है, उन्हें गरीबो ने ही किया है। इसलिए ऐ गरीब बगालियो, उठो और काम मे लग जाओ, तुम लोग सब काम कर सकते हो और तुम्हे सब काम करने पडेंगे। यद्यपि तुम ग़रीब हो, फिर भी बहुत लोग तुम्हारा अनुसरण करेंगे। दृढचित्त बनो और इससे भी बढकर पूर्ण पवित्र और धर्म के मूल तत्त्व के प्रति निष्ठावान बनो। विश्वास रखो कि तुम्हारा भविष्य अत्यन्त गौरवपूर्ण है। ऐ बगाली नवयुवको, तुम लोगो के द्वारा ही भारत का उद्धार होनेवाला है। तुम इस पर विश्वास करो या न करो, पर तुम इस बात पर विशेष रूप से ध्यान रखो और ऐसा मत समझो कि यह काम आज या कल ही पूरा हो जायगा। मुझे अपनी देह और अपनी आत्मा के अस्तित्व पर जैसा दृढ विश्वास है, इस पर भी मेरा वैसा ही अटल विश्वास है। इसीलिए ऐ बगीय नवयुवको, तुम्हारे प्रति मेरा हृदय इतना आकृष्ट है। जिनके पास धन-दौलत नही है, जो गरीब है, केवल उन्ही लोगो का भरोसा है, और चूंकि तुम गरीब हो, इसलिए तुम्हारे द्वारा यह कार्य होगा। चूंकि तुम्हारे पास कुछ नही है, इसीलिए तुम सच्चे हो सकते हो, और सच्चे होने के कारण ही तुम सब कुछ त्याग करने के लिए तैयार हो सकते हो। बस, केवल यही बात मैं तुमसे अभी अभी कह रहा था। और पुन तुम्हारे समक्ष मैं इसे दुहराता हूँ—यही तुम लोगो का जीवन-व्रत है और यही मेरा भी जीवन-व्रत है। तुम चाहे किसी भी दार्शनिक मत का अवलम्बन क्यो न करो, मैं यहाँ पर केवल यही प्रमाणित करना चाहता हूँ कि सारे भारत मे मानव जाति की पूर्णता मे अनन्त विश्वासरूप प्रेम-सूत्र ओतप्रोत भाव से विद्यमान है। मैं चाहता हूँ कि इस विश्वास का सारे भारत मे प्रचार हो।

वाला जीवन भर भीख माँगता रहे, तो क्या यहीं पर मित्रता स्थापित हो सकती है ? ये सब बातें कह देना बहुत आसान है, पर मेरा तात्पर्य यह है कि पारस्परिक सहयोग के बिना हम लोग कभी शक्तिसम्पन्न नहीं हो सकते। इसीलिए मैं तुम लोगों को भिखमंगों की तरह नहीं, धर्माचार्य के रूप में इंग्लैण्ड और अमेरिका आदि देशों में जाने के लिए कह रहा हूँ। हमें अपने सामर्थ्य के अनुसार विनिमय के नियम का प्रयोग करना होगा। यदि हमें इस लोक में सुखी रहने के उपाय सीखने हैं तो हम भी उसके बदले में क्यों न उन्हें अनन्त काल तक सुखी रहने के उपाय बताएँ ?

सर्वोपरि, समग्र मानव जाति के कल्याण के लिए कार्य करते रहो। तुम एक संकीर्ण घेरे के अन्दर बँधे रहकर अपने को 'शुद्ध' हिन्दू समझने का जो गर्व करते हो, उसे छोड़ दो। मृत्यु सबके लिए राह देख रही है और इसे कभी मत भूलो जो सर्वाधिक अद्भुत ऐतिहासिक सत्य है कि संसार की सब जातियों को भारतीय साहित्य में निबद्ध सनातन सत्यसमूह को सीखने के लिए धैर्य धारण कर भारत के चरणों के समीप बैठना पड़ेगा। भारत का विनाश नहीं है, चीन का भी नहीं है और जापान का भी नहीं। अतएव हमें अपने धर्मरूपी मेरुदण्ड की बात को सर्वदा स्मरण रखना होगा और ऐसा करने के लिए हमें रास्ता बताने के लिए एक पथप्रदर्शक की आवश्यकता है—वह रास्ता जिसके विषय में मैं अभी तुम लोगों से कह रहा था। यदि तुम लोगों में कोई ऐसा व्यक्ति हो जो यह विश्वास न करता हो, यदि हमारे यहाँ कोई ऐसा हिन्दू बालक हो जो यह विश्वास करने के लिए उद्यत न हो कि हमारा धर्म पूर्णतः आध्यात्मिक है, तो मैं उसे हिन्दू मानने को तैयार नहीं हूँ। मुझे याद है, एक बार काश्मीर राज्य के किसी गाँव में मैंने एक बूढ़ी औरत से बातचीत करते समय पूछा था, 'तुम किस धर्म को मानती हो ?' इस पर बूढ़ी ने उत्साह के साथ जवाब दिया था, "ईश्वर को धन्यवाद, उसकी कृपा से मैं मुसलमान हूँ।" इसके बाद किसी हिन्दू से भी यही प्रश्न पूछा तो उसने साधारण ढंग से कह दिया, "मैं हिन्दू हूँ।" कठोपनिषद् का वह महावाक्य स्मरण आता है—'श्रद्धा' या अद्भुत विश्वास। नचिकेता के जीवन में 'श्रद्धा' का एक सुन्दर दृष्टान्त दिखायी देता है। इस श्रद्धा का प्रचार करना ही मेरा जीवनोद्देश्य है। मैं तुम लोगों से फिर एक बार कहना चाहता हूँ कि यह श्रद्धा ही मानव जाति के जीवन का और संसार के सब धर्मों का महत्त्वपूर्ण अंग है। सबसे पहले अपने आप पर विश्वास करने का अभ्यास करो। यह जान लो कि कोई आदमी छोटे से जल-बुद्बुद के बराबर हो सकता है और दूसरा व्यक्ति पर्वताकार तरंग के समान बड़ा। पर उस छोटे जल-बुद्बुद और पर्वताकार तरंग दोनों के ही पीछे अनन्त समुद्र है। अतएव सबका जीवन आशाप्रद है, सबके लिए मुक्ति का रास्ता खुला हुआ है और सभी

अत्यन्त अकिंचन अश हो, इसीलिए केवल इस तुच्छ स्वय के अभ्युदयार्थ यत्न करने की अपेक्षा यह श्रेष्ठ है कि तुम अपने करोडो भाइयो की सेवा करते रहो।

सर्वत पाणिपाद तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वत श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥
(गीता १३।१३)

—'सर्वत्र उसके हाथ और पैर हैं, सर्वत्र उसके नेत्र, शिर और मुख हैं तथा लोक मे सर्वत्र उसके कान हैं। वह ईश्वर सर्वव्यापी होकर सर्वत्र विद्यमान है।'

इस प्रकार धीरे धीरे मृत्यु को प्राप्त हो जाओ। ऐसी ही मृत्यु मे स्वर्ग है, उसीमे सारी भलाई है। और इसके विपरीत समस्त अमगल तथा नरक है।

अब हमे यह विचार करना चाहिए कि किन उपायो अथवा साधनो द्वारा हम इन आदर्शों को कार्यरूप मे परिणत कर सकते हैं। सबसे पहले हमे यह समझ लेना चाहिए कि हमारा आदर्श ऐसा न हो जो असम्भव हो। अत्यन्त उच्च आदर्श रखने मे एक बुराई यह है कि उससे राष्ट्र कमजोर हो जाता है तथा धीरे धीरे गिरने लगता है। यही हाल बौद्ध तथा जैन सुधारो के बाद हुआ। परन्तु साथ ही हमे यह भी समझ लेना चाहिए कि अत्यधिक व्यावहारिकता भी ठीक नही है, क्योकि यदि तुममे थोडी भी कल्पना-शक्ति नही है, यदि तुम्हारे पथ-प्रदर्शन के लिए तुम्हारे सामने कोई भी आदर्श नही है, तो तुम निरे जगली ही हो। अतएव हमे अपने आदर्श को कभी नीचा नही करना चाहिए और साथ ही यह भी न होना चाहिए कि हम व्यावहारिकता को बिल्कुल भूल बैठें। इन दो 'अतियो' से हमे बचना चाहिए। हमारे देश मे तो प्राचीन पद्धति यह है कि हम एक गुफा मे बैठ जायँ, वही ध्यान करें और बस वही मर जायँ, परन्तु मुक्ति-लाभ के लिए यह गलत सिद्धान्त है कि हम दूसरो से आगे ही बढते चले जायँ। आगे या पीछे साधक को यह समझ लेना चाहिए कि यदि वह अपने अन्य भाइयो की मुक्ति के लिए भी यत्न नही करता है तो उसे मुक्ति नही प्राप्त हो सकती। अतएव तुम्हें इस बात का यत्न करना चाहिए कि तुम्हारे जीवन मे उच्च आदर्श तथा उत्कृष्ट व्यावहारिकता का सुन्दर सामजस्य हो। तुम्हें इस बात के लिए तैयार होना चाहिए कि एक क्षण तो तुम पूर्ण रूप से ध्यान मे मग्न हो सको, पर दूसरे ही क्षण (मठ के चरागाह की भूमि की ओर इशारा करके स्वामी जी ने कहा) इन खेतो को जोतने के लिए उद्यत हो जाओ। अभी तुम इस बात के योग्य बनो कि शास्त्रो की कठिन गुत्थियो को स्पष्ट रूप से समझा सको, पर दूसरे ही क्षण उसी उत्साह से इन खेतो की फसल को ले जाकर बाजार मे भी बेच सको। छोटे से छोटे सेवा-टहल के कार्य

# सन्यास उसका आदर्श तथा साधन

१९ जून सन् १८९९ को जब स्वामी जी दूसरी बार पाश्चात्य देशों को जाने लगे, उस अवसर पर विदाई के उपलक्ष्य में बेलुड़ मठ के युवा संन्यासियों ने उन्हें एक मानपत्र दिया। उसके उत्तर में स्वामी जी ने जो कहा था, उसका सारांश निम्नलिखित है :

## स्वामी जी का भाषण

यह समय लम्बा भाषण देने का नहीं है, परन्तु संक्षेप में मैं कुछ उन बातों की चर्चा करूँगा जिनका तुम्हें आचरण करना चाहिए। पहले हमें अपने आदर्श को भली भाँति समझ लेना चाहिए और फिर उन साधनों को भी जानना चाहिए, जिनके द्वारा हम उसको चरितार्थ कर सकते हैं। तुम लोगों में से जो संन्यासी हैं, उन्हें सदैव दूसरों के प्रति भलाई करते रहने का यत्न करना चाहिए, क्योंकि संन्यास का यही अर्थ है। इस समय 'त्याग' पर भी एक लम्बा भाषण देने का अवसर नहीं है, परन्तु संक्षेप में मैं इसकी परिभाषा इस प्रकार करूँगा कि 'त्याग' का अर्थ है 'मृत्यु के प्रति प्रेम'। सांसारिक लोग जीवन से प्रेम करते हैं, परन्तु संन्यासी के लिए प्रेम करने को मृत्यु है। तो प्रश्न यह उठता है कि क्या फिर हम आत्महत्या कर लें? नहीं, नहीं, इससे बहुत दूर। आत्महत्या करनेवालों को मृत्यु तो कभी प्यारी नहीं होती, क्योंकि यह बहुधा देखा गया है कि कोई मनुष्य आत्महत्या करने जाता है और यदि वह अपने यत्न में असफल रहता है तो दुबारा फिर वह उसका कभी नाम भी नहीं लेता। तो फिर प्रश्न यह है कि मृत्यु के लिए प्रेम कैसा होता है?

हम यह निश्चित जानते हैं कि हम एक न एक दिन अवश्य मरेंगे और जब ऐसा है तो फिर किसी सत्कार्य के लिए ही हम क्यों न मरें! हमें चाहिए कि हम अपने सारे कार्यों को जैसे खाना-पीना, सोना, उठना, बैठना आदि सभी—आत्मत्याग की ओर लगा दें। भोजन द्वारा तुम अपने शरीर को पुष्ट करते हो, परन्तु उससे क्या लाभ हुआ, यदि तुमने उस शरीर को दूसरों की भलाई के लिए अर्पण न किया? इसी प्रकार तुम पुस्तकें पढ़कर अपने मस्तिष्क को पुष्ट करते हो, परन्तु उससे भी कोई लाभ नहीं, यदि समस्त संसार के हित के लिए तुमने उस मस्तिष्क को लगा कर आत्म-त्याग न किया। चूँकि सारा संसार एक है और तुम इसके एक

# मैंने क्या सीखा ?

## (ढाका में मार्च, सन् १९०१ मे दिया गया व्याख्यान)

ढाका मे स्वामी जी ने दो भाषण अंग्रेज़ी मे दिये। प्रथम भाषण का विषय था, 'मैंने क्या सीखा ?' और द्वितीय का विषय था, 'वह धर्म जिसमे हम पैदा हुए।' बगला भाषा मे एक शिष्य ने प्रथम भाषण की जो रिपोर्ट ली, उसमे व्याख्यान का साराश आ गया है और उसीका हिन्दी रूपान्तर निम्नलिखित है

## स्वामी जी का भाषण

सर्वप्रथम मैं इस बात पर हर्ष प्रकट करता हूँ कि मुझे पूर्वी बगाल मे आने और देश के इस भाग की सविशेष जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिला। यद्यपि मैं पश्चिम के बहुत से सभ्य देशो मे घूम चुका हूँ, पर अपने देश के इस भाग के दर्शन का सौभाग्य मुझे नही मिला था। अपनी ही जन्मभूमि बगाल के इस अचल की विशाल नदियो, विस्तृत उपजाऊ मैदानो और रमणीक ग्रामो का दर्शन पाने पर मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। मैं नही जानता था कि इस देश के जल और स्थल सभी मे इतना सौन्दर्य तथा आकर्षण भरा पडा है। किन्तु नाना देशो के भ्रमण से मुझे यह लाभ हुआ है कि मैं विशेष रूप से अपने देश के सौन्दर्य का मूल्याकन कर सकता हूँ।

इसी भाँति मैं पहले धर्म-जिज्ञासा से नाना सम्प्रदायो मे—अनेक ऐसे सम्प्रदायो मे जिन्होंने दूसरे राष्ट्रो के भावो को अपना लिया है—भ्रमण करता था, दूसरो के द्वार पर भिक्षा माँगता था। तब मैं जानता न था कि मेरे देश का धर्म, मेरी जाति का धर्म इतना सुन्दर और महान् है। कई वर्ष हुए मुझे पता लगा कि हिन्दू धर्म ससार का सर्वाधिक पूर्ण सन्तोषजनक धर्म है। अत मुझे यह देखकर हार्दिक क्लेश होता है कि यद्यपि हमारे देशवासी अप्रतिम धर्मनिष्ठ होने का दावा करते हैं, पर हमारे इस महान् देश मे यूरोपीय ढग के विचार फैलने के कारण उनमे धर्म के प्रति व्यापक उदासीनता आ गयी है। हाँ, यह वात जरूर है और उससे मैं भली भाँति अवगत हूँ कि उन्हें जिन भौतिक परिस्थितियो मे जीवन-यापन करना पडता है, वे प्रतिकूल हैं।

के लिए भी तुम्हें उद्यत रहना चाहिए और वह भी केवल यहीं नहीं वरन् सर्वत्र।

अब दूसरी बात जो ध्यान में रखने योग्य है, वह यह है कि इस मठ का उद्देश्य है 'मनुष्य' का निर्माण करना। तुम्हें केवल यही नहीं सीखना चाहिए, जो हमें ऋषियों ने सिखाया है। वे ऋषि चले गये और उनकी सम्मतियाँ भी उन्हींके साथ चली गयीं। अब तुम्हें स्वयं ऋषि बनना होगा। तुम भी वैसे ही मनुष्य हो जैसे कि बड़े से बड़े व्यक्ति जो कभी पैदा हुए, यहाँ तक कि तुम अवतारों के सदृश हो। केवल ग्रन्थों के पढ़ने से ही क्या होगा? केवल ध्यान-धारणा से भी क्या होगा तथा केवल मंत्र-तंत्र भी क्या कर सकते हैं? तुम्हें तो अपने ही पैरों पर खड़े होना चाहिए और इस नये ढंग से कार्य करना चाहिए—वह ढंग जिससे मनुष्य 'मनुष्य' बन जाता है। सच्चा 'नर' वही है जो इतना शक्तिशाली हो जितनी शक्ति स्वयं है, परन्तु फिर भी जिसका हृदय एक नारी के सदृश कोमल हो। तुम्हारे चारों ओर जो करोड़ों व्यक्ति हैं उनके लिए तुम्हारे हृदय में प्रेम भाव होना चाहिए, परन्तु साथ ही तुम लोहे के समान दृढ़ और कठोर बने रहो, पर ध्यान रहे कि साथ ही तुममें आज्ञा-पालन की नम्रता भी हो। मैं जानता हूँ कि ये गुण एक दूसरे के विरोधी प्रतीत होते हैं, परन्तु हाँ, ऐसे ही परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले गुण तुममें होने चाहिए। यदि तुम्हारे वरिष्ठ तुम्हें इस बात की आज्ञा दें कि तुम नदी में कूद पड़ो और एक मगर को पकड़ लाओ तो तुम्हारा कर्तव्य यह होना चाहिए कि पहले तुम आज्ञा-पालन करो और फिर कारण पूछो। भले ही तुम्हें दी हुई आज्ञा ठीक न हो, परन्तु फिर भी तुम पहले उसका पालन करो और फिर उसका प्रतिवाद करो। हमारे सम्प्रदायों में, विशेषकर बंगीय सम्प्रदायों में एक विशेष दोष यह है कि यदि किसीके मत में कुछ अन्तर होता है तो बिना कुछ सोचे-विचारे वह झट से एक नया सम्प्रदाय शुरू कर देता है। थोड़ा सा भी रुकने का उसमें धीरज नहीं होता। अतएव अपने संघ के प्रति तुममें अटूट श्रद्धा तथा विश्वास होना चाहिए। यहाँ अवज्ञा को तनिक भी स्थान नहीं मिल सकता और यदि कहीं वह दिखायी दे तो निर्दयतापूर्वक उसे कुचलकर नष्ट कर डालो। हमारे इस संघ में एक भी अवज्ञाकारी सदस्य नहीं रह सकता और यदि कोई हो तो उसे निकाल बाहर करो। हमारे इस शिविर में दगाबाजी नहीं चल सकती, यहाँ एक भी धोखेबाज नहीं रह सकता। इतने स्वतंत्र रहो जितनी वायु, पर हाँ, साथ ही ऐसे आज्ञापालक तथा नम्र जैसा कि यह पौधा या कुत्ता।

और मिथ्या है। लाख यत्न करो, पर इसे बिना छोडे कदापि ईश्वर को नही पा सकते। यदि यह न कर सको तो मान लो कि तुम दुर्बल हो, किन्तु स्मरण रहे कि अपने आदर्श को कदापि नीचा न करो। सडते हुए मुर्दे को सोने के पत्ते से ढकने का यत्न न करो।' अस्तु। उनके मतानुसार यदि धर्म की उपलब्धि करनी है, यदि ईश्वर की प्राप्ति करनी है तो तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है कि तुम लुकाछिपी का खेल खेलना छोड दो। मैंने क्या सीखा ? मैंने इस प्राचीन सम्प्रदाय से क्या सीखा ? यही सीखा

दुर्लभं त्रयमेवैतत् देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः।।
(विवेकचूडामणि ३)

—'मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व और महापुरुष का ससर्ग इन तीनो का मिलना बहुत दुर्लभ है। ये तीनो बिना ईश्वर की कृपा के नही मिल सकते।' मुक्ति के लिए सबसे आवश्यक वस्तु है—मनुष्यत्व या मनुष्य के रूप मे जन्म, क्योकि मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य-शरीर ही उपयुक्त है। इसके बाद चाहिए मुमुक्षुत्व। सम्प्रदाय और व्यक्ति-भेद से हमारी साधन प्रणालियाँ भिन्न भिन्न हैं। विभिन्न व्यक्ति यह भी दावा कर सकते हैं कि ज्ञानोपार्जन के उनके विशेष अधिकार एव साधन हैं और जीवन मे श्रेणी-भेद के कारण उनमे भी विभेद है, किन्तु यह नि सकोच कहा जा सकता है कि मुमुक्षुत्व के बिना ईश्वरोपलब्धि असम्भव है। मुमुक्षुत्व क्या है ? इस ससार के सुख-दु ख से छुटकारा पाने की तीव्र इच्छा, इस ससार से प्रबल निर्वेद। जिस समय भगवान् के दर्शन के लिए यह तीव्र व्याकुलता होगी उसी समय समझना कि तुम ईश्वर-प्राप्ति के अधिकारी हुए हो।

इसके बाद चाहिए ब्रह्मदर्शी महापुरुष का सग अर्थात् गुरु-लाभ। गुरु-परम्परा से बिना क्रमभग के जो शक्ति प्राप्त होती है, उसीके साथ अपना सयोग स्थापित करना होगा, क्योकि वैराग्य और तीव्र मुमुक्षुत्व रहने पर भी उसके बिना कुछ न हो सकेगा। शिष्य को चाहिए कि वह अपने गुरु को परामर्शदाता, दार्शनिक, सुहृद् और पथप्रदर्शक के रूप मे अगीकार करे। गुरु करना आवश्यक ही नही, अनिवार्य है। **श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मवित्तम।** (विवेकचूडामणि ३३) —'जिसे वेदो का रहस्य-ज्ञान है, जो निष्पाप है, जिसे कोई इच्छा न हो, जो ब्रह्म-ज्ञानियो मे श्रेष्ठ हो अर्थात् श्रोत्रिय हो, जो केवल शास्त्रो का पडित ही न हो, वरन् उनके सूक्ष्म रहस्यो का भी ज्ञाता हो और जिसे शास्त्रो के वास्तविक तात्पर्य का बोध हो'—वही गुरु होने योग्य है। 'विविध शास्त्रो को पढने मात्र से तो

वर्तमान काल में हम लोगों के बीच ऐसे कुछ सुधारक हैं जो हिन्दू जाति के पुनरुत्थान के लिए हमारे धर्म में सुधार या यों कहिए कि उलट-पलट करना चाहते हैं। निस्सन्देह उन लोगों में कुछ विचारशील व्यक्ति हैं लेकिन साथ ही ऐसे बहुत से लोग भी हैं जो अपने उद्देश्य को बिना जाने दूसरों का अन्धानुकरण करते हैं और अत्यन्त मूर्खतापूर्ण कार्य करते हैं। इस वर्ग के सुधारक हमारे धर्म में विजातीय विचारों का प्रवेश करने में बड़ा उत्साह दिखाते हैं। यह सुधारक वर्ग मूर्ति-पूजा का विरोधी है। इस दल के सुधारक कहते हैं कि हिन्दू धर्म सच्चा धर्म नहीं है क्योंकि इसमें मूर्ति-पूजा का विधान है। मूर्ति-पूजा क्या है? यह अच्छी है या बुरी—इसका अनुसन्धान कोई नहीं करता केवल दूसरों के इशारे पर वे हिन्दू धर्म को बदनाम करने का साहस करते हैं। एक दूसरा वर्ग और भी है जो हिन्दुओं के प्रत्येक रीति-रिवाजों में वैज्ञानिकता ढूँढ़ निकालने का अपार प्रयत्न कर रहा है। वे सदा विद्युत् शक्ति चुम्बकीय शक्ति वायु-कम्पन तथा उसी तरह की अन्य बातें किया करते हैं। कौन कह सकता है कि वे लोग एक दिन ईश्वर की परिभाषा करने में उसे विद्युत्-कम्पन का समूह न कह डालें! जो कुछ भी हो माँ इनका भी भला करे! जगदम्बा ही भिन्न भिन्न प्रकृतियों और प्रवृत्तियों के द्वारा अपना कार्य साधन करती है।

उक्त विचारधारों के विपरीत एक और वर्ग है, यह प्राचीन वर्ग कहता है कि हम लोग तुम्हारी बाल की खाल निकालनेवाला तर्कवाद नहीं जानते और न हमें जानने की इच्छा ही है हम लोग तो ईश्वर और आत्मा का साक्षात्कार करना चाहते हैं। हम सुख-दुःखमय इस संसार को छोड़कर इसके अतीत प्रदेश में जहाँ परम आनन्द है, जाना चाहते हैं। यह वर्ग कहता है कि 'विश्वासपूर्वक गंगा-स्नान करने से मुक्ति होती है' शिव राम विष्णु आदि किसी एक में ईश्वर-बुद्धि रखकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उपासना करने से मुक्ति होती है। मुझे गर्व है कि मैं इस दृढ़ आस्थावालों के प्राचीन वर्ग का हूँ।

इसके अतिरिक्त एक और वर्ग है जो ईश्वर और संसार दोनों की एक साथ ही उपासना करने के लिए कहता है। यह सच्चा नहीं है। वे जो कहते हैं वह उनके हृदय का भाव नहीं रहता। प्रकृत महात्माओं का उपदेश है

जहाँ राम तहँ काम नहिं जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहूँ होत नहिं रवि रजनी इक ठाम॥

महापुरुषों की वाणी हमसे इस बात की घोषणा करती है कि 'यदि ईश्वर को पाना चाहते हो, तो काम-कांचन का त्याग करना होगा। यह संसार असार, मायामय

और मिथ्या है। लाख यत्न करो, पर इसे बिना छोड़े कदापि ईश्वर को नही पा सकते। यदि यह न कर सको तो मान लो कि तुम दुर्बल हो, किन्तु स्मरण रहे कि अपने आदर्श को कदापि नीचा न करो। सड़ते हुए मुर्दे को सोने के पत्ते से ढकने का यत्न न करो!' अस्तु। उनके मतानुसार यदि धर्म की उपलब्धि करनी है, यदि ईश्वर की प्राप्ति करनी है तो तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है कि तुम लुकाछिपी का खेल खेलना छोड़ दो। मैंने क्या सीखा ? मैंने इस प्राचीन सम्प्रदाय से क्या सीखा ? यही सीखा

**दुर्लभं त्रयमेवैतत् देवानुग्रहहेतुकम्।**
**मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः॥**
(विवेकचूडामणि ३)

—'मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व और महापुरुष का संसर्ग इन तीनो का मिलना बहुत दुर्लभ है। ये तीनो बिना ईश्वर की कृपा के नही मिल सकते।' मुक्ति के लिए सबसे आवश्यक वस्तु है—मनुष्यत्व या मनुष्य के रूप मे जन्म, क्योकि मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य-शरीर ही उपयुक्त है। इसके बाद चाहिए मुमुक्षुत्व। सम्प्रदाय और व्यक्ति-भेद से हमारी साधन प्रणालियाँ भिन्न भिन्न है। विभिन्न व्यक्ति यह भी दावा कर सकते हैं कि ज्ञानोपार्जन के उनके विशेष अधिकार एवं साधन हैं और जीवन मे श्रेणी-भेद के कारण उनमे भी विभेद है, किन्तु यह निःसकोच कहा जा सकता है कि मुमुक्षुत्व के बिना ईश्वरोपलब्धि असम्भव है। मुमुक्षुत्व क्या है ? इस ससार के सुख-दुःख से छुटकारा पाने की तीव्र इच्छा, इस ससार से प्रबल निर्वेद। जिस समय भगवान् के दर्शन के लिए यह तीव्र व्याकुलता होगी उसी समय समझना कि तुम ईश्वर-प्राप्ति के अधिकारी हुए हो।

इसके बाद चाहिए ब्रह्मदर्शी महापुरुष का सग अर्थात् गुरु-लाभ। गुरु-परम्परा से बिना क्रमभग के जो शक्ति प्राप्त होती है, उसीके साथ अपना सयोग स्थापित करना होगा, क्योकि वैराग्य और तीव्र मुमुक्षुत्व रहने पर भी उसके बिना कुछ न हो सकेगा। शिष्य को चाहिए कि वह अपने गुरु को परामर्शदाता, दार्शनिक, सुहृद् और पथप्रदर्शक के रूप मे अगीकार करे। गुरु करना आवश्यक ही नही, अनिवार्य है। **श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मवित्तमः।** (विवेकचूडामणि ३३) —'जिसे वेदो का रहस्य-ज्ञान है, जो निष्पाप है, जिसे कोई इच्छा न हो, जो ब्रह्म-ज्ञानियों में श्रेष्ठ हो अर्थात् श्रोत्रिय हो, जो केवल शास्त्रो का पडित ही न हो, वरन् उनके सूक्ष्म रहस्यो का भी ज्ञाता हो और जिसे शास्त्रो के वास्तविक तात्पर्य का बोध हो'—वही गुरु होने योग्य है। 'विविध शास्त्रो को पढ़ने मात्र से तो

वे सब तोते बन गये हैं। उस व्यक्ति को वास्तविक पण्डित समझना चाहिए जिसने शास्त्रों का केवल एक अक्षर पढ़कर (विष्णु) प्रेम का काम कर लिया।"[1] केवल पोथी ज्ञान से पण्डित हुए लोगों से काम न चलेगा। आजकल प्रत्येक व्यक्ति गुरु बनना चाहता है। कंगाल भिक्षुक लाख रुपये का दान करना चाहता है! जो गुरु अवश्य ही ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसे पाप छू तक न गया हो, जो अकामहत हो, अर्थात् जो कामनाओं से सन्तप्त न हो, विशुद्ध परोपकार के सिवा जिसका दूसरा कोई इरादा न हो, जो अहेतुक दयासिन्धु हो और जो नाम-यश के लिए अथवा किसी स्वार्थ-सिद्धि के लिए धर्मोपदेश न करता हो। जो ब्रह्म को भली भाँति जान चुका है, अर्थात् जिसने ब्रह्म-साक्षात्कार कर लिया है, जिसके लिए ईश्वर 'करतलामलकवत्' है—श्रुति का कहना है कि वही गुरु होने योग्य है। जब यह आध्यात्मिक संयोग स्थापित हो जाता है तब ईश्वर का साक्षात्कार होता है—तब ईश्वर-दृष्टि सुलभ होती है।

गुरु से दीक्षा लेने के पश्चात् सत्यान्वेषी साधक के लिए आवश्यकता पड़ती है अभ्यास की। गुरूपदिष्ट साधनों के सहारे इष्ट के निरन्तर ध्यान द्वारा सत्य को कार्यरूप में परिणत करने के सच्चे और बारंबार प्रयास को अभ्यास कहते हैं। मनुष्य ईश्वर प्राप्ति के लिए चाहे कितना ही व्याकुल क्यों न हो, चाहे कितना ही अच्छा गुरु क्यों न मिले, साधना—अभ्यास बिना किये उसे कभी ईश्वरोपलब्धि न होगी। जिस समय अभ्यास दृढ़ हो जायगा, उसी समय ईश्वर प्रत्यक्ष होगा।

इसीलिए कहता हूँ कि हे हिन्दुओ, हे आर्य सन्तानो, तुम लोग हमारे धर्म के, हिन्दुओं के इस महान् आदर्श को कभी न भूलो। हिन्दुओं का प्रधान लक्ष्य इस भवसागर के पार जाना है—केवल इसी संसार को छोड़ना होगा, ऐसा नहीं है, अपितु स्वर्ग को भी छोड़ना पड़ेगा—अशुभ के ही छोड़ने से काम नहीं चलेगा, शुभ का भी त्याग आवश्यक है, और इसी प्रकार सृष्टि-संसार, बुरा-भला इन सबके अतीत होना होगा और अन्ततोगत्वा सच्चिदानन्द ब्रह्म का साक्षात्कार करना होगा।

---

१ पोथी पढ़ गुनी भयो, पंडित भया न कोय।
अक्षर एक जो प्रेम के पढ़े तो पंडित होय॥

# वह धर्म जिसमें हम पैदा हुए

३१ मार्च, १९०१ को ढाका मे एक सभा का आयोजन खुले मैदान मे किया गया था। स्वामी जी ने इस सभा मे उपर्युक्त विषय पर अंग्रेजी मे दो घण्टे व्याख्यान दिया। श्रोताओ की बहुत बडी भीड एकत्र थी। एक शिष्य ने उक्त भाषण की रिपोर्ट बंगला मे तैयार की, जिसका हिन्दी रूपान्तर निम्नलिखित है

प्राचीन काल मे हमारे देश मे आध्यात्मिक भाव की अतिशय उन्नति हुई थी। हमे आज वही प्राचीन गाथा स्मरण करनी होगी। किन्तु प्राचीन गौरव के अनुचिन्तन मे सबसे बडी आपत्ति यह है कि हम कोई नवीन काम करना पसन्द नही करते और केवल अपने प्राचीन गौरव के स्मरण और कीर्तन से ही सन्तुष्ट होकर अपने को सर्वश्रेष्ठ समझने लग जाते है। हमे इस सम्बन्ध मे सावधान रहना चाहिए। यह सही है कि प्राचीन काल मे ऐसे अनेक ऋषि-महर्षि थे जिन्हे सत्य का साक्षात्कार हुआ था। किन्तु प्राचीन गौरव के स्मरण से वास्तविक उपकार तभी होगा, जब हम भी उनके सदृश ऋषि हो सकें। केवल इतना ही नही, मेरा तो दृढ विश्वास है कि हम और भी श्रेष्ठ ऋषि हो सकेंगे। भूतकाल मे हमारी खूब उन्नति हुई थी—मुझे उसे स्मरण करते हुए बडे गौरव का अनुभव होता है। वर्तमान अवनत अवस्था को देखकर भी मैं दु खी नही होता और भविष्य मे जो होगा, उसकी कल्पना कर मैं आशान्वित होता हूँ। ऐसा क्यो ? क्योकि मैं जानता हूँ कि बीज का सम्पूर्ण रूपान्तरण होना होता है , हाँ, जब बीज का बीजत्व भाव नष्ट होगा, तभी वह वृक्ष हो सकेगा। इसी प्रकार हमारी वर्तमान अवनत अवस्था के भीतर ही, चाहे थोडे समय के लिए ही, भविष्य की हमारी धार्मिक महानता की सम्भावनाएँ प्रसुप्त हैं जो अधिक शक्तिशाली एव गौरवशाली रूपो मे उठ खडी होने के लिए तत्पर हैं। अब हमे विचार करना चाहिए कि जिस धर्म मे हमने जन्म लिया है, उसमे सहमत होने के लिए समान भूमियाँ क्या हैं ? ऊपर से विचार करने पर हमे पता चलता है कि हमारे धर्म मे नाना प्रकार के विरोध हैं। कुछ लोग अद्वैतवादी, कुछ विशिष्टाद्वैतवादी और कुछ द्वैतवादी हैं। कोई अवतार मानते हैं, कोई मूर्ति-पूजा मे विश्वास रखते हैं तो कोई निराकारवादी हैं। आचार के सम्बन्ध मे भी नाना प्रकार की विभिन्नता दिखायी पडती है। जाट लोग मुसलमान या ईसाई की कन्या से विवाह करने पर भी जातिच्युत नही होते। वे बिना किसी विरोध के सब हिन्दू मन्दिरो

में प्रवेश कर सकते हैं। पंजाब के अनेक गाँवों में जो व्यक्ति सूअर का मांस नहीं खाता उसे लोग हिन्दू समझते ही नहीं। नेपाल में ब्राह्मण चारों वर्णों में विवाह कर सकता है, जब कि बंगाल में ब्राह्मण अपनी जाति की अन्य शाखाओं में भी विवाह नहीं कर सकता। इसी प्रकार की और भी विभिन्नताएँ देखने में आती हैं। किन्तु इन सभी विभिन्नताओं के बावजूद एकता का एक समान बिन्दु है कि हमारे धर्म के अन्तर्विभागों में भी एकता की एक समान भूमि है जैसे कोई भी हिन्दू गोमांस भक्षण नहीं करता। इसी प्रकार हमारे धर्म के सभी सम्प्रदायों में एक महान सामंजस्य है।

पहले तो शास्त्रों की आलोचना करते समय एक महत्त्वपूर्ण तथ्य हमारे सामने आता है कि केवल उन्हीं धर्मों ने उत्तरोत्तर उन्नति की जिनके पास अपने एक या अनेक शास्त्र थे फिर चाहे उन पर कितने ही अत्याचार किये गये हों। यूनानी धर्म अपनी विशिष्ट सुन्दरताओं के होते हुए भी शास्त्र के अभाव में लुप्त हो गया जब कि यहूदी धर्म आदि धर्म-ग्रन्थ (Old Testament) के बल पर आज भी अक्षुण्ण रूप से प्रतापशाली है। संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद पर आधारित होने के कारण यही हाल हिन्दू धर्म का भी है। वेद के दो भाग हैं—कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। भारतवर्ष के सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य से कर्मकाण्ड का आजकल लोप हो गया है, हालाँकि दक्षिण में अब भी कुछ ब्राह्मण कभी कभी अजा-बलि देकर यज्ञ करते हैं, और हमारे विवाह-श्राद्धादि के मन्त्रों में भी वैदिक क्रियाकाण्ड का आभास दिखायी पड़ जाता है। इस समय उसे पूर्व की भाँति पुनः प्रतिष्ठित करने का उपाय नहीं है। कुमारिल भट्ट ने एक बार चेष्टा की थी किन्तु वे अपने प्रयत्न में असफल ही रहे। इसके बाद ज्ञानकाण्ड है, जिसे उपनिषद्, वेदान्त या श्रुति भी कहते हैं। आचार्य लोग जब कभी श्रुति का कोई वाक्य उद्धृत करते हैं तो वह उपनिषद् का ही होता है। यही वेदान्त धर्म इस समय हिन्दुओं का धर्म है। यदि कोई सम्प्रदाय सिद्धान्तों की दृढ़ प्रतिष्ठा करना चाहता है तो उसे वेदान्त का ही आधार लेना होगा। द्वैतवादी अथवा अद्वैतवादी सभी को उसी आधार की शरण लेनी होगी। यहाँ तक कि वैष्णवों को भी अपने सिद्धान्तों की सत्यता सिद्ध करने के लिए गोपालतापनी उपनिषद् की शरण लेनी पड़ती है। यदि किसी नये सम्प्रदाय को अपने सिद्धान्तों के पुष्टिकारक वचन उपनिषद् में नहीं मिलते तो वे एक नये उपनिषद् की रचना करके उसे व्यवहृत करने का यत्न करते हैं। अतीत में इसके कतिपय उदाहरण मिलते हैं।

वेदों के सम्बन्ध में हिन्दुओं की यह धारणा है कि वे प्राचीन काल में किसी व्यक्ति विशेष की रचना अथवा ग्रन्थ मात्र नहीं हैं। वे उन्हें ईश्वर की अनन्त

ज्ञानराशि मानते हैं जो किसी समय व्यक्त और किसी समय अव्यक्त रहती है। टीकाकार सायणाचार्य ने एक स्थान पर लिखा है, **यो वेदेभ्योऽखिल जगत् निर्ममे**—जिसने वेदज्ञान के प्रभाव से सारे जगत् की सृष्टि की है। वेद के रचयिता को कभी किसीने नही देखा। इसलिए इसकी कल्पना करना भी असम्भव है। ऋषि लोग उन मन्त्रो अथवा शाश्वत नियमो के मात्र अन्वेषक थे। उन्होंने आदि काल से स्थित ज्ञानराशि वेदो का साक्षात्कार किया था।

ये ऋषिगण कौन थे ? वात्स्यायन कहते हैं, जिसने यथाविहित धर्म की प्रत्यक्ष अनुभूति की है, केवल वही ऋषि हो सकता है, चाहे वह जन्म से म्लेच्छ ही क्यो न हो। इसी लिए प्राचीन काल मे जारज-पुत्र वशिष्ठ, धीवर-तनय व्यास, दासी-पुत्र नारद प्रभृति ऋषि कहलाते थे। सच्ची बात यह है कि सत्य का साक्षात्कार हो जाने पर किसी प्रकार का भेद-भाव नही रह जाता। उपर्युक्त व्यक्ति यदि ऋषि हो सकते हैं तो हे आधुनिक कुलीन ब्राह्मण, तुम सभी और भी उच्च ऋषि हो सकते हो। इसी ऋषित्व के लाभ करने की चेष्टा करो, अपना लक्ष्य प्राप्त करने तक रुको नही, समस्त ससार तुम्हारे चरणो के सामने स्वय ही नत हो जायगा।

ये वेद ही हमारे एकमात्र प्रमाण हैं और इन पर सबका अधिकार है।

**यथेमा वाच कल्याणीमावादानि जनेभ्य॰।**
**ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥**[1]

क्या तुम हमे वेद मे ऐसा कोई प्रमाण दिखला सकते हो, जिससे यह सिद्ध हो जाय कि वेद मे सबका अधिकार नही है ? पुराणो मे अवश्य लिखा है कि वेद की अमुक शाखा मे अमुक जाति का अधिकार है या अमुक अश सत्ययुग के लिए और अमुक अश कलियुग के लिए है। किन्तु, ध्यान रखो, वेद मे इस प्रकार का कोई जिक्र नही है, ऐसा केवल पुराणो मे ही है। क्या नौकर कभी अपने मालिक को आज्ञा दे सकता है ? स्मृति, पुराण, तन्त्र—ये सब वही तक ग्राह्य हैं, जहाँ तक वे वेद का अनुमोदन करते हैं। ऐसा न होने पर उन्हे अविश्वसनीय मान कर त्याग देना चाहिए। किन्तु आजकल हम लोगो ने पुराणो को वेद की अपेक्षा श्रेष्ठ समझ रखा है। वेदो की चर्चा तो बगाल प्रान्त मे लोप ही हो गयी है। मैं वह दिन शीघ्र देखना चाहता हूँ, जिस दिन प्रत्येक घर मे गृहदेवता शालग्राम की मूर्ति के साथ साथ वेद की पूजा भी होने लगेगी, जब बच्चे, बूढे और स्त्रियाँ वेद-अर्चना का शुभारम्भ करेंगे।

---

१ शुक्ल यजुर्वेद, माध्यन्दिनीया शाखा, २६ अध्याय, २ मन्त्र

वेदों के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों के सिद्धान्तों में मेरा विश्वास नहीं है। आज वेदों का समय वे कुछ निश्चित करते हैं और कल उसे बदलकर फिर एक हजार वर्ष पीछे घसीट ले जाते हैं। पुराणों के विषय में हम ऊपर कह आये हैं कि वे वहीं तक ग्राह्य हैं, जहाँ तक वेदों का समर्थन करते हैं। पुराणों में ऐसी अनेक बातें हैं जिनका वेदों के साथ मेल नहीं खाता। उदाहरण के लिए पुराण में लिखा है कि कोई व्यक्ति दस हजार वर्ष तक और कोई दूसरे बीस हजार वर्ष तक जीवित रहे किन्तु वेदों में लिखा है—शतायुर्वै पुरुषः। इनमें से हमारे लिए कौन सा मत स्वीकार्य है? निश्चय ही वेद। इस प्रकार के कथनों के बावजूद मैं पुराणों की निन्दा नहीं करता। उनमें योग भक्ति ज्ञान और कर्म की अनेक सुन्दर सुन्दर बातें देखने में आती हैं और हमें उन सभी को ग्रहण करना ही चाहिए। इसके बाद हैं तन्त्र। तन्त्र का वास्तविक अर्थ है शास्त्र जैसे कापिल तन्त्र। किन्तु तन्त्र शब्द प्रायः सीमित अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। बौद्ध धर्मावलम्बी एवं अहिंसा के प्रचारक-प्रसारक नृपतियों के शासन-काल में वैदिक याग-यज्ञों का लोप हो गया। तब राजदण्ड के भय से कोई जीव हिंसा नहीं कर सकता था। किन्तु कालान्तर में बौद्ध धर्म में ही इन याग-यज्ञों के श्रेष्ठ अंश गुप्त रूप से सम्मिलित हो गये। इसीसे तन्त्रों की उत्पत्ति हुई। तन्त्रों में वामाचार प्रभृति बहुत से अंश खराब होने पर भी तन्त्रों को लोग जितना खराब समझते हैं, वे उतने खराब नहीं हैं। उनमें वेदान्त सम्बन्धी कुछ उच्च एवं सूक्ष्म विचार निहित हैं। वास्तविक बात तो यह है कि वेदों के ब्राह्मण भाग को ही कुछ परिवर्तित कर तन्त्रों में समाहित कर लिया गया था। वर्तमान काल की पूजा विधियाँ और उपासना पद्धति तन्त्रों के अनुसार होती है।

अब हमें अपने धर्म के सिद्धान्तों पर भी थोड़ा विचार करना चाहिए। हमारे धर्म के सम्प्रदायों में अनेक विभिन्नताएँ एवं अन्तर्विरोध होते हुए भी एकता के अनेक क्षेत्र हैं। प्रथम सभी सम्प्रदाय तीन चीजों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं—ईश्वर, आत्मा और जगत्। ईश्वर वह है, जो अनन्त काल से सम्पूर्ण जगत् का सर्जन पालन और संहार करता आ रहा है। सांख्य दर्शन के अतिरिक्त सभी इस सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं। इसके बाद आत्मा का सिद्धान्त और पुनर्जन्म की बात आती है। इसके अनुसार असंख्य जीवात्माएँ बार बार अपने कर्मों के अनुसार शरीर धारण कर जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमती रहती हैं। इसीको संसारवाद या प्रचलित रूप से पुनर्जन्मवाद कहते हैं। इसके बाद यह अनादि अनन्त जगत् है। यद्यपि कुछ लोग इन तीनों को भिन्न भिन्न मानते हैं तथा कुछ इन्हें एक ही के भिन्न भिन्न तीन रूप और कुछ अन्य प्रकार से इनका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। पर इन तीनों का अस्तित्व वे सभी मानते हैं।

यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि चिर काल से हिन्दू आत्मा को मन से पृथक् मानते आ रहे है। पाश्चात्य विद्वान् मन के परे किसी चीज़ की कल्पना नहीं कर सके। वे लोग जगत् को आनन्दपूर्ण मानते हैं और इसीलिए उसे मौज मारने की जगह समझते हैं। जब कि प्राच्य लोगो की जन्म से ही यह धारणा होती है कि यह ससार नित्य परिवर्तनशील तथा दु खपूर्ण है। और इसीलिए यह मिथ्या के सिवा कुछ नही है और न ही इसके क्षणिक सुखो के लिए आत्मा का धन गँवाया जा सकता है। इसी कारण पाश्चात्य लोग सघबद्ध कर्म मे विशेष पटु है और प्राच्य लोग अन्तर्जगत् के अन्वेषण मे ही विशेष साहस दिखाते हैं।

जो कुछ भी हो, यहाँ अब हमे हिन्दू धर्म की दो एक और बातो पर विचार करना आवश्यक है। हिन्दुओ मे अवतारवाद प्रचलित है। वेदो मे हमे केवल मत्स्यावतार का ही उल्लेख मिलता है। सभी लोग इस पर विश्वास करते हैं या नही, यह कोई विचारणीय विषय नही है। पर इस अवतारवाद का वास्तविक अर्थ है मनुष्य-पूजा—मनुष्य के भीतर ईश्वर को साक्षात् करना ही ईश्वर का वास्तविक साक्षात्कार करना है। हिन्दू प्रकृति के द्वारा प्रकृति के ईश्वर तक नही पहुँचते—मनुष्य के द्वारा मनुष्य के ईश्वर के निकट जाते हैं।

इसके बाद है मूर्ति-पूजा। शास्त्रो मे विहित हर एक शुभ कर्म मे उपास्य पच देवताओ के अतिरिक्त अन्य देवता केवल उनके द्वारा अधिष्ठित पदो के भिन्न भिन्न नाम मात्र हैं। किन्तु ये पाँचो उपास्य देवता भी उसी एक भगवान् के भिन्न भिन्न नाम मात्र हैं। यह बाह्य मूर्ति-पूजा हमारे सब शास्त्रो मे अधमतम कोटि की पूजा मानी गयी है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नही है कि मूर्ति-पूजा करना गलत है। वर्तमान समय मे प्रचलित इस मूर्ति-पूजा के भीतर नाना प्रकार के कुत्सित भावो के प्रवेश कर लेने पर भी, मैं उसकी निन्दा नही कर सकता। यदि उसी कट्टर मूर्ति-पूजक ब्राह्मण (श्री रामकृष्ण) की पद-धूलि से मैं पुनीत न बनता तो आज मैं कहाँ होता ?

वे सुधारक जो मूर्ति-पूजा के विरुद्ध प्रचार करते हैं अथवा उसकी निन्दा करते है, उनसे मैं कहूँगा कि भाइयो, यदि तुम बिना किसी सहायता के निराकार ईश्वर की उपासना कर सकते हो तो तुम भले ही वैसा करो, किन्तु जो लोग ऐसा नही कर सकते हैं, उनकी निन्दा क्यो करते हो ? प्राचीनतम समय का गौरवान्वित स्मृति-चिह्नरूप एक सुन्दर एव भव्य मकान उपेक्षा या अव्यवहार के कारण जर्जर हो गया है। यह हो सकता है कि उसमे हर कही धूल जमी हुई है, यह भी हो सकता है कि उसके कुछ हिस्से जमीन पर भहरा पडे हो। पर तुम उसे क्या करोगे ? क्या तुम उसकी सफाई-मरम्मत करके उसकी पुरानी धज लौटा दोगे या उसे, उस इमारत को गिरा कर उसके स्थान पर एक सदिग्ध स्थायित्व वाले कुत्सित आधुनिक योजना के

अनुसार कोई दूसरी इमारत नहीं बनाओगे? हमें उसका सुधार करना होगा, इसके अर्थ हैं उसकी उचित मरम्मत-अरम्मत करना, न कि उसे ध्वस्त कर देना। यहीं पर सुधार का काम समाप्त हो जाता है। यदि ऐसा कर सकते हो तो करो, अन्यथा दूर रहो। जीर्णोद्धार हो जाने पर उसकी और क्या आवश्यकता? किन्तु हमारे देश के सुधारक एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय का संगठन करना चाहते हैं। तो भी उन्होंने बड़ा कार्य किया है। ईश्वर के आशीर्वादों की उनके सिर पर वर्षा हो। किन्तु तुम लोग अपने को क्यों महान् समुदाय से पृथक् करना चाहते हो? हिन्दू नाम लेने ही से क्यों लज्जित होते हो?—जो कि तुम लोगों की महान् और गौरवपूर्ण सम्पत्ति है। ओ अमर पुत्रो, मेरे देशवासियो, यह हमारा जातीय जहाज युगों तक मुसाफिरों को ले जाता, ले जाता रहा है और इसने अपनी अतुलनीय सम्पदा से संसार को समृद्ध बनाया है। अनेक गौरवपूर्ण शताब्दियों तक हमारा यह जहाज जीवन-सागर में चलता रहा है और करोड़ों आत्माओं को उसने दुःख से दूर संसार के उस पार पहुँचाया है। आज शायद उसमें एक छेद हो गया हो और इससे वह क्षत हो गया हो, यह चाहे तुम्हारी अपनी गलती से या चाहे किसी और कारण से। तुम जो इस जहाज पर चढ़े हुए हो, अब क्या करोगे? क्या तुम दुर्वचन कहते हुए आपस में झगड़ोगे? क्या तुम सब मिलकर उस छेद को बन्द करने की पूर्ण चेष्टा करोगे? हम सब लोगों को अपनी पूरी जान लड़ाकर खुशी खुशी उसे बन्द कर देना चाहिए। अगर न कर सकें तो हम लोगों को एक साथ डूब मरना होगा।

और ब्राह्मणों से भी मैं कहना चाहता हूँ कि तुम्हारा जन्मगत तथा वंशगत अभिमान मिथ्या है, उसे छोड़ दो। शास्त्रों के अनुसार तुम में भी अब ब्राह्मणत्व शेष नहीं रह गया, क्योंकि तुम भी इतने दिनों से म्लेच्छ राज्य में रह रहे हो। यदि तुम लोगों को अपने पूर्वजों की कथाओं में विश्वास है तो जिस प्रकार प्राचीन कुमारिल भट्ट ने बौद्धों के संहार करने के अभिप्राय से पहले बौद्धों का शिष्यत्व ग्रहण किया पर अन्त में उनकी हत्या के प्रायश्चित के लिए उन्होंने तुषाग्नि में प्रवेश किया, उसी प्रकार तुम भी तुषाग्नि में प्रवेश करो। यदि ऐसा न कर सको तो अपनी दुर्बलता स्वीकार कर लो। और सभी के लिए ज्ञान का द्वार खोल दो और पददलित जनता को उसका उचित एवं न्याय्य अधिकार दे दो।

# पत्रावली—८

# पत्रावली

(स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखित)

हाई व्यू, कैवरशम्, रीडिंग,
३ जुलाई, १८९६

प्रिय शशि,

इस पत्र को देखते ही काली (स्वामी अभेदानन्द) को इंग्लैण्ड रवाना कर देना। पहले पत्र मे ही तुम्हे सब कुछ लिख चुका हूँ। कलकत्ते के मेसर्स ग्रिण्डले कम्पनी के पास उसका द्वितीय श्रेणी का मार्ग-व्यय तथा वस्त्रादि खरीदने के लिए आवश्यक धन भी भेजा जा चुका है। अधिक वस्त्रादि की आवश्यकता नही है।

काली को अपने साथ कुछ पुस्तकें लानी होगी। मेरे पास केवल ऋग्वेद-संहिता है। यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्वन् संहिताएँ एव शतपथादि जितने भी 'ब्राह्मण' प्राप्त हो सके तथा कुछ सूत्र एव यास्क के निरुक्त यदि उपलब्ध हो तो इन ग्रन्थो को वह अपने ही साथ लेता आये। अर्थात् इन पुस्तको की मुझे आवश्यकता है। उनको काठ के बक्स मे भरकर लाने की व्यवस्था करे।

शरत् के आने मे जैसा विलम्ब हुआ था, वैसा नही होना चाहिए, काली फौरन आये। शरत् अमेरिका रवाना हो चुका है, क्योकि यहाँ पर उसकी कोई आवश्यकता नही रह गयी। कहने का मतलब यह कि वह छ महीने की देर करके आया और फिर जब वह आया, उस समय मैं खुद ही यहाँ पहुँच चुका था। काली के बारे मे यह बात नही होनी चाहिए। शरत् के आने के समय जैसे चिट्ठी खो जाने से गड़बड़ी हुई थी, अब की बार वैसे ही कही चिट्ठी न खो जाय। शीघ्रता से उसे भेज देना।

सस्नेह,
विवेकानन्द

धीरे उस अवस्था की ओर बढ रहा हूँ, जहाँ खुद 'शैतान' को भी, अगर वह हो तो मैं प्यार कर सकूँगा।

बीस वर्ष की अवस्था मे मैं अत्यन्त असहिष्णु और कट्टर था। कलकत्ते मे सडको के जिस किनारे पर थियेटर हैं, मैं उस ओर के पैदल-मार्ग से ही नही चलता था। अब तैंतीस वर्ष की उम्र मे मैं वेश्याओ के साथ एक ही मकान मे ठहर सकता हूँ और उनसे तिरस्कार का एक शब्द कहने का विचार भी मेरे मन मे नही आयेगा। क्या यह अधोगति है? अथवा मेरा हृदय विस्तृत होता हुआ मुझे उस विश्वव्यापी प्रेम की ओर ले जा रहा है, जो साक्षात् भगवान् है? लोग कहते है कि वह मनुष्य, जो अपने चारो ओर होनेवाली बुराइयो को नही देख पाता, अच्छा काम नही कर सकता, उसकी परिणति एक तरह के भाग्यवाद मे होती है। मैं तो ऐसा नही देखता। वरन् मेरी कार्य करने की शक्ति अत्यधिक बढ रही है और अत्यधिक प्रभावशील भी होती जा रही है। कभी कभी मुझे एक प्रकार का दिव्य भावावेश होता है। ऐसा अनुभव करता हूँ कि मैं प्रत्येक प्राणी और वस्तु को आशीर्वाद दूँ—प्रत्येक से प्रेम करूँ और गले लगा लूँ और मैं यह भी देखता हूँ कि बुराई एक भ्रान्ति मात्र है। प्रिय फ्रैन्सिस, इस समय मैं ऐसी ही अवस्था मे हूँ और अपने प्रति तुम्हारे तथा श्रीमती लेगेट के प्रेम और सहानुभूति का स्मरण कर मैं सचमुच आनन्द के आँसू बहा रहा हूँ। मैं जिस दिन पैदा हुआ था, उस दिन को धन्यवाद देता हूँ। यहाँ पर मुझे कितनी सहानुभूति, कितना प्रेम मिला है! और जिस अनन्त प्रेमस्वरूप भगवान् ने मुझे जन्म दिया है, उसने मेरे हर एक भले और बुरे (बुरे शब्द से डरो मत) काम पर दृष्टि रखी है—क्योकि मैं उसीके हाथ के एक औजार के सिवा और हूँ ही क्या, और रहा ही क्या? उसीकी सेवा के लिए मैंने अपना सब कुछ—अपने प्रियजनो को, अपना सुख, अपना जीवन—त्याग दिया है। वह मेरा लीलामय प्रियतम है और मैं उसकी लीला का साथी हूँ। इस विश्व मे कोई युक्ति-परिपाटी नही है। ईश्वर पर भला किस युक्ति का वश चलेगा? वह लीलामय इस नाटक की समस्त भूमिकाओं पर हास्य और रुदन का अभिनय कर रहा है। जैसा 'जो' कहती हैं—अजब तमाशा है! अजब तमाशा है!

यह दुनिया बडे मजे की जगह है, और सबसे मजेदार है—वह असीम प्रियतम! क्या यह तमाशा नही है? सब एक दूसरे के भाई हो या खेल के साथी, पर वास्तव मे हैं ये मानो पाठशाला के हल्ला मचानेवाले बच्चे, जो कि इस ससाररूपी मैदान मे खेल-कूद करने के लिए छोड दिये गये हैं। यही है न? किसकी तारीफ करूँ और किसे बुरा कहूँ—सब तो उसीका खेल है। लोग इसकी व्याख्या चाहते है। पर ईश्वर की व्याख्या तुम कैसे करोगे? वह मस्तिष्कहीन है, उसके पास युक्ति भी

(फैन्सिस लेगेट को लिखित)

६३ सेन्ट जार्ज्स रोड, लन्दन
६ जुलाई, १८९६

प्रिय फैन्सिस,

अटलान्टिक महासागर के इस पार मेरा कार्य बहुत अच्छी रीति से चल रहा है।

मेरी रविवार की वक्तृताएँ बहुत सफल हुईं और उसी तरह कक्षाएँ भी। काम का मौसम खत्म हो चुका है और मैं भी बेहद थक चुका हूँ। अब मैं कुमारी मूलर के साथ स्विटज़रलैण्ड के भ्रमण के लिए जा रहा हूँ। गाल्सवर्दी परिवार ने मेरे साथ बड़ा सदय व्यवहार किया है। जो[1] ने बड़ी चतुरता से उन्हें मेरी तरफ आकृष्ट किया। उनकी चतुरता और शान्तिपूर्ण कार्य-शैली की मैं मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता हूँ। वे एक राजनीतिज्ञ कुशल महिला कही जा सकती हैं। वे एक राज्य चला सकती हैं। मनुष्य में ऐसी प्रखर, साथ ही अच्छी सहज-बुद्धि मैंने विरले ही देखी है। अगली शरद् ऋतु में मैं अमेरिका लौटूँगा और वहाँ का कार्य फिर आरम्भ करूँगा।

परसों रात को मैं श्रीमती मार्टिन के यहाँ एक पार्टी में गया था, जिसके सम्बन्ध में तुमने अवश्य ही 'जो' से बहुत कुछ सुना होगा।

इंग्लैण्ड में यह कार्य चुपचाप पर निश्चित रूप से बढ़ रहा है। यहाँ प्रायः हर दूसरे पुरुष अथवा स्त्री ने मेरे पास आकर मेरे कार्य के सम्बन्ध में बातचीत की। ब्रिटिश साम्राज्य के कितने ही दोष क्यों न हों, पर भाव-प्रचार का ऐसा उत्कृष्ट यन्त्र अब तक कहीं नहीं रहा है। मैं इस यन्त्र के केन्द्रस्थल में अपने विचार रख देना चाहता हूँ और वे सारी दुनिया में फैल जायँगे। यह सच है कि सभी बड़े काम बहुत धीरे धीरे होते हैं, और उनकी राह में असंख्य विघ्न उपस्थित होते हैं, विशेषकर इसलिए कि हम हिन्दू पराधीन जाति हैं। परन्तु इसी कारण हमें सफलता अवश्य मिलेगी, क्योंकि आध्यात्मिक आदर्श सदा पददलित जातियों में से ही पैदा हुए हैं। यहूदी अपने आध्यात्मिक आदर्शों से रोम साम्राज्य पर छा गये थे। तुम्हें यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि मैं भी दिनोंदिन धैर्य और विशेषकर सहानुभूति के सबक सीख रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि शक्तिशाली ऐंग्लोइण्डियनों तक के भीतर मैं परमात्मा को प्रत्यक्ष कर रहा हूँ। मेरा विचार है कि मैं धीरे

---

१ कुमारी जोसेफ़िन मैक्लिऑड

(श्रीमती ओलि वुल को लिखित)

६३, सेण्ट जार्जेस रोड, लन्दन,
८ जुलाई, १८९६

प्रिय श्रीमती वुल,

अंग्रेज जाति अत्यन्त उदार है। उस दिन करीव तीन मिनट के अन्दर ही आगामी शरद् मे कार्य सचालनार्थ नवीन मकान के लिए मेरी कक्षा से १५० पौण्ड का चन्दा मिला। यदि माँगा जाता तो तत्काल ही वे ५०० पौण्ड प्रदान करने मे किंचिन्मात्र भी नही हिचकते। किन्तु हम लोग धीरे धीरे कार्य करना चाहते हैं, एक साथ जल्दी अधिक खर्च करने का कोई अभिप्राय हमारा नही है। यहाँ पर इस कार्य का सचालन करने के लिए हमे अनेक व्यक्ति प्राप्त होगे एव वे लोग त्याग की भावना से भी कुछ कुछ परिचित हैं—अंग्रेजो के चरित्र की गहराई का पता यही मिलता है।

शुभाकाक्षी,
विवेकानन्द

(डॉ० नजुन्दा राव को लिखित)

इग्लैण्ड,
१४ जुलाई, १८९६

प्रिय नजुन्दा राव,

'प्रवुद्ध भारत' की प्रतियाँ मिली तथा उनका कक्षा मे वितरण भी कर दिया गया है। यह अत्यन्त सन्तोषजनक है, इसमे कोई सन्देह नही कि भारत मे इसकी वहुत विक्री होगी। कुछ ग्राहक तो अमेरिका मे ही बन जाने की आशा है। अमेरिका मे इसका विज्ञापन देने की व्यवस्था मैंने पहले ही कर दी है एव 'गुड इयर' ने उसे कार्य मे भी परिणत कर दिया है। किन्तु यहाँ इग्लैण्ड मे कार्य अपेक्षाकृत कुछ धीरे धीरे अग्रसर होगा। यहाँ पर वडी मुश्किल यह है कि सव कोई अपना अपना पत्र निकालना चाहते हैं। ऐसा ठीक भी है, क्योकि कोई भी विदेशी व्यक्ति असली अंग्रेजो की तरह अच्छी अंग्रेजी कभी नही लिख सकता तथा अच्छी अंग्रेजी मे लिखने से विचारो का सुदूर तक जितना विस्तार हो सकेगा उतना हिन्दू-अंग्रेजी के द्वारा नहीं। साथ ही विदेशी भाषा मे लेख लिखने की अपेक्षा कहानी लिखना और भी कठिन है।

मैं आपके लिए यहाँ ग्राहक वनाने की पूरी चेष्टा कर रहा हूँ, किन्तु आप विदेशी सहायता पर क़तई निर्भर न रहे। व्यक्ति की तरह जाति को भी अपनी सहायता

नहीं है। यह छोटे मस्तिष्क तथा सीमित तर्क-शक्तिवाले हम लोगों को मूर्ख बना रहा है, पर इस बार वह मुझे ऊँघता नहीं पा सकेगा।

मैंने दो-एक बातें सीखी हैं: प्रेम और प्रियतम—तर्क पाण्डित्य और वागाडम्बर के बहुत परे। ऐ साक़ी प्याला भर दे और हम पीकर मस्त हो जायँ।

तुम्हारा ही प्रेमोन्मत्त
विवेकानन्द

(हेल बहनों को लिखित)

लन्दन
७ जुलाई, १८९६

प्रिय बच्चियो,

यहाँ कार्य में आश्चर्यजनक प्रगति हुई। भारत का एक संन्यासी यहाँ मेरे साथ था, जिसे मैंने अमेरिका भेज दिया है। भारत से एक और संन्यासी बुला भेजा है। कार्य का समय समाप्त हो गया है, इसलिए कक्षाओं के लगने तथा रविवासरीय व्याख्यानों का कार्य भी आगामी १६ तारीख से बन्द हो जायगा। १९ तारीख को मैं करीब एक महीने के लिए शान्तिपूर्ण आवास तथा विश्राम के निमित्त स्विट्ज़रलैण्ड के पहाड़ों पर चला जाऊँगा और आगामी शरद् ऋतु में लन्दन वापस आकर फिर कार्य आरम्भ करूँगा। यहाँ का कार्य बड़ा सन्तोषजनक रहा है। यहाँ लोगों में दिलचस्पी पैदा कर मैं भारत के लिए उसकी अपेक्षा सचमुच कहीं अधिक कार्य कर रहा हूँ जो भारत में रहकर करता। माँ ने मुझको लिखा है कि यदि तुम लोग अपना मकान किराये पर उठा दो तो तुम लोगों को साथ लेकर मिस्र भ्रमण करने में उन्हें प्रसन्नता होगी। मैं तीन अंग्रेज मित्रों के साथ स्विट्ज़रलैण्ड के पहाड़ों पर जा रहा हूँ। बाद में शीत ऋतु के अन्त के करीब कुछ अंग्रेज मित्रों के साथ भारत जाने की मुझे आशा है। वे लोग वहाँ मेरे मठ में रहनेवाले हैं, जिसके निर्माण की अभी तो केवल कल्पना मात्र है। हिमालय पर्वत के अंचल में किसी जगह उसके निर्माण का उद्योग किया जा रहा है।

तुम लोग कहाँ पर हो? ग्रीष्म ऋतु का पूरा जोर है, यहाँ तक कि लन्दन में भी बड़ी गरमी पड़ रही है। कृपया श्रीमती ऐडम्स श्रीमती कॉन्गर और शिकागो के अन्य सभी मित्रों के प्रति मेरा हार्दिक प्रेम ज्ञापित करना।

तुम्हारा सस्नेह भाई,
विवेकानन्द

(श्री ई० टी० स्टर्डी को लिखित)

ग्रैण्ड होटल, वेलै,
स्विट्ज़रलैण्ड

प्रिय स्टर्डी,

मैं थोडा बहुत अध्ययन कर रहा हूँ—उपवास बहुत कर रहा हूँ तथा साधना उससे भी अधिक कर रहा हूँ। वनो मे भ्रमण करना अत्यन्त आनन्ददायक है। हमारे रहने का स्थान तीन विशाल हिमनदो के नीचे है तथा प्राकृतिक दृश्य भी अत्यन्त मनोरम है।

एक बात है कि स्विट्ज़रलैण्ड की झील मे आर्यों के आदि निवास-स्थान सम्बन्धी मेरे मन मे जो कुछ भी थोडा सा सन्देह था, वह एकदम निर्मूल हो चुका है, 'तातार' जाति के माथे से लम्बी चोटी हटा देने पर जो दशा होती है, स्विट्ज़रलैण्ड के निवासी ठीक उसी प्रकार के हैं।

शुभाकाक्षी,
विवेकानन्द

(श्री लाला बद्री शाह को लिखित)

द्वारा ई० टी० स्टर्डी
हाई व्यू, कैवरशम्, रीडिंग, लदन
५ अगस्त, १८९६

प्रिय शाह जी,

आपके सहृदय अभिनन्दन के लिए धन्यवाद। आपसे एक बात मैं जानना चाहता हूँ। यदि लिखने का कष्ट करें तो इस कृपा के लिए मैं विशेष अनुग्रहीत होऊँगा। मैं एक मठ स्थापित करना चाहता हूँ—मेरी इच्छा है कि वह अलमोडा मे या अच्छा हो उसके समीप किसी स्थान मे हो। मैंने सुना है कि श्री रैमसे नामक कोई सज्जन अलमोडा के समीप एक बँगले मे रहते थे, उस बँगले के चारो ओर एक बगीचा था। क्या वह बँगला खरीदा जा सकता है? उसका मूल्य क्या होगा? यदि खरीदना सम्भव न हो तो किराये पर मिल सकता है या नहीं?

क्या आप अलमोडा के समीप किसी ऐसे उपयुक्त स्थान को जानते है, जहाँ बगीचे आदि के साथ मैं अपना मठ बना सकूं? बगीचे का होना नितान्त आवश्यक है। मैं चाहता हूँ कि अलग एक छोटी सी पहाडी मिल जाय तो अच्छा हो।

आशा है कि पत्र का उत्तर शीघ्र प्राप्त होगा। आप एव अलमोडा के अन्य मित्रो को मेरा आशीर्वाद तथा प्रेम।

भवदीय,
विवेकानन्द

आप ही करनी चाहिए। यही यथार्थ स्वदेश-प्रेम है। यदि कोई जाति ऐसा करने में असमर्थ हो तो यह कहना पड़ेगा कि उसका अभी समय नहीं आया, उसे प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। मद्रास से ही यह नवीन आलोक भारत के चारों ओर फैलना चाहिए—इसी उद्देश्य को लेकर आपको कार्य-क्षेत्र में अग्रसर होना पड़ेगा। एक बात पर मुझे अपना मत व्यक्त करना है, वह यह कि पत्र का मुखपृष्ठ एकदम गँवारू, देखने में नितान्त रद्दी तथा भद्दा है। यदि सम्भव हो तो इसे बदल दें। इसे भावव्यंजक तथा साथ ही सरल बनायें—इसमें मानव-चित्र बिल्कुल नहीं होने चाहिए। 'वटवृक्ष' कतई प्रबुद्ध होने का चिह्न नहीं है और न पहाड़ न सन्त ही, यूरोपीय दम्पति भी नहीं। 'कमल' ही पुनरभ्युत्थान का प्रतीक है। 'ललित कला' में हम लोग बहुत ही पिछड़े हुए हैं, खासकर 'चित्रकला' में। उदाहरणस्वरूप वन में बसन्त के पुनरागमन का एक छोटा सा दृश्य बनाइए—नवपल्लव तथा कलिकाएँ प्रस्फुटित हो रही हों। धीरे धीरे आगे बढ़िए, सैकड़ों भाव हैं जिन्हें प्रकाश में लाया जा सकता है।

मैंने 'राजयोग' के लिए जो प्रतीक बनाया था, उसे देखिए। 'लॉगमैन ग्रीन एण्ड कम्पनी' ने यह पुस्तक प्रकाशित की है। आपको यह बम्बई में मिल सकती है। राजयोग पर न्यूयार्क में जो व्याख्यान दिये थे, वही इसमें हैं।

आगामी रविवार को मैं स्विट्जरलैण्ड जा रहा हूँ और शरत्काल में इंग्लैण्ड वापस आकर पुनः कार्य प्रारम्भ करूँगा। यदि सम्भव हो सका तो स्विट्जरलैण्ड से मैं धारावाहिक रूप से आपको कुछ लेख भेजूँगा। आपको मालूम ही होगा कि मेरे लिए विश्राम अत्यन्त आवश्यक हो उठा है।

शुभाकांक्षी
विवेकानन्द

(श्रीमती ओलि बुल को लिखित)

सैस फ़ीस, स्विट्जरलैण्ड
२५ जुलाई, १८९६

प्रिय श्रीमती बुल,

कम से कम दो मास के लिए मैं जगत् को एकदम भूल जाना चाहता हूँ और कठोर साधना करना चाहता हूँ। यही मेरा विश्राम है। पहाड़ों तथा बर्फ के दृश्य से मेरे हृदय में एक अपूर्व शान्ति सी आ जाती है। यहाँ पर मुझे जैसी अच्छी नींद आ रही है, दीर्घ काल तक मुझे वैसी नींद नहीं आयी।

सभी मित्रों को मेरा प्यार।

शुभाकांक्षी
विवेकानन्द

(श्री आलासिंगा पेरुमल को लिखित)

स्विट्ज़रलैण्ड,
६ अगस्त, १८९६

प्रिय आलासिंगा,

तुम्हारे पत्र से 'ब्रह्मवादिन्' की आर्थिक दुर्दशा का समाचार विदित हुआ। लन्दन लौटने पर तुम्हें सहायता भेजने की चेष्टा करूँगा। तुम पत्रिका का स्तर नीचा न करना, उसको उन्नत रखना, अत्यन्त शीघ्र ही मैं तुम्हारी ऐसी सहायता कर सकूँगा कि इस बेहूदे अध्यापन-कार्य से तुम्हें मुक्ति मिल सके। डरने की कोई बात नही है वत्स, सभी महान् कार्य सम्पन्न होंगे। साहस से काम लो। 'ब्रह्मवादिन्' एक रत्न है, इसे नष्ट नही होना चाहिए। यह ठीक है कि ऐसी पत्रिकाओ को सदा निजी दान से ही जीवित रखना पडता है, हम भी वैसा ही करेंगे। कुछ महीने और जमे रहो।

मैक्समूलर महोदय का श्री रामकृष्ण सम्बन्धी लेख 'दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी' मे प्रकाशित हुआ है। मुझे मिलते ही मैं उसकी एक प्रतिलिपि तुम्हारे पास भेज दूंगा। वे मुझे अत्यन्त सुन्दर पत्र लिखते हैं। श्री रामकृष्ण देव की एक बडी जीवनी लिखने के लिए वे सामग्री चाहते हैं। तुम कलकत्ते एक पत्र लिखकर सूचित कर दो कि जहाँ तक हो सके सामग्री एकत्र करके उन्हें भेज दी जाय।

अमेरिकी पत्र के लिए भेजा हुआ समाचार मुझे पहले ही मिल चुका है। भारत मे उसे प्रकाशित करने की आवश्यकता नही है, समाचार-पत्र द्वारा इस प्रकार का प्रचार बहुत हो चुका है। इस विषय मे खासकर मेरी अब कुछ भी रुचि नही है। मूर्खों को बकने दो, हमे तो अपना कार्य करना है। सत्य को कोई नही रोक सकता।

यह तो तुम्हें पता ही है कि मैं इस समय स्विट्ज़रलैण्ड मे हूँ और बराबर घूम रहा हूँ। पढने अथवा लिखने का कार्य कुछ भी नही कर पा रहा हूँ, और करना भी उचित प्रतीत नही होता। लन्दन मे मुझे एक महान् कार्य करना है, आगामी माह मे उसे प्रारम्भ करना है। अगले जाडो मे भारत लौटकर मैं वहाँ के कार्य को भी ठीक करने की कोशिश करूँगा।

सब लोगो को मेरा प्रेम! बहादुरो, कार्य करते रहो, पीछे न हटो—'नहीं' मत कहो। कार्य करते रहो—तुम्हारी सहायता के लिए प्रभु तुम्हारे पीछे खडे हैं। महाशक्ति तुम्हारे साथ विद्यमान हैं।

शुभाकांक्षी,
विवेकानन्द

(श्री ई० टी० स्टर्डी को लिखित)

स्विट्ज़रलैण्ड
५ अगस्त, १८९६

प्रिय स्टर्डी,

आज सुबह प्रोफ़ेसर मैक्समूलर का एक पत्र मिला। उससे पता चला कि श्री रामकृष्ण परमहंस सम्बन्धी उनका लेख 'दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी' पत्रिका के अगस्त अंक में प्रकाशित हुआ है। क्या तुमने उसे पढ़ा है? उन्होंने इस लेख के बारे में मेरा अभिमत माँगा है। अभी तक मैंने उसे नहीं देखा है, अतः उन्हें कुछ भी नहीं लिख पाया हूँ। यदि तुम्हें वह प्रति प्राप्त हुई हो तो कृपया मुझे भेज देना। 'ब्रह्मवादिन्' की भी यदि कोई प्रति आयी हो तो उसे भी भेजना। मैक्समूलर महोदय हमारी योजनाओं से परिचित होना चाहते हैं तथा पत्रिकाओं से भी। उन्होंने अधिकाधिक सहायता प्रदान करने का वचन दिया है तथा श्री रामकृष्ण परमहंस पर एक पुस्तक लिखने को वे प्रस्तुत हैं।

मैं समझता हूँ कि पत्रिकादि के विषय में उनके साथ तुम्हारा सीधा पत्र-व्यवहार होना ही उचित है। 'दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी' पढ़ने के बाद उनके पत्र का जवाब लिख कर जब मैं तुमको उनका पत्र भेज दूँगा, तब तुम देखोगे कि वे हमारे प्रयास पर कितने प्रसन्न हैं तथा यथासाध्य सहायता प्रदान करने के लिए तैयार हैं।

पुनश्च—आशा है कि तुम पत्रिका को बड़े आकार की करने के प्रश्न पर भली भाँति विचार करोगे। अमेरिका से कुछ धनराशि एकत्र करने की व्यवस्था हो सकती है एवं साथ ही पत्रिका अपने लोगों के हाथों ही रखी जा सकती है। इस बारे में तुम्हारी तथा मैक्समूलर महोदय की निश्चित योजना से अवगत होने के बाद मैं अमेरिका पत्र लिखना चाहता हूँ।

सेवितव्यो महावृक्षः फलच्छायासमन्वितः।
यदि दैवात् फलं नास्ति छाया केन निवार्यते॥

—'जिस वृक्ष में फल एवं छाया हो, उसी का आश्रय लेना चाहिए। कदाचित् फल न भी मिले, फिर भी उसकी छाया से तो कोई भी वंचित नहीं कर सकता।' अतः मूल बात यह है कि महान् कार्य को इसी भावना से प्रारम्भ करना चाहिए।

शुभाकांक्षी,
विवेकानन्द

बहरहाल, श्रीमती एनी बेसेन्ट ने अपने निवास स्थान पर मुझे—भक्ति पर बोलने के लिए—निमन्त्रित किया था। मैंने वहाँ एक रात व्याख्यान दिया। कर्नल अल्कॉट भी वहाँ थे। मैंने सभी सम्प्रदाय के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए ही भाषण देना स्वीकार किया। हमारे देशवासियो को यह याद रखना चाहिए कि अध्यात्म के बारे मे हम ही जगद्गुरु हैं—विदेशी नही—किन्तु, सासारिकता अभी हमे उनसे सीखना है।

मैंने मैक्समूलर का लेख पढा है। हालांकि छ माह पूर्व जब कि उन्होंने इसे लिखा था—उनके पास मजूमदार के पर्चे के सिवा और कोई सामग्री नही थी। इस दृष्टि से यह लेख सुन्दर है। इधर उन्होने मुझे एक लम्बी और प्यारी चिट्ठी लिखी है, जिसमे उन्होने श्री रामकृष्ण पर एक किताब लिखने की इच्छा प्रकट की है। मैंने उन्हें बहुत सारी सामग्री दी है, किन्तु भारत से और भी अधिक मँगाने की आवश्यकता है।

काम करते चलो। डटे रहो बहादुरी से। सभी कठिनाइयो को झेलने की चुनौती दो।

देखते नही वत्स, यह ससार—दु खपूर्ण है।

प्यार के साथ,
विवेकानन्द

(श्री जे० जे० गुडविन को लिखित)

स्विट्ज़रलैण्ड
८ अगस्त, १८९६

प्रिय गुडविन,

मैं अब विश्राम कर रहा हूँ। भिन्न भिन्न पत्रो से मुझे कृपानन्द के विषय मे बहुत कुछ मालूम होता रहता है। मुझे उसके लिए दु ख है। उसके मस्तिष्क मे अवश्य कुछ दोष होगा। उसे अकेला छोड दो। तुममे से किसीको भी उसके लिए परेशान होने की आवश्यकता नही।

मुझे आघात पहुँचाने की देव या दानव किसीमे भी शक्ति नही है। इसलिए निश्चिन्त रहो। अचल प्रेम और पूर्ण नि स्वार्थ भाव की ही सर्वत्र विजय होती है। प्रत्येक कठिनाई के आने पर हम वेदान्तियो को स्वत यह प्रश्न करना चाहिए, 'मैं इसे क्यो देखता हूँ?' 'प्रेम से मैं क्यो नही इस पर विजय पा सकता हूँ?'

स्वामी का जो स्वागत किया गया, उससे मैं अति प्रसन्न हूँ और वे जो अच्छा कार्य कर रहे हैं, उससे भी। बडे काम मे बहुत समय तक लगातार और महान्

पुनश्च—डरने की कोई बात नहीं है, धन तथा अन्य वस्तुएँ शीघ्र ही प्राप्त होंगी।

(श्री आलासिंगा पेरुमल को लिखित)

स्विट्ज़रलैंड
८ अगस्त, १८९६

प्रिय आलासिंगा,

कई दिन पहले मैंने अपने पत्र में तुम्हें इस बात का आभास दिया था कि मैं 'ब्रह्मवादिन्' के लिए कुछ करने की स्थिति में हूँ। मैं तुम्हें एक या दो वर्षों तक १ रुपया माहवार दूँगा—अर्थात् साल में ६ अथवा ७ पौंड—यानी जितने से सौ रुपये माहवार हो सके। तब तुम मुक्त होकर 'ब्रह्मवादिन्' का कार्य कर सकोगे तथा इसे और भी सफल बना सकोगे। श्रीयुत मणि अय्यर और कुछ मित्र कोष इकट्ठा करने में तुम्हारी सहायता कर सकते हैं—जिससे छपाई आदि की कीमत पूरी हो जायगी। चन्दे से कितनी आमदनी होती है? क्या इस रकम से लेखकों को पारिश्रमिक देकर उनसे अच्छी सामग्री नहीं लिखवायी जा सकती? यह आवश्यक नहीं कि 'ब्रह्मवादिन्' में प्रकाशित होनेवाली सभी रचनाएँ सभी की समझ में आयें—परन्तु यह जरूरी है कि देशभक्ति और सुकर्म की भावना—प्रेरणा से ही लोग इसे खरीदें। लोग से मेरा मतलब हिन्दुओं से है।

यों बहुत सी बातें आवश्यक हैं। पहली बात है—पूरी ईमानदारी। मेरे मन में इस बात की रत्ती भर शंका नहीं कि तुम लोगों में से कोई भी इससे उदासीन रहोगे। बल्कि व्यावसायिक मामलों में हिन्दुओं में एक अजीब ढिलाई देखी जाती है—बेतरतीब हिसाब-किताब और बेसिलसिले का कारबार। दूसरी बात उद्देश्य के प्रति पूर्ण निष्ठा—यह जानते हुए कि 'ब्रह्मवादिन्' की सफलता पर ही तुम्हारी मुक्ति निर्भर करती है।

इस पत्र (ब्रह्मवादिन्) को अपना इष्टदेवता बनाओ और तब देखना सफलता किस तरह आती है। मैंने अभेदानन्द को भारत से बुला भेजा है। आशा है, अन्य संन्यासी की भाँति उसे देरी नहीं लगेगी। पत्र पाते ही तुम 'ब्रह्मवादिन्' के आय-व्यय का पूरा लेखा-जोखा भेजो, जिसे देखकर मैं यह सोच सकूँ कि इसके लिए क्या किया जा सकता है? यह याद रखो कि पवित्रता, निःस्वार्थ भावना और गुरु की आज्ञाकारिता ही सभी सफलताओं के रहस्य हैं।

किसी धार्मिक पत्र की खपत—विदेश में असंभव है। इसे हिन्दुओं की ही सहायता मिलनी चाहिए—यदि उनमें भले-बुरे का ज्ञान हो।

अथवा 'अन्धकारमय प्रकाश' के समान ही हैं। यदि ससार साघु होता तो यह ससार ही न होता। जीव मूर्खतावश असीम अनन्त को सीमित भौतिक पदार्थ द्वारा, चैतन्य को जड द्वारा अभिव्यक्त करना चाहता है, परन्तु अन्त मे अपने भ्रम को समझकर वह उससे छुटकारा पाने की चेष्टा करता है। यह निवृत्ति ही धर्म का प्रारम्भ है और उसका उपाय है, ममत्व का नाश अर्थात् प्रेम। स्त्री, सन्तान या किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रेम नही, परन्तु छोटे से अपने ममत्व को छोडकर, सवके लिए प्रेम। वह 'मानवी उन्नति' और इसके समान जो लम्बी चौडी बातें तुम अमेरिका मे वहुत सुनोगे, उसके भुलावे मे मत आना। सभी क्षेत्रो मे 'उन्नति' नही हो सकती, उसके साथ साथ कही न कही अवनति हो रही होगी। एक समाज मे एक प्रकार के दोष हैं तो दूसरे मे दूसरे प्रकार के। यही बात इतिहास के विशिष्ट कालो की भी है। मध्य युग मे चोर डाकू अधिक थे, अब छल-कपट करनेवाले अधिक हैं। एक विशिष्ट काल मे वैवाहिक जीवन का सिद्धान्त कम है तो दूसरे मे वेश्यावृत्ति अधिक। एक मे शारीरिक कष्ट अधिक है, तो दूसरे मे उससे सहस्र गुनी अधिक मानसिक यातनाएँ। इसी प्रकार ज्ञान की भी स्थिति है। क्या प्रकृति मे गुरुत्वाकर्षण का निरीक्षण और नाम रखने से पहले उसका अस्तित्व ही न था? फिर उसके जानने से क्या अन्तर पडा? क्या तुम रेड इन्डियनो (उत्तर अमेरिका के आदिवासियो) से अधिक सुखी हो?

यह सब व्यर्थ है, निरर्थक है—इसे यथार्थ रूप मे जानना ही ज्ञान है। परन्तु थोडे, वहुत थोडे ही कभी इसे जान पायेगे। **तमेवैक जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुचथ**—उस एक आत्मा को ही जानो और सब बातो को छोड दो। इस ससार मे ठोकरें खाने से इस एक ज्ञान की ही हमे प्राप्ति होती है। मनुष्य जाति को इस प्रकार पुकारना कि **उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत**—'जागो, उठो, और ध्येय की उपलब्धि के बिना रुको नही।' यही एकमात्र कर्म है। त्याग ही धर्म का सार है, और कुछ नही।

ईश्वर व्यक्तियो की एक समष्टि है। फिर भी वह स्वय एक व्यक्ति है, उसी प्रकार जिस प्रकार मानवी शरीर एक ईकाई है और उसका प्रत्येक 'कोश' एक व्यक्ति है। समष्टि ही ईश्वर है, व्यष्टि या अश आत्मा या जीव है। इसलिए ईश्वर का अस्तित्व जीव पर निर्भर है, जैसे कि शरीर का उसके कोश पर, इसी प्रकार इसका विलोम समझिए। इस प्रकार, जीव और ईश्वर परस्परावलम्वी हैं। जब तक एक का अस्तित्व है, तब तक दूसरे का भी रहेगा। और हमारी इस पृथ्वी को छोडकर अन्य सब ऊँचे लोको मे शुभ की मात्रा अशुभ से अत्यधिक होती है, इसलिए वह समष्टिस्वरूप ईश्वर, शिवस्वरूप, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ

प्रयत्न की आवश्यकता होती है। यदि थोड़े से व्यक्ति असफल भी हो जायँ तो भी उसकी चिन्ता हमें नहीं करनी चाहिए। संसार का यह नियम ही है कि अनेक नीचे गिरते हैं, कितने ही दुःख आते हैं, कितनी ही भयंकर कठिनाइयाँ सामने उपस्थित होती हैं, स्वार्थपरता तथा अन्य बुराइयों का मानव हृदय में घोर संघर्ष होता है। और तभी आध्यात्मिकता की अग्नि में इन सभी का विनाश होनेवाला होता है। इस जगत में श्रेय का मार्ग सबसे दुर्गम और पथरीला है। आश्चर्य की बात है कि इतने लोग सफलता प्राप्त करते हैं, कितने लोग असफल होते हैं यह आश्चर्य नहीं। सहस्रों ठोकर खाकर चरित्र का गठन होता है।

मुझे अब बहुत ताजगी मालूम होती है। मैं खिड़की से बाहर दृष्टि डालता हूँ मुझे बड़ी बड़ी हिम-नदियाँ दिखती हैं और मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मैं हिमालय में हूँ। मैं बिलकुल शान्त हूँ। मेरे स्नायुओं ने अपनी पुरानी शक्ति पुनः प्राप्त कर ली है और छोटी छोटी परेशानियाँ जिस तरह की परेशानियों का तुमने जिक्र किया है, मुझे स्पर्श भी नहीं करतीं। मैं बच्चों के इस खेल से कैसे विचलित हो सकता हूँ। सारा संसार बच्चों का खेल मात्र है—प्रचार करना शिक्षा देना तथा सभी कुछ। ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति—'उसे संन्यासी समझो जो न द्वेष करता है, न इच्छा करता है।' और इस संसार की छोटी सी कीचड़ भरी तलैया में जहाँ दुःख रोग तथा मृत्यु का चक्र निरन्तर चलता रहता है, क्या है जिसकी इच्छा की जा सके? त्यागात् शान्तिरनन्तरम्—'जिसने सब इच्छाओं को त्याग दिया है वही सुखी है।'

यह विश्राम—नित्य और शान्तिमय विश्राम—इस रमणीक स्थान में अब उसकी झलक मुझे मिल रही है। आत्मानं चेद् विजानीयात् अयमस्मीति पूरुषः। किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्।—'एक बार यह जानकर कि इस आत्मा का ही केवल अस्तित्व है और किसीका नहीं किस चीज की या किसके लिए इच्छा करके तुम इस शरीर के लिए दुःख उठाओगे?'

मुझे ऐसा विदित होता है कि जिसको वे लोग 'कर्म' कहते हैं, उसका मैं अपने हिस्से का अनुभव कर चुका हूँ। मैं भर पाया अब निकलने की मुझे उत्कट अभिलाषा है। मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये। यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।—'सहस्रों मनुष्यों में कोई एक लक्ष्य को प्राप्त करने का यत्न करता है। और यत्न करनेवाले उद्योगी पुरुषों में थोड़े ही ध्येय तक पहुँचते हैं।' इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः—'क्योंकि इन्द्रियाँ बलवती हैं और वे मनुष्य को नीचे की ओर खींचती हैं।'

'साधु जगत्' 'सुखी जगत्' और 'सामाजिक उन्नति' ये सब 'उष्ण बर्फ'

अथवा 'अन्धकारमय प्रकाश' के समान ही हैं। यदि ससार साधु होता तो यह ससार ही न होता। जीव मूर्खतावश असीम अनन्त को सीमित भौतिक पदार्थ द्वारा, चैतन्य को जड द्वारा अभिव्यक्त करना चाहता है, परन्तु अन्त मे अपने भ्रम को समझकर वह उससे छुटकारा पाने की चेष्टा करता है। यह निवृत्ति ही धर्म का प्रारम्भ है और उसका उपाय है, ममत्व का नाश अर्थात् प्रेम। स्त्री, सन्तान या किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रेम नही, परन्तु छोटे से अपने ममत्व को छोडकर, सबके लिए प्रेम। वह 'मानवी उन्नति' और इसके समान जो लम्बी चौडी बाते तुम अमेरिका मे बहुत सुनोगे, उसके भुलावे मे मत आना। सभी क्षेत्रो मे 'उन्नति' नही हो सकती, उसके साथ साथ कही न कही अवनति हो रही होगी। एक समाज मे एक प्रकार के दोष है तो दूसरे मे दूसरे प्रकार के। यही बात इतिहास के विशिष्ट कालो की भी है। मध्य युग मे चोर डाकू अधिक थे, अब छल-कपट करनेवाले अधिक हैं। एक विशिष्ट काल मे वैवाहिक जीवन का सिद्धान्त कम है तो दूसरे मे वेश्यावृत्ति अधिक। एक मे शारीरिक कष्ट अधिक है, तो दूसरे मे उससे सहस्र गुनी अधिक मानसिक यातनाएँ। इसी प्रकार ज्ञान की भी स्थिति है। क्या प्रकृति मे गुरुत्वाकर्षण का निरीक्षण और नाम रखने से पहले उसका अस्तित्व ही न था? फिर उसके जानने से क्या अन्तर पडा? क्या तुम रेड इन्डियनो (उत्तर अमेरिका के आदिवासियो) से अधिक सुखी हो?

यह सब व्यर्थ है, निरर्थक है—इसे यथार्थ रूप मे जानना ही ज्ञान है। परन्तु थोडे, बहुत थोडे ही कभी इसे जान पायेंगे। **तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुचथ**—उस एक आत्मा को ही जानो और सब बातो को छोड दो। इस ससार मे ठोकरें खाने से इस एक ज्ञान की ही हमे प्राप्ति होती है। मनुष्य जाति को इस प्रकार पुकारना कि **उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत**—'जागो, उठो, और ध्येय की उपलब्धि के बिना रुको नही।' यही एकमात्र कर्म है। त्याग ही धर्म का सार है, और कुछ नही।

ईश्वर व्यक्तियो की एक समष्टि है। फिर भी वह स्वय एक व्यक्ति है, उसी प्रकार जिस प्रकार मानवी शरीर एक ईकाई है और उसका प्रत्येक 'कोश' एक व्यक्ति है। समष्टि ही ईश्वर है, व्यष्टि या अश आत्मा या जीव है। इसलिए ईश्वर का अस्तित्व जीव पर निर्भर है, जैसे कि शरीर का उसके कोश पर, इसी प्रकार इसका विलोम समझिए। इस प्रकार, जीव और ईश्वर परस्परावलम्बी हैं। जब तक एक का अस्तित्व है, तब तक दूसरे का भी रहेगा। और हमारी इस पृथ्वी को छोडकर अन्य सब ऊँचे लोको मे शुभ की मात्रा अशुभ से अत्यधिक होती है, इसलिए वह समष्टिस्वरूप ईश्वर, शिवस्वरूप, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ

कहा जा सकता है। ये प्रत्यक्ष गुण हैं और ईश्वर से सम्बद्ध होने के कारण उन्हें प्रमाणित करने के लिए तर्क की आवश्यकता नहीं।

ब्रह्म इन दोनों से परे है और वह कोई विशिष्ट अवस्था नहीं है। वह एक ऐसी इकाई है जो अनेक की समष्टि से नहीं बनी। वह एक ऐसी सत्ता है जो कोश से लेकर ईश्वर तक सब में व्याप्त है और उसके बिना किसीका अस्तित्व नहीं हो सकता। वही सत्ता अथवा ब्रह्म वास्तविक है। जब मैं सोचता हूँ 'मैं ब्रह्म हूँ' तब मेरा ही यथार्थ अस्तित्व होता है। ऐसा ही सब के बारे में है। विश्व की प्रत्येक वस्तु स्वरूपतः वही सत्ता है।

कुछ दिन हुए कृपानन्द को लिखने की मुझे अकस्मात् प्रबल इच्छा हुई। शायद वह दुःखी था और मुझे याद करता होगा। इसलिए मैंने उसे सहानुभूतिपूर्ण पत्र लिखा। आज अमेरिका से खबर मिलने पर मेरी समझ में आया कि ऐसा क्यों हुआ। हिम-नदियों के पास से तोड़े हुए पुष्प मैंने उसे भेजे। कुमारी वाल्डो से कहना कि अपना आन्तरिक स्नेह प्रदर्शित करते हुए उसे कुछ धन भेज दें। *प्रेम का कभी नाश नहीं होता। पिता का प्रेम अमर है* सन्तान चाहे जो करे या जैसे भी हो। वह मेरा पुत्र जैसा है। अब वह दुःख में है इसलिए वह समान या अपने भाग से अधिक मेरे प्रेम तथा सहायता का अधिकारी है।

शुभाकांक्षी
विवेकानन्द

(श्री ई० टी० स्टर्डी को लिखित)

ग्रैंड होटल सास फी
वैले स्विट्ज़रलैंड
८ अगस्त १८९६

महाभाग एवं परम प्रिय

तुम्हारे पत्र के साथ ही पत्रों का एक बड़ा पुलिन्दा मिला। मैक्समूलर ने मुझको जो पत्र लिखा है उसे तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। मेरे प्रति उनकी बड़ी कृपा और सौजन्य है।

कुमारी मूलर का विचार है कि वे शीघ्र ही इंग्लैण्ड चली जायेंगी। तब मैं 'प्रोफेसर डॉयसन' से साक्षात् करने के लिए कील जा सकूँगा जिसके लिए मैंने वादा किया था। यदि सेवियर दम्पति मुझे अपने साथ ले चलने को राजी हों, तो तभी मैं लौट आऊँगा और यथासमय तुम्हें पहले ही पत्र लिख दूँगा। सेवियर दम्पति बड़े सज्जन और कृपालु हैं किन्तु उनकी उदारता से लाभ उठाने का मुझे

अधिकार नही। क्योंकि वहाँ का खर्च भयानक है। ऐसी दशा मे वर्न कांग्रेस मे शरीक होने का विचार त्याग देना ही मेरे विचार से सर्वोत्तम है, क्योकि बैठक सितम्बर के मध्य मे होगी जिसमे अभी बहुत देर है।

अत जर्मनी मे जाने का मेरा विचार हो रहा है। वहाँ की यात्रा का अन्तिम स्थान कील होगा, जहाँ से इग्लैड वापस आऊँगा।

वाल गगाधर तिलक (श्री तिलक) नाम है और 'ओरायन' उनकी पुस्तक का नाम है।

तुम्हारा,
विवेकानन्द

पुनश्च—जेकबी की भी एक (पुस्तक) है—शायद उन्ही पद्धतियो पर वह अनूदित है तथा उसके वे ही निष्कर्ष है।

पुनश्च—मुझे आशा है कि तुम ठहरने के स्थान और हाल के विषय मे कुमारी मूलर की राय ले लोगे, क्योकि यदि उनकी तथा अन्य लोगो की सलाह न ली गयी तो वे बहुत अप्रसन्न होगी।

वि०

कल रात कुमारी मूलर ने प्रोफेसर डॉयसन को तार भेजा और आज सबेरे ९ अगस्त को तार का जवाब आ गया, जिसमे उन्होने मेरा स्वागत किया है। १० सितम्बर को मैं कील मे डॉयसन के यहाँ पहुँचनेवाला हूँ। तो तुम मुझसे कहाँ मिलोगे? कील मे? कुमारी मूलर स्विट्ज़रलैंड से इग्लैंड जा रही है, मैं सेवियर दम्पति के साथ कील जा रहा हूँ। १० सितम्बर को मैं वहाँ रहूँगा।

वि०

पुनश्च—व्याख्यान के विषय मे अभी तक मैंने कुछ निर्धारित नही किया है। पढने का मुझे अवकाश नही। बहुत सम्भव है कि 'सालेम सोसायटी' किसी हिन्दू सम्प्रदाय का सगठन है, क्षक्कियो का नही।

वि०

(श्री ई० टी० स्टर्डी को लिखित)

स्विट्ज़रलैंड,
१२ अगस्त, १८९६

प्रिय श्री स्टर्डी,

आज मुझे एक पत्र अमेरिका से मिला जिसे मैं तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। मैंने उनको लिख दिया है कि मैं चाहता हूँ कि कम से कम वर्तमान प्रारम्भिक

कार्य में ध्यान केन्द्रित किया जाय। मैंने उनको यह भी सलाह दी है कि कई पत्रिकाएँ शुरू करने के बजाय 'ब्रह्मवादिन्' से अमेरिका में लिखित कुछ अंश रख कर काम शुरू करें और चन्दा कुछ बढ़ा दें जिससे अमेरिका में होनेवाला खर्च निकल जाये। पता नहीं वे क्या करेंगे।

हम लोग अगले सप्ताह जर्मनी की तरफ रवाना होंगे। जैसे हम जर्मनी पहुँचे कुमारी मूलर इंग्लैण्ड रवाना हो जायेंगी।

कैप्टेन तथा श्रीमती सेवियर और मैं कील में तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे।

मैंने अब तक कुछ नहीं लिखा और न कुछ पढ़ा ही है। वस्तुतः मैं पूर्ण विश्राम ले रहा हूँ। चिन्ता न करना तुमको लेख तैयार मिलेगा। मुझे मठ से इस आशय का पत्र मिला है कि दूसरा स्वामी रवाना होने के लिए तैयार है। मुझे आशा है कि वह तुम्हारी इच्छा के उपयुक्त व्यक्ति होगा। वह हमारे संस्कृत के अच्छे विद्वानों में से है और जैसा कि मैंने सुना है उसने अपनी अंग्रेजी काफी सुधार की है। सारदानन्द के बारे में मुझे अमेरिका से अखबारों की बहुत सी कतरनें मिली हैं। उनसे पता चलता है कि उसने वहाँ बहुत अच्छा काम किया है। मनुष्य के अन्दर जो कुछ है उसे विकसित करने के लिए अमेरिका एक अत्यन्त सुन्दर प्रशिक्षण केन्द्र है। वहाँ का वातावरण कितना सहानुभूतिपूर्ण है। मुझे गुडविन तथा सारदानन्द के पत्र मिले हैं। सारदानन्द ने तुमको श्रीमती स्टर्डी तथा बच्चे को स्नेह भेजा है।

शुभाकांक्षी
विवेकानन्द

(श्रीमती ओलि बुल को लिखित)

ल्यूकर्न स्विट्ज़रलैण्ड
२१ अगस्त १८९६

प्रिय श्रीमती बुल

आपका अन्तिम पत्र मुझे आज मिला आपके भेजे हुए ५ पौंड की रसीद अब तक आपको मिल चुकी होगी। आपने जो सदस्य होने की बात लिखी है, उसे मैं ठीक ठीक नहीं समझ सका फिर भी किसी संस्था की सदस्य-सूची में मेरे नामोल्लेख के सम्बन्ध में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु इस विषय में स्टर्डी का क्या अभिमत है मैं नहीं जानता। मैं इस समय स्विट्ज़रलैण्ड में भ्रमण कर रहा हूँ। यहाँ से मैं जर्मनी जाऊँगा बाद में इंग्लैण्ड जाना है तथा अगले जाड़े में भारत। यह जानकर कि सारदानन्द तथा गुडविन अमेरिका में अच्छी तरह से प्रचार-कार्य

चला रहे हैं, मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। मेरी अपनी बात तो यह है कि किसी कार्य के प्रतिदान स्वरूप में उस ५०० पौंड पर अपना कोई हक कायम करना नही चाहता। मैं तो यह समझता हूँ कि मैं काफी परिश्रम कर चुका। अब मैं अवकाश लेने जा रहा हूँ। मैंने भारत से एक और व्यक्ति माँगा है, आगामी माह मे वह मेरे पास आ जायगा। मैंने कार्य प्रारम्भ कर दिया है, अब दूसरे लोग उसको पूरा करे। आप तो देखती ही है कि कार्य को चालू करने के लिए कुछ समय के लिए मुझे रुपया-पैसा छूना पड़ा। अब मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मेरा कर्तव्य समाप्त हो चुका है। वेदान्त अथवा जगत् के अन्य किसी दर्शन अथवा स्वय कार्य के प्रति अब मुझे कोई आकर्षण नही है। मैं प्रस्थान करने के लिए तैयारी कर रहा हूँ—इस जगत् मे, इस नरक मे, मैं फिर लौटना नही चाहता। यहाँ तक कि इस कार्य की आध्यात्मिक उपादेयता के प्रति भी मेरी अरुचि होती जा रही है। मैं चाहता हूँ कि माँ मुझे शीघ्र ही अपने पास बुला लें। फिर कभी मुझे लौटना न पड़े।

ये सब कार्य तथा उपकार आदि कार्य चित्तशुद्धि के साधन मात्र हैं, इसे मैं बहुत देख चुका। जगत् अनन्त काल तक सदैव जगत् ही रहेगा। हम लोग जैसे हैं, वैसे ही उसे देखते हैं। कौन कार्य करता है और किसका कार्य है? जगत् नामक कोई भी वस्तु नही है, यह सब कुछ स्वय भगवान् हैं। भ्रम से हम इसे जगत् कहते हैं। यहाँ पर न तो मैं हूँ और न तुम और न आप—एकमात्र वही है, प्रभु—**एकमेवाद्वितीयम्**। अत अब रुपये-पैसे के मामलो से मैं अपना कोई भी सम्बन्ध नही रखना चाहता। यह सब आप लोगो का ही पैसा है, आप लोगो को जो रुपया मिले, आप अपनी इच्छा के अनुसार खर्च करें। आप लोगो का कल्याण हो।

प्रभुपदाश्रित, आपका
विवेकानन्द

पुनश्च—डॉक्टर जेन्स के कार्य के प्रति मेरी पूर्ण सहानुभूति है एव मैंने उनको यह बात लिख दी है। यदि गुडविन तथा सारदानन्द अमेरिका मे कार्य को बढा सकते हैं तो भगवान् उन्हे सफलता दे। स्टर्डी के, मेरे अथवा अन्य किसी के पास तो उन्होंने अपने को गिरवी नही रखा। 'ग्रीनएकर' के कार्यक्रम मे यह एक भारी भूल हुई है कि उसमे यह छापा गया है कि स्टर्डी ने कृपा कर सारदानन्द को वहाँ रहने की (इग्लैण्ड से अवकाश लेकर वहाँ रहने की) अनुमति प्रदान की है। स्टर्डी अथवा और कोई एक सन्यासी को अनुमति देनेवाला कौन होता है? स्टर्डी को स्वय इस पर हँसी आयी और खेद भी हुआ। यह निरी मूर्खता है, और

कुछ भी नहीं ! यह स्टर्डी का अपमान है, और यह समाचार यदि भारत में पहुँच जाता तो मेरे कार्य में अत्यन्त हानि होती। सौभाग्यवश मैंने उन विज्ञापनों को टुकड़े टुकड़े कर फाड़कर नाली में फेंक दिया है। मुझे आश्चर्य है कि क्या यह वही प्रसिद्ध 'यांकी' आचरण है जिसके बारे में बातें करके अंग्रेज लोग मजा लेते हैं ? यहाँ तक कि मैं खुद भी जगत् के एक भी संन्यासी का स्वामी नहीं हूँ। संन्यासियों को जो कार्य करना उचित प्रतीत होता है वसे वे करते हैं और मैं चाहता हूँ कि मैं उनकी कुछ सहायता कर सकूँ—बस इतना ही उनसे मेरा सम्बन्ध है। पारिवारिक बन्धन रूपी लोहे की साँकल मैं तोड़ चुका हूँ—अब मैं धर्मसंघ की सोने की साँकल पहिनना नहीं चाहता । मैं मुक्त हूँ सदा मुक्त रहूँगा। मेरी अभिलाषा है कि सभी कोई मुक्त हो जायें—वायु के समान मुक्त। यदि न्यूयार्क बोस्टन अथवा अमेरिका के अन्य किसी स्थल के निवासी वेदान्त चर्चा के लिए आग्रहशील हों तो उन्हें वेदान्त के आचार्यों को आदरपूर्वक ग्रहण करना उनकी देखभाल तथा उनके प्रतिपालन की व्यवस्था करनी चाहिए। जहाँ तक मेरी बात है मैं तो एक प्रकार से अवकाश ले चुका हूँ। जगत् की नाटयशाला में मेरा अभिनय समाप्त हो चुका है।

भवदीय
विवेकानन्द

(स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखित)

लेक ल्यूकर्न स्विट्जरलैण्ड
२३ अगस्त १८९६

प्रिय शशि

आज रामदयाल बाबू का पत्र मुझे मिला जिसमें वे लिखते हैं कि दक्षिणेश्वर में श्री रामकृष्ण के वार्षिकोत्सव के दिन बहुत सी वेश्याएँ वहाँ आयी थीं इसलिए बहुत से लोगों की वहाँ जाने की इच्छा कम होती है। इसके अतिरिक्त उनके विचार से पुरुषों के जाने के लिए एक दिन नियुक्त होना चाहिए और स्त्रियों के लिए दूसरा। इस विषय पर मेरा निर्णय यह है

१ यदि वेश्याओं को दक्षिणेश्वर जैसे महान् तीर्थ में जाने की अनुमति नहीं है, तब वे और कहाँ जायँ। ईश्वर विशेषकर पापियों के लिए प्रकट होते हैं, पुण्यवानों के लिए उतना।

२ लिंग जाति धन विद्या और इनके समान और बहुत सी बातों के भेद-भावों को जो साक्षात् नरक के द्वार हैं संसार में ही सीमाबद्ध रहने दो। यदि

तीर्थों के पवित्र स्थानो मे ये भेदभाव बने रहेगे तो उनमे और नरक मे क्या अन्तर रह जायगा ?

३ अपनी विशाल जगन्नाथपुरी है, जहाँ पापी और पुण्यात्मा, महात्मा और दुरात्मा, पुरुष, स्त्री और बालक—विना किसी उम्र अथवा अवस्था के भेदभाव के—सबको समान अधिकार है। वर्ष मे कम से कम एक दिन के लिए सहस्रो स्त्री-पुरुष पाप और भेदभाव से छुटकारा पाते है और परमात्मा का नाम सुनते और गाते है। यह स्वय परम श्रेय है।

४ यदि तीर्थ स्थान मे भी एक दिन के लिए लोगो की पापप्रवृत्ति पर नियत्रण नही किया जा सकता, तब समझो कि दोष तुम्हारा है, उनका नही। आध्यात्मिकता की एक ऐसी शक्तिशाली लहर उठा दो कि उसके समीप जो भी आ जायँ, वे उसमे बह जायँ।

५ जो लोग मन्दिर मे भी यह सोचते है कि यह वेश्या है, यह मनुष्य नीच जाति का है, दरिद्र है तथा यह मामूली आदमी है—ऐसे लोगो की सख्या (जिन्हे तुम सज्जन कहते हो) जितनी कम हो उतना ही अच्छा। क्या वे लोग, जो भक्तो की जाति, लिंग या व्यवसाय देखते हैं, हमारे प्रभु को समझ सकते हैं ? मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि सैंकडो वेश्याएँ आयें और 'उनके' चरणो मे अपना सिर नवायें, और यदि एक भी सज्जन न आये तो भी कोई हानि नही। आओ वेश्याओ, आओ शराबियो, आओ चोरो, सब आओ—श्री प्रभु का द्वार सबके लिए खुला है। 'It is easier for a camel to pass through the eye of a needle than for a rich man to enter the Kingdom of God' (धनवान का ईश्वर के राज्य मे प्रवेश करने की अपेक्षा ऊँट का सुई के छेद मे घुसना सहज है।) कभी कोई ऐसे क्रूर और राक्षसी भावो को अपने मन मे न आने दो।

६ परन्तु कुछ सामाजिक सावधानी की आवश्यकता है—हम यह कैसे रख सकते हैं ? कुछ पुरुष (यदि वृद्ध हो तो अच्छा हो) पहरेदारी का भार दिन भर के लिए ले लें। वे उत्सव के स्थान मे परिभ्रमण करें, और यदि वे किसी पुरुष अथवा स्त्री की बातचीत या आचरण मे अशिष्ट व्यवहार पाये तो वे उन्हे तुरन्त ही उद्यान से निकाल दें। परन्तु जब तक शिष्ट स्त्री-पुरुषो के समान उनका आचरण रहे, तब तक वे भक्त हैं और आदरणीय हैं—चाहे वे पुरुष हो या स्त्री, सच्चरित्र या दुश्चरित्र।

मैं इस समय स्विट्जरलैण्ड मे भ्रमण कर रहा हूँ और प्रोफेसर डॉयसन से भेंट करने शीघ्र ही जर्मनी जानेवाला हूँ। वहाँ से मैं २३ या २४ सितम्बर तक

इंग्लैण्ड लौटकर जाऊँगा और आगामी जाड़े में तुम मुझे भारत में पाओगे। तुम्हें और सबको मेरा प्यार।

तुम्हारा
विवेकानन्द

(डॉ० नंजुन्दा राव को लिखित)

स्विट्ज़रलैण्ड,
२६ अगस्त १८९६

प्रिय नंजुन्दा राव,

मुझे तुम्हारा पत्र अभी मिला। मैं बराबर घूम रहा हूँ। मैं आल्प्स के बहुत से पहाड़ों पर चढ़ा हूँ और मैंने कई हिम नदियाँ पार की हैं। अब मैं जर्मनी जा रहा हूँ। प्रोफेसर डॉयसन ने मुझे कील आने का निमन्त्रण दिया है। वहाँ से मैं इंग्लैण्ड जाऊँगा। सम्भव है कि इसी सर्दी में मैं भारत लौटूँ।

मैंने 'प्रबुद्ध भारत' के मुख-पृष्ठ की डिज़ाइन की जिस बात पर आपत्ति की थी, वह सिर्फ उसका भद्दापन ही नहीं था, बल्कि उसमें अनेक चित्रों की निरर्थक भरमार भी है। डिज़ाइन सरल, प्रतीकात्मक एवं संक्षिप्त होनी चाहिए। मैं 'प्रबुद्ध भारत' के लिए लन्दन में डिज़ाइन बनाने की कोशिश करूँगा और तुम्हारे पास उसे भेजूँगा।

मुझे बड़ा हर्ष है कि काम अति सुन्दर रूप से चल रहा है। परन्तु मैं तुम्हें एक सलाह दूँगा। भारत में जो काम साझे में होता है, वह एक दोष के बोझ से दब जाता है। हमने अभी तक व्यावसायिक दृष्टिकोण नहीं विकसित किया। अपने वास्तविक अर्थ में व्यवसाय व्यवसाय ही है, मित्रता नहीं—जैसी कि हिन्दू कहावत है—'मुँहदेखी' न होनी चाहिए। अपने जिम्मे जो हिसाब-किताब हो, वह साफ ही साफ रखना चाहिए और कभी एक कोष का धन किसी दूसरे काम में कदापि न लगाना चाहिए, चाहे दूसरे क्षण भूखा ही क्यों न रहना पड़े। यही है व्यावसायिक ईमानदारी। दूसरी बात यह है कि कार्य करने की अटूट शक्ति होनी चाहिए। जो कुछ तुम करते हो, उस समय के लिए उसे अपनी पूजा समझो। इस समय इस पत्रिका को अपना ईश्वर बना लो और तुम्हें सफलता प्राप्त होगी।

तुम इस पत्रिका के संचालन में सफल होने के बाद इसी प्रकार भारतीय भाषाओं में—तमिल, तेलुगु और कन्नड़ आदि में—भी पत्रिकाएँ शुरू करो। मद्रासी सुन्दर हैं, गुणकारी हैं, सब कुछ हैं, परन्तु ऐसा मालूम होता है कि शंकराचार्य की जन्मभूमि ने त्याग का भाव खो दिया है।

मेरे बच्चो को सघर्ष मे कूदना होगा, ससार त्यागना होगा—तब दृढ नीव पड़ेगी।

वीरता से आगे बढो—डिजाइन और दूसरी छोटी छोटी बातो की चिन्ता न करो—'घोडे के साथ लगाम भी मिल जायगी।' मृत्युपर्यन्त काम करो—मैं तुम्हारे साथ हूँ, और जब मैं न रहूँगा, तब मेरी आत्मा तुम्हारे साथ काम करेगी। यह जीवन आता और जाता है—नाम, यश, भोग, यह सब थोडे दिन के हैं। ससारी कीडे की तरह मरने से अच्छा है—कही अधिक अच्छा है कर्तव्य क्षेत्र मे सत्य का उपदेश देते हुए मरना। आगे बढो।

शुभाकाक्षी,
विवेकानन्द

(स्वामी कृपानन्द को लिखित)

स्विट्जरलैंड,
अगस्त, १८९६

प्रिय कृपानन्द,

तुम पवित्र तथा सर्वोपरि निष्ठावान बनो, एक मुहूर्त के लिए भी भगवान् के प्रति अपनी आस्था न खोओ, इसीसे तुम्हे प्रकाश दिखायी देगा। जो कुछ सत्य है, वही चिरस्थायी बनेगा, किन्तु जो सत्य नही है, उसकी कोई भी रक्षा नही कर सकता। आधुनिक समय मे तीव्र गति से प्रत्येक वस्तु की खोज की जाती है, इस समय हमारा जन्म होने के कारण हमे बहुत कुछ सुविधा प्राप्त हुई है। और लोग चाहे कुछ भी क्यो न सोचें, तुम कभी अपनी पवित्रता, नैतिकता तथा भगवत्प्रीति के आदर्श को छोटा न बनाना। सभी प्रकार की गुप्त सस्थाओ से सावधान रहना, इस बात का सबसे अधिक ख्याल रखना। भगवत्प्रेमियो को किसी इन्द्रजाल से नही डरना चाहिए। स्वर्ग तथा मर्त्य लोक मे सर्वत्र केवल पवित्रता ही सर्वश्रेष्ठ तथा दिव्यतम शक्ति है। **सत्यमेव जयते नानृतम्, सत्येन पन्था विततो देवयान** ।—'सत्य की ही जय होती है, मिथ्या की नही, सत्य के ही मध्य होकर देवयान मार्ग अग्रसर हुआ है' कोई तुम्हारा सहगामी बना या न बना, इस विषय को लेकर माथापच्ची करने की आवश्यकता नही है, केवल प्रभु का हाथ पकडने मे भूल न होनी चाहिए, बस इतना ही पर्याप्त है।

कल मैं 'मॉन्टि रोसा' हिमनद के किनारे गया था तथा चिरकालिक हिम के प्राय मध्य मे उत्पन्न कुछ एक सदाबहार फूल तोड लाया था। उनमे से एक इस पत्र के अन्दर रखकर तुम्हारे लिए भेज रहा हूँ—आशा है कि इस पार्थिव जीवन के समस्त

हिम तथा बर्फ के बीच में तुम भी उसी प्रकार की आध्यात्मिक दृढ़ता प्राप्त करोगे।

तुम्हारा स्वप्न अति सुन्दर है। स्वप्न में हमें अपने एक ऐसे मानसिक 'स्तर' का परिचय मिलता है, जिसकी अनुभूति जाग्रत दशा में नहीं होती और कल्पना चाहे कितनी ही ख्याली क्यों न हो—अज्ञात आध्यात्मिक सत्य सदा कल्पना के पीछे रहते हैं। साहस से काम लो। मानव जाति के कल्याण के लिए हम यथासाध्य प्रयास करेंगे शेष सब प्रभु पर निर्भर है।

अधीर न बनो उतावली न करो। धैर्यपूर्ण एकनिष्ठ तथा शान्तिपूर्ण कर्म के द्वारा ही सफलता मिलती है। प्रभु सर्वोपरि है। बस हम अवश्य सफल होंगे—सफलता अवश्य मिलेगी। 'उसका' नाम धन्य है!

अमेरिका में कोई आश्रम नहीं है। यदि एक आश्रम होता तो क्या ही सुन्दर होता! उससे मुझे न जाने कितना आनन्द मिलता और उसके द्वारा इस देश का न जाने कितना कल्याण होता!

शुभाकांक्षी
विवेकानन्द

## (श्री ई० टी० स्टर्डी को लिखित)

कील
१ सितम्बर, १८९६

प्रिय मित्र

आखिर प्रोफेसर डॉयसन के साथ मेरी भेंट हुई। उनके साथ दर्शनीय स्थलों को देखने तथा वेदान्त पर विचार विमर्श करने में कल का सारा दिन बहुत ही अच्छी तरह बीता।

मैं समझता हूँ कि वे एक 'लड़ाकू अद्वैतवादी' (A warring Advaitist) है। अद्वैतवाद को छोड़कर और किसी से वे मेल करना नहीं चाहते। 'ईश्वर' शब्द से वे आतंकित हो उठते हैं। यदि उनसे सम्भव होता तो वे इसको एकदम निर्मूल कर देते। मासिक पत्रिका सम्बन्धी तुम्हारी योजना से वे अत्यन्त आनन्दित है तथा इस बारे में तुम्हारे साथ लन्दन में विचार-विमर्श करना चाहते हैं शीघ्र ही वे वहाँ जा रहे हैं।

शुभाकांक्षी
विवेकानन्द

(कुमारी हैरियेट हेल को लिखित)

एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स,
विम्वलडन, इग्लैण्ड,
१७ सितम्वर, १८९६

प्रिय वहन,

स्विट्ज़रलैण्ड से यहाँ वापस आने पर अभी अभी तुम्हारा अत्यन्त शुभ समाचार मिला। 'चिरकुमारी आश्रम' (Old Maids Home) मे प्राप्य सुख के वारे मे आखिर तुमने अपना मतपरिवर्तन किया है, उससे मुझे वहुत ही खुशी हुई। अव तुम्हारा यह सिद्धान्त विल्कुल ठीक है कि नब्वे प्रतिशत व्यक्तियो के लिए विवाह जीवन का सर्वोत्तम ध्येय है, और जव वे इस चिरन्तन सत्य का अनुभव कर उसका अनुसरण करने को प्रस्तुत हो जायँगे, उन्हे सहनशीलता और क्षमाशीलता अपनानी पडेगी तथा जीवन-यात्रा मे मिल-जुल कर चलना पडेगा, तभी उनका जीवन अत्यन्त सुखपूर्ण होगा।

प्रिय हैरियेट, तुम यह निश्चित जानना कि 'सम्पन्न जीवन' मे अन्तर्विरोध है। अत हमे सर्वदा इस वात की सम्भावना स्वीकार करनी चाहिए कि हमारे उच्चतम आदर्श से निम्न श्रेणी की ही वस्तुएँ हमे मिलेगी, यह समझ लेने पर प्रत्येक वस्तु का हम अधिक से अधिक सदुपयोग करेंगे। मैं जहाँ तक तुमको जानता हूँ, उससे मेरी धारणा वनी है कि तुम्हारे अन्दर ऐसी प्रशात शक्ति विद्यमान है, जो क्षमा तथा सहनशीलता से पर्याप्त पूर्ण है। अत मैं निश्चित रूप से यह भविष्यवाणी कर सकता हूँ कि तुम्हारा दाम्पत्य-जीवन अत्यन्त सुखमय होगा।

तुम तथा तुम्हारे वाग्दत्त पति को मेरा आशीर्वाद। प्रभु तुम्हारे पति के हृदय मे सर्वदा यह वात जाग्रत रखें कि तुम जैसी पवित्र, सच्चरित्र, बुद्धिशालिनी, स्नेहमयी तथा सुन्दरी सहधर्मिणी को पाना उनका सौभाग्य था। इतने शीघ्र 'अटलाटिक' महासागर पार करने की मेरी कोई सम्भावना नही है, यद्यपि मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि तुम्हारे विवाह मे उपस्थित रहूँ।

ऐसी दशा मे हम लोगो की एक पुस्तक मे से कुछ अश उद्धृत करना ही मेरे लिए उत्तम है 'अपने पति को इहलोक की समस्त काम्य वस्तुओ की प्राप्ति करने मे सहायता प्रदान कर, तुम सर्वदा उनके ऐकान्तिक प्रेम की अधिकारिणी वनो, अनन्तर पौत्र-पौत्रियो की प्राप्ति के वाद जब आयु समाप्त होने लगे, तव जिस सच्चिदानन्द सागर के जलस्पर्श से सब प्रकार के विभेद दूर हो जाते हैं एव हम सब एक मे परिणत होते हैं, उन्हे प्राप्त करने के लिए तुम दोनो परस्पर सहायक वनो।'

उमा की तरह तुम जीवन भर पवित्र तथा निष्काम रहो तथा तुम्हारे पति का जीवन शिव जैसा उमागतप्राण हो!

तुम्हारा स्नेहाधीन भाई
विवेकानन्द

(कुमारी मेरी हेल को लिखित)

एयरली लॉज, रिजवे गार्डेन्स
विम्बल्डन, इंग्लैण्ड
१७ सितम्बर, १८९६

प्रिय बहन,

स्विट्जरलैण्ड में दो महीने तक पर्वतारोहण, पद-यात्रा और हिमनदों का दृश्य देखने के बाद आज लन्दन पहुँचा। इससे मुझे एक लाभ हुआ—शरीर का व्यर्थ का मुटापा छँट गया और वजन कुछ पौंड घट गया। ठीक, किन्तु उसमें भी खैरियत नहीं, क्योंकि इस जन्म में जो ठोस शरीर प्राप्त हुआ है, उसने अनन्त विस्तार की होड़ में मन को मात देने की ठान रखी है। अगर यह रवैया जारी रहा तो मुझे जल्द ही अपने शारीरिक रूप व अपनी व्यक्तिगत पहिचान खोनी पड़ेगी—कम से कम शेष सारी दुनिया की निगाह में।

हैरियट के पत्र के शुभ संवाद से मुझे जो प्रसन्नता हुई, उसे शब्दों में व्यक्त करना मेरे लिए असम्भव है। मैंने उसे आज पत्र लिखा है। खेद है कि उसके विवाह के अवसर पर मैं न आ सकूँगा, किन्तु समस्त शुभकामनाओं और आशीर्वादों के साथ मैं अपने 'सूक्ष्म शरीर' से उपस्थित रहूँगा। और, अपनी प्रसन्नता की पूर्णता के निमित्त मैं तुमसे तथा अन्य बहनों से भी इसी प्रकार के समाचार की अपेक्षा करता हूँ।

इस जीवन में मुझे एक बड़ी नसीहत मिली है, और प्रिय मेरी, मैं अब उसे तुम्हें बताना चाहता हूँ। वह है—'जितना ही ऊँचा तुम्हारा ध्येय होगा, उतना ही अधिक तुम्हें सन्तप्त होना पड़ेगा। कारण यह है कि 'संसार में' अथवा इस जीवन में भी आदर्श नाम की वस्तु की उपलब्धि नहीं हो सकती। जो संसार में पूर्णता चाहता है, वह पागल है, क्योंकि वह हो नहीं सकती।

ससीम में असीम तुम्हें कैसे मिलेगा? इसलिए मैं तुम्हें बता देना चाहता हूँ कि हैरियट का जीवन अत्यन्त आनन्दमय और सुखमय होगा, क्योंकि वह इतनी कल्पनाशील और भावुक नहीं है कि अपने को मूर्ख बना ले। जीवन को सुमधुर बनाने के लिए उसमें पर्याप्त भावुकता है और जीवन की कठोर गुत्थियों

को, जो प्रत्येक के सामने आती ही है, सुलझाने के लिए उसमे काफी समझदारी तथा कोमलता भी है। उससे भी अधिक मात्रा मे वे ही गुण मैककिंटले मे भी है। वह ऐसी लडकी है जो सर्वोत्तम पत्नी होने लायक है, पर यह दुनिया ऐसे मूढो की खान है कि इने-गिने लोग ही आन्तरिक सौन्दर्य पसन्द पाते है। जहाँ तक तुम्हारा और आइसावेल का सवाल है, मैं तुम्हे सच बताऊँगा और मेरी भाषा स्पष्ट है।

मेरी, तुम तो एक बहादुर अरब जैसी हो—शानदार और भव्य। तुम भव्य राजमहिषी बनने योग्य हो—शारीरिक दृष्टि से और मानसिक दृष्टि से भी। तुम किसी तेज-तर्रार, बहादुर और जोखिम उठानेवाले वीर पति की पार्श्ववर्ती बन कर चमक उठोगी, किन्तु प्रिय बहन, पत्नी के रूप मे तुम खराब से खराब सिद्ध होगी। सामान्य दुनिया मे जो आराम से जीवन व्यतीत करनेवाले, व्यावहारिक तथा कार्य के बोझ से पिसनेवाले पति हुआ करते हैं, उनकी तो तुम जान ही निकाल लोगी। सावधान, बहन, यद्यपि किसी उपन्यास की अपेक्षा वास्तविक जीवन मे अधिक रूमानिअत है, लेकिन वह है बहुत कम। अतएव तुम्हे मेरी सलाह है कि जब तक तुम अपने आदर्शों को व्यावहारिक स्तर पर न ले आ सको, तब तक हरगिज विवाह मत करना। यदि कर लिया तो दोनो का जीवन दु खमय होगा। कुछ ही महीनो मे सामान्य कोटि के उत्तम, भले युवक के प्रति तुम अपना सारा आदर खो बैठोगी और तब जीवन नीरस हो जायगा। बहन आइसावेल का स्वभाव भी तुम्हारे ही जैसा है। अन्तर इतना ही है कि किडरगार्टन की अध्यापिका होने के नाते उसने धैर्य और सहिष्णुता का अच्छा पाठ सीख लिया है। सम्भवत वह अच्छी पत्नी बनेगी।

दुनिया मे दो तरह के लोग है। एक कोटि तो उन लोगो की है जो दृढ स्नायुओवाले, शान्त तथा प्रकृति के अनुरूप आचरण करनेवाले होते हैं, वे अधिक कल्पनाशील नही होते, फिर भी अच्छे, दयालु, सौम्य आदि होते है। दुनिया ऐसे लोगो के लिए ही है—वे ही सुखी रहने के लिए पैदा हुए हैं। दूसरी कोटि उन लोगो की है जिनके स्नायु अधिक तनाव के हैं, जिनमे प्रगाढ भावना है, जो अत्यधिक कल्पनाशील हैं, सदा एक क्षण मे बहुत ऊँचे चले जाते हैं और दूसरे क्षण नीचे उतर आते हैं—उनके लिए सुख नही। प्रथम कोटि के लोगो का सुख-काल प्राय सम होता है और द्वितीय कोटि के लोगो को हर्ष विषाद के द्वन्द्व मे जीवन व्यतीत करना पडता है। किन्तु इसी द्वितीय कोटि मे ही उन लोगो का आविर्भाव होता है, जिन्हें हम प्रतिभासम्पन्न कहते हैं। इस हाल के सिद्धान्त मे कुछ सत्य है कि 'प्रतिभा एक प्रकार का पागलपन है।'

इस कोटि के लोग यदि महान् बनना चाहें तो उन्हें सारे-प्यारे की बाज़ी लगानी होगी—युद्ध के लिए मैदान साफ़ करना पड़ेगा। कोई बोझ नहीं—न प्यार न ममता, न बच्चे और न किसी वस्तु के प्रति आवश्यकता से अधिक आसक्ति। अनुरक्ति केवल एक 'भाव' के प्रति और उसीके निमित्त जीना-मरना। मैं इसी प्रकार का व्यक्ति हूँ। मैंने केवल वेदान्त का भाव ग्रहण किया है और 'युद्ध के लिए मैदान साफ़ कर लिया है'। तुम और इसाबेल भी इसी कोटि में हो, परन्तु मैं तुम्हें बता देना चाहता हूँ, यद्यपि है यह कटु सत्य, कि 'तुम लोग अपना जीवन व्यर्थ नष्ट कर रही हो।' या तो तुम लोग एक भाव ग्रहण कर लो, तन्निमित्त मैदान साफ़ कर लो और जीवन अर्पित कर दो, या सन्तुष्ट एवं व्यावहारिक बनो, आदर्श नीचा करो, विवाह कर लो एवं 'सुखमय जीवन' व्यतीत करो। या तो 'भोग' या 'योग'—सांसारिक सुख भोगो या सब त्याग कर योगी बनो। 'एक साथ दोनों की उपलब्धि किसीको नहीं हो सकती।' अभी या फिर कभी नहीं—शीघ्र चुन लो। कहावत है कि 'जो बहुत नखरे वाला होता है उसके हाथ कुछ नहीं लगता।' अब सच्चे दिल से वास्तव में और सदा के लिए धर्म-संग्राम के लिए 'मैदान साफ़ करने' का संकल्प करो। कुछ भी ले लो, दर्शन या विज्ञान या धर्म अथवा साहित्य कुछ भी ले लो और अपने शेष जीवन के लिए उसीको अपना ईश्वर बना लो। या तो सुख ही लाभ करो या महानता। तुम्हारे और इसाबेल के प्रति मेरी सहानुभूति नहीं; तुमने इसे चुना है न उसे। मैं तुम्हें सुखी—जैसा कि हैरियट ने ठीक ही चुना है—अथवा 'महान्' देखना चाहता हूँ। भोजन, जलपान, शृंगार तथा सामाजिक अस्तव्यस्तता ऐसी वस्तुएँ नहीं कि जीवन को उन पर कुर्बान कर दो—विशेषतः तुम मेरी! तुम एक उत्कृष्ट मस्तिष्क और योग्यताओं में जंग लगने दे रही हो, जिसके लिए जरा भी कारण नहीं है। तुममें महान् बनने की महत्त्वाकांक्षा होनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि तुम मेरी इन कटूक्तियों को उचित भाव से ग्रहण करोगी, क्योंकि तुम्हें मालूम है कि मैं तुम्हें 'बहन' कहकर जो सम्बोधित करता हूँ, वैसा ही या उससे भी अधिक तुम्हें प्यार करता हूँ। इसे बताने का मेरा बहुत पहले से विचार था और ज्यों ज्यों अनुभव बढ़ता जा रहा है, त्यों त्यों इसे बता देने का विचार हो रहा है। हैरियट से जो आनन्ददायक समाचार मिला, उसने एकाएक तुम्हें यह सब कहने को प्रेरित किया। तुम्हारा भी विवाह हो जाने और सुखी होने पर, जहाँ तक इस संसार में सुख हो सकता है, मैं बेहद खुशी होऊँगा, अथवा मैं तुम्हारे बारे में यह सुनना चाहूँगा कि तुम महान् कार्य कर रही हो।

जर्मनी में प्रोफ़ेसर डॉयसन से मेरी भेंट आनन्ददायक थी। मुझे विश्वास है कि

तुमने सुना होगा कि वे जीवित जर्मन दार्शनिकों में सर्वश्रेष्ठ हैं। हम दोनों साथ ही इग्लैंड आये और आज साथ ही यहाँ अपने मित्र से मिलने आये, जहाँ इग्लैण्ड के प्रवास-काल में मैं ठहरनेवाला हूँ। सस्कृत में वार्तालाप उन्हे अत्यन्त प्रिय है और पाश्चात्य देशों में सस्कृत के विद्वानों में वे ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो उसमें बातचीत कर सकते है। वह अभ्यस्त बनना चाहते है, इसलिए सस्कृत के सिवा अन्य किसी भाषा में वे मुझसे बाते नही करते।

यहाँ मैं अपने मित्रो के बीच आया हूँ, कुछ सप्ताह कार्य करूँगा और तब जाडो मे भारत वापस लौट जाऊँगा।

तुम्हारा सदैव सस्नेह भाई,
विवेकानन्द

(श्री आलासिंगा पेरुमल को लिखित)

द्वारा कुमारी मूलर,
एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स,
विम्बलडन, इग्लैण्ड,
२२ सितम्बर, १८९६

प्रिय आलासिंगा,

मैक्समूलर द्वारा लिखित रामकृष्ण पर जो लेख मैंने तुम्हे भेजा था, आशा है मिला होगा। उन्होंने कही भी मेरे नाम की चर्चा नही की है—इसके लिए दु खित मत होना। क्योकि मुझसे परिचय होने के छ माह पूर्व उन्होंने यह लेख लिखा था। और, यदि उनका मूल वक्तव्य सही है तो फिर इससे क्या लेना देना कि किसका नाम उन्होंने लिया और नही लिया। जर्मनी मे प्रोफेसर डॉयसन के साथ मेरा समय आनन्दपूर्वक कटा। इसके बाद हम दोनो साथ ही लन्दन आये और हमारी मित्रता घनिष्ठ हो गयी है।

मैं शीघ्र ही उनके सम्बन्ध मे एक लेख भेज रहा हूँ। सिर्फ एक प्रार्थना है, मेरे लेख के पहले पुराने ढग का—'प्रिय महाशय' मत जोडा करो। तुमने 'राजयोग' पुस्तक अभी तक देखी है या नही, इस वर्ष के लिए मैं एक प्रारूप भेजने की चेष्टा करूँगा। मैं तुम्हे 'डेली न्यूज़' मे प्रकाशित रूस के ज़ार द्वारा लिखित यात्रा-पुस्तक की समीक्षा भेज रहा हूँ। जिस परिच्छेद मे उन्होंने भारत को अध्यात्म और ज्ञान का देश कहा है—उसको तुम अपने पत्र मे उद्धृत करके एक निबन्ध 'इडियन मिरर' को भेज दो।

तुम ज्ञानयोग के व्याख्यान को खुशी से प्रकाशित कर सकते हो। और

इस कोटि के लोग यदि महान् बनना चाहें तो उन्हें मारे-प्यारे की लड़ाई लड़नी होगी—युद्ध के लिए मैदान साफ़ करना पड़ेगा। कोई बोझ नहीं—न बोझ न पोथा, न बच्चे और न किसी वस्तु के प्रति आवश्यकता से अधिक आसक्ति। अनुरक्ति केवल एक 'भाव' के प्रति और उसीके निमित्त जीना-मरना। मैं इसी प्रकार का व्यक्ति हूँ। मैंने केवल वेदान्त का भाव ग्रहण किया है और 'युद्ध के लिए मैदान साफ़ कर लिया है'। तुम और हैरियट भी इसी कोटि में हो, परन्तु मैं तुम्हें बता देना चाहता हूँ, यद्यपि है यह कटु सत्य, कि तुम लोग अपना जीवन व्यर्थ नष्ट कर रही हो। या तो तुम लोग एक भाव ग्रहण कर लो, तदनिमित्त मैदान साफ़ कर लो और जीवन अर्पित कर दो, या सन्तुष्ट एवं व्यावहारिक बनो, आदर्श नीचा करो, विवाह कर लो एवं 'सुखमय जीवन' व्यतीत करो। या तो 'भोग' या 'योग'—सांसारिक सुख भोगो या सब त्याग कर योगी बनो। 'एक साथ दोनों की उपलब्धि किसीको नहीं हो सकती।' अभी या फिर कभी नहीं—शीघ्र चुन लो। कहावत है कि 'जो बहुत छिद्रान्वेषी होता है, उसके हाथ कुछ नहीं लगता।' अब सच्चे दिल से वास्तव में और सदा के लिए कर्म-संग्राम के लिए 'मैदान साफ़ करने' का संकल्प करो, कुछ भी ले लो, दर्शन या विज्ञान या धर्म अथवा साहित्य कुछ भी ले लो और अपने शेष जीवन के लिए उसीको अपना ईश्वर बना लो। या तो सुख ही लाभ करो या महानता। तुम्हारे और हैरियट के प्रति मेरी सहानुभूति नहीं, तुमने इसे चुना है न उसे। मैं तुम्हें सुखी—जैसा कि हैरियट ने ठीक ही चुना है—अथवा 'महान्' देखना चाहता हूँ। भोजन, मद्यपान, शृंगार तथा सामाजिक आडम्बर ऐसी वस्तुएँ नहीं कि जीवन को उनके हवाले कर दो—विशेषतः तुम मेरी। तुम एक उत्कृष्ट मस्तिष्क और योग्यताओं में जंग लगने दे रही हो, जिसके लिए ज़रा भी कारण नहीं है। तुममें महान् बनने की महत्त्वाकांक्षा होनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि तुम मेरी इन कटूक्तियों को समुचित भाव से ग्रहण करोगी, क्योंकि तुम्हें मालूम है कि मैं तुम्हें बहन कह कर जो सम्बोधित करता हूँ वैसा ही या उससे भी अधिक तुम्हें प्यार करता हूँ। इसे बताने का मेरा बहुत पहले से विचार था और ज्यों ज्यों अनुभव बढ़ता जा रहा है, त्यों त्यों इसे बता देने का विचार हो रहा है। हैरियट से जो हर्षमय समाचार मिला, उससे इतना तुम्हें यह सब कहने को प्रेरित हुआ। तुम्हारे भी विवाहित हो जाने और सुखी होने पर, जहाँ तक इस संसार में सुख सुलभ हो सकता है, मुझे बेहद खुशी होगी, अन्यथा मैं तुम्हारे बारे में यह सुनना पसन्द करूँगा कि तुम महान् कार्य कर रही हो।

जर्मनी में प्रोफ़ेसर डॉयसन से मेरी भेंट मज़ेदार थी। मुझे विश्वास है कि

सदा सहायता मिलती थी तथा जो मुझमे शक्ति एव उत्साह का सचार करता था। और कई हजार मील की दूरी के बावजूद वही मुखमडल मेरे मनश्चक्षु के सम्मुख उदित हुआ, क्योकि उस अतीन्द्रिय भूमि मे दूरत्व का स्थान ही कहाँ है? अस्तु, तुम तो अपने शान्तिमय तथा पूर्ण विश्रामदायक घर लौट चुकी हो—परन्तु मेरे समक्ष प्रतिक्षण कर्मों का ताडव बढता ही जा रहा है। फिर भी तुम्हारी शुभ-कामनाएँ सदा ही मेरे साथ हैं—ठीक है न?

किसी गुफा मे जाकर चुपचाप निवास करना ही मेरा स्वाभाविक सस्कार है, किन्तु पीछे से मेरा अदृष्ट मुझे आगे की ओर ढकेल रहा है और मैं आगे बढता जा रहा हूँ। अदृष्ट की गति को कौन रोक सकता है?

ईसा मसीह ने अपने 'पर्वत पर उपदेश' (Sermon on the Mount) मे यह क्यो नही कहा—'जो सदा आनन्दमय तथा आशावादी हैं, वे ही धन्य हैं, क्योकि उनको स्वर्ग का राज्य तो पहले ही प्राप्त हो चुका है।' मेरा विश्वास है कि उन्होंने निश्चय ही ऐसा कहा होगा, यद्यपि वह लिपिबद्ध नही हुआ, कारण यह है कि उन्होंने अपने हृदय में विश्व के अनन्त दु ख को धारण किया था एव यह कहा था कि साधु का हृदय शिशु के अन्त करण के सदृश है। मैं समझता हूँ, उनके हजारो उपदेशो मे से शायद एकाध उपदेश, जो याद रहा, लिपिबद्ध किया गया है।

हमारे अधिकाश मित्र आज आये थे। गाल्सवर्दी परिवार की एक सदस्या—विवाहित पुत्री भी आयी थी। श्रीमती गाल्सवर्दी आज नही आ सकी, सूचना बहुत देर से दी गयी थी। अब हमारे पास एक हॉल भी है, खासा बडा जिसमे लगभग दो सौ व्यक्ति अथवा इससे अधिक भी आ सकते हैं। इसमे एक बडा सा कोना है जिसमे पुस्तकालय की व्यवस्था की जायगी। अब मेरी सहायता के लिए भारत से एक और व्यक्ति आ गया है।

मुझे स्विट्जरलैण्ड मे बडा आनन्द आया, जर्मनी मे भी। प्रोफ़ेसर डॉयसन बहुत ही कृपालु रहे—हम दोनो साथ लन्दन आये और दोनो ने यहाँ काफ़ी आनन्द लिया। प्रोफेसर मैक्समूलर भी बहुत अच्छे मित्र हैं। कुल मिलाकर इग्लैण्ड का काम मजबूत हो रहा है—और सम्माननीय भी, यह देखकर कि बडे बडे विद्वान् सहानुभूति प्रदर्शित कर रहे हैं। शायद मैं अगली सर्दियो मे कुछ अग्रेज मित्रो के साथ भारत जाऊँगा। यह तो बात हुई अपने बारे मे।

उस धार्मिक परिवार का क्या हाल है? मुझे विश्वास है कि सब कुछ बिल्कुल ठीक चल रहा है। अब तो तुम्हे फोक्स का समाचार सुनने को मिला होगा। मुझे डर है कि उसके जहाजी यात्रा शुरू करने के एक दिन पहले, मेरे यह कहने से कि तुम तब तक मेबेल से विवाह नही कर सकते, जब तक तुम काफ़ी कमाने न लगो,

डॉक्टर नन्जुन्दा राव भी उसे अपने 'प्रबुद्ध भारत' के लिए ले सकते हैं किन्तु सिर्फ सरल और सहज भाषणों को। उन व्याख्यानों को एक बार सावधानी से देखकर उसमें पुनरावृत्ति और परस्पर विरोधी विचारों को निकाल देना है। मुझे पूरी आशा है कि लिखने के लिए अब अधिक समय मिलेगा। पूरी शक्ति के साथ कार्य में जुट रहो।

सभी को प्यार—

तुम्हारा

विवेकानन्द

पुनश्च—मैंने उद्धत होनेवाले परिच्छेद को रेखांकित कर दिया है। बाकी अंश किसी पत्रिका के लिए निरर्थक है।

मैं नहीं समझता कि अभी पत्रिका को मासिक बनाने से कोई लाभ होगा—जब तक कि तुमको यह विश्वास न हो जाय कि उसका कलेवर मोटा होगा। जैसा कि अभी है—कलेवर और सामग्री सभी मामूली है। अभी भी एक बहुत बड़ा क्षेत्र पड़ा हुआ है, जो अभी तक छुआ नहीं गया है। यथा—तुलसीदास कबीर और नानक तथा दक्षिण भारत के सन्तों के जीवन और कृति के सम्बन्ध में लिखना। इसे विद्वत्तापूर्ण शैली तथा पूरी जानकारी के साथ लिखना होगा—ढीले ढाले और अधकचरे ढंग से नहीं। असल में पत्र को आदर्श—वेदान्त के प्रचार के अलावा भारतीय अनुसंधान और ज्ञानपिपासाओं का—मुखपत्र बनाना होगा। हाँ धर्म ही इसका आधार होगा। तुम्हें अच्छे लेखकों से मिलकर अच्छी सामग्री के लिए आग्रह करना होगा तथा उनकी लेखनी से अच्छी रचना वसूल करनी होगी।

लगन के साथ कार्य में लगे रहो—

तुम्हारा

विवेकानन्द

(कुमारी जोसेफ़िन मैक्लिऑड को लिखित)

द्वारा कुमारी मूलर,
एयरली लॉज रिजवे गार्डेन्स
विम्बलडन इंग्लैण्ड
७ अक्तूबर, १८९६

प्रिय जो

तुम सही सलामत हो। और कठिनाइयाँ भी एकाएक शुरू हो गयी हैं। मेरा मन आप ही उस परिचित मुख को चारों ओर ढूँढ़ रहा था जिसमें कभी निरुत्साह की एक रेखा तक नहीं दिखती थी जो कभी परिवर्तित नहीं होता था और जिसने मुझे

इसके लिए उसने महाकाक्षा से समस्त सुन्दर वस्तुओ का एक साथ आवाहन कर अपने शाश्वत मन मे एकत्र किया और उनको एक चित्र की भाँति उत्कृष्ट तथा आदर्श रूप दिया। ऐसे दिव्य, ऐसे आश्चर्यजनक आदि रूप से उस सौन्दर्य राशि की रचना हुई।' (कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुन्तलम्)

'जो', 'जो' तुम वह हो, मैं केवल इतना और जोड देना चाहता हूँ कि उसी रचयिता ने समस्त पवित्रता, समस्त उदाराशयता तथा अन्य समस्त गुणो को भी एकत्र किया और तब 'जो' की रचना हुई।

शुभाकाक्षी,
विवेकानन्द

पुनश्च—सेवियर दम्पति तुम्हे अपनी शुभकामनाएँ भेज रहे हैं। उनके निवासस्थान से ही मैं यह पत्र लिख रहा हूँ।

विवेकानन्द

(कुमारी एलेन वाल्डो या हरिदासी नामक एक शिष्या को लिखित)

एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स,
विम्बलडन, इग्लैण्ड
८ अक्तूबर, १८९६

प्रिय वाल्डो,

स्विट्ज़रलैण्ड मे मुझे पूर्ण विश्राम मिला एव प्रोफेसर पॉल डॉयसन के साथ मेरी विशेष मित्रता हो गयी है। वस्तुत अन्य स्थानो की अपेक्षा यूरोप मे मेरा कार्य अधिक सन्तोषजनक रूप से बढ़ रहा है तथा भारतवर्ष मे इसका बहुत ज्यादा प्रभाव पडेगा। लन्दन मे पुन कक्षाएँ चालू हो गयी हैं—आज तत्सम्बन्धी प्रथम व्याख्यान होगा। अब मुझे एक ऐसा सभागृह मिल गया है, जिस पर मेरा ही नियत्रण है, उसमे दो सौ या उससे भी अधिक व्यक्ति बैठ सकते हैं

यह तो तुम जानती ही हो कि अग्रेज लोग कितने दृढचित्त होते हैं, अन्य जातियो की अपेक्षा उन लोगो मे पारस्परिक ईर्ष्या की भावना भी बहुत ही कम होती है और यही कारण है कि उनका प्रभुत्व सारे ससार पर है। दासता की प्रतीक खुशामद से सर्वथा दूर रहकर उन्होंने आज्ञा-पालन, पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ नियमो के पालन के रहस्य का पता लगा लिया है।

प्रोफेसर मैक्समूलर अब मेरे मित्र हैं। मुझ पर लन्दन की छाप लग चुकी है। 'र' नामक युवक के बारे मे मुझे विशेष कुछ ज्ञात नही। वह बगाली है तथा कुछ कुछ सस्कृत भी पढा सकता है। तुम तो मेरी इस दृढ़ धारणा से परिचित ही हो कि

वह कुछ निराश हो गया था! क्या मिसेस अभी तुम्हारे यहाँ है? उससे मेरा प्यार कहना। तुम अपना वर्तमान पता भी मुझको लिखना।

माँ कैसी है? मुझे विश्वास है कि फ्रान्सिस पूर्ववत् पक्के खरे सोने की तरह है। अल्बर्टा तो संगीत और भाषाएँ सीख रही होगी पूर्ववत खूब हँसती होगी और खूब सेब खाती होगी? हाँ आजकल फल-बादाम ही मेरा मुख्य आहार है, एवं वे मुझे काफ़ी अनुकूल जान पड़ते हैं। यदि कभी उस अज्ञात 'उच्च देशीय' बूढ़े डॉक्टर के साथ तुम्हारी भेंट हो तो यह रहस्य उन्हें बतलाना। मेरी चर्बी बहुत कुछ घट चुकी है जिस दिन भाषण देना होता है, उस दिन अवश्य पौष्टिक भोजन करना पड़ता है। हालिस का क्या समाचार है? उसकी तरह के मधुर स्वभाव का कोई दूसरा बालक मुझे दिखायी नहीं दिया। उसका समग्र जीवन सर्वविध आशीर्वाद से पूर्ण हो।

मैंने सुना है कि जरथुस्त्र के मतवाद के समर्थन में तुम्हारे मित्र कोला भाषण दे रहे हैं? इसमें सन्देह नहीं कि उनका भाग्य विशेष अनुकूल नहीं है। कुमारी एण्ड्रीज तथा हमारे योगानन्द का क्या समाचार है? 'ज ब द' गोष्ठी की क्या खबर है? और हमारी श्रीमती (नाम याद नहीं है) कैसी हैं? ऐसा सुना जा रहा है कि हाल ही में आधा जहाज भरकर हिन्दू, बौद्ध मुसलमान तथा अन्य और न जाने कितने ही सम्प्रदाय के लोग अमेरिका आ पहुँचे हैं तथा महात्माओं की खोज करनेवालों ईसाई धर्म-प्रचारकों आदि का दूसरा दल भारत में घुसा है। बहुत खूब! भारतवर्ष तथा अमेरिका—ये दोनों देश धर्म-उद्योग के लिए बने जान पड़ते हैं! किन्तु 'जो' सावधान! विधर्मियों की छूत खतरनाक है। श्रीमती स्टर्लिंग से आज रास्ते में भेंट हुई। आजकल वे मेरे भाषण सुनने नहीं आतीं। यह उनके लिए उचित ही है क्योंकि अत्यधिक दार्शनिकता भी ठीक नहीं है। क्या तुम्हें उस महिला की याद है जो मेरी हर सभा में इतनी देर से आती थी कि उसको कुछ भी सुनने को न मिलता था किन्तु तुरन्त बाद मे वह मुझे पकड़कर इतनी देर तक बातचीत में लगाये रखती कि भूख से मेरे उदर में 'वाटरलू' का महासंग्राम छिड़ जाता था। वह आयी थी। लोग आ रहे हैं तथा और भी आयेंगे। यह आनन्द का विषय है।

रात बढ़ती जा रही है अतः 'जो' विदा—(न्यूयार्क मे भी क्या ठीक ठीक अदब-कायदे का पालन करना आवश्यक है?) प्रभु निरन्तर तुम्हारा कल्याण करें!

'मनुष्य के प्रवीण रचयिता ब्रह्मा को एक ऐसे निर्दोष रूप की रचना करने की इच्छा हुई जिसका अनुपम सौष्ठव सृष्टि की सुन्दरतम कृतियों में सर्वोत्तम हो।

इसके लिए उसने महाकाक्षा से समस्त सुन्दर वस्तुओ का एक साथ आवाहन कर अपने शाश्वत मन मे एकत्र किया और उनको एक चित्र की भाँति उत्कृष्ट तथा आदर्श रूप दिया। ऐसे दिव्य, ऐसे आश्चर्यजनक आदि रूप से उस सौन्दर्य राशि की रचना हुई।' (कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुन्तलम्)

'जो', 'जो' तुम वह हो, मैं केवल इतना और जोड देना चाहता हूँ कि उसी रचयिता ने समस्त पवित्रता, समस्त उदाराशयता तथा अन्य समस्त गुणो को भी एकत्र किया और तब 'जो' की रचना हुई।

शुभाकाक्षी,
विवेकानन्द

पुनश्च—सेवियर दम्पति तुम्हे अपनी शुभकामनाएँ भेज रहे हैं। उनके निवासस्थान से ही मैं यह पत्र लिख रहा हूँ।

विवेकानन्द

(कुमारी एलेन वाल्डो या हरिदासी नामक एक शिष्या को लिखित)

एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स,
विम्बलडन, इग्लैण्ड
८ अक्तूबर, १८९६

प्रिय वाल्डो,

स्विट्ज़रलैण्ड मे मुझे पूर्ण विश्राम मिला एव प्रोफेसर पॉल डॉयसन के साथ मेरी विशेष मित्रता हो गयी है। वस्तुत अन्य स्थानो की अपेक्षा यूरोप मे मेरा कार्य अधिक सन्तोषजनक रूप से बढ रहा है तथा भारतवर्ष मे इसका बहुत ज्यादा प्रभाव पडेगा। लन्दन मे पुन कक्षाएँ चालू हो गयी हैं—आज तत्सम्बन्धी प्रथम व्याख्यान होगा। अब मुझे एक ऐसा सभागृह मिल गया है, जिस पर मेरा ही नियत्रण है, उसमे दो सौ या उससे भी अधिक व्यक्ति बैठ सकते हैं

यह तो तुम जानती ही हो कि अग्रेज लोग कितने दृढचित्त होते हैं, अन्य जातियो की अपेक्षा उन लोगो मे पारस्परिक ईर्ष्या की भावना भी बहुत ही कम होती है और यही कारण है कि उनका प्रभुत्व सारे ससार पर है। दासता की प्रतीक खुशामद से सर्वथा दूर रहकर उन्होने आज्ञा-पालन, पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ नियमो के पालन के रहस्य का पता लगा लिया है।

प्रोफेसर मैक्समूलर अब मेरे मित्र हैं। मुझ पर लन्दन की छाप लग चुकी है। 'र' नामक युवक के बारे मे मुझे विशेष कुछ ज्ञात नही। वह बगाली है तथा कुछ कुछ सस्कृत भी पढा सकता है। तुम तो मेरी इस दृढ धारणा से परिचित ही हो कि

जिसने काम-कांचन पर विजय नहीं पायी उस पर मुझे कतई भरोसा नहीं। तुम उसे सैद्धान्तिक विषयों की शिक्षा देने का अवसर प्रदान कर देख सकती हो किन्तु वह 'राजयोग' कभी भी न सिखा पाये। जो नियमित रूप से उसमें प्रशिक्षित नहीं उसके लिए इससे खिलवाड़ करना नितान्त खतरनाक है। सारदानन्द के सम्बन्ध में कोई डर नहीं है, वर्तमान भारत के सर्वश्रेष्ठ योगी का आशीर्वाद उसे प्राप्त है। तुम क्यों नहीं शिक्षा देना प्रारम्भ करती हो? इस 'र' बालक की अपेक्षा तुम्हारा दार्शनिक ज्ञान कहीं अधिक है। 'कक्षा' की नोटिस निकालो तथा नियमित रूप से धर्मचर्चा करो और व्याख्यान दो।

अनेक हिन्दुओं यहाँ तक कि मेरे किसी गुरुभाई को अमेरिका में सफलता मिली है—इस संवाद से मुझे जो आनन्दानुभव होता है, उससे सहस्र गुना अधिक आनन्द मुझे तब प्राप्त होगा जब मैं यह देखूँगा कि तुम लोगों में से किसीने इसमें हाथ बँटाया है। मनुष्य दुनिया को जीतना चाहता है किन्तु अपनी सन्तान के निकट पराजित होना चाहता है। ज्ञानाग्नि प्रज्वलित करो! ज्ञानाग्नि प्रज्वलित करो!

शुभाकांक्षी
विवेकानन्द

(श्रीमती ओलि बुल को लिखित)

विम्बलडन इंग्लैण्ड
८ अक्तूबर, १८९६

प्रिय श्रीमती बुल,

जर्मनी में प्रोफेसर डॉयसन के साथ मेरी भेंट हुई थी। कील में मैं उनका अतिथि था। हम दोनों एक साथ लन्दन आये थे तथा यहाँ पर भी कई बार उनसे मिल कर मुझे विशेष आनन्द मिला। धर्म तथा समाज सम्बन्धी कार्य के विभिन्न अंगों के प्रति यद्यपि मेरी पूर्ण सहानुभूति है फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि प्रत्येक के कार्यों का विशेष विभाग होना नितान्त आवश्यक है। वेदान्त प्रचार ही हमारा मुख्य कार्य है। अन्य कार्यों में सहायता पहुँचाना भी इसी आदर्श का सहायक होना चाहिए। आशा है कि आप इस विषय को सारदानन्द के हृदय में अच्छी तरह दृढ़ता के साथ जमा देंगे।

क्या आपने प्रोफेसर मैक्समूलर रचित श्री रामकृष्ण सम्बन्धी लेख पढ़ा?

यहाँ पर इंग्लैण्ड में प्रायः सभी लोग हमारे सहायक बनते जा रहे हैं। न केवल हमारे कार्यों का यहाँ पर विस्तार हो रहा है, अपितु उनको सम्मान भी मिल रहा है।

शुभाकांक्षी
विवेकानन्द

(१८९६ ई० के अन्त मे डॉ० बरोज़ की भारतव्यापी व्याख्यान-यात्रा के पूर्व 'इण्डियन मिरर' नामक पत्र मे स्वामी जी का एक पत्र प्रकाशित हुआ था, जिसमे उन्होंने अपने देशवासियो को डॉ० बरोज़ का परिचय प्रदान करते हुए उनका उपयुक्त अभिनन्दन करने के लिए अनुरोध किया था। नीचे उसी का कुछ अश दिया जा रहा है।)

लन्दन,

२८ अक्टूबर, १८९६

शिकागो विश्व मेला मे सम्मेलनो की विराट् कल्पना को सफल बनाने के लिए श्री सी० बॉनी ने डॉ० बरोज़ को अपना सहकारी निर्वाचित कर सबसे उपयुक्त व्यक्ति पर ही कार्यभार सौंपा था, डॉ० बरोज़ के नेतृत्व मे उन सम्मेलनो मे धर्म-महासभा को जो महत्त्व प्राप्त हुआ था, वह आज इतिहास-प्रसिद्ध है।

डॉ० बरोज़ का अद्भुत साहस, अथक परिश्रम, अविचलित धैर्य तथा स्वभाव-सिद्ध भद्रता के फलस्वरूप ही इस सम्मेलन को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई थी। उस आश्चर्यजनक शिकागो-सम्मेलन के द्वारा ही भारत, भारतवासी तथा भारतीय भावनाएँ ससार के समक्ष पहले से भी अधिक उज्ज्वल रूप से प्रकट हुई हैं एव इस स्वजातीय कल्याण के लिए उस सभा से सम्बन्धित अन्य व्यक्तियो की अपेक्षा हम डॉ० बरोज़ के ही अधिक ऋणी हैं।

इसके सिवाय वे हमारे समीप धर्म के पवित्र नाम तथा मानव जाति के एक श्रेष्ठ आचार्य का नाम लेकर आ रहे हैं एव मेरा यह विश्वास है कि 'नेज़रथ के पैगम्बर' द्वारा प्रचारित धर्म की उनकी व्याख्या अत्यन्त उदार होगी तथा मन को उन्नत बनायेगी। ईसा की शक्ति का जो परिचय वे देना चाहते हैं, वह दूसरो के मत के प्रति असहिष्णु, प्रभुत्वपूर्ण और दूसरो के प्रति घृणापूर्ण मनोवृत्तिप्रसूत नही है। परन्तु एक भाई की तरह उन्नति-अभिलाषी भारत के विभिन्न वर्गों के सहयोगी भाइयो मे सम्मिलित होने की आकाक्षा से प्रेरित होकर—वे जा रहे हैं। सबसे पहले हमे यह स्मरण रखना है कि कृतज्ञता तथा अतिथि-सेवा ही भारतीय जीवन का वैशिष्ट्य है, अत अपने देशवासियो के समीप मेरा यह विनम्र अनुरोध है कि पृथिवी के दूसरे छोर से भारत जानेवाले इस विदेशी सज्जन के प्रति वे ऐसा आचरण करें जिससे उन्हे यह पता चल सके कि दु ख, दारिद्र्य तथा अवनति की स्थिति मे भी हमारा हृदय, अतीत की तरह ही अर्थात् जब भारतवर्ष आर्यभूमि के नाम से प्रख्यात था एव उसके ऐश्वर्य की बात जगत् की सब जातियो की जिह्वा पर रहती थी, आज भी मित्रतापूर्ण है।

जिसने काम-कांचन पर विजय नहीं पायी, उस पर मुझे कतई भरोसा नहीं। तुम उसे सैद्धान्तिक विषयों की शिक्षा देने का अवसर प्रदान कर देख सकती हो, किन्तु वह 'राजयोग' कभी भी न सिखा पाये। जो नियमित रूप से उसमें प्रशिक्षित नहीं, उसके लिए इससे खिलवाड़ करना नितान्त खतरनाक है। सारदानन्द के सम्बन्ध में कोई डर नहीं है, वर्तमान भारत के सर्वश्रेष्ठ योगी का आशीर्वाद उसे प्राप्त है। तुम क्यों नहीं शिक्षा देना आरम्भ करती हो? इस 'र' बालक की अपेक्षा तुम्हारा दार्शनिक ज्ञान कहीं अधिक है। 'कक्षा' की नोटिस निकालो तथा नियमित रूप से धर्मचर्चा करो और व्याख्यान दो।

अनेक हिन्दुओं, यहाँ तक कि मेरे किसी गुरुभाई को अमेरिका में सफलता मिली है—इस संवाद से मुझे जो आनन्दानुभव होता है, उससे सहस्र गुना अधिक आनन्द मुझे तब प्राप्त होगा जब मैं यह देखूँगा कि तुम लोगों में से किसीने इसमें हाथ बँटाया है। मनुष्य दुनिया को जीतना चाहता है, किन्तु अपनी सन्तान के निकट पराजित होना चाहता है। ज्ञानाग्नि प्रज्वलित करो! ज्ञानाग्नि प्रज्वलित करो!

शुभाकांक्षी
विवेकानन्द

(श्रीमती ओलि बुल को लिखित)

विम्बलडन, इंग्लैण्ड
८ अक्तूबर, १८९६

प्रिय श्रीमती बुल,

जर्मनी में प्रोफेसर डॉयसन के साथ मेरी भेंट हुई थी। कील में मैं उनका अतिथि था। हम दोनों एक साथ लन्दन आये थे तथा यहाँ पर भी कई बार उनसे मिल कर मुझे विशेष आनन्द मिला। धर्म तथा समाज सम्बन्धी कार्य के विभिन्न अंगों के प्रति यद्यपि मेरी पूर्ण सहानुभूति है, फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि प्रत्येक के कार्यों का विशेष विभाग होना नितान्त आवश्यक है। वेदान्त-प्रचार ही हमारा मुख्य कार्य है। अन्य कार्यों में सहायता पहुँचाना भी इसी आदर्श का सहायक होना चाहिए। आशा है कि आप इस विषय को सारदानन्द के हृदय में अच्छी तरह दृढ़ता के साथ जमा देंगी।

क्या आपने प्रोफेसर मैक्समूलर रचित श्री रामकृष्ण सम्बन्धी लेख पढ़ा?

यहाँ पर इंग्लैण्ड में प्रायः सभी लोग हमारे सहायक बनते जा रहे हैं। न केवल हमारे कार्यों का यहाँ पर विस्तार हो रहा है, अपितु उनको सम्मान भी मिल रहा है।

शुभाकांक्षी
विवेकानन्द

वाह्य स्वर्ग या राम-राज्य का अस्तित्व केवल कल्पना मे ही है, परन्तु मनुष्य के भीतर इनका अस्तित्व पहले से ही है। कस्तूरी की सुगन्ध के कारण की व्यर्थ खोज करने के वाद, कस्तूरी-मृग अन्त मे उसे अपने मे ही पाता है।

वाह्य समाज सर्वदा शुभ और अशुभ का सम्मिश्रण होगा—वाह्य जीवन की अनुगामी उसकी छाया अर्थात् मृत्यु, सर्वदा उसके साथ रहेगी, और जीवन जितना लम्वा होगा, उसकी छाया भी उतनी ही लम्वी होगी। केवल जव सूर्य हमारे सिर पर होता है, तव कोई छाया नही होती। जव ईश्वर, शुभ और अन्य सव कुछ हममे ही है तो अशुभ कहाँ? परन्तु वाह्य जीवन मे प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है और हर शुभ के साथ अशुभ उसकी छाया की तरह जाता है। उन्नति मे अधोगति का समान अश रहता है, कारण यह है कि अशुभ और शुभ एक ही पदार्थ हैं, दो नही, भेद अभिव्यक्ति मे है—मात्रा मे है, न कि जाति मे।

हमारा जीवन स्वय दूसरो की मृत्यु पर अवलम्बित है, चाहे वनस्पतियाँ हो, चाहे पशु, चाहे कीटाणु। एक वडी भारी भूल जो हम लोग वहुधा करते हैं, वह यह कि शुभ को हम सदा वढनेवाली वस्तु समझते हैं और अशुभ को एक निश्चित राशि मानते हैं। इससे हम तर्क द्वारा सिद्ध करते हैं कि यदि अशुभ दिन दिन घट रहा है तो एक समय ऐसा आयेगा, जव शुभ ही अकेला शेष रह जायगा। मिथ्या पूर्व पक्ष को स्वीकार कर लेने से हमारा तर्क अशुद्ध हो जाता है। यदि शुभ की मात्रा वढ रही है तो अशुभ की भी वढती है। मेरी जाति की जनता की अपेक्षा मेरी आकाक्षाएँ वहुत वढ गयी हैं। मेरा सुख उनसे अत्यधिक है, परन्तु मेरा दु ख भी उनसे लाखो गुना तीव्र है। जिस स्वभाव के कारण तुम्हे शुभ के स्पर्श मात्र का आभास होता है, उसीसे तुम्हे अशुभ के स्पर्श मात्र का भी आभास होगा। जिन स्नायुओ द्वारा सुख का अनुभव होता है, उन्हीके द्वारा दु ख का भी, और एक ही मन दोनो का अनुभव करता है। ससार की उन्नति का अर्थ है सुख और दु ख—दोनो की अधिक मात्रा। जीवन और मृत्यु, शुभ और अशुभ, ज्ञान और अज्ञान का सम्मिश्रण —यही 'माया' कहलाती है—यही है विश्व का नियम। तुम अनन्त काल तक इस जाल मे सुख और दु ख की खोज करो—तुम्हे वहुत सुख और वहुत दु ख दोनो मिलेंगे। यह कहना कि ससार मे केवल शुभ ही हो, अशुभ नही, वालको का प्रलाप मात्र है। दो मार्ग हमारे सामने हैं—एक तो सव प्रकार की आशा को छोडकर ससार जैसा है वैसा स्वीकार करके, दु ख की वेदना को सहन करें, इस आशा मे कि कभी कभी सुख का अल्पाश मिल जाया करेगा। दूसरा मार्ग यह है कि हम सुख को दु ख का ही एक दूसरा रूप समझकर सुख की खोज को त्याग दें तथा सत्य की खोज करें—और जो सत्य की खोज करने का साहस रखते हैं, वे उसे नित्य अपने

(कुमारी मेरी हेल को लिखित)

१४ ग्रेकोट गार्डेन्स,
वेस्टमिनिस्टर, लन्दन,
१ नवम्बर, १८९६

प्रिय मेरी

'सोना और चाँदी मेरे पास किंचित् मात्र नहीं है, किन्तु जो मेरे पास है वह मैं तुम्हें मुक्तहस्त दे रहा हूँ।'—और वह यह ज्ञान है कि स्वर्ण का स्वर्णत्व रजत का रजतत्व पुरुष का पुरुषत्व स्त्री का स्त्रीत्व और सब वस्तुओं का सत्यस्वरूप परमात्मा ही है और इस परमात्मा को प्राप्त करने के लिए बाह्य जगत् में हम अनादि काल से प्रयत्न करते आ रहे हैं, और इस प्रयत्न में हम अपनी कल्पना की 'विविध' वस्तुओं—पुरुष स्त्री बालक शरीर, मन पृथ्वी सूर्य चन्द्र तारे, संसार, प्रेम द्वेष धन सम्पत्ति इत्यादि को और भूत राक्षस देवदूत देवता ईश्वर इत्यादि को भी—त्यागते रहे हैं।

सच तो यह है कि प्रभु हममें ही है, हम स्वयं प्रभु हैं—जो नित्य द्रष्टा सच्चा 'अहम्' तथा अतीन्द्रिय है। उसे द्वैत भाव से देखने की प्रवृत्ति तो केवल समय और बुद्धि को नष्ट करना ही है। जब जीव को यह ज्ञान हो जाता है, तब वह विषयों का आश्रय लेना छोड़ देता है और आत्मा की ओर अधिकाधिक प्रवृत्त होता है। यही क्रम-विकास है अर्थात् अन्तर्दृष्टि का अधिकाधिक विकास एवं बहिर्दृष्टि का अधिकाधिक लोप। सर्वाधिक विकसित रूप मानव है क्योंकि वह मननशील है—वह ऐसा प्राणी है जो विचार करता है ऐसा प्राणी नहीं जो केवल इन्द्रियों से सम्बद्ध है। धर्मशास्त्र में इसे 'त्याग' कहते हैं। समाज का निर्माण विवाह की व्यवस्था सन्तान-प्रेम हमारे शुभ कर्म सदाचरण और नैतिकता ये सब त्याग के विभिन्न रूप हैं। सब समाजों में हम लोगों का जीवन इच्छा पिपासा या कामना के दमन में ही निहित है। इच्छा अथवा मिथ्या आत्मा के इस परित्याग—स्वार्थ से निकलने की अभिलाषा नित्य द्रष्टा को द्वैत भाव से देखने के प्रयत्न के विरुद्ध संघर्ष के भिन्न भिन्न रूप तथा उनकी अवस्थाएँ ही संसार के भिन्न भिन्न समाज एवं सामाजिक नियम हैं। मिथ्या आत्मा के समर्पण तथा स्वार्थनिग्रह का सबसे सरल उपाय है प्रेम तथा इसका विपरीत उपाय है द्वेष।

स्वर्ग-नरक तथा आकाश के परे राज करनेवाले शासकों से सम्बद्ध अनेक कथाओं अथवा अन्धविश्वासों के द्वारा मनुष्य को भुलावे में डालकर उसे आत्मसमर्पण के लक्ष्य की ओर अग्रसर किया जाता है। ज्ञानी इन अन्धविश्वासों से दूर रहकर इच्छाजनित वासना के त्याग द्वारा जानबूझकर इस लक्ष्य की ओर जाने लगता है।

वाह्य स्वर्ग या राम-राज्य का अस्तित्व केवल कल्पना में [illegible] के भीतर इनका अस्तित्व पहले से ही है। कस्तूरी की सुगन्ध [illegible] खोज करने के वाद, कस्तूरी-मृग अन्त मे उसे अपने मे ही पाता है।

वाह्य समाज सर्वदा शुभ और अशुभ का सम्मिश्रण होगा—वाह्य जीवन [illegible] अनुगामी उसकी छाया अर्थात् मृत्यु, सर्वदा उसके साथ रहेगी, और जीवन जितना लम्बा होगा, उसकी छाया भी उतनी ही लम्बी होगी। केवल जब सूर्य हमारे सिर पर होता है, तब कोई छाया नही होती। जब ईश्वर, शुभ और अन्य सब कुछ हममे ही है तो अशुभ कहाँ? परन्तु वाह्य जीवन मे प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है और हर शुभ के साथ अशुभ उसकी छाया की तरह जाता है। उन्नति मे अधोगति का समान अश रहता है, कारण यह है कि अशुभ और शुभ एक ही पदार्थ है, दो नही, भेद अभिव्यक्ति मे है—मात्रा मे है, न कि जाति मे।

हमारा जीवन स्वय दूसरो की मृत्यु पर अवलम्बित है, चाहे वनस्पतियाँ हो, चाहे पशु, चाहे कीटाणु। एक वडी भारी भूल जो हम लोग वहुधा करते है, वह यह कि शुभ को हम सदा वढ़नेवाली वस्तु समझते है और अशुभ को एक निश्चित राशि मानते हैं। इससे हम तर्क द्वारा सिद्ध करते हैं कि यदि अशुभ दिन दिन घट रहा है तो एक समय ऐसा आयेगा, जब शुभ ही अकेला शेष रह जायगा। मिथ्या पूर्व पक्ष को स्वीकार कर लेने से हमारा तर्क अशुद्ध हो जाता है। यदि शुभ की मात्रा वढ रही है तो अशुभ की भी वढती है। मेरी जाति की जनता की अपेक्षा मेरी आकाक्षाएँ बहुत बढ गयी हैं। मेरा सुख उनसे अत्यधिक है, परन्तु मेरा दुःख भी उनसे लाखो गुना तीव्र है। जिस स्वभाव के कारण तुम्हें शुभ के स्पर्श मात्र का आभास होता है, उसीसे तुम्हें अशुभ के स्पर्श मात्र का भी आभास होगा। जिन स्नायुओं द्वारा सुख का अनुभव होता है, उन्हीके द्वारा दुःख का भी, और एक ही मन दोनो का अनुभव करता है। ससार की उन्नति का अर्थ है सुख और दुःख—दोनो की अधिक मात्रा। जीवन और मृत्यु, शुभ और अशुभ, ज्ञान और [illegible] का सम्मिश्रण—यही 'माया' कहलाती है—यही है विश्व का नियम। [illegible] काल तक इस जाल मे सुख और दुःख की खोज करो—तुम्हे [illegible] दुःख दोनो मिलेंगे। यह कहना कि ससार में केवल शुभ ही [illegible] का प्रलाप मात्र है। दो मार्ग हमारे सामने हैं—एक ना[illegible] को छो[illegible] ससार जैसा है वैसा स्वीकार करके, दुःख की [illegible] आशा [illegible] कभी कभी सुख का अल्पांश मिल जाया [illegible] है कि [illegible] को दुःख का ही एक दूसरा रूप समझकर [illegible] दे तथा खोज करें—और जो सत्य की खोज [illegible]

में ही विद्यमान पाते हैं। फिर हमें यह भी पता लग जाता है कि वही सत्य किस प्रकार हमारे व्यावहारिक जीवन के भ्रम और ज्ञान दोनों रूपों में प्रकट हो रहा है—हमें यह भी पता लग जाता है कि वही सत्य 'आनन्द' है, जो शुभ और अशुभ दोनों रूपों में अभिव्यक्त हो रहा है। साथ ही हमें यह भी पता लग जाता है कि वही 'सत्' जीवन और मृत्यु दोनों रूपों में प्रकट हो रहा है।

इस प्रकार हम यह अनुभव करते हैं कि ये सब बातें उसी एक अस्तित्व—सत्-चित्-आनन्द सब चीजों के अस्तित्व स्वरूप और यथार्थ स्वरूप की भिन्न भिन्न प्रतिच्छायाएँ मात्र हैं। तब और केवल तभी बिना बुराई के भलाई करना सम्भव होता है क्योंकि ऐसी आत्मा ने उस पदार्थ को जिससे कि शुभ और अशुभ दोनों का निर्माण होता है, जान लिया है और अपने वश में कर लिया है और वह अपनी इच्छानुसार एक या दूसरे का विकास कर सकता है। हम यह भी जानते हैं कि वह केवल शुभ का ही विकास करता है। यही 'जीवन्मुक्ति' है जो वेदान्त का और सब तत्त्व-ज्ञानों का अन्तिम लक्ष्य है।

मानवी समाज पर चारों वर्ण—पुरोहित सैनिक व्यापारी और मजदूर बारी बारी से शासन करते हैं। हर शासन का अपना गौरव और अपना दोष होता है। जब ब्राह्मण का राज्य होता है, तब आनुवंशिक आधार पर भयंकर पृथकता रहती है—पुरोहित स्वयं और उनके वंशज नाना प्रकार के अधिकारों से सुरक्षित रहते हैं, उनके अतिरिक्त किसीको कोई ज्ञान नहीं होता, और उनके अतिरिक्त किसीको शिक्षा देने का अधिकार नहीं है। इस विशिष्ट युग में सब विद्याओं की नींव पड़ती है, यह इसका गौरव है। ब्राह्मण मन को उन्नत करते हैं, क्योंकि मन द्वारा ही वे राज्य करते हैं।

क्षत्रिय शासन क्रूर और अन्यायी होता है, परन्तु उनमें पृथकता नहीं रहती और उनके युग में कला और सामाजिक संस्कृति उन्नति के शिखर पर पहुँच जाती है।

उसके बाद वैश्य शासन आता है। इसमें कुचलने की और खून चूसने की मौन शक्ति अत्यन्त भीषण होती है। इसका लाभ यह है कि व्यापारी सब जगह जाता है, इसलिए वह पहले दोनों युगों में एकत्र किये हुए विचारों को फैलाने में सफल होता है। उनमें क्षत्रियों से भी कम पृथकता होती है, परन्तु सभ्यता की अवनति आरम्भ हो जाती है।

अन्त में आयेगा मजदूरों का शासन। उसका लाभ होगा भौतिक सुखों का समान वितरण—और उससे हानि होगी कदाचित् संस्कृति का निम्न स्तर पर गिर जाना। साधारण शिक्षा का बहुत प्रचार होगा परन्तु असामान्य प्रतिभाशाली व्यक्ति कम होते जायँगे।

यदि ऐसा राज्य स्थापित करना सम्भव हो जिसमे ब्राह्मण युग का ज्ञान, क्षत्रिय युग की सभ्यता, वैश्य युग का प्रचार-भाव और शूद्र युग की समानता रखी जा सके—उनके दोषो को त्याग कर—तो वह आदर्श राज्य होगा। परन्तु क्या यह सम्भव है?

परन्तु पहले तीनो का राज्य हो चुका है। अब शूद्र शासन का युग आ गया है—वे अवश्य राज्य करेंगे, और उन्हे कोई रोक नही सकता। सिक्के का स्वर्ण अथवा रजतमान रखने मे क्या क्या कठिनाइयाँ हैं, मैं यह सब नही जानता (और मैंने देखा है कि कोई भी इस विषय में अधिक नही जानता), परन्तु मैं यह देखता हूँ कि स्वर्णमान ने धनवानो को अधिक धनी तथा दरिद्रो को और भी अधिक दरिद्र बना दिया है। ब्रायन ने यह ठीक ही कहा था कि 'सोने के भी क्रॉस पर हम लटकाये जाना पसद न करेंगे।' रजतमान हो जाने पर इस असमान युद्ध मे गरीबो के पक्ष में कुछ बल आ जायगा। मैं समाजवादी हूँ, इसलिए नही कि मैं इसे पूर्ण रूप से निर्दोष व्यवस्था समझता हूँ, परन्तु इसलिए कि रोटी न मिलने से आधी रोटी ही अच्छी है।

और सब मतवाद काम मे लाये जा चुके हैं और दोषयुक्त सिद्ध हुए हैं। इसकी भी अब परीक्षा होने दो—यदि और किसी कारण से नही तो उसकी नवीनता के लिए ही। सर्वदा एक ही वर्ग के व्यक्तियो को सुख और दु ख मिलने की अपेक्षा सुख और दुःख का बटवारा करना अच्छा है। शुभ और अशुभ की समष्टि ससार मे समान ही रहती है। नये मतवादो से वह भार कधे से कधा बदल लेगा, और कुछ नही।

इस दु खी ससार मे सब को सुख-भोग का अवसर दो, जिससे इस तथाकथित सुख के अनुभव के पश्चात् वे ससार, शासन-विधि और अन्य झझटो को छोडकर प्रभु के पास आ सकें।

तुम सबको मेरा प्यार।

शुभाकाक्षी,<br>
विवेकानन्द

(श्री आलासिंगा पेरुमल को लिखित)

१४, ग्रेकोट गार्डन्स,<br>
वेस्टमिनिस्टर, एस० डब्ल्यू०,<br>
११ नवम्बर, १८९६

प्रिय आलासिंगा,

बहुत सभव है कि मैं १६ दिसम्बर या उसके दो एक दिन बाद यहाँ से प्रस्थान

करूँ। वहाँ से इटली जाऊँगा और वहाँ के कुछ स्थानों को देखने के बाद नेपुल्स में स्टीमर पर सवार हो जाऊँगा। कुमारी मूलर, श्री और श्रीमती सेवियर तथा गुडविन नामक एक युवक मेरे साथ चल रहे हैं। सेवियर दम्पति अल्मोड़े में बसने जा रहे हैं और कुमारी मूलर भी। सेवियर भारतीय सेना में पाँच साल तक अफ़सर के पद पर थे। अतः भारत के बारे में उन्हें काफ़ी जानकारी है। कुमारी मूलर थियोसॉफ़िस्ट थीं जिन्होंने अक्षय को गोद लिया। गुडविन अंग्रेज है जिनके द्वारा शीघ्रलिपि में तैयार की गयी टिप्पणियों से पुस्तिकाओं का प्रकाशन सम्भव हुआ।

मैं कोलम्बो से सर्वप्रथम मद्रास पहुँचूँगा। अन्य लोग अल्मोड़े जायँगे। वहाँ से मैं कलकत्ता जाऊँगा। जब मैं यहाँ से प्रस्थान करूँगा तब ठीक ठीक सूचना देते हुए पत्र लिखूँगा।

तुम्हारा शुभाकांक्षी
विवेकानन्द

पुनश्च—'राजयोग' पुस्तक के प्रथम संस्करण की सभी प्रतियाँ बिक गयीं और द्वितीय संस्करण छपने के लिए प्रेस में है। भारत और अमेरिका सबसे बड़े खरीदार हैं।

वि

(श्रीमती बुल को लिखित)

ग्रेकोट गार्डन्स
वेस्ट मिनिस्टर,
१३ नवम्बर, १८९६

प्रिय श्रीमती बुल,

मैं शीघ्र ही भारत के लिए प्रस्थान करनेवाला हूँ कदाचित् १६ दिसम्बर को। अमेरिका आने से पहले मुझे एक बार भारत जाने की तीव्र अभिलाषा है और मैंने अपने साथ इंग्लैण्ड से कई मित्रों को भारत ले जाने का प्रबन्ध किया है इसलिए चाहे मेरी कितनी ही इच्छा हो परन्तु अमेरिका होते हुए जाना मेरे लिए असम्भव है।

निश्चय ही डॉ जेम्स अति उत्तम काम कर रहे हैं। उन्होंने मेरी और मेरे कार्य की जो सहायता की है, उसके लिए और उनके कृपाभाव के लिए कृतज्ञता प्रकट करने मे मैं असमर्थ सा हूँ यहाँ का कार्य अत्यन्त सुन्दर रूप से आगे बढ़ रहा है।

तुम्हारा
विवेकानन्द

(श्री आलासिंगा पेरुमल को लिखित)

३९, विक्टोरिया स्ट्रीट, लन्दन,
२० नवम्बर, १८९६

प्रिय आलासिंगा,

मैं इग्लैण्ड से इटली के लिए १६ दिसम्बर को रवाना होऊँगा और नेपल्स से 'नार्थ जर्मन लॉयड एस० एस० प्रिन्स रीजेन्ट लिओपोल्ड' नामक जहाज से प्रस्थान करूँगा। जहाज आगामी १४ जनवरी को कोलम्बो पहुँचनेवाला है।

श्रीलका मे कुछ चीजें देखने की मेरी इच्छा है, वहाँ से फिर मद्रास पहुँचूंगा। मेरे साथ तीन अग्रेज दोस्त है—कैप्टन तथा श्रीमती सेवियर तथा श्री गुडविन। श्री सेवियर और उसकी पत्नी अल्मोडा के पास हिमालय मे एक मठ बनाने की सोच रहे हैं, जिसे मैं अपना 'हिमालय केन्द्र' बनाना चाहता हूँ। और वही पाश्चात्य शिष्यो को ब्रह्मचारी और सन्यासी के रूप मे रखूंगा। गुडविन एक अविवाहित नवयुवक है। वह मेरे साथ भ्रमण करेगा और मेरे ही साथ रहेगा। वह सन्यासी जैसा ही है।

मेरी तीव्र अभिलाषा है कि श्री रामकृष्ण देव के जन्मोत्सव से पहले मैं कलकत्ता पहुँच जाऊँ। मेरी वर्तमान कार्य-योजना यह है कि युवक प्रचारको के प्रशिक्षण के लिए कलकत्ता और मद्रास मे दो केन्द्र स्थापित करना है। कलकत्ते के केन्द्र के लिए मेरे पास पर्याप्त धन है। कलकत्ता श्री रामकृष्ण के कर्म-जीवन का क्षेत्र रह चुका है, इसलिए वह मेरा ध्यान पहले आकर्षित करता है। मद्रास के केन्द्र के लिए मैं आशा करता हूँ कि भारत से मुझे धन मिल जायगा।

इन तीन केन्द्रो से हम काम आरम्भ करेंगे। फिर इसके बाद बम्बई और इलाहाबाद मे भी केन्द्र बनायेंगे। इन तीन स्थानो से, यदि भगवान् की कृपा हुई तो, हम भारत भर मे ही नही, परन्तु ससार के प्रत्येक देश मे प्रचारको का दल भेजेंगे। यह हमारा पहला कर्तव्य होना चाहिए। दिल लगाकर काम करते रहो। कुछ समय के लिए लन्दन का मुख्य कार्यालय ३९, विक्टोरिया स्ट्रीट मे रहेगा, क्योकि कार्य यही से होगा। स्टर्डी के पास सन्दूक भर 'ब्रह्मवादिन्' पत्रिका है, जिसका मुझे पहले पता नही था। वह अब इसके लिए ग्राहक बनाने के लिए प्रचार-कार्य कर रहा है।

चूंकि अब अग्रेजी भाषा मे भारत से एक पत्रिका आरम्भ हो गयी है, अत अब भारतीय भाषाओ मे भी हम कोई पत्रिका आरम्भ कर सकते हैं। विम्बलटन की कुमारी एम० नोबल बडी काम करनेवाली है। वह मद्रास की दोनो पत्रिकाओ

के लिए प्रचार-कार्य भी करेगी। वह तुम्हें लिखेगी। ऐसे कार्य धीरे धीरे, किन्तु निश्चित रूप से आगे बढ़ेंगे। ऐसी पत्रिकाओं को अनुयायियों के छोटे से समुदाय द्वारा ही सहायता मिलती है। एक ही समय में उनसे अनेक कार्य करने की आशा नहीं करनी चाहिए। उनको पुस्तकें खरीदनी पड़ती हैं, इंग्लैण्ड का कार्य चलाने के लिए पैसा एकत्र करना पड़ता है; यहाँ की पत्रिका के लिए ग्राहक ढूँढने पड़ते हैं और फिर भारतीय पत्रिकाओं को खरीदना पड़ता है। यह बहुत ज्यादती है। यह शिक्षा प्रचार की अपेक्षा व्यापार-कार्य अधिक जान पड़ता है। ऐसी स्थिति में तुम धीरज रखो। फिर भी मुझे आशा है कि कुछ ग्राहक बन ही जायँगे। इसके अलावा मेरे जाने के बाद यहाँ लोगों के पास करने के लिए काम होना चाहिए, नहीं तो सब किया-कराया मिट्टी में मिल जायगा। इसलिए धीरे धीरे यहाँ और अमेरिका में भी पत्रिका होनी चाहिए। भारतीय पत्रिकाओं की सहायता भारतवासियों को ही करनी चाहिए। किसी पत्रिका के सब राष्ट्रों में समान भाव से अपनाये जाने के लिए, सब राष्ट्रों के लेखकों का एक बड़ा भारी विभाग रखना पड़ेगा, जिसके माने हैं प्रतिवर्ष एक लाख रुपये का खर्च।

तुम्हें यह न भूलना चाहिए कि मेरे कार्य अन्तर्राष्ट्रीय हैं, केवल भारतीय नहीं। मेरा तथा अभेदानन्द दोनों का स्वास्थ्य अच्छा है।

शुभाकांक्षी

विवेकानन्द

(श्री लाला बद्री साह को लिखित)

३९ विक्टोरिया स्ट्रीट, लन्दन

२१ नवम्बर, १८९६

प्रिय लाला जी,

७ जनवरी तक मैं मद्रास पहुँचूँगा, कुछ दिन समतल क्षेत्र में रहकर मेरी अल्मोड़ा जाने की इच्छा है।

मेरे साथ मेरे तीन अंग्रेज मित्र हैं, उनमें दो सेवियर दम्पति अल्मोड़ा में निवास करेंगे। आपको शायद यह पता होगा कि वे मेरे शिष्य हैं एवं मेरे लिए हिमालय में वे एक मठ बनवायेंगे। इसीलिए मैंने आपको एक उपयुक्त स्थान ढूँढने के लिए लिखा था। हमारे लिए एक ऐसी पूरी पहाड़ी चाहिए, जहाँ से हिम-शृंग दिखायी देता हो। इसमें सन्देह नहीं कि उपयुक्त स्थान निर्वाचित कर आश्रम निर्माण के लिए समय चाहिए। इस बीच क्या आप मेरे मित्रों के रहने के लिए किराये पर एक छोटे से बँगले की व्यवस्था करने की कृपा करेंगे? उसमें तीन

व्यक्तियो के रहने लायक स्थान होना आवश्यक है। बहुत बडा मकान नहीं चाहिए, इस समय छोटे से ही कार्य चल सकेगा। मेरे मित्र वहाँ पर रहकर आश्रम के लिए उपयुक्त स्थान तथा मकान की तलाश करेंगे।

इस पत्र के उत्तर देने की कोई आवश्यकता नही है, क्योकि उत्तर मिलने से पहले ही मैं भारत की ओर रवाना हो जाऊँगा। मद्रास पहुँच कर मैं आपको तार से सूचित करूँगा।

आप सब लोगो को स्नेह तथा आशीर्वाद।

भवदीय,
विवेकानन्द

(कुमारी मेरी तथा हैरियट हेल को लिखित)

३९, विक्टोरिया स्ट्रीट,
लन्दन,
२८ नवम्बर, १८९६

प्रिय बहनो,

चाहे जिस कारण से भी हो, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम चारो से ही मैं सबसे अधिक स्नेह करता हूँ एव मुझे अत्यन्त गर्व के साथ यह विश्वास है कि तुम चारो भी मुझसे वैसा ही स्नेह करती हो। इसलिए भारत रवाना होने से पूर्व तुम लोगो को यह पत्र स्वय ही आत्मप्रेरित होकर लिख रहा हूँ। लन्दन मे हमारे कार्य को जबरदस्त सफलता मिली है। अग्रेज लोग अमेरिकनो की तरह उतने अधिक सजीव नहीं हैं, किन्तु यदि कोई एक बार उनके हृदय को छू ले तो फिर सदा के लिए वे उनके गुलाम बन जाते हैं। धीरे धीरे मैं उन पर अपना अधिकार जमा रहा हूँ। आश्चर्य है कि छ माह के अन्दर ही, सार्वजनिक भाषणो के अलावा भी मेरी कक्षा मे १२० व्यक्ति नियमित रूप से उपस्थित हो रहे हैं। अग्रेज लोग अत्यन्त कार्यशील है, अत यहाँ के सभी लोग क्रियात्मक रूप से कुछ करना चाहते है। कैप्टन तथा श्रीमती सेवियर एव श्री गुडविन कार्य करने के लिए मेरे साथ भारत रवाना हो रहे हैं और उसका व्यय-भार भी वे स्वय उठायेंगे। यहाँ पर और भी बहुत से लोग इस प्रकार कार्य करने को प्रस्तुत हैं। प्रतिष्ठित स्त्री-पुरुषो के मस्तिष्क मे एक बार किसी भावना को प्रवेश करा देने पर, उसे कार्य मे परिणत करने के लिए वे अपना सब कुछ त्याग करने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। और सबसे अधिक आनन्दप्रद समाचार (यह कोई साधारण बात नहीं) यह है कि भारत मे कार्य प्रारम्भ करने के लिए हमे आर्थिक सहायता प्राप्त हो गयी है एव आगे चलकर और भी प्राप्त होगी। अग्रेज जाति के सम्बन्ध मे मेरी धारणा पूर्णतया

रस चुकी है। अब मुझे यह पता चल रहा है कि अन्यान्य जातियों की अपेक्षा प्रभु ने उन पर अधिक कृपा वर्षा की है। वे दृढ़संकल्प तथा अत्यन्त निष्ठावान हैं साथ ही उनमें हार्दिक सहानुभूति है—बाहर उदासीनता का कवच एक आवरण रहता है। उसको तोड़ देना है, बस फिर तुम्हें अपनी पसन्द का व्यक्ति मिल जायगा।

इस समय कलकत्ता तथा हिमालय में मैं एक एक केन्द्र स्थापित करने जा रहा हूँ। प्राय ७ फुट ऊँची एक समूची पहाड़ी पर हिमालय-केन्द्र स्थापित होगा। यह पहाड़ी गर्मी की ऋतु में शीतल तथा जाड़े में ठंडी रहेगी। कैप्टन तथा श्रीमती सेवियर वहीं रहेंगे एवं यूरोपीय कार्यकर्ताओं का वह केन्द्र होगा क्योंकि उनको भारतीय रहन सहन अपनाने तथा निदाघतप्त भारतीय समतल भूमि में बसने के लिए बाध्य कर मार डालना नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ कि सैकड़ों की संख्या में हिन्दू युवक प्रत्येक सभ्य देश में जाकर वेदान्त का प्रचार करें और वहाँ से नर-नारियों को एकत्र कर कार्य करने के लिए भारत भेजें। यह आदान प्रदान बहुत ही उत्तम होगा। केन्द्रों को स्थापित कर मैं 'जॉब का ग्रन्थ'[1] में वर्णित उस व्यक्ति की तरह ऊपर नीचे चारों ओर घूमूँगा।

आज यहीं पर पत्र को समाप्त करना चाहता हूँ—नहीं तो आज की डाक से रवाना न हो सकेगा। सभी ओर से मेरे कार्यों के लिए सुविधा मिलती जा रही है—तदर्थ मैं अत्यन्त सुखी हूँ एवं मैं समझता हूँ कि तुम लोगों को भी मेरी तरह सुख का अनुभव होगा। तुम्हें अनन्त कल्याण तथा सुख-शान्ति प्राप्त हो। अनन्त प्यार साथ—

शुभाकांक्षी
विवेकानन्द

पुनश्च—धर्मपाल का क्या समाचार है? वह क्या कर रहा है? उससे भेंट होने पर मेरा स्नेह कहना।

वि

---

१ Book of Job (जॉब का ग्रन्थ) बाइबिल के प्राचीन व्यवस्थान का ग्रंथविशेष है। इसमें एक कथा इस प्रकार है, एक बार शैतान ईश्वर से मिलने गया। ईश्वर ने उससे पूछा कि वह कहाँ से आ रहा है। उत्तर में उसने कहा "इस पृथिवी के इधर उधर चक्कर लगाकर तथा इसके ऊपर नीचे घूमता हुआ मैं आ रहा हूँ।" यहाँ पर स्वामी जी ने इधर उधर घूमने के प्रसंग में परिहासपूर्वक बाइबिल की उस घटना को लक्ष्य कर उक्त वाक्य का प्रयोग किया है।

( कुमारी जोसेफिन मैक्लिऑड को लिखित )

ग्रेकोट गार्डन्स,

वेस्टमिनिस्टर एस० डब्ल्यू०, लन्दन,

३ दिसम्बर, १८९६

प्रिय 'जो',

तुम्हारे कृपापूर्ण निमत्रण के लिए अनेक धन्यवाद। किन्तु, प्रिय जो-जो, प्यारे भगवान् ने यह विधान किया है कि मुझे १६ तारीख को कप्तान तथा श्रीमती सेवियर एव श्री गुडविन के साथ भारत के लिए प्रस्थान करना है। सेवियर दम्पति मेरे साथ नेपुल्स मे स्टीमर पर सवार होगे। चूँकि चार दिन रोम मे रुकना है, इसलिए मैं अल्बर्टा से विदा लेने जाऊँगा।

यहाँ अब कुछ चहल-पहल शुरू हो गयी है, ३९, विक्टोरिया के बडे हाल मे कक्षा लगती है, जो भर गया है, फिर भी और लोग कक्षा मे शामिल होना चाहते हैं।

साथ ही, उस प्राचीन भले देश की पुकार है, मुझे जाना ही है। इसलिए इस अप्रैल मे रूस जाने की सभी परियोजनाओ को नमस्कार।

मैं भारत मे कर्म-चक्र का प्रवर्तन मात्र कर पुन सदा रमणीय अमेरिका तथा इग्लैण्ड इत्यादि के लिए प्रस्थान कर दूँगा।

मेबुल का पत्र भेज कर तुमने बडी कृपा की—सचमुच शुभ समाचार है। केवल थोडा अफसोस है तो बेचारे फॉक्स के लिए। चाहे जो हो मेबुल उससे बच गयी, यह बेहतर हुआ।

न्यूयार्क मे क्या हो रहा है, इसके बारे मे तुमने कुछ नही लिखा। आशा है वहाँ सब अच्छा ही होगा। बेचारा कोला! क्या वह अब जीविकोपार्जन मे समर्थ हो पाया?

गुडविन का आगमन बडे मौके से हुआ, क्योकि इससे व्याख्यानो का विवरण ठीक तौर से तैयार होने लगा जिसका प्रकाशन पत्रिका के रूप मे हो रहा है। खर्च भर के लिए काफी ग्राहक बन गये हैं।

अगले सप्ताह तीन व्याख्यान होगे और इस मौसम का मेरा लन्दन का कार्य समाप्त हो जायगा। यहाँ इस वक्त धूम मची है, इसलिए मेरे छोडकर चले जाने को सभी लोग नादानी समझते हैं, परन्तु प्यारे प्रभु का आदेश है, 'प्राचीन भारत को प्रस्थान करो।' मैं आदेश का पालन कर रहा हूँ।

फ्रैंकिनसेंस मां, हौलिस्टर तथा अन्य सबको मेरा चिर प्रेम तथा आशीर्वाद और वही तुम्हारे लिए भी।

तुम्हारा शुभाकांक्षी
विवेकानन्द

(कुमारी अल्बर्टा स्टारगीज को लिखित)

१४ ग्रेकोट गार्डन्स
वेस्टमिनिस्टर, एस डब्ल्यू लन्दन
१ दिसम्बर, १८९९

प्रिय अल्बर्टा

इस पत्र के साथ 'जो-जो' को लिखित मैबेल का पत्र भेज रहा हूँ। इसमें उल्लिखित समाचार से मुझे बड़ी खुशी हुई और मुझे विश्वास है, तुम्हें भी होगी।

यहाँ से १६ तारीख को भारत रवाना हो रहा हूँ और नेपुल्स में स्टीमर पर सवार हो जाऊँगा। अतः कुछ दिन इटली में और तीन चार दिन रोम में रहूँगा। विदाई के समय तुमसे मिल कर बड़ी प्रसन्नता होगी।

कप्तान सेवियर और श्रीमती सेवियर दोनों मेरे साथ इंग्लैण्ड से भारत जा रहे हैं और वे भी मेरे साथ इटली में रहेंगे। पिछली ग्रीष्म ऋतु में तुम उनसे मिल चुकी हो। लगभग एक वर्ष में अमेरिका लौटने का मेरा इरादा है और वहाँ से यूरोप जाऊँगा।

सप्रेम एवं साशीष
विवेकानन्द

(श्रीमती ओलि बुल को लिखित)

१८, विक्टोरिया स्ट्रीट,
लन्दन
९ दिसम्बर, १८९९

प्रिय श्रीमती बुल

आपके इस अत्यन्त उदारतापूर्ण दान के लिए कृतज्ञता प्रकट करना अनावश्यक है। कार्य के प्रारम्भ में ही अधिक धन संग्रह कर मैं अपने को संकट में डालना नहीं चाहता हूँ, किन्तु कार्य-विस्तार के साथ साथ उस धन का प्रयोग करने पर मुझे बड़ी खुशी होगी। अत्यन्त छोटे पैमाने पर मैं कार्य प्रारम्भ करना चाहता हूँ। अभी तक मेरी कोई स्पष्ट योजना नहीं है। भारत के कार्यक्षेत्र में पहुँचने पर वास्तविक स्थिति का पता चलेगा। भारत पहुँच कर मैं अपनी योजना

तथा उसे कार्य मे परिणत करने के व्यावहारिक उपाय आपको विशद रूप से सूचित करूँगा। मैं १६ तारीख को रवाना हो रहा हूँ एव इटली मे दो चार दिन रहकर नेपल्स से जहाज पकड़ूँगा।

कृपया श्रीमती वागान, सारदानन्द तथा वहाँ के अन्य मित्रो को मेरा स्नेह दीजियेगा। आपके बारे मे मैं इतना ही कह सकता हूँ कि सदा ही से मैं आपको अपना सर्वोत्तम मित्र मानता आया हूँ एव जीवन भर वैसे ही मानता रहूँगा। मेरा आन्तरिक स्नेह तथा आशीर्वाद ग्रहण करें।

शुभाकाक्षी,
विवेकानन्द

(एक अमेरिकन महिला को लिखित)

लन्दन,
१३ दिसम्बर, १८९६

प्रिय श्रीमती जी,

नैतिकता का क्रमविन्यास समझ लेने के बाद सब चीजें समझ मे आने लगती हैं।

त्याग, अप्रतिरोध, अहिंसा के आदर्शों को सासारिकता, प्रतिरोध और हिंसा की प्रवृत्तियो को निरतर कम करते रहने से प्राप्त किया जा सकता है। आदर्श सामने रखो और उसकी ओर बढने का प्रयत्न करो। इस ससार मे बिना प्रतिरोध, बिना हिंसा और बिना इच्छा के कोई रह ही नही सकता। अभी ससार उस अवस्था मे नही पहुँचा कि ये आदर्श समाज मे प्राप्त किये जा सकें।

सब प्रकार की बुराइयो मे से गुज़रते हुए ससार की जो उन्नति हो रही है, वह उसे धीरे धीरे तथा निश्चित रूप से इन आदर्शों के उपयुक्त बना रही है। अधिकाश जनता को तो इस मद विकास के साथ चलना पड़ेगा, पर असाधारण लोगो को वर्तमान परिस्थितियो मे इन आदर्शों की प्राप्ति के लिए अपना मार्ग अलग बनाना पड़ेगा।

जो जिस समय का कर्तव्य है, उसका पालन करना सबसे श्रेष्ठ मार्ग है, और यदि वह केवल कर्तव्य समझ कर किया जाय तो वह मनुष्य को आसक्त नहीं बनाता।

सगीत सर्वोत्तम कला है और जो उसे समझते हैं उनके लिए वह सर्वोत्तम उपासना भी है।

हमें अज्ञान और अशुभ का नाश करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए, केवल यह समझ लेना है कि शुभ की वृद्धि से ही अशुभ का नाश होता है।

शुभाकांक्षी
विवेकानन्द

(श्री फ्रैन्सिस लेगेट को लिखित)

११ दिसम्बर, १८९६

प्रिय फ्रैंकिनसेंस

तो गोपाल[1] देवी शरीर धारण कर पैदा हुए! ऐसा होना ठीक ही था—समय और स्थान के विचार से। आजीवन उस पर प्रभु की कृपा बनी रहे! उसकी प्राप्ति के लिए तीव्र इच्छा थी और प्रार्थनाएँ भी की गयी थीं और वह तुम तथा तुम्हारी पत्नी के लिए जीवन में वरदान स्वरूप आयी है। मुझे इसमें रंच भी सन्देह नहीं है।

मेरी इच्छा थी कि चाहे यह रहस्य ही पूरा करने के ख्याल से कि 'पाश्चात्य शिशु के लिए प्राच्य मुनि उपहार ला रहे हैं', मैं इस समय अमेरिका आ जाता। किन्तु सब प्रार्थनाओं और आशीर्वादों से भरपूर मेरा हृदय वहीं पर है और शरीर की अपेक्षा मन अधिक शक्तिशाली होता है।

मैं इस महीने की १६वीं तारीख को रवाना हो रहा हूँ और नेपुल्स में स्टीमर पर सवार हो जाऊँगा। अल्बर्टा से रोम में अवश्य ही मिलूँगा।

पावन परिवार को बहुत बहुत प्यार।

सदा प्रभुपदाश्रित
विवेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

होटल मिनर्वा, फ्लोरेन्स
२० दिसम्बर, १८९६

प्रिय राखाल

इस पत्र से ही तुम्हें यह ज्ञात हो रहा होगा कि मैं अभी तक मार्ग में हूँ। लन्दन छोड़ने से पहले ही तुम्हारा पत्र तथा पुस्तिका मुझे मिली थी। मजूमदार के पागलपन पर कोई ध्यान न देना। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ईर्ष्या से उसका दिमाग

---

१ गोपाल का प्रयोग श्री कृष्ण के शिशु रूप के लिए किया जाता है; यहाँ पुत्र जन्म की प्रतीक्षा में पुत्री के जन्म का संकेत किया गया है।

खराब कर दिया है। उन्होने जिस अभद्रोचित भाषा का प्रयोग किया है, उसे सुनकर सभ्य देश के लोग उनका उपहास ही करेंगे। इस प्रकार की अशिष्ट भाषा का प्रयोग कर उन्होंने स्वय ही अपने उद्देश्य को विफल कर डाला है।

फिर भी हम कभी अपनी ओर से हरमोहन अथवा अन्य किसी व्यक्ति को ब्राह्मसमाजियो या और किसीके साथ झगडने की अनुमति नही दे सकते। जनता इस बात को अच्छी तरह से जान ले कि किसी सम्प्रदाय के साथ हमारा कोई विवाद नही है और यदि कोई झगडा करता है तो उसके लिए वह स्वय उत्तरदायी है। परस्पर विवाद करना तथा आपस मे निन्दा करना हमारा जातीय स्वभाव है। आलसी, कर्महीन, कटुभाषी, ईर्ष्यापरायण, डरपोक तथा विवादप्रिय—यही तो हम बगालियो की प्रकृति है। मेरा मित्र कहकर अपना परिचय देनेवाले को पहले इन्हे त्यागना होगा। न ही हरमोहन को कोई पुस्तक छापने की अनुमति देनी होगी, क्योकि इस प्रकार के प्रकाशन केवल जनता को छलने के लिए होते हैं।

कलकत्ते मे यदि सतरे मिलते हो तो मद्रास मे आलासिंगा के पते पर सौ सतरे भेज देना, जिससे मद्रास पहुँचने पर मुझे प्राप्त हो सके।

मुझे पता चला है कि मजूमदार ने यह लिखा है कि 'ब्रह्मवादिन्' पत्रिका मे प्रकाशित श्री रामकृष्ण के उपदेश यथार्थ नही है, मिथ्या हैं। यदि ऐसा ही है तो सुरेश दत्त तथा रामबाबू को 'इण्डियन मिरर' मे इसका प्रतिवाद करने को कहना। मुझे यह पता नही है कि उन उपदेशो का सग्रह किस प्रकार किया गया है, अत इस बारे मे मैं कुछ नही कह सकता हूँ।

सस्नेह तुम्हारा,
विवेकानन्द

पुनश्च—इन मूर्खों की ओर कोई ध्यान न देना, कहावत है कि 'वृद्ध मूर्ख जैसा और कोई दूसरा मूर्ख नहीं है।' उन्हें चिल्लाने दो। अहा, उन बेचारो का पेशा ही मारा गया है! कुछ चिल्लाकर ही उन्हें सन्तुष्ट होने दो।

वि०

(श्री आलासिंगा पेरुमल को लिखित)

१४, ग्रेकोट गार्डेन्स,
वेस्टमिनिस्टर, लन्दन,
१८९६

प्रिय आलासिंगा,

लगभग तीन सप्ताह हुए मैं स्विट्ज़रलैण्ड से लौटा हूँ, पर इसके पूर्व तुम्हें पत्र न लिख सका। पिछली डाक से मैंने तुम्हें कील के पॉल डॉयसन पर लिखा एक लेख भेजा था। स्टर्डी की पत्रिका की योजना में अभी भी विलम्ब है।

जैसा कि तुम जानते हो मैंने सेंट जार्ज रोड स्थित मकान छोड़ दिया है। ३९, विक्टोरिया स्ट्रीट पर एक लेक्चर हॉल हमें मिल गया है। ई॰ टी॰ स्टर्डी के मार्फत मेरे नाम पर चिट्ठी-पत्री मुझे एक साल तक मिल जाया करेगी। ग्रेकोट गार्डन्स के कमरे मेरे तथा मात्र तीन महीने के लिए आये हुए स्वामियों के आवास के लिए हैं। लन्दन में काम शीघ्रता से बढ़ रहा है और हमारी कक्षाएँ बड़ी होती जा रही हैं। इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं कि यह इसी रफ्तार से बढ़ता ही जायगा क्योंकि अंग्रेज लोग दृढ़ एवं निष्ठावान हैं। यह सही है कि मेरे छोड़ते ही इसका अधिकांश तानाबाना टूट जायगा। कुछ घटित अवश्य होगा। कोई शक्तिशाली व्यक्ति इसे ग्रहण करने के लिए उठ खड़ा होगा। ईश्वर जानता है कि क्या अच्छा है। अमेरिका में वेदान्त और योग पर बीस उपदेशकों की आवश्यकता है। पर ये उपदेशक और इन्हें यहाँ लाने के लिए धन कहाँ मिलेगा? यदि कुछ सच्चे और शक्तिशाली मनुष्य मिल जायें तो आधा संयुक्त राज्य दस वर्ष में जीता जा सकता है। वे कहाँ हैं? यहाँ के लिए हम सब अहमक हैं। स्वार्थी कायर, देशभक्ति की केवल मुख से बकवास करनेवाले और अपनी कट्टरता तथा धार्मिकता के अभिमान से चूर!! मद्रासियों[1] में अधिक स्फूर्ति और दृढ़ता होती है, परन्तु वहाँ हर मूर्ख विवाहित है। ओफ विवाह! विवाह! विवाह! और फिर आजकल के विवाह का तरीका जिसमें लड़कों को जोत दिया जाता है! अनासक्त गृहस्थ होने की इच्छा करना बहुत अच्छा है परन्तु मद्रास में अभी उसकी आवश्यकता नहीं है—बल्कि अविवाह की है।

मेरे बच्चे, मैं जो चाहता हूँ वह है लोहे की नसें और फौलाद के स्नायु जिनके भीतर ऐसा मन वास करता हो जो कि वज्र के समान पदार्थ का बना हो। बल, पुरुषार्थ, क्षात्रवीर्य और ब्रह्मतेज। हमारे सुन्दर होनहार लड़के—उनके पास सब कुछ है यदि वे विवाह नाम की क्रूर वेदी पर लाखों की गिनती में बलिदान न किये जायें! हे भगवान्, मेरे हृदय का क्रन्दन सुनो। मद्रास तभी जाग्रत होगा जब उसके प्रत्यक्ष हृदय स्वरूप सौ शिक्षित नवयुवक संसार को त्याग कर और कमर कस कर, देश देश में भ्रमण करते हुए सत्य का संग्राम लड़ने के लिए तैयार होंगे। भारत के बाहर का एक आघात भारत के अन्दर के एक लाख आघातों के बराबर है। खैर, यदि प्रभु की इच्छा होगी तो सभी कुछ हो जायगा।

मिस मूलर ही वह व्यक्ति हैं जिनसे मैंने तुम्हें रुपये दिलाने का वचन दिया था।

---

१ मद्रासी शब्द का प्रयोग स्वामी जी ने सदैव एक व्यापक संदर्भ में किया है जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण दक्षिणवासी आ जाते हैं।

मैंने उन्हे तुम्हारे नये प्रस्ताव के विषय मे बतला दिया है। वे उसके बारे मे सोच रही हैं। इस बीच मैं सोचता हूँ उन्हे कुछ काम दे देना उचित रहेगा। उन्होंने 'ब्रह्मवादिन्' और 'प्रबुद्ध भारत' का प्रतिनिधि बनना स्वीकार कर लिया है। इसके विषय मे क्या तुम उन्हे लिखोगे ? उनका पता है एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स, विम्बलडन, इग्लैण्ड। वही उनके साथ पिछले कई हफ्तो से मैं रह रहा था। लेकिन लन्दन का काम मेरे वहाँ रहे बिना सभव नही है। इसीलिए मैंने अपना आवास बदल दिया है। मुझे दु ख है कि इससे मिस मूलर की भावनाओ को थोडी ठेस पहुँची है। लेकिन किया ही क्या जा सकता है! उनका पूरा नाम है मिस हेनरियेटा मूलर। मैक्समूलर के साथ गाढी मित्रता हो रही है। मैं शीघ्र ही ऑक्सफोर्ड मे दो व्याख्यान देनेवाला हूँ।

मैं वेदान्त दर्शन पर कुछ बडी चीज लिख रहा हूँ और भिन्न भिन्न वेदो से वाक्य सग्रह करने मे लगा हूँ, जो कि वेदान्त की तीनो अवस्थाओ से सम्बन्ध रखते है। पहले अद्वैतवाद सम्बन्धी विचार, फिर विशिष्टाद्वैत और द्वैत से जो वाक्य सम्बन्ध रखते हो, वे सहिता, ब्राह्मण, उपनिषद् और पुराण मे से किसीसे सग्रह करा कर तुम मेरी सहायता कर सकते हो। वे श्रेणीबद्ध होने चाहिए, शुद्ध अक्षरो मे लिखे जाने चाहिए और प्रत्येक के साथ ग्रन्थ और अध्याय के नाम उद्धृत होने चाहिए। पुस्तक रूप मे दर्शन शास्त्र को पश्चिम मे छोडे बिना पश्चिम से चल देना दयनीय होगा।

मैसूर से तमिल अक्षरो मे एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी, जिसमे सभी १०८ उपनिषद् सम्मिलित थे। मैंने प्रोफेसर डॉयसन के पुस्तकालय मे वह पुस्तक देखी थी। क्या वह देवनागरी अक्षरो मे भी मुद्रित हुई है ? यदि हो तो मुझे एक प्रति भेजना। यदि न हो तो मुझे तमिल सस्करण तथा एक कागज पर तमिल अक्षर और सयुक्ताक्षर लिखकर भेज देना। उसके साथ देवनागरी समानार्थक अक्षर भी लिख देना जिससे मैं तमिल अक्षर पहचानना सीख जाऊँ।

श्री सत्यनाथन्, जिनसे कुछ दिन हुए मैं लन्दन मे मिला था, कहते थे कि 'मद्रास मेल' ने जो मद्रास का मुख्य ऐंग्लो इण्डियन समाचार पत्र है, मेरी पुस्तक 'राजयोग' की अनुकूल समीक्षा की है। मैंने सुना है कि अमेरिका के प्रधान शरीर-शास्त्रज्ञ मेरे विचारो पर मुग्ध हो गये हैं। उसके साथ ही इग्लैण्ड मे कुछ लोगो ने मेरे विचारो का मजाक उडाया है। यह ठीक ही है, क्योकि इसमे सन्देह नही कि मेरे विचार नितान्त साहसिक हैं और बहुत कुछ उनमे से हमेशा के लिए अर्थहीन रहेंगे, परन्तु उनमे कुछ ऐसे सकेत भी हैं जिन्हे शरीर-शास्त्रज्ञ यदि शीघ्र ही ग्रहण कर लें तो अच्छा हो। फिर भी उसके परिणाम से मैं बिल्कुल सन्तुष्ट हूँ। वे चाहे मेरी निन्दा

ही करें, पर चर्चा तो करें। यह मेरा आदर्श-वाक्य है। इंग्लैण्ड में बेशक भद्र लोग हैं और बेहूदी बातें नहीं करते जैसा कि मैंने अमेरिका में पाया। और फिर इंग्लैण्ड के लगभग सभी मिशनरी भिन्नमतावलम्बी वर्ग के हैं। वे इंग्लैण्ड के भद्र जन वर्ग से नहीं आते। यहाँ के सभी धार्मिक भद्रजन इंग्लिश चर्च को मानते हैं। इन भिन्नमतावलम्बियों की इंग्लैण्ड में कोई पूछ नहीं है और वे शिक्षित भी नहीं हैं। उनके बारे में मैं यहाँ कुछ भी नहीं सुनता जिनके विषय में तुम मुझे बार बार आगाह करते हो। उनको यहाँ कोई नहीं जानता और यहाँ बकवास करने की उनको हिम्मत भी नहीं है। आशा है आर० के० नायडू मद्रास में ही होंगे और तुम कुशलपूर्वक हो।

डटे रहो मेरे बहादुर बच्चो! हमने अभी कार्य आरम्भ ही किया है। निराश न हो! कभी न कहो कि बस इतना काफी है! जैसे ही मनुष्य पश्चिम में आकर दूसरे राष्ट्रों को देखता है उसकी आँखें खुल जाती हैं। इसी तरह मुझे शक्तिशाली कार्यकर्ता मिल जाते हैं—केवल बातों से नहीं प्रत्यक्ष दिखाने से कि हमारे पास भारत में क्या है और क्या नहीं। मेरी कितनी इच्छा है कि कम से कम दस लाख हिन्दू पूरे संसार का भ्रमण किये हुए होते!

प्रेमपूर्वक सदैव तुम्हारा
विवेकानन्द

(कुमारी अल्बर्टा स्टारगीज को लिखित)

होटल मिनर्वा फ्लोरेंस
२० दिसम्बर, १८९६

प्रिय अल्बर्टा

कल हम लोग रोम पहुँच रहे हैं। चूँकि हम लोग रोम रात में देर से पहुँचेंगे इसलिए सम्भवतः मैं परसों ही तुमसे मिलने के लिए आ सकूँगा। हम लोग 'होटल कान्टिनेन्टल' में ठहरेंगे।

सस्नेह और आशीष
विवेकानन्द

(श्री आलासिंगा पेरुमल को लिखित)

अमेरिका
१८९६

प्रिय आलासिंगा

इस बार मैंने तुमको 'ब्रह्मवादिन्' के सम्बन्ध में लिखा था। उसमें अधिक

विषयक व्याख्यानो के बारे मे लिखना मैं भूल गया था। उनको एक साथ पुस्तकाकार प्रकाशित करना चाहिए। 'गुड ईयर' के नाम से न्यूयार्क, अमेरिका के पते पर उसकी एक सौ प्रतियाँ भेज सकते हो। मैं बीस दिन के अन्दर जहाज़ से इग्लैण्ड रवाना हो रहा हूँ। कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा राजयोग सम्बन्धी मेरी और भी बडी बडी पुस्तकें हैं। 'कर्मयोग' प्रकाशित हो चुका है। 'राजयोग' का आकार अत्यन्त बृहत् होगा—वह भी प्रेस मे पहुँच चुका है। 'ज्ञानयोग' सम्भवत इग्लैण्ड मे छपवाना होगा।

तुमने 'ब्रह्मवादिन्' मे 'क' का एक पत्र प्रकाशित किया है, उसका प्रकाशन न होना ही अच्छा था। थियोसॉफिस्टो ने 'क' की जो खबर ली है, उससे वह जल भुन रहा है। साथ ही उस प्रकार का पत्र सभ्यजनोचित भी नही है, उससे सभी लोगो पर छीटाकशी होती है। 'ब्रह्मवादिन्' की नीति से वह मेल भी नही खाता। अत भविष्य मे यदि कभी 'क' किसी सम्प्रदाय के विरुद्ध, चाहे वह कितना ही खब्ती और उद्धत हो, कुछ लिखे तो उसे नरम करके ही छापना। कोई भी सम्प्रदाय, चाहे वह बुरा हो या भला, उसके विरुद्ध 'ब्रह्मवादिन्' मे कोई लेख प्रकाशित नही होना चाहिए। इसका अर्थ यह भी नही है कि प्रवचको के साथ जानबूझ कर सहानुभूति दिखानी चाहिए। पुन तुम लोगो को मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि उक्त पत्र (ब्रह्मवादिन्) इतना अधिक शास्त्रीय (technical) बन चुका है कि यहाँ पर उसकी ग्राहक सख्या बढ़ने की आशा नही है। साधारणतया पश्चिम के लोगो का इतनी अधिक क्लिष्ट सस्कृत भाषा तथा उसकी बारीकियो का ज्ञान नही है और न उनमे जानने की इच्छा ही है। हाँ, इतना अवश्य है कि भारत के लिए वह पत्र बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। किसी मतविशेष का समर्थन किया जा रहा हो, ऐसी एक भी बात उसके सम्पादकीय लेख मे नही रहनी चाहिए। और तुम्हे यह सदा ध्यान रखना है कि तुम केवल भारत को नही, वरन् सारे ससार को सम्बोधित कर बातें कह रहे हो और तुम जो कुछ कहना चाहते हो, ससार उसके बारे मे बिल्कुल अनजान है। प्रत्येक सस्कृत श्लोक का अनुवाद अत्यन्त सावधानी के साथ करना और जहाँ तक हो सके उसे सरल भाषा मे व्यक्त करने की चेष्टा करना।

तुम्हारे पत्र के जवाब मिलने से पहले ही मैं इग्लैण्ड पहुँच जाऊँगा। अत मुझे पत्र का जवाब द्वारा ई० टी० स्टर्डी, हाई व्यू, कैवरशम्, इग्लैण्ड के पते पर देना।

तुम्हारा,
विवेकानन्द

(स्वामी अभेदानन्द को लिखित)

द्वारा ई. टी. स्टर्डी
हाई व्यू, कैवरशम्, रीडिंग, इंग्लैण्ड
१८९६

प्रेमास्पद,

मेरा पहला पत्र मिला होगा। अब इंग्लैण्ड में मुझे पत्रादि उपर्युक्त पते पर भेजना। श्री स्टर्डी को तारक दादा (स्वामी शिवानन्द) जानते हैं। उन्होंने ही मुझे इंग्लैंड बुलाया है तथा हम दोनों मिलकर इंग्लैण्ड में आन्दोलन चलाना चाहते हैं। नवम्बर महीने में पुनः अमेरिका जाने का मेरा विचार है। अतः यहाँ पर एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है, जो संस्कृत तथा अंग्रेजी, खासकर अंग्रेजी अच्छी तरह से जानता हो। मैं समझता हूँ कि इसके लिए शशि, शारदा अथवा तुम उपयुक्त हो। इन तीनों में से यदि तुम्हारा शरीर पूर्णतया स्वस्थ हो गया हो तो तुम्हीं चले आना। मेरी राय में यही अधिक अच्छा होगा, अन्यथा शरत् को भेजना। कार्य केवल इतना ही है कि मैं जिन शिष्य-सेवकों को यहाँ छोड़ जाऊँगा उन्हें शिक्षा देना तथा वेदान्त पढ़ाना होगा और थोड़ा-बहुत अंग्रेजी में अनुवाद करना तथा बीच बीच में भाषण आदि भी देना पड़ेगा। कर्मणा बाध्यते बुद्धिः।—जो आने की अत्यन्त अभिलाषा है, किन्तु यह मजबूत किये बिना सब कुछ व्यर्थ हो जायगा। इस पत्र के साथ एक चेक भेज रहा हूँ, उससे कपड़े-लत्ते खरीद लेना। महेन्द्र बाबू (मास्टर महाशय) के नाम चेक भेजा जा रहा है। गंगाधर का तिब्बती चोगा मठ में है, उसी तरह का एक चोगा गेरू से रँग लेना। कॉलर कुछ ऊँचा होना चाहिए, जिससे गला ढका जा सके। सबसे पहले एक अत्यन्त गरम ओवरकोट की आवश्यकता है, यहाँ पर अत्यधिक ठण्ड है। ओवरकोट के बिना जहाज में विशेष कष्ट होगा। द्वितीय श्रेणी का टिकट भेज रहा हूँ, प्रथम श्रेणी तथा द्वितीय श्रेणी में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

बम्बई पहुँचकर—मेसर्स किंग किंग एण्ड कम्पनी, फोर्ट, बम्बई ऑफिस में जाकर यह कहना कि 'मैं स्टर्डी साहब का आदमी हूँ' इससे वे तुम्हारे लिए इंग्लैण्ड तक का एक टिकट देंगे। यहाँ से एक पत्र उक्त कम्पनी को भेजा जा रहा है। खेतड़ी के राजा साहब को भी मैं एक पत्र इस आशय का लिख रहा हूँ कि उनके बम्बई के एजेण्ट तुम्हारी अच्छी तरह से देखभाल कर टिकट आदि की व्यवस्था कर दें। यदि इन १५ रुपयों में उपयुक्त कपड़े-लत्ते की व्यवस्था न हो तो राखाल बाकी रुपयों का इन्तजाम कर दे, बाद में मैं उसे भेज दूँगा। इसके अलावा ५ रुपये जेब खर्च के लिए रखना—ये भी राखाल से देने को कहना। मैं बाद में भेज दूँगा। चुनी

बाबू के लिए मैंने जो रुपया भेजा है, आज तक उसका कोई समाचार मुझे नही मिला। पत्र के देखते ही रवाना हो जाना। महेन्द्र बाबू से कहना कि वे मेरे कलकत्ते के एजेण्ट हैं। इस पत्र को देखते ही वे श्री स्टर्डी को यह उल्लेख करते हुए एक पत्र भेजें कि कलकत्ता सम्बन्धी हमे जो काम काज इत्यादि करने होंगे, वे उन कार्यों को करने के लिए प्रस्तुत हैं। अर्थात् श्री स्टर्डी मेरे इग्लैण्ड के सेक्रेटरी हैं, महेन्द्र बाबू कलकत्ते के, आलासिगा मद्रास के। मद्रास मे यह समाचार भेज देना। सभी के आन्तरिक प्रयास के बिना क्या कोई कार्य हो सकता है? **उद्योगिन पुरुषसिंह-मुपैति लक्ष्मी**—'उद्योगी पुरुषसिंह ही लक्ष्मी को प्राप्त करता है।' पीछे की ओर देखने की आवश्यकता नही है—आगे बढो। हमे अनन्त शक्ति, अनन्त उत्साह, अनन्त साहस तथा अनन्त धैर्य चाहिए, तभी महान् कार्य सम्पन्न होगा। दुनिया मे आग फूंकनी है।

जिस दिन जहाज का प्रबन्ध हो, तत्काल ही श्री स्टर्डी को पत्र लिखना कि 'अमुक जहाज मे मैं आ रहा हूँ।' अन्यथा लन्दन पहुँचने पर गडबडी होने की सम्भावना है। जो जहाज सीधे लन्दन आता हो, उसीसे आना, क्योकि यद्यपि उससे आने मे दो चार दिन की देरी हो सकती है, किन्तु किराया कम लगता है। इस समय हमारे पास तो धन अधिक नही है। समय आने पर लोगो को हम चारो ओर भेज सकेंगे। किमधिकमिति।

विवेकानन्द

पुनश्च—इस पत्र को देखते ही खेतडी के राजा साहब को लिखना कि तुम बम्बई जा रहे हो, अत उनके एजेण्ट तुम्हे जहाज मे बिठाने के लिए सहायता करें।

वि०

यह पता किसी डायरी मे लिखकर अपने साथ रखना—किसी प्रकार गडबडी न हो।

(स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखित)

ई० टी० स्टर्डी का मकान,<br>
हाई व्यू, कॅवरशम्, रीडिंग,<br>
१८९६

प्रिय शशि,

मुझे स्मरण नही है कि मैंने अपने पूर्व पत्र मे इसका उल्लेख किया है या नही, अत इस पत्र द्वारा तुम्हे यह सूचित करता हूँ कि काली अपने रवाना होने के दिन अथवा उससे पूर्व श्री ई० टी० स्टर्डी को पत्र डाल दे, ताकि वे जाकर जहाज से उसे

किया जाये। यह लन्दन शहर मनुष्यों का सागर है—दस पन्द्रह कलकत्ता इसमें इकट्ठे समा सकते हैं। अतः उस प्रकार की व्यवस्था किये बिना गड़बड़ी होने की सम्भावना है। आने में देरी न हो, पत्र देखते ही उसे निकलने को कहना। शरत् की तरह आने में विलम्ब नहीं होना चाहिए। और बाकी बातें स्वयं सोच-विचार कर ठीक कर लेना। काली को जैसे भी हो शीघ्र भेजना। यदि शरत् की तरह आने में विलम्ब हो तो फिर किसीके आने की आवश्यकता नहीं है—धुसमुस नीति वाले आलसी से यह कार्य नहीं हो सकता, यह तो महान् रजोगुण का कार्य है। तमोगुण से हमारा देश छाया हुआ है—जहाँ देखो वहीं तम। रजोगुण चाहिए, उसके बाद सत्त्व, यह तो अत्यन्त दूर की बात है।

सस्नेह,
नरेन्द्र

(कुमारी मेरी हेल को लिखित)

स्टीमर,
'प्रिंस रीजेन्ट लियोपोल्ड'
३ जनवरी, १८९७

प्रिय मेरी,

तुम्हारा पत्र मिला जो लन्दन पहुँचने के बाद रोम के लिए प्रेषित किया गया था। तुम्हारी कृपा थी जो इतना सुन्दर पत्र लिखा और उसका शब्द शब्द मुझे अच्छा लगा। यूरोप में वाद्य-वृन्द के विकास के विषय में मुझे कुछ मालूम नहीं। नेपुल्स से चार दिनों की भयावह समुद्र-यात्रा के पश्चात् हम पोर्ट सईद के निकट पहुँच रहे हैं। जहाज अत्यधिक डोलायित हो रहा है, अतएव ऐसी परिस्थितियों में अपनी खराब लिखावट के लिए तुमसे क्षमा चाहता हूँ।

स्वेज से एशिया महाद्वीप आरम्भ हो जाता है। एक बार फिर एशिया आया। मैं क्या हूँ? एशियाई, यूरोपीय या अमेरिकी? मैं तो अपने में व्यक्तित्वों की एक अजीब खिचड़ी पाता हूँ। तुमने धर्मपाल के बारे में उनके आने जाने तथा कार्यों के विषय में कुछ नहीं लिखा। गांधी की अपेक्षा उनके प्रति मेरी दिलचस्पी बहुत ज्यादा है।

कुछ ही दिनों में मैं कोलम्बो में जहाज से उतरूँगा और फिर लंका को थोड़ा देखने का विचार है। एक समय था जब लंका की आबादी दो करोड़ से भी अधिक थी और उसकी राजधानी विशाल थी। राजधानी के ध्वंसावशेष का विस्तार लगभग एक सौ वर्ग मील है।

लकावासी द्राविड नही हैं, बल्कि विशुद्ध आर्य हैं। ईसा के जन्म से ८ सौ वर्ष पूर्व बगाल के लोग वहाँ जाकर वसे और तब से लेकर आज तक लकावासियो ने अपना इतिहास वडा स्पष्ट रखा है। प्राचीन दुनिया का वह सबसे वडा व्यापार-केन्द्र था और अनुराधापुर प्राचीनो का लन्दन था।

पश्चिमी देशो के सभी स्थानो की अपेक्षा रोम मुझे ज्यादा अच्छा लगा और पाम्पियाई देखने के बाद तो तथाकथित आधुनिक सभ्यता के प्रति समादर की मेरी सारी भावना लुप्त हो गयी। वाष्प तथा विद्युत् शक्ति के अतिरिक्त उनके पास और सब कुछ था और कला सम्बन्धी उनके विचार तथा कृतियाँ तो आधुनिको की अपेक्षा लाख गुनी अधिक थी।

कृपया कुमारी लॉक (Miss Locke) से कहना कि मैंने उन्हे जो यह बताया था कि मानव-मूर्ति-कला का जितना विकास यूनान मे हुआ था, उतना भारत मे नही, वह मेरी गलती थी। फर्ग्युसन तथा अन्य प्रामाणिक लेखको की पुस्तको मे मुझे यह पढने को मिल रहा है कि उडीसा या जगन्नाथ मे, जहाँ मैं नही गया हूँ, ध्वसावशेषो मे जो मानवीय मूर्तियाँ मिली हैं, वे सौन्दर्य तथा शारीरिक रचना-नैपुण्य मे यूनानियो की किसी भी कृति की बराबरी कर सकती हैं। मृत्यु की एक महाकाय प्रतिमा है। उसमे मृत्यु को नारी के वृहदाकार अस्थि-पजर के रूप मे दिखाया गया है, जिसके चमडे पर तमाम झुर्रियाँ पडी हुई हैं—शरीर-रचना की बारीकियो का इतना सच्चा प्रदर्शन परम भयावह और बीभत्स है। मेरे लेखक का मत है कि गवाक्ष मे निर्मित एक नारी-मूर्ति बिल्कुल 'वीनस डी मेडिसी' से मिलती जुलती है, इत्यादि। पर तुम्हे याद रखना चाहिए कि प्राय सब कुछ मूर्ति-भजक मुसलमानो ने नष्ट कर डाला, फिर भी जो कुछ बचा है, वह यूरोप के तमाम भग्नावशेषो की तुलना मे श्रेष्ठ है। मैंने आठ वर्ष परिभ्रमण किया, किन्तु बहुत सी श्रेष्ठतम कलाकृतियो को नही देखा है।

बहन लॉक से यह भी कहना कि भारत के वन-प्रान्त मे एक मन्दिर के खण्डहर हैं और उसके साथ यदि यूनान के 'पार्थेनान' की समीक्षा की जाय तो फर्ग्युसन का मत है कि दोनो ही स्थापत्य कला के चरम बिन्दु तक पहुँच गये हैं—दोनो अपने अपने ढग के निराले हैं—एक कल्पना मे और दूसरा कल्पना एव अलकरण में। बाद की मुगलकालीन इमारतो आदि मे भारतीय तथा मुस्लिम कलाओ का सकर है और वे प्राचीन काल की सर्वोत्कृष्ट स्थापत्य कला की आशिक समता भी नही कर सकती।

तुम्हारा सस्नेह,
विवेकानन्द

पुनश्च—संयोग से फ्लोरेंस में 'मदर चर्च' और 'फ़ादर पोप' के दर्शन हुए। इसे तुम जानती ही हो।

वि

(कुमारी मेरी हेल को लिखित)

रामनाड़
शनिवार, ३० जनवरी १८९७

प्रिय मेरी

परिस्थितियाँ अत्यन्त आश्चर्यजनक रूप से मेरे लिए अनुकूल होती जा रही हैं। कोलम्बो में मैंने जहाज छोड़ा तथा भारत के दक्षिण स्थित प्रायः अन्तिम भूखण्ड रामनाड़ में मैं इस समय वहाँ के राजा का अतिथि हूँ। मेरी यात्रा एक विराट् जुलूस के समान रही—बेशुमार जनता की भीड़, रोशनी, मानपत्र वगैरह वगैरह। भारत की भूमि पर, जहाँ मैंने प्रथम पदार्पण किया, वहाँ पर ४० फुट ऊँचा एक स्मृति स्तम्भ बनवाया जा रहा है। रामनाड़ के राजा साहब ने अपना मानपत्र एक अत्यन्त सुन्दर नक्काशी किये हुए असली सोने के बड़े बॉक्स में रखकर मुझे प्रदान किया है, उसमें मुझे 'परम पवित्र' (His Most Holiness) कहकर सम्बोधित किया गया है। मद्रास तथा कलकत्ते में लोग बड़ी उत्कण्ठा के साथ मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, मानो सारा देश मुझे सम्मानित करने के लिए उठ खड़ा हुआ है। अतः मेरी, तुम यह देख रही हो कि मैं अपने भाग्य के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ हूँ। फिर भी मेरा मन शिकागो के उन निस्तब्ध, विश्रान्तिपूर्ण दिनों की ओर दौड़ रहा है—कितने सुन्दर विश्रामदायक, शान्ति तथा प्रेमपूर्ण वे थे दिन! इसीलिए मैं अभी तुमको पत्र लिखने बैठा हूँ। आशा है कि तुम सभी सकुशल तथा आनन्दपूर्वक होगे। डाक्टर बरोज की अभ्यर्थना करने के लिए मैंने लन्दन से अपने देशवासियों को पत्र लिखा था। उन लोगों ने अत्यन्त आवभगत के साथ उनकी अभ्यर्थना की थी। किन्तु वे यहाँ के लोगों में प्रेरणा-संचार नहीं कर सके, इसके लिए मैं दोषी नहीं हूँ। कलकत्ते के लोगों में कोई नवीन भावना पैदा करना बहुत कठिन है। अब मैं सुन रहा हूँ कि डॉक्टर बरोज के मन में मेरे प्रति अनेक धारणाएँ उठ रही हैं। इसीका नाम तो संसार है!

माता जी, पिता जी तथा तुम सभी को मेरा प्यार।

तुम्हारा स्नेहबद्ध
विवेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

मद्रास,
१२ फरवरी, १८९७

प्रिय राखाल,

आगामी रविवार को 'यस० यस० मोम्बासा' जहाज़ से मेरे रवाना होने की बात है। स्वास्थ्य अनुकूल न होने के कारण पूना तथा और भी अनेक स्थानो के निमत्रण मुझे अस्वीकार करने पडे। अत्यधिक परिश्रम तथा गर्मी के कारण स्वास्थ्य बहुत खराब हो चुका है।

थियोसॉफिस्ट तथा अन्य लोगो की इच्छा मुझे अत्यन्त भयभीत करने की थी, अत उन्हें दो चार बातें स्पष्ट रूप से कहने के लिए मुझे बाध्य होना पडा था। तुम तो यह जानते हो कि उनके साथ सम्मिलित न होने के कारण उन लोगो ने अमेरिका मे मुझे बराबर कष्ट दिया है। यहाँ पर भी उसी प्रकार के आचरण करने की उन लोगो की इच्छा थी। इसीलिए मुझे अपना अभिमत स्पष्ट रूप से व्यक्त करना पडा था। इससे यदि मेरे कलकत्ते के मित्रो मे से कोई असन्तुष्ट हुए हो, तो भगवान् उन पर कृपा करे। तुम्हारे लिए डरने की कोई बात नही है, मैं अकेला नही हूँ, प्रभु सदा मेरे साथ है। इसके सिवाय और मैं कर ही क्या सकता था?

तुम्हारा,
विवेकानन्द

पुनश्च—मकान तैयार हो गया हो तो उसे ले लेना।

वि०

# अनुक्रमणिका


अंग्रेज ८०-८, १६८, १३८, १८६, १९२, २०५, २०८, २१८, ३२०, ३६८, ३८१, ३८९, जाति १९०, २०८, २०६, ३९१, शासक ८०, मित्र २०३
अंग्रेजी भाषा १०, ३८९, शैली ९९
अकबर २२०
'अकामहत' २३६
'अजा' (जन्मरहित) १२८
अर्जुन २३५
अज्ञेयवाद १११
अज्ञेयवादियों ३१२
अटलान्तिक महासागर २०४, ३५२, ३७२
अणिमा २२६
अतीन्द्रियवाद ५३
अथर्ववेद संहिता १९२, ३५१
अदृष्टवाद २४
अद्वैत १२८
अद्वैत तत्त्व २१९, ३२२
अद्वैतात्मक २८८
अद्वैत भाव १२९, १३२, १७४, ३२९
अद्वैतभावात्मक २२५
अद्वैतवाद २८-९, ५९, ८५, १२५-२६, १३७, १४९, १७४-७५, २१८, २३९, २६८, २८७-८८, २९४-९५, ३०३, ३०५, ३०७, ३०९, ३१३-१८, ३२१-२३, ३२८, ३७२, ३९९
अद्वैतवादी १३, २०, ३३, ५८, १२४-२५, १२८-२९, १३४, १५५, १८१, १९१, २१३, २१५-१८, २२७, २३२, २३७-३८, २८७-८८, ३००-१, ३०५-७, ३१४
अध्यात्म काल ३२, ज्ञान ३०२, तत्त्व ३२०, पुनरुत्थान ४२, प्रतिभा ३, रूप ४५, दिशा ८५, शक्ति ९, शिक्षा ५२
'अनाथ' ९८, १८६
अनुभूति २६९, 'प्रत्यक्ष' २७०
अनुष्टुप छंद ३२५
अन्तर्दृष्टि परायण ८८
अन्तिओक २१५
'अन्धकारमय प्रकाश' २६३
अफगानिस्तान १८६
अफ्रीका ८८, १३८
अफ्रीकी ८८, १८६
अभाव से भाव वस्तु का उद्भव २३
अभी ५७, १३२-३३, २१२, २७८
अभेदज्ञान २८
अभेदानन्द ३५१, ३६०, ३९०, ४०२ (देखिए काली)
अमिताचार २८०
अमरीकी १८६, २००, जाति २०४, राष्ट्रों ३
अमेरिका ७, १४, ४१, ६६, ७४-५, ८५-८, १०३-५, १०९, ११८, १२१, १६२-६३, १६७, १७०, १८३, २०४-५, २४१-४२, ३१८, ३२२-२३, ३३२, ३३४, ३५१, ३५४, ३५८, ३६४-६७, ३७२, ३८०, ३८२, ३८८, ३९०, ३९३-९४, ३९६, ३९८-४०२, ४०७ उत्तर ३६३
अमेरिकावासी १०४
अमेरिकी पत्र ३५९
अरब ९, ३७५

अरण्यनिवासी १६५
अलामकुआबाद १
अलमस्ती मसान २८९ श्याम २८९
अलकॉट, कर्नल १११
अल्मर, मणि १६
अल्मर, सुब्रह्मण्य १ ४
अलबर्टा ३८ १९३ १९६
अलकाहु २२
'अलकाही अखबार' १११
अल्मोड़ा १ २४१ २४१ २५७ १८८९
अल्लोपनिषद् २२०–२२१
अविनाशी आनन्द २६
'अबूबिन' २११
अशोक १७
अहं २१८
अहैतुकी प्रेम भक्ति १५४

आकेतिक सुपेरों (पा टि ) ९
आइसा बेस १७५-७६
आकाश २९१
आक्रमक वृत्ति ७२
आक्सफोर्ड १९९
आचरण-शास्त्र २१ २८ ९ ४० ७९, ८५, १२१
आचार ९९-७
आचार-शास्त्र ७९, ११२, ११६
आत्म-तत्त्व २२१ २४७ २५७
आत्म स्वरूप ५७
आत्म स्वरूप ब्रह्म २१८
आत्म दर्शन २७ विज्ञान ५७
आत्मा २५-७ १ ४१ ४६, ७० ८१ ८५, ८९, ९६, १११ (पा टि ) ११६ ११९ १११ ११४ ११० ११९ ४१ १४८ ४९, १५७ १५९, १६१ १६५, १७६, १७८ ७९ १९ २११ २१८, २२६ २२८, २३५, २३८, २४ २४१ ४७ २५६ २६६ ६६ २६८ ६९ २७१ २९ २९२ २९४ १ १ १ १ १ ८ ११ ११५ ११९–२६ १२८, १११ १४ १४१ ४७ २७१ १८४ १८६ उसका स्वरूप ११ और मन ११
आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि ३३५ आदर्श ७१ २ ९ २५२ आधार १२८ आविष्कारक २ उन्माद ५६, ६६ उपदेश १२४ उपादेयता ३६७ जगत् १४८ जीवन १११ ज्ञान १८, १२ ११७ तत्त्व २ १ २७४ ३११ तेज २४७ दान १२ पुनरुत्थान ४२ प्रतिमाएँ ५९ महत्त्वाकांक्षाएँ २५७ राज्य ६७ व्यवस्था ६६ शिक्षा १४६, १९४ २ ९ शक्ति ५८, १४१ सत्य १४८, २१४ ३६२ ३७२ सत्ता स्नेयस १८ संपत्ति ७१ सौंदर्य ९६
आध्यात्म शिक्षा ५२
'आध्यात्मिकता' ४९
आध्यात्मिकता जीवन रक्त १८१
आधुनिक मस्तिष्क २२
'आनन्द' १८६
आनुवंशिक संक्रमणवाद ८८
आभ्यन्तर वृत्ति ९५१–५१
आरण्यक २८६
आरमेनिया ११८
आर्य ९४ १४८ २३१ धर्म २४२ २५९, २९९ ११८ १२४ १२७ १४२ ४ ५
आर्यावर्त ९८, १५ २५७
आर्येतर २१
आलासिंगा पेरूमल १५९ ६ १७७ २८१ १८० १८९, १९७ ४ ४ १
आलस्य १७
आश्रम दोष २२ , २५२
आस्ट्रिया १२
आहार २२८ १

इंग्लैंड ७ ९, १७ ६१ ६६ ९९, १ १ ११८, १६६, १७ २ ५ ६

२४१, ३२०, ३५१-५२, ३५५-५६, ३६४-७०, ३७३-७४, ३७७-७८, ३८१-८२, ३८८, ३९०, ३९३-९४, ३९९-४०३
इग्लिश चर्च ९९
इटली ३८८-८९, ३९४-९५
'इण्डियन मिरर' ३७७, ३८३, ३९७
इतिहास, भारतीय ३५
इन्द्र २६, २९६, ३२५, ३२७
इन्द्रत्व २६
इन्द्रधनुष १७६
इलाहाबाद ३८९
'इष्ट निष्ठा' ३०, ८०
इसरायल ८२
इस्लाम धर्म ६३, १४४

ई० टी० स्टर्डी ३५७-५८, ३६४-६५, ३७२, ३९८, ४०१-३ (देखिए स्टर्डी)
ईरानियो २५३
ईशोपनिषद् (पा० टि०) २६८
ईश्वर तत्त्व २६
ईश्वरत्व ९५, १३५
ईश्वराराधन २७
ईश्वरीय शक्ति २७६
ईसा ३१, १०५-६, १७६, २५३, ३७९
ईसाई २५३, २५६, धर्म ८, १७, ६३, ७९, ८६, १०६, ११२, १३६, १४४, १५८, २०४, मतावलम्बी १६९, मिशनरी २२५
ईसा मसीह १४५, १५८

उडीसा ४०५
उत्तरी ध्रुव १८६
उपनिषद् ९, २०, ५७, ७१, ११६, १२०, १२४-२५, १२७-३७, १३९, १५५, २१५-१६, २१९-२३, २२५, २७७, २८६-८७, ३२५, ३२८-२९, ३३३, ३४४, ३९९, अल्लोपनिषद् २२०-२१, ईशोपनिषद् २६८, उसमे द्वैतभाव १३२, कठोपनिषद् ८९, १३०, (पा० टि०) ८ १३०, १७५-७६, २१२, २७७, ३२८, ३३४, केनोपनिषद् (पा० टि०) १७५, मुण्डकोपनिषद् २८९, ३०१, (पा० टि०) १३०, २२३, २६९, बृहदारण्यकोपनिषद् (पा० टि०) ३०८, विद्या १२६, श्वेताश्वतरोपनिषद् ३१२
उपासना १५, १५५-५६, गृह ८३, पद्धतियाँ १५८
उमा ३७४
'उष्ण बरफ' ३६२

ऊर्जासधारणवाद ११

ऋग्वेद २९१, ३२५
ऋषि १३९, १४४, १४६-४९, १७२, १८९, २२५, २२७, ३२७, ३३८, ३४३, ३४५

ए० कुलवीर सिहम्, मत्री ४
एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति १३, ८३
एकमेवाद्वितीयम् २३२
एकेश्वरवाद ८२
'एज्' (धातु) २९१
एण्ड्रीज, कुमारी ३८०
एथेन्स २१५
एनी बेसेण्ट ३६१
एम० नोबल ( कुमारी ) ३६१, ३८९
एम० ई० नोबल ३३० (देखिए सिस्टर निवेदिता)
एयरली लॉज ३७४, ३७६, ३७८, ३८१, ३९९
एशिया माइनर ११८
एसोटेरिक १०५

ऐंग्लो इण्डियन ३९९
ऐंग्लो-सैक्सन जाति ३३१-३२

ओंकार १९१
'ओरायन' १६५
ओलि बुल श्रीमती १५५-५९ २६६, १८२, १९४
ओल्ड टेस्टामेण्ट १०४

औरंगजेब ९

कंबर्बैटिंग ८
कठोपनिषद् ८९ ११ (पा टि ) १३ १७५ ७६ २१२, २७७ १२८ ३३४
कणाद २७
कन्याकुमारी ११९
'करतलामलकवत्' ३४२
कर्नल मस्कोट ३६१ (देखिए अस्कोन)
कर्नल पुरी ४९
'कमक' ३५९
कर्मकाण्ड २ १२४ १५५ १९४ २१२ २३४ १५, २८५-८७ १२६, ३३४ वैदिक २१७
कर्मफल २८८
'कर्मयोग' ४ १
कर्मवाद १२
कर्मविधान २४-५
कर्म संग्राम २७१
कर्म समष्टि २०१
कलकत्ता २ २ १ २१६, २१६, ३५१-५२, ३५६, ३८८-८९ ३९२, ३९७ ४ १४ ४ १-७ मिवासी २ ३ २१२
कलियुग २१ १२ १८, ६९
कल्प २२ ३
कल्पान्त २२ २६५
कस्तूरी मृग ३८५
काडिनल ९९
काण्ट २१२ ३२५
कापिल हॅम ३४१
काबा १५
कालिदास २२२, ३८१
काली ३५१ ४ १४ (देखिए अभेदानन्द)
काश्मीर २४८
किण्डरगार्टन १७५
कील ३६४ ६६ ६७ १७२, १८२ ३९७
कुमी १ ५
कुम्भकोणम् ७१
कुमायूँ २४२
कुमारिल भट्ट ३४८
कुरान २२५
कृपानन्द ३६१ ३६६, ३७१
कृष्ण ९ ११७ १४४ ४५, १४६ ५७ १६९ १७१ १७५, १८७ १९७ २२५, ३११ ३२१ (देखिए श्री कृष्ण)
केनोपनिषद् (पा टि ) १७५
कैपिटोलाइन पहाड़ ९
कैपिटोल (पा टि ) ९ (देखिए कैपिटोलाइन)
कैमरलम ३५१ ३५७ ४ १-२
कोला ३८ ३९१
कोलम्बो १ ४ ७४ ९९ १ ३८८ -८९ ४ ४ ४ ६ निवासी
कौपीनधारी ९१
क्रम विकास ११४
क्रम विकासवाद ११२
क्रम सकोच ११४
क्लाइव लॉर्ड ३१०
क्षणिक विज्ञानवादी १ १
क्षत्रिय-युग २९४ १ ५

खेतड़ी ९७ २२४ ४ २-३

गंगा ३४४ ३८४
गगावर ४ २
गणेश २७१
गार्गी १११
गाँधी ४ ४
गार्हपत्य २११

गाल्सवर्दी ३५२
गीता २२, ३६, ५३, ८९, ९९, १०८, ११९, १३७, १३९-४०, १४२, १४५-४६, १५१, १५३-५७, १८६, २०७, २२०, २३२ २८७, २९६-९७, ३१७, ३२३, ३३७, (पा० टि०) २२, २९, ३६, ११९, १३९, १५६, १६९
'ग्रीनएकर' ३६७
'गुडईयर' ४०१
गुडविन, जे० जे० ३६१, ३६६-६७, ३८८-८९, ३९१, ३९३ (देखिए जे०जे० गुडविन)
गुरखा रेजीमेण्ट २४६
गुरु गोविन्द सिंह २५७, २७०-७१
गोपाल ३९६
गोपी प्रेम १५२-५३
गौतम ३८६
ग्रेकोट गार्डन्स ३८४, ३८७-८८३९३-९४, ३९७-९८
ग्रैण्ड होटल, बैले ३५७

'चंडी' ३१०-११
चंद्र २२३, २७७, २८४, २९१, ३१३, ३२८
चंद्रमा १३०, २४२
चट्टोपाध्याय, मोहिनीमोहन ३३२
चन्द्रलोक १३८
चिकित्सा शास्त्र १८२
चित्त २९३
'चिरकुमारी आश्रम' ३७३
चीन ७, ११७, १६९, २७२, ३३०, ३३४
चुनी बाबू ४०२-३
'चेन्नापुरी अन्नदान समाजम्' १९८
चैतन्य १६०, १८४, २२८

छुआछूत ३२९

छूत-अछूत १६५

जगदम्बा ३४०
जगन्नाथ ४०५
जगन्नाथ जी १५८
जगन्नाथपुरी ३६९
'ज ज ज' गोष्ठी ३८०
जनक १३४
जनकत्व १३४
जफना १७-८
जम्मू २४८
जरथुष्ट्र ३८०
जर्मन १०, २९७, दार्शनिको ३७७
जर्मनी ७, ८५, ३२५, ३६५, ३६९-७०, ३७६-७७, ३७९, ३८२
जाट ३४३
जाति, ऐंग्लो-सैक्सन ३३१-३२, तातार ३५७, ब्राह्मण १५८, ब्रिटिश ३३१, यूनानी ८१, १६४, रोमन १६९; हिन्दू ३४-५, ७६-७, ९१, ९३, १७७, २४६, ३२२
जाति-दोष २२९, २५१
जातीय जीवन १८३, धर्म १३३, मन १८३
जानकी २४९
जानकीपति २४९
जापान ७, २७२, ३३०, ३३४
जापानी ७३
'जॉब का ग्रंथ' ३९२
जावा (पा० टि०) १६९
जिहोवा ५०, २८१
'जीवन्मुक्ति' ३८६
जीवात्मा ११-२, २५-६, २९, १३० १४७, १५५-५६, १७५, २२६-२८, २३२, २६५, २९७, ३०२, ३०४-५
जुपिटर देवता (पा० टि०) ६
जेकवी ३६५
जे० जे० गुडविन ३६१ (देखिए गुडविन)
जेन्द अवस्ता ९
जेन्दवेस्ता २२४
जेन्टिल साहब ९

जैण्ड डॉ २११ १८८
जैन १९ २४ ४६ धर्म १२६, १७४
मुधारों ११७
'जो' १५२ (देखिए मैक्लिऑड जोसेफ़िन)
ज्ञानकांड २
ज्ञानयोग ४
ज्योतिर्विज्ञान २११

ट्रिब्यून १११
'ट्रिब्यून' २८

डच १७ १८९
डॉयसन प्रोफ़ेसर १२६,१६६ १६६
७ १७२ १७१-७७ १७९, १८२,
१९१ (देखिए पॉल डॉयसन)
डिमोक्रेटिक दल ८
'डेली न्यूज़' १७७
डेम्फर ४ ४

ढाका ११६ १४१

तंत्र मत २९५
'तत्त्वमसि' १८५, २१७
तत्त्वानुसंधान १८
तम २२८-२९ (देखिए तमोगुण)
तमिल १७ १७ अक्षरों १९९
तमोगुण २९८, ४ ४
तर्क शास्त्र १११
तातार १९६, १८ जाति १५७
तारक दादा ४ २ (देखिए शिवानन्द स्वामी)
तिब्बत १५८ १८९
तिमवनी नौका ४ २
तिलक बाल गंगाधर १६९
तीर्थत्व १८
तुलसी १४
तुलसीराम कवि सम्राट २४१ १७८
तुर्क १८
तेलगु १००
तैत्तिरीयोपनिषद् (त्त ति ) १७६,२१२
त्रिपिटक २२४ १ ५
त्रिष्टुप १२५
त्रेता २१
'त्याग' २११
'त्वमसि निरंजन' १३८

थियोसॉफ़िस्ट १८८, ४ ६, ४ ७
थियोसॉफ़िकल सोसायटी १ १-५

दक्षिण ब्राह्मण १८५
दक्षिणेश्वर १६८
दम्पति सेमिनार ११४
दयानन्द सरस्वती २११
दर्शन हिन्दू १८ १४ वेदान्त २ १
२ ४ २१५ १६, २१८ २२
१९१ बौद्ध २९५
दक्षि १२९, २२२
दादू ११४
दास ११८
दाराशिकोह ६ १२५
दार्शनिक तत्त्व १२ ज्ञान ५, १९७
सिद्धान्त १०१ संप्रदायों २२
'दि माउन्टेन्स सम्मुट' १५८-५९
देवत्व २६, १७८
देवनागरी (अक्षरों) १९१ भाषा
(संस्कृत) १५७
द्राविड़ १८ १८५ भाषा १८५
द्रौपदी १५२, १५४
द्वापर २१
द्वारकानाथ बोस १७
देव राजा शिवकृष्ण बहादुर २
द्वैत भाव १२६, १५६, १७४ १८४
द्वैतभावात्मक २२५ वेद १७४
द्वैतवाद ८१ १२१ १४९, १७४
२१६, २१८ २८८-८९, २९६
२९९ १ १
द्वैतवादात्मक १ १ १२२
द्वैतवादी ११ २ ११ ८७ ११४
१२८-२० ११४ १६६ १७४
१८१ २१५ १७ २२० २८७-८८

३००, ३०५, ३२२, ३४३-४४
द्वैतात्मक १७४

धनजय (पा० टि०) १५६
धर्म ७६, १४८, १७५, ३१८, इस्लाम ६३, ११४, ईसाई ८, १७, ६२, ७९, ८६, १०६, ११२, १३६, १४४, १५८, २०४, जैन १२६, १४४, बौद्ध १११-१२, १२४, १४४, १५८-५९, २४८, २७९, ३३७, ३४६, ब्राह्मण १५८, यहूदी ३४४, यूनानी ३४४, वर्णाश्रम २३०, विश्व ४१, २४५, वेदान्त १२४, ३४४, सार्वभौम २०८, सेमेटिक ३२६, हिन्दू ६२, ६६, ९६-७, १०७, ११०, १६३-६४, २०२, २१६, २४२, २४५, २५७, २७०, ३३९-४०, ३४४, ३४७
धर्मक्षेत्र ६२
धर्म-महासभा ७, ५२, ६१, ९६, १००, २०३
धर्मपाल २९२, ४०४
धर्म राज्य २७०, विज्ञान ८५, शास्त्र ३८४, सप्रदाय ८७, १९५ आचार्य ४९
धर्मानुष्ठान १७
धार्मिक आदर्श ७५
धृति ५
ध्रुव २७८

नजुन्दा राव, डॉ० ३५५, ३७०, ३७७
नचिकेता १३९, २१२-१३, २२४, ३३४
नमाज (पा० टि०) १५
नरेन्द्र ४०४ (देखिए विवेकानन्द)
नहुष २६
नाज़रथ १७६
नानक ११४, २५७, ३७८
नायडू, आर० के० ४००
नार्थ जर्मन लॉयड ३८९
नारायण २८३, पूजा २८४
नास्ति भावात्मक ३०७-८ (देखिए नेति-नेति)
'निगर' १०९
निराकारवादी ३४३
निरुक्त ३५१
निर्गुण ईश्वरवाद १५१
निर्गुण ब्रह्म २८, २०८, पुरुष २८
निर्गुण ब्रह्मवाद २, ११, २९
नित्य बुद्ध २३
नित्य शुद्ध २३
निवृत्ति मार्ग ४६
निवेदिता, मिस्टर ३२०, ३३२ (देखिए सिस्टर निवेदिता)
निष्काम कर्म १५४, प्रेम तत्त्व १५४
नीग्रो ८९, १०९, जाति ८८
'नेज़रथ के पैगम्बर' ३८३
'नेति-नेति' २२७, ३२८
नेपाल ३४४
नेपुल्स ३८८, ३९३-९६, ४००
नैयायिक १६०
न्याय २२०
न्यूयार्क ३१८, ३५६, ३६८, ३८०, ३९६, ४०१

पचनद २५८
पचलक्षण २१
पजाब २१८, २४८, ३४४
पतजलि १२७, २२६, २८६, २९७-९८
पम्पियाई ४०५
परपरा (सास्कृतिक) ५
परमात्म तत्त्व २५
परमकुडी ५२, निवासी ५२
परमहस ४१ (देखिए रामकृष्ण)
'परम पवित्र' ४०६
परमात्मा १४६, २२८, २३६, २६६, ३०६-७, ३१४, ३५२, सगुण और निर्गुण २७
परिणामवाद २९७
'पर्वत पर उपदेश' ३७९
पहाड, कैपिटोलाइन ६, हिमालय ४२,

१९, ११६ १२ १६४ १७२
७१ १७९ २१७ २४२, २४४
२७१ २८१ ३५४ ३११ ३९
३९२ (पा टि ) २४१
पांटि फेक्स मैक्सिमस ११२
पाइथागोरस ३२४
पाणिनि २२१
पातञ्जल योगसूत्र २९७ (पा टि ) २२१
'पार्लमान' ४ ५
पांडे हरिनाथ २४६
पाम्बन ३४
पाल कॉमसन २९७ ३८१ (देखिए कॉमसन)
पार्वती २४१
पारसियों २५१
पाश्चात्य धर्म १५७ जगत् १ १ जाति ४७ ८१ दर्शन ४४ दार्शनिक २९१ देश १७–८, १५, ४१ ४४ ५२, १ ७४ ७६, ८१ ९१ ९८ १ १ १ ८ ११८ ९९, २ १ २१ २९२ ३११ ३२१ ३४१ ३७७ भावो २९१ विचारों २७७ विद्वान् ३४६–४७ शिष्यों १८९ सभ्यता ४६, ३११
पाश्चात्यवासी १७१
पाशुपत १८१
'पापात्मक' ५६
पी कुमारस्वामी ४
पुराण १२, २१ २, ७ १२५ २१ ३११, ३१८ ३५ ३७२, २१७ २२५, २७९ २८१ ३४५, ४१ ३११
पुनर्जन्मवाद २२५, ३४६
पुर्तगाली १७ १८१
पुरातत्त्वानुसन्धान ११
पुरातन पुरुष २७
पुरोहित-प्रपंच १ २
पूना ८ ७
पेरूमल आलासिंगा ३५९ १ ३७७ ३८१ ३८७ ३८९ ३९७ (देखिए आलासिंगा पेरूमल)
पैरिस (फ्रांस) ८९, ९४ १ ९–११४
पोप (पा टि ) ११२
पोर्ट सईद ४ ४
पौराणिक १२७ परंपराएँ १४३
'प्यौरिटी कांग्रेस' ३६४
प्लेटो ३२४
प्लेटोवादियों ३२४
'प्रकृति का परिवर्तन' २२७
प्रक्षेपण ११ २९१
प्रच्छन्न बौद्ध २१८
'प्रत्यभिज्ञामूर्ति' २१८
प्रत्यक्षवाद ५१
प्रलय २१
प्रवृत्ति मार्ग ४६
प्रस्ताव २४८, २१२, २७८
प्राचीन संस्कृत ११४
प्राण २९१
प्रोटेस्टेंट ११८
प्रोफ़ेसर कॉमसन २१५, ३११ १७ १७१–७७ १७९ ३८२ (देखिए पाल कॉमसन)
प्रेम २८४
प्रेमभक्ति (आसक्ति) १५४
प्रिंस रीजेन्ट सिमोपोरस ४ ४

फ़र्ग्यूसन ४ ५
'फ़ादर पोप' ४ १
फ़ारस ९, १८ ११९, १७५
फ़ारसियों १९
फ़ारसी १२५ भाषा ९
'फ़िलिप्स' २७२
फ़्रांस ७ ८५
फ़्रांसीसी ९
फ़्रान्सिस १८
फ़्रैंकिनसेन्स ११४ ३११
फ़्रीमिस १५१ (देखिए फ़्रीमिस लेगेट)
फ़्रीमिस लेगेट १५२, ३९९
'फ़्लोरेन्स हाल' ४

बंग देश २१७
बंगला भाषा ३३९, लिपि ३३०
बंगाल १०६-७, ११९, १६०, १६२, २००, २१४, २१७-१८, २२७, २३१, २३६, ३३०, ३३५, ३३९, ३४४, ४०५
बंगाल, पूर्वी ३३९
बंगाली १४, २०६, ३३३
बदरिकाश्रम २४२
बम्बई २३५, २५६, ३८९, ४०२
बरोज़, डॉ० ३८३, ४०६
बलूची १५९
'बलिष्ठ की अतिजीविता' १८९
बल्लभाचार्य २८७, सम्प्रदाय २३५
बुद्ध ७३, ११८, १४४-४५, १५८, १७४, १८४, २३५, २९८, ३०५, ३१९, ३३१ (देखिए बुद्धदेव)
बुद्धदेव ११२, १४६, १४८, १६०
बुद्धि २९३-९४
बृहदारण्यक (पा० टि०) १४६
बृहदारण्यकोपनिषद् ३०८, (पा०टि०) ११६
बेबिलोन ३२६
बेबिलोनियन ८२, ३२६
बोधायन २१८, भाष्य २१९
बोर्नियो (पा० टि०) १६९
बेलुड़ मठ ३३६
बोस्टन ३६८
बैकुण्ठ ३०३
बैरोज़ ७९, ११२ (देखिए बरोज़)
बैरेनो ४९
बौद्ध २४, ५६, ६३, १५९, २२५, ३००-६, ३८०, दर्शनो २९५, धर्म १११-१२, १२४, १५८-५९, २४८, २७९, ३३७, ३४६, मंदिर १५, १५८
ब्रह्म २३, ३०७, ३१२
ब्रह्मचर्य आश्रम ३३
ब्रह्मचारी १५१
ब्रह्मज्ञानी १४९
ब्रह्म-दर्शन १३१
ब्रह्मपुत्र ११६
'ब्रह्मवादिन्'(पत्रिका) ३५८-६०,३६६, ३८९, ३९७, ३९९, ४००-१
ब्रह्मसूत्रो १५२
ब्रह्मा २९२, ३८०
ब्रह्माण्ड १२, २८-९
ब्रह्माण्ड तत्त्व २५, १४१, २८८
ब्रह्माण्ड विज्ञान ११, २१
बाल गंगाधर तिलक ३६५
ब्राह्मण ७०, ८९, ९२-४, १५८-६०, १६२, १८९-९०, १९२, १९८, २०७, २३१, ३०४, ३२५, ३४४, ३४८, ३५१, ३८६, ३९९, जाति १८९-९०, धर्म १५८, युग ३८७
ब्राह्म समाज १०३
ब्राह्म समाजियो ३९७
ब्रायन ३८७
ब्रिटिश जाति १८७, ३३१, भूमि २०४; शासन १८७, साम्राज्य ३५२

भक्ति २४८, २५७, अहैतुकी २७७, ३५४
भक्तिमार्ग २४८
भक्तिवाद २७८
भगवत्प्रेम १५२
भगवद्गीता १५१ (देखिए गीता)
भर्तृहरि १२१-२२
भवितव्यतावाद २४
भागवत १४९, १७५
भागवतकार १५०
भाग्यवाद ३५३
भारत १२-३, १६, १९-२०, २८, ३०, ३३, ३५-६, ४३, ४५-८, ५०-१, ५४-७, ६६-८, ७५-६, ८१-३, १०३-५, ११०-११, ११३, ११६-१८, १२०-२१, १२४-२५, १२७-३४, १३६, १३८, १४६, १४९-५२, १५४, १५६, १५८-६१, १६५-६७, १६९-७१, १७३,

१७७, २२१-२२, २२५, २२७-२९, २३९, २४१, २४५, २५[illegible] २५७, २६१, २६४, २६८-७२, २७४, २७६, २८१, २८१-८४, २८६-८८, २९५, २९९, ३[illegible] ५, ३१४, ३१७, ३१९, ३३, ३३२, ३३४-३५, ३५४, ३५६, ३५९, ३[illegible] ३६६, ३६८, ३७[illegible] ३७७, ३७९-८, ३८३, ३८८-८९, ३९१-९८, ३९८, ४[illegible] १, ४, ५, ६; दक्षिण ३७८ (देखिए भारतवर्ष); भूमि २१५, २१९; माता १९९

भारतवर्ष १[illegible] ७, २[illegible] १५, ३७, ४१, ४३, ४७, ४९, ५[illegible] ५२, ५४, ५६, ७४, ८४, ९४, ९६, ९९, १[illegible] १[illegible] ११६, २४२-४३, २५१, २६८, ६९, २७३, २७५, २८१-८२, ३११, ३३, ३४४, ३८०-८१, ३८३

भारतवासी १३, ४, ४६, ८६, १[illegible] ५, १२९, ३११, ३३३, ३८३

भारतीय अनुसंधान ३७८; आदर्श १५; आर्यों १६४, २४१; इतिहास १५; गवेषणा २८९; जनता १[illegible] जीवन १[illegible] दर्शन ११, ८५; धर्म १४८; नारियों १५; पत्रिकाओं ३[illegible] ९; भाव १३५; भूमि ५३; मन १८३, २८६; मनोविज्ञान २२६; महर्षियों १७८; मस्तिष्क ११४; राष्ट्र ३११; विचार १४५, १२४ (आध्यात्मिक) ३३०-३५; विज्ञान ११४; विवाह २९९; वेदान्ती ३११; शिल्प ११४; स्त्रियों ३११

भाषा अंग्रेजी १[illegible] १८९; द्राविड़ १८५; बंगला ३१; हिन्दी २४६

भाषा विज्ञान १२५

भाषा वैज्ञानिक १८५

भाष्यकार १५५, २०४

भैरव नाग ४५

'भोग' १०६

भौतिक प्रकृति ४५

भौतिकवाद ५, १७, ५१, ४, ५९, ६, ६२, ३, ६६, ६९, ८१, ११६, १७१-७२, २७१-७२

भौतिकवादी २५, ५३, ४, ६, ६१, ६९, ११६, ११७

भौतिक विकासवाद २९७

भौतिक विज्ञान २९७

मंत्र द्रष्टा १७७

मक्का (नगर) १५

मजूमदार २६१, ९६, ९७

मणि अय्यर १६

'मदर चर्च' ४, ९

मथुरा ६६-७

मद्रास ९८, ९, १[illegible] २, १[illegible] ७, १११, १४, १२४, १२७, १४३, १६१, १७१, १७८, १८५, १९४, ९६, १९८, २१, २७७, ३५१, ३८८, ८९, ३९१, ३९७, ४[illegible] ४०६, ४[illegible] ६-७

'मद्रास मेल' ३९९

मध्य अफ्रीका ८८

मध्य भूमि २१७

मध्वाचार्य २१७, २८७-८८, ३२८-२९

मन २९३, ९४

मनु ४८, १६१, ६९, २५७, २७३

मनुस्मृति १९, २५२ (पा टि) ४८

मनोविज्ञान २२६, २९३

मन्वादि पुराणों २५४; स्मृतियों १४३, २२४

मलय द्वीप ११८

महानिर्वाण तंत्र (पा टि) २५८

महाभारत १२, १३, १८९

महाभाष्य २२१

महामाया २०३

'महिम्न स्तोत्र' १४

महेन्द्र बाबू ८, २, ३

मनीषा ३

मातृभूमि १५, ४२, ४९, ५४, ९५, १०३, २०३, २१२, २२५, २३५, २४१
मारगरेट, नोबल (कुमारी) ३३२ (देखिए निवेदिता)
मालावार १८७
मालावारी ८७
माया २२, २२७, २३३, २३८, २७९, ३००, ३१०, ३१३, ३१९, ३३५, ३८५
मायावाद १९१, २१८, २३२-३३
मिल्टन १२९, २२२
मिस मूलर ३३२
मिस्र ३२४, ३२६
मुडकोपनिषद् २८९, ३०१, (पा० टि०) १३०, २२३, २६९
मुक्ति २८, ३६, १५५, १७७, २२६, २३३, (उपनिषदो के मूल मत्र) ३६
मुगल १८०
मुमुक्षुत्व ३४१
मुसलमान १५, १९, ६३, ११४, १६०, १८७, २५३, २५६, ३२२, ३३४
मुसलमानी १८८
मुहम्मद ३१, ६०, १४४-४५, २२०
मुहम्म्द रसूलल्ला २२१
मुहम्मद साहब (पा० टि०) १५ (देखिए मुहम्मद)
मूर्ति पूजा १५२, १५८
मूल तत्त्व ४, १८
मूलर, मिस ३३२, ३५२, ३६४-६६, ३७७-७८, ३८८
मूल सत्य १५
मूसा के दस ईश्वरादेश २५३
मेवुल ३९३
मेवेल ३८०
मेरी ११२, ३७४-७६, ३८४, ३९१
मेरी हेल, कुमारी ३७४, ३८४, ४०४, ४०६
मेसर्स किंग-किंग एड कपनी ४०२
मेसर्स ग्रिण्डले कपनी ३५१
मेकर्किडले ३७५
मैक्समूलर २३२, ३२६, ३५८-५९, ३६१, ३६४, ३७७, ३७९, ३८१-८२, ३९९
मैवेल ३९४
मैसूर ३९९
मोलोक १२, ८२
'मोलक याह्वे' १३, ८२
मोरिया १०५
'मोलोक यात्र' ८२
मोहिनीमोहन चट्टोपाध्याय ३३२

यजुर्वेद (पा० टि०) ३४५, ३५१
यथार्थवादी ३१०
यम २१३, २२४ (देखिए यमराज
यमराज २८६
यहूदी १३, २८, ८२, ११३, २५
२८१, ३५१, जाति १३, धर्म ३४
'यस० यस० मोम्बासा' ४०७
'याकी' ३६८
याग-यज्ञ २०, २२, १२४, ३४६
याज्ञवल्क्य २२४
याज्ञवल्क्यादि सहिताओ १४३
यास्क २५१
युग, कलि २१, ३२, ३८, ६६, त्रेता २
सत्य २१, ७०
युक्तिवाद ३१४
युक्तिवादी ३०२
युधिष्ठिर १५२
यूनान ६, ९, ६८, ११२-१३, १६
६५, २१५, २३१, ४०५
यूनानी ८१, ११८, २५६, ३२४
(पा० टि०) २७२, जाति ८
१६४, धर्म ३४४, मेधा ८१
सभ्यता ३३१, साहित्य १०
यूरेशियन जाति ३२०
यूरोप ९, ४१, ५५, ७३, ७५-६, ८
८७, ९३, १००-१, ११२, ११
१६२, १६५, १६७-६८, २०
२९२, ३२०, ३२२ २३, ३२
३४२, ३८१, ४०४-५, वाद

यूरोपियन १ ११ ९१ ८७ ४ ४
यूरोपीय २२२ सभ्यता ४७
योग १९४ १७६, १९८ शास्त्र १११
योगानन्द २८

रघोपुन १५१ २९८, ४ ४
रवि १४
राखाल २१६, ४ २, ४ ७ (देखिए ब्रह्मानन्द स्वामी)
'राजयोग' १४१ १५१ १७७ १८२, १८८, ४ १
राजा राममोहन राय २१
राजा राधाकान्तदेव बहादुर २ ०
राधा २५५
राम १४ १ ८ १४९ ५ १९७ २४१ (देखिए रामचंद्र)
रामचंद्र ४१
रामकृष्ण ११२, १४७ १५९ १६१ १६८ १७७ १८२, १८९ १९७ परमहंस १, ४१ ११३ १११ ९ १ २ १-७ ९ ९ २३५ ११ २१९, २४७ २५८
रामकृष्णानन्द १५१ १९८ ४ १ (देखिए शशि)
रामचरित १९
रामदयाल बाबू १९८
रामनाथपुरम् ४१
रामनाद १४ १७ ४१ ४१ ९७ ४ १
रामराज्य १८५
राम बाबू १९७
रामानुज ११२, ११४ ११४ १९ १७६, १७८, १८४ २१८ १९ २२७-२८ २१६, २१८ १६, २८७-८९ (देखिए रामानुजाचार्य)
रामानुजाचार्य २१७ १२८ २९
रामेश्वरम् १८ ४१
रामसपिर्री २४८
राष्ट्रीय भावधारा १५९ जीवन १ ८
रिचर्ड गार्नेस १७१-७४ १७८ १८६, १९९
रिपब्लिक दल ८
रूस १५८, १७७ १९१ निवासी १५८
रूसी पुरातत्ववेत्ता १५८
रेव ह्यूम्स ११२
रेड्रिक्स हल ८
रोम ९ ११२ १ ० १५२, १९१-९४ १९६, ४०४-५
रोमन कैथोलिक २५१ जाति १९९
रौप्यसमस्या ८

लंका १ (देखिए सीलोन)
लंकावासी ४ ९
लक्ष्मी ४ १
लक्ष्मीपति २४९
लघिमा २२१
'लडाक आंदोलन' १७२
लन्दन २ ६ १२ १५२-५६ १५५, १५७ १५९ १७ १७२ १७७-७८, १८१-८४ १८९ १६ १९१ ९४ १९९ ९६, ४ १-१
'लाय मैन ग्रीन एंड कंपनी' १५१
लोक कुमारी ४ ५
लॉर्ड मकाले ११७
लाला बद्रीशा २४१ १५७ १९
लाहौर २८५, ११९-२
लेगेट श्रीमती १५१
लेक स्मूकॉन ११८ (देखिए स्मूकॉन)

वट वृक्ष १५९
वर्ण चतुष्टय २१
वर्णाश्रम धर्म २१ विभाग २१
वर्मियर साहब ९
'वर्डिप' १९४
वरुण १२६, १२५ १२७
वाणिज्य नीति ४४-५
वाणिज्यवाद ९९
वात्स्यायन ७१ १४८
वाद, अजेय १११ अद्वैत २८ ६ ५६ ८६ १२५-२६ १३७ १४६, १७४-७५ २१८ २१९

२६८, २८७-८८, २९४-९५, ३०३, ३०५, ३०७, ३०९, ३१३-१८, ३२१-२३, ३२८, ३७२, ३९९, ऊर्जासधारण ११, एकेश्वर ८२, ८६, १२६, १४९, १७४, २३९, २६८, २८८-८९, २९५, २९९, ३००-१, विशिष्टाद्वैत १२६, २२८, २३९, ३९९, शुद्धाद्वैत २१५, ससार २२५
वानप्रस्थ ४६
वानप्रस्थी २०
वामाचार ३४६, तत्र २३१, ग्रथ २३२
वाल्डो (कुमारी) ३६४
वाल्मीकि १५०
वाशिगटन ३१९
वाराणसी २१८
विकासवाद ११
विज्ञानवाद २९५
वितडावाद ३२१
विद्यादान ३२
विनय कृष्णदेव बहादुर २००
विम्बलडन ३७-७४, ३७८, ३८१-३८२, ३८९, ३९९
'विविधता मे एकता' ९८
विवेकचूडामणि २३६, ३१२, ३४१
विवेकानन्द ३, १७, ४१, ५२, ६०, १६३, २०० (देखिए नरेन्द्र)
विशिष्टाद्वैत ३२८
विशिष्टाद्वैतवाद १२६, २२८, २३९, ३९९
विशिष्टाद्वैतवादी २०, ८७, १२४-२५, १८१, २१३, २१५-१६, २१८, ३३३, ३४३
विशुद्धाद्वैतवादी २१७
विश्वधर्म ४१, २४५
विश्वबधुत्व-भावना ३४
विश्व ब्रह्माण्ड १६३, २८५
विश्वामित्र ३३३
'विषयान् विषवत् त्यज' ४५
विष्णु १३, २१८, २७३, ३४०
'वीनस डी मेडिसी' ४०५
वृन्दावन १५१-५२, १५४, विहारी १५४
वेद ९, १८, २०, ७०, १०६, १२४-२६, १२८, १४४, १४९-५०, १७२, १७४-७६, १८८, २२५, २३१-३२, २३४, २३६-३७, २६१, २८५-८६, ३००, ३०५, ३१२, ३२५, ३४४-४६, ३६४
वेद अर्चना ३४५, ज्ञान ३४५; पाठ १४०, पाठी ९३, वाक्य २२४
वेद व्यास १५४, १६९ (देखिए व्यास)
वेदान्त ९, ११, १७-२१, २३, २८, ३०, ५४, ५८, ७०- ७३, ७९-८१, ८५, ९०-१, ९४, ९७-८, ११२, ११५, १२५-२६, १४१, १४५, १४८, १५९, १६५, १७१-७४, २२९, २३२, २५७, २८५-८८, २९५, २९७, ३१८-१९, ३२४, ३४६, ३६७-६८, ३७८, ३८२, ३८६, ३९२, ३९८-९९, ४०२; उसका अर्थ (वेदो का अन्तिम भाग, वेदो का चरम लक्ष्य) २०
वेदान्त दर्शन २०१, २०४, २१५-१६, २१८, २२०, ३९९, धर्म २४, ३३४, प्रचार ३८२, भाष्य २१९, साहित्य २७७, सूत्र २२०
वेदान्तवादी ८८
वेदान्त सम्बन्धी ८२
वेदान्ताचार्य २०१
वेदान्तियो २२०
वेदान्ती १२५,
वेस्ट मिनिस्टर ३८७-८८, ३९३-९४ ३९४, ३९७
वेदोक्त १७, १४७-४८
वैदिक १९, १२५, प्राचीन २२१, यज्ञो १५८ ज्ञान २४२, धर्म २४२, व्याकरण २२१

का कारण २१४ और व्यक्ति २१६ पश्चिमी २८२ पिछड़े हुए और पश्चिम के लोग २४२ प्रत्येक उसकी एक विशिष्टता २५ भारतीय संसार के प्रति उनका ऋण २११ यूरोपीय २५५
राष्ट्रीय क्षमता २६४ जीवन २६५ पतन उसका असली कारण २५८ पाप २६ भावना कोरी अंध विश्वास ५९ रोग १७३ विचार की धारा २३७
रासायनिक परिवर्तन १४२
रिजले मैनर १७३
रीढ़िंग ३११ १२ १२४ १२६ १४६ ४८ १५१–५२ १५५ १७९ १९९
रुद्र ११
'रूप' २९
रेचक ८५ १ १ १२०–२१ और पूरक ९२ -क्रिया ९५
रोम २९३
रोमन कैथोलिक २५१
रथू सिम्स ४०५

लंका १७८ ११३ वहाँ का बुद्धमत २४९
लंड मिस्टर २५९ श्री २८१
लक्षण मानवीय ११
लक्ष्मीपति १७
लक्ष्य उसकी सिद्धि और मूल्य ९९ शुद्ध सच्चिदानन्द १ २ -स्थल ७२ सर्वोच्च ५३
लगान ८१
लग्गामैन्स १८९
लन्दन १४७ २१ २३१ ३७ २४२ २९२ २९ १ ४ ११६ ३१ ११२ ११४ १४२ ४१ १४६ ४७ १५२ १५५ ५६ १५८ ११ ६१ ३ २ ४ २ ४ ५ ९
'लन्दन सीज़न' २११
'लॉर्ड' कुमारी ११५ बहन १९९
'लाई श्री रामकृष्ण' १२१
लोड एंजिलिस १६७
लाहौर १११
लीला २९८
लूथर १ १
लेग्ट एफ़ १ १ एफ़ एच श्रीमती ३४८ परिवार १० फ्रांसिस ११ फ्रांसिस ३१२ श्री २८८ २० १४२ ३६३ श्रीमती १४८ ३६४ १८७
लैण्ड्सबर्ग २८५ २९ २९२ श्री २७७–७८

वराहपुराण १
वरुण ११
वस्तु अतीन्द्रिय १४७ अमूर्त १५८ अस्तित्वहीन १५३ उच्च स्तर और उसका मापदण्ड १८९ उसका संस्कार और प्रतिक्रिया १३२ उसका सच्चा अर्थ १२९ उसका स्वभाव २२ उसकी बहुविध अभिव्यक्ति १५१ एक समता ही १८१ एक समय एक ही १५१ और आकाश ११७ और मन ११ -निष्ठ पक्ष १४७ प्रत्येक उसमें विकास की क्षमता २५६ प्रत्येक वास्तता की भूमिका ११६ प्रत्येक भौतिक ११५ बाह्य ६६ १२६ १३८ २२ बाह्य उसका अस्तित्व ११२ बाह्य और बीच की वस्तु १११ बाहर की ओर उसका कारण ११३ स्वभाव से उत्पन्न ५८ सांसारिक ५१ स्थूल सूक्ष्म उपकरण से निर्मित १ ९
वात्सल्य भाव ७
वाद अद्वैत २४६ २९ ३१९ १४८ १८४ आदर्श १११ इच्छा १४१ क्रमविकास १४१ द्वैत १९१ ३३६ १४८ यथार्थ १११ विकास २३

वामाचार ३१०, साधना ४००
वाराणसी ३६१
'वाल्डोर्फ-होटल' २९५
वाशिंगटन २३८, हाल १२२, १३१
वासना ३४१, अभिव्यक्ति का मूल कारण ३४१, सांसारिक ४
विकास, उसकी पूरी प्रक्रिया १८१, पुरातन का २५४
विकासवाद २२०
विक्टोरिया स्ट्रीट २४४
विचार, अन्तर्मुखी २३६, अशुभ १०३, आकाश-तत्त्व मे परिणत १७०, आहार से उत्पन्न १५४, उसका आधार ८१, उसके ससार मे परिवर्तन २३३, एक प्रकार के चित्र ९१, और ज्ञान ११८, जनतात्रिक २४०,-तरग २९, १०३, १३९,-तीव्रता १३४, पवित्र, उसका अनुसरण ९३, प्रत्येक, उसकी तीन अवस्थाएँ ९८, प्राण का स्पन्दन ९८,-बुद्धि २६,-शक्ति ५, १०२, १५१, -सक्रमण १६९, साम्प्रदायिक ३१८, स्वतत्र १७१
विजय गोस्वामी ३१९
विज्ञान, आधुनिक १९३, आध्यात्मिक १९१, इन्द्रियगोचर १४२, उसका काम १७७, और ज्ञान १३६, और मनोवैज्ञानिक धारणा १९३, पार्थिव ११४, भौतिक १४७, १९२, २२१, २३६, ३४१, रासायनिक १४७, सर्वश्रेष्ठ ११४, स्वत प्रमाण तथा स्वयसिद्ध १८०
वितण्डावाद १४३
विद्या, अध्यात्म ३८३, ३९५, अपरा ६०, परा ६०,-बुद्धि ३५४
विद्याभ्यास ३६०
विद्युत् लोक ३८५
विधवा-विवाह २६२
विधान, नये युग का २५५
विधि, अवैज्ञानिक १२४, वैज्ञानिक १२४, सार्वभौम १२४
विभिन्नता और एकत्व १५३
विमला ३०७-८
विमोक ३८-९ (देखिए इन्द्रिय-निग्रह)
'विरह', उसकी परिभाषा ५४
विलियम स्टारगीज़, श्रीमती ३३०
विलियम हटर, सर २४४
विलियम हैमिल्टन, सर १०१
विविधता, उसमे एकता की उपलब्धि १९०
विवेक, उसका अर्थ ३८, २२७
विवेकचूडामणि २१ (पा० टि०), २३ (पा० टि०), २५ (पा० टि०)
विवेकानन्द, स्वामी ७९, १२२, १४७, २२५-२६, २३६, २५८, २६३, २६९, २७६-८०, २८४-८८, २९०, २९२-९३, २९५, २९७, ३०२-५, ३१२, ३१४--१५, ३२५, ३२८-२९, ३३२, ३३४-३५, ३३८, ३४२-४४, ३४६-४७, ३४९, ३५१-५२, ३५५-५९, ३६२-६६, ३६८-६९, ३७१, ३७३, ३७५-७७, ३८०, ३८२-८३, ३८६-८८, ३९०-९६, ४०३-४, ४०६-७, उनका आदर्श ४०७-८, उनका उपदेश, धर्म-विरोधी नही २२९, उनका निजी अनुभव ३३६, उनका मूलमत्र ३४८, उनका सत्य, ईश्वर, देश और समग्र विश्व ३३९, उनका सरल और प्रेमपूर्ण ढग २३५, उनकी सफलता का कारण ३९१, उनके कार्य की गूढ़ता ३८६, उनके दर्शन का मूल तत्त्व २३०, उन्हे राजनीति में विश्वास नही ३४६-४७, सत्य पर उनकी श्रद्धा २७६
विशिष्टाद्वैत २८३, २९५
विशिष्टाद्वैतवादी, उनका कथन ३३

विश्व अंतिम रूप से है मिथ्या २४५
-इतिहास १९२ उसका चिन्तन और ईश्वर ५१ उसका नियमन २ १ उसका निर्माण २०८ उसका निर्माण सृजन की समष्टि से १५४ उसका विभाजन १५१ उसकी आत्मा १ उसकी प्रत्येक वस्तु, स्वयं सत्य १९४ उसकी व्याख्या २ ७ उसके प्रक्षेप एवं प्रक्षेप की तुलना १९४ उसमें इच्छा का अस्तित्व २ ८ उसमें धर्म के विभिन्न रूप १८७ उसमें वस्तु का अध्ययन १५१ उसमें सत्य और विभिन्न दृष्टिकोण १५२ और बुद्धि २ ८ और बिन्दु १५५ और व्यक्ति २४५ कल्पना मात्र २४५ तथा ईश्वर को समझने का उपाय २ ७
-धर्म-महासभा १२५, १११ २१७ -बन्धुत्व २१४ -बन्धुत्व उसकी बात का अधिकार ५१ ब्रह्माण्ड २४ -ब्रह्माण्ड २९, ७१ १११ -ब्रह्माण्ड उसकी उत्पत्ति १ भगवान् का खेल १९ -भाव १३७ -मन १५४ महान् पुस्तक १९८ मैं हूँ ११ वास्तव में एक १८१ विभिन्नता में एकत्व का उदाहरण १५२ व्यक्त १७४ -व्यक्ति का शरीर ९१ -व्यापी चेतना उसकी अभिव्यक्ति १४१ -शक्ति ११८ संपूर्ण एक उत्कर्षोन्मुख १५८ ससीम भाषा में किन्तु असीम भाव ९८
विश्वात्मा १२ और ईश्वर तथा विश्व १२ स्वरूप १८५
विषय ज्ञान और धारणा ११ -भोग ४१ ४९ -वासना ११३
विष्णु-सृष्टि ३१
विष्णुपुराण ८ (पा टि ) ५१ (पा टि )
वृन्दावन ७१
वेद १ २१ १४३ २४४ २६१ २६७ ३१ अनादि और नित्य २४१ अपौरुष १ २७१ उनके द्वारा नियम स्थायी और अपरिवर्तनशील २४१ उनमें निहित दैवी सत्य २४१ उसका विभाग ११६ उसका सबसे प्राचीन भाग २४४ उसकी प्रामाणिकता सदा के लिए २५४ ऋक् १ १९५ (पा टि ) १२८ ११८ और वेदान्त १२ यजु १ साम १
वेदान्त १४ १९१ २११ २१५ २१७ २२८ २४१ २९८ २९ २८७ ११४ १५ १७४ १७७ १९ ४ १-४ उसका अर्थ २४४ उसका विभाग ११६ उसके अनुसार चेतना २१९ उसके बिना धर्म अन्धविश्वास २५१ उसमें आध्यात्मिक आधार २५२ उसमें समग्र धर्म २८१
-तत्त्व २२७ दर्शन २४१ २८७ दर्शन उसके तीन भाग २९५ दर्शन तीन स्तर में २८१ धर्म उसका अर्थ २८१ धर्म सनातन ११ -भाष्यकार १ शास्त्र २२७ सब धर्मों का बौद्धिक सार २५१ साधना-पद्धति का अमूर्त विज्ञान २८८ -सूत्र १ १८
वेदान्त एण्ड दि वेस्ट' १२२
वेदान्तपारिजातसौरभ शांकर भाष्य १२७
'वेदान्तवाद' ९८
'वेदान्त सोसाइटी ऑफ सानफ्रांसिस्को' १२२
वेदान्ती २१ २१२ २५१ २९८ आदर्श २५१
वेलकोविया शारण २११
वेल्स मैगज़ीन १८८
वेस्ट मिनिस्टर गजट २९७
वैरा

११२, आधार पर अतीन्द्रिय घटना १४७, आविष्कार १९३, क्रिया, सामान्य इन्द्रियगोचर १४९, जानकारी और व्यावहारिक उपयोग ११२, ज्ञान १९०, ३१६, धर्म १४३, पद्धति और ध्यान १३४, प्रतिभा, उसकी आवश्यकता ४०७, प्रदर्शन १४७-४८, प्रदर्शन, उसका अर्थ और खण्डन १४७-४८, रीति १३४, विधि १२४, विषय १४८, व्याख्या १४८, सत्य १९१

वैदान्तिक, प्राण ३८३, ब्रह्माण्ड-विज्ञान ३८४, सिद्धान्त ३८४

वैदिक अनुष्ठान, उसके लिए पत्नी आवश्यक २६६,-अश्वमेघ यज्ञानुष्ठान ३०९, धर्मावलम्बी ४०, मत्र, उनके प्रति विश्वास २४६, मत्र, उसका पाठ, अर्थ-सहित, महत्त्वपूर्ण २४६, वाणी २४५, शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ ६०, सूक्त ३६८

वैयक्तिक चुबक १७१

वैराग्य ३२६, भक्तियोगी का स्वाभाविक ४६, और ज्ञानयोगी ४५, और विनय ३०६,-साधना ४७

वैषम्यावस्था ३८

व्यक्ति, अनुभूतिसम्पन्न ३३८,अन्त-स्फुरणसम्पन्न १३४, अपढ और ईश्वर-धारणा २६, उसके लिए उपयुक्त आसन ११०, उसमे धर्म-ग्रहण की तैयारी और गुरु-आगमन २४, उसे अपना उद्धार, स्वय २८९, ऐतिहासिक २४७, और उसकी जीवन-शक्ति का स्रोत ३९५, और दान १२५,और धर्म ३५-६, और मृतात्मा १५९, और विश्व २४५, चमत्कारी १३४, तत्पर, कर्मठ ३३४, तथा सिद्धि १२४, धर्मान्ध ५, ३७४, निम्नतम, उससे भी सत्य की सीख २४८, पवित्रात्मा १०३, प्रत्येक में शक्ति १२३, प्रत्येक, साक्षात् ब्रह्म २२९, प्राज्ञ ३०७, 'बलिष्ट, द्रढिष्ठ' ४१, बुद्धिमान, उसका उद्देश्य २३९, मूढ १९, विचारवान ३३५, विचारशील २२८, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान १९८, सिद्धि के शिकार १२४

व्यक्तित्व, उसका विकास आवश्यक ८१, उसकी विशेषता १७२, एक सत्य १७२, और नेता १७१

व्यवसाय, उसके लिए मनोयोग की आवश्यकता १७९

व्यवस्था, उसके भीतर जीवनी-शक्ति २५४, सामाजिक और राजनीतिक भलेपन पर टिकी २३४

व्यवस्थापिका सस्था, उसका निर्माण २५५

व्यावहारिकता, दृष्टि के अनुरूप १६१

व्यायाम, उसका अर्थ १६५, मानसिक या शारीरिक १६५, वेगयुक्त, हानिकारक १६४

व्यास ७, उनका कथन १२, उनकी दर्शन -पद्धति २०४, -भाष्य ८ (पा० टि०), -सूत्र ४

व्रूमन, डॉ ३००

शकर २४५, २५६, आचार्य १२, भगवान् ६ (देखिए शकराचार्य)

शकर पाण्डुरग ३८८

शकरलाल, मा० ३११

शकराचार्य ३३, उनके मतानुसार आहार ३९, और आहार शब्द की व्याख्या ३९, भगवान् ३२

शक्ति, अणिमादि १२-३, आकर्षण १८, आकर्षण और विकर्षण की १९३, आध्यात्मिक २३, इच्छा ४२,८३,८९-९०, ईप्सित १६४, ईश्वरीय ४९, उच्च ९४, उनका निरापद मार्ग १००, उनका अधिष्ठान १७३, उसका परिणाम [illegible],

उसका संघात और पुनस्संघात १९१ उसकी उच्चतम अभिव्यक्ति २२१ उसकी प्राप्ति १७ उसके बिना जड़ पदार्थ नहीं १९६ एक प्राण की विभिन्न अभिव्यक्ति ११८ एक संभावना १५७ और ऊर्जा ११७ और पदार्थ १९६ और विश्वास १९९ और सुख १७१ काम ८९ केन्द्रापसारी १९६ कुण्ड २४८ चित्त १८५ जीवनी १५९ जीवनी और एकाग्रता ८९ दैवी ११७ निम्नतम १९१ नैतिकता और पवित्रता ही २१४ प्रकाशगामिनी १८ प्रकम्पतर, भीतर की ८५ प्रवाह ९ १ -प्रवाह उसका नाम 'चक्र' ८९ -प्रवाह, स्वस्थ शरीर में ८८ प्रेरक १७ १८९ बोध ८१ भौतिक १८४ मन ९२ महती ८० मानसिक ४२, १ १ मानसिक उसका नियंत्रण ८४ यौगिक, उससे खतरा १ यौगिक और काम-प्रवृत्ति १ स्वप्न नहीं १ ९ मध्यम १४ -संचार १८ ९४ सबसे अधिक सूक्ष्म में १७१ सर्वोच्च १९१ सारी सूक्ष्म में १७१ सूक्ष्म और कारण १७४ सूक्ष्मतम बोध-क्षमता की ११८ सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और प्रकृति ११८ स्नायविक ९२

शब्द आत्माभिमानित ९५ और भाव में नित्य संबंध १ -जाल चित्त को भटकानेवाला महावन २१ प्रतीकात्मक १२१ -ब्रह्म २९ मन के क्रियाशील बनने की विधि १ १

शरणागति वाणी ५९

शरत् १ ७ १११ ११३-१४ १२४ १९१ १५ १५२, १७८, १८८ १९१ १९७ १९९, ४ ९ (देखिए सारदानन्द स्वामी)

शरीर ११, ५८ ९, ८९ १ ० ११९, १५१, २६५, ११९ १७४ अभ्यन्तर की ऊपरी पर्त ११९ उसका पुनर्गठन प्राणायाम द्वारा १२१ उसकी क्रिया का प्रभाव मन पर ११ उसकी गति-विधि १५१ उसकी प्रवृत्ति १ १ उसकी सूक्ष्मतम क्रिया १११ उसके नाड़ीय प्रभाव का उद्गम ९९ उसमें क्रियाशील प्राण का नियंत्रण १५१ उसे वश में करने की शक्ति मनुष्य में १ ९ उसे वश में न करने से दुःख १११ और इच्छा की अभिव्यक्ति २ ८ और मन ४२, १ ७ १५ और मन से परे ९२ और माता-पिता १९९ और मानसिक अवस्था ११ -क्रिया १५४ छोटा सा दर्पण ९१ द्वारा मन तक पहुँचना ११ द्वारा मन शासित १५१ बाह्य अभिव्यक्ति ११९ मन का बाह्य रूप ९२ मनुष्य का प्रमुख भाग २१६ रूप २९ विज्ञान आधुनिक १९७ २ २ विभिन्न सत्ता नहीं ११९ सूक्ष्म १९, ११०-११ १९९ सूक्ष्म अपने विचार द्वारा निर्मित २१९ स्थूल ११ १९ १९९ स्थूल बद्ध ११ २१३ स्वस्थ और इन्द्रिय-संयम की प्रतिक्रिया ४२ हमारा आदर्श और भौतिक सहायता १९४

शशि १ ७-८, ११०-११ ११३-१४ २२४ २६, १५ १५९, १७८, १८ १८८, ४ १ ४ ८ (देखिए रामकृष्णानन्द स्वामी)

शांकर भाष्य ११ (पा टि ) १२ १ (पा टि ) १९ (पा टि ) १२७

शाक्त २८३
शाण्डिल्य ४, उनके 'अनुरक्ति' शब्द की व्याख्या ८, -सूत्र ८, ५४ (पा० टि०), ३२४, ३२७
शान्ति और प्रेम १८२, और सद्भावना २३२
शापेनहॉवर २३२, उनका कथन २०४, उनका विचार २०४, उनकी भविष्यवाणी २३७, और बौद्ध का इच्छावाद ३४१
शारीरिक अभ्यास, उसके तीन विभाग १०१, कष्ट, उसका परिहार १७४, परिवर्तन १२१, बल, नितान्त आवश्यक ४२
शालग्राम-शिला २६६
शास्ता ६७
शास्त्र, उसका उद्गम १७७, उसका कथन ७, १०, १३३, ३१६, उसका शब्दजाल २१, उसकी आत्मा का ज्ञान और गुरु २१, -ग्रन्थ ६७, प्राचीन २२८
शिकागो २२९, २३१, २३७, २५१, २५७, २७९–८०, २९३, २९६, ३०४, ३३०, ३४२, ३६५, ३९२, -वक्तृता ३६०, वहाँ की महासभा २५१
शिक्षक, आध्यात्मिक और लौकिक २६१
शिक्षा, उपयोगी २३, उसका अन्तरतम अग, धर्म २६८, उसका आदर्श १५७, उसका ध्येय १७२, उसका रहस्य १७३, उसकी उपयोगिता १७३, और प्रगति, उसका उद्देश्य २२०, और विश्वविद्यालय २६२, और सस्कृति १३४, और सभ्यता ३४७, -दीक्षा २२७, ब्राह्मण-चाण्डाल, दोनो के लिए ३०९, -पद्धति ३७२, महान् २३३, महान् और जाति-भेद २३९, लोकोपयोगी २५२, सार्वजनिक ३७६
शिक्षाष्टक ३५ (पा० टि०), ७५ (पा० टि०)
शिव २९२, ३७८, भगवान् २५
'शिव-सहिता' ३४०
शिवानन्द २८४
शिष्य २६३, उसका कर्तव्य ८१, उसकी परिभाषा १७, उसके लिए आवश्यक बातें २०, और अध्यवसाय २१, सच्चा १८
शुद्धि, उसकी साधना मे त्याग, श्रेष्ठ ४५
शुभ २३, और अशुभ २९५, और अशुभ की भावना ३७२, और अशुभ विचार १०३, -विचार ३७१, -विचार और बीभत्सता की चरम सीमा ४०, विचार का उत्तराधिकारी १०३
शेक्सपियर, उसका 'एज़ यू लाइक इट' २३ (पा० टि०)
शैतान ५२, २२६, २८३, ३३१, ३४३, ३४५, उसकी उपासना, विकृत पाठ २४३
'शैतान-पूजा' २७५
शौच, आतरिक ४०, उसके गुण, रामानुज के अनुसार ४०
श्रद्धा, उसका मूल ५४, -भाव ७९
श्रवण ७, -शक्ति १२४, १४०
श्रीभाष्य ८
श्रीमद्भागवत ११-२ (पा० टि०), २५ (पा० टि०), ५५ (पा० टि०), ७३
श्रीराम, कमललोचन ३७
श्रीश बाबू ३२७
श्रुत और श्रवण २०७
श्रुति ७, ३२, उसका कथन ३८, ४१, और स्मृति ३३
श्वास, -क्रिया, उसका नियमन १२०, -प्रश्वास-क्रिया १२७
श्वेताश्वतरोपनिषद् ३ (पा० टि०)

संकल्प १४१ प्रतिचेतन १४२ चेतना-रहित १४२ बिना ज्ञान के असंभव १४२ यथार्थ चेतन १४२
संगठन उससे ही शक्ति ४ १ उसे प्राप्त करने का उपाय ११५ १ ८
संगीत -लोक १ ८ शास्त्रीय
संघमित्रा २१८
संघर्ष अज्ञान के कारण २२१ उसका सृजन अधीरता २२१
संचार उसकी आवश्यकता २ ८
संजीवनी-शक्ति १७
सडे टाइम्स २१
संत महान् और आचार्य ८५
सन्यास २१४ २८९ ४ १ उसे वेद की स्वीकृति प्राप्त ११७ और सगठन २११ -आर्य १२१ -व्रत उसका अर्थ २१५
संन्यासी २८१-८२, २९८ १११ १२१ १२१ १२८ ११ १४५ ४६, १४८, १११ ६२, १८१ १८१ १९१ १९९ १९९, ४० ४ ५ और योगी २२७ पूर्ण २१२ महान् २१२ शब्द का अर्थ २१४ शिष्य १९२ सम्प्रदाय १४७ हिन्दू २२६, २५७
'संन्यासी का गीत' ३१२
सपन ४
संवेदक १९७ भिन्न अवयव के लिए भिन्न इन्द्रिय १९७
संवेदन बाह्य ८५
संवेदना उसका विभाजन और प्रभाव २१ और तरंग १११ और प्राण ८१
संस्कार २ ५ अतीत के १११ उसकी बाह्यकर्म-प्राप्ति २ ७ पूर्व और पूर्व जन्म ११४ सूक्ष्म का १२६
संस्कृत एक ध्वनात्मक-पद्धति १७७ उसका विद्वान् १४७ कहावत २४१ कोष १८८ ज्ञान ११९ प्राथमिक उसकी शिक्षा १११ भाषा ४६ १४७ मध्य १४१ श्लोक २४८ साहित्य ११९
संस्कृति वैदिक और यूनानी २१२
संसार अन्धविश्वास की बेड़ी से जकड़ा ४ ७ इन्द्रिय बुद्धि और मुक्ति का १८७ उसकी प्राचीनतम विचार धारा २१२ उसके धर्म ४ ८ उसके महान् उपदेष्टा का कथन ७९ उसके मुख्य धर्म १४ उसके सभी धर्म की घोषणा ११ उसमें आध्यात्मिकता की बाढ़ २८ उसमें विविध दुःख नैसर्गिक नहीं ११९ उसमें दुःख मूर्खता के कारण १११ उसमें दो प्रकार के मनुष्य ९२ उसमें स्वार्थपरता की जड़ ९८ एक पागलखाना ७५ एक भ्रम १५९ और ऐन्द्रिक सुख १ ९ क्षणभंगुर ५८ दुःख से परिपूर्ण १११ दुःखमान ५९ न अच्छा न बुरा १६२ निरन्तर परिवर्तित १४६ पश्चिमी २५८, २७९ यह कभी एक स्वप्न १५९ बाह्य १ १ सोपाधिकत्वपूर्ण १५ -व्याधि ७६ शाश्वत के प्रति सुषुप्त १ ९ शुभ और अशुभ का मिश्रण २१९ सुख और दुःख का मिश्रण २१९
संहिता पुरानी संस्कृत में २४४ वेद का सबसे प्राचीन नाम २४४
'सच्चिदानन्द' १४१
सब्जेक्टिव और बाह्य १८८
सतयुग १२१
सत् ११४ ११५ धर्म ११०-११ चिन्तन ८९ प्रवृत्ति उसके विपरीत कार्य १११
सत्ता अतीन्द्रिय २२ जगतातीत १८८
सत्य ११ १९१ अनुभव द्वारा प्राप्त १९२ आपातप्रतीयमान उसका कारण २४९ आभ्यन्तर १९२ आभ्यन्तर अनुभूति द्वारा प्राप्त

१९२, ईश्वर विषयक और आत्मविषयक १३६, उदात्त, उसकी शिक्षा, पुराण का उद्देश्य २४७, उसका प्रचार २७६, उसकी खोज २४, उसकी जय २३०, २७६, ३१८, उसकी प्राप्ति, प्रथम कर्तव्य १९, उसकी सीख, निम्नतम व्यक्ति से २४८, उसके निम्न पाठ २४३, उसको प्रकाशित करने की भाषा ३१९, ऐतिहासिक और पुराण २४७, और ज्ञान २०, और भगवत्प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा ८०, और शिव २७७, केन्द्रीय दिव्यत्व की अभिव्यक्ति २३३, केन्द्रीय, भीतर का ईश्वर २३३, दैवी, अपरिवर्तनशील २४६, परम १३८ (पा० टि०), पूर्ण १९२, बाह्य १९२, भौतिक, उसका समनुरूप १९२, -लाभ २०७, वस्तु की नक़ल १६९, वैज्ञानिक १९१, सनातन २०, -समूह ३३६, सार्वभौमिक ११५, स्वप्रकाश २०, स्वयप्रमाण २०, २२९, -स्वरूप केन्द्र की त्रिज्याएँ २३३

सत्ययुग, उसका आविर्भाव ३०९

सत्त्व, पदार्थ ३८-९, -शुद्धि ३९

सनातनी, अन्धविश्वास २६४, लोग २६१, हिन्दू २६४

सन्तुलन-केन्द्र ३१६

सद्गुण और साहस ३८७

सदसद्विचार, उसका आनन्द २२७

सदानन्द, स्वामी ४०१

सल्वाटेरियन, कट्टर ३०५

सभ्यता, अमेरिका २६१

समष्टि, इकाई ५६, ईश्वर ही ५६, उसके माध्यम से विश्व-प्रेम सभव ५६, और व्यष्टि ५६, -क्रम २१७, -बुद्धि २१६, ब्रह्माण्ड २१७, भक्त का भगवान् ६७, भाव ५६, -मन १५४, १७०, २१६, ३८४-८५, महत् २९, ३८५, सूक्ष्म और स्थूल जड २१६

समन्वय और शांति २५८

समरिया देश ३८९

समाज, उसका मूल आधार, दोषजनक १५७, उसकी पूजा और मूर्ति-पूजा ८०, -व्यवस्था २३४, शिक्षित ३३५, -सुधार २५०

समाजवाद २४३

समाजवादी ३४९

समाधि ८४, ९५, -अवस्था ९६, -अवस्था, उसकी भूमिका १०७, -अवस्था, सर्वोच्च २१३, उच्चावस्था १२९, तथा द्रष्टा और साक्षी १२९, -दशा १५६, धर्ममेघ ३३७, स्वरूपशून्यता १३२

समाधिपाद ७ (पा० टि०)

'समुद्र-पीडा' ३६५

सम्प्रदाय, उदार-भावापन्न ३५, उसकी उपयोगिता की सीमा २३५, उसकी शक्ति का स्रोत १२९, और भक्ति ३५, ब्रिटिश २३०, वैष्णव १२६, सुधारवादी २६३, हठयोग २२६

सम्प्रदायवादी, सकीर्ण ३५

सम्मोहन १८१

सर्वभूत ५८

'सर्वव्यापी' २६

'सर्वशक्तिमान' २६

सहस्रद्वीपोद्यान २७७, २८७-८८, २९२, २९५-९६, ३०२-३, ३३०, ३३२-३३, ३४२

सहस्रार ८५, ९४, १४०

सहारनपुर ३१२

सहिष्णुता ८०

सांख्य ११, उसका दृष्टिकोण २००, उसका पुरुष २१०, उसका मत २०१, उसके अनुसार, अहकार एक तत्त्व २११, उसके अनुसार

प्रकृति २ १ और ग्रीक दार्शनिक विचार का समारंभ २ १ और वेदान्त १९१ दार्शनिक १९१ २ १ २ ८ दार्शनिक और प्रकृति २ १ मतानुसार वस्तु की सत्ता २ वादी २१ २१४ सर्वांगपूर्ण सामान्यीकरण नहीं २१ -सूत्र २१२ (पा टि )
सांख्य दर्शन १९४ २११ २१४ १४१ उसके अनुसार आत्मा २१४ उसके अनुसार प्रकृति २११ उसके अनुसार सत्त्व रज और तम १८ उसका क्या दोष २११ उसे समझने की सीढ़ी २ १ जगत् का सर्व प्राचीन दर्शन १९१ भारत की दर्शन प्रणाली की आधार शिला १९१ विश्व-दर्शन का आधार २ १
सांख्यकारिका १४ १७५
सांसारिक आकांक्षा ५९ दुःख उसका कारण ११४ प्रेम ५५, ७५ वस्तु ५१ वासना ४ सुख ११२ स्वार्थ ४९
साधक ८ १८ आदर्श १८ उसके लिए एकनिष्ठा आवश्यक ३७ और आत्मा के बन्धन ५३ और आहार संबंधी नियम १९ और ब्रह्माण्ड का चिन्तन ११ और सत्ता भगवान् ६ और भक्त प्रेम १९ सफलताकांक्षी और तीन बातों की आवश्यकता ८
साधन उसमें परिश्रम अधिक ५२ और विकास १७५ कृत्रिम १७१ द्वारा ईश्वर-भक्ति का उदय ४२ -नियम ७ -पथ १८ भक्ति १५
साधना उसका क्रम ८४ उसका सर्वोत्तम समय ८१ और सिद्धि २१ -पद्धति १५१ २२८ प्रणाली ९
साधनावस्था १५
साधु, भाव २१ -महापुरुष ४ -संन्यासी १ ८
साम्पाक ३ ७ ३१२ १२ १२२ १२४ ३२६, ३७
सामवेद ९
साम्यवादी सिद्धान्त २५२
सामाजिक कल्याण ११७ परिस्थिति ११७ व्यवस्था २४१ संगठन, राष्ट्रीय विचार की अभिव्यक्ति २३९ समस्या १५९ समस्या और हिन्दू जाति-प्रथा १४९ सुधार २४ २१२ सुधार, उसकी आवश्यकता २५४ स्थिति इंग्लैण्ड की २५९
सामान्यीकरण और सूक्ष्म विचार २१५
साम्यावस्था १९२ २११ आदिम १९१ और सृष्टि का अस्तित्व १९१ पूर्ण उसमें गति नहीं २ १ प्रकृति १८
सार-तत्त्व और प्रेम २१८
सारदा १ ११३ ११५ १९ ११८ १९ १२४ ३५ १७८ ३८ (देखिए त्रिगुणातीतानन्द, स्वामी)
सारदानन्द ४ ६-७ स्वामी १६९ (देखिए शरत्)
सारा सी बुल श्रीमती ७९
'साहसी' ४ ८
सिंगारावेलू मुदालियर २९१ (देखिए किडी)
सिकंदरिया २१२
सिद्धान्त १९४ आधुनिक और आकाश २ १ आधुनिकतम १५९ साम्य वादी २५२
सिद्धि अप्राकृत९८ और ज्ञान ११ मनस्तात्त्विक व्याधि के कारण ९८ मौलिक १ ५ -लाभ १२ ४ ७
सिविल सर्वेण्ट २१७

मिलवरलाक, श्री ३५६
मीता ३७
मीतापति २६८
मुकर्म ३८१
मुख और दुःख-भोग २१३, दुःखात्मक अनुभव ४५, बुद्धिजन्य ४७, -भोग १४, १४४, -सम्पदा ५९
मुधार, आदर्श २५४, आध्यात्मिक ३३१, उसका अचूक मार्ग ९८, प्रगतिशील २५४, सामाजिक २६२, सामाजिक, उसकी आवश्यकता २५४
मुधारक, आधुनिक २५६, और यूरोपीय लोग २६१
मुब्रह्मण्य, अय्यर, न्यायाधीश २५७
सुरेश ३२९, दत्त ३२७
मुषुम्णा ९९, १०१, १०४, १३९, उसका ध्यान, लाभदायक ९४, उसकी सर्वोत्तम विधि ९४, उसके दो छोर पर कमल ९४, उसके मूल मे स्थित शक्ति १३८ (पा० टि०), -पथ ९०, -मार्ग १००
सूक्ष्म और सयम ३९
सूडान २३६, २४१
सूत्रात्मा ९८
सूरज २० (देखिए सूर्य)
सूर्य ११, २०, २४, ५१, ७०, ११७, १४८, १५३-५४, २१३, ३५९, ४०७, और चन्द्र ७२, ८६, ८८, (पिंगला) ८५, प्राच्य २२९, -लोक ३८४
सृष्टि, अनादि ९, आत्मा के हित के लिए १९८, उसका क्रम १९५-९६, उसका तथ्य १४६, उसका सर्वश्रेष्ठ विद्यालय ३४३, उसकी समष्टि से विश्व १५४, उसके पीछे एकता २४३, और उपादान २११, और प्रलय १९४-९५, कर्ममय ६९, क्रम १९६, द्वारा ईश्वर का अनुसधान १४६, -निर्माण ६९, -रचनावाद, उसका सिद्धान्त १९८, -शक्ति, आदि ३८४, सम्पूर्ण, उसके पीछे एकता २४३
सेंट जार्जेस रोड ४०३, ४०५-८
सेन, केशवचन्द्र २४३
सेमिटिक जाति २८३
सेमेटिक लोग, उनमे नारी २६६
सेवियर, श्री और श्रीमती २६२-६३
सैन फ्रान्सिस्को १२२, १३१, १५१, १६०
सैम ३७५, ३९६
सोम ११
सोलोमन, श्री एव श्रीमती ३६६
सौन्दर्य और महानता ५१
सौर-जगत् १९४
स्टर्डी २८४, ३४२, ३४७-५२, ३५५, ३५८, ३७९-८०, ३८८, ३९१, ई० टी० २७५-७६, ३११-१२, ३२४-२६, ३३४-३५, ३४०, ३४३-४४, ३४६, ३४८-४९, ३५२, ३५६, ३५८-५९, ३६४-६५, ३६७, ३७३, ३७५, ३८३, ३८७-८९, कट्टर वेदान्ती ३२७, श्रीमती ३५८-५९, ३६४, साहब ३२७
स्टारगीज, अल्बर्टा ३०४, कुमारी २९२, श्रीमती ३०३
स्टील, कुमारी ३७३
'स्टैन्डर्ड' ३५६
स्ट्रीट, डॉक्टर ३८३
स्त्री, उसका महत्त्व ३१७, उसकी अवस्था-सुधार और जगत् ३१७
'स्त्री-गुरु' ३१७
स्थूल, उसका कारण सूक्ष्म मे ११८
स्नायु-केन्द्र १९६
स्पेन्सर, हर्बर्ट २६०
स्फोट, अव्यक्त २९, ३०, ईश्वर के निकटवर्ती ३०, ईश्वरीय ज्ञान की प्रथम अभिव्यक्ति ३०-१, उसका अर्थ २९, उसका एकमात्र वाचक

मूल भित्ति १४५ उसकी सहि ष्णुता ४२ उसमें अन्तर्मानव की शक्ति २११ उसमें कामदायक संघर्ष ९९ उसमें सीखने योग्य बात ९१ एक स्पन्दन ११७ और धर्म २७९ और मृत्यु ७८ ८५, १९५ गंभीर व्यापार २३१ जड़वत् और मूढ़ १४ ज्ञानमय १९२ तथा स्वर्ग ११६ -दान २१ दीप ५९ दीपक ८५ दूसरा की भलाई के लिए काम करना १२५ धार्मिक ११२ -नाटक २५५ -नाटक उसमें शब्द प्रतीक का स्थान ४९ -पथ ८४ पार्थिव २१ -प्रभाव ११४ प्रेम ही ११२ भोग-विलासपूर्ण १२२ भौतिकपरायण ४९ मरणोत्तर ११८ मिथ्या है १७९ मृत्युस्वरूप अन्य स्तर का २९ यथार्थ कर्ममय १७ यथार्थ त्याग मय १७ राष्ट्रीय ११२ राष्ट्रीय आध्यात्मिक ११९ विस्तार ही २११ व्यावहारिक १८ ११४ -संग्राम ९, १४ संघर्ष का नाम ५९ सच्चा २९ सदा विस्तार करना ही १५५ समस्या ११४ सम्पूर्ण एक व्यायामशाला २९ सम्मिश्रित व्यापार ५९
जीवन्त उसके सामान्य लक्षण २ ४ तत्त्व १९८ शक्ति १९८ सत्य १९८
जीवन्मुक्त और संसार २११
जीवात्मा १५१ १५८ १९७ १७१ १९१ ९७ २१७ २२०-२१ २२१ २५९, १७५-७९ आनन्द मय २२१ उसका क्या स्वरूप २२१ उसकी पूर्णता की स्थिति होने पर २२१ उसकी पूर्णता प्राप्ति २२१ उसके विस्तार की आवश्यकता २२१ और ईश्वर २८५ बाहरी स्तर पर २२८
जैन २८
जेम्स्टाइन १७
जेम्स डॉ ११४
जैक २१२ २२८
जैन और बौद्ध २४१ ... १२८
जैनी ९२
जोसेफ ९
जोसेफिन बहन १८८ जौक ...
ज्ञान मतीन्द्रिय १५१ २८ आध्यात्मिक १ ... उसके विग्रह १९९ उसका ... लाभ उपाय १५४ उसका ५ ... लाभ मूल्य २२१ और ... ८४ और कर्म १५१ चैतन्य ... जाति तथ्य ११८ -ज्योति ११८ १५८ तत्त्व १५, १९ ज्ञान ... नीचे शारीरिक ... २८ ज्ञान की प्राप्ति से १८१ पारमार्थिक २८ प्रत्यक्ष ... मूलभूत कारण १५२ १५ बाहर से नहीं १ बौद्धिक १९५ मनुष्य का प्रकृत जीवन २८ मनुष्य में अन्तर्निहित १ -मार्ग ८१ यथार्थ ११ -योग १७ १९ १९९-७ -योग उसकी शिक्षा १५८ -योग और ईश्वरस्वरूप की अनुभूति १७ -योगी १५१ योगी उसका प्रथम मार्ग ७२ रहस्य १९४ -विचार १५१ वैज्ञानिक ११५ -शक्ति १ ७ शाश्वत १८४ सम्पूर्ण हममें निहित १ ९ सांसारिक वस्तु विषय ११ -स्वरूप आत्मा ४
ज्ञानालोक ११८
ज्ञानी उसका अनुसंधान १९७ उसकी इच्छा १ ५ उसकी पहचान १९७ और एकत्वानुभूतिकामी योग १५१ तथा कर्मी और भक्त ११

ज्यामिति, विज्ञान मे श्रेष्ठ २२६
ज्योति की सन्तान ३७५
ज्योतिर्विद् १५३
ज्योतिष ३५२
ज्योतिषी लोग ३६७
'ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनी' १११

टाउन हॉल ३१९, ३३१
टोटेन, श्रीमती ३२१ (देखिए ई० टोटेन)
ट्रान्सक्रिप्ट ३९२

डाइनेमो २७१
डाक्टर, नजुन्दा राव ३३६, राव ३३६
डार्विन ११५
डिट्रॉएट २७३, ३५५
डिट्रॉएट फ्री प्रेस २७३
डियरबोर्न एवेन्यू ३२८, ३४३, ३५८, ३६४-६५
'डेगो' ३५३
डे, डॉ० ३८५
डेमोक्रेट २३९

तन्त्र-ग्रन्थ २३
तत्त्व, उपदेश १३३, जीवत १९८, ज्ञान ६५, १६०, २५४, ३६८, ज्ञानी १००, दर्शन १७५, दैवी २८५, पौराणिक १४५-४६, भौतिक २३२, वीरोचित ३०२
तत्त्वमसि १५८
तम, उसकी अभिव्यक्ति ११
तमोगुण ११
तर्क, उसके पथ मे वाधा १५२
तामसिक पुरुष १४
तारक दादा ३००, ३५२, ३५४, ३५७ (देखिए शिवानन्द स्वामी)
तितिक्षा, उसकी परिभाषा १००, उसकी प्राप्ति के लिए कार्य १००
तिब्बत १४७, २९६, ३७३
तीर्थयात्रा २५१
तुलसी ३००
तुलसीदास ३८१ (पा० टि०)
तुलसीराम ३६३, बाबू ३०९
त्याग, उसका अर्थ १८६, २७८, उसकी परिभाषा १७९, उसकी महिमा १७६, उसकी सीमा कही नही १७६, उसके विना धर्म नही १८५, और आत्म-बलिदान २१२, और आध्यात्मिकता १३६, और मनुष्य १७६, और विवाह १७६, द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति ३१३, निवृत्तिमुखी ९-१०, सच्चा १३
त्यागी और तेजस्विता ३१३
'त्राहि माम्' ३०७
त्रिगुणातीतानन्द, स्वामी ३७३ (देखिए सारदा)
'त्रिपुरमदभजन' ३७४
त्रिभुज, उसका तीसरा कोण २७६

थर्ड यूनिटेरियन चर्च २७२
थर्सबी, कुमारी ६५, ३८४, श्रीमती ३७८, ३८८
थियोसॉफिकल सोसायटी ३४६-४७
थियोसॉफिस्ट ३०७, ३३६, ३६९, ३७१
थेरेसा, सत २७५

दभ और आडम्बर २७१
दक्षिणामूर्तिस्तोत्रम् १९९
दक्षिणी ध्रुव ३०१
दण्ड और पुरस्कार ९८, २७५
'दम', उसका अर्थ १००
दया ५१, एक हेतु १६३, और नि स्वार्थपरता के कार्यरूप मे ३५, दैवी सम्पत्ति ३५, मौलिक वस्तु नही १८२
दर्शन, उच्चतम कविता २२८, और धर्म ६१, -प्रणाली १११, प्राच्य ३, शास्त्र ६०, ११७, २१७, सार्वभौमिक १४१

दमयन्ती १२
दया और क्लेश ७४
दाँते ८५
दार्शनिक ९१ भाषा १४१
दादू २९१
दास १३ उसमें सच्चा प्रेम संभव नहीं १३ मद् कार्य और उसका बोध १५
'दासों का दास' ११
दिव्य प्रकाश उसका अनायास आविर्भाव १९
'दिव्य प्रेम' २१४ (पा टि )
दिव्य प्रेरणा २११ (देखिए अन्तःस्फुरण)
दीनता और समदर्शित्व १७८
दीवान जी १२८ साहब १ २, १२५ (देखिए देसाई, हरिदास विहारीदास)
दुःख उसका उद्गम ११७ उसका कारण ५१ और कष्ट १५५ और क्रोध और भ्रम ११७ और मृत्यु २५९
'दुःखशून्य सुख' ७८
दुनिया बच्चों का खिलवाड़ नहीं १ ९
दुराग्रह ५४ २१४ एक प्रकार का रोग २१५ और दृष्टान्त ५४ और मतान्धता ५१ पूर्ण सुधार २१५ प्रेम का विरोधी ५५
दुराग्रही कई प्रकार के २१४-१५
दुराचार ११५
दुर्बलता साधुता तथा सबलता ९१
दुर्भावना उसके कारण अत्याचार ४
'दूकानदारी धर्म' २१८
देवदागण उच्च अवस्थाप्राप्त विगत मानव २११
देव-मानव ९ १५२ २४७
देवयान मार्ग १ ५ द्वारा प्राप्त गति श्रेष्ठ १५९ (पा टि )
देवालय १८
देश १७५ उसके लिए और की आवश्यकता १२१ -काल और परिणाम[1] ११९
देश-काल-निमित्त ९९ ७१ ११९ १७४
देशभक्त तथा पक्षपाती १४१
देसाई, हरिदास विहारीदास १ २ १२५, १२८
देह और प्राण १७१
दैवी उन्माद २५७ कार्य ३२ तत्त्व २८५ संपद् २९५
द्यूत-क्रीड़ा २२
द्वन्द्व और संघर्ष १४
द्विवेदी श्री १२१
द्वेष और कठिनाई २२१
द्वैत दुनिया में ११८ भाव ११८
द्वैतवाद ११७ २२८ २९९
द्वैतवादी उसका कथन २५८ धर्म २ ५ स्वर २१७

धन और सौन्दर्य २११
धर्म ११२ २१२, २१८-२१ १ ४ २२१ ११८ अनुभूति की वस्तु १५९ आजकल का २७४ इस्लाम ७ ११६ ईश्वर के विधान की शक्ति १११ ईसाई ४७ ८९ १२६, १२८ १४१ १७१ १७९ २१५, १४७ ११८, ३८ १८९ उदार, उसकी सृष्टि तथा अभ्युदय काल ११८ उसका उच्चतम स्वरूप १७१ उसका लक्ष्य एक ११९ उनकी उत्पत्ति और अवनति १२७ उसका अर्थ २४८ उसका आरम्भ २८ १७९ उसका उद्देश्य २९९ उसका कार्य १५ उसका क्षेत्र १ ९ उसका चरम आदर्श १११ उसका द्वार १९ उसका पतन २ १ उसका पुस्तक द्वारा विवेचन २७१ उसका बाहरी ढोंग १८ उसका यथार्थ

तत्त्व ३१८, उसका सार २५८, उसका स्थूल भाग १४१, उसकी उपलब्धि और आरम्भ १३६, उसकी ओर झुकाव १०९, उसकी पकड १३४, उसकी परिणति, भारत मे २७६, उसकी परिभाषा १५९, उसकी पूर्व तैयारियाँ २५१, उसकी रूपरेखा १५०, उसकी वर्तमान अवस्था १५०, २५०, उसकी शक्ति और मनुष्य १४०, उसकी शिशुशालाएँ २४८, उसकी सच्चाई ३४०, उसके उद्देश्य की सूक्ष्मता और क्रियाशीलता १३९, उसके ऊपर उत्तरदायित्व १३३, उसके क्षुद्रतम भेद, शाब्दिक २६०, उसके चरम लक्ष्य-प्राप्ति के साधन का नाम १६९, उसके नाम पर दूकानदारी वृत्ति ३८०, उसके पास सदेश २६५, उसके प्रचारक होने का इच्छुक ४२, उसके प्रतीक की उत्पत्ति, स्वाभाविक रूप से ४७, उसके बाह्य रूप २२५, उसके सबध मे असाधारण बात १३४, उसके सबध मे सार्वभौमिक लक्षण १४४, उसके समन्वय की चेष्टा, व्यर्थ १४७, उसके हीनतम रूप २५९, उसमे नामोपासना की कल्पना २४६, उसमे प्रबल जीवनी-शक्ति १२५, उसमे मुक्ति-लाभ की चेष्टा ८२, उसमे विद्वत्ता का स्थान नही २२८, उससे प्राप्त तीव्रतम प्रेम और ज्ञान १३९, उससे समाज का क्या लाभ २७०, और आत्मा १२९, और जापानी फूलदान २५०, और परमेश्वर १०१, और पात्र का आकार १४७, और मुक्ति १९७, और योग का रहस्य, व्यक्ति मे २८१, -कार्य १६, -ग्रथ १०६, १२७, १३६, १३८, १६०, १८२, २३७, -चिन्तन और जीवन का उच्च स्तर १३९, -जगत् १३९, जरथुष्ट्र १२६, -जीवन, उसका रहस्य १२३, ज्ञात भाव से अग्रसर १३१, तथा कारण १४७, द्वारा कठोर शत्रुता और विद्वेष १२५, द्वारा घृणा और विद्वेष १२५, द्वारा दातव्य चिकित्सालय-स्थापना १२५, द्वारा भयकरता की सृष्टि १२४, द्वारा रक्त की नदी प्रवाहित १२५, द्वारा शक्ति को मान्यता ४९, ध्वजी १५०, न पथ मे, न विवाद मे २४८, परस्पर पूरक १३०, पवित्रता ही ४२, पारसी का १२६, पाश्चात्य ३१७, पुत्र का ३७, प्रचार १३१, -प्रचार, उसकी रूपरेखा १५१, -प्रचार और प्राच्य १२६, -प्रचारक ५, ९, ६१, १३२, ३४६, प्रत्येक, उनमे तीन भाग १४१, प्रत्येक, उनमे तीन मुख्य बात २४७, प्रत्येक, उसके पीछे आत्मा १२९, प्रत्येक, उसके विभाग ४७, प्राचीन १२६, प्राच्य ३६४, -प्रासाद ७९, -प्रेरणा १३९-४०, -प्रेरणा और मनुष्य-स्वभाव १४०, फैशन रूप मे २५०, बौद्ध ३४६, ब्राह्मण २३७, -भाव ३५९, ३८५, -भित्ति ३३५, मत, उसकी विभिन्नता लाभदायक १७०, मत, सब सत्य १४७, मनुष्य के स्वभाव का अग २७२, -मन्दिर, सार्वभौमिक १२४, -महासभा २३७, ३२६-२७, ३४२, मुसलमान १३४-३६, मुस्लिम २३७, मूल मे सभी समान १७०, यथार्थ १५८, यहूदी १२५, -युद्ध २३, -राज्य १२८, -लाभ २५०, -लाभ, उसे करने की सभावना १३२, विभिन्न, उनमे सामजस्य कठिन १४१, विश्व १४५, विविध और सम्प्रदाय १४०, व्यावहारिक

१७१-७२, १७४-७५ व्याव
हारिक उसकी परिभाषा १७९
व्यावहारिक उसकी व्याख्या १७७-
७८ व्यावहारिक तथा ईसाई
धारणा १८२ -धारण १७१
२ २, २९ -शिक्षा ११९
संन्यास १५५, १११ संसार के
१२१ संसार के सभी सत्य १७७
संस्थापक २४१ सच्चा ११
सच्चा उसका आरम्भ ७१ सत
युगी ८९ सनातन अत्याचार
पीड़ित ११७ -समन्वय-समस्या
१४१ समस्त अंतःअनुभूति
२२८ समस्त महान् जीवित
१२१ -सम्प्रदाय १२५, ११८
१५५ -सम्प्रदाय-समूह १२४ सर्व-
जिक सान्तिकामी १२४ -साधन
१ १ सार्वजनीन ११९, ११२
सार्वभौमिक११११४१ सैद्धान्तिक
उसका क्या अर्थ १७१ सैद्धान्तिक
उसको नाना तरह १८२ स्व
२१ हिन्दू १२६, ११९ १९
२१८ ११७ ११९ (पा टि )
११९ १४८४९ १५१ १८
धर्मपाल १४१ ४७
धर्मशाला २१ १४
धर्मान्ध २१४ उत्तरदायित्वहीन१४१
मानवता के हिमायती ८९ सबसे
निष्कपट १४१
धर्मान्धता १४ एक भयानक
बीमारी १४१ द्वारा दुष्ट बुद्धि
१४१
धर्मालोचना ११४
धर्मोपदेश १९, १२७ १५७ १८
धर्मोपदेशक आचार्य १२
धार्मिक आन्दोलन १८५ उत्साह
२७४ उन्नति ११४ और आध्या
त्मिक उन्नति ११९ कार्य ११९
ग्रन्थ ९७ जीवन ११९, १७
तत्त्व ११७ धारणा २९९
नास्तिक दम्भी २४९ पुरुष १२१
मत-मतान्तर १२१ विचार ४८
१११ विचारधारा २१७ विषय
११८ व्यक्ति २१८, ११२
संघर्ष १४ सम्प्रदाय १८५,
१८९
ध्यान १२१ -अवस्था मन की ९७
उसकी प्राप्ति १८ उसकी प्राप्ति
कर्म द्वारा ८८ उसकी शक्ति १८
उसकी शक्ति से अनिष्ट का निरा-
करण १७९ एकमात्र असल वस्तु
९७ क्या है १८ द्वारा भौतिक
भावना से स्वतन्त्रता १२१ द्वारा
सामर्थ्य १८ बल है १८ सबसे
महत्त्वपूर्ण ९७
ध्येय-प्राप्ति १२२ मन को संयमित
करना २२९
ध्वनि ११
ध्रुव प्रदेश ११४
ध्रुव सत्य ११

नचिकेता १९ ११२ ११
नदी गंगा ११९ १२१ ११९ २९९
११९ फरात १२१
नन्दन वन १२५
'नमोनारायणाय' १८७
नर-ईश्वर २ १
नरक १९, ९९, ११९, २ १ २७२
२११ २५४ २७१ २८१ २८५
१ ०-१ १ १ १२४ -कुण्ड ११
-चित्र ८५
नरकगामी १११
नरसिंह १४२
नरसिंहाचारियर, जी जी ११८
नरेन्द्र ११ ११४ १५४ १११
(देखिए विवेकानन्द स्वामी)
नव अवस्थान ११४
नवद्वीप २११
नाम ७ उसकी उपासना २४१ उसकी
नश्वरता १७९ और देह-मानव

२४७, और वोध अन्योन्याश्रित, २४६, और यश १९५, ३३८, ३४८, ३८७, और यश, उसकी नश्वरता ३७९, और यश, उसकी प्रवल आकाक्षा ३७०, और व्यक्ति २६२, -प्रचार ३४०, -यश ८-९, ६०, ९५, ९८, १८४, ३२३, ३५९, -रूप ४८
नारद २८८, ३८२
नारायण ५२
नारायण, हेमचन्द्र ३२५
नारी, उसका ईश्वर के प्रति प्यार २७३, उसकी प्रकृति २७३, -कवि २०८, कुलटा भी दिव्य माँ १८८, हिन्दू २७३-७४
नासदीयसूक्तम् १६६ (पा० टि०)
'नास्ति' १३
नास्तिक २०२, २५०, २७४, ३५६, धार्मिक २४९
नि स्वार्थ भाव ३४४
नि स्वार्थता, अधिक फलदायी ८, उसकी उपलब्धि, प्रयत्न द्वारा ८४, उसकी महत्तम शिक्षा ४२, और सत्कर्म ८३, शक्ति की महान् अभिव्यक्ति ८, हमारा लक्ष्य ८८
नि स्वार्थपरता, उसका अर्थ ८२, चरम लक्ष्य ८२
'निजत्व' ८३
'नित्यानित्यविवेक' १०५
निदिध्यासन १२३
निन्दा-स्तुति १७
'निम्न अह' ४१
नियम ६९, २२०, उसकी परिभाषा ६९, उसके सर्वव्यापी होने का अर्थ ६९, प्राकृतिक २७२, शब्द का अर्थ ६८, सनातन ६, सासारिक १३२, सामाजिक ३४१, सार्वभौमिक ३३१, सीमाबद्ध जगत् मे सभव ६९
'नियम तत्त्व' ६८
नियाग्रा ३५४
निरजन ३१९, ३५२, ३९१
निराशा, परम सुख ३८३
निराशावादी ५०, ६६, ८५-६, वृत्ति १०४
निर्गुण ईश्वर २१६, पक्ष २१६, सत्ता २१६
निर्वाण ८९
निवृत्ति, उसका अर्थ ६०, उसकी पूर्णता ६०, नैतिकता एव धर्म की नीव ६०, -मार्ग ७१, -मुखी त्याग ९-१०
निष्क्रिय अवस्था १४
नीग्रो ३२९, ३६२
नीति और धर्म ३२६, -शिक्षा ३७
नीतिशास्त्र ८२-३, १११, १२०, २११, २५८, हिन्दू १६
'नीतिसाधन-समिति' ३६४
नेगेन्सन, कर्नल ३४६
'नेति', 'नेति' ७१
नैतिक, ८३, विधान ५९, ८३, शिक्षा ५०, शिक्षा, उसका लक्ष्य ८२
नैतिकता, उसका सार २०६, उसकी एकमात्र परिभाषा ८३
न्याय, उसकी भाषा मे १५२
न्यूटन ४
न्यूयार्क १२८, १८०, २०५, २१०, २४३, २५५, २९८, ३०४-५, ३१८, ३२५, ३३१-३२, ३३८-४१, ३५३, ३६४-६५, ३६९, ३७३, ३७७-७८, ३८१, ३८४, ३८५ (पा० टि०), ३८६, ३८८, ३९०, ३९२, कोषागारस्वरूप ३९४, और भौतिकतावादी ३०७, शहर ३६४, सयुक्त राज्य का मस्तक तथा हाथ ३०४, ससार मे सबसे धनी ३५३, स्टेशन ३६४

पचभौतिक देह १५०
पजाव ३५७, ३६२

पर्यवाप्ति ११४
पतिव्रता स्त्री ४९
पथप्रदर्शक ज्योति ११२
पदार्थ उसके चेतन तत्त्व १९५ जड़ १७७ २५९ १७६ रासायनिक १५२
पद्धति सार्वजनीन १९९
परद्रोह २२
परधर्म-सहिष्णुता ११८
परमहंस १८७ रामकृष्ण १५२
परमहंस देव १ १ १५४ १८१ (देखिए रामकृष्ण)
परमात्मा ४४ ९८ १ ७ ११ १५१ १५८ १९९ २१५ २५ २१८ १४६ १४९ १७०-७१ १७६, १७९ १८१ और जीवात्मा १६७ गतिमान करने वाली शक्ति २५५ जगत् प्रभु १५८
परमानन्द २५१
परमेश्वर ८६, १ ७ ११ ११९ ११९ १२२, १६४ १९८ २४६ २४८ ४९, २५१-५४ उसका स्थूल प्रतीक २४९ प्राप्ति १९१ २४७ २५ वास्तविक सत्ता १९७ सगुण २४१ सर्वज्ञ विद्य मान २४७ सर्वव्यापी २६५ सर्वशक्तिमान २५२ (देखिए ईश्वर)
परचेतना २६२
परस्पर भूमि का नियम ११
'परीक्ष चिकित्सा' १८४
परोपकार १ ९, ११६ उसकी इच्छा ५१ दान और दाता ५१ पुण्य है १९ यही जीवन १११
पवहारी बाबा ४५ (पा टि ) २७८ उनमें दिव्य भाव ७९
पवित्र पुरुष २४१ पुस्तक २४४ मैत्री २ २
पवित्रता ५८ मनस्वर १४४ एवं अध्यवसाय १५ और सतीत्व ४२ सर्वप्रथम धर्म ४२
पशुत्व-भाव ७७
पश्चिम उसका व्यवसाय-वाणिज्य २१९ और पूर्व में अन्तर २१९ वहाँ धर्म जाना फ़ैशन २१९ वहाँ के लोग और व्यवसाय २१९
पश्चिमी ईसाई २१८ देश ४ राष्ट्र और ईश्वर प्रेम का आधार २७४ राष्ट्र और जोकर की पूजा २७४ रिवाज १७ विचारधारा २१८
पसाडेना १२४
पाँच पाण्डव ३६
पाप ८, १६, ७४ ११२ ६१ १९८ २४४ २५९ २११ १९१ और पापी तथा दुराग्रह ५५ दूर नहीं जाता १९ भय ही सबसे बड़ा १७९ -मोचन १ ७
पापी तथा पुण्यात्मा १९४
पारसी १२६ २ ५
पारितोषिक और दण्ड २५४
पार्थिव उसकी परिभाषा २१ जीवन २१ वस्तु २११
पार्वती १९
पाली भाषा ११९
पाशविक प्रवृत्तियाँ ४२ भाव ४२
पाश्चात्य और प्राच्य के आदर्श ११७ देश २४९ १ ९, ११७ देश उनकी चाह ११८ देश उसका प्रभाव अन्य ९१ देश और सामाजिक तथा धार्मिक उन्नति ११७ देशवासी ११ १२६ देशवासी १ ४ देशवासी उनकी सफलता का रहस्य १२८ देश वहाँ अद्भुत चरित्र और शक्ति का विकास १ ८ देश वहाँ की स्त्रियों के गुण १ ८ देश वहाँ के लोग और 'भोग १ ८ धर्म ११७ भाषा १०२ महाशक्ति का विकास १ ८ राष्ट्र ११२ विचार ११६ विवाह प्रथा १ ९ संस्कृति १ १
'पिंगला' ११६

'पिता' २७५
पित्तू ३२१
पिशाच विद्या ३०६
पीक, श्रीमती ३८७-८८
पीर-पूजा २२५
'पीलिया रोग' १६५
पुण्य ८, १६२, अनश्वर है ३४४
पुनरावर्तन की प्रवृत्ति ६८
पुरस्कार, अथवा दण्ड ७८, और दण्ड २५२-५३
पुराण २८०, पुरुष १६२-६३, -साहित्य १४१
पुरुष तथा नारी, दोनो आवश्यक ३०१, मुक्त, उसका लक्षण ३०९ (पा० टि०)
पुरुषार्थी १५१
पुरोहित ८, १५१, और पैग़म्बर मे अन्तर २२४, कट्टरपथी, उसका कारण १३१, -प्रपच ३३४, ३४५, रुढिवादी शक्ति के प्रतीक २२४
पुस्तक, उसमे जीवत शक्ति नही १९८, -प्रकाशन ३१०
पूजा, उसका अर्थ २८२, २९९, उसका आरम्भ २१५, उसका प्रतीकात्मक रूप २२७, उसके रूप २२६, औपचारिक, एक आवश्यक अवस्था २६८, -पद्धति १४१, -पाठ ३४८, पीर २२५, वृक्ष २२५, सर्प २२५ (देखिए उपासना)
पूजागृह २५२
'पूर्ण जीवन', स्वविरोधात्मक ५९
पूर्णत्व, प्रकृति से ढका १०६, -प्राप्ति ६५
पूर्व, वहाँ धर्म, व्यवसाय २३९, वहाँ धर्म की व्यावहारिकता २३९
पूर्वावस्था, उसकी ओर प्रतिगमन और पतन ९३
पृथ्वी, उसके धर्म और समाधान १२९-३०
पेट्रो ३२५
पेरिस १११
पेरीपेटिक क्लब २३७
पैगम्बर, उनकी दो श्रेणियाँ ८९, शक्ति के प्रतीक २२४
'पैत्रिक धर्म' १४०
पौराणिक, अभिव्यक्ति और भाव २१०, कथा १४७, कहानी १४२, तत्त्व १४१, १४५, १५५, भाग १४१, व्याख्या २०६, सार्वभौमिक १४६
प्यार, उसके साथ भय नही २५३
'प्यू' २३९
प्यूरिटन और मुसलमान १३७
प्रकाश २०६, अशुभ को नही जानता २०८, उसका अस्तित्व ९४, उसकी उपलब्धि ४६, और अधकार १७६, और कम्पन १७८, सबमे है १९६
प्रकृति १०, ५७, ७७, ८८, १०५, २१२, २३१, २४९, २५९, २६४, २६६-६७, २७०, अनुभूत २१०, आसुरी ६०, उसका अन्तिम ध्येय ८३, उसका कथन १८०, उसका धर्म, क्रियाशीलता २१०, उसका भीषण प्रभाव १०३, उसकी चाहना १८०, उसकी विजय, कार्य का प्रतिमान १८२, उसके अस्तित्व का प्रयोजन ३२, उसके इशारो पर व्यक्ति १७९, उसमे साम्यावस्था १२०, उससे सबकी सहायता ६३, उसे विशेपत्व-प्रकाशन की स्वाधीनता ३६७, और जीवात्मा २१७, और वृद्धि २१४, चचल और परिवर्तनशील ३७५, तम, रज, सत्त्व से निर्मित ११, प्रत्येक, उसका अपना मार्ग १८०, वाह्य ५९, लद्दाकू, उसमे रज या क्रियाशीलता ७९, सनातन, और ईश्वर २२०, समस्त, आत्मा के लिए ३२, सम्पूर्ण, उसका चीत्कार १७४, साधु ६०
प्रगति और विगति ७०

प्रचारक उत्साही का दल १७२
प्रचार-कार्य १११ -कार्य और प्राच्य १२१
'प्रतिक्रिया' १०५
प्रतिदान १५
प्रतियोगिता का नियम २७२
प्रतिरोध ११४ और शक्ति का प्रश्न १३
प्रतीक उसका विशेष कारण ४८ उसकी आकर्षण-शक्ति २२७ और अनुष्ठान २७५ और बाह्य अनुष्ठान २४३ और विधि २५१ क्रूस काष्ठीय ४८ क्रॉस पर लटके महापुरुष का ४८ क्रूस जीवन पर प्रभुत्व २२७ क्रूस सुपरिचित २२९ हठिकाण्य मात्र नहीं ४८ अर्थ ४८ विधान उसका निर्माण कृत्रिम उपाय से नहीं ४८ शब्द ४८
प्रतीकवाद २२९
प्रतीकोपासना २४४
प्रत्यक्षानुभूति १ ९
प्रत्ययवाद ११९
'प्रबुद्ध भारत' १८९
प्रभु ७५, ११४ २१६ २११ १ ११९ १३८, ११८, ११४ अन्तर्यामी ११५ वर्षा ३० चिन्मय ११५ प्रेममय २५२ सतत कर्मशील विधाता ८ सत्यरूपी २७९ सर्वशक्तिमान ८
प्रमत्त-काम १५
प्रभाव चरित्र का ११९ पवित्रता का ११९ सम्पूर्ण व्यक्तित्व का ११९
प्रयोगशाला १५१
प्रवर ८९ ७
प्रवृत्ति ९ उसका अर्थ ९ और निवृत्ति ९ और पद्धति ११९ -मार्ग ७२
प्राचीन व्यवस्थान १ ८
प्राच्य उसकी अवनति का कारण १२१ और पाश्चात्य के आदर्श ११७ जाति उसका चरित्र १७२ ज्ञान १५ देश और धर्म १२१ ११७ ११४ धर्म उसके गुण ११८ लोग उनका काम १२१ समाज ११७
प्राण उसका महत्त्व ११७ उसकी अभिव्यक्ति ११९ उसकी क्रिया ११७ उसके सर्वोच्च स्पन्दन का कार्य ११७ स्नायु-शक्ति ११७ द्वारा ईडा-पिंगला का कार्य ११७ मस्तिष्क द्वारा विचार-रूप में परिणत ११७ विद्युत् शक्ति ११७
प्राणायाम ९७ १२२, ११५ १७ उसका महत्त्व उद्देश्य ११९
प्रार्थना प्रगति के प्रथम साधन २९२ -स्तुति १३७
प्रीति परम साध्य ११ (पा टि )
प्रेतोपासना १ ७
प्रेम अद्वैत २७६ असीम २५९ आकर्षक मानवीय २५९ इष्ट को देवता है २७६ ईश्वर की स्वामी धारा २७ ईश्वर है २८१ उच्चतम २९८, २७९ उस पर आधारित पद्धति २७९ उसका अस्तित्व है २५१ उसका आदर्श और प्रेमी २५४ उसका आरम्भ २८८ उसका उन्माद २९१ उसका कथन २८५ उसका पहला चिह्न २७९ उसका प्रकाश २५९ उसका प्रतिदान १५९ उसका प्रतीक त्रिकोण २७९ उसका महत्त्व २८१ उसका स्वभाव २९१ ९२ उसकी अनन्त महिमा २८५ उसकी अभिव्यक्ति सम्भव नहीं २७७ उसकी असाध्य-साधिनी शक्ति १२१ उसकी पहचान २८५ उसकी पाँच अवस्थाएँ २९२ उसकी प्रवृत्ति २८२ उसकी महानता और मुक्ति २१३ उसकी विविध अभिव्यक्तियाँ २५९ उसकी

शक्ति द्वारा इन्द्रिय परिष्कृत २७०, उसके आरभिक क्षण २८५, उसके त्रिकोण का कोण २८०, उसके द्वारा उपासना २६८, २७९, उसके लिए ईश्वर-पूजा मे विश्वास २३९, उसके लिए प्रेम २६२, २६९-७०, उसके सब आदर्श २८६, उसमे इन्द्रियाँ तीव्र २७७, एकमात्र उपासना ३३१, एव श्रद्धा ३५९, और अनुभव २७०, और उपासना २६२, और गूंगा मनुष्य २९०, और ज्ञान २६६, २८१, और दूकानदारी २५२, और भक्ति २४३, और भौतिक भावना २६९, और शक्तिसमूह १५४, और सहानुभूति ३३१, कभी निष्फल नही ३२३, कभी माँगता नही २७९, केवल प्रेम के लिए २७६, गहनतम २८६, गुण और अवस्था के अनुसार २९१, चिरन्तन २१५, दिव्य मिलन मे २६२, दैवी २७५, निस्वार्थ २१०, ३३०, निम्नतम २७७, पति और पत्नी का २६९, पारस्परिक २७७, प्रश्न नही करता २७९, प्रेम तथा प्रेमास्पद २५७, बड़ा सपना १०२, बन्धनरहित ३०१, बिना स्वाधीनता के नही ३३, भय नही जानता २७७, भिखारी नही २७९, भीख नही माँगता २७७, -मय पुरुष, उसकी क्रिया १०७, महान् है १७२, मातृवत २६९, मानव २७०, मानव, अन्योन्याश्रित २७०, मानव-सबध मे दुर्लभ २७०, मानवीय २५७, २७७, २८८, मित्र का २६९, यथार्थ ३३, वही परमेश्वर २५५, वही प्रेम का उपहार २५७, वही सर्वोपरि २९२, वास्तविक, उसका आरम्भ २६२, विश्वव्यापी १६८, 'शात' २६९, शान्तिमय २७५, शाश्वत १८४, शुद्ध, उसका उद्देश्य नही २६२, सच्चा १६८, २७३, २७७, सच्चा, उसकी प्रतिक्रिया ३४, सच्चा, उससे अनासक्ति ३४, सच्चा और सहानुभूति २३५, सदा इष्ट २७७, सदा देता है २५२, २७९, सदा ही सर्वोच्च आदर्श २५३, सर्वोच्च और अनुभव २६९, सर्वोत्तम अनुभूति २९०, सर्वोपरि २८९, २९१, सात, अनत तत्त्व २३२-३३, -भावना ३४, स्वय अनादि, अनन्त बलिदान २८५, स्वय ईश्वर २८०

प्रेमी, और प्रेमी पात्र २६५, कल्पना से अतीत २५४

प्रेय-मार्ग १६२

प्रेरणा, उच्च प्रेम की १३, दिव्य २३६, -शक्ति ८८, सर्वोत्कृष्ट ५१, स्वत स्फूर्त ३२७

प्रेसबिटेरियन १२८, गिरजा ३४७

प्रोटेस्टेंट ईसाई और बाह्य अनुष्ठान २४३, और कैथोलिक चर्च २२७, और गिरजाघर २४४, पथवाले २४४

प्रोटेस्टेंटवाद २२७, २७८

प्लीमाथ ३४६

प्लेग २९९

फरात १२६

फर्स्ट यूनिटेरियन चर्च २१२

फर्स्ट स्ट्रीट ३२४

फार्मर, कुमारी ३४१, ३६४, ३८२, ३८४, ३८७

फिलाडेलफिया ३१८, ३२१, ३२४

फिलिपाइनवासी १२८

फिलिप्स, कुमारी २९७, ३६५

फिज़िकल २९८

'फैरिसी' १७०

फ्रांसिस लेगेट, श्री १९
फ्रांसीसी १११ १२
फ्रेडरिक डगलस १२१

बंगाल १८९ ११ १५२, १६२, १६६, १७४ १८१
बंगाली २९८ कहावत १ १
बनर्जी कालीचरण ११५
बन्धन १२-५ ७१ २, ८७ ८९, १ ६, १ १ १७४ २५१ उससे मुक्त होने का उपाय ७१ रूपी चौखा ७ सामाजिक ११७
बपतिस्मा उसका अर्थ १९७ सच्चा १९८
बम्बई २११, १२ १२८ १४६, १६६
बरोज डॉ १४२ १६१
बल और दया १५
बलराम बाबू १५१
'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' १४६
बहुत्व में एकत्व १६ (पा टि )
बहुविवाह ११२
बाइबेन्स्टाइन कथा २११
बाइबिल १२७ ११८, १७२ १९८ २२४ २४४ २४१ २७१-७४
बाबूराम ११६ १४ ११९
बालक जन्मजात-आशावादी २०५ युक १५ १ युक उनकी परीक्षा और सफलता ११
बालाजी १ ४ जी १७१
बाल्टिमोर ११८ २१ १२४
बाह्य अनुष्ठान २४४ अनुष्ठान उसके अन्तराल में कल्पना २४१ उपचार २४१ जगत् २५४ रूप और अनुष्ठान १९८ वस्तु, उसमें उद्दीपन २५४
बिशप १९१
बुद्ध ६, ८ ११ ७८ ९, १२२ ११८ १७८, २४६, १२४ आदर्श कर्मयोगी ९ और ईसा ७ और कर्मयोग की शिक्षा ८९ ज्ञानी ११ भगवान् ११२ मत १७९ महान् दार्शनिक ९ सर्वप्रथम सुधारक १० सामंजस्य-भाव के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण ९
बुद्धि अन्त स्फुरण नहीं १ ७ उसकी अन्तिम गति १ ८ उससे प्राप्त सुख और इन्द्रिय १७५ और विद्या १ ७ तर्क के क्षेत्र में १ १ मनुष्य में १५२ -शक्ति १५२ सुसंस्कृत और परिणाम १ ८
'बुद्धि से अतीत शान्ति' ७१
बुल श्रीमती ११४ १२१ १४१ ११४ १७८-८ १८२, १८६ १८८-८९, ११२ (देखिए ओलि बुल श्रीमती)
बृहदारण्यकोपनिषद् २९५ (पा टि ) २११ (पा० टि )
बेकन स्ट्रीट २११ १७ ११४
बेबिलोनियन २ ५
बेल कुमारी १७७
बेल्वेड्यूर होटल २११ ११ ११४
बैकुंठनाथ सान्याल १८१
बैग्ली श्रीमती २१५
बैटल स्ट्रीट १४
बोस्टन १ ४ २११ १८ ११४ १२९, ११९ नगर १८४ 'ब्राह्मणों का शहर' १ ४ विद्या-चर्चा का प्रधान स्थान १ ४
'बोस्टन ट्रान्सक्रिप्ट' २१५
बौद्ध ७ १२६, ११८ धर्म ११९ जाति १११ धर्म उसके नीति तत्त्व १४१
बौद्धिक आनन्द उसकी व्याख्या १७५ ज्ञान १९५ दृष्टिकोण २२१ विकास २४५ व्यायाम १ ९ सहायता २८ ९
ब्रह्म ११ ११२, १८८ २११ १७ २९२ -जिज्ञासा १ ९ -ज्ञान १७ निर्गुण २५८ -पद १९९

परम १७४, पूर्ण १६७, सगुण २५८-५९, सर्वव्यापी २१६
ब्रह्मचर्य १६, ३०७
ब्रह्मचारी ३३७
ब्रह्मसूत्र ११० (पा० टि०)
ब्रह्मा-विष्णु ३१३ (पा० टि०)
ब्रह्माण्ड ७०, १६०, १७३, १९४-९५, २१६, २६६, २७८, २८२, २८५, उसका आधार २२०, उसका कारण २२०, उसका सर्जक २२०, उसके धारणकर्ता २६३, पिता का राज्य २६७
ब्राह्मण २०९, ३०३, उपदेशक २३७, धर्म २३७, धर्मग्रथ २३७, निर्धन ३६
ब्राह्म समाजी २९८
ब्रुकलिन ३६४-६५, ३७५, ३७७

भक्त ६१, २८३, ३५६, उसके साथ भगवान् का योग १५१, -सन्यासी, उसकी परिभाषा २८८
भक्ति २२, २५९, ३०१, ३४०, ईश्वर के प्रति अनुराग २८७, उसका मार्ग २६२, २९१, उसका मुल्य कारण २८९, उसका स्वरूप अनिर्वचनीय २९०, उसकी प्राप्ति की आवश्यक वातें २९२, उसके इच्छुक की पहचान २९०, एक उच्चतर वस्तु २५९, और उपासना २४३, और ज्ञान ६१, ३६५, कर्म से ऊँची २८८, गुरु मे ३४९, द्वारा इच्छा का तिरोभाव २८७, द्वारा मनुष्य अमर और सतुष्ट २८७, द्वारा योग २६४, द्वारा हानि नही २९१, परा २५६, प्रगाढ २५७, प्रेम का अमृत २८७, मार्ग ८१, सबधी आवश्यक वातें २८९, -सम्प्रदाय १४९, साधन और साध्य, दोनो २८८, स्वय अपना फल २८८
भक्तियोग ६७, १५५-५६, १६९, २४१, २६२, उसकी शिक्षा १५६
भगवत्प्राप्ति ९४
भगवत्प्रेम ४२
भगवद्गीता १३, २९, ३९, ८९
भगवद्भावना १७०
भगवदवतार ३१३ (पा० टि०)
भगवदाराधना १५४
भगवान् ७५-६, ७९, ९४, १०८, १२८, १३२-३३, १३६-३८, १५१, १५८, १६९-७०, १७२, १७८, १८५, २५६-५७, २५९, २६२, ३२३, ३४८, ३५३, ३६५, ३६९-७०, ३७४, ३७६, ३८७, ३९४, आत्मा की आत्मा १५७, उनकी ओर ले जानेवाले मार्ग १७०, उसका विराट् स्वरूप २९९, जगत् के पिता १५७, नारायण २९९, पथप्रदर्शक १५७, पालक १५५, प्राणो के प्राण १५७, प्रेममय १४९, माता १५७, सृष्टिकर्ता १५७ (देखिए ईश्वर)
भय, उन्नति मे ईर्ष्या का ३८३, और लाभ २११, गुण से खल का ३८३, ज्ञान रहने से अज्ञान का ३८३, दुर्बलता का चिह्न २४, धन से दारिद्र्य का ३८३, रूप मे बुढापे का ३८३, शरीर से मृत्यु का ३८३
भर्तृहरि ३८१
भलाई, और बुराई सापेक्षिक शब्द २१८, दूसरे की ३०० (देखिए शुभ)
भवनाथ ३६३
भवसागर १४९
'भागवत' ३७४
भारत १६, २५, ४७, ७८, ९६, १००-२, १११, ११३-१७, १२६, १३२, १५०, २१०, २२२, २२७, २३४, २३७, २३९-४०, २७४-७५, २९५, २९७, ३००-१, ३०३, ३१४, ३१६-२०, ३२३-२९, ३४२-४५,

१४७ १४९-५ १६६ १७०-७२, १७४ १८२ १८७ १८९ १९२ ९३ उसका उत्थान ३१७ उसका धर्म और यूरोपीय समाज ११४ उसका भविष्य सद्भावित पर ३११ उसकी लोकोक्ति ११ उसके अध:पतन का कारण ११७ उसके उठने के सुयोग ११७ उसके महान् आदर्श ११६ उसमें एक कहावत ८५ उसमें त्याग-भाव का स्पष्टीकरण १७ उसमें धर्म के प्रति सम्मान १ १ उसमें पौराणिक अभिव्यक्ति का दबाव २१ उसमें शैतान की धारणा नहीं २ ७ चिरकाल से दुःख का भोक्ता ११७ सभ्य ११४ यहाँ अंधविश्वास २३९ यहाँ अतिथि का महत्त्व ११ यहाँ के गरीब १२ यहाँ के नौ-जवान की प्रकृति और संयम ११४ यहाँ धर्म की परिणति २७१ यहाँ माँ सबसे ऊपर २१ (देखिए भारतवर्ष)
भारतवर्ष १८ ४५, ९६, १२१ १४७ २५६, ३११ ३२२, ३३४ उसकी अवनति का प्रधान कारण ३११ धर्मप्रवण या अन्तर्मुख ११७ यहाँ की उदारतोदी १७१
भारतवासी ११२
भारतीय आदर्श २२२ किसान २१९ दर्शन १८ मजदूर २२० भाषा २७७ मन ९१ वस्तु १७५ संत २७५ समाचारपत्र १४१ सम्राट् २७९ हिन्दू २९८
भाव अनासक्त १५५ ईश्वरीय ९१ और कवि ११७ और वास्तविक कार्य २१५ दीन-हीन एक बीमारी १ ९ भावनीय १३१ पुरुष ७९ सांसारिक १२ साधु ९१ सार्वजनिक ११ सार्वभौमिक १४७ स्वाधीन ७२
भावुक उसका आदर्श १४९
भाषा अंग्रेजी तथा वेदीय १७२ आर्य संस्कृत ९९ आलंकारिक १२१ पाली ११९ भारतीय २७७ मनोवैज्ञानिक ९
भाष्य और दर्शन ३११
भिक्षाटन २७९
भुक्ति-मुक्ति १ १
भूगोल २५२
मूर्तिपासना १४७
'भेदभावहीन प्रेम' २७१
भोक्ता उसकी परिभाषा १६३
भोग ३ ८ उसकी भावना के साथ स्वार्थ ७४ और आनन्दमय जीवन १६२ और प्रकृति १७९ क्षण भंगुर, दुनिया के १६८ -विलास १५१
भौतिक आकर्षण १४ आवश्यकता २८ इच्छा २३२ क्रिया ९७ जड़-वस्तु १६७ तत्त्व २३२ पर माणु ८९ प्रगति ९१ भावना और प्रेम २९९ विज्ञान ५१ ११६ १९१ शास्त्र १२९ शास्त्री १५ सभ्यता ११४
भौतिकवाद १७२
भौतिकवादी १७७
भ्रातृ-प्रेम १२९

मोक्ष चैतन्य शब्द के दो भिन्न अर्थ २ ४ -लाभ २४१ तांत्रिक २ ४ -साक्षी २ ४
मजदूर, अंग्रेज ११३ जर्मन ११३
मजूमदार १५८
मणि अय्यर ११९ १८५
मत-प्रवर्तक १२७
मदर चर्च २१६ २२०-२१ १२६ १४१ १७७
मदर टेम्पल १४१
मद्रास २१६ २१७-१८ ११ १४२ १४६ १४८-५ १५२, १५६

३५७, ३५९, ३६३, ३६६, ३७२, -वाले ३११, ३१३,-वासी ३२२
मद्रासी, युवक ३८६, लोग २९८, शिष्य ३३२
मधुकरी की प्रथा १८६
मन सयोग, उसका अर्थ १५१
मन, अचेतन का नियत्रण १२१, उसका लक्ष्य २३२, उसका सूक्ष्म रूप २६७, उसकी अभिव्यक्ति ५, उसकी क्रिया, वाह्य तथा आन्तर ९९, उसकी वहिर्मुखी गति ९, उसके कई स्तर १३७, एक इन्द्रिय ३०, एक झील के समान १८०, और अशुभ विचार ३१, और इन्द्रिय १००, और घात-प्रतिघात ४, और प्रवचना १९४, और प्राण से काम ३९२, और सस्कार ३१, १४९, चेतन ही अचेतन का कारण १२१, तथा तन का नियत्रण और प्रकृति १८२, वँधा हुआ ५६, वहुत चचल १८०, प्रत्येक, उसका अपना शरीर २६७ प्रभाव तथा तनाव ५६, विचारशील १६७, समष्टि-मन का अश १६७, सूक्ष्म स्तर से वना २६७
मनन ६६-७
मनरो स्ट्रीट २७२
मनस्तत्त्व-विश्लेषण १५०
मनु १८६, ३७९, उनका मत ३८३
मनुदेव २०६, २१०
मनुष्य, अधिकाश नास्तिक २४९, अशुभ से ऊँचे १९४, आत्मा की शक्ति द्वारा विजयी १८२, आदर्श, उद्देश्य की प्रतिमूर्तिस्वरूप १३५, इन्द्रियलोलुप १७२, ईश्वर-प्रेम का आकाक्षी २६९, ईश्वर-प्रेम का इच्छुक २६९, उनका धर्म सवधी भ्रम २४५, उसका अतिम लक्ष्य ३, उसका अपना आदर्श १५, उसका अपना विश्वास और ईश्वर १३, उसका आश्रयी स्वभाव और दुःख १८१, उसका कर्तव्य १२, १५-६, ३९, १४८, उसका कर्तव्य, अन्याय का प्रतिकार १४, उसका गुण और अवस्था ११२, उसका चरित्र और दुःख-क्लेश २९, उसका चरित्र, सस्कार की समष्टि ३०, उसका दृष्टिकोण, नियमित ३९, उसका दृष्टिक्षेत्र २००, उसका ध्येय ८८, उसका प्रकृत स्वभाव १६९, उसका प्रतिरोध और पाप १३, उसका प्रतिरोध न करने का कारण १३, उसका प्रेम, आरोपित २७०, उसका मन और शरीर २६७, उसका मूलमत्र १३८, उसका लक्ष्य २६७, उसका विकास, स्वभावानुसार १६९, उसका विश्वास और ईश्वर २७१, उसका सच्चा स्वरूप ११८-१९, उसका सत्य से सत्य मे गमन १३०, उसका सासारिक भाव ७२, उसका स्वभाव और शारीरिक सहायता २९, उसका स्वरूप ७३, उसकी अच्छाई का कारण १२०, उसकी अमरता ११८, १६५, उसकी आत्मा और शक्ति ६४, उसकी आध्यात्मिक उन्नति का रूप १४८, उसकी इच्छा-शक्ति का प्रकाश ६, उसकी इन्द्रिय-भोग की लालसा तथा ईश्वर २०१, उसकी उन्नति का उपाय ४३, उसकी उपासना २३२, उसकी गुलामी और स्वतन्त्रता की इच्छा १०५, उसकी जन्मजात-प्रवृत्ति २९, उसकी दृष्टि और ससार २५४, उसकी देह सवधी मान्यता ३१२(पा० टि०), उसकी प्रकृति ४९, २२६, उसकी प्रकृति के अनुसार प्रवृत्ति २६४, उसकी प्रज्ञा १०७, उसकी प्रथम महान् साधना ९७, उसकी

प्रकृति के अनुसार विभाजन ८१ उसकी भूख १३ उसकी मुक्ति २११ उसकी शक्ति की उच्चतम अभिव्यक्ति १४ उसकी सत्य ढूंढने की प्रक्रिया १८४ उसकी स्वार्थपरता और एकांगीपन २१४ उसके अध्ययन का विषय ११ उसके क्लेश का अंत २९ उसके चरित्र का नियमन और वस्तु १५ उसके निर्गुण ग्रहण करने का प्रयत्न २४१ उसके लिए महान् की पूजा २७२ उसके साथ मनुष्य-जाति का योग १५१ उसके स्वभाव का अंग धर्म २७२ उसमें ईश्वर-प्राप्ति की पिपासा २४८ उसमें ईर्ष्या का प्रवेश २७१ उसमें एकत्व ही सृष्टि विधान १६ उसमें पुष्ट बुद्धि १४१ उसमें दैवी सम्भाव २५७ उसमें दो प्रकार की वृत्ति १ ४ उसमें धर्म और परमेश्वर के प्रति श्रद्धा १ १ उसमें भेद का कारण ८७ उसमें मुक्तिसम्बन्धी विश्वास २११ उसमें विश्व विद्यमान २७८ उसमें सबसे निष्कपट धर्मात्मा १४१ उसे तीन वस्तुओं की जरूरत २७१, एक असीम वृत्त ११९ और अन्तःप्रेरणा १८७ और अपनी प्रकृति तथा आदर्श २६५ और अधम १९४ और आत्म-चेतना ११९ और आभास १८१ और ईश्वर सम्बन्धी विचार २१२ और कर्म न करने का कारण १५५ और कर्मशीलता १५५ और चेतना २२५ और जीवन के विभिन्न भाव २५७ और धर्म १२३ और धर्म प्रेरणा की शक्ति १४ और परमेश्वर १ ४ और पशु २११ १२, २९९ और मानवरूप में परमेश्वर-पूजा २४८ और विचार का अधिकारानुसार २१२ और विभिन्न प्रेरणा ७ और शक्ति ७ गूंगा और प्रेम २१० -जाति १ १४५ -जाति उसका वर्तमान इतिहास १२७ -जीवन ७२, ७१ ज्ञानी १९ तथा अस्वाभाविक संघर्ष और घृणा ११ तथा कर्मफल और वर्तमान कर्म ७ तथा कर्मशीलता १४ तथा चिन्तन १२८ तथा प्रतीक और अनुष्ठान २७१ दुर्बल १२१ दुर्बल और आत्मा १ १ दो का परिणाम २ १ द्वारा धर्म का स्वीकार्य २११ नाड़ी प्रधान २ १ निम्नतम १५१ पवित्रतम ८९ प्रकृति का गुलाम १ ५ प्रत्येक उसके आदर्श की भिन्नता १९ भविष्य का २१५ भोजी व्याघ्र और असभ्य जंगली १२९ भौतिकपरायण २८१ मनुष्य में भेद ११ मुक्तिवादी १३७ विज्ञानवेत्ता १५४ -शिशु, विरोधाभासी २७ संबंधी शिक्षा न २१४ सबसे सुखी कौन १ २ सुख-दुःख की समष्टि मात्र ९ स्वयं से पीड़ित १ १

'मनुष्य-शिशु' २७

मनुष्यत्व उसका अमूर्त भाव १४४ उसकी विडम्बना १ ४

मनुसंहिता २ (पा टि )

मनोविज्ञान ६८ ११४ १५ २८ यूरोपीय १९ व्यावहारिक १२ सच्चा १२१

'ममी' १४६ (पा टि )

मरमन (mormon) ११२

महा मा उनकी संपत्ति कठिन २८९ देदीप्यमान ज्योति १९९

महादेव १ ९

महान् आकृति ७१ उसकी परिभाषा ५

'महामता' ११२

महानिर्वाण तंत्र १९

महापुरुष उनकी शिक्षा तथा शिष्य १५१; उन्हें विचार-शक्ति ज्ञान

७९, और भगवान् १४९, द्वारा उदात्त भाव का संग्रह ७९, शान्त, अमुखर और अज्ञात ७९, शुद्ध सात्त्विक ७८, सर्वश्रेष्ठ ७८
महाभारत ४४
महामाया ३५६
महावैराग्य ३०६
महाशक्ति ३५६
महिम चक्रवर्ती ३६१
माँ ३८१, उसकी छाया २०९, उसकी लीला २०८, २१०, उसके गुण २०८, उसके प्रति समर्पण और शान्ति २११, उसके लीला-सखा २०८, गोलाप ३०१, ३०९, ३११, गौरी ३०१, ३०९-१०, ३६१, दु खो मे दु ख २०९, योगेन ३०१, ३६१, विश्व की निष्पक्ष शक्ति २१०, सारा २९७, सुखो का सुख २०९
माता, उसका कर्तव्य ४२
माता जी ३१० (देखिए सारदा देवी)
मातृदेवी, उसकी भावना से प्रेम-प्रारभ २६२
मातृ-पूजा उच्चतम वर्ग मे प्रचलित २१०, उसका उद्देश्य २०६, एक विशिष्ट दर्शन २१०, -विचार का जन्म २१०
मादक-द्रव्य-निपेध २३५
मानव-जाति, उसका चरम लक्ष्य ३, -प्रकृति २१४, -प्रेम मे पाँच अवस्था २६९, -प्रेम, सदा अन्योन्याश्रित २७०, मन के स्तर और प्रकार १३३, वास्तविक ५, श्रेणीवद्ध सगठन ११, -समाज, -स्वभाव, उसकी कमजोरी ४१ (देखिए मनुष्य)
'मानव-निर्मायिक धर्म' २२८
मानवात्मा ८१, अनन्त १७३
माया ११८, २१५-१६, २५८, २९०, ३७५
मार्ग, कर्म ८१, ज्ञान ८१, निवृत्ति, ७२, प्रवृत्ति ७२, भक्ति ८१, योग ८१
मार्सेल्स १११
मिथ्याचार १५
मिनियापोलिस २३७, जर्नल २३७
'मिरर' ३७३
मिशनरी, ईसाई ३४३, पत्रिका ३४२, पाखडी ३०७, लोग ३४९
मिस्र देश १२८, १४६ (पा० टि०), -वासी ८४
मिस्री, प्राचीन २०५
मीरावाई २७३ (पा० टि०), द्वारा ईश्वर-प्रेम का प्रचार २७३, रानी २७५
मुडकोपनिषद् १५८ (पा० टि०)
मुकर्जी, प्यारीमोहन ३३१
मुक्त २६१, होने मे सहायक प्रक्रिया ७५
मुक्तावस्था ६९-७०
मुक्ति ७३, ८१, ८७, ९३, ९६, १११, १७२, २३०, २५६, २६७, २८८, ३००, ३३५, ३३७-३८, उसका अर्थ ३१, उसकी इच्छा २६९, उसकी खोज और दृष्टि-भेद ८२, उसके मार्ग पर मनुष्य १८८, उसके लिए सघर्प ८१, उसको प्राप्त करने का उपाय ७१, और जगत् का कल्याण १८५, और सिद्धि ३४०, कर्म और प्रेम मे २१३, कर्मयोग का लक्ष्य ८०, -कामना ३३७, तथा भक्ति ३००, नैतिकता तथा नि स्वार्थता की नीव ८२, पूर्ण १७४, पूर्ण नि स्वार्थता द्वारा प्राप्त ८३, प्रकृति से १८२, लक्ष्य २२२, -लाभ २२,७०, -लाभ, उसकी इच्छा ३१, ८३, -लाभ, उसके लिए सघर्प ८१, -लाभ, उसे करने का धर्म ८३, -लाभ, भक्ति मे सभव ३००

मुखोपाध्याय यज्ञेश्वर ३११
'मुमुक्षुत्व' १०५ उसका अर्थ १०
'मुझे मत-छू-वाद' २१
मुदालियर, सिंगारावेलु १ ४ १४ (देखिए किडी)
मुसलमान १८ १२५ २६ ११४ ११८ २२५ २२८ २४४ ३१ ३१४ १७ उनका कोलम्बो १४१ उनकी खस्ता-वृत्ति १२५ उसका प्रचार १३६ उसका सार-तत्त्व ११६ और प्रोटेस्टेंट ईसाई २४१ और बौद्ध १२७ और विश्वबंधुत्व १४१ धर्म १३४ ३६ धर्मशील २४४
मुसलमानी अत्याचार ११७
मुस्लिम धर्म २१७
मुहम्मद २७२ २७४
मूर्ति और प्रतिमा २२१
मूर्ति-पूजा २४५ उसका रहस्य १८८ उसके मार्ग २२५
मूर्तिपूजक २४५
मूलर, कुमारी ३२१
मूसा ४७ १ ८
मृगजल १ २
मृत्यु उसकी निशानी २२१ और जीवन १६८ द्वैप ११२ भ्रम है १७९ मकोब ११२, ११५ सर्वत्र है १७७ स्वार्थपरता ही १११
मृत्युमुख्य जीवन ७८
म क्लाबर' २१५
मेडिसन स्क्वेयर कन्सर्ट हॉल २४१
मेयर लॉर्ड २७१
मेरठ ११९
मेरी हेल २१९ ९१ १ ९ कुमारी ३२१ १२४ १४ ६१ १७८
मेघराज ११४
मैं १ ७४ ११५ अहंकारी १५८ 'और मेरा' ७४-५, ८२ 'नहीं हूँ' २ १ -पन ७९ 'मन हूँ' ११७ शरीर हूँ ११७ साक्षी हूँ ९७
मैक्किंडले कुमारी ३१९
मैसूर १४८ नरेश १८९
मोक्ष-धाम १७
मौलाना देवदा २ ९
म्लेच्छ १२४

यंग कुमारी १२२
यजुर्वेद संहिता ११८ (पा टि )
यज्ञ उसका महत्त्व ११ उसकी अग्नि १५७ प्रत्येक की बलिवेदी १९ भूमि ११
यज्ञेश्वर मुखोपाध्याय ३११
यम ११ ११४ १ ७ १५४ १७४
यमपुरी १५९
यश और कीर्ति १७
यहूदी १७ १४२, २ ५ २७७ इतिहास २२४ उनकी वस्तुयें १२५ जाति १९९ धर्म १२५ राजपि २५६ विचार-संपत्ति का निर्माण २२४
'यात्री' २१६ १८५
युक्ताहार, उसका अर्थ १८१
युक्तिवाद १५१
यूनानी ८१ और रोमन ८४
यूनिटेरियन २१४ धर्म २१७ २७३
यूरोप ४ १११ १२१ १४७ २ ६ १ २, १४१ १४५, १५२ ५१ -यात्रा ११०
यूरोपियन प्लान ११४
यूरोपीय मनोविज्ञान ११ समाज तथा भारत का धर्म ११४
'योक' (yoke) उसका अर्थ ११९
योग ४१ ४५, १५१ २८ उसका ध्येय ११ उसका साधन १५१ उसकी अन्तिम अवस्था १२२ उसकी भौतिक क्रिया ७ उसकी समाप्ति और आत्मा २१२ उसकी सिद्धि का प्रश्न और कल्याण

१२२, उसके आभ्यन्तरीण मूल-भाव १५३, उसके विभिन्न प्रकार १६९-७०, उसके सहायक १२२, एकत्वानुभूतिरूप १५१, कर्म ६७, १५४, १६९, कर्म के माध्यम से १५१, निष्काम ६७, ज्ञान ६७, भक्ति ६७, १५५-५६, १६९, भगवान् के भीतर से १५१, मनुष्य को पूर्ण बनाने मे समर्थ ६७, मार्ग ८२, रहस्यवाद द्वारा १५१, राज १५१, १५३, १६९, २६४, २८८, विभिन्न, उनमे विरोधी नही ६६, शब्द, उसकी उत्पत्ति १६९, शब्द, उससे तात्पर्य १५१, -साधन १५१, -साधना १२२, -साधना और अनासक्ति ७५
योगक्षेम ३४८
योगाभ्यास ४३-४
योगी ७८, ११७, १५०, २८०, २८३, उनका मत ११६, उसका कथन १८२, उसका लक्ष्य १८२, उसकी पहचान १२१, उसके लिए जीवात्मा, परमात्मा का योग १५१, और चित्त की एकाग्रता १२१, और सत्य की उपलब्धि १२१, कर्म १५१, ज्ञान १५१, भक्ति १५१, महान् २८३, राज १५१, सर्वोच्च १५३
योगवाशिष्ठ रामायण ३८२
योगेन ३१३-१४, ३१९, ३५४, माँ ३०१, ३६१
'योग्यतम की अतिजीविता' १२६
योजना, सगठित और प्रचार-कार्य ३५२

रक्तमेघ १२९
रघुवर ३६२
रज, उसकी कर्मशीलता ११
रमाबाई ३८६
रसायनविद् १५३
रहस्यवाद १५१, २८१
रहस्यवादी २६४
राइट, प्रोफेसर २९७, ३२४
राखाल २९८, ३५७, ३९१
राग-द्वेष १३९
राजपूताना १८८, ३२०, ३४५, ३५७, ३६२-६३
राजयोग १६९, २८८, उसका आलोच्य विषय १५४, और ईश्वरीय अनुभूति १७०, और शारीरिक व्यायाम ३६४, मनस्तत्त्व का विषय १५३
राजसकर्मी ७९
राम ३७१
राम बाबू ३६२
रामकृष्ण (एक व्यक्ति) ३६३
रामकृष्ण २६१, २९८, ३१०, ३११-१२ (पा० टि०), ३२०, ३३०, ३३७-४०, ३५६-५७, ३६१, ३६३, ३७३, ३८५, ३९१, उनका जीवन, ज्योतिर्मय दीपक ३३९, उनका श्रेष्ठत्व ३१३ (पा० टि०), उनकी लीला-सहधर्मिणी ३१० (पा० टि०), उनकी सन्तान ३४४, उनके शिष्य की विशेषता ३४४, गुरुदेव १९४, जीवन्मुक्त और आचार्य २६१, ज्ञान के उदाहरणस्वरूप ३३९, -तनय ३५८, परमहस २५२, परमहस देव २९८, परमहस देव, उनका आविर्भाव ३०१, -महोत्सव ३५१, यतिराज १८५, स्वय अपनी पुस्तक २२८
रामकृष्णानन्द ३१९, स्वामी ३५१, ३५८, ३९१ (देखिए शशि)
रामदयाल बाबू ३०९-१०, ३७३-७४
रामदादा ३६१
रामनाड ३४८
रामलाल ३६३
रामानुज ३३५
रामेश्वर ३००
राव, डॉ० नजुन्दा ३३६

राष्ट्र ११६ उसका अपना जीवन-व्रत ११५ उसका निर्माण उपाधि प्राप्त व्यक्ति से नहीं ११ उसका निर्माण भगवान से नहीं ११ उसकी रक्षा १७ उसके जीवन में मुख्य प्रवाह ११८
राष्ट्रीय आध्यात्मिक जीवन ११९ जीवन ११२ धर्म १४१ भाव १३९
रिपब्लिकन २११
रीति-नीति ११७ -रिवाज २९ ४ १११
रुद्र २११
रुमाल १७१
रूप २२५ २६ और अनुष्ठान २११ और सम्प्रदाय २१९ और सिद्धान्त २११
रोमन ८४ ८६, १४८ २८४ १८६ कैथोलिक २६४ कैथोलिक धर्म २८२

लंका ११९
लक्ष्मी १ ८
लक्ष्य उसकी प्राप्ति के साधन २१९
लखनऊ २९८ १५७
लन्दन ११४ १८ ११९ १२१
लॉर्ड बहन १८८
लादू १५२
लामा २९१ ९७
लाला गोविन्द सहाय १५
लॉस एंजिलिस १११
लिंग प्रतीक १८२ और सैक्रेमेण्ट १४१
लिमडी ११६, १२ महेमिया पंथ १२
लूमक सर चॉन १४१
लैगेट मी १९१
लैण्डवर्ग २९७ १६४ १८१ १८५-८९ स्थान २९९ मी १८१ (देखिए कृपानन्द)
लैग्रिकान २७२
'लोकमत' १७८

वरुण और इन्द्र २ ६
वर्ण-विभाग १६७
वस्तु, वसके साध्य है १८९ अस्तित्व १ ६ उच्चतम १७ उसका उपार्जन ६ उसका प्रत्यक्ष ९९ उसका सार-तत्त्व २८८ उसके मर्म तक पहुँचना कठिन २१२ उसमें विस्तार की प्रवृत्ति ८१ ऐहिक ९७ और जीवन २१९ और दृष्टि २६४ और लक्ष्य १७४ दृश्यमान २५८ दृष्टिकोण से देखी जानेवाली ७८ पार्थिव २ १ २१०-११ प्रत्येक उसके लिए तीन धर्मों ९९ प्रत्येक उसका निरन्तर स्थित्यन्तर १ ६ प्रत्येक एक बराई १७१ बाह्य १६४ २५४ भौतिक जड़ १६७ विजातीय १ १ विद्यमान एक ११७ ससीम १६४ सांसारिक १४ १७५
वहेमियापंथ लिमडी १२
वाग्देवी १७४
वाद अद्वैत १ ७ आदर्श २२५ द्वैत १६७ भौतिक १७२
वाममार्गी १ ८
वाशिंगटन ११८ १२०-२२, १२४ १८८
वासना उससे वासना में वृद्धि २ और क्रोध २८९ और शरीर २ तथा ईर्ष्या १८१ भोग से तृप्त नहीं २ वस्तु २
विचार ११७ अशुभ ११ उसका प्रथम स्थान १२९ उसकी शक्ति व्यक्ति के माध्यम से २७१ एकाग्रता २१९ और कल्पना ९९ और प्रेम २७८ और मन की एकाग्रता २१२ और मनुष्य १४६

और वायुमण्डल ५७, और वैचित्र्य १२८, और सस्कार ३०, -चेतन १२१, तथा शब्द ४९, २६७, -तरग ५६, ३५५, पश्चिम तथा पूर्व की तुलना २३८, पार्थिव १९५, -प्रणाली ३६८, मूर्त तथा प्रतीक २४३, व्यापारी, हिसाव-किताव करनेवाले १८८, -शक्ति ६७, १६७, शुभ ३१, सहानुभूति का ५९
विजय बाबू ३११
विज्ञानवाद ११९
विज्ञानवादी, पुरातन १७८
विज्ञानशास्त्र १६९
'विदेशी शैतान' ४०
विदेह, उसका अर्थ ६५, राजा ६५
विद्वत्ता, उसका मूल्य नही २२९, और तर्क १९७, और पुस्तक ३७०, और बुद्धि १०७, प्रगति की शर्त नही १९७
विधवा-विवाह २३४
विधि, उपासना २९९, और प्रतीक २५१, -विधान ७०
विराट् और स्वराट् २९९
विरोचन ३०८
विलासमयता, उसकी जरूरत ३३४
विवाह, और व्यभिचार-त्याग १७६, -प्रथा ७७
विविधता, उसका अर्थ ३६७, जीवन का चिह्न २२९
विवेकचूडामणि १२ (पा० टि०)
विवेकानन्द, स्वामी ४५ (पा० टि०), १७०, १८७, २०५, २१२, २३७-३८, २७२-७३, २९५-९८, ३०१-४, ३१४-१६, ३१८, ३२०-२२, ३२४-२५, ३२८, ३३१-३२, ३३६, ३३८-४३, ३४६, ३५०-५१, ३५६, ३५८, ३६५, ३७१, ३८१-८२, ३८४-८६, ३८८-९०, ३९४, अद्भुत व्यक्तित्व ३२७, अपनी अन्तरात्मा के प्रति ईमानदार ३७९, आत्म-तत्त्व के चिन्तक ३१५, उनका मुक्ति ही एकमात्र धर्म ३८०, उनका व्यक्तित्व और दर्शन ३८०, उनकी कार्य-प्रणाली ३६७, उनकी प्रकृति ३२२, उनकी समस्त कार्य-योजना ३६८, तूफानी हिन्दू ३५९, त्यागी सन्यासी ३२२, दैवी अधिकार-सम्पन्न वक्ता ३२७, धर्म-महासभा मे महानतम व्यक्ति ३२७, ब्राह्मण उपदेशक २३७, राजनीतिज्ञ नही ३५१, सत्य की शिक्षा देने के सकल्पी ३६९, हिन्दू उपदेशक २१२, हिन्दू सन्यासी ३२७
विशेषाधिकार ३६७
विश्व, उसकी आत्मा सत्य है १६४, उसकी द्रष्टव्य क्रिया ११६, उसके अपरिहार्य व्यापार ७३, उसमे आत्मा एक १६७, उसे गतिमान करने-वाली शक्ति २५५, एक परिवर्तन-शील पिण्ड १०६, एक प्रतीक २४४, जगत् १५२, प्रेम की अभि-व्यक्ति मात्र २५५, ब्रह्माण्ड २५६, ब्रह्माण्ड, जड द्रव्य का सागर ११७, मानो परमेश्वर का स्थूल प्रतीक मुक्ति के लिए २४६, लहर और गर्त के सदृश ११३, शुभ और अशुभ का सघात २११, सघर्ष का परि-णाम ८१, समस्त, उसमे एकता तथा अखण्ड सत्य १६८, सम्पूर्ण, एक शरीर १६७
विश्वबधुत्व और साम्य १४४
विश्वात्मा २१७, अनन्त है १६७, उसका अश १६७
विश्वास-भक्ति ३६३
विषमता, सृष्टि की नीव ८६
विषय-भोग १०५, १३६, २९१
विषयीकरण २५९, उसका प्रयास २५९
विषुवत्रेखीय उष्ण देश ३९४

विष्णु २४८ भक्त २४२
वीर, उसका अर्थ २०९ राम्या उसकी पहचान १२४
वीरत्व गांधी १२१ १२८
वृक्ष और प्रस्तर-पूजा २२५ -पूजा २२५
वेस्ट हॉल २१९
वेद २१ १८ ४७ ११८ १५२, १११ २ ४ २ १ १ ११९ १११ उसका कथन १८० उसका मूलभूत सिद्धान्त १११ और वेदान्त ११ प्राचीन २१ रूप समूह ११३ (पा टि )
वेदान्त ११ १८७ २११ १२४ १४९-५ १७२ उसका मत १५१ दर्शन ४४ १११, धर्म उसका प्रधान तथ्य ८१ नैतिकता से अमर १८८ सूत्र उसके प्रणेता १५
'वेदान्त ऐंड दि वेस्ट' २१४ (पा टि )
वेदान्ती १ १ ० अद्वैत २५१ उनकी चार शर्तें १९१
वेदव्यास १७५
वैज्ञानिक आविष्कार २७ प्रणाली ७
वैदिक स्तुति २ १
वैर भाव १५
वैराग्य ७४ २५१ २०१
वैराग्यशतकम् १८१ (पा टि ) १८१ (पा टि )
वैषम्य १४५, १४८ जीवन का चिह्न १२८ भाव ८१
वैष्णव मत १ ०
व्यक्ति 'उचित' १ १ उसकी चार श्रेणियाँ १८१ उसका सम्मान २१२ उसके आदर्श की कल्पना और पूजा २५४ उसके जीवन में कर्तव्य ११ उसके माध्यम से विचार की शक्ति २७१ उसमें तीन शक्तियाँ ११ उसे स्वप्न की चाह १९१ एकान्तवासी १ और राष्ट्र ११०, और सत्य-अनुभूति की चाह १९१ कर्म से परे ७२ जंगली १११ जीवन अर्पित करने को उद्यत ११ ज्ञान के आलोक से सम्पन्न १७८ धर्मज्ञ गृही २१ धर्मान्ध ८८ धार्मिक उसकी विजय अवश्य १५१ निष्ठावान १४१ भावना-प्रधान २७१ भोगप्रिय १५ योगमार्गी १४९ विचारशील तथा मतभेद १२१ सात्त्विक ७१ सामंजस्यपूर्ण २१४ स्वतंत्र ७१ (देखिए मनुष्य)
व्यक्तित्व उसका महत्त्व २२९ और जीवन २२९ और मानवीय जीवन २२१ प्राप्त करने का प्रयास २२९ समस्त सफलता का रहस्य २११
व्यक्तित्ववाद ८२
व्यक्तित्ववादी ८२
व्यष्टि-शरीर११७
व्याध ४४ 'गीता' ४४
'व्याप्ति' १८
व्यायाम और संगीत २१४
व्यावहारिक धर्म का सीधा अर्थ १७१ प्रयोजन १४१
व्यास १५, १८७ वेद १५ वेदान्त सूत्र के प्रणेता १५
यूनान बंधु १२१

शंकर २ १ ११२ १८१
शंकराचार्य १९१ ११५
शक्ति अनुभूत और आत्मा २१ अर्थविहीन ११२ अमूर्त ११ अनात्म-शासिनी १२१ अहितकारी १११ आध्यात्मिक १११ इच्छा ७५ उसका कथन २११ उसका विकास आवश्यक १ १ उसका विचार २ १ उसका विचार में प्रथम स्थान २१

उसकी परिभाषा ११८, उसकी वडी अभिव्यक्ति ८, उसके सघर्ष होने से गति १२८, उसके साथ वल का विचार २११, और धर्म के वाह्य रूप २२४, कल्याणकारी ३६१, केन्द्रगामी १३९, केन्द्राभिमुखी ७३, केन्द्रापसारी ७३, १३९, खल की २०७, जीवत १९८, दैवी २६१, द्वारा गतिशील जड ११८, निर्माणशील, उसका उद्भव किस प्रकार ८६, प्रवल आत्मा की ३१२ (पा० टि०), प्राकृतिक १३१, प्रेरक १९, मन ७५, मानसिक १९४, विश्वव्यापी २१०, शुभ ३१०, सत की २०७, सब घटना के पीछे २०६, सर्वत्र व्यक्त २०८, सर्वत्र है २०६, स्त्री है २०८

'शक्तिमान' २७५

शब्द, उसको प्रकट करने के प्रतीक ४८, और आनुषगिक भाव ४८, और भाव स्वभावत अविच्छेद्य ४८, और विचार अन्योन्याश्रित २४६, द्वारा भक्ति २६७, पवित्र और रहस्यमय २६७, -प्रतीक ४८, प्रत्येक विचार का अश २६७, मनुष्य के उच्चतम भाव का शरीर २६७, शक्ति, उसका परिचय ४९, शक्ति, उसका महत्त्व ४९

'शम', उसकी परिभाषा १००, और 'दम' ९९-१००

शरत् ३११, ३५४ (देखिए सारदानन्द)

शरीर १८, ७६, ८४, ९५, ११३, ११८, १२३, १६३, १६६, १७६-७८, १९२, १९४, २६७, २६९, २८४, अध्ययन का विषय ९३, आत्मा का केन्द्र २२१, उसका निर्माण ९४, उसके प्रति दृष्टिकोण २८३, उससे आसक्ति, दुख का कारण १२३, उससे ऊँची वस्तु का अनुभव २३२, उसे आत्मा समझने का भ्रम १९५, और मन ७१, २१७, और मस्तिष्क २१८, और वासना २००, जड २५१, जीर्ण २२१, नवीन २२१, वाह्य ७५, मन का स्थूल रूप २६७, -विज्ञान ३२, शत्रु और मित्र ९७, स्थूल स्तर से वना २६७, स्वय से छोटा जगत् १६७, स्वय सवसे वडा रोग २२२ (देखिए देह)

शशि ३०५, ३१०-११, ३५१, ३५७-५८, ३९१ (देखिए रामकृष्णानन्द स्वामी)

शाडिल्यसूत्र ३८२

'शात' प्रेम २६९

शाति, शाश्वत, उसका पथ १६२

शा, अक्षय कुमार ३२३

शास्त्र ग्रन्थ, आधुनिक २६७, -पाठ ३४९, मतवाद मात्र ३३९

शिकागो २३४, २३७, २७२, २९५, ३०२, ३२०-२१, ३२५, ३२८, ३४१, ३४३, ३५०, ३५३, ३५८, ३६३-६५, ३६८, ३८७, महामेला ४०, ट्रिब्यून ३१८, हेरल्ड २७२

शिक्षक २९६, पुरोहित और पैग़म्बर २२४

शिक्षा, उसका जनता मे प्रचार और नाश ११३, और परिवेश १३०, नैतिक, उसका लक्ष्य ८२, -प्रसार ११३, बौद्धिक, उच्चतम १०६, सच्ची, उसका प्रथम लक्षण १५३

शिल्पकला और ईश्वरोपासना १३७

शिव २४८, ३९४, चिदानन्दस्वरूप ३०९

शिवोऽहम् ३०९-१०

शिशु, नाडी प्रवान मनुष्य २०६

शिशुशाला १७२, २४८, ३८८

शिष्य, उसका गुरु मे विश्वास आवश्यक १९५, उसकी गुरु के प्रति पूजा १९९, उसकी पूर्णता और मुक्ति-

प्राप्ति २०१ उसकी सहज-शक्ति १९३ उसके नियंत्रण में इन्द्रिय १९३ उसके लिए आवश्यक शर्तें १९२-९३ २० २०१ और शिष्यता का अधिकारी १९३; सही गुरु का उत्तराधिकारी २११

'शिष्यत्व' १९

शुकदेव ६५

शुद्धाचारवादी २१९

शुभ १ ६ ८ २ ६ २ ७ २११ उसके करने की प्रेरणा ईश्वर २११ और अशुभ १७४ १९४ २०७ २१ २१९ और अशुभ आत्मा के लिए बंधनस्वरूप २१ और अशुभ उनके अलग परिणाम २१ और अशुभ उसकी धारणा २ ९ और अशुभ उसकी परस्पर अनुभूति २१८ और अशुभ गठिया के समान १७४ और अशुभ-शक्ति ९७ और अशुभ शक्ति की समष्टि ८५ और मनुष्य में निहित उद्देश्य १७५ कर्म ९६, १२ कर्म उसका फल २९ कामना ११ कार्य ५८ २९२ कार्य करने का माध्यम २७१ वस्तु ५७-८, ११७ वस्तु, उसकी समष्टि ८४ वस्तु, उसके प्रति आकर्षण भ्रम १९४ संस्कार ११

शुभाशुभ १९९

शैतान ४४ ९६, ९८ १८२, २ ६ २१२ २१९ अहंकाररूपी १८९ और बुद्धिमान १ ७

'शोपेनहॉवर' १४९

श्याम १७१

श्रद्धा उसकी परिभाषा १ १ और भक्ति ९१ -भक्ति १५१ १५८ १४९

श्रवण ९१ उसका अर्थ १८७ एवं म ९७

'श्री रामकृष्ण की जीवनी' ११७

श्रेय उसका मार्ग १९२

श्वेताश्वतरोपनिषद् २२ (पा टि ) २२९ (पा टि०)

संगठन उसकी आवश्यकता १८७ उसमें अवगुण १८७

संगीत-मण्डली १९२

संघ उसकी आवश्यकता १७२

संघर्ष आध्यात्मिक १२४ उसकी उत्पत्ति २६ उसके लिए नियम ९७ एक बड़ा पाठ ९६ जीवन में लाभदायक ९६

संत उसकी शक्ति २ ७ और पापी २ ७ २११ और शहीद २२७ प्रेरणा २७५ निर्भय २२१

संन्यास १६, २४ १८४ १५६ १११ उसका अर्थ २८७ -ग्रहण करने से पूर्व २९१ -जीवन २७ १२१ -धर्म १५५

संन्यासी २४ २६-७ ४६, ४८ ११२ १८८ १ १ १७६ १८१ आदर्श १७ उनका व्रत १ १ उनके लिए मित्रता और प्रेम-बन्धन १७९ उसका कर्तव्य १८९ उसका जीवन १८४ उसका धर्म से वास्ता नहीं १८९ उसका मत सम्प्रदाय नहीं १८४ उसका लक्ष्य १८९ उसकी परिभाषा २८८ उसके लिए भिक्षा-वृत्ति १८६ १५९ और गृहस्थ १८७ १११ और संन्यासिनी २८२ यथार्थ १६१ वेषधारी १८ शब्द का अर्थ १८४ सच्चे १८९ सम्प्रदाय १८५

संयुक्त राज्य १२९

संसार, अचेतन १६५ अति भयानक कुरूप १८ अनन्त अतीत का परिणाम १०६ अपने कर्म द्वारा पाने का अधिकारी

६४, उसका इतिहास २१३, २७१, ३५१, उसका उपकार, स्वय व्यक्तित्व का ४९, उसका ज्ञान-लाभ, मन से ४, उसका दृष्टान्त ५३, उसका ध्वस और चरम साम्य १४६, उसका नियम ३३२, उसका मुख्य धर्म १२५, उसकी गति २१८, उसकी प्रकृति ८५, उसकी वस्तु प्रतीकरूप मे ४७, उसके कार्य का सर्वोत्तम उपयोग ७३, उसके दुःख को वढाते जाना १८२, उसके द्वारा उपासना का आरम्भ और परिणति २१५, उसके प्रति उपकार का अर्थ ८४, उसके लिए अग्नि का उदाहरण ६६, उसके लिए अभिशापस्वरूप २३६, उसके प्रति ऋणी ५४, उसमे आश्चर्य की वात १०३, उसमे एकागी शिक्षक २१५, उसमे कठिन वात १७, उसमे दुःख का मूल ३, उसमे पूर्ण सतुलन सम्भव नही ८७, उसमे बुराई क्यो २३०, उसमे भलाई-वुराई, सव जगह २१८, उसमे सम्प्रदाय की सख्या १२७, उसमे हँसी की अपेक्षा आँसू २०७, ऐंद्रिक १९५, और तीव्र इच्छा २०१, और दया १८२, और प्रकृति ४१, और स्वर्ग, इन्द्रिय से वॅधे १९२, कर्मबहुल ७३,-चक्र ८४, -चक्र, उससे छूटने का उपाय ६२, चरित्र-गठन के लिए ५४, झूठा दृश्य-जाल १५८, -त्याग ३३७, न अच्छा, न वुरा ५०, प्रतीक है ४७, भोग के लिए नहीं ६४, माँ की लीला २१०,-यत्र ८८, रूपी क्षीरसागर १०७,-व्यूह ५८, सत्य नही है १९१, सुख-दुःख से वना २०५,-स्वप्न ७२, स्वय पूर्ण ५०

सस्कार ३, ३२, अशुभ ३०, उसका नाश, शुभ द्वारा ३१, उसकी परिभाषा ३०, उसके द्वारा मनुष्य का चरित्र निर्मित ३०, वुरा, उसकी उत्पत्ति का कारण और व्यक्ति ३०, मनुष्य की जन्मजात-प्रवृत्ति २९, -समष्टि ८७, सु, और सत्कार्य की प्रवृत्ति ३१

सस्कृत, आर्ष भाषा १६०, उसमे 'जाति' का अर्थ ३६६, उसमे दो शब्द ६०, कवि ६०, कहावत ११८, दर्शन ४८, पाठशाला ३११

सहिता, यजुर्वेद ३६८ (पा० टि०)

सतयुग ८५-७, २३४

सतयुगी, धर्म ८६, भावना ८६

सत् २२, ६०, १५६, १६६, २०७, २११, और असत् ५७, २०३, ३९४, कर्म १७, ८८, कार्य ३०, ६२, ७५, ७८, ८२, ८९, १३७, ३०१, ३०३, ३३०, ३८३, चिन्तन ३०, पुरुष ३८, यथार्थ ३३, वस्तु ११८, सस्कार ३०, सर्वोच्च फल ६०, सिन्धु १५६ (देखिए शुभ)

सत्कर्मी, स्त्री और पुरुष २२६

सत्ता, अद्वितीय निरपेक्ष ११९, अनन्त ७०, १९५, असीम ७०, २१४, निरपेक्ष २५९, निर्गुण २१६, विराट् १४५

सत्य ६६, २९२, अद्भुत २४६, अनन्त १३४, अनश्वर ३४४, अन्तरस्थ ३७८, उच्चतम १९६, उच्चतम, उसके ज्ञान की प्राप्ति २०२, उच्चतर १३०, ३६६, उसका आविष्कार परमाणु-विषयक १०८, उसका प्रभाव, अनन्त ३६९, उसका स्वरूप १०९, उसकी उपलब्धि और योगी १२१, उसकी जय अवश्य ३२३, उसकी तुलना ३७८, उसकी परिभाषा

उसका अस्तित्व १ ९ उसकी सीमा ४ उसकी सीमा में ही चिन्तन २७१ उससे परे जाने का उपाय २०१ और प्रकृति ६१ और बुद्धि से परे २८५ और व्यक्ति २८७ कर्मण्यता ४ बाह्य जगत् २८ बाह्य व्यापार १११ पशु २१ अमित सुख और प्राणी १११ नियंत्रण १४१ पाँच ४१ ५७ ६५, २१६, २८५ भोग १४६ मन और बुद्धि ५४ यथार्थ १ ९ वास्तविक २१ विकास ५५ विषय १११ सीमाबद्ध ११० १८ -सुख ९८ ११६, १७१ २६८ २७ -सुख और बौद्धिक सुख २७ २७४ सुख और माया ७१ सूक्ष्म २०
इन्द्रियातीत तथ्य २४६
इष्ट देवता निर्गुण २८६
इजिप्ट मेम १८५
इस्लाम २४ २४९ धर्म २७८

ईथर ४४ तरंग २२२ सिद्धान्त ४४
ईनो ४८ (पा टि )
ईश-तिरस्कार २५९ -पूजन २१
ईशोपनिषद् १५ (पा टि ) १५२, १५७-५८ (पा टि ) ११७
ईश्वर २४ ९१ ६४ ९६ ८९ ९४ १ ९ ११६, १२४ १४५, १५५, १७९ १९६, २ ९-८ २१ २१४ २२१ २२८ २१ २५६, २७४-७५, २८४ १ १२ १२१-२४ १२६ १११ ११७ अज्ञात और ज्ञात नहीं ८९ अजेय ८८ अनन्त आनन्द १५८ अनन्त गुण का भाण्डार २ ४ अनन्त ज्ञान १५८ अनन्त सत्ता १५८ अनन्त सर्वशक्तिमान ६७ अन्वेषक २५८ अपरिणामी और अमर ६२ आकांक्षाहीन २२२ आत्मा के आकर्षण का केन्द्र २ ७ इन्द्रिय-बुद्धि से परे २८५ उपादान कारण २ ८ १ उसका ज्ञान और सेमेटिक धर्म २१७ उसकी इच्छा १८१ उसकी उपासना और अव्यक्त आत्मा ३४ उसकी उपासनास्वरूप प्रकृति २११ उसकी कृपा २४९ उसकी दो धारा २८४ उसकी धारणा माया २१५, २१७ उसकी परि २६६, २८१ उसकी पूजा २१ उसकी प्रत्यक्ष उपलब्धि ४१ उसकी प्राप्ति तर्क से नहीं १११ उसकी वाणी ६१ उसकी सगुणता १७१ उसकी सगुण धारा से निर्गुण धारा १८ उसकी सत्ता २८१ उसके अस्तित्व में विश्वास २ ३ उसके चिन्तक २१२ उसके नाम में महान् नाम २५३ उसके प्रति विकासशील भाव २५८ उसको पाना चरम उद्देश्य २२९ उसको सगुण रूप में पूजनेवाले २१ उसमें निहित बुद्धि १ १ उससे प्रादुर्भूत विश्व २ ९ एक उपास्य १८६ एवं आत्मा ११७ और अद्वैतवाद ९१ और कुबेर १५२ और द्वैतवादी ९१ और धन १५ और पूजा तथा धर्म १९१ और मानवीय अभिव्यक्ति २१ और शैतान १८८ और सृष्टि २ ८ अन्तरात्मा १८ कारण २ ८ केवल प्रेम के लिए २ ८ चिन्तन से भी अपना २१ चिरन्तन २ १ चेतन और शाश्वत २ ९ चैतन्यस्वरूप १ १ जगत् का केन्द्रस्वरूप १५८ जगत् का समष्टिस्वरूप १ जगत् के शासनकर्ता ७१ -ज्ञान २११ २११ तथा व्यक्ति और हिन्दू दर्शन २१२ तथा स्वर्ग २९५ -दर्शन १५ १५१ द्वन्द्वात्मक ९७ दृष्टि १२७ द्वैतवादी का ९१ धर्ममय २१८ -धारणा ६७ २११

नि स्वार्थ पुरुष ६७, नित्य २०४, नित्य ज्ञाता ८९, नित्य विपयी ८९, नित्य शुद्ध ६२, निर्गुण ९४, २८६-८७, २८९, निर्गुण और मनुष्य १८०, निमित्त कारण २०८, २१०, निर्विशेष,उसकी उपासना का माध्यम २८९, परम इच्छामय ३०३, पूर्ण आनन्द १५८, पूर्णत्व १३१, प्रकृत ६२, प्रकृति मे व्याप्त २३२, प्रकृतिस्थ ८३, -प्राप्ति २३४-३५, प्रेममय और सर्वशक्तिमान ६५, वहु जीवात्मा के रूप से २९९, -वुद्धि १५३-५४, वुद्धियुक्त १०४, भक्ति २६२, भय का प्रतीक ३८९, मनुष्य के साथ अभिन्न ८९, महिमामय, अपरिणामीस्वरूप २९७, मानवीय २०४, यथार्थ आत्मा ८९, रूप १५४, रोग दूर करने की शक्ति ३८९, वाद, सगुण १८६, विश्व का सर्जक और शासक २०४, विश्व की आत्मा १८१, विश्वव्यापी वुद्धि १०६, १२६, विश्व से परे २३२, विश्वातीत २३२, शब्द की महिमा १०७, शाश्वत २६६, सवधी अन्तर्मुखी जिज्ञासा २३७, सवधी धारणा ६२, ६५, ७१, सवधी धारणा और अद्वैतवाद ८९, सवधी सिद्धान्त २००, सगुण ५८, ६८, ९६-७, २०४, २५९-६०, २८७-८८, सगुण और मन १७३, सगुण का ज्ञान और वेदान्त ५९, सत्, मनुष्य की महान् कृति २६०, सभी आत्माओ की आत्मा १८१, २०९, समष्टिस्वरूप ३०१, समुद्ररूपी २६०, सर्वशक्तिमान ३२९, सर्वशक्तिशाली २६६, सविशेष २८८-८९, सृष्टि का निमित्त तथा उपादान कारण २१०, सृष्टि का रचयिता २०४, २०८, सूक्ष्म इन्द्रिय से अधिक समीप २९०, स्रष्टा ही नही, सृष्टि भी २१०, स्वत सिद्ध २९७, स्वय विश्व २१०, स्वाधीन २९४

ईश्वरत्व १८१

ईश्वरीय पुरुष ३६६, विधान ३६५, सत्ता १०९

ईर्ष्या १३६, २१३, ३३९, ३५१-५२, और सन्देह का परित्याग ३२४, राष्ट्रीय चरित्र का धब्बा ३२९

ईसप की कहानी १५५

ईसा ७, ५५, १२६, १५२, १६७, १७६, २२९, २४१, २५४, २५८, ३००, ३६१, ३८६ (पा० टि०), -मानव ८, १०५-६

ईसाई १०५, १६७, १८२, २०३, २५८, २७९, ३३८, ३६४-६५, और समृद्धिशाली राष्ट्र ५०, कट्टर और मिशनरी ३७१, कट्टरपथी शत्रुभावापन्न ३९३, दावा २७८, दोस्त २७९, धर्म ५०, १८२, २३१, २४०, २४९, ३४०, धर्मावलम्वी राष्ट्र की समृद्धि का कारण ५०, धर्मोपदेशक ३५०-५१, भूमि २२८, महिला ३१३, मिशन ३३९, मिशनरी ३११, ३४० (पा० टि), राष्ट्र ५०, लोग १७२, ३६२, वैज्ञानिक ३८६, वैज्ञानिक सम्प्रदाय ३८७ (पा० टि०), ३९३, सज्जन ३७८

ईसावेल ३७९, मैक्किडली, कुमारी ३४४, ३४६, ३९१

ईसामसीह ९७, १५५, २३१, २३३, २४०, २९०, ३२४, ३६०

ईस्ट इडिया ३५९

उड, श्री ३८७

उत्तर मीमामा २०३

उत्तरी ध्रुववासी १८८

उत्थान और पतन १०२, -पतन २०२

उन्नति, और अवनति १८२, और दुख-

सुख की भीतिका ५९ और विकास ५१ और वृद्धि १२१ नैतिक भाव की और मनुष्य का संग्राम ६१
उपकार २६१ उनका संकुचित अर्थ ४
उपनिषद् ४४ १ ९५, १४२, २ ३ २४१ ३२९ अन्तिम १७८ आधुनिक ४१ १७८ ईश १५ १५२ (पा टि ) १५७-५८ (पा टि ) ३१७ उनका कथन १४१ उसका अन्तिम धर्म १८ उसका केन्द्रीय भाव १७१ उसका ज्ञानभाग और शंकराचार्य ९४ उसका नीति भाग और बुद्धदेव ९४ उसकी कथा का तात्पर्य १७९ उसके अध्ययन से लाभ १७८ उसमें विचार भाव ९४ और गीता १७८ और दर्शन १८ कठ ९५ (पा टि ) १४ (पा टि ) १५६, १६१ १७८ २१४ (पा टि ) १ १ (पा टि ) छान्दोग्य ८९ प्राचीन ९४ १५ प्राचीनतर १७८ मुण्डक २९९ (पा टि ) श्वेताश्वतर ४४ ५८ (पा टि ) १ ७ (पा टि ) २८४ (पा टि ) ३३७
'उपमान' १९९
उपयोगिता उसका आधार १९९ उसका चरम बिन्दु २७ और आध्यात्मिकता १९९ और नैतिक नियम १ ९ पृथु दृष्टिकोण १९९ सत्य की कसौटी नहीं १९
उपयोगितावादी १९९ १९८ अविवेकी २१ आधार १९९ और समाज १९७ मान्सिर २१९ नियम तथा समाज की स्थिति १ ७ नौतिक १७४
उपादान आध्यात्मिक ९७ उपयोगी ११८ और निमित्त कारण १ १ निर्माणोपयोगी ११८
उपासक उसकी क्रमोन्नति का स्वीकार्य ६१ और उपास्य ६२
उपासना देव ५८ -धारणा २८९ निर्विशेष की २८९ पूर्वज की आत्माओं की २९२ प्रतीक ५८ भूत-प्रेत की २९४ मृत व्यक्ति की २९२
उपास्य देवता तथा मृत पूर्वज ८२

ऊक्स भी १ ७
ऊर्जा उसका परिणाम २६१ संरक्षणवाद १ ५

ऋग्वेद ५ प्राचीन ११४ संहिता १९२
ऋचा १९४
ऋषि १९८ २७७ ३ १ उनका सत्यानुसंधान १७२ उसका अर्थ २४१ उसकी परिभाषा १९४ चरित ५८ तथा नियम का आविष्कार २४२ प्राचीन ७ ९४ विचारों का द्रष्टा २४१

एकत्व २११ उसका भाव २४ उसकी और १४१ उसकी खोज २१, २१८ उसकी प्राप्ति २१८ उसकी रक्षा ९४ ऊँच-नीच में १५७ और मन २८ जाति में १५७ देवता और मनुष्य में १५७ नर-नारी में १५७ भाव २८४ भ्रामक २८ वस्तु के अन्तस्तल में १५७ वास्तविक नहीं (बौद्ध मतानुसार) २८
एकदेशदर्शी पुरुष १५७
एक्लेसियास्टीज ८७
एकेश्वरवाद ८२ २१२ पृथक भाव का आरम्भ ८१
एडविन आर्नल्ड १५९
एडी श्रीमती १८७
'एथिकल कल्चर सोसायटी' १०१
एथेन्स २६४

एनिसक्वाम ३४१, ३५५, ३५८, ३८४, ३८६, ३९१
एनी बेसेन्ट, श्रीमती ३०९
एलिया २३१
एलोहिम (Elohim) २३१
एवॉन्स्टन ३९१
एशिया २०४, ३११, वासी २३१
'एशिया की ज्योति' १९४, २५७

ऐक्य, उसकी प्राप्ति २३८

ॐ, वेद मे उसकी महिमा १७०
'ओडिन' देवता १६९
ओलि बुल, श्री ३९१, श्रीमती ३९१
ओल्ड, श्री ३७६

'कट्टर' ३११, पादरी ३४२
कट्टरता ५६
कठोपनिषद् ९५ (पा० टि०), ११३ (पा० टि०), १४० (पा० टि०), १५९, १६१, १७८, २१४ (पा० टि०), उसकी भाषा १७८
कथा, नचिकेता और यम की १६१-६५, माया और नारद की ७५-६, रोम के धनी की १६९, सिंह और भेड की १८, २३६, २६०-६१, हरिण और कुत्ता की १५५
कथा-नायक २४०
कनाडा ३३४
कन्फ्यूशस १९७
कन्याकुमारी ३३८
कबीला, उसका देवता ६३, उसका रक्षक ६३, और प्रेम ६३
क़बीलीय भाव ६४
'कमर्शियल एडवर्टाइज़र' ३४३
कर्ण-यन्त्र और श्रवण ज्ञान ११०
कर्तव्य-भाव ६४
कर्नल आल्कट ३८२, हिगिन्सन ३४७, ३९०
कर्म, अशुभ २७, उसका परिणाम २२९, उसका फल ११४, १२०, उसकी महत्ता २७, -काण्ड २५३, २५९, -काण्ड और बाह्याचार २४०, क्रियमाण २१९, दोष १२०, पाप २०९, पुण्य २०९, पूर्व और विचार १५१, प्रारब्ध २१९, फल ११८, १४०, १५४, १५७, भूमि, सर्वश्रेष्ठ स्थान २७, संस्कार ११७, सत् और उसकी शक्ति का क्षय २७
कलकत्ता ३३३-३४, ३४२, ३४४-४५, ३५४, ३६२, ३७५, ३७७, ३७९-८१, ३८३ ३९४
कलचिस ४८ (पा० टि०)
कल्प २२, २६
कविता, उसके द्वारा अन्तःस्फुरण ९४, और विज्ञान ९४
काम और कांचन ३५०, और क्रोध और लोभ ७, -वासना १५८
'काम के आदमी' ५६
कारण, उच्चतम, आदिम और दूरवर्ती परिणाम २८२, उसका स्थूल रूप मे आविर्भाव १०२, उसमे कार्य की संभावना निहित २८२, और कार्य अभिन्न १०३, कार्य के भीतर वर्तमान १०३, निमित्त १०१, परिवर्तित रूप मे कार्य २०८, शृंखला २८२
कारणता का सिद्धान्त २५५
कार्य, असत् १२१, उसकी परिभाषा १८, उसके करने की समर्थता १५३, उसके दो अंश ९२, उसके लिए कारण अपेक्षित २०५, और कारण १०१, और कारण मे मौलिक भेद नही १२४, और विचार १८, १५१, कारण का रूपान्तर मात्र १०३, २८२, कारण का व्यक्त रूप १२४, कारण से भिन्न नही १०२, २०८, पूर्ववर्ती कारण

की आवृत्ति मात्र २८२ प्रवृत्ति १७ सत् १२१
कार्य-कारण ११ नियम ८१ २१६, २१६, २२२ स्वीकार ७४ भाव १ ८५ ६ ९ १२१ २२२ सम्बन्ध १२९ १ १८४ (देखिए निमित्त)
काल, आत्मा में अवस्थित ११२ उसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं ९ उसकी उत्पत्ति ११२ उसकी धारणा ९ और विचार ११२ देश और निमित्त ९ दो घटनाओं पर निर्भर ९ मन की अवस्था पर निर्भर ९ मृत्यु ९ सर्व संहारक ७१
काली १४८ (देखिए अभेदानन्द)
कालीकृष्ण १६२
काशी १४२ ४१ २९७
किडी (सिगारवेलू मुदालियर) १२१ १२५, १५८, १७८ १९४
कृष्ण ७५ २५१ १२४ १२६, ११ ९१ भगवान् ९१
कृष्णस्वामी अय्यर १५७
कुक एण्ड सन्स २११ कम्पनी ११ १५५
कुमारी आर्चर स्मिथ १८१ ईसाबेल मैकिन्डली १७४ १४१ फर्मीडी १८१ फिलिप्स १८५ मेरी हेल १११ १४१ १७२ १८५ मौराय ११३ स्टॉकहम १८१ हैरियट हेल १८५ हेलेन गॉउल्ड १४१ ह्वी १८७ ११ १९२
कुरान २१५, २४२ शरीफ २७१
कुसंस्कार २ १८७-८८ १७७ उसका फल १५ (देखिए अन्ध विश्वास)
केनिलवर्थ १९
केम्ब्रिज १९२ यूनिवर्सिटी १४१
केशवचन्द्र सेन १५४ (पा टि ) १७६
कैमस ४८ (पा टि )
कैथोलिक १४
कैन्टरबरी ११४
कोरा १८७ स्टॉकहम ११
'कोरिन्थियन्स कम्में' ११७
कर्मो ८१ प्रश्न का अर्थ ८७ माया में नहीं ४९
क्रमविकसित बीज ही वृक्ष १२४
क्रमविकास ११ ४ ५ ९२ उसकी प्रक्रिया १२६ उसकी प्रक्रिया में अशुभ-निवारण ११६ उसकी व्याख्या १२४ उसके पूर्व क्रमसंकोच १२४ उसके साथ क्रम-संकोच की प्रक्रिया ८ और क्रमसंकोच ८ १२१ तत्त्व १२१ प्रक्रिया ११६
क्रमविकासवाद ११ १ १४ १७६ उसकी व्याख्या १२१ उसके पहले क्रमसंकोच १२१ कभी शून्य से नहीं १२१ (देखिए विकासवाद)
क्रमविकासवादी ७ १ ४ सिद्धान्त ७
क्रमविकासशील शृंखला १ ४
क्रमसंकुचित १ ७ वृक्ष ही बीज १२४
क्रमसंकोच ८ १ १-४ १२१ २४ उसकी परिभाषा १२१ उसके साथ क्रमविकास भी ११६ तथा क्रमविकास-तत्त्व १२६ प्रक्रिया ११६ भाव १७१
क्राइस्ट, जीसस २७२
क्रिया-कलाप और बाह्य अनुष्ठान १८१
क्रियाकाण्ड १८८
'क्रियेशन' २ ८
क्षत्रिय १२१ धर्मों का उपदेशक १२९ मांसभोजी १२८
क्षुद्र व्यष्टि १

खगोल विद्या २१९ १६६
खेतड़ी ११३ ११७ १४१ १४३ १५१ १५६ १६१

गगातट ६,५९
गठिया की बीमारी और जीवन के विरुद्ध भाव ४९
गणितशास्त्र १२३, २५१
गणितीय और निरपेक्ष निश्चय १२६
गणितीय क्रम ५२, ६५, १७५, और ज्यामितीय क्रम ५२, ६५, १७५
गतिशील (dynamic) २२
गति, ससार की और माया ५०, सर्वत्र सापेक्ष १२
गन्धर्व लोक १४२
गर्नसी, कुमारी ३८६, डॉ० ई० ३७८
गाँधी जी ३४५, वीरचन्द ३०९
गॉड १४८, २४३ (देखिए ईश्वर)
गार्गी ३६१
गिरीशचन्द्र घोष ३३४, ३४४
गीता ७८, ९५, ३०२ (पा० टि०), ३२९, ३७३ (पा० टि०), उपनिषदो से सगृहीत पुष्प-गुच्छ १७८ (देखिए भगवद्‌गीता)
गीति-काव्य १७९
गुरुत्वाकर्षण ११५, २०३, २८१, उसका नियम ११, उसका सिद्धान्त २४२, २८०, शक्ति ७४
गुरुदेव ३२२, ३३३, ३३६, ३३८-३९, ३४४, ३४९, ३५२, ३५६ (देखिए रामकृष्ण)
गैलीलियो २४२
गोपाल ३५३
गौतम बुद्ध ३९५
ग्रडी, श्रीमती ६८
ग्रन्थ और धर्म २३४, द्वारा ईश्वर सृष्टि नही २३४, मनुष्य की रचना का वहिर्गमन २७९, महान्, उसकी प्रेरणा, ईश्वर २३४ (देखिए पुस्तक)
ग्रीक ६०, ६५ (पा० टि०), २३१, पौराणिक साहित्य ४८ (पा० टि०)
ग्रीनेकर ३८४, ३९१, सराय ३८५
ग्लैडस्टोन, भारत का ३५३

घृणा ७८, १६८, ३१०,-भाव ९२
'घृणित कीडा' ३३७
घोष, गिरीशचन्द्र ३३४, ३४४

चक्रवात, उससे आवागमन का एक दृष्टात २१७-१८
चण्डी ३५१ (पा० टि०)
चन्द्र २२, ३१, ३३, ६३, ८२, १०२, १३१-३२, १३९, १४१, १५७, २१२, २८५, ३५१,-सूर्य ४२, लोक २६-७, ३५, ४५
चरित्र, अवतार ५८, ऋषि ५८, और सस्कार २१७,-गठन ३२६, देव ५८,-निर्माण १९९, प्रेत ५८, महात्मा ५८
चाण्डाल ३३७-३८, ३५७
चारुचन्द्र वाबू ३९३
चार्वाक, उसके अनुसार धर्म ६९
'चिकित्सा' ३८७
चित् २८२
चित्तवृत्ति, उसकी साधना देह से आरम्भ २५६
चित्र, उससे अधिक आनन्द १५३
चिन्तनधारा, आधुनिक २८१
चिन्तन-शक्ति ८, शरीर मे व्यक्त ८
'चिन्तनशून्य प्रमाद' २७८
चीन ८, १९१, २७१, वाले १९२
चीनी २५७
चेतन और अचेतन स्तर २७२
चैतन्य ३६०, राज्य ३८९
चौम्बक १६०
च्यापन, श्रीमती ३८६

छान्दोग्य उपनिषद् ८९
छुआछूत ३१६, मार्ग ३६३
छूतमार्ग ३३७

जगत्, ४१, १०२-३, अशत शुभ और अशुभ १३८, अन्तर १५९, अध्यात्म ३१, अपरिणामी आश्रय

२९ अविद्यामय १५८ आध्यात्मिक ८५, २१४ आनन्दमय १५४ आसुरी १५४ इन्द्रिय २८, २१४ ईश्वर का शरीर २ १ उसका अवैध भाव ११ १ उसका उपकार १९ उसका उपादान और निमित्त कारण १ ७ उसका प्रेमस्वरूप १५८ उसका प्रत्येक अणु अन्य अणु से सम्बद्ध ८१ उसकी अनन्त शक्ति मनुष्य के भीतर २ उसकी उत्पत्ति का प्रश्न ८ उसकी गति ५१ उसकी मुक्ति में विश्राम और कम्प ८ उसकी वस्तु-धर्म की अभिव्यक्ति ७ उसकी सृष्टि १५९ उसके आचार्य ७१ उसके परे तत्त्व २१८ उसके प्रति अनासक्तिभाव ११४ उसके रहस्य-मीमांसा की चेष्टा ७४ उसके विषय में मानव-धारणा १ ५ उसमें अशुभ और दुःख का कारण १८ उसमें दुःख-भाव विद्यमान १४८ उसमें परिणाम और अपरिणाम १ उसमें व्यक्ति नट मात्र ११४ एक कारागार ७७ एक बीभत्स प्रहास १७६ एक रंगभूमि ११४ एकस्वरूप १ और ईश्वर १५ और कर्म ११ और जीवन १७५ और ज्ञान ११ और पदार्थ १२५ और मनुष्य ७१ और मानव १७५ और शुभ अशुभ ५४ गोचर २८८ जड़ ११ ११ ८५, १५६ १६२ जड़ता अज्ञान से पूर्ण ७२ ज्ञात ११ ज्ञात और ज्ञेय २१४ तथा दोषारोपण प्रवृत्ति १९ दृश्य २९ दृश्यमान १४ द्वैत ज्ञान का पक्ष १ न आशावादी न निराशावादी ११८ नश्वर १ ५ नाम-रूपात्मक २८७ नित्यता और स्थिरता नहीं २९ पंचेन्द्रियग्राह्य १ पदार्थ स्वतंत्र नहीं ८७ परिणामशील १० परिदृश्यमान २८ प्रपंच २२, २९, १०७ ११४ प्रवाह २१४ फूल-माला से ढका मुर्दा १७१ बहि: १११ बहुत्वपूर्ण ७२ १११ बाह्य १ १ १ ८ ११४ ११८ १४१ १५९ ६१ बाह्य उसमें असीम वस्तु की खोज ११४ बाह्य और मानव-बुद्धि २५२ बुरे-भले का मिश्रण ११९ ब्रह्म का एक विशेष रूप ९१ ब्रह्माण्ड १ १ १ २ १ १ भौतिक १९७ २८७ मन की अनुभूति और यथार्थ सत्ता ४४ (पा टि ) मनो ११ १६१ मिथ्या १५ वस्तु १ विचार १२६ २१७ वैचित्र्यमय ११ शृंखला ६१ सत्य की एक छाया मात्र १७९ समस्या १६१ ससीम १५ सापेक्ष २८१ सूक्ष्म ८५ १ १ स्वप्न सा ११४ (देखिए संसार)

जगद्ब्रह्माण्ड १८८

जगदम्बा १७९

जगन्नाथ जी २११

जगन्माता की महिमा १ १

जड़ उसका अनुकरण और माया ७४ और चेतन २१८ २८१ और ब्रह्म ९१ तत्त्व १ १ ५ ११७ १२१ पदार्थ ११५, २८१ २९२ परमाणु ११५, २८१ २९२ -रूप भ्रांति की उत्पत्ति १८५ वस्तु १११ सिद्धांत २६१

जड़वाद ९६, १८५ और आत्मवाद १८५

जड़वादी ९८ ९, ११८ १२९ मत १६७

जड़ता और अज्ञान ७२

जनतंत्र एवं स्वाधीनता १७९

जनता उसकी अज्ञानता और बौद्ध धर्म ९४ उसकी उन्नति का उपाय १९१ विचारहीन १४९

जनसमूह, उनके दुःख-कष्ट ५१
जन्म और मरण २०६, २१८
जन्म और मृत्यु १३०,-मृत्यु १०५, १८२,-मृत्यु प्रकृति मे ३३
जन्मजात-प्रवृत्ति ११५, २७२, इच्छा का भ्रष्टभाव ११६, उसका तत्त्व ११६, और दिव्य स्फुरण २७२, कार्य का क्रम-सकुचित भाव ११६
जप-माला ३५०
जरा-मरण २१०
जर्मन दार्शनिक १७५
जर्मनी ५४, प्राचीन १९२, भाषा २०२
जीवन्मुक्त, उसकी परिभाषा ३६
जात-पाँत ३२१, ३५१
जाति, दुर्बल १७५,-प्रथा ३६५, भेद ३११, ३२५-२६, ३२९,-भेद, अर्थगत ३६८, यूरोपीय ९५, विभिन्न और ईश्वर सबधी सिद्धात २३२, सबल १७५, सेमेटिक २२७, हिन्दू ९५ (देखिए राष्ट्र)
जातीय जीवन ५५, दोष ३३९
जॉन हेनरी राइट, प्रो० ३०७, ३४४, ३४७, ३५३, ३५८
जापान ३७१
जार्ज ३८२
जार्ज डब्ल्यू० हेल० ३१४, ३१९, ३३४, ३७२, ३७८
जिउस देवता ४८ (पा० टि०)
जिहोवा ६१-२, ६४, १४८, २४३, २७९
जी० डब्ल्यू० हेल, श्रीमती ३८१
जीव ५७, २२२, ईश्वर की दया का अधिकारी १२०, क्षुद्र ३४८, परिणामी १२, प्रातिभासिक और यथार्थ ११, मर्त्य १४३,-विज्ञान २६५, व्यावहारिक १५,-शरीर, उच्चतर या निम्नतर ११९, -हिसा २०७
जीवन २८०, अनन्त सागर ७६, अभिव्यक्ति का रूपविशेष १२९, आनन्दपूर्ण और क्रियाशील १५४, उसका अर्थ ५७, उसका एक और नाम १२९, उसका क्रम २२१, उसका चिह्न ३८३, उसका नियम १०२, उसका मूलभूत सिद्धात २६५, उसका लक्ष्य ९२, २५४, उसका वास्तविक रहस्य १४५, उसकी अन्तरात्मा १४५, उसकी उन्नति का साधन ३२१, उसकी दो स्थितियाँ २२३, उसकी व्यर्थ वासना १७६, उसकी सभावना बीजाणु मे १२४, उसके अग-स्वरूप ५७, उसके पीछे मृत्यु १२९, उसमे एकत्व नही २८, उसे ईश्वर से अनुप्राणित करने का प्रयास १५४, एक कठोर सत्य १४०, एक महान् सुयोग ३९०, और आनन्द १४७, और जगत् ७९, और जगत् दुःखमय १४८, और मृत्यु ७८, १२९, और विचार ६१, और विषम विरुद्ध भाव ४९, और व्रत १२३, जातीय ५५, -दृष्टि १४४, नैतिक १६८, पचेन्द्रियगत १४८, पचेन्द्रियग्राह्य पाशविक ३४५, प्रकृत १७६, -बल ही भवरोग की दवा १८९, भावी १२३, भौतिक १४८, महान्, उसका लक्ष्य, ज्ञान २७०, मृत्युहीन ५३, वर्तमान, विगत का परिणाम २१८, विराम नही जानता ४७, -व्रत ३०७, शाश्वत २६९, -सग्राम १२२, सत् और असत् का सम्मिश्रण ४६,-समस्या की वास्तविक मीमासा १३१-३२, सासारिक ७८, सामाजिक ८१, सेवापूर्ण १५४
जीवाणु कोश ११७-१८
जीवात्मा २६, ८१, ९१, १६१, १८१, २०४, २३३, उसका अमरत्व

१२२ उसका संकोच और विकास
१८१ उसकी स्वाधीनता ११९
और ईश्वर ८१ और धर्मरूपी
विज्ञान २५२
चौविमार ८, १ ४-५ उच्चतम मानव
की क्रमप्रकृति अवस्था १०५
निम्नतर १२४
जीसस क्राइस्ट २७२
जूनागढ़ ११४ (पा टि ) १५१
जे जे गैम्पी गोमती १४१
जे स्पोल १ ७
जेम्स वॉं १११
जर्मी महल १८४
जैन धर्म १०९ प्रतिनिधि ११३
जैमस ४८ (पा टि )
ज्ञान ८७-८ और ज्ञय अनम् २६४
ज्ञान ५९ २६२ २० अतीन्द्रिय
१९६ अनन्त ९८ अनुभव से
उत्पन्न १२२ अनुभव से प्राप्त
११५ अमृत २५१ अस्तित्व या
आनन्द ११२ आत्मा के स्वरूप
११२ आभास १९६ उच्चतम
८ उसका अभ्यास १९ उसका
अर्थ २४४ २७५, २८१ उसका
अपनी आशय २८१ उसका साथ
४६ उसका स्वरूप ९८ उसका
फल १५ उसका लोप २५१
२७२ उसकी उत्पत्ति १९ उसकी
तथा उपयोगिता १५ उसकी
दूसरी व्याख्या २८१ उसकी
दृष्टि और मन की तुलना १२
उसकी प्रक्रिया ११ उसके बिना
मुक्ति असम्भव ६ ९ एक भिन्न
अवस्था १५ और अनुभव का
महत्त्व १९६ और अनुभूत तथ्य
२८० और आनन्द १९ और
आचार अन्तःप्रवृत्ति ८ और
प्रेम १९ और प्रत्यक्ष अनुभव
१९६ और भ्रम ८ और
दार्शनिकता १९ और भक्ति ११५
कमोबेश धर्मीकरण का पर्याय २८१
कड़ का भय नहीं ११ तथा
मुक्त मुक्ति की ओर २५४
दुःख और सुख का ४९ देवता का
६ ब्रह्म का २९ द्वारा आनन्द
प्राप्ति २७ धार्मिक उसका
अंतिम लक्ष्य २७५ परम २७७
परम और आनन्द २७ पूर्वोक्त
तथा लाभ १६ प्राप्ति २१४
बुद्धि का आधार ११ भक्ति
और याग ११३ भौतिक १६
मानव उसका आधार २१८
मानवात्मा संबंधी २१७ मानवीय
९६ १२१ मानवीय उसकी
सीमा ९७ मानो तुम्हारी १५
मार्ग का गुण और अवगुण १२९
मिथ्या १४ या शुद्ध मरना ११६
यौग १४१ रूप का ९७ —रूप
धार्मिक १२ लाभ १४ लौकिक
२८ लौकिक तथा धार्मिक
२७७ विज्ञान बाह्य २७८
विभिन्न धर्मग्रन्थों में २५९ विषय
११ वैज्ञानिक ९८ २७५
शब्द का अर्थ ८८ शाश्वत २७१
सच्चा २९१ सर्वात्म १४ सांसा
रिक ७७ सापेक्ष १२ सामान्य
पूर्ण अनुभव १२२ —रूप १
स्वरूपतः ११०-१२
ज्ञानी उसके लिए सब आत्मस्वरूप
१९७ पुरुष १११ १४१
ज्येष्ठ ८८
ज्यामितिक क्रम ५२ ६५ १७९
ज्योतिर्मय देह १ पदार्थ १
ज्योतिष ६ २७७

टॉमस पुत्र १७७ डॉ १२२
टिण्डल ७ ११९
टिनिसन १८४
टैगोर प्रसन्न १ ७ धोमती ३१३
टैग्नायन का नाम ९५ ९

'टन्न लॉ प्लेनो' ३८४
टर्फग्नि, ऐडी ३७१
डॉ० ई० गनमी ३७८
डाइनेमो २२०
डायना देवी ३१८
डॉयमन, प्रोफेसर २०२
डारविन ७
डिट्रॉएट ३३०, ३३२-३३, ३३९-३४० (पा० टि०), ३४१, ३४२, ३५८, ३८१, ३८३, ३८६, मिशिगन ३४३
डियरबोर्न एवेन्यू ३१३-१४, ३१९, ३२५, ३३४, ३५२-५३, ३५८, ३७२, ३७४, ३७७, ३८०, ३८२

तत्त्व, अतीन्द्रिय १६७, अमिश्र २५५, जड ९, ज्ञान ३३६, परम १६५, २१६, २३३, २४५, परमार्थ १६५, परलोक १६५, प्रकृत १८०, बुद्धि २५५
तत्त्वमसि १७, ४२, ८९, १३१, २८४
तर्क और विचार १६६, -शास्त्र २८८
तारक दादा २६२ (देखिए स्वामी शिवानन्द)
तिब्बत १३६
तिर्यग्जाति १००
तीर्थंकर ३२९
'तुम' १४, ३०, २१३
तुलसीदास ३७२
'तू' २५९, २८४, २८९
'तू ईश्वर है' ८९
त्याग १७६, उसका प्रकृत अर्थ १५३, उसकी माँग १९६, उस पर नैतिकता आधारित १९५, उससे विभिन्न धर्मों का सामजस्य २०१, और नैतिक विधान १९५, नीतिसहिता का मूलमन्त्र १७६, पूर्णता-प्राप्ति का साधन ५५
त्यागी साधु ३७०
थियोसॉफिकल सोसायटी ३८२ (पा० टि०)
थियोसॉफिस्ट ३७६, ३९३, हिन्दू ३८२
थेसाली देश ४८ (पा० टि०)

दण्ड-पुरस्कार १२०
दर्शन, आधुनिक १८५, उसकी उपयोगिता १७३, और तर्क ९५, और धर्म २४९, क्रिया १०९
दर्शनशास्त्र ५३-४, २९९, ३३८, उसका मत १६९-७०, और प्रकृति ३००
दानव और देवता ६७
दानव-पूजा २९४, -योनि २७
दार्शनिक, आधुनिक १२८, एव महर्षि, उनका विश्वास २३१, जर्मन १७५, पण्डित ४४, भाषा ४४, सिद्धात १७५
दिव्य प्रेरणा २७३, स्फुरण २७२ (देखिए अन्त स्फुरण)
दिव्यातर (Transfiguration) २७२
दीवान जी ३६७, साहब ३६५-६६
दु ख, उसका आगमन, वासना से १७४, उसकी उपयोगिता १५१, उसकी न्यूनता के लिए कर्म ५४, उससे शिक्षा १५१, और अशुभ ५६, और ज्यामितीय क्रम १३७, और सुख, परस्पर आश्रित ५१-२, -कष्ट और धनवान ५१, गठिया के समान १७४, -भोग ५२, १४१, भोग, उसके भीतर गरिमा १५१, -सुख और पशु ६७-८
देव ३४, और असुर ३०१, चरित्र ५८, जीवन ३७, -दासी ३३७, -देह २७, -मानव १०५, २८४, ३६७, -शरीर २६-७
देवता, उनके कार्य के उद्देश्य और जिज्ञासा ६४, नीतिपरायण ६४,

प्राचीन ९४ संबंधी धारणा और प्रकृति ८२
देवत्व ४२ प्राप्ति ११८ विभिन्न पथ का नाम मात्र ११४
देवयान २७
देवोपाख्यान २११
देवोपासना ८२
देश ९ आकार-उत्पत्ति का उपादान १२५ उसका अस्तित्व ९ उसकी मृत्यु का चिह्न ५१ और काल ४५, ९ २ १ और काल माया के भीतर ११५ काल और निमित्त ४५ वर्णरों का १४ १४६
देश-काल-निमित्त १०-१ ११ ४६, ८५ ६, ८९ ९ उसकी समष्टि १ उसके नियम ९० उसके भीतर विशेषत्व ९ माया सगुण ९१
देसाई, हरिदास बिहारीदास १२९ ११४
देह, आत्मा नहीं है ११ और मन ३ १७१ स्थूल २५ (देखिए शरीर)
दैव या भाग्य २१
दैवी कृपा २४४ प्रेरणा २७२, २७४
दैहिक कष्ट १८९
दोष उसका कारण ७
द्वन्द्व और संघर्ष ४ १११
द्विवेदी मणिलाल ११९
द्वैत अवस्था २११ तत्त्व ११८ भाव ११५, ११७ मिथ्या ११५
द्वैतवाद ९६, २ ४ २१२, २१४ १५ अपरिमार्जित १८
द्वैतवादात्मक धर्म ९७
द्वैतवादी १२ ३ ९ १८९-८८ २ ४ २ ९ उनका कथन ९६ उनका दृष्टिकोण ९६ उनका मत २१ उनका विभिन्न सिद्धांत २ १ उनकी अधिक संख्या का कारण ९६ उनकी ईश्वर संबंधी मान्यता २ ४ उनकी धारणा २ ८ और अद्वैतवादी २५ भाव मिथ्या ९ भ्रम २ ५ धर्म की लोक-प्रियता का कारण ९७ धर्म प्राचीन ९१ धारणा ११५ उनके निरामिष तथा अहिंसावादी २ ७ भाव और असत् ३

धन तथा विलास २६८
धर्म ५८ १४४ १९४ ९५, २ ६, २८२, ११७ १८४ -अध्ययन १११ २२८, २४३ -अनुयायी २५८ -अन्धता ५५, २४१ -अन्धता का मूलपाठ २४१ -अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि २२७ -अवलम्बी २ ७ बौद्ध संघ २१८ -आचरण १७४ आत्मज्ञान ही २४७ आनन्ददायक २१ इन्द्रियातीत भूमिका की वस्तु २११ २७१ इस्लाम २७८ ईसाई ५ १८२, २४ २४९ उदार, उसकी शक्ति २ उसका स्वीकार्य २२८ उसकी गवेषणा २७५ उसकी सत्यता २२८ उसमें तथ्य और भ्रम १४९ उसका अन्धविश्वास ७ उसका अर्थ या परिभाषा १२८ उसका आत्ममूलक सिद्धांत १९१ उसका आधार पितर-पूजा और बीज १९२ उसका आरम्भ ९१ उसका आविर्भाव प्रकृति -पूजा से १९१ ९२ उसका उद्देश्य ५८ उसका उपदेश ७१ उसका एकमात्र पथ ५ उसका एकमात्र लक्ष्य १५४ २५२, २७१ १२८ उसका नाम आत्मा से १२८ उसका क्षेत्र २७१ ९८ -८१ ९८४ उसका पतन २४१ उसका परम ज्ञान का दावा २७७ उसका परमोद्देश्य २१४ उसका प्रत्य क्षीकरण और उपाय २४८ उसका

प्रमाण, मनुष्य-रचना की सत्यता पर २७९, उसका प्रादुर्भाव २३२, उसका प्रारभ ७८, १६८, १९१, उसका भाव ६४, उसका मूलस्रोत २७४, उसका यथार्थ आरभ ५४, उसका यथार्थ विज्ञान २५१, उसका लक्ष्य एक ३०२, उसका वास्तविक वीज १९३, उसका विकास १९१-९२, उसका व्यावहारिक पक्ष २४८, उसका सार ३९, १६७, उसका सार-तत्त्व २३९, उसकी अभिव्यक्तियाँ और मूल धर्म तत्त्व ७०, १८२, २४३, उसकी आवश्यकता २०१, उसकी उत्पत्ति २५४, उसकी उदारता और महत्ता का परिचायक ६९, उसकी उपयोगिता २६९, उसकी एक स्वर से घोषणा ५, उसकी क्षमता २६९, उसकी तीन अवस्थाएँ २४०, उसकी नीव ३२७, उसकी पवित्रता एव पूर्णता २०९, उसकी भित्ति ७९, उसकी मान्यता २५५, उसकी रूपरेखा ३२०, उसकी विनष्टता के प्रति भय २२७, उसकी शक्ति १९१, उसकी शिक्षा ३७०, उसकी शिक्षा,अनुभव-माध्यम से २५१, उसके गुण १९१, २०९, उसके विषय मे महत्त्वपूर्ण प्रश्न २५५, उसके शाश्वत तत्त्व २७८, उसमे अद्‌भुत शक्ति २००, उसमे विश्वास और प्रत्यक्ष अनुभूति ३९, उसमे स्वाधीनता ७०, उसे न मानने से वुराई ३३८, एक, और साधना अनेक २५३, एकभूत, उसका सदेश २२७, एक सूत्र मे मोती के समान २५२, एक ही आधार पर आधारित २३२, एव देश ३४३, और अधर्म ९४, १६८, और आन्तरिक मनुष्य १९८, और आनन्दमय जगत्

२–२७

१५४, और ईश्वर १६८, और ईश्वर की धारणा ६१, और दोषारोपण ३११, और प्रेरणा-शक्ति १९१, और बुद्धि २७९-८०, और मानव-जाति १९१, और युग ६, और विशुद्ध विज्ञान १९८, और समाज ६८, और सिद्धात १९४, २८५, -कार्य १८८, कुसस्कारपूर्ण ३६९, -गुरु २४६, २४९, २७५, ३२३, -गुरु एव विचारक २७२, -गुरु तथा मार्ग २५०, -ग्रन्थ ५, १६७, २००, २०३, २१३, २४६-४७, २४९, २५९, २७९, -ग्रन्थ, उसका ज्ञान २३४, -ग्रन्थ को गढते हैं २३४, ग्रहणशील होना चाहिए २००, चार्वाक के अनुसार ६९, - जगत् ७०, जैन ३०९, ज्ञान तथा दर्शन २०३, तत्त्व १६६, १७४, तत्त्वज्ञ १०६, तत्त्वत एक २२८, तथा आध्यात्मिकता १९७, तथा रोटी-कपडे की समस्या २६९, दूत २७९, द्वैतवादात्मक ९७, द्वैतवादी, प्राचीन ९३, निम्नतम ५८, निरर्थक २७८, पुराना और नया केन्द्र ३६६, -प्रचारार्थ सन्यासी ३९५, -प्रणाली १८३, -प्रतिनिधि ३६७, प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय १६६, प्राचीन ६१, १०८, वौद्ध ९४, १८३, २४०, २४९, २५७, ३०८, ३९५, ब्राह्मण १९४, भगवत्प्राप्ति ही २५३, भविष्य का ९४, -भाव ७०, -भाव, आदिम ६२, मत ५३, २९४, ३२६, मत और सम्प्रदाय-समूह ३००, मत, श्रेष्ठतम ३००, - महासभा ३०७-९, ३१२, ३१४, ३११, ३४२-४३, ३५१, ३८३, मानव-मस्तिष्क की आवश्यकता २२८, मूलत एशिया से नि सृत २३१,

मूल्य सभी एक २१५ सभी विज्ञान २५२ -साम ११२ लोकप्रिय २७८ वर्तमान उसका ह्रास १९४ वर्तमान जीवन की वस्तु २७४ वर्तमान में अनुभूति २४६ विज्ञान ५१ विज्ञान और अन्वेषण-पद्धति २७८ विज्ञान और उसमें निश्चयत्व का अभाव २५१ विषय २४९ विश्वास ११२ विश्वास की वस्तु नहीं होने और बनने की २७१ -विषयक हमारे विचार २५५ वेदान्त १८ -शास्त्र हिन्दू १ २ संघ २ २ -संघ और रहस्यवादी २५१ संगठित उनका मत और उसका पक्ष १९४ सुनने २१५ सतीत्व ९५ सत्य की खोज में २१८ सनातन ११६, १४१ -सभा १७५ ७६ सभी सत्य १२४ समाज-सुधारक से उसका मतभेद नहीं १२८ सम्पूर्ण मानव-जीवन में परिव्याप्त २११ सम्प्रदाय २८९ २११ सर्वश्रेष्ठ प्रेरक शक्ति १९९ सर्वोच्च लोक का २५४ -साक्षात्कार ही एकमात्र मार्ग २४६ सामान्य केन्द्रीय भित्ति ७९ सार्वभौम २१४ १२१ सिद्धान्त मस्तिष्क की वस्तु नहीं २१४ स्वभावतः पवित्र २ १ स्वार्थोन्मूलन ही २५४ हिन्दू १ ९, १२८ १४१ ११२ ११६ ११५ २ २ उसके लिए दृढ़ प्रतिज्ञा ७९ उसके होने का अर्थ २४६ एकता का सम्बन्ध १९१ क्षेत्र २४१ ग्रन्थ २४७ चिन्तन १९९ २ २ १३१ चेतना २४१ जीवन १६ तत्त्व २७४ तथ्य २४७-४८ नियम २ पद्धति २५८ परिभाषा १ ६ पुस्तक २५९ प्रकृति २७२ प्रक्रिया २१७ प्रवृत्ति की विधि २१७ बनने के लिए उपाय २४८ भाव १२ १२१ भूमा २१७ मन्दिर ११६ वाद-विवाद २५२ वास्तविक ७९ विकास ९६ १९१ विचार २ २४१ २१४ ११९ विचार-समूह ११ व्यक्ति १७४ शिक्षा २५१ ११९ शरीर २९१ संस्कार २४८ संस्था १४ सत्य २७५ सिद्धान्त २४२ सोपान और मानव-मस्तिष्क २ स्वतन्त्रता १८ ७ स्वाधीनता और भारत ९९
धर्मपाल १११ १११ १५१
धर्माधर्म १७ १२१
धारणा उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध की ९१ प्राचीन और वर्तमान ९१ -ज्ञान २ ४
धार्मिक अनुभव २४७ अभिव्यक्ति २ १ आदमी २४६ आदर्श २ उपदेश ९७ उपाख्यान २८९ उपासना १८६ उर्वरता
धार्मिक एवं अधार्मिक मिथ्या' १७८
धार्मिक कोष' १७८
धार्मिकता उसकी परख २१५
'धार्मिक हत्या' १७८
'धर्मों की सहानुभूति' १९
ध्यान तथा एकाग्रता २५९
ध्येय और नियम ११६
ध्वनि-कम्प १ ९

नक्षत्र-विज्ञान २९५
नचिकेता १९१ १११ १५, १७
नरक ११४ ८६, २१४ २१८ १९, ११७ १११ उसका द्वार ११७
नरपशु २९
नरसिंह १५६, १८२, १९१
नरसिंहाचारियर, राय बहादुर १७१
नरसिंहाचार्य ११ ११२
नरेन्द्र ११४ (देखिए विवेकानन्द)

नव व्यवस्थान १५५, २२९, २३२, २८४
नाज़रथ २४९, २७२, २९०
नाम और रूप ३०, ९१, २११, और शरीर २११, भ्रमात्मक है ३१, -यश ३१०, ३१२, ३१८, वस्तु सबधी मन की धारणा ९१
नाम-रूप ३१, ३७, उसकी माया ३१, उसमे भेद ३१
नायक, आदर्श २४०, पुराण के महान् नैतिक पुरुष २४०
नारद २७७, और माया की कथा ७५-६
'नारियो के अधिकार' २५८
नारी, उसकी पूजा ३३७, देवी स्वरूपा ३१८, घर का आधार-स्तम्भ ३१७ (देखिए स्त्री)
नार्वेवासी, उनकी स्वर्ग सबधी धारणा १६९-७०
नाश का अर्थ १०१
नास्तिक ६८, ९७, २३४, २७५, आधुनिक २०२ (देखिए अनीश्वरवादी)
निमित्त ८५-६, और जीवन ५५, कारण १०१ (देखिए कार्य-कारण)
नियम, उसका अर्थ २६१, उसका पालन २६१, उसका पालन और मनुष्य-प्रकृति २९४, एकत्व का १३८, और प्रतीक २३५, और भविष्य १२५, गणितीय क्रम १३७, ज्यामितीय क्रम १३७, प्राकृतिक १५२, २६१, प्राकृतिक और मानव-जाति ५९, भौतिक १९४, सामाजिक १९६
नियाग्रा ३३५
निरजन ३६१
निरपेक्ष ब्रह्मसत्ता ८७
निराशावाद ४७, १३७, और आशावाद, अतिवादी दृष्टिकोण २६७
निराशावादी ४६, ५०, ५२, ५७, दृष्टिकोण २६७-६८
निरीश्वरवादी ९३ (देखिए नास्तिक)
निर्गुण, इष्ट देवता २८६, उसके विना सगुण नही २८७
निर्वाण, अवस्थाविशेष १८३
निर्वाणषट्कम् १९० (पा० टि०)
निर्विकल्पावस्था १९४
निर्विशेष २८७, उसका बोध २८७, उसकी उपासना और परिणाम २९०
निवृत्ति, उससे धर्म का आरम्भ ६३
नीति, उसका अर्थ १७६, और दया-धर्म १७६
नीतिपरायण और सामाजिक प्रतिष्ठा १६८
नीतिशास्त्र १९५-९६, २६५, ३७८, उसका आदर्श १९६, उसका क्षेत्र १९७, उसका मूलतत्त्व २३९, उसका सम्पूर्ण विधान १९६, उसकी पृष्ठभूमि २३९, और आध्यात्मिकता २१४
नीति-सहिता, उसका तात्पर्य १५, उसका मूलमत्र १७६
'नेता' ३९४
नेत्रपट (retina) २३, १२७
नेफेल ४८ (पा० टि०)
नैतिक विधान १९५, सतोष ३५२
नैतिकता, उसका अर्थ ९२, उसका विकास २३९, उसकी भित्ति २३९, और पवित्रता २४०, सर्वोच्च ९७
नैयायिक प्रक्रिया १८७
न्याय-युक्ति ३९
न्यूटन २४२, २८०, उसका आविष्कार २४२
न्यूयार्क २१, ९९, १०८, ३३०, ३४१-४२, ३४४, ३४६-४७, ३५५, ३५८, ३७५, ३७८-७९, ३८६, ३९१, प्रदेश ३८५, वासी ३९२
'न्यूयार्क सन' ३४३

पचभूत, उसकी समष्टि ८

पंचेन्द्रिय ६५, २८७
पण्डित दार्शनिक ४४
पण्डे-पुरोहित २४१
पदार्थ उसकी अवस्था २५ उसके अस्तित्व का कारण १७२ और परमाणु १२५ कारणीभूत १२७ घन २२ ज्योतिर्मय १ देह १ द्रव्य २२ रासायनिक १५७ सान्त ११
परनिन्दा और ईर्ष्या ११३
परम तत्त्व १६५, २११
परम पिता २८९
परमहंस २९
परमाणुवादी २ ४ उनके अनुसार प्रकृति २ ४
परमाणु-सिद्धांत २ ४
परमात्मा २१४ २३४ २६७ २९ १२२ १३२ १६८ ६९
परमानन्द १९८ ९९ २ ६, २७०-७१
परमार्थतत्त्व १६५ विज्ञान १११
परमेश्वर २१ १५२, १५५
परलोकस्वत्व १६ बाद १२
परापूजा १
पराशक्ति ४१
परिणामी बीज १२
परिव्राजक प्रचारक ११८
परोपकार १५, २ ६ ११२ उससे पुण्य ११७
पवित्रता और मुक्ति का प्रश्न १८१ एवं पूर्णता २११
पशु-मानव ५९
पश्चिम और पूर्व में अन्तर ११४
पश्चिमी देश १२५ राष्ट्र १२५
पोटर, पामर, श्रीमती १७१ ११९
पाठशाला निःशुल्क १११
पादरी ११९
पाप २ ४१ ११९ १५१ ९ ६ २ ९ २१४ २२६, २१८ १ १ १२६ १११ १५४ १७८ -अवस्था बार १९ उसका प्रादुर्भाव २१ और अपवित्रता २११ और दुष्कर्म २७१ -कर्म २ ९ -ताप २०८ १ २ -ताप और असत् ११ परपीड़न से ११७ प्रवृत्ति १८ भय ही ३५७
पामर, श्री ११०-१२ १४१ श्रीमती १७१ १ १ सेनेटर १८१
पारमार्थिक व्यापार और धर्म १११ सत्ता १२
पारसी १
पार्लमेन्ट १११
पॉल कारस डॉ १८१ १८१
पॉल संत १
पाशविक जीवन ६५
पाश्चात्य और भारत में धार्मिक दृष्टि कोण २५८, २६१ और हिन्दू की जीवन-दृष्टि १४४ जाति १७९ तथा भारत में अंतर ११५ दर्शन २१८ देश १४५, १७९, २ २, २७१ १६९ देशवासी १६८ लोग १४४ वासी १६८ विचारक २१ संस्थान १७
पितर-पूजा उससे धर्म की उत्पत्ति और चीन १९२ और भारत १९२ और हिन्दू १९२
'पिता में एकत्व' २५९
पितृयान २७
पुण्य २५४
'पुनरुत्थ' २२९
पुनर्जन्म ११ ११३-१४ ११ उसका सिद्धांत २२९ और आत्मा की स्वतंत्रता २२९
पुनर्जन्मवाद ११३ १४ उसका नियम ११३ उसके बिना ज्ञान असंभव ११४ और जीवात्मा की स्वाधीनता ११९ नैतिक उन्नति का सहायक ११३
पुरस्कार और दंड २७
पुराण प्राचीन काल में २१९ उसके नायक २४ उसमें सत्ति की

भावना २३९, और आत्मा मे लिंग या जाति-भेद ३२७, और आदर्श २४०, और सिद्धात २४०, पथी ३०७, प्रभावशाली २४०
पुरुष, अनन्त ३९, पूर्णस्वरूप ३२, साधु ३४, सिद्ध ३४
पुरोहित ६९, २७८, ३१८, उनके अत्याचार ३११, और समाज-सुधार ३२८, -सम्प्रदाय ६८
पुरोहिती शक्ति और विदेशी विजेता ३६९
पुलमैन, श्रीमती ३८४
पुस्तक, आन्तरिक २५१, उससे आत्मा की सृष्टि नही २३४, तथा औपचारिकता २५३, दार्शनिक ४२, वाह्य २५१, मात्र मानचित्र २४७ (देखिए ग्रथ)
'पुस्तकें' २५३
पूजा-अर्चना १८३, -पद्धति २५९
पूना ३१३
पूर्ण पुरुष १७५, मानव १०६, स्वरूप पुरुष ३२
पूर्णता, उसका अर्थ १७५, उसका मार्ग ३३२
पूर्वजन्म, उसका अस्तित्व ११३
पृथ्वी, उसकी उत्पत्ति १०४
पेरिस ३१०
पेलियस ४८
पैगम्बर २४२-४३, उसका तात्पर्य २४४, और वेदान्त २४९-५०, वनने के लिए प्रशिक्षण-केंद्र २४३, वनाने का महान् कार्य २४४, विशिष्ट तत्त्व की साकार प्रतिमा २४६, सिद्ध २४७
पैशाचिक उपाय ५०, काण्ड १५०, घटना ६५, मानव-प्रकृति ५१, रीति ५०, हिन्दू ५६
पोप, धर्म के ११४, विज्ञान के ११४
पौराणिक कथा ७, ६५ (पा० टि०), २३१, भाषा ७, युग और सभ्यता का उषाकाल ३, साहित्य, ग्रीक ४८ (पा० टि०)
प्यारीमोहन ३४९
प्रकाश, उसका दर्शन २५३, और अन्धकार ५९, ६६, और छाया २९५, और ज्ञानस्वरूप ७२, किरण २४, १२७
'प्रकृत मनुष्य' १३
प्रकृति ३५, ४६, ७३, ७७, ९२, १३९, १८३, १८६, २०५, २४२, २६०, २९५, ३२१, अचेतन और जड ७४, अनन्त का सीमाबद्ध भाव ९२, अपने कार्य मे एकरूप १००, आत्मा के सम्मुख ३२, आत्मा के सम्मुख गतिशील २१९, आतरिक १९७, २३७-३८, उपादान २०४, उसका आधारस्वरूप १३०, उसका ज्ञाता २९७, उसका नित्यत्व २०४, उसका नियमन १९७, उसका परिणाम ३३, उसका बन्धन ५८-९, उसका भविष्य और भूत १२६, उसका विरोध ५९, उसका सौंदर्य और महिमा १०८, उसकी अभिव्यक्ति १२६, उसकी नियमावली १००, २९४, उसकी भावमूलक शक्ति ३१९, उसकी शक्ति का मानवीकरण १९३, उसकी सहायता से ब्रह्मदर्शन १५८, उसके ऊपर उठने के लिए सघर्ष १९७, उसके गुलाम ७४, उसके द्वन्द्व से परे २५३, उसके नियम का पालन २६१, उसके पीछे आत्मा १३०, उसके प्रभु २९५, उसमे एक नियम का राज्य ११६, उसमे जन्म-मृत्यु ३३, उसमे विकास की प्रक्रिया १०४, उसमे शक्ति २०३, एव जीवात्मा से पृथक् ईश्वर २०४, और देशकालातीत सत्य १४, और विविधता ८४, और वेदान्ती द्वैतवादी २०४, तथा आत्मा २०९,

दैवी २३६ परम सुन्दर १५८ परिवर्तन की परिणामी २९ बाह्य १५, २३७-३८ भौतिक २९१ मनुष्य का उद्देश्य नहीं ११७ मानव १२२ ११७ मान बीय २१ रूपी पुस्तक २१२ व्यक्त २ ३ व्यक्त का परिणाम और विषय ८१ शाश्वत २२८ संबंधी धारणा ८२ ससीम और मनुष्य का ज्ञान ९२ हिलोले सदृश १२१
प्रगति उसका चरमतम विकास २१ उसका पथ २७५
प्रणाली और नियम १
प्रतीक उसका विकास २४
प्रत्यक्षवादी ११६
प्रत्यक्षानुभूति १८४ ११५ ११६ ११८ और धर्म ११६ धर्म का सार ११ सत्य की २४४
प्रत्यक्षीकरण २४८
'प्रबुद्ध भारत' ११५
प्रभु ७६ १२१ १११ २१२, १२१ १२५ ११६ ११६ उसका संसार २६७ प्रत्येक मानव हृदय में १२ सर्वसमावेश २१ सर्वव्यापी १५१
प्रलय ५ ६ उसकी कथा ६
प्रवृत्ति अतीत के कर्म का परिणाम २१ और इन्द्रिय ६५ और निवृत्ति ६१ और संयम ६४ पाशविक १५८ समस्त कर्म का मूल ६३
प्रशान्त महासागर ३५५
प्राचीन कथा १४८ देवता ६४
प्राचीन तथा नव व्यवस्थान १८१
प्राचीन व्यवस्थान ६१
'प्राच्य अतिथिपोषित' ११७
प्राच्य चिन्तन १४४ दर्शन और धर्म १४४ द्रष्टा १४५ धार्मिक भाव ३ -वासी मानव ११७
प्राण ४ २१३ उसका प्रभाव और जगत्-सृष्टि २२ उसका स्वरूप १४५ और आत्मा २५ -स्पन्दन से विश्व-उत्पत्ति २ ३ तत्त्व ४४-५ महाशक्ति की अभिव्यक्ति २२ मूल २२
प्राणायाम उसका लक्ष्य २५१
प्रतापचन्द्र मजूमदार १ ९
प्रतिद्वन्द्विता उसका सिद्धांत २६६
प्रार्थना-विधि २८९
प्रेत-चरित्र ५८
प्रेतात्मा १९२
प्रेम २१२, २७१ अद्भुत और माया ७५ उसकी अनन्त शक्ति ७१ और अलौकिक भाव ६४ और जागतिक भाषी १७१ और मान मता ६१ शुभ्र २७१ तथा कर्तव्य ६१ तथा निष्कपट शक्ति १९१ तथा मानव-जाति ४१ भाव १४८ -सागर २८९
'प्रेम तेजस्विता स्वाधीनता' १८८
प्रेय और श्रेय १६५
प्रेरणा चेतन से प्राप्त २७९ दैवी २७२ सहज ११६
प्रेसबिटेरियन १४४ पुरोहित १७८
प्रैट श्रीमती ११
प्लाइमाउथ ११
प्लेटो ९४

फल कर्म का ११४ पूर्व अनुभूति का ११९ समष्टिभूत ११४
फ़ादर पोप २४७ १७९
फ़िप्स श्रीमती १८७
फ़िलिक्स १० ११ लीपिंग १७८
फ़िलिप्स कुमारी १८५
फ़ैनी हार्टली १ १
फ़ोनोग्राफ ३७६
फ़ोरम १४५
फ़्रांस उसके निवासी २५८ उसकी शान्ति २७७
फ्रांसीसी विप्लव १८५

फ्रिक्सस ४८ (पा० टि०)
पलँग ३२२

वगाल ३२२, ३२५, ३३४ (पा० टि०)
वगाली ३७८, कहावत ३४९, ३६१
वन्धन ३७, ४८, ७८, ९५, १३१, १७५, २०६, २१८-१९, २५३, २५७, २६०, २९३, २९५, अनैतिकता का ९५, उसकी कारणीभूत प्रकृति २९७, उसकी धारणा २९५, और मुक्ति २९५, नैतिक, उसकी धारणा २९६, प्रकृति का ५८, मुक्त ६९, ससार का ५५
वन्धुत्व, उसकी भावना २०१
वम्बई ३९३
वरोज, डॉ० ३०९, ३१९, ३४३, ३७५, ३८०, जे० एच० ३८३, प्रेसीडेन्ट ३३६
वर्मी २५७
वर्बर देश १४५
वलिदान और वडा काम ३५६
वहिश्त २७८ (देखिए स्वर्ग)
वहुईश्वरवादी ३२६
वाइबिल १६८, १७५, १८२-८३, २२९, २३१, २३५, २४२, २४६, २७९, २८४, २९०
वॉनी, श्री, उनके गुण ३१९
वालक, क्रमसकुचित मनुष्य १२३
वाल-विवाह ५५
वालाजी ३८२, ३९४
विम ३५५
विमला ३६२-६३
वीज, उसमें उद्भिद् की सृष्टि १०१, और सृष्टि १००-३
वुद्ध ७, ४७, ९३, १२६, १७६, १९४, २२७, २५८, २७६, ३००, ३२४, ३२९, और ईसा २४१, भगवान् ६९, महान् ९७,-मानव ८, १०६ (देखिए वुद्धदेव)
वुद्धदेव ६९, ७८, ९३-४, ३११, ३६०-६१, उनका अद्भुत प्रेम और हृदय ९४
वुद्धि २३, १२७, उसका आदि तत्त्व २८०, उसकी अभिव्यक्ति १०५-६, उसकी देवी २७७, उसकी परिभापा २७२, उसके सहारे अस्तित्व का अनुभव १११, उससे आशय २८०, एव मनन १४३, और जड १११, और सस्कृति १४९, क्रमसकुचित १०४, जगत् की अन्तिम वस्तु १०५, पहले क्रमसकुचित, फिर क्रमविकसित १०६, विश्वजनीन का नाम ईश्वर १०६, विश्वव्यापी १०६-७
वेकन स्ट्रीट ३५१
वेविलोन ६, १९१-९२
वेबिलोनियावासी २३१
वैग्ली, परिवार ३९१, श्रीमती ३३२, ३४१, ३४६, ३५८, जे० जे० ३८३
बोधिवृक्ष ७८
बोस्टन २७३, ३०७, ३३०, ३३२, ३४५, ३४७-४८, ३५१, ३५५, ३५८, ३७५, ३८१, ३८७, ३९१-९२, निवासी ३९२
'बोस्टन ट्रान्सक्रिप्ट' ३९२
बौद्ध २८, ४४, ६८, ३८२, ३९५, अर्वाचीन २५७, आदि २५७, उनकी प्रमुख प्रार्थना ३३३, उनकी मान्यता २५५, और जैन २०२, और नास्तिक ७१, और नैतिक नियम १९४, दक्षिण सम्प्रदाय के प्रतिनिधि १९४, दर्शन २८, दार्शनिक ४४, धर्म १८३, २४०, २४९, २५७, ३९५, धर्म, उसके अनुयायी २५५, लोग २९, २०७, सम्प्रदाय १८५
वौद्धिक अन्वेषण २७८, अवस्था १९४, आनन्द ५५, २७०, चिंतन १९४, प्रगति, उसका मूलस्रोत २६८, श्रद्धा ९३, सुख २७०

ब्रह्म २१ ९१ ९५ १२६ १४२, १४४ १४८ १७ १८१ २११ २१६ २२ २४१ २५१ २८२, २८४ अनन्त ९ अपनी सत्ता का आधार ८७ उसमें देश-काल-निमित्त नहीं ८७ एकमेवाद्वितीयम् ८७ और जगत् ९१ १४२ और विश्व २२ और विषयी ९२ ज्ञान स्वरूप १६१ दर्शन १४२ १५९ नित्य पूर्ण १७१ निर्गुण पूर्ण ७२ निर्विशेष उसकी चरम अभिव्यक्ति २८८ बुद्धि १५५ भाव ८४ १५१ मात्र निर्गुण ९७ लोक २१-७ १२ १६ १४२ वही जगत् ८५ शाश्वत २६९ संबंधी विभिन्न मत और मूलभूत तत्त्व ८ सत्ता निरपेक्ष ८७ सत्ता पूर्ण ८९ स्वरूप ४ १५ १९ २९९
'ब्रह्म की धारणा' ८७
ब्रह्मचर्य १७ -व्रतधारण ११६
ब्रह्मत्व उसकी अभिव्यक्ति १२८ और पशुत्व २२१
ब्रह्ममय १७
ब्रह्माण्ड २२ २६ ४२ १ २१ १६-६१ १७१ १८२ २११ २२८ २८८ अखिल २१२ ईश्वर का शरीर जैसा १८१ उसमें मुक्ति २९७ जगत् १ -१ १ ६ बृहद् २१४ २१४ विविध १९५ विश्व १ ६, १११ १८१ १ १ सूक्ष्म १ १ २१४ २१ २६४ स्वरूप १
ब्रह्मानन्द १७ स्वामी ११०
ब्राह्म समाज १ १४१ १५४ १७५
ब्राह्मण ६ १६४ १११ १२, ११७ १६२ वध १ ४ भाग ४४ भाव भेद का १४२
बौद्ध धर्म १४१ १४५ १८४
बौद्ध पीयूष १ १
भक्ति २ ४ उसके गुण और अवगुण १२५ भक्त तथा भगवान् एक २६२
भगवत्कृपा १९१
भगवत्सेवा १५
भगवद्गीता १७८ २२९ अन्तिम उपनिषद् १७८ (देखिए गीता)
भगवान् ४ ९१ ९८ १२ १२६ ११६, ११९ १५२, १८६ २५२-५४ २६२ २९९ १ ११२, १२०-२१ १२८ १४२, १५ १५६, १६५, १६७ १७८-८
भय २५९
'भवानक विभूति' ११८
भर्तृहरि १११ राजा १५४ नीतिशतकम् १५
भागवत और पुराण ११
भाष्य उसका क्रम ४ और विचार ११९ और वायु १११
भारत २१ ४१, ५८ ९१४ ९६ ९६ १४२ १७२, १८७ २ २ ४ २ ७-८ २५८, २११ १ ६ ११२, ११६ ११९ १२१ २१ १९५ १११ ११५ (पा टि) ११९ ४१ १४५ ४६ १४६ १५२, १५४-५६ १५७-६४ १६७ ११६ १७ -७१ १७६ १७७ १८ १ ५ ९१ उत्तर १११ उसकी अफीम-समस्या १४५ उसकी बेटी ५१ उसकी स्थिति ११७-१९ उसमें प्रचलित विभिन्न धर्म २ २ और पाश्चात्य में अन्तर १८, ७ और समाज सुधारक ४९ दक्षिण ११७ १४ पश्चिम ११ माँ ११८ माता १२९ वहाँ कम्प आदि का शोषण पर अत्याचार ११७ वहाँ के समाज सुधारक १११ वहाँ धार्मिक स्वाधीनता ९८ वार्ता ११९ (देखिए भारतवर्ष)

भारतवर्ष १७, ६८-७०, ९३-४, ९६, १२३, १४२, १६१, १६७, २०८, २२८, २४०, ३११, ३२५, ३३७, उसके अनर्थ की जड ३६९
भारतीय एव अमेरिकन ३४५, चिन्तन-धारा २०२, दर्शन ६८, २०२-३, २१४, दर्शन, उसका विकास-क्रम २१४, दार्शनिक १३, २१-२, द्वारा भारत की उन्नति सभव ३२९, धार्मिक चिन्तन २०२, धार्मिक विचार-समूह ३६०, नारी ५६, पत्र ३७४, पुराण ७, मत १८१, महिला ३७१, वायुमण्डल ३११, समाचारपत्र ३१४, ३९३, साधु १७
भाव, उसकी समष्टि और नाम ६४, पौराणिक या रूपक १८१, भ्रमात्मक, स्वामित्व का १५३, साहचर्य-विधान १०६, सूक्ष्म से स्थूल मे १२५, स्वर्गीय १५३
भावना और आदि मानव ६२, और इन्द्रिय १५२
भाषा, अलकारपूर्ण १६१, और मात्रा का तारतम्य ७, जर्मन २०२, पौराणिक ७, यूनानी ३०८, लौकिक १०९, वैदिक १००, सस्कृत १०, १२८
भूत-प्रेत ५८,-योनि २७
भेद-ज्ञान २००,-ज्ञान और अशुभ १६,-भाव १४६
भोग-वासना ११४, १६५, १७४, -विलास १५४, ३७०, विषय १६५, सबधी धारणा १३७, सामग्री १६२
भौतिक, अन्वेषक, उसकी प्रवृत्ति २८५, कार्यकलाप २२०, घटना १२६, जगत् २५१, २८७, द्रव्य २१६-१७, निधि २६८, पदार्थ २३७, प्रकृति २९६, प्रगति २६८, रूपाकार १२५, वस्तु २६५, वाद ९३-४, २२७, २३०, वाद और भोग-विलास ३२२, वादी २२, २३०, विज्ञान २२, २४२, २५१, २६५, २७७, २९१, शास्त्र १९५, २६५, शास्त्री २८१, साधन और जगत् २००
भौतिक कोष' ११८
भौतिकी वेत्ता १६६
भ्रम ६०, उससे भ्रम की उत्पत्ति २१३, और बादल का दृष्टान्त २१३
भ्रान्ति और मनुष्य ३३

मत्र, उसका द्रष्टा १९४, विशेष व्यक्ति की सम्पत्ति नही २४१, शब्द का अर्थ २४१
मगल १३९ (देखिए शुभ)
मक्का २४९
मजदूर तथा पूंजीपति ३६८
मजूमदार ३५४, प्रतापचन्द्र ३०९, महाशय ३३५
मणिलाल द्विवेदी ३१३
मत और प्रणाली १८१, और सम्प्रदाय का अपना महत्त्व २३४, मन का व्यायाम और बुद्धि की कसरत १८१, शिक्षा और मनुष्य पर परिणाम १८९
मतान्ध और कट्टर ७०
मदर चर्च ३४१, ३४५, ३७९, ३८७
मद्रास ३४३, ३५३, ३७४, ३८१, ३८३, ३९५
मद्रासी बन्धु ३७७, शिशु ३७६, शिष्य ३१९, ३७४, लोग ३७६
मन, अनेक बार जन्म-ग्रहण ११८; आत्मा के हाथ यत्र १२८, आत्मा नही ११-२, ११०, उच्चतर सत्ता २२, उसका आधार १०, उसका नियामक १५८, उसका व्यक्तित्व और ईश्वर १७३, उसका सस्कार

५१ उसका स्वभाव १२ उसकी अनिवार्यता ११ उसकी प्रकृति ९२ उसकी शक्ति और शरीर १८ उसकी सीमा और विषय ८७ उसकी सृष्टि १२ उसके कार्य पूर्वानुभूति के फल ११७ उसके द्वारा उपयोगी उपादान ग्रहण ११८ उसके द्वारा बद्ध वस्तु ससीम ८७ उसके पीछे आत्मा २४ उसके संस्कारों की छाप ११७ उसमें ही संस्कारवास ११८ एक प्रकार के परिणाम का नाम ८५ और आत्मा २४ २१६ और बाह्य वस्तु का प्रभाव १११ और बुद्धि २४ ५४ ११ और मस्तिष्क १८९ और स्वयं तर्क १९९ और शरीर ११४ और संस्कार ११ कभी निर्बल कभी सबल ११ तथा इन्द्रिय २ १ मंत्र भाव १२८ ग्राहक ११ शरीर का विरोधी नहीं २१८ शरीर में विलीन २१८ संस्कार-शून्य और बच्चा ११५ सतत परिणामशील विचार प्रवाह २८ सर्वव्यापी २१

मनन और निदिध्यासन १८

मनस्तत्त्व ९५

मनु महर्षि ९ ११५ ११

मनु ११५, ११७ (पा टि )

मनुष्य अज्ञानी २१ अनन्त सत्ता का आभास मात्र १५ अनुभूति की समष्टि लेकर उसका जन्म ११९ अपना १९० अपना उत्तरदाता २ ५ ९ अपना भाग्य निर्माता १२ असभ्य २११ आदिम ११७ आधुनिक ५९, २३७-३८ आन्तरिक १९८ उत्तम कभी १९८ उसका अमरत्व और कामना १८४ उसका अनन्त रूप २८ उसका आत्मा के प्रति विद्रोह १ १ उसका आदर्श १५१ उसका इतिहास १४ उसका उद्देश्य १९९ उसका उद्देश्य प्रकृति नहीं १९७ उसका कर्तव्य १७१ उसका कष्ट और कल्याण चेष्टा १२ उसका केन्द्र १११ उसका खोया हुआ राज्य १८१ उसका ज्ञान १८ १७ १२२ उसका ज्ञान भाव और नैतिकता का विकास २११ उसका देवत्व और पशुत्व २४५ उसका धर्म आत्मा में २५२ उसका ध्येय मुक्ति २११ उसका परम ज्ञान २७ उसका प्रकृत स्वरूप १०-१११ ११२ उसका प्रश्न ९९ उसका बड़प्पन १८५ उसका भय से मुक्त होना असंभव ८१ उसका भ्रम २१२ उसका मन १ ८ उसका यथार्थ 'व्यक्तित्व' ११ उसका वस्तु के लिए संघर्ष २५१ उसका वास्तविक प्रेम ४ उसका विकास और शक्ति की अभिव्यक्ति २४ उसका शरीर २४ उसका सत्य १९ उसका सबसे बड़ा प्रयोजन १९ उसका समग्र जीवन स्वाधीनता हेतु २९१ उसका स्वभाव १९८ उसका स्वरूप १४ उसकी अनन्त की खोज २११ उसकी असमर्थता १९८ उसकी आकांक्षा १९१ उसकी आत्मा ११ ११४ २५२ उसकी आत्मा अनुभवकर्ता ज्ञाता एवं द्रष्टा १२९ उसकी आत्मा कार्य-कारणवाद से परे १२ उसकी आत्मा की अन्तरात्मा ८९ उसकी आत्मा की व्याख्या २४ उसकी आत्मा व्यष्टि में २४ उसकी आवश्यकता १९७ उसकी सीमा १ ९१ उसकी इच्छा बद्ध १७ उसकी इन्द्रिय की रूप ९५ उसकी

ईश्वर सबधी धारणा २६०, उसकी उत्पत्ति १०३, उसकी एकता और आस्था २८३, उसकी कोटि ३४, उमकी चिन्ता और मुक्ति ११, उसकी ज्ञानक्षेत्र मे सफलता २७०, उसकी दृष्टि १००, उसकी धारणा ६३, उसकी प्रेम की पहचान ३६०, उसकी भूल ३३, उसकी महानता के लिए तीन बातें ३२४, उसकी मृत्यु इच्छानुसार ५, उसकी विचारधारा ९९, उसकी सत्य तथा धर्म के हेतु चेष्टा ७९, उसकी सफलता और प्रयत्न १५६, उसकी सबसे बडी मिथ्या बात ३४, उसकी स्थिति, धर्म की बदौलत २६९, उमकी स्थूल देह और मन ११२, उसकी स्वाभाविक दुर्बलता ११९, उसकी हताशा और ईश्वरीय वाणी ७८, उसके अध्ययन के विषय २३७, उसके आदर्श नायक २४०, उसके आन्तरिक स्वरूप की जिज्ञासा १५९, उसके ईश्वर को देखने की दृष्टि २६०, उसके चारो ओर १००, उसके ज्ञान होने पर ३४, उसके द्वारा आत्मा का विषयीकरण २६०, उसके द्वारा विश्लेषण १०८, उसके पीछे यथार्थ पुरुष ६२, उसके भीतर कष्ट से छुटकारा पाने का रास्ता २५६, उसके भीतर स्वर्ग का राज्य २३३, उसके शाश्वत सगी २२७, उसके सत्य का ज्ञान ३९, उसके सामने दु ख का प्रतीक १९५, उसके सुखी होने की इच्छा ४, उसके स्वरूप-प्राप्ति मे साधना २५९, उसमे अनन्त शक्ति २०, उसमे जगत् की महाशक्ति २०, एक अपरिवर्तनशील तत्त्व २५५, एक इकाई २५५, और अन्वेषण १९३, और अपरिमित शक्तिवाला आदर्श १९५, और असतुलन २१०, और आध्यात्मिक प्रदीप २३६, और ईश्वर २६०, और जगत् ३, और धर्म का विकास १९१, और धर्म तथा सत्य-प्राप्ति का पथ ७९, और नियम २९३, और नीतिसगत भाव ६४, और नैतिक भाव की उन्नति ६३, और पशु तथा उसमे अन्तर ६७-८,२६८, २७०, और पूर्ण आदर्श १४, और प्रकृति ७४, ३२४, और बीजाणु १०३, और बौद्धिक श्रद्धा की आवश्यकता ९३, और भ्रान्ति ३३, और महान् सत्य ४१, और मृत्यु-भय की विजय-प्राप्ति १३, और रुचि के अनुसार आदर्श २५२, और शरीर सबधी सिद्धान्त २१, और 'सस्कार' २५, २१७, और समाज १४, और स्थूल देह ५, और स्वतन्त्रता ३२१, और हृदय-ग्रन्थि १४४, कमजोर पौधा २१०, कर्म का शाश्वत फल नही २०७, किसे कहा जाता है १९७, क्रमविकसित बालक १२३, क्रमविकास का परिणाम ७, चिन्तनशील और जगत्-समस्या १६०, चैतन्यस्वरूप ३०१, जगली ५१-२, २९६, जगत् का ईश्वर १३१, जगत् की आत्मा १३२, जगत् की एकमात्र सत्ता १३१, जगत् मे सर्वश्रेष्ठ प्राणी २७, जन्म की प्रक्रिया २६, जाति का स्वभाव १९८, जाति की चेतना का अग २४२, जाति के परित्राता ४७ (देखिए बुद्ध), -जीवन ३७, जीवन भर पहेली मे आबद्ध ६६, ज्योतिस्वरूप १४०, तथा आदर्श का चुनाव २५२, तथा इन्द्रिय, उसका प्रश्न २७१, तथा जगन्नियन्ता, अभिन्न २८८, तथा धार्मिक विचार

और समता २१४ तथा नया विचार और असंतुलन २१ तथा प्रेय और श्रेय ११५ तथा महत्त्वपूर्ण प्रश्न २५५ तथा मान सिक संवेदन २५५ तथा विश्वास २५१ तथा व्यक्तिगत विशेषता २५२ दिव्य है २४४ द्रष्टा २४४ द्वारा असत् कर्म और संशोधन १८१ द्वारा ईश्वर साक्षात्कार १२१ निर्गुण और निर्गुण ईश्वर १८ निर्गुण पुरुष निष्पाप उसकी अव नति ५ नीतिपरायण क्यों १५ परिणामत परिवर्तनशील २५५ पापी और दुष्ट १४ पाशवी प्रवृत्तियाँ ५१ पूर्ण और वासना २२२ पूर्णतम १ ४ पूर्णस्वरूप १४ प्रकृति १७ -प्रकृति २११ प्रकृति का विरोधी ५१ बद्ध ५८ बलवान १५५ भौतिक पदार्थ से निर्मित २१७ मशीन नहीं है १११ मुक्त स्वभाव १४ २११ मुक्त है १७ मृत्यु के पास उसकी दशा १७०–७१ यथार्थ एक अखंड सत्तास्वरूप १५ वर्तमान काल में १७४ विद्रोही और नरक का अस्तित्व २१४ व्यष्टि २४ सर्व श्रेष्ठ ११७ साधारण ११८ सीमा से बाहर ९८ स्वभाव से मुक्त १८४ स्वरूप ११
मनुष्यत्व और देवत्व १८१ ९२
'मनुष्यों का स्वामी' ११४
मनोविज्ञान २१
मनोवृत्ति और विचार ५७ और मनोविश्लेषणवादी १४
मन्दिर और नगर ९ -मन्दिर १७४
मनोचिकित्सा और मन ११ और मन्त्र ११
मलेरिया उसका कारण ११२
मस्तिष्क एवं हृदय १० और बुद्धि २० और शरीर ८
महाज्ञान उसकी पिपासा ७१
महात्मा उनकी जीवनी और नियम २४८ -चरित्र ५८
महापुरुष ७५ अनुभव के आधार २४७ उनके गुण और बुद्ध आदि १ ४ और जानकारी ७१ कल्याण के प्रेरक २४१ तथा पैगम्बर २४ ४१ प्राचीन और वेदान्त दर्शन ७१
महाशक्ति उसकी अभिव्यक्ति २२
'महामेला' १७१
महावीर ७९
महिम १५१
महिला-कक्ष १४८
महेशचन्द्र न्यायरत्न १८
माता जगन्ना गुलाम ७५
मानव १८८
मान और मद ११९
'मानव-कल्पना' ११
'मानव का अधिकार' २५८
मानव-जन्म अद्भुत अवसर ९८ अद्भुत स्थिति २८ महान् केन्द्र २८ -पशु २८४
मानवता उसका चरम २१८ उसका विशिष्ट अंग ९८
मानवात्मा २२१ ईश्वर का अंश मात्र १२१ उसका उपभोग्य ५५ पूजा के लिए सर्वश्रेष्ठ मंदिर १४२
मानवी भाषा और शब्द ९
मानवीय असमानता ९८१
मानसिक चिकित्सक १८७
माया ८१ ४ ५९ ५९ ६६–७ ७१ ८०–१ ८१ ४ ९ १ ११७ १४ १५१ १५१ उसका साथ रण भाव १७ उसका स्वामी १७ उसकी धारणा ९ उसकी परि भाषा ५ उसकी व्याख्या ५९ ५७ उसके अर्थात ९५ उसके बाद ७७ उसके भीतर व्यक्ति ७१ उसमें न ऐसा न वैसी ४०

उसमे मनुष्य-जन्म और जीवन ६६, ७७, उसमे। अतीत आत्मा ७८, १८४, उसे ही प्रकृति समझो ४४, और आसक्ति ४७, और इन्द्रिय ७४, और इन्द्रिय-सुख ७६, और जड का अनुकरण ७४, और नारद ७६, और प्रकृति के गुलाम ७४, और प्रेम ७५, और बन्धन ४८, और मृत्यु ४९, तत्त्व ४३, त्रिगुणमयी ७८, देश-काल, उसके भीतर १३५, द्वारा व्यक्ति-सृजन तथा पार्थक्य बोध ३१, -प्रपच ८३, 'भ्रम' नही ६०, महेश्वर ४४, वाद ४३-४, ५०, ५५, ६२, १८१, वाद, यथार्थ ४३, वादी, उसका कथन १८३, विशेष सिद्धान्त नही ६०, विषयक धारणा ४३, ससार का तथ्यात्मक कथन ६०, ससार की वस्तु-स्थिति का वर्णन मात्र ५२
मार ७९
मार्ग, वास्तविक १५४, सच्चा, अत्यन्त कठिन १४४
मार्स (मगल) देवता ४८ (पा० टि०)
मासाचुसेट्स ३३९ (पा० टि०)
मित्र, हरिपद ३१४
मिथ्या और पाखण्ड ७८
मिनियापोलिस ३१३
मिल्स कम्पनी ३८७
मिल्स, श्रीमती ३८६, ३९१
मिशनरी ३८१, लोग ३५५, ३६४, ३७५, ३८०
मिशिगन एवेन्यू ३०७, भाषण ३३०
मिस्र ६, १९१, २३०, वासी १९१-९२
मुक्त पुरुष, उसका स्वरूप ८०
मुक्ति ३७, ८२, २१०, २३४, २५७, २९४-९५, ३६९, आत्मा का जन्मगत स्वभाव ३७, आत्मा की अन्तरात्मा ८३, ईश्वरस्वरूप २९६, उसका अनुसन्धान २९६, उसका अर्थ १८४, उसका उपदेश ७९, उसका उपाय २९८, उसका पथ ३०१, उसका भाव ८२, उसका मार्ग ३५२, उसका मार्ग नैतिकता ९५, उसकी अदम्य आकाक्षा २९७, उसकी धारणा ९७, २९६, उसकी प्राप्ति २७, उसकी भावना ८०, उसके लिए सघर्ष और व्यक्ति २२१, और ईश्वर ५७, और उज्ज्वल अग्नि २९६, और ज्ञान २९६, और भक्ति ३६३, और स्वाधीनता २९६, तत्त्व २९८, मनुष्य का ध्येय २६१, मनुष्य मे सदैव वर्तमान २९६, -लाभ २६-७, २९४, २९९, लाभ और प्रकृति पर आधिपत्य २९६, सुख-दु ख का अतिक्रमण २९८, ही यथार्थ स्वाधीनता २९६
मुण्डकोपनिषद् २९९ (पा० टि०)
मुदालियर, सिंगारावेलू ३२५ (देखिए किडी)
मुसलमान १६७, १८३, २०३, २४०, २४९, २५८, २७८-७९, ३३८, ३६५, सिपाही १७
मुहम्मद १८३, २५८, ३००, ३३८, ३६६
मूर्ति-पूजा ३२३, ३३६, ३६५
मूसा ७, २४१
मृत्यु, उसका रहस्य १५९ (पा० टि०), उसकी महिमा ४८, और जीवन १२९, प्रकृत सत्ता की अभिव्यक्ति १८२, -मय १३, रूपी तथ्य ४७, सबका लक्ष्य ४७, -हीन जीवन ५३
मेरी हेल, कुमारी ३३३, ३४१, ३८४-८५
'मैं' १४-५, ३०, १७६-७७, २१३, २८९, २९१
'मैं और मेरा' २०७
'मैं नहीं तू' १९५
'मैं-पन' १२७
'मैं वही हूँ' २६०

मैक्यूबेल मौसली ११२
मैक्स मूलर २ २ १११
मैजिक लैन्टर्न १५७
मैडिसन ११३
'मैडोना' २११
मैत्रेयी १११
मैसूर १४१ ११८ १७१ १७४ १८२
१९१ १९५
मोक्ष २ १-७ २१४ उसकी परिभाषा
२१८ प्राप्ति २ ७ २२
मोमेरी डॉ ११३-१४

यज्ञ १११ १२ उसकी शक्ति ११४
और आकाश १४ कर्ता १११
कार्य १११ संबंधी ज्ञान १११
यथार्थवाद ४४
यम ११२ ११४ ११ १७ १७२
(देखिए यम देवता)
यम देवता ११२ पितर के शासनकर्ता
११२
यमप्राप्ति २ १
यहूदी ५ १११ २११ २४९ २७९
२९३ उनकी परम्परा २११
उनकी विशेषता २१७ और ईसाई
१९४ प्राचीन ११ कौम २२९
युद्धक्षेत्र उसमें मरना श्रेयस्कर ७९
युधिष्ठिर, राजा ४९
यूनान २१ २१४ (देखिए ग्रीक)
यूनानी भाषा १ ८
'यूनिवर्सल ट्रूथ' १८१
यूरोप ८७ ९४ २ ४ २११ ११०-१२
१११ उसका प्रचार, बुद्धि
परक धर्म पर ९४ वहाँ धर्म कुण्ठित
सकीर्ण ७
यूरोपियन मिशेसी १४
यूरोपीय जाति ९५ दार्शनिक ११५
राजपरिवार १०१ लोग ११
२४९ वैज्ञानिक आधुनिक ४५
योगज्ञान १४१ राज १४१
योगी १४१ मुक्तपुरुष १ ५
यौगिक पदार्थ उनका नाम १२१
नियम के राज्य के अन्तर्गत १२१

रसायनशास्त्र ११६ २४१ २४७
२५५ २७५ २७८ और प्रकृति
पुस्तक २५१ वेत्ता ११६
रसायनशास्त्री २४७ २७५ २८१
रहस्यवादी २५१ (देखिए अतीन्द्रिय
वादी)
राइट जे एच १८१ डॉ १ ८
प्रोफेसर १४५ ४१ १११
राखाल ११२ (देखिए ब्रह्मानन्द स्वामी)
राजपूताना १४१ १५१
राजप्रासाद ४७
राजयोग १४१
राजा साहब (रामनाद) १८२
राम १२९
रामकृष्ण १२१ १२९ १४८ १९
१११ ईश्वर के अवतार ११
उनका जीवन और उपदेश १२१
उनका महत्त्व १११ उनकी विशे
षता ११ -जन्मोत्सव १४९
परमहंस १२२ १५९ १०७
भगवान् ११४ (पा टि )
समन्वयपूर्ण जीवन १२१
रामकृष्णानन्द स्वामी ११४ (देखिए
शशि)
रामदयाल बाबू ११२
रामनाद ११२ १४१ १८२
रामपार्ट दो ११९
राममोहन राय १११
रामायण १७२
राव बहादुर नरसिंहाचारियर १७१
राष्ट्र उसका धनी होना अन्य की क्षति
२११ उसकी भावी उन्नति १२१
उसकी महानता के लिए तीन
आवश्यक बातें १२४ पश्चिमी
१२५ भारतीय उसके उद्धार का
उपाय १२५ भारतीय झोपड़ी में
बसा १२१ हिन्दू ११४

राष्ट्रीय जीवन ३१८, मृत्यु २६१
रामायनिक द्रव्य ३२१, सामग्री ३६५, ३६९
'रिव्यू ऑफ रिव्यूज़' ३४५
रिस डेविड्स ३१३
रीति-रिवाज़ ५६, ३२९, ३८३
रूप ९१, -आकृति १२५, और आकार २०४
रूपक-कथा और प्रतीक २२९
रेवरेण्ड आर० ए० ह्यूम ३३९ (पा० टि०)
रोटी, रुपया और वस्त्र २६९
रोमन २३१, कैथोलिक २८९

लका ३१३
लदन ७३, ८५, १५९, ३१३, ३७६ (देखिए लन्दन)
लन्दन ३, ४३, १३३, १४८, १७८, १९१
'ललितविस्तर' ४७
लाग हाउस फार्म ३३१
लीन ३३१, ३४६, क्लब ३४१
लीम एबॉट ३४७
लेपेल, सर ३४५
लोकाचार १९७
'लोकायत दर्शन' ९३

'वयोवृद्ध बालक-सघ' ३३०
वरुण १३४
वर्ण-व्यवस्था ३११
वस्तु, अचल २४, अनन्त काल से १०४, अपरिणामी २९, इन्द्रिय विषयक १९८, उसका आदि और अन्त १०१, उसका आभ्यन्तरिक सत्य १५८, उसका मर्म १४५, उसका वास्तविक स्वरूप १३३, उसकी उत्पत्ति देश-काल मे १३५, उसके अन्तराल मे एकत्व भाव १२३, १५७, उसके दो विभिन्न रूप १३५, उसके मर्म की खोज १४५, उसके स्वरूप की व्याख्या १३१, उसमे ईश्वर-वुद्धि १५४, उससे आत्मा, पृथक् २३९, एकता की ओर २३९, एक ही, दु ख-सुख का कारण १३५, और अज्ञानी प्राणी २३९, और ज्ञान-लाभ १४, काम्य ५५, १३३, चलनशील २४, जड १११, जीवित २९२, तथा नियम १३०, तरग की भाँति १०४, दृश्य ३०, नाम-रूपयुक्त १२३, परमाणु की सहति मात्र १०, परमाणु के समवायविशेष १२५, प्रकृति २८२, सयोगजनित और पाप २४४, समानधर्मी २८०, सर्वव्यापी एक ३०, ससीम १२, सासारिक २८९, स्थिर २४
वाद्य सगीत २२८
वाल्डोर्फ ३४६, होटल ३४६
वाशिगटन एवेन्यू ३८३
वासना, उसकी शक्ति १७५, उससे दु ख १७४, उसे पूर्ण करने की शक्ति १७४, -त्याग, उसका क्या अर्थ १५१-५२, सासारिक १५३
विकास ५४, उसका सार २८२, उसकी पहली शर्त ६९
विकासवाद २८४, उसका सिद्धान्त २८२ (देखिए क्रमविकासवाद)
विचार, असत् १२१, और कार्य ३२०, और काल ११२, और जड पदार्थ २८३, कार्य-प्रवृत्ति का नियामक १५६, दार्शनिक १३४, १८६, धर्म विषयक २५५, नया २१०, परिवर्तनशील २५५, मानवीय भावात्मक ३२४, -शक्ति २४१, शक्ति, उससे आकाश और प्राण की उत्पत्ति २२, सत् १२१, -सागर २८३
विज्ञान, आधुनिक २२, ४४, ९५, २८३, उसका अध्यापक ९५, और अध्यात्म-तत्त्व १४६, और कविता ९४,

और धर्म ९४ -धर्मी १४५
जगत् २८४ भौतिक २२ -वाद ४४ -वादी १६६
वित्त-मोह १६५
विद्या अपरा २७७ -दान ३१८
विधुस्तोक २१
विधर्मी १ ८
विधवा-संगठन ११६
विधि-निषेध सामाजिक १८१
विभिन्नता उसमें एकता २७५ और प्रकृति ८४
विवेकानन्द १ ७-८, ११ ११२ ३१४ ३१७ ३१९ ३२१ १३ १४ ३१६, १४ (पा टि ) १४१ ४२, १४४ ३४१ ४८, १५१ ५५, ३५८-५९ १६१ ३६८ १७१-७२ १७४ १७८-७९ १८४-८५, १९०-९२, १९६
विशिष्टाद्वैत २ ८ -वादी २ ९, २१५ सम्प्रदाय २ ८
विशेषाधिकार ७
विश्व उसका अस्तित्व २१९ उसका इतिहास २७१ उसका उपकार २६६ उसका प्रयोजन २९७ उसका समष्टिरूप अव्यक्त २८८ उसके मूल में असीम की भावना २९३ उसमें ब्रह्म सत्य २११ और अस्तित्व का व्यापक २९७ -कविता १९३ -चेतना २११ न अच्छा न बुरा २१७ प्रपंच २९९ ब्रह्माण्ड ३७ १ १ ब्रह्म स्वरूप ३७ भौतिक तथा चेतन २१९ -महामेला १८१
विश्वात्मा २९ ९१
विश्वास उसमें मुक्ति १२५ और अन्तर्दृष्टि १२५ और श्रद्धा १५७
विषय ८ अनुभूति २१ इन्द्रियातीत १९४ उसकी धर्मान्धता १९९ ज्ञान की प्रक्रिया ११ -भोग १ १३७ १९ -७ १७१ -भोग वासना १७४ -संवेदना ११० -सुख १७१
विषयी और ब्रह्म ९२
'विषयीकरण' ८८
'विषयीकृत' ८८ ९
वीरचन्द गांधी १ ९
वृन्दावन १७४
वेद ४१-४ ६१ ४ १३१ ३४ १४२, ४७ १७२ १७७ १८१ २१६ २१८ २४१ २५१ २५६, २७७ ३२१ ३२९ उनकी घोषणा २५९ उनकी चरम शिक्षा २१४ उसका अध्ययन १७८ उसका चरम रहस्य १२७ उसका प्राचीन भाग १६१ उसका ब्राह्मण भाग १४२ उसका महत्त्व १७२ उसका संहिता भाग १६२ उसकी जिज्ञासा आत्मा से २१७ उसमें ईश्वर संबंधी ज्ञान २ १ उसमें [illegible] की महिमा १७ उससे महान् शिक्षा २४२ ऋषि द्वारा रचित १९४ द्वारा जगत् सृष्टि १७२ पवित्र और विज्ञान ३१९ बुद्धिसंगत अंश ९५९ विभिन्न अंशों में प्रतिपादित ९५९ -वेदान्त १६ शाश्वत २ १ २४२ शाश्वत आप्त वाक्य २ १ समस्त ज्ञान का केन्द्र १७२ समस्त ज्ञान की समष्टि २५९
वेदान्त ४१ ४ ५१ ६ १६, ८९-७ ८९, ९१-४ ११९ ४ १४८-५ १५२, १५७ १६७ १७१ १७६ १८२ १८८, २१२ २१४ २१६ २४८ ४९, २५७-५८ २८२, २८८ २९१ ३५५ अद्वैत ८५, १८० २१७ उसका आध्यात्मिक सिद्धान्त ६ उसका आरम्भ ८१ उसका उद्देश्य ११ उसका कथन ११७ ११६, १४२, १४६ १५१-५४ १९ २४६ उसका कर्तव्य ११ ८ उसका क्षेत्र २११ उसका

दृष्टिकोण ५७, उसका पहला कार्य १३८, उसका पहला सिद्धान्त २४७, उसका प्रारम्भ १५१, उसका मत १७०-७१, १८६, उसका मूल १६८, उसका सिद्धान्त २४६, उसकी भाषा ५७, उसकी शिक्षा ८३, १३९, १५०, उसके ईश्वर विषयक विचार २९६, उसमे, वैराग्य का अर्थ १५०, उसमे सिद्धान्त जीवित २४०, और अद्वैत ६०, तथा प्राच्य दर्शन और धर्म १४४, दर्शन २७, ५२, ७१, २५९, दर्शन, असली २०८, दर्शन और वाद ५२, दर्शन का आदि-अन्त २२१, दर्शन का उद्देश्य २१, दर्शन पर तीन व्याख्यान २०२-३, -धर्म ६८, २८४, धर्म की तीन अवस्थाएँ २४०, मत २५,३६, ५९, -वादी ४५, व्यक्ति पर आधारित नही २४०, सभी धर्मों मे सर्वाधिक साहसी ६८
वेदान्ती १४८, १६७, २१४, उनका मत तथा मान्यता २०३, उनके प्रमुख भेद २०३, उसका लक्ष्य ३६, द्वैतवादी २०४, मनीषी १८२, लोग १८३
वैज्ञानिक, आधुनिक ९३, ११६, तथा वाह्य पुस्तक २५१, सिद्धान्त, आधुनिक २१
वैदिक, दर्शन ४५, दार्शनिक ४५, भाषा १००, वाक्य, प्राचीन ९९, विचारक ४५, साहित्य ४३, साहित्य और प्राचीन आचार-व्यवहार १७९
वैराग्य और वैदिक नीति १६५, चूडान्त १५०
व्यक्ति, अज्ञानी १४४, अपने कष्ट का उत्तरदायी २३०, असाधु ३४, ३७२, अस्वस्थ ३५३, उनके गुरु तथा धर्म सवधी इच्छा २४९, २-२८
उसका जन्मसिद्ध अधिकार २४४, उसका जीवन-दर्शन और विचार-स्वतन्त्रता २१५, उसका तत्त्वज्ञान १३२, उसका प्रभाव, सवेग पर २४१, उसका भेद, प्रकारगत ८२, उसकी दु ख-प्रतिकार की चेष्टा १४८, उसकी परख ६०, उसके अभ्यन्तर से धर्मोदय २६४, उसके कार्य और विचार की छाया २१७, उसके भीतर स्वर्ग-राज्य १५२, उसके लिए देश का स्वरूप अनजान ९०, और धार्मिक सस्कार २४८, और विचार-प्रभाव ३३, और विश्व की मूलभूत एकता २४९, और सयोग २४४, चिन्तनशील ११३, १८८, जगली १३६, ज्ञानी १७२, तथा राष्ट्र और व्यक्तिभाव ३३८, तीन तत्त्व से निर्मित २१६, दानी ८२, दिशाहीन ४७, धर्मान्ध ५६, ७१, धर्मार्थी २५१, धार्मिक १७४, धैर्यवान और न्याय-पथ ३५०, पवित्र ४०, पूर्ण और उनकी आकाक्षा मे अन्तर २२३, पूर्ण, जीवन्मुक्त के लिए ३२, प्रत्येक, एक एक अलग मन ३२, प्राच्य ३१०, भावुक २४८, महा-अवम १८२, विचारशील १०३, विभिन्न स्वभाववाले और साधना २४८, विशाल हृदय ९८, शुद्ध स्वभाव १८३, साधु ४०, ३७२, स्वभावत मुक्त १८३ (देखिए मनुष्य)
व्यक्तित्व १२-३, १५, २९४, अनन्त १३, आपातप्रतीयमान १५, उसके अभाव का परिज्ञान २३९; उसको प्राप्त करने के लिए सघर्ष १३, क्षुद्र ५३, -भाव १२, सामाजिक ३११
व्यष्टि भाव ९६, -मनुष्य २४
व्यापार, नैतिक जगत् का १६१, पार-

'शिकागो हेरल्ड' ३४३
शिक्षा, उसका अर्थ ३२८, उसका फल ६३, उसके अवगुण २०, उसके प्रसार की आवश्यकता ३६६, एव धर्म ३२२, और गरीवी ३७०, और सगठन ३७०, -प्रणाली १८९, वडी, भगवान् की २५२, -लाभ ३२०, सामना करने की २९८
शिव १८९-९०, और महत् १९९
शिवनाथ शास्त्री, पडित ३५४
शिवमहिम्नस्तोत्र ३१८ (पा० टि०)
शिवानन्द, स्वामी ३५९ (देखिए तारक दादा)
शिवोऽहं १३१, १८६, १९०, ३८८
शुभ ४७, ५२, १३७, -अशुभ, विश्व के अग २८६, उसका परिणाम ५१, उसका साधन ४६, उसकी मनोज्ञता २६५, और अशुभ २७, ३८, ५१-४, १७१, २०६, २८५-८६, २९०, और अशुभ का मूल्य वरावर ५७, और अशुभ पृथक् सत्ता नही ५३, कर्म २७, ५६, -देवता १३८
शून्य, उससे वस्तु की उत्पत्ति नही १०४
शून्यवादी ४-५
शैतान ३३, १५५, १८१, १८९, २०५, और धर्म १८७, जगत् ३३
शैलोपदेश १६७, २७९
श्रद्धा, बौद्धिक ९३
श्रवण १८, -क्रिया १०९
श्रीधर ३०९
श्री माताजी ३२९
श्रुति, ग्रन्थ २३५, वाक्य १४०, विषयक धारणा १७२
श्रेय और प्रेय १६५
श्रेष्ठ पुरुष, उनकी पूजा २९३
श्वेताश्वतरोपनिषद् ४४, ५८ (पा० टि०), १०७ (पा० टि०), २८४ (पा० टि०), ३३७

सकट और प्रलोभन १५५
सगठन, उसका राज ३८२
सघर्ष २२०, शाश्वत, उसकी अभिव्यक्ति २२०
सत, उनका जीवन-चरित्र और साधना २४८, और आन्तरिक पुस्तक, २५१, और द्रष्टा २४९, पॉल ३००, महात्मा २८९
सन्यास ३३३, ३५४
सन्यासी ९३, १८८, ३३८, ३५२, ३९५, और महात्मा १७, और सम्राट् १०८, नि स्वार्थ परोपकारी ३३८, सच्चा ३५४
सयम, उसकी भावना और समाज ६४
सयमी पुरुष १३६, ३७२
सयोजक (adhesive) १०१
सवेग, उसका सबध बुद्धि से अधिक इन्द्रिय से २४१, और व्यक्तित्व २४१
सवेदक नाडी १२७
सशयवादी २७१, २७३
ससार, इन्द्रिय , बुद्धि और युक्ति का २६३, उसका तथ्यात्मक कथन ६०, उसका वन्धन ५५, उसका शाब्दिक अर्थ २२०, उसकी परिभाषा ६६, उसके सभी मतो मे सर्वनिष्ठ भाव १८१, उसमे प्रतिद्वद्विता १७६, और धर्म ७९, और प्रयोजन का अर्थ ८१, और स्वर्ग २११, -क्षेत्र १५५, चमत्कार की आशा मे २९३, -त्याग २२१, न अच्छा, न वुरा २६७, परिदृश्यमान १४६, भयावह ३३३, -वृक्ष १४२, व्यावहारिक स्तर पर १७५, शुभ और अशुभ ५२,६२, सापेक्ष २८८, सुख और आराम का उपासक २९८, सुख-दुःख का मिश्रण ५३ (देखिए जगत्)
'ससार माया है' ४४
सस्कार २१७, २१९, उसकी व्याख्या २५-६, और पुनर्जन्मवाद ११५,

मार्मिक और धर्म १९६ बुद्धि राज्य
का १९१ मनोजगत् का १९१
व्यास ११७
व्याससूत्र १२९
व्रत-पालन १९१

शंकर ९८ (देखिए शंकराचार्य)
शंकराचार्य ९४ भगवान् ४४
शक्ति आकार एवं भौतिक द्रव्य २११
आन्तरिक उसकी प्रेरणा २५१
इच्छा १२४ उसका पुजारी ११५
उसकी अभिव्यक्ति १ उसकी
उपासना २११ उसकी कृपा २११
उसकी व्याख्या ९ और आध्यात्मिक
आदर्श १९९ और ज्ञान ९१ और
भूत १५ और महिमा १ १
और शरीर ९ क्रियाशील २९
गुरुत्वाकर्षण ७४ चिन्तन ८९,
१२७ जगन्मयी सर्वव्यापी १२९
जागतिक १ ७ ज्ञानस्वरूप १२
तथा नीतिपरायण १४ दुःख की
और सुख-भोग की ५२ द्वारा शक्ति
प्राप्ति १ ५ द्वारा संसार का उद्धार
१११ धर्म की १९१ प्रतिक्रिया
१२७ प्राकृतिक १९१ भौतिक
१२७ मानसिक और व्यापार
१८१ विचार २२ १२७ शाश्वत
२५१ १२५ क्रियात्मक २ १
शुभ एवं अशुभ ५४ संहति १२४
शरीर ६, ८ २४ १४ १८ ९२ ९९
७९ ९१ १ ७ ११९ ११८
१२१ १३४ १५१ ११२, १७१
१८४ ८५, १९२ १ २ ४ २२२
आत्मा का आवरण २११ आध्या
त्मिक ११ उसका नष्ट होने पर
१ ८ उसका धर्म ११७ उसका
प्रकाशन मन से ११२ उसका
राज्य ११ उसकी गति ८९
उसकी रक्षा ११ उसकी स्थिति
१२७ उसमें उन्नति और अवनति
११ एक अर्थ में नित्य रूप १२५
एक परिणाम ८५ और आत्मा
२२१ और इच्छा ८१ और मन
२४-५, २८ १० २१७-१८ और
मन का संबंध ११ और मन
परिवर्तनशील ११ और विचार
२८७ और शक्ति ९ और सिद्धांत
२१ कभी आत्मा नहीं १२७
-गठन ११९ चेतन भौतिक नहीं
२११ ज्ञान-प्रकाश करने में असमर्थ
१२८ ज्योतिर्मय १ नश्वर
२२८ परिवर्तित पर आत्मा नहीं
२२१ पूर्व कर्म अधीन ११
मन का विरोधी नहीं २१८ मन में
विलीन २१८ मनरूप भ्रान्ति १५
मृत १९२ रक्षा १५१ रूप
१७२ वैज्ञानिक १२७ सतत
परिणामशील जड़ प्रवाह २८
सूक्ष्म ९५ ६, ११ ११२, ११६
११ सूक्ष्म और संस्कार २५
स्थूल २१ ११ ११२, ११६
१२१ स्वप्रकाश नहीं १११
(देखिए देह)
शर्मन श्रीमती १४१
शशि ११४ १४६, ११२ ९१
(देखिए रामकृष्णानन्द)
शशि सान्याल १४८
शान्त उसका अर्थ ११५
शापेनहॉवर ८९
शाश्वत उसका तात्पर्य २४२
शास्त्र और पुराण ५
शास्त्री शिवनाथ पंडित १५४
शिकागो १ ७-९ ११ १४ ११६,
१२२, १२५ ११२, ११४ १५,
१४२-४३ १४९ ४७ १५२-५४
११४ ११८ १७१-७२, १७४
१७७ १८१ १८९ ९९
'शिकागो इन्टीरियर' १४४
शिकागो हेरिल्डलीड १४१
'शिकागो हेराल्ड' १२३

'शिकागो हेरल्ड' ३४३
शिक्षा, उसका अर्थ ३२८, उसका फल ६३, उसके अवगुण २०, उसके प्रसार की आवश्यकता ३६६, एव धर्म ३२२, और गरीबी ३७०, और सगठन ३७०, -प्रणाली १८९, बडी, भगवान् की २५२, -लाभ ३२०, सामना करने की २९८
शिव १८९-९०, और महत् १९९
शिवनाथ शास्त्री, पण्डित ३५४
शिवमहिम्नस्तोत्र ३१८ (पा० टि०)
शिवानन्द, स्वामी ३५९ (देखिए तारक दादा)
शिवोऽहं १३१, १८६, १९०, ३८८
शुभ ४७, ५२, १३७, -अशुभ, विश्व के अग २८६, उसका परिणाम ५१, उसका साधन ४६, उसकी मनोज्ञता २६५, और अशुभ २७, ३८, ५१-४, १७१, २०६, २८५-८६, २९०, और अशुभ का मूल्य बराबर ५७, और अशुभ पृथक् सत्ता नही ५३, कर्म २७, ५६, -देवता १३८
शून्य, उससे वस्तु की उत्पत्ति नही १०४
शून्यवादी ४-५
शैतान ३३, १५५, १८१, १८९, २०५, और धर्म १८७, जगत् ३३
शैलोपदेश १६७, २७९
श्रद्धा, बौद्धिक ९३
श्रवण १८, -क्रिया १०९
श्रीधर ३०९
श्री माताजी ३३९
श्रुति, ग्रन्थ २३५, वाक्य १४०, विषयक धारणा १७२
श्रेय और प्रेय १६५
श्रेष्ठ पुरुष, उनकी पूजा २९३
श्वेताश्वतरोपनिषद् ४४, ५८ (पा० टि०), १०७ (पा० टि०), २८४ (पा० टि०), ३३७

सकट और प्रलोभन १५५
सगठन, उसका राज ३८२
सघर्ष २२०, शाश्वत, उसकी अभिव्यक्ति २२०
सत, उनका जीवन-चरित्र और साधना २४८, और आन्तरिक पुस्तक, २५१, और द्रष्टा २४९, पॉल ३००, महात्मा २८९
सन्यास ३३३, ३५४
सन्यासी ९३, १८८, ३३८, ३५२, ३९५, और महात्मा १७, और सम्राट् १०८, नि स्वार्थ परोपकारी ३३८, सच्चा ३५४
सयम, उसकी भावना और समाज ६४
सयमी पुरुष १३६, ३७२
सयोजक (adhesive) १०१
सवेग, उसका सबध बुद्धि से अधिक इन्द्रिय से २४१, और व्यक्तित्व २४१
सवेदक नाडी १२७
सशयवादी २७१, २७३
ससार, इन्द्रिय, बुद्धि और युक्ति का २६३, उसका तथ्यात्मक कथन ६०, उसका बन्धन ५५, उसका शाब्दिक अर्थ २२०, उसकी परिभाषा ६६, उसके सभी मतो मे सर्वनिष्ठ भाव १८१, उसमे प्रतिद्वद्विता १७६, और धर्म ७९, और प्रयोजन का अर्थ ८१, और स्वर्ग २११, -क्षेत्र १५५, चमत्कार की आशा मे २९३, -त्याग २२१, न अच्छा, न बुरा २६७, परिदृश्यमान १४६, भयावह ३३३, -वृक्ष १४२, व्यावहारिक स्तर पर १७५, शुभ और अशुभ ५२, ६२, सापेक्ष २८८, सुख और आराम का उपासक २९८, सुख-दु ख का मिश्रण ५३ (देखिए जगत्)
'ससार माया है' ४८
सस्कार २१७, २१९, उनकी व्याख्या २५-६, और पुनर्जन्मवाद ११५,

और शक्ति का समवेत फल २१
पूर्व, उसका अतिशय प्रभाव १७१
पूर्व और प्राचीन ११५ मौलिक ११७ मन का ११७ मन में ही वास ११८ मानव-स्वभावमूलक २१४ मानसिक ११७
संस्कृत, उसके प्राचीन ग्रन्थ ६१ भाषा १ १२८
संहति-शक्ति (adhesion) १२४
संहिता ६ ऋग्वेद १९२
सकाम भाव २६
सक्रेटिस २१४ २७२ और ब्राह्मण २१४
सच्चिदानन्द-सागर २८४
सतयुग ५
सती स्त्री ११६
सतीत्व जाति की जीवनी शक्ति ५६ धर्म ५५
सत् १८४६ ५३ ९९ १ ५,२८ २८२ १ २ अपूर्ण १९५ और अज्ञान १८२ और असत् १९८ कर्म १२४ कर्म उसका मूल आधार १५ कर्म उसके फल का भोग २७ कल्पना तथा सूक्ष्म चिन्तन १८९ कार्य २७ १२१ पदार्थ २५५ -विचार १२१ शाश्वत २८५ स्वरूप ईश्वर २८५
सत्-चित् आनन्द १८२
सत्ता अपरिणामी २९, ९५ अपरिमेय २ ९ २११ असीम ५४ ईश्वर-हीन १ ९ केवल एक ११ अवस्थातीत १ निरपेक्ष ५४ निर्गुण तथा सगुण १९५ पारमार्थिक १२ महान् १८२ मानव २११ सार्वभौमिक उसकी विशेषता ९५
सत्य आध्यात्मिक ६ ईश्वर का महान् नाम २५१ उच्चतम १७ ३२ ४ उसका आधार और उत्पत्ति १८ उसका स्वरूप २११ उसकी उपलब्धि १५ उसकी खोज ५ उसकी खोज और भावना २७ उसकी जानकारी १८ १४९, २१३ उसकी जीवन में परिणति २ उसकी प्रत्यक्षानुभूति २४४ उसकी महत्ता और सम्मान १९ उसकी शिक्षा १८८ उसके अभ्यास का साहस १८ उसके साधन की विधि २१८ और अज्ञान १५२ और प्राचीन ऋषि ९४ और मरीचिका १६ और मिथ्या-विभ्रम का प्रश्न ११ भाव ७१ तथा उच्चतर आदर्श १५ द्वारा बल-प्राप्ति ९५, १८८ निरपेक्ष ५१ प्रेरणादायक २९२ भय-व्याप्ति का फल २५१ महान् ४२ यथार्थ ११ सनातन १९, १ ९ सर्वोच्च १७ ९७ सार्वभौमिक ९
सत्याधार, उसकी शक्ति में विश्वास १२४
सनत्कुमार २७७
सनातन धर्म १४१ सत्य १५
सन्ध्या-वन्दन ६
सभ्यता एवं शिक्षा ११४
समदर्शन १५
सम-धर्मावलम्बी १८२
समष्टि और आत्मा २४ भाव ११ मन और ईश्वर २४ -योग १२१
समाज, उसकी प्रकृति १८ और धर्म ९८ बाह्य १४१ व्यक्ति के समूह का नाम १९७ -सुधार १२७ १५४ सुधारक ४९, ११९
सरस्वती १ ९, ११७
सर्प-पूजा २९२
सर्वोपकारी १२१
सविशेष ईश्वर २८८
ससीम वस्तु १२
सहज प्रेरणा ११६
सहिष्णुता उसकी आवश्यकता ९४ और कोमलचित्त मन ७१ और मैत्री वर्गों औषधि ७१
सांख्य न्याय और मीमांसा २ १ -वादी १२८

सासारिक जीवन ७९, जीवन की परिभाषा ७८, भोग और प्राणी २२१, लोगो का कथन ७८
साधना, उसकी विधि का अनुसन्धान २४९, और प्रार्थना २५८, और व्यक्ति २४८
साधु, अद्भुत १४६, -असाधु १८७, -चरित ५८, -ब्राह्मण ३१६, -महात्मा ७१
सान्त ३५, ८५, ३०२, पदार्थ १३
सान्याल ३५३, शशि ३४८
सापेक्ष तत्त्व २८६
सामाजिक उन्नति मे निहित एकत्व ७०, कुरीति ३२९, गति और मुक्त भाव की अभिव्यक्ति ८१, जीवन ८१, तनाव और युद्ध २२०, विधान ३२८, विषय ३२८, व्यक्तित्व ३११, शृखला की उत्पत्ति ६४, सम्बन्ध २७४, सम्मान २८३, स्वतन्त्रता ६८, ७०
सामान्यीकरण, उसका सिद्धान्त २८२, उसकी चरम परिणति २८४, -प्रक्रिया २८६, सर्वोच्च और ईश्वर तथा मनुष्य २८८
सामुद्रिक सर्प की कहानी २४५
साम्प्रदायिक कट्टरता २४१
साम्यभाव ५६
साम्यावस्था २९, २२०, मौलिक २२१
सारदानन्द स्वामी ३५३
सार्वभौमिक, उसकी खोज ९१, नित्य मुक्त ९५, नित्यानन्द और नित्य सत्ता ९५, वस्तु का सत्य ९५, वस्तु की अन्तरात्मा ९५, सिद्धान्त १६१
साहस, उसके प्रकार १७
सिंगारावेलू मुदालियर ३२५
सिद्धान्त, आकाशविषयक ४४, आत्मामूलक १९, आध्यात्मिक २४२, और दर्शन ३५, भौतिक २४२, मानसिक २४२, विकासमूलक १९१, सार्वभौमिक १६१
सुख, इन्द्रिय ६८, उसका ज्ञान और दुःख ४९, उसकी अपेक्षा दुःख अधिक क्यो ६५, उसकी खोज और नश्वरता १६, और गणितीय क्रम १३७, और दुःख का मिश्रण ५३, और स्वच्छन्दता ५०, -दुःख १३८, २०६, -दुःख, उसकी धारणा १६९, दुःख, प्रत्येक की धारणा अलग १६९, दुःखहीन ५३, -प्रवणता और दुःख ५२, -भोग ५१, -भोग, उसके भीतर गरिमा १५१, शारीरिक और ज्ञानानुशीलन ४९, सासारिक ३१९, -सुविधा २७०
सुधारक ४९, आधुनिक ३२१
सुब्रह्मण्य अय्यर ३५७
सुवर्ण लोम ४८
सूर्य १७, २२, ३१, ३३, ६३, ८१-२, ९९, १०२, १०७, १११, १२०, १३०-३३, १३९-४१, १५७-५८, १६७, २१२, २१७, २१९, २३१, २६३, २८३, २८५, २९७, २९९, ३२७, उदय २७२, -किरण १००, -मण्डल २९४, -रश्मि २६, -लोक २६, -वशी ६३
सृष्टि, उसका अभिन्न रूप २९०, उसका रचयिता २०४, उसका रहस्य २९१, उसके पूर्व की अवस्था १०२, उसके साथ एकरूप २९०, उससे एकत्व का अनुभव २८४, और आत्मा ३६९, और उपादान २०४, और बीज १००-३, और मानव-मस्तिष्क १०९, -कार्य २०८, -चक्र २०३, मानवात्मा की २५६, -रचनावाद, प्राचीन १०५, रूपाकार की २१६, सघात मात्र २५, सम्पूर्ण का आगम और विलय २०३
सेन, केशव ३७६, केशवचन्द्र ३५४ (पा० टि०)

सेमटर पामर १८१
सेमेटिक जाति २२७ धर्म में ईश्वर का ज्ञान २३७
सैनबोर्न कुमारी ११४
सोम रस १४
सोराब कुमारी ११९
सोऽहम् २ १८६, २४१ २५११ २८९१ अपरिवर्तनशील २९ शाश्वत २९
स्कॉडिनेविया १९२
स्टोक कम्पनी २११
स्टोकहम कुमारी १८६
स्टोइक दार्शनिक १७२
स्टोन श्रीमती १८४
स्ट्रेटर १ ७
स्तोत्र-पाठ १६४
स्त्री और स्वामी ५१ जाति की वास्तविक दशा १७१
स्थितिशील (static) २२
स्मिथ श्रीमती १४१ १४६
स्याम १७१
स्वामी २५७
स्वयम्भू १११
'स्वाराज्यसिद्धि' १८१
स्वर्ग १४ २१ १२-६, १७ ८१ ८९, ९१ ९९ ७ ११६, ११४ १५, १४२ ४५ ११२-११ ११८ १६, १७४ ७६, १८२, २ ६, २११ २१२ ११ २९८ १ २ १ १६९ उसका राज्य व्यक्ति में १५२ काम २७ द्वार २९८ -नरक १२ १४४ -प्राप्ति ११४ मन की कमजोरी का प्रतीक २९८ लोक १५ वास १११
'स्वाधीन इच्छा' १७
स्वाधीनता उसका अनुसन्धान मनुष्य द्वारा २९१ उसका प्रकाश १९ उसका भाव २९५ उसका भाव और ईश्वर ५८ उसकी प्राप्ति परम लक्ष्य २९१ उसमें विकास की उत्पत्ति और उन्नति ७० और मुक्ति की आकांक्षा २९१ और विकास १९ यथार्थ २९१ -काम २९४
स्वामी अभयानन्द १४८ ब्रह्मानन्द १९२ रामकृष्णानन्द १२४ शिवानन्द १५१ सारदानन्द १५१
स्वाम्पस्कॉट १७६, १८४ १८१

हक्सले ७ ११४
हजरत मुहम्मद १८१
'हम बद्ध हैं' ८
'हम मुक्त हैं' १७
'हमारा स्वर्गस्थ पिता' १७
हरमोहन १५१
हरि ११२
हरिदास बिहारीदास देसाई १२२-१२४ १६४
हरिपद मित्र ११४
'हस्तक्षेप मत करो' ११
हार्वर्ड १४६ विश्वविद्यालय २०८-१४७ १८१
हिडिम्बा १२१
हिप्पा १७
हिगिन्सन धर्मोक १४७ ११
हिन्द महासागर १६
हिन्दुस्तान २४१ २७१
हिन्दू १४४ २४२ २४९, ११८, ११९ उनका मत २२ उनका सिद्धान्त २१४ कट्टर ११८ प्रतीक ११८ जाति ५५, ९५, १२५ दर्शन में ईश्वर और व्यक्ति २१२ दार्शनिक ४५ १ १ धर्म १ ९, १२८ १४ १४१ ११२ धर्मग्रन्थ और वेद २ २ पत्रिका १७५ प्राचीन ११२ बौद्धिक ११ भाई ११४ राष्ट्र १२४ राष्ट्र, उसकी अवनति का कारण ११४ २९ रीति १८७ लड़का ११९ लोग २१ १७२ विरोधी १७ शासक